करतार सिंह दुग्गल

पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

तेरे भाणे

करतार सिंह दुग्गल

पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

TERE BHANE *(Hindi)*
by
KARTAR SINGH DUGGAL

Translated by
VIJAY CHAUHAN

ISBN 81-7380-893-7

2004
कापियाँ : 550
मूल्य : 530-00

लेज़र टाईप-सैटिंग : यैसमैन ग्राफिक्स, जंड गली, पटियाला

डॉ. परम बखशीश सिंह सिद्धु, रजिस्ट्रार, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला द्वारा प्रकाशित तथा फुलकियाँ प्रैस, पटियाला द्वारा मुद्रित।

पाँचवाँ खण्ड

विभागीय शब्द

पंजाबी यूनिवर्सिटी, पंजाबी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के विकास के लिए वचनबद्ध है। इसी आशय की पूर्ति के लिए पंजाबी भाषा विकास विभाग ने कई प्रकार की योजनायें निर्धारित की हैं। मध्यकालीन एवं आधुनिक साहित्य की बेहतरीन रचनाओं को हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करवाने का यूनिवर्सिटी ने फ़ैसला लिया है। इसी योजना के अन्तर्गत पंजाबी के प्रसिद्ध साहित्यकार कर्तार सिंह दुग्गल के त्रै-लड़ी उपन्यास 'नानक नाम चढ़दी कला', 'तेरे भाणे' और 'सरबत का भला' शीर्षक अधीन हिन्दी में प्रकाशित हो रहें है। इसी उपन्यास की पहली कड़ी 'नानक नाम चढ़दी कला' का हिन्दी अनुवाद पहले प्रकाशित हो चुका है। इस भाग 'तेरे भाणे' में लेखक ने गुरु रामदास जी के समय से लेकर गुरु तेग बहादर जी के समय तक का साहित्यिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इस भाग का हिन्दी अनुवाद विजय चौहान ने किया है। इस पुस्तक की सुधाई डॉ. हुकुम चंद राजपाल ने और प्रैस कापी डॉ. अमरजीत कौर ने बड़ी मेहनत एवं लगन से तैयार की है। मुझे आशा है कि पाठकों के लिए यह पुस्तक लाभकारी सिद्ध होगी।

धनवंत कौर
अध्यक्षा

पंजाबी भाषा विकास विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

आमुख

"It is really very unfortunate that with the exception of a very few Gurmukhi works written during the eighteenth and nineteenth centuries which may be said to be partially objective in the treatment of their subjects, the biographical and historical literature produced by Sikh scholars belongs to hagiographical and epical nature. The authors of the Guru-Bilas, the Suraj-Prakash and the Panth-Prakash type of books were great poets, no doubt. In their deep devotion and overflowing reverence and zeal for the exhibition of their poetical skill, they have not been able to restrain their imagination and creative faculty in introducting fiction into their compositions. The admixture of fiction with history has destroyed the purity and truth of the latter, doing great injustice and incalculable harm to the saints and heroes of their studies. This is particularly the case with the Guru period where, in many cases, the students, and scholars of history find it extremely difficult, if not impossible to discriminate between history and fiction."

Dr. Ganda Singh in 'Punjab Past And Present', April 1976

यह कथन सुविख्यात इतिहासकार डॉ. गंडा सिंह का है। मैं इस का पंजाबी रूपान्तरण (अनुवाद) जानबूझ कर नहीं कर रहा। वे पाठक जो अंग्रेजी पठित नहीं, शायद अच्छा होगा कि जो कुछ डॉ. गंडा सिंह कह रहे हैं, उससे अपरिचित रहें। कहा जाता है अज्ञानता अपने आप में एक बड़ी रहमत होती है।

पिछले दिनों श्री जी. बी. सिंह और श्री देसराज नारंग ने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर बिना किसी उलझाव के, स्पष्टता सिद्ध कर दी है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म पौह सुधी सप्तमी विक्रमी 1723 (22 दिसम्बर, 1666 ई.) को, कोई पाँच पूर्व पटना साहब में हुआ था। गुरु तेग बहादुर जी, माता गुजरी, मामा किरपाल चंद और चोपट राय (राह) के संग 1661 ई. को पटना गए थे जहाँ दशमेश जी का जन्म हुआ। 1663 ई. में गुरु तेग बहादुर पंजाब लौटे, पर माता गुजरी जी, मामा किरपाल चंद, चोपट राह नव अवतरित गोबिन्द सिंह पटना में ही रहे। 1666 ई. में गुरु तेग बहादुर दूसरी

बार पटना साहब गये जब उन्होंने आगे ढाका बंगाल, कामरूप आदि का दौरा भी किया।

इस शोध के तथ्य को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, खालसा कालेज, अमृतसर के इतिहास विभाग के सिक्ख इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. हरिराम गुप्ता आदि ने स्वीकार कर लिया था। जब मैंने इसका उल्लेख अपने आत्मीय मित्र प्रिंसीपल सतबीर सिंह जी से किया तो उनका प्रतिकर्म अत्यंत रोचक एवं हृदयग्राही था। उन्होंने फरमाया—"बेशक यह ठीक है पर परम्परा का भी तो कोई महत्त्व होता है। इसे दृष्टिओझल नहीं किया जा सकता।"

ठीक यही बात मैंने डॉ. मैरलोड की गुरु नानक देव जी के विषय में पुस्तक के रिवीऊ में कहा था और उन्होंने एक पत्र में इसे स्वीकार किया था। यही नहीं, जब उन्होंने सिक्ख इतिहास के बारे में अगली पुस्तक 'Who is a Sikh' लिखी, उसमें इस अहम सच्चाई को स्वीकारा कि परम्परा के महत्त्व को परोखिया नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ जनमसाखियों के कुछ वृतान्त की कसौटी पर पूरे नहीं उतरते हैं, पर उनकी उस समय या उन महापुरूषों के व्यक्तित्व के विषय में परिचय (रौशनी) की उपलब्धता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

मैं न इतिहासकार हूँ ना साहित्यकार होने के नाते छिद्रान्वेषण विषय में विशेष रुचि है। एक सामान्य सिक्ख, अपने सभ्याचार, अपनी परम्परा, अपनी रहतल, अपनी विरासत का मैं शैदाई हूँ। सिक्ख इतिहास का अध्ययन करते हुए मुझे अनेक बार अनेक स्थानों पर झटका लगता रहा है। कई स्थानों पर ठहर मैं थोड़ा-थोड़ा आगे-पीछे देखने लगता हूँ। कई स्थानों पर एक प्यास (जिज्ञासा) मुझे महसूस होती है। कई स्थानों पर मेरे मुँह का स्वाद फीका-फीका हो जाता है। मेरे गुरु साहबान ये कैसे कर सकते हैं ? ये कैसे कह सकते हैं ? मेरा बंद बंद पुकार उठता है।

वास्तव में हमारे लोगों की रुचि अपने हालात को लिखित रूप में सम्भालने की बहुत कम रही है। इतिहास प्रति हम विशेष उत्साहित नहीं रहे। अजन्ता की मूर्तियाँ बनाने वालों ने, एलौरा के बुत्त निर्माण करने वालों ने, न अपना नाम कहीं लिखा, न अपने समय का कहीं संकेत दिया है। ऐसे ही गुरु साहबान के जीवन के वृत्तान्त के साथ होता रहा है।

गुरु बाबा नानक ने करामातों का खण्डन किया था। करामात उनकी

दृष्टि में मज़माबाज की कलाबाज़ी से अधिक कोई चीज़ नहीं होती। उनकी दृष्टि में इन्सान खुदपरस्त करामात है। बाबा गुरदित्ता जी ने करामात दिखाने की कीमत अपनी जान से चुकाई। एक कारण जिसके लिए रामराये को गुरु घर से बहिष्कार उनका मुगल दरबार में दायें-बायें करामात दिखाना था। गुरु तेग बहादुर जी ने अपना शीश देना मंजूर किया पर शहंशाह औरंगजेब के बार-बार इसरार करने के बावजूद, करामात नहीं दिखाई। फिर भी हम अपने गुरु साहबान के जीवन से करामातों को जोड़ कर खुश होते हैं, उन्हें बड़े सम्मान वाली बात समझते हैं। इसलिए कि राम और कृष्ण, ईसा और हज़रत मुहम्मद के साथ करामातें जुड़ी हुई हैं, करामातें मेरे गुरु महाराज का पानी भरती थीं।

क्योंकि सिक्ख गुरु महाराज के हालात वक्त के इतिहासकारों ने लेखनीबद्ध नहीं किये, जब कोई भाई बाला, कोई मिहरबान या अन्य श्रद्धालू उनका जीवन-वृत्तान्त लिखने बैठा, उसमें श्रद्धा का अंश (भाव) अधिक होता रहा है। ऐसा होना स्वाभाविक था। विशेषकर और जब यह वृतान्त कवियों की कलम ने चित्रित किया, उन कविश्री की अति कथनी की छूट का लाभ उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इस सब कुछ से मुझे हमेशा अलखत होती रही है, मेरा दिल उतना ही उपराम होता, जितनी मेरे अन्दर अपने धर्म, अपने धर्म के अग्रणियों के प्रति आस्था है।

गत पचास वर्षों से कलम (लेखनी) से जुड़ा, मैंने सोचा, मैं अपने ढंग से अपने महबूब गुरु साहबान की बात करूँगा, ऐसे उनके चित्र को निरूपित करूँगा, ऐसे उनके किरदार को प्रस्तुत करूँगा जैसे मुझ में बहुत सारा पढ़ा लिखा, आधुनिक रूचियों वाला गुरसिक्खी का उपासक उन्हें किआसदा आया है। वे चित्र जो गुरबाणी पढ़ते सुनते मेरी आँखों के सामने उभरते हैं। मैं मानता हूँ कि 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' में दर्ज गुरबाणी, दशम ग्रंथ, भाई गुरुदास जी की वारें, भाई नंद लाल जी की शायरी सिक्ख इतिहास का सबसे अधिक प्रामाणिक सोमा (आधार) हैं।

सिक्ख इतिहास को पुनः लिखना मेरे वश की बात नहीं थी। उसके लिए वर्षों की शोध चाहिए। यह ढकी नहीं मुझ से चढ़ी जाती थी। मैं इस दास्तान को एक कहानी-लेखक की कलम से उलीकने (चरित्र) का ढंग ग्रहण किया है।

प्रतीक्षा मेरी सच्चाई की तलाश की है। सिक्खी की शनाख्त (पहचान) मेरा टीचा (लक्ष्य) है। अधिकतर मुझे इसकी जरूरत पिछले कुछ वर्षों से पंजाब जिस संताप को भोग रहा है, उससे महसूस हुआ है। मैं यह ढूंढना चाहता हूँ कि यह सब कुछ ग़लत है तो फिर यह ऐसे क्यों है ? मेरे अन्दर का कलाकार यह जानना चाहता है कि यदि यह ग़लत है तो इसकी जिम्मेदारी (दायित्व) किसके सिर पर है ? फिर भी किसी प्रकार निष्कर्ष देना (प्रस्तुत करना) मेरा इरादा नहीं। मैं तो अपने पूर्वजों की दास्तान, अपनी सूझ के मुताबिक पेश कर रहा हूँ, इसमें से प्रत्येक पाठक अपनी लौ ढूंढ सकता है, उससे अपनी डगर को प्रकाशित कर सकता है, अपनी सोचनी, अपनी सूझ, का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है।

मुझे अपनी सीमाओं का अहसास है। इसीलिए मैंने अपने आप को ऐसे क्षेत्रों में सीमित रखा है, जो मेरी पकड़ में हैं क्योंकि इतिहासकार होने का मैं दावा नहीं करता, जो बात मैं कहना चाहता था, उसे एक कहानी के रूप में मैंने कहा है। कहानीकार होने के साथ ही मैंने अपने कलात्मक पात्रों की सहायता ली है। ऐसे जैसे फोटोग्राफर पोरट्रेट बनाते समय अनेक प्रकार के प्रकाश का आश्रय लेता है। अपने लैन्ज़ को संकोचता, चुड़िआता रहता है।

जहाँ मुझे रंग फीका महसूस होता है, मैं अपने काल्पनिक पात्रों की सहायता से, उसे मुनासिब कथन दी है। जहाँ मुझे कोई खप्पा (दूरी-कमी) प्रतीत हुई हैं, मेरे काल्पनिक पात्र उसे भरने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार मैंने इतिहास के साथ भी किसी तरह की ज्यादती नहीं की और जो बात कहनी थी, उसे सम्भवतः कह भी पाया हूँ।

मसलन, हम सदैव कहते आए हैं, सदैव मानते आए हैं—

बाबा नानक शाह फकीर
हिन्दू का गुरु, मुसलमान का पीर।

पर कैसे ? हम एक राय (धारणा) बुलार और एकाध अन्य किसी का उल्लेख करके एकतरफा कर लेते हैं। मैंने कुछेक काल्पनिक पात्र—नसरीन, शैली, सुमन, कमाल, बरकते, आलम आदि प्रस्तुत किए हैं, जो मुसलमान होते हुए भी, गुरुधर के अनुयायी हैं। अन्य सिक्खों की तरह सिक्ख हैं। गुरु महाराज के लिए, गुरु सिक्खी के लिए हर कुर्बानी कर सकते हैं। सुन्दरी को ज़बरदस्ती मुसलमान अगवा कर लेता है, पर यह जानकर कि वह बाबा नानक की सिक्ख है, उसे एक पवित्र अमानत की तरह अपने घर रखता है

और फिर वक्त आने पर वैसे की वैसे सगवीं उसके परिवार को सोधी कर देता है। सुन्दरी का सिक्ख प्रेमी यह सब कुछ विश्वास नहीं करता पर गुरु नानक का मुसलमान अकीदतमंद अपने 'नानक शाह फकीर' को लज्जित नहीं होने देता।

ऐसे ही मैंने देखा है, सिक्ख इतिहास में कुछ ऐसी शक्शियतें (व्यक्तित्व) हैं जिन्होंने अपने समय के गुरु महाराज के संग प्रोह किया, भले ही कोई भाई था, भले कोई बेटा था, भले कोई अन्य। क्योंकि उनका गुरु महाराज से सम्बंध था, हम बुरे को बुरा कहने में संकोच (परहेज) करते रहे हैं। प्रिथीरे को 'बाबा प्रिथी चंद' कह कर याद करते हैं। मेरी समझ में, सारे फतूर की जड़ वही था। मैंने उसे उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैसे भाई बन्नो भले कितना गुरुभक्त था, उसने चौथी पोथी की बीड़ तैयार करवाई, उस में कुछ बढ़ौतरी (वृद्धि) भी की, जो पाप है। इस बात का उल्लेख हमारे इतिहासकार दबी जुबान (दबे कण्ठ) करते हैं। मैंने उसे इस करनी के लिए नशर किया है। इस प्रकार के अनेक पात्र हैं, जिन्हें मैंने वसें वसें नहीं बक्शा (क्षमा किया)! ऐसा करने से सब धर्म के राह पर चलने वाले किरदार, मेरी समझ में और अधिक सुहावने दरसाये जा सके हैं।

सिक्ख इतिहास में कुछ ऐसे मोड़ आए हैं जिनका सिक्ख रहतल में अत्यंत महत्त्व है, जब सिक्खी की नुहार दूसरी की दूसरी हो गई। उनका सिक्ख इतिहास में उचित उल्लेख नहीं किया गया। इतिहास वैसे भी खाक (धूल) सरीखा शुष्क (Dry as dust) होता है। उदाहरणार्थ—बीबी भानी जी का गुरआई का वर मांगना और गुरु अमरदास जी का हिचकिचाहट से उसे स्वीकारना, एक कलाकार के लिए अटूट सम्भावनाओं के द्वार खोल रहा मुझे प्रतीत हुआ है। मैंने यथाशक्ति इस घटना के कई पहलूओं को काव्यात्मक (काविक) न्याय के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए बीबी भानी जी की त्रास्दी को उजागर किया है। वैसे एक के बाद एक शहीदियां सोढ़ी ख़ानदान ने देकर पंथ की लीहों (परम्पराओं) को मज़बूत किया, जो केवल वही दे सकते थे। गुरु नानक के पीरी की राह पर जब गुरु हरिगोबिन्द सिंह जी के आगमन से मीरी का सुमेल होता है, इतने बड़े परिवर्तन को सिक्ख भाईचारे ने कैसे स्वीकारा ? भाई बुड्ढा और भाई गुरदास सरीखे गुरसिक्खों ने कैसे इस परिवर्तन को स्वीकार (अंगीकार) किया ? इस अहम मोड़ का सिक्ख इतिहास में कहीं-कहीं (बहुत कम) उल्लेख है। मेरे भीतरी कहानीकार ने अपनी सूझ

के मुताबिक इस परिवर्तन के दौरान सिक्ख भाईचारे के मानसिक धोल आदि को दरशाने (प्रदर्शित करने) का यत्न किया है।

ऐसे ही बाबा बुड्ढा जी से संतान के लिए वर मांगने के लिए माता गंगा जी का अपने आपको तैयार करना एक ऐसी घटना है जो एक नावलकार (उपन्यासकार) के हाथों में अमूक सम्भावनाएँ सम्मिलित हो सकती हैं। सिक्ख इतिहास की कहानी के इस पड़ाव को रोचक बनाने के लिए मैंने इसे अपने ढंग से प्रयोग किया है। एक गुरु महाराज की पत्नी, वे सद्‌गुरु जो दुनिया भर की मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं, जिनके दरवाजे पर आया कभी कोई खाली नहीं गया, कैसे वे इस सब कुछ को अपनी दृष्टि ओझल करते हैं उनकी स्त्री इस दौरान किस मनोवैज्ञानिक वृत्ति से गुजरती है, यह एक मनोरंजक दास्तान है, जिसे मैंने कहानीकार के ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

वैसे ही गुरु हरिगोबिन्द जी का हरिमंदिर को हमेशा हमेशा के लिए छोड़ कर जाना, यह जानते हुए कि वे फिर गुरु की नगरी में कभी नहीं आएँगे। सिक्ख इतिहासकारों ने इसका उल्लेख एकाध पंक्ति में किया है। गुरु महाराज को ऐसे विदा कर रहे अमृतसरवासियों पर क्या बीती होगी, इसे मैंने इसके सामूहिक मनोवैज्ञानिक विस्तार के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है। अथवा फिर गुरु तेगबहादुर जी का हरिमंदिर के दर्शनों के लिए आना और आगे प्रिथीचंद के कोड़मे का उनके लिए दरवाजा बंद कर देना, अपने आप में सिक्ख इतिहास का एक अत्यंत दुखदाई काण्ड है, जिसके साथ मेरी समझ के अनुसार न्याय नहीं हुआ। मैंने कोशिश की है, इस घटना को सूंझवान पाठक की आकांक्षाओं के अनुरूप प्रस्तुत किया जाये।

गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी और फिर गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान सिक्ख इतिहास के बेजोड़ पृष्ठ हैं जिनके मनोवैज्ञानिक एवं नाटकीय पहलू, इन दो त्रासदियों के ऐतिहासिक महत्त्व को उजागर करने में सहायक हो सकते हैं। मेरे भीतरी कलाकार ने ऐसे करने का छोटा-सा संकल्प पूरा करना चाहा है।

या फिर नूरजहाँ का गुरु हरिगोबिन्द जैसे शूरमें (शूरवीर) के लिए आकर्षण, या माता साहिब देवां जी का यह फ़ैसला कि यदि मैं विवाह करूँगी तो दशमेश के साथ ही करूंगी, या फिर भाई जोगा सिंह का होशियारपुर के हुसन के बाज़ार में रात पर तिलकना (फिसलना), बचना, फिर फिसलना,

फिर बचना मेरे अन्दर के साहित्यकार के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ भरपूर घटना हैं, जिन्हें मैंने हाथों नहीं गँवाया।

लाहौर में माता की मारू (मृत्युजन्म) बीमारी की स्थिति में गुरु अर्जुन देव जी की लाहौरवासियों की सेवा, जब मुगल हुक्मरान खुद शहर छोड़ कर चले गए थे, या फिर दिल्ली में चेचक का प्रकोप, जब गुरु हरिक्रिशन जी शहर में उपस्थित थे और फिर उनका मक्खियों की तरह मर रही मख़लूक को प्रवास बनाना, उनकी टहल का प्रबंध करना, सिक्ख इतिहास के गौरवमयी काण्ड हैं। इनकी तरफ मैंने योग्य ध्यान देने का प्रयास किया है। आमतौर पर सिक्ख इतिहासकारों ने इन्हें अनगौलिया (बिना महत्त्व समझे) छोड़ दिया है।

गुरु अर्जुन देव जी का भाने को मानना, अहिंसा में उनका विश्वास, मीयां मीर के हिंसा के सुझाव को अस्वीकार करना, उससे अधिक बहस का अधिकारी था, जितनी सिक्ख इतिहास में देखने में आई है। ऐसे ही गुरु गोबिन्द सिंह जी का हिंसा को चुनना (चयन), अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण तर्क है, जिसके साथ भी पूरा न्याय नहीं हुआ प्रतीत होता। अपनी कहानी में मैंने इन पहलुओं पर अधिक ध्यान दिया है।

और फिर जब गुरु महाराज विचर रहे थे, पंजाब और पंजाब से बाहर भारत में अन्य भी और अहम घटनाएँ घट रही थीं जैसे सतनामी विद्रोह कर रहे थे, माराठे बाग़ी थे। हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल, मिरज़ा-साहिबां, सस्सी-पुन्नू के रोमांस हो रहे थे, उनके विषय में किस्से लिखे जा रहे थे। शाह हुसैन जैसे शायर काफियां कह रहे थे। बुल्ले शाह जैसे सूफियों की चर्चा थी। वारें गाईं जातीं थीं, लोकगीत प्रचलित थे। सिक्ख इतिहास की रचनाओं में इन पक्षों को परोखा गया है। मैं ऐसा नहीं होने दिया। सम्भवतः जैसा मॉडल मैंने निर्धारित किया, उसमें ऐसा कर सकना किसी सीमा तक मुमकिन (सम्भव) भी था।

ये सब कुछ तो ठीक है, पर सच्ची बात तो यह है कि यह सारा उपक्रम मेरे भीतरी गुरसिक्ख की अपने धर्म, अपने अकीदे की टटोल है। यह सब लिख रहा, मैं अपनी परम्परा, अपनी विरासत के साथ जुड़ा रहा है। ऐसा कर रहा मैं सोचता हूँ, मैंने अपने जीवन के कुछ वर्ष सफल किए हैं। सिक्ख धर्म के विषय में पढ़ा है, सिक्ख धर्म के विषय में लिखा है। यदि ऐसा कर रहा, मैं किसी पाठक में भी सिक्खी वास्ते कोई दिलचस्पी (अभिरूचि) उत्पन्न

करने में सफल होता हूं, तो मैं अपने आप को सौभाग्यशाली समझूंगा।

जहाँ तक इस त्रिलड़ी के ताने-बाने का सम्बंध है, जैसा मैंने पहले कहा है, जो संताप हमारा पंजाब गत कुछ वर्षों से भोग रहा है, उससे मैं अत्यंत परेशान रहा हूँ। प्रतिदिन प्रातः अख़बार उठा कर देखने से पहले दिल की कोई धड़कन जैसे थिड़क जाती हो। मासूम, बेकसूर शहरियों की हत्या और आँखें सजल होती रही हैं।

मेरी यह धारणा है कि इस तरह का आन्दोलन जब कहीं ज़ोर पकड़ता है, उसमें ग़लत तरह के अंश भी आ शामिल होते हैं, वे लोग जिनका मनोरथ केवल मार-धाड़, लूट-ख़सोट होता है। आस-पड़ोस के देश जिन्हें पुराने खोर पूरे करने होते हैं, वे भी कमान के इस तरह के अवसर से लाभ उठाने के लिए उतावले हो जाते हैं। उधर सरकार भी कई बार ग़लत शिडे लगा कर बह जाती है। पुलिस के मुँह को खून लग जाता है। नौकरशाही नये प्राप्त अधिकारों को, अधिक सुविधाओं को, सजरीआं (ताजी) पहुँचों को जफा मार कर बह जाती है। अमन से आसती से यह ढानी बेमुख हो जाती है, गड़बड़ में इनकी आस्था बढ़ जाती है।

तो यदि पाठक आज के संताप की वास्तविकता को परोखिया न क़र जाएँ, मैंने 'नानक नाम चढ़दी कला' की सैंची को पंजाबी सूबे के लिए अकालियों के आन्दोलन से शुरू किया और फिर फ्लैश बैक के साथ उसे बाबर के हिन्दुस्तान पर हमले के साथ जा जोड़ा। जब बाबा नानक को बंदी बना लिया गया था। ऐसे ही इस 'तेरे भाने' नाम के हिस्से को मैंने पंजाबी सूबे की मांग को माने जाने से शुरू किया है। इसके साथ ही यह भी दर्शाने की कोशिश की है कि पंजाबी सूबा तो बन गया पर तंग नज़र सियासतदानों की सोच का सदका (फलस्वरूप) नया सूबा बेतरन के समय अगली मांग के बीजों को भी जैसे वत्तर दे गया हो। यह क्लेश आज हम भोग रहे हैं जिसका उल्लेख अगली सैंची 'सरबत का भला' के आरम्भ में मिलेगा; नीला तारा का साका तथा दशमेश की जीवन भर की जद्दोजहद।

कई बार ऐसा प्रतीत होता है जैसे इतिहास अपने आप को दोहरा रहा हो।

कहानी कहने के जितने भी ढंग मुझे आते थे, इस त्रिलड़ी में मैंने प्रयोग किए हैं। कहीं नाटक, कहीं पत्र, कहीं रेडियो की कोमैंट्री, कहीं कुछ, कहीं कुछ।

इस तरह के इतने बड़े आकार के नावल में जहाँ चार पीढियों का वृत्तान्त है, सिक्ख इतिहास की कहानी गुरु बाबा नानक से शुरू करके गुरु गोबिन्द सिंह जी तक चलती चली गई है, मैंने कोशिश की है कम से कम मनोकल्पित पात्रों के साथ इसे बयान किया जाये। जहाँ-जहाँ ऐतिहासिक वर्णन अपने आप में मनोरंजक थे, मैंने मनोकल्पित कहानी को इस में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। इतिहास के प्रवाह को वैसे का वैसे (यथावत्) बना रहने दिया है। सिक्ख इतिहास को इस रूप में प्रस्तुत करना बड़ी मुश्किल घाटी थी। सचमुच बड़ी कठिन घाटी। कई वर्षों की शोध, अनथक परिश्रम के अंजलियों (बुक्कों) परसिओ इसका मल उतारना पड़ा है। परसियों (स्पर्श) और प्राप्ति में प्रसन्नता के आँसू।

आजकल पश्चिम में इतिहास को नावल के रूप में प्रस्तुत करने का रिवाज है। पंजाबी में मैंने यह उपक्रम किया है, पता नहीं कहाँ तक कामयाब हुआ है। मैंने अत्यंत एहतात बरती है। प्रिंसीपल सतबीर सिंह जैसे विद्वान दोस्त को परेशान करता रहा हूँ, फिर भी-यदि कहीं कोई भूल रह गई हो, उस के लिए मैं क्षमा का याचक हूँ। यदि इस तरह की कोई उकाई (कमी) मेरे दृष्टिगोचर की जाये, तो उसे आगामी संस्करण में सुधारा जा सकता है।

जिन्दगी में इतना अधिक मैंने लिखा है पर जो राहत मुझे इस योजना-बद्ध रचना करके हुई है, पहले उसका कभी अनुभव नहीं हुआ। काश अपने पाठकों के साथ भी मैं इस खुशी की सांझ पैदा कर सकूं।

गुरबाणी में आता है—बाबानिआं कहानिआं पुत सपुत करेनि। बस 'सपुत' कल्याण की लालसा

करतार सिंह दुग्गल

पी-7, हौज़ ख़ास ऐंक्लेव
नयी दिल्ली–110016

ततकरा

(1)

भारत सरकार की मंत्री परिषद् की मीटिंग अभी अभी समाप्त हुई है। प्रधान-मंत्री इन्दिरा गांधी किसी से बात किये बगैर अपनी मोटर में जाकर बैठ गई हैं और देखते ही देखते अपने दफ्तर की ओर साऊथ ब्लॉक चली गई हैं। लगता है कि मन्त्रिमंडल में जो फ़ैसला उन्होंने लिया है, पूरे मन से वे उससे सहमत नहीं हैं। उनके पीछे छोटी छोटी टोलियों में मंत्रीगण कानाफूसी कर रहे हैं। अभी अभी जो फ़ैसला हुआ है उसके बारे में हरेक की प्रतिक्रिया अलग अलग है। जितने मुँह उतनी बातें।

"जवाहर लाल की बेटी हार गई है।"

"हारने वाली तो वह नहीं है।"

"आख़िर कब तक अपनी ज़िद पर अड़ी रहती ?"

"दरअसल हमारा पक्ष कमज़ोर था।"

"भला कैसे ?"

"साफ बात है कि देश भर में जब भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया तो पंजाब के साथ यह भेदभाव क्यों ?"

"इस लिए कि पंजाब का हिन्दु अपनी मातृभाषा हिन्दी बताता है।"

"हिन्दु झूठ बोलता है। घर में पंजाबी, गली-मुहल्ले में पंजाबी बोलता है। मुहब्बत पंजाबी में करता है। गालियाँ पंजाबी में देता है। लेकिन पूछो तो कहता है है, 'मेरी मातृभाषा हिन्दी है'।"

"राजनीति में झूठ बोलने का हक़ सभी को है।"

"लेकिन यही हक़ अकालियों को भी है—शोर मचाने का हक़।"

"जवाहरलाल ने कहा था, 'पंजाबी सूबा मेरी लाश पर बनेगा।' "

"जवाहरलाल की बात मत कहो। उनकी हर बात निराली थी। जुलाई 1946 में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की उन्होंने कहा था, 'पंजाब के बहादुर सिख भी विशेष तवज्जह के हक़दार हैं। कोई हर्ज नहीं कि उत्तर भारत में सिक्खों के लिए भी एक अलग प्रदेश बना दिया जाए, ताकि वे भी आज़ादी का आनन्द प्राप्त कर सकें।' "

"जवाहरलाल ही क्यों, महात्मा गांधी ने 1931 में गुरुद्वारा शीशगंज में सिख संगत को संबोधित करते हुए भरोसा दिलाया था कि सिख मित्रों के साथ कांग्रेस कभी विश्वासघात नहीं करेगी। ऐसा करके कांग्रेस अपने पैरों पर न सिर्फ़ कुल्हाड़ी मारेगी बल्कि देश की जड़ें भी काट देगी। फिर सिख तो एक बहादुर कौम हैं, उन्हें अपने अधिकारों की रक्षा करनी आती है। ज़रूरत पड़ने पर अपने अधिकारों के लिए लड़ भी सकते हैं।"

"इन बयानों ने ही तो देश का सत्यानाश किया है।"

"लेकिन सवाल तो यह है कि बाकी प्रदेशों (राज्यों) को भाषा के आधार पर बनाया जा सकता है तो पंजाब को क्यों नहीं ?"

"पंजाब एक सरहदी सूबा है। अगर इसे सिखों के हवाले कर दिया गया तो वे कल ख़लिस्तान की मांग कर सकते हैं।"

"यह तो कोई बात नही। इस तरह तो तमिलनाडू के लोग भी अलग होने की बात सोच सकते हैं। आंध्र प्रदेश वाले भी यह नारा उठा सकते हैं। उधर मीज़ो और नागा तो पहले से ही भड़के हुए हैं। इस तरह तो देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।"

"विश्वास में से विश्वास पैदा होता है। हमें सिख भाइयों पर विश्वास करना चाहिए।"

"सिखों पर विश्वास किया जा सकता है, लेकिन अकालियों पर विश्वास करना मुश्किल है।"

"लेकिन इसके सिवा और कोई चारा भी नहीं। लोकतन्त्र में सरकार कब तक जेलें भरती रहेगी ? गोलियों से लोगों को भूनती रहेगी।"

"हमारी बीबी इन्दिरा डींगे तो बहुत मारती थी कि मैं अकालियों को सीधा करके छोड़ूँगी।"

"लेकिन आज तो लगता था कि उसने हार मान ली हो।"

"यह बात नहीं। जिस देशभक्ति का प्रमाण पाकिस्तान से जंग के दौरान सिखों ने दिया है, उसे देखते हुए कोई भी शासक अपनी राय बदल सकता है।"

"सारी सिख कौम पंजाबी सूबे के आन्दोलन को भूल कर लड़ाई में कूद पड़ी। अपने नाक और कान से उतार कर जितना सोना पंजाबनों (पंजाब की महिलाओं) ने दान किया उसका तो अन्दाज़ा ही नहीं लगाया जा सकता।"

"सर पर छांछ की हँडिया और बगल में परौंठे के ढेर बांध कर पंजाबने

बरसती हुई गोलियों की बौछार में मोर्चों पर लड़ रहे सूरमों का खाना पहुँचाती थीं।"

"मैं तो सोचता हुँ कि जवाहरलाल को चाहिए था कि 1951 में ही इस काँटे को निकाल कर फेंक देता।"

"हाँ उस समय हुई जनगणना के मौके पर इस मामले को निब़टाया जा सकता था।"

"नेहरू ने कहा था, पंजाब में भाषा के कालम को ही हटा देना चाहिए।"

"इस में तो मामला और पीछे टल गया।"

"जवाहरलाल का क्या कसूर, पंजाबी हिन्दु क़ो कौन समझाए कि सच बोलना चाहिए।"

"पंजाबी हिन्दु भी सच्चा है। हिन्दी अपनाने से उसकी हिन्दी के विशाल प्रदेश से सांझ बनती है। पंजाबी भाषा उसे पंजाब तक सीमित करके उसे कूप-मण्डूक बना देगी।"

"मैं सोचता हूँ, इस समस्या का सब से बढ़िया हल हम अपने हाथ से गँवा बैठे हैं।"

"1948 में शिमले में एक कन्वेन्शन हुई थी जिसमें पंजाब विधान-सभा के मैंबर और देश का संविधान तैयार करने वाली असेम्बली के पंजाब से चुने गए सदस्य शामिल हुए थे। उन्हें फ़ैसला यह करना था कि देश के विभाजन के बाद पंजाब राज्य की सरकारी भाषा कौन सी होगी, और उस भाषा को किस लिपि में लिखा जाएगा। मामला नाज़ुक था। भाई जोध सिंह, जो खालसा कालेज के प्रिन्सिपल थे और प्रो. दीवान चंद शर्मा के नेतृत्व में यह फ़ैसला हुआ कि पंजाब की भाषा पंजाबी होगी और लिपि देवनागरी। कन्वेन्शन हॉल में जाने से पहले हिन्दु और सिख इस पर सहमत हो गए थे। लेकिन जब कारवाई शुरू हुई तो पंजाबी हिन्दु मुकर गए। कहने लगे हमारी मातृभाषा तो हिन्दी है।"

"सारा झगड़ा इस मुद्दे पर शुरु हुआ कि पंजाबी हिन्दु अपनी मातृभाषा को अपनाने के लिए तैयार नहीं थे।"

"सरदार साहब आप ठीक फ़रमाते हैं लेकिन इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि पंजाबी सिख गुरमुखी लिपि को इसलिए सीने से लगाये बैठे हैं, क्योंकि यह लिपि गुरु साहेब ने ईजाद की है।"

"यही तो ग़लतफ़हमी है। गुरुमुखी लिपि तो बाबा नानक से कहीं पहले

प्रचलित थी। गुरु नानक देव जी और उनके बाद गुरु अंगद देव जी ने इसका प्रयोग करके इसकी साख बढ़ाई। आधुनिक खोज ने इसे सिद्ध कर दिया है। गुरु नानक देव रचित 'पट्टी' में गुरमुखी अक्षरों का प्रयोग किया गया है। यदि ये अक्षर पहले से प्रचलित न रहे होते तो कवि लिखने में उनका प्रयोग कैसे करता।"

"उधर पंजाबी हिन्दु अपनी मातृभाषा से मुकर कर अपने लिए और सारे देश के लिए काँटे बो रहा है।"

"नहीं, मैं सोचता हूँ कि वह देश की एकता को और पक्का कर रहा है।"

"हमारे देश की एकता अनेकता में है। पंजाबी हिन्दु पड़ोसियों की भाषा अपना कर अपनी प्रतिभा को कुंठित कर लेगा। क़दम-क़दम पर हिन्दी के विद्वान उसकी भाषा में गलतियाँ निकाला करेंगे। इस तरह तो आज़ाद देश का वासी होते हुए भी, वह सोचने और लिखने की आज़ादी गँवा बैठेगा।"

"सरदार साहब के कहने में बेशक सच्चाई है। सिखों को सिर्फ़ पंजाबी भाषा की ओर खदेड़ कर उनमें अलगाव की भावना पैदा होगी।"

"यह भावना तो पहले से ही पैदा हो चुकी है।"

"मैं शत प्रतिशत आप से सहमत हूँ।"

"ये अन्तिम दो वार्तालाप केबिनेट के बूढ़े, ख़ुर्राट मंत्रियों के थे। एक ऊँचा लम्बा, ऐनकधारी, इकहरे बदन वाला, दूसरा मंझोले क़द का तोंदियल। बाकी लोग धीरे-धीरे बतियाते हुए बाहर विशाल मैदान में आ गए। यहाँ वे एकान्त में कानाफूंसी कर रहे हैं।"

"मुझे लगता है, प्रधान मंत्री सिखों के बारे में बेकार भावुक हो रही हैं।"

"लगता है हमारी बीबी हार गई हैं। आखिर कब तक लड़तीं ?"

"यदि आज पंजाबी सूबा बनता है तो कल ख़ालिस्तान भी बन के रहेगा।"

"उसका तो कोई उपाय सोचना पड़ेगा।"

"अकालियों को ऐसा सूबा देना चाहिए जिसे न वे ले सकें, न छोड़ सकें।"

"क्या मतलब।"

"आगे-पीछे जितना भी इलाक़ा हो सके, उनसे छीन कर लंगड़ा-लूला छोटा सा पंजाब उनके हवाले कर दिया जाए।"

"क्या ऐसे राज्य से सिख सहमत हो जायेंगे।"

"इसका इलाज भी मैंने सोच रखा है।"

"वह भला क्या ?"

"बतौर गृह-मंत्री मैं सिखों को झांसा दूँगा कि नये राज्य में सिख बहु-संख्यक होंगे। यह सोच कर वे अम्बाला, कांगडा, डलहौज़ी और अन्य इलाके भी छोड़ने के लिए तैयार हो जायेंगे।"

"बस बहुगिनती सिर्फ़ इतनी होनी चाहिए कि वे अलग से अपनी सरकार न बना सकें। उन्हें हमेशा हिन्दु वोटों का मुँह ताकना पड़े या किसी अन्य दल का सहारा लेना पड़े।"

"यह राज्य इतना छोटा होगा कि इसे हमेशा केन्द्र की सहायता की ज़रूरत पड़ेगी।"

"छिपकली न निगली जाय न उगली जाय।"

"सिखों का एक अलग राज्य जिसमें उनका बोलबाला होगा ! फिर नाक-भों चढ़ाते हुए दोनों क़हक़हा मार कर एक विषैली हँसी हंस पड़े।"

(2)

कैसा बोलबाला था ?

एक तो गुरु की बेटी, एक गुरु की सेविका, एक गुरु की पत्नी और एक गुरु की मां, बीबी भानी का चारों तरफ़ बोलबाला था।

लेकिन यह कैसे बुरे सपने थे जो उनका पीछा ही नहीं छोड़ते थे। कीर्तन सोहले के पाठ के बाद जब उनकी आँख लगती तो कोई न कोई कम्बख़्त सपना आकर उनको दबोच लेता। सपने में अगर सिर्फ़ उनको ही यातनाएँ दी जातीं तो और बात थी। औरत जात की किस्मत में यातनाएँ लिखी होती हैं। मां बनने के लिए उसे कितने कष्ट झेलने पड़ते हैं। पर ये सपने तो उनके सबसे लाडले, सुशील और आज्ञाकारी बेटे के बारे में होते थे। उसे नई-नई यातनायें दी जाती थीं। उसे कैसे आँच आ सकती थी? कोई उसका बाल भी कैसे बांका कर सकता था। वह तो गुरु बाबा नानक की गद्दी सुशोभित कर रहा था। बीबी भानी के सिर के साईं, सच्चे पातशाह गुरु रामदास जी ने उसे यह गद्दी नवाज़ी थी। उसके सामने नारियल और पांच पैसे भेंट कर के गुरु पिता ने अपने पुत्र को स्वंय प्रणाम किया था। भाई बुड्ढा जी ने उसके माथे पर केसर का टीका लगाया और उसे गुर-गद्दी पर बिठाया था। कितना सुन्दर लगता था ! उसके मुखड़े की मुस्कान, उसके नयनों में इलाही नूर, उसके मस्तक की आभा, उसके बोलों में नग़में गूँज उठते,

वातावरण में एक संगीत-लहरी छिड़ जाती। उसके पवित्र होंठों से किसी ने कभी ऊँचा बोल नहीं सुना था। उसने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा था। फिर उसे इतनी यातनाएँ क्यों दी जा रही थीं? हर रात ऐसा ही होता था। उसके भीतर की मां को यह सब देखना पड़ता था। ये यातनाएँ अगर मां को दी जातीं तो वह झेल लेती, लेकिन अपने जाये का सताया जाना मां से नहीं देखा जाता था। बेटे के माथे पर एक शिकन भी नहीं आती थी। चुपचाप सारी यातनाएँ झेलता था। उसके होठों पर प्रति पल हरी का नाम रहता था। माता भानी तड़पती थी, फरियादें करती थी, ईश्वर के सामने हाथ जोड़ती थी कि उसे यह सब न देखना पड़े। ईश्वर बेशक उनकी जान लेले। जब उनके पति गुरु रामदास ने आँखे मूंदी थीं, काश माता भानी को भी तभी बुलावा आ गया होता। उन्होंने ईश्वर से आज्ञा भी मांगी थी, पर उनकी सुनी नहीं गई। भला कोई और मां भी इतना तड़पती होगी, जैसे पिछली कई रातों से वे तड़प रही थीं।

हर रात यही सपना। वह हाँफते हुए, पसीने में भीग कर बैठ जातीं। कभी नींद में उनकी चीख निकल जाती, कभी आँखों में से आँसुओं की धारा बह निकलती। वे उठ कर भागतीं अपने बेटे को अपनी बांहों में समेटने के लिए। उसे अपने सीने से लगा कर उसे आश्वस्त करने के लिए।

फिर बीबी भानी सोचतीं कि उनका लाल गुरु अर्जन तो बाबा नानक की गद्दी पर बैठा था। वह दो-जहान का मालिक था, उसे कैसे कोई दुख पहुँचा सकता था। वह तो हरेक के बिगड़े काम सँवारता था। उसके इशारे पर तो कायनात की कारगुज़ारी चलती थी। उसके एक बोल से लोगों के ख़ाली मन भर जाते थे। उसकी कृपा-दृष्टि से नीच लोग ऊँचे हो जाते थे। मियां मीर जैसे पहुँचे फ़कीर उसके साथी थे। भाई गुरदास जैसे कवि उसकी कलात्मक प्रतिभा के शैदाई थे। सारी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उनका पानी भरती थीं।

उसने कहा था :

जाको मुश्किल अति बनै
ढोई कोई न देई॥
लागू होए दुस्मना
साक भी भजी खले॥
सबो भजै आसरा

चुक्के सब असराऊ ॥
चित आये उस पारब्रह्म
लगै न तत्ती वाऊ ॥ १ ॥

(श्री राग, महला ४, अष्टपदियाँ)

उस पर भला कैसे आच आ सकती थी ! गरम हवा के झोंके भी उसको नहीं छू सकते थे। उस जैसी तपस्या भला किसने की होगी? उस जैसी सेवा, उस जैसी नम्रता, उस जैसी सहनशीलता, उस जैसा मुलायम स्वर, हलीमी किसने देखी होगी, किसने सुनी होगी ?

जैसे कोई कोरा बर्तन हो, दूध का कटोरा, अमृत का पात्र, चांद-चांदनी की बुक्कल, अंधेरी रात में बिजलियों की चिलकन।

इस सब के बावजूद बीबी भानी कौ कैसे सपने घेरे रहते थे। जैसे घिर-घिर कर आते काले बादल हों। जैसे कोई राक्षस मुँह बाये उसे निगलने के लिए बढ़ रहा हो।

उस दिन का सपना इतना भयानक था—एक चूल्हे पर मानों लकड़ियाँ जलाई गईं, ऊपर चूल्हे पर रखा लोहे का एक तवा गरम किया गया। तवा सुलग रहा था और तलवारधारी चार मुश्टण्डे सन्तरी किसी को घेर कर लाये—एक आगे, एक पीछे, एक दायें, एक बायें। किसी को तपते हुए तवे पर बिठा रहे थे। "हाय लुट गए ! यह तो अर्जन था, उसका लाल !" मुँह से एक शब्द भी बोले बगैर, बिना किसी उज्र के हाथ जोड़ कर वह तपते तवे पर जा बैठा था। उसने एक बार सिर्फ़ आकाश की ओर देखा था और सुलगते तवे पर जा बैठा था। " ना मेरे लाल !" बेचारी मां की चीख़ निकल गई। और वह कैसे शान्त, निश्चल त्याग की मूर्ति बना जलते तवे पर बैठा था। क्या मजाल कि उसने 'सी' भी की हो ! क्या मजाल कि उसके माथे पर एक बल भी पड़ा हो ! और दुष्ट जन चूल्हे में और लकड़ियाँ डालते जा रहे थे। लकड़ियों को आगे सरका के आग को और भड़का रहे थे। इस तरह तो वह जल-भुन जाएगा, उसका शरीर छाले-छाले हो जाएगा। उसके कोमल बदन के जलने की सड़ांध मां को आई। उसका दम घुटने लगा। वह उठ कर बैठ गई। चादर को आगे-पीछे छूकर देखने लगी। सिरहाने को टोह-टोह कर तसल्ली करने लगी कि वह सिर्फ सपना था।

अगले दिन फिर वही सपना। इधर माता भानी जी की आँख लगी, उधर फिर वही भयानक सपना शुरु हो गया। लाख लाड़ों में पला उनका कोमल

बच्चा जलते तवे पर बैठा था। नीचे से आग की लपटें उठ रही थीं। चूल्हे में और अधिक लकड़ियाँ डाली जा रही थीं। जमदूत जैसा नंग-धड़ंग कोई आदमी हाथ में बेल्चा पकड़े पांचवें पातशाह गुरु अर्जन देव जी के शरीर पर गरम-गरम रेता डाल रहा था। जैसे इतनी ही यातना काफ़ी न हो, उनकी पीठ और कंधों पर भी रेत डाली जा रही थी। बीबी भानी जी ने आगे बढ़ कर बेल्चा छीनने की कोशिश की और वे मुश्किल से अपने पलंग से नीचे गिरने से बचीं। उनकी आँख खुल गई। उनका शरीर पसीने से तर हो रहा था। उनका रोम-रोम काँप रहा था।

फिर उससे अगली रात का सपना। बीबी भानी जी ने देखा, वही लाहौर शहर का किला, जलती हुई लकड़ियों वाला वही चूल्हा ! लेकिन आज तवे की बजाय एक बड़ी देग रखी हुई थी। देग में पानी खौल रहा था। वही चार बन्दूकधारी मुश्टण्डे किसी को घेर कर लाए थे। यह तो उन्हीं के दिल का टुकड़ा था, अर्जन ! दो जहान का मालिक ! उन दुष्टों ने कपड़ों समेत खौलती देग में उसे बिठा दिया था। वह कितने सहज भाव से देग में बैठ गया था, जैसे कोई अमृत सरोवर में डुबकी लगाता है। बस उसने एक बार आकाश की ओर देखा, जैसे किसी से आदेश ले रहा हो। ऊपर वाले की रज़ा में राज़ी, भाना मान के आँखें मूँदे खौलते पानी की देग में उतर गया था। "हाय नहीं ! इसकी बजाय मुझे......" बीबी भानी तड़प कर पुकार उठी और उन की आँख खुल गई। भयभीत फटी-फटी आँखों से वह आगे-पीछे देखने लगी। रात घुप अंधेरी थी। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। इतनी काली-सुनसान रात में ऐसा भयानक सपना ! बीबी भानी पलंग पर बैठी 'धन गुरु नानक, धन गुरु नानक' का सिमरन कर रही थीं। फिर उन्होंने हाथ में माला पकड़ ली। सारी रात इसी तरह बीत गई। क्षण भर के लिए भी उनकी आँख न लग सकी।

इसके बाद तो बीबी भानी नींद से भी कतराने लगीं। लेकिन बिना नींद के भी गुज़ारा कैसे हो ? अगले दिन अमृत वेला में बैठे-बैठे उनको झपकी आ गई।

आँख लगते ही कई आवाज़ें सुनाई देने लगीं। "इस तरह इसका कुछ नहीं बिगडेगा। इन लोगों ने ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ बस में की होती हैं।"

"प्रहलाद ने जलते हुए खम्भे को गले से लगा लिया था और उसको आँच तक नहीं आई थी।"

"सुलगती आग में उसे गोद में लेकर बैठी होलिका जल गई, लेकिन

प्रहलाद खिलखिलाता हुआ बाहर निकल आया था।"

"एक ही तरीका है, इसे रावी में डुबो कर बहा दो।"

"ठीक है, ठीक है।"

"नहीं, नहीं !" तड़पती हुई माता भानी जी उठ कर बैठ गईं। साथ के कमरे में सोई देवकी से बीबी भानी पूछने लगीं, "क्यों देवकी तूने सुना था कि ये आवाज़ें कहाँ से आ रही थीं ?"

"मैने तो कुछ नहीं सुना" देवकी आँखे मलती हुई बोली, "मैं तो गहरी नींद में सो रही थी। सोया पड़ा और मरा पड़ा एक बराबर होता है।"

(3)

अमृत सरोवर के बीचों-बीच हरिमन्दिर की स्थापना की जाने वाली थी। गुरु नानक के चलाए पंथ के सब से पवित्र, सब से महान धार्मिक स्थान की नींव साईं मियाँ मीर रखने जा रहे थे।

और इधर हालत यह थी कि गुरु अर्जन देव जी को विरसे में सिर्फ गुर-गद्दी मिली थी, बाकी सब पर पृथी चंद ने अपना हक़ जमा लिया था। गुरु रामदास जी की तेहरवीं पर ख़ुद गुरु अर्जन देव ने आदेश दिया कि पगड़ी पृथी चंद जी को बांधी जाए। भेंट की रक़म भी उसे प्राप्त हुई। मसन्दों द्वारा जमां की गई रक़म पहले से ही पृथी चंद को पहुँच जाती थी। अब भी चांदी उसके पास थी। अमृत सरोवर के निर्माण की ज़िम्मेदारी वह खुद संभाले रहता था। अब भी गुरु अर्जन एक साधारण सी कोठरी में रहते थे।

उनके लंगर में और गृहस्थी में सब जगह भूख का साम्राज्य था।

सब से पहले लंगर में दो की बजाय एक बार प्रसाद तैयार होना शुरू हुआ। आने जाने वाले यात्री एक बार खाकर सब्र कर लेते थे। कुछ दिन बाद एक बार भोजन की बजाय भुने हुए चने दिए जाने लगे। खाना पकाने के लिए दाल-चावल, आटे की ज़रूरत होती। घी, तेल और लकड़ियों की ज़रूरत होती, जिसके लिए पैसे दरकार थे। पैसों की गोलक पृथी चंद ने सम्भाली हुई थी। श्रद्धालुओं द्वारा लाई हुई रसद को भी वह हथिया लेता था।

पहले ही मसन्दों को उसने हिदायत दी हुई थी कि इक्ट्ठा किया हुआ धन केवल उसी को पेश किया जाए। गुरु रामदास के ज्योति-ज्योत समा जाने के बाद पृथी चंद ने शहर के बाहर अपने सेवक तैनात कर रखे थे। मसन्दों द्वारा उगराही हुई रक़म सीधे पृथी चंद के हवाले कर दी जाती थी।

अब नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि गुरु अर्जन देव जी की रसोई के बर्तन औंधा कर रख दिए गए थे।

उस दिन भाई गुरदास जी आगरे से आए। वे सीधे गुरु जी के दर्शनों के लिए हाज़िर हुए। माता भानी जी रसोई में थी। भाई गुरदास जी कौन से पराये थे। उन्हें रसोई में ही बुला लिया गया। यह देख कर भाई गुरदास के पैरों तले ज़मीन खिसक गई कि बड़ी माता जी खुद गीली लकड़ियों को फूँकें मार कर रोटियाँ पक़ा रही थीं। सामने रखी परात में, न गेहूँ का, न मकई का आटा था; बल्कि सिर्फ़ चनों का आटा था।

"यह आपने क्या हाल बना रखा है ?" भाई गुरदास के मुँह से अचानक ये शब्द निकले।

यह सुन कर माता भानी जी की आँखों में आँसू छलक आए।

पृथी चंद ने गुरु महाराज के परिवार की यह हालत कर रखी थी। उसने सोचा था कि जब गुरु का लंगर बंद होगा तो यात्री आने बंद हो जायेंगे। और गुर-गद्दी का महत्व खत्म हो जाऐगा। जब लोग गुरु अर्जन देव जी को भूल जाऐंगे तो पृथीया सिख सेवकों पर अपना अधिकार जमा लेगा। महादेव उसकी हाँ में हाँ मिलाता रहता था। उसे किसी बात में कोई दिलचस्पी नहीं थी, सिर्फ़ अपने अन्दर मस्त रहता था। उसे बस रोटी-कपड़ा चाहिए था, और कुछ नहीं।

फिर भी कई श्रद्धालु गुरु महाराज के यहाँ हाज़िर होते थे, क्योंकि उनसे नाम का दान मिलता था। उनके यहाँ कीर्तन का प्रवाह जारी रहता था। आत्मा का सुख मिलता था। आस-पास के सबसे प्रमुख रागी जत्थे गुरु महाराज के मुरीद थे। खुद गुरु महाराज का संगीत-विद्या का ज्ञान अपार था। उनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता था।

उस समय के सभ से प्रमुख कीर्तनिए सत्ता-बलवंड गुरु महाराज से विमुख हो जाएँ तो रोज़ का कीर्तन फीका पड़ जाएगा और शायद बंद भी हो जाए। यह सोच कर पृथी गायकों से जाकर मिला।

उसकी बात सुनकर दोनों जनों को उस की बातों में सच्चाई लगी। बाप-बेटे का दिमाग़ एक-दम गुब्बारे की तरह फूलने लगा। उन्होंने सोचा कि उन्हीं के कारण श्रद्धालु गुरु महाराज के यहाँ इकट्ठे होते हैं, परवानों की तरह खिंचे हुए आते हैं। कई-कई दिन तक कीर्तन सुनने के लिए रुक जाते हैं। ढेरों पैसे भेंट के रूप में चढ़ाते हैं। आख़िर इन बाप-बेटों को क्या मिलता था।

उन्हें लूटा-खसूटा जा रहा था। ईश्वर का संयोग देखिए उन्हीं दिनों सत्ते की बेटी की शादी होने वाली थी। उसके लिए ढेर-सा पैसा दरकार था। पृथी के भड़काने पर बाप-बेटा गुरु अर्जन देव जी के आगे हाज़िर हुए। उनकी विनती सुन कर गुरु महाराज ने अपनी मजबूरी बताई। एक तरफ़ हरिमन्दिर का निर्माण करना था। उधर गुरु की गोलक ख़ाली थी। दोनों गायकों को कुछ दिन इन्तज़ार करना होगा। जब भी बाहर से उगराही की रक़म आएगी, उनकी मदद हो जाएगी। गुरु महाराज उन्हें भरोसा दिलवा रहे थे।

लेकिन बाहर से आई रक़म तो सीधी पृथी चंद के पास जाती थी। सत्ता-बलवंड के साथ-साथ हर कोई इस बात से परिचित था। उन्होंने सोचा, गुरु महाराज उन्हें टाल रहे थे। उनके मुँह फूल गए और वे गुस्से में खौलते हुए मुड़ कर चल पड़े। गुरु महाराज उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहते थे। उन्होंने बड़े धीरज से उन्हें फिर समझाने की कोशिश की। लेकिन लगता था, पृथी ने उनके कान बुरी तरह से भर रखे थे। उन पर कोई असर नहीं हो रहा था।

अगली सुबह सत्ता-बलवंड कीर्तन करने नहीं आऐ। यह देख कर गुरु महाराज ने खुद सारंगी पकड़ी और कीर्तन करना शुरु कर दिया। साध-संगत के कुछ लोग भी कीर्तन करने में शामिल हो गए। एक-दो दिन के बाद कीर्तन पहले की तरह जारी हो गया। संगतें भी आकर कीर्तन सुनतीं और निहाल हो जातीं।

लेकिन जिस तरह पृथी चंद ने गुरुघर की नाकेबंदी कर रखी थी, उसका कोई उपचार करना ज़रूरी था। भाई गुरदास जी आए हुए थे। उन्होंने भाई बुड्ढा जी को उनके गाँव से बुलावा भेजा। चार अन्य प्रमुख श्रद्धालुओं के साथ वे पृथी चंद को समझाने गए। बहुत देर तक समझाने पर भी वह राज़ी नहीं हो रहा था। वह अपने पंखों पर पानी नहीं पड़ने दे रहा था। एक ही बात कह रहा था, "मेरा कोई कसूर नहीं। संगतें ही विमुख होती जा रही हैं। बार-बार गुरु के घर में बेइन्साफ़ी हो रही है। सब से पहले गुरु नानक देव जी ने अपने पुत्रों के साथ अन्याय किया था। फिर गुरु अंगद देव जी ने भी ऐसा ही किया। गुरु अमरदास जी को गद्दी बख़्शी। भला गुरु बनने की उनकी कोई उमर थी? फिर गुरु अमरदास जी अपने दामाद पर कृपालु हो गए। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। मेरा क्या दोष है ? मेरे छोटे भाई में कौन सी अच्छाई है जो मेरे में नहीं है। फिर मेरे हक़ को क्यों नहीं क़बूल किया

गया। अभी भी समय है। जो बड़े-बूढ़े आए हैं, वे मेरे साथ इन्साफ़ करवा दें। सब कुछ ठीक हो जायेगा। वरना........"

"वरना क्या ?" भाई गुरदास जी ने पूछा।

"थोड़े दिनों में आपको पता चल जाएगा।" यह कहता हुआ पृथीया उठ कर बग़ल के कमरे में चला गया।

यह देखकर भाई गुरदास जी बोले, "इसका तो कुछ इलाज करना पड़ेगा।"

भाई बुड्ढा जी और दूसरे गुरसिख भी सहमत थे। और वह लोग उधर से वापस चले गए।

अगले दिन लाहौर, शिकारपुर, पेशावर आदि शहरों को हुक्मनामे भिजवा दिए गए कि भेंटें सिर्फ गुरु अर्जन देव को ही भेजी जाएें। ऐसी चेतावनी बाकी मसन्दों को भी भेज दी गई।

जब सारी वसूली गुरु महाराज को मिलने लगी तो उन्होंने शहर की दुकानों का कुछ किराया पृथी चंद और महादेव के नाम करवा दिया, ताकि उन्हें किसी आर्थिक समस्या का सामना न करना पड़े।

(4)

पानी में भीगा, जाड़े से काँपता कमाल बुरी हालत में घर आया। सब उस पर नाराज़ हुए। बारिश के इस मौसम में उसे बाहर नहीं निकलना चाहिए था। उसके शरीर पर कोई भारी कपड़ा भी नहीं था, सिवाय एक फतूही के, जो बरकते के जाने के बाद घर वालों को कमरे के एक कोने में रखी मिली थी।

"इसकी माँ छोड़ कर गई है। इस फतूही में बेटे को जाड़ा नहीं लग सकता" अमन ने कमाल की तरफ देखते हुए कहा।

"मेरा ख़्याल है कि कांट-छांट के इसे कमाल के नाम की बना दिया जाए" सुन्दरी बोली।

"किस लिए ? अगले जाड़ों तक यह गबरू जवान हो जाऐगा। देखती नहीं इतना लम्बा क़द निकल रहा है।"

"हमारी वीरो और इसके बीच में होड़ लगी हुई है।"

"बच्चे बड़े हो रहे हैं। बड़े बुड्ढे हो रहे हैं।"

फिर उन्होंने देखा कि वीरां अपने हिस्से की निशास्ते की पिन्नी बचा कर कमाल को खिला रही थी। बेहद प्यार था वीरां और कमाल में, जो

दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था। वीरां हर अच्छी चीज़ उसके लिए बचा कर रखती। कमाल भी जब बाहर से आता तो वीरां के लिए कुछ लेकर आता।

"तू इतनी देर से क्यों आया है ?" वीरां उससे पूछ रही थी।

"भाई साहब आए हुए हैं। उनके पास बैठा रहा।"

"भाई साहब कौन ?"

"भाई गुरदास जी, और कौन ?"

"बाकी सब भाई हैं, सिर्फ गुरदास जी भाई साहब हैं।"

"क्योंकि यह उनका बस्ता उठा कर चलता है," सुन्दरी ने कहा। वह वीरां और कमाल का वार्तालाप सून रही थी।

"बीबी, आप नहीं जानते कि भाई गुरदास का भानी जी के साथ क्या रिश्ता है। वे गुरु रामदास जी के छोटे भाई ईश्वर दास जी के बेटे हैं। कोई ऐरे-ग़ैरे नहीं। माता भानी जी के दादे-पोते हैं।"

"हाँ, सुना है, गोइंदवाल में बच्चे एक गली में कंचे खेल रहे थे। एक बच्चे ने कहा, 'ये मारा ! गुरु के हुकम से !' यह सुन कर भाई साहब बच्चे के पैरों पर गिर पड़े। उन्हें इस बच्चे पर इतना विश्वास था कि वे गद्‌गद् हो गए।"

"भाई गुरदास जी की लिखावट बहुत सुन्दर है," अमन कहने लगा।

"क्या आप से भी अच्छी ? आप तो जैसे मोती पिरोते हैं," कमाल ने कहा।

"मैं किस खेत की मूली हूँ। भाई साहब तो महापुरुष हैं।"

"आजकल 'वारें' लिख रहे हैं। मुझे उनकी वारें बहुत अच्छी लगती हैं। ख़ुद-ब-ख़ुद याद हो जाती हैं।"

कमाल 'वार' सुना रहा है :

जे मां पुत्ते विष दे तिस कौन पियाए।
जे घर भन्ने पाहरू कौन रक्खन हारा।
बेड़ा डोबे पातनी कौन पार उतारा।
आगू लै उजड़ पवै किस करै पुकारा।
जेकर खेते खाए बाढ़ कै लहे न साए।
जे गुर भरमाये सांग कर क्या सिख विचारा॥ २२॥

(३५वीं वार में से)

भाई गुरदास की वार का अंश सुनाते समय कमाल की आँखे गीली हो

गईं।

सभी अवाक् स्थिति में उसकी तरफ देखने लगे। वीरां से न रहा गया, अचानक बोल उठी, "बीबी देखो, भैया रो रहा है।"

पति-पत्नी को जब एकान्त मिला तो अमन ने सुन्दरी से कहा कि रोने वाली तो बात ही है।

"बरकते ने बड़ी बद्तमीज़ी की है," सुन्दरी बोली।

"देखने में तो वह इतनी गैर-ज़िम्मेदार नहीं लगती थी।"

"उसका घर वाला उसे ज़बरदस्ती निकाल कर ले गया होगा।"

"क्या वह जैसे दूध-पीती बच्ची थी ?"

"मुझे तो पिछले कई दिनों से उसके लच्छन बदले हुए लग रहे थे।"

"वह शुरु से ही अजीब थी। अपने पेट का जाये को पहले मुँह नहीं लगाती थी। फिर कैसे उसकी गुलाम बन गई। अब उसे पीछे छोड़ गई है जैसे कोई नाता ही न हो।"

"कई दिनों से वह इधर नहीं आई। इसमें ज़रूर कोई भेद है।"

"मुझे लगता है, उसके इस्लाम ने उसे निगल लिया है। बड़ी खुदापरस्त औरत थी।"

"गुरु भक्ति में भी तो उसका जवाब नहीं था।"

"देखो देखो, कैसे उसे कम्बल में लपेट रही है !" सुन्दरी ने अमन का ध्यान उधर दिलवाया।

"खेलते हुए कितने सुन्दर लग रहे हैं। ख़ुद ही उसका भाई बनाये फिरती है, पगली !"

"बेचारी का कोई भाई जो नहीं है !"

"क्यों, सुमन भी तो इसका भाई है। गोईंदवाल कितना दूर है।"

"उस दिन इसने ज़िद करके कमाल को राखी बाँधी थी।"

"मुझे तो इसका कमाल को भैया-भैया कहना अच्छा नहीं लगता।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब साफ़ है। उधर देखो, तुम्हारी बेटी कैसे कमाल का रास्ता रोक रही है ! यह लड़का इस वक्त कहाँ चल पड़ा है।" सुन्दरी ने कहा, "कमाल बेटे, इस सरदी में किधर जा रहा है ?"

कमाल ने जवाब दिया, "बीबी, रात भर बैठ कर हम लोग झंडियाँ बनायेंगे। सुबह उन्हें सड़कों के दोनों तरफ़ टांगना है। हजरत मियां मीर जी

की आमद की तैयारियाँ हो रही हैं।" यह कह कर कमाल सबकी बातें सुनी-अनसुनी करके बाहर निकल गया।

वीरां ने पीछे से आवाज़ लगाई, "मैं भी तेरे साथ जाऊँगी।"

"तुझे कल ले चलूँगा, जब झंडियाँ टांगने का वक्त होगा," कमाल गली में ही कह कर चला गया।

(5)

जनवरी का महीना था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। आंधी, बारिश और शीत से हाथ सुन्न हो रहे थे। बार-बार दाँत किटकिटा उठते। किसी की हिम्मत न पड़ती कि आग छोड़कर इधर-उधर चले जाएं। कुछ लोग कांगड़ियों से चिपके हुए थे, कुछ लोग अलख जला कर उसके गिर्द जमा थे। बाहर मुँह निकालना तो दूर रहा रज़ाइयों में दुबके हुए लोग लिपटे ऊँघ रहे थे। जानवर खूँटों से बंधे कांप रहे थे। पंछी भी घोंसलों में दुबके हुए थे।

भाई बुड्ढा जी के नेतृत्व में भाई भगतू, भाई पैड़ा, भाई जेठा, भाई कल्याना, भाई उमरा शाह, भाई पिराना, भाई बहलो और भाई लालो, भाई सालो, जिन्हें हरिमन्दिर की नींव रखने के समारोह की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी, सख्त परेशान थे। तीन दिन बाद माघ शुरु हो जाऐगा और इधर बारिश थमने का कोई आसार नहीं था। तीन दिनों से लगातार ज़ोर की बारिश हो रही थी। कभी रिमझिम बरसती थी, कभी मूसलाधार। सभी कहते थे कि जाड़ों की बारिश पूरे हफ्ते तक चलती है।

इस तरह की बारिश सिर्फ अमृतसर में नहीं थी, लाहौर में भी हो रही होगी। लाहौर कौन सा दूर था। बीस-बाईस कोस की दूरी। यह भी नहीं मालूम था कि मियां मीर जी को लाने के लिए पालकी वहाँ से चली भी कि नहीं। सारी गलियों में कीचड़ ही कीचड़ फैला था। नदी-नाले अफरे हुए थे। सड़कों पर टख़ने-टख़ने पानी भरा था।

"मुझ से कितनी भारी ग़लती हुई। पालकी ले जाने वाले सिखों को मैंने हिदायत क्यों न की कि उन्हें मियां मीर जी की पालकी पैदल लानी होगी," भाई भगतू हाथ मल कर कह रहे थे। वैसे इस सरदी में मियां मीर जी नहीं आयेंगे। बारिश के रुकने का इन्तज़ार करेंगे। साथ में ओले भी पड़ रहे हैं। भाई पैड़ा जी फ़िक्रमंद थे।

"न मियां मीर जी रुकेंगे। न हमारे भेजे हुए सेवक ही रुकेंगे। उन्हें मालूम है कि माघ की पहली तारीख़ को नींव का पत्थर ज़रूर रखा जाना

है," भाई कल्याना जी कहने लगे।

"उधर दूर और नज़दीक से सारी संगतें पहुँच गई हैं। और भी आ रही हैं। उनके कपड़े निचुड़ रहे हैं," भाई सालो जी कह रहे थे।

"अच्छा हुआ कि मैंने पहले से ही भट्ठा तपवा कर ईटों की खेप निकाल ली थी, नहीं तो इस बारिश और अंधेरी में बड़ी बदनामी होती," भाई बहलो शुक्र मना रहे थे।

"सब कुछ गुरु महाराज ख़ुद करते हैं। करने-कराने वाले वे ख़ुद ही हैं। बेशक बादल घिर-घिर कर आयें, बिजली चमके, पानी ज़रूर रुक जाऐगा," भाई बुड्ढा जी हाथ में माला लिए अपने साथी सिखों को तसल्ली दे रहे थे।

इसी वक्त मुँह-सिर लपेटे एक गुरु-सिख बाहर से आया और भाई सालो जी के कान में कहने लगा, "छोलदारियाँ, तंबू और कनातें निचुड़ रही हैं। अगर बारिश अभी भी नहीं रुकी तो दरियाँ भी गीली हो जायेंगी।"

भाई बुड्ढा जी ने इस आगन्तुक के चेहरे का भाव देख लिया था। कहने लगे, "बारिश तो थम गई है। कल सुबह तक धूप भी निकल आयेगी।"

यह सुन कर सब भाई बुड्ढा जी के चेहरे की ओर देखने लगे। सब ने सिर झुका लिया। सचमुच बाहर बारिश रुक गई थी।

"गुरु महाराज का आदेश है," भाई बुड्ढा जी फिर बोल रहे थे, "पहली बात यह कि हरिमन्दिर की कुरसी नीचे से नीचे स्थान पर होगी, अमृत सरोवर के पानी की सतह के बराबर। और नींव में सन्तोखसर की मिट्टी का गारा लगाया जाएगा, क्योंकि वह मिट्टी चिकनी और काली है। काली और लेसदार। गुरु महाराज के नक्शे के मुताबिक हरिमन्दिर के द्वार चारों तरफ़ से खुलेंगे। जो चाहे, जिधर से आना चाहे, आए। इस स्थान पर लगातार कीर्तन होगा। सरोवर के पानी के बीचों-बीच, जैसे राजहंस विराजमान हो। जैसे नीले पानी में गुलाबी कमल खिल उठें। इस तरह की इमारत होगी।"

"गुरु महाराज भी उस दिन यही फरमा रहे थे," सालो जी ने कहा। "लेकिन मैं तो अभी भी सोचता हूँ कि जैसा शहर हमने बसाया है, उसमें सब से ऊँची इमारत हरिमन्दिर की होनी चाहिए। गुरु महाराज के सामने अपनी राय देने की मुझमें जुर्रत नहीं थी। ऐसी इमारत हो, जिसे कोसों दूर से देख कर सर झुक जाया करे। उसकी चमक कोई न झेल सके।"

"इतनी ऊँची कि कोई लाहौर से तैर कर आए तो उसे दिखाई दे जाए। [illegible] की कोई कमी नहीं होगी," भाई बहलो भाई सालो के साथ सहमत थे।

भाई बुड्ढा जी ने उन्हें समझाया, "हरिमन्दिर साहब की कुर्सी सब से नीची जगह इस लिए रखी जा रही है, क्योंकि नम्रता अपने आप में एक महान गुण है। नक्शे में दिखाई गई दर्शनी डयौढ़ी की सीढ़ियाँ उतरते वक्त गुरसिखों के मन में नम्रता और एकता का भाव उत्पन्न होगा। न केवल उनका सर बल्कि अंग-अंग झुक जाएगा। बाबा नानक ने हमें यही शिक्षा दी है। दूसरे गुरुओं की भी यही तालीम है।"

"मैं तो दोनों तरफ़ द्वार रखने के हक़ में भी नहीं हूँ," भाई भगतू जी ने अपना संशय व्यक्त किया।

"गुरु महाराज के सामने मैं नहीं कह सका, पर सच्ची बात तो यह है कि हमारी तरफ़ जो मौसम रहता है, उसे देखते हुए हरिमन्दिर का सिर्फ़ एक ही दरवाज़ा होना चाहिए। कभी बारिश, कभी आंधी, कभी लू—भला कौन कौन से दरवाज़े बंद किया करेंगे। संगत गरमियों में झुलसती रहेगी, पसीना चूता रहेगा। जाड़े में लोग काँपते रहेंगे।"

भाई कल्याना जी भाई भगतू के साथ पूरी तरह सहमत थे। सर हिला कर कहने लगे, "हिन्दू मन्दिरों में तो सिर्फ एक ही द्वार होता है, वह भी छोटे से छोटा।"

"हाँ," भाई बुड्ढा जी फिर बोले, "बेशक आदि काल से हिन्दू मन्दिरों में एक ही दरवाज़ा होता है, ताकि कुछ लोगों को मन्दिर के भीतर जाने से रोका जा सके। गुरु के हरिमन्दिर के चार द्वार होंगे। चारों दिशाओं में खुलेंगे। इनमें चारों वर्णों के लोग प्रवेश कर सकेंगे। ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं होगा। हवा भी सब तरफ़ से आएगी। रोशनी भी सब तरफ़ से आएगी। यही बाबा नानक का उपदेश था। यही गुरु अर्जन देव जी का आदेश है। अपने कर-कमलों से बनाए नक्शे में उन्होंने यही दर्शाया है।"

"धन धन गुरु अर्जन देव जी !" सारे गुरसिख भाई बुड्ढा जी के सामने एक स्वर में पुकार उठे। सब हाथ जोड़ कर सीस नवा रहे थे। क्षण भर बाद भाई बुड्ढा जी ने कहा, "यह संशय जो अभी मुझे सुनाई दिया है, उसे मैं दूर करना चाहता हूँ। हरिमन्दिर की नींव का पत्थर मियां मीर जी रखेंगे, क्योंकि वे एक महान आत्मा हैं। उन्होंने निरंतर तपस्या की है। बेशक वे इस्लाम का अनुयायी हैं, लेकिन वे परमात्मा की महानता में विश्वास रखते हैं। हमारे गुरुओं ने भी हमें यही शिक्षा दी है। उनकी दरगाह में हिन्दू-मुसलमान सब हाज़िर होते हैं। कुछ अरसे के लिए हज़रत मियां मीर सरहद पर जा बसे

थे, लेकिन वहाँ के दरवेशों की कट्टरता देख कर फिर वापस लाहौर आ गए हैं। लाहौर में गुरु अर्जन देव जी की उनसे अक्सर मुलाकात होती थी। कभी हज़रत मियां मीर गुरु जी के चूनामंडी वाले मकान पर जाते, तो कभी गुरु जी मियां मीर जी के आस्ताने पर जाते। दोनों एक ही राह के राही है। चारों तरफ़ इस जोड़ी की चर्चा है। हज़रत मियां मीर की दरगाह में तो राजे, महाराजे, शहंशाह और दरबारी क़दमबोसी के लिए हाज़िर होते हैं। गुरु महाराज की तो यह महानता है कि वे अपने धरम के सब से पवित्र मन्दिर की नींव का पत्थर एक मुसलमान ख़ुदापरस्त दरवेश से रखवा रहे हैं।"

"मुसलमान कभी ऐसा नहीं करेंगे," भाई भगतू बुड़बुडाये।

"यही तो गुरु के घर की महानता है," भाई बुड्ढा जी बोले, "और हाँ, बाहर बारिश थम गई है। हमारे पास अब पूरे दो दिन बाकी हैं। जिस रास्ते से मियां मीर जी की सवारी आएगी, उसे स्वागत द्वारों से सजाया जाएगा। अमृतसर की सीमा पर मैं ख़ुद चुनींदा (प्रतिनिधि) शहरियों के साथ उनका स्वागत करने के लिए हाज़िर रहूँगा। हज़रत मियां मीर जी को एक जलूस की शक्ल में गुरु महाराज के यहाँ लाया जाएगा। वे जिस जिस रास्ते से गुज़रेंगे, लोग उन पर फूलों की वर्षा करेंगे।" बहुत देर तक भाई बुड्ढा जी सविस्तार अपने सहयोगियों से वार्त्तालाप करते रहे।

(6)

जब पृथी चंद ने सुना कि हज़रत मियां मीर हरिमन्दिर साहब की आधार-शिला रखने के लिए आ रहे हैं, क्षण भर के लिए उसे लगा कि उसकी हार हो गई है।

लाहौर में वह हज़रत मियां मीर जी की तारीफ़ें सुन चुका था। बेशक उनके दर्शन करना, उसके भाग्य में नहीं लिखा था, लेकिन उन्हें सब, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान, एक महान दरवेश वली अल्लाह के रूप में जानते थे, आदर देते थे। उनके दर्शन पाना कौन सा आसान था। पृथी चंद ने कई बार कोशिश की थी, पर उसे सफलता नहीं मिली थी। वे अपने मुरीदों से कहा करते थे :

शर्ते अव्वल दर तरीके मार्फ़त दानी कि चीस्त
तरक करदन हर दो आलमरा वा पुश्ते पाज़दन।

उसे बताया गया था कि हज़रत मियां मीर सीस्तान से लाहौर आए ही इस लिए थे ताकि "बाबर और बाबा नानक का लोगों में रवादारी पैदा करें।"

बाबा नानक की तरह हज़रत मियां मीर भी जंगल में निकल जाते और अल्लाह का नाम जपते रहते। अभी वे सात बरस के ही थे कि उनके वालिद बुज़ुर्गवार अल्लाह को प्यारे हो गए थे। जब वे पन्द्रह बरस के हुए तो उन्होंने घर-बार को तिलांजलि देकर जोग धारण कर लिया था। बहुत बार उन्होंने तपस्या की। ज़ुहद और विरद। फिर उनकी मुलाक़ात शेख़ कादरी से हुई जिनकी तालीम के कारण वे मार्फ़त की अनेक मंज़िलें तय करने लग पड़े। हज़रत मियां मीर का कहना था कि हर काम के लिए वक्त मुक़र्रर होता है। निश्चित घड़ी आने पर प्रतीक्षा ख़त्म हो जाती है। उनके दादा हज़ूर काज़ी क़लन्दर फ़ारुखी उनके वालिद से कहा करते थे—"साईं दिता, सही वक्त आने पर ही दुआ सुनी जाती है। उससे पहले किबाड़ बंद रहते हैं। मुर्शिद की मेहरबानी से ही वे किबाड़ खुलते हैं।"

लाहौर से लौटते ही, उसी दिन पृथी चंद हज़रत मियां मीर के बारे में सुनकर गोईंदवाल से गुरु-के चक की ओर रवाना हो गया। उसके साथ करमो भी तैयार हो गई। ख़ुशी के मारे पति-पत्नी के पैर ज़मीन से नहीं लगते थे। ताबड़-तोड़ सामान को समेटते हुए वे कभी हेहर, कभी गोईंदवाल, कभी गुरु-के चक की ओर भागते। लेकिन उनकी हवस बढ़ती ही जा रही थी।

जब वे अमृतसर पहुँचे तो पूरा शहर हज़रत मियां मीर जी के स्वागत के लिए बाहर सड़कों पर उमड़ आया था। हर जगह स्वागत-द्वार बने हुए थे। सड़क के दोनों तरफ़ खड़ी संगतें 'हज़रत मियां मीर ज़िन्दाबाद !' 'गुरु अर्जनदेव जी की जय !' के नारे लगा-लगा कर पागल हो रही थी। फिर सामने हज़रत की पालकी दिखाई दी। इन्तज़ार में खड़ा जन-समूह उत्साह में नाचने और गाने लगा। सब तरफ से पालकी पर फूलों की वर्षा की जा रही थी। गुलाब, गैंदे, चमेली और मोतिया—फूलों के ढेरों से सारी सड़क अटी पड़ी थी। बाज़ार में दुकानदारों ने दरियाँ और क़ालीन बिछाए हुए थे। दोनों तरफ रंग बिरंगी झंडियाँ लहरा रही थीं। अब पालकी वहाँ पहुँची जहाँ एक झरोखे में से पृथी चंद सारा दृश्य देख रहा था। पालकी में हज़रत मियां मीर के साथ भाई बुड्ढा जी भी विराजमान थे। वे हाथ जोड़ कर संगतों का शुक्रिया अदा कर रहे थे। हज़रत मियां मीर जी हाथ हिला हिला कर भीड़ के आदर को स्वीकार कर रहे थे।

फिर अमृत सरोवर के पास शहनाइयों की गूँज में हज़रत का स्वागत किया गया। इतने में गुरु अर्जन देव जी आगे बढ़े और उन्होंने हज़रत मियां

मीर को गले लगा लिया। हज़रत बार-बार उनके चरण छूने की कोशिश करते पर गुरु महाराज ने सत्कार योग्य मेहमान को ऐसा नहीं करने दिया। अब बारी-बारी से प्रमुख शहरी आदरणीय मेहमान को हार पहना रहे थे। सबसे पहले माता गंगा जी ने लाल गुलाबों का हार डाला। दूसरा हार गुरु महाराज जी ने अपने कर कमलों से हज़रत के गले में डाला। अब भाई बुड्ढा जी, भाई भगतू और दूसरे गुरसिखों की बारी थी। तौबा तौबा ये श्रद्धालु तो हज़रत को हारों से लाद देंगे !

कुछ देर से पृथी चंद की बीबी करमां पीछे से आकर यह दृश्य देख रही थी। फिर उसने सिसकना शुरू कर दिया, छल-छल आँसू बहाने लगी। पृथी चंद ने उससे पूछा, "यह तुझे क्या हो गया है ?"

करमों ने उसे कोसना शुरू कर दिया, "तूने मेरे साथ छल किया है। तूने मुझे धोखा दिया है। मुझे कहा गया था कि गुरु माता मैं बनूँगी।"

"कौन कहता है कि तू गुरु-माता नहीं ?" पृथी चंद ने उसे तसल्ली दी।

"यह कुफ्र है। झूठ है। हार गंगा डाल रही है और मैं बस झरोखे में खड़ी तमाशा देख रही हूँ।"

"यहाँ के गुरु महलों पर तेरा क़ब्ज़ा है। गोईंदवाल के महलों पर तेरा कब्ज़ा है, लाहौर के चूनामंडी वाले घर और धर्मसाल में मैं अपने आदमी बिठा कर आया हूँ। और तुझे क्या चाहिए ?"

"जिस तरह मेरी देवरानी गंगा ने हज़रत मियां मीर के गले में हार डाला है, उसी तरह मैं भी डालना चाहती हूँ।"

"कल तू कहेगी कि तुझे चिड़िया का दूध चाहिए," पृथी चंद ने परेशान होकर कहा।

"हाँ, कहूँगी, कहूँगी ! मैंने तेरे लिए ढेर से पिल्ले वैसे तो नहीं पैदा किए।"

पृथी चंद सुनकर ख़ामोश हो गया। "इस औरत को मुँह लगाने का मतलब नई मुसीबतों को न्योतना है," वह मुँह में बुड़बुड़ाया और जूता पहन कर बाहर निकल गया।

अगले दिन बुनियाद का पहला पत्थर रखा जाना था। यह सुनकर कि पृथी चंद और उसका परिवार शाम को गोईंदवाल से लौट आया है, घट-घट के ज्ञाता गुरु महाराज ने विशेष रूप से उस महान उत्सव में शामिल होने के लिए भाई सहिलो जी के हाथ उन्हें निमंत्रण भेजा।

पृथी चंद घर पर नहीं था। करमो ने पहले तो ना-नुकर की। फिर भाई सहिलो जी ने बताया कि गुरु महाराज ने ख़ास तौर पर उनके लिए हार और सेहरे बनवाए हैं, जिन्हें लेकर वे बाकी सम्मानित व्यक्तियों के साथ आदरणीय मेहमान का स्वागत करेंगे। यह सुनकर करमो तुरंत तैयार हो गई।

नींव का पत्थर रखने की रस्म अपने आप में एक यादगारी समारोह था।

सुबह से लगातार शब्द-कीर्तन चल रहा था। हज़रत मियां मीर जी गुरु महाराज के ठीक सामने विराजमान थे। दोनों महापुरुष समाधि में बैठे थे। मुसलमान फ़कीर होते हुए भी, हब्सेदम के मुश्ताक थे। उनकी शोहरत दूर-दूर तक फैली हुई थी। कई दूसरे सूफ़ी संत, फ़कीर और पीर भी आए हुए थे। अब गुरु अर्जन देव जी ने अपनी मधुर आवाज़ में इस शब्द का उच्चारण किया :

संता के कारज आप खलोया, हरिकम कराबन आया राम
धरत सुहावी, ताल सुहावा विच अमृत जल छाया राम
अमृत जल छाया, पूरन साज कराया, सगल मनोरथ पूरे
जै जैकार भया जग अंतर, लाथे सगल विसूरे
पूरन पुरख अच्युत अविनासी जस वेद पुरानी गाया
अपना बिरद रख्या परमेसरि नानक नाम ध्याया ॥ १ ॥

(सूही महला ५)

गुरु महाराज ने अभी इस शब्द का उच्चारण समाप्त ही किया था, और साध-संगत ने 'संतां के कारज आप खलोया, हरिकम करावन आया राम' का एक स्वर में समवेत उच्चारण शुरू कर दिया। बार-बार यह पंक्ति गाकर दोहरा रहे थे। ऐसा लगता जैसे जाड़े की गुनगुनी धूप के साथ परियाँ धरती पर उतर आई हों, नाच रही हों, गा रही हों। चारों तरफ़ एक नशा-सा फैल गया था। सब वृत्तियाँ एक साथ जुड़ी हुई थीं। 'संतां के कारज आप खलोया, हरिकम करावन आया राम' गुरु महाराज के शब्द बोल उचारते हुए अब हज़रत मियां मीर जी गुरु महाराज के इशारे पर आगे बढ़े और उन्होंने अपने मुबारक हाथों से हरिमन्दिर की नींव की पहली ईंट जमा दी। चारों तरफ 'धन निरंकार, धन निरंकार' का जाप होने लगा। समुद्र की लहरों की तरह यह धुन सब तरफ़ गूँज रही थी।

फिर दिन इस तरह निकल आया जैसे खिलखिलाता हुआ कोई

मुस्कानों की वर्षा कर रहा हो। जैसे कुदरत खुशियाँ बांट रही थी। एक नये युग की शुरूआत हो रही थी। एक नये काबे का निर्माण होने जा रहा था जो इस अद्वितीय कौम को युगों-युगों तक प्रेरणा देता रहेगा। जिसकी देहली पर माथा टेकने वालों की सभ मनोकामनाएँ पूरी हुआ करेंगी। एक नया भाईचारा, जिसमें जात-पात, ऊँच-नीच का कोई अंतर नहीं होगा। सत्य के अभिलाषी लोग सत्य और न्याय के लिए अपनी जान पर खेल जाया करेंगे। एक मन्दिर जो सरचश्मा होगा ईश्वर भक्ति का, सच्चे जीवन दान का, जो प्रतीक होगा नाम दान, स्नान का।

(7)

पृथी चंद के घर उस शाम बड़ी गहमागहमी थी। सब बहुत खुश थे। क़हक़हे लगा रहे थे। गुलछर्रे उड़ा रहे थे। खाने वाले खा रहे थे, पीने वाले पी रहे थे। पृथी चंद बार बार अपने बेटे मेहरबान से कह रहा था, "बेशक मुझ से गुरुआई छीन ली गई है, पर तुझे मैं गुर-गद्दी पर बैठा देख कर ही मरुँगा।"

और पृथी चंद के चापलूस कहते, "आपको तब तक रुकना नहीं पड़ेगा, हो सकता है कल ही आपको बुलावा भेजा जाए, 'लो भाई जी गुर-गद्दी संभालिए। हमारे बस का यह खेल नहीं, हमें तो एकान्त में बैठ कर कवीशरी करनी है। गुर-गद्दी की मुसीबतों से हमें क्या लेना-देना ?' "

"मैंने कई बार अपने भाई को समझाया है कि गुर-गद्दी की ज़िम्मेदारी तुझ से नहीं संभाली जाएगी, महादेव की तरह तू भी अलग हो जा। एकान्त में बैठ कर माला फेरा कर," पृथी चंद कह रहा था।

इतना तरद्दुत, इतना ख़र्च, इतना भारी जलूस, बीच में से तीन काने निकले।

"नींव का पत्थर रखने आए मियां मीर जी नींव की ईंट उल्टी लगा कर चल पड़े," मेहरबान नाक-भों सिकोड़ रहा था।

पृथी चंद के एक चापलूस ने एक ठट्ठा किया, "कहानी यहाँ ख़त्म नहीं होती। अगले दिन राजगीर भाई ने आकर नींव की ईंट उल्टी लगी देखी तो उसने अपने पवित्र करकमलों से उसे उखाड़ कर सीधा कर दिया।"

"और मियां मीर के मित्र गुरु महाराज जी देखते रहे। मैं होता तो चमड़ी उधेड़ देता," पृथी चंद बोला।

"यह भी कोई बात हुई। इतनी धूम-धाम से नींव की ईंट रखी गई। उस

दो कौड़ी के मियां मीर ने सब किए कराये पर पानी फेर दिया।" मेहरबान खड़ा रो रहा था।

"बेचारे गुरु नानक की मिट्टी पलीत हो रही है," एक और चापलूस झूठ-मूठ में हाथ मल रहा था।

"बात यह है कि मियां मीर ने तपस्या की है। ईंटों की चिनाई वह थोड़े ही जानते हैं !" चापलूस बोला।

"और इस बात से इन्कार नहीं कि हज़रत मियां मीर एक महान दरवेश हैं। जब से मैंने सुना है कि वे हरिमन्दिर की नींव रखने आ रहे हैं, तो क्षण भर के लिए मुझे लगा कि मेरे छोटे भाई ने मेरी पीठ उधेड़ दी हो," पृथी चंद बोला।

मेहरबान अपने पिता के दृष्टिकोण से सहमत नहीं था। बोला, "इसमें चाचे की कौन सी बड़ाई है ? कोई किसी को अपनी कौम के काबे का नींव-पत्थर रखने के लिए कहे, वह सिरफिरा ही होगा जो इससे इन्कार करे।"

"और मुसलमान तो चाहते हैं कि सिखों को किसी तरह अपने साथ मिला लिया जाए," एक चाटुकार बोला।

"सिखों को ही नहीं, हिन्दुओं को भी। बेचारे मुसलमानों को मन्दिर तोड़ कर मस्जिदें बनानी पड़ती हैं। इतनी मेहनत करनी पड़ती है," दूसरे चाटूकार ने कहा।

"जब गुरु महाराज को इस अनर्थ का पता चला, तो जानते हो उन्होंने क्या कहा ?"

"क्या कहा ?" पृथी चंद यह जानने के लिए उतावला हो रहा था।

"उन्होंने कहा जैसे नींव की ईंट को उखाड़ कर दोबारा ईंट जमाई गई है, जो मन्दिर यहाँ बनाया जाएगा, वक्त आने पर उसे भी तोड़ दिया जाएगा और फिर नया हरिमन्दिर बनेगा।"

"तौबा, तौबा ! यह तो श्राप हुआ," पृथी चंद कानों को हाथ लगा रहा था।

"खुद ही बनाओ, खुद ही गिराओ। बिचारी संगतों के पैसे की बरबादी हो रही है," मेहरबान ज़हर उगल रहा था। "नींव-पत्थर रखवाना ही था तो किसी ढंग के आदमी को बुलाते।"

"बेटा यह बात नहीं। तुम हज़रत मियां मीर को नहीं जानते। वे एक

बेमिसाल दरवेश हैं। मैं लाहौर में उनकी महानता देखकर आया हूँ।"

"क्या पता उन्होंने जानबूझ कर ईंट उल्टी लगाई हो," मेहरबान बोला।

"ताकि मन्दिर को गिराना पड़े," एक चाटूकार बोला।

"हज़रत का नाम तो बहुत है।"

"नाम जैसा नाम ! सुना है बलख़ का शाह हज़रत की मशहूरी सुनकर उनके दर्शनों के लिए आया। रथ, घोड़े और लाम-लश्कर ! हज़रत ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया। किसी ने शाह को समझाया कि दरवेशों से मिलने का यह ढंग नहीं होता। अगले दिन वह सिर्फ एक दुशाले में अकेला नियाज़ हासिल करने के लिए हाज़िर हुआ। मियां मीर जी ने फिर भी उसे दर्शन नहीं दिए। किसी ने उसे समझाया कि तेरा यह कीमती दुशाला ही तेरे अहंकार का प्रतीक है। अगले दिन वह सादे कपड़ों में सर झुकाकर दरगाह में हाज़िर हुआ। अब मियां मीर जी उससे मिलने के लिए राज़ी हो गए। लेकिन जब बादशाह उनके सामने पेश हुआ, तो हज़रत ने उसके हाथ में एक काशा (भिक्षा-पात्र) पकड़ा कर उसे भिक्षा मांगने के लिए भेज दिया। भिक्षा लेकर जब वह शाम को लौटा तो उसके हाथ में एक की बजाय दो काशे थे। एक में मुसलमान घरों की भिक्षा थी, और दूसरे में हिन्दू घरों की। हज़रत ने अगले दिन फिर उसे भिक्षा मांगने के लिए भेजा। इस बार भी उसने ऐसा ही किया। हज़रत ने तीसरे दिन उसे फिर भिक्षा मांगने के लिए भेजा। इस बार जब वह शाम को लौटा तो उसके हाथ में एक ही काशा था। उसमें हिन्दू और मुसलमान घरों की भिक्षा मिली हुई थी। अब हज़रत ने ख़ुश होकर उसे अपने पास बिठाया और समझाया, "सारी मख़लूक अल्लाह की बनाई है। हिन्दू-मुसलमान में कोई फ़रक नहीं है। सभी इन्सान हैं। वह रब-उल-आलमीन है, रब-उल-मुसलमीन नहीं।"

"जो भी हो, हरिमन्दिर का भट्टा तो वे बिठा ही गए हैं," मेहरबान बोला।

"तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए। कल को गुर-गद्दी पर तुझे ही बैठना है," एक चापलूस ने कहा।

"मैं जब गुर-गद्दी पर बैठूँगा तो किसी दरवेश को नहीं, किसी हुक्मरान को अपने हरिमन्दिर की नींव रखने के लिए बुलाऊँगा।"

"तब तो तू ज़रूर पूरियाँ पा बैठा," पृथी निराश हो कर महफ़िल से उठ खड़ा हुआ।

"यही बात तो आपकी पीढ़ी को समझ में नहीं आती। हमें हुक्मरानों से बनाकर रखना चाहिए। 'बाबर' के और 'बाबे' के लोग इस सूबे में मिल कर बैठेंगे। मैं आप से फिर कहता हूँ कि सुलहीखान से यारी पैदा करो। वही आपकी मदद करेगा। मेरी राय यह भी है कि गुर-गद्दी लेने से पहले हम दोनों में से एक को लाहौर जाकर बैठना चाहिए। सुना है अकबर बादशाह लाहौर आ रहा है। क्या पता आ भी गया हो। आप जाकर लौट क्यों आए ? लाहौर कौन सा दूर है। सुबह आदमी घोड़ी पर सवार हो और शाम को लाहौर पहुँच जाए।"

"तेरे चाचा के कोई औलाद नहीं। गुर-गद्दी तुझे ही मिलेगी। चिन्ता तो मुझे होनी चाहिए जिसका हक़ छीना गया है। विश्वासघात किया गया है।"

"हमें अपना हक़ वसूल करना पड़ेगा। मसन्दों ने तो पहले ही सारी उगराही उधर भेजनी शुरू कर दी है। इस तरह तो कूएँ भी खाली हो जाते हैं। मुझे तो लगता है कि हमें गली-गली की ठोकरें खानी पड़ेंगी। गुरसिख तो हमें मुँह लगाके भी राज़ी नहीं। जो पहले हाथ जोड़ते थे, अब बिना देखे नज़दीक से निकल जाते हैं।"

मेहरबान सिंह लगातार बुड़बुड़ाता जाता था। पृथी चंद बाहर निकल गया।

"बेटा तू फ़िकर न कर, हम तेरे बाप को कल ही लाहौर भेज देंगे," एक चाटुकार ने मेहरबान को हौसला दिलाया।

(8)

पृथी चंद की पत्नी करमो के सारे सपने जैसे ढेरी हो गए थे। आठों पहर जलती-भुनती रहती, कलपती रहती। उसने तो पृथी चंद से शादी ही यह सोचकर करवाई थी कि उसे गुर-गद्दी मिलेगी और वह गुरु-माता कहलाएगी। यह जन्म और अगला जन्म दोनों सफ़ल हो जाऐंगे। अब उसे लग रहा था जैसे वह नरक भोग रही है, अगले जन्म में भी नरक भोगेगी। उसे खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता था। आठों पहर घर में क्लेश मचा रहता था। वह बच्चों को कोसती रहती, घर वाले को खाने को पड़ती। अड़ोसियों-पड़ोसियों के साथ उसका कोई वास्ता नहीं था। बस उसे एक ही तसल्ली थी कि गुरु अर्जन देव जी के कोई औलाद नहीं थी, न ही उन्हें किसी चीज़ का लालच था। बेशक गुरुपिता उन्हें गुरुआई बख़्श गए थे, लेकिन पगड़ी की रस्म के वक्त उन्होंने खुद ज़िद करके पगड़ी पृथी चंद को बंधवाई

थी। वे हमेशा पृथी चंद को आदर देते थे, क्योंकि वह बड़ा बेटा था। यही नहीं गुरु के चक में बनाए गए नये महलों पर पृथी चंद ने पहले से कब्ज़ा किया हुआ था। उन्होंने कभी ऐतराज़ नहीं किया था। चुपचाप एक मामूली सी कोठरी में दिन काट रहे थे। अगर कोई यात्री कभी गुरुआई की बात शुरू करता, तो करमो जवाब देती, "हमने सब से छोटे भाई को टीका इस लिए लगवाया है कि उस बेचारे के कोई संतान नहीं है। दो-चार साल वह भी रौनक देख ले। आख़िरकार तो गुरुआई हमें ही मिलेगी। जो ख़ुद अपनी औलाद के लिए तड़प रहा हो, जिसका अपना आंगन सूना हो, वह गुरसिखों की ज़रूरतें भला कैसे पूरी करेगा ? औरों की मनोकामनाएँ कैसे पूरी करेगा?"

श्रद्धालुओं और ज़रूरतमन्दों की विनतियों को सुनकर करमो किसी को कोई टोना बताती, तो किसी को कोई टोटका करने को कहती। किसी को झूठ-मूठ तावीज़ बना कर देती। किसी को ग़लत-सलत गुरबाणी का पाठ सुनाकर विरद करने की प्रेरणा देती। किसी को बेटा बख्शती, किसी को बेटी। रेख में मेख मारने के दावे करती रहती। ख़ुद को भी धोखा देती, लोगों को भी गुमराह करती।

एक दिन करमो के पास एक औरत आई। बडी परेशान लग रही थी। कहने लगी कि उसका घरवाला उसके ऊपर सौत बिठाने की सोच रहा है। उसके छोटे-छोटे बेटे-बेटियाँ हैं। वह तो कहीं की न रहेगी।

करमो ने उसे और कुरेदा तो पता चला कि औरत का मर्द पिछली पूरनमासी के दिन लाहौर गया था तो किसी वेश्या के जाल में फँस गया था। लाहौर की एक सहेली ने उसको यह ख़बर दी थी।

"हाय मैं लुट गई। मेरा मर्द भी तो आजकल लाहौर में है !" करमो की छाती में जैसे बम फटा हो। वह बुरी तरह से सकपकाई। उसका मुँह खुले का खुला रह गया। पिछली पूरनमासी वाले दिन उसका मर्द भी तो लाहौर के लिए रवाना हुआ था। यह सोचकर करमो के होशहवास उड़ गए। सामने बैठी दुखी औरत के कष्ट निवारण की बात वह भूल गई। उसका दिल कहता था कि कई दिनों से उसके मर्द की ख़बर नहीं मिली थी। कहीं वह भी किसी लाहौरन के साथ अटक न गया हो। लाहौर शहर ज़हर-क़हर है। सुना है लाहौरिनें तो लोगों पर जादू-टोना कर देती हैं।

सामने बैठी औरत के चेहरे पर एक रंग आता और एक रंग जाता।

करमो का मुँह पीला ज़र्द हो गया था। काटो तो जैसे ख़ून की एक बूँद न हो। बाहर से आई औरत जैसे आई थी ख़ाली हाथ चली गई। सारी रात करमो को नींद नहीं आई। दीवारों में से जैसे आग फूट रही हो। इतने बड़े घर में वह एक कमरे से दूसरे में घूमने लगी। कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती। उसे कहीं चैन नहीं आती। फिर उसने सुबह की इन्तज़ार करनी शुरू करदी। उसने मन ही मन फ़ैसला किया कि वह लाहौर जाकर अपने घरवाले को वापस ले आएगी। उसे न ही किसी अकबर बादशाह की मदद की ज़रूरत थी। अकबर कौन सा उसका हाथ पकड़ने वाला था। अकबर तो ख़ुद अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए एक बार गुरु घर आया था। ढेर सी ज़मीन उसकी सास के नाम कर गया था। सुनने में आया था कि बादशाह फिर गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आने की सोच रहा था। कोई ज़रूरत आ पड़ी होगी।

सुबह होते ही करमो ने लाहौर जाने की तैयारी शुरू कर दी। सब ने उसे समझाया कि इतनी जल्दबाज़ी से काम न ले। दो-चार दिन और इन्तज़ार करे। क्या पता उसका मर्द लौट ही आए। और फिर शहंशाह कौन सा लाहौर में बैठा हुआ था। पहले अकबर लाहौर आएगा। उससे मुलाकात करने के लिए लाख सिफारिशें करवानी पड़ेंगी।

करमो किसी की कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थी। उसके अन्दर एक तूफ़ान उमड़ रहा था। उसे लगता था कि उसका सुहाग लुटने वाला है। गुरु के महल के जो कमरे उसने गुरु अर्जन देव जी के साथ लड़-झगड़ कर ख़ाली करवाए थे, उनमें कोई लाहौरन आकर बसना शुरू कर देगी। उसका घरवाला इतने दिनों से लाहौर में जाने क्या-क्या बेहूदगीयां कर रहा होगा।

मर्द ज़ात जो भी करे सो ही थोड़ा है। एक अजीब तरह की बेचैनी करमो महसूस कर रही थी। एक आशंका अन्दर बैठ रही थी। उसकी आँखों के सामने अंधेरे की दीवारें खड़ी हो रही थीं।

उस दिन करमो लाहौर नहीं जा सकी। कोई विघ्न पड़ गया। अगले दिन मंगलवार था। मंगलवार को कोई घर से नहीं निकलता। शाम को उसके मायके से कोई मेहमान आ गए। उन्हें वह कैसे बताती कि वह लाहौर क्यों जाना चाहती थी। उसकी बहन और भाभी आई थीं। दो-चार दिन वे रुकने वाली थीं, घर आए मेहमानों को छोड़ कर करमो कैसे जाती ? बातों ही बातों में गोईंदवाल से आई औरतें वहाँ की बावली की महिमा बताने लगीं। वहाँ के

सरोवर की बहुत प्रशंसा सुनी है, लेकिन गोईंदवाल की बावली की करामात तो अनेक बार हमने अपनी आँखों से देखी है। बावली में स्नान करने से मन की सारी मैल उतर जाती है। मन में शांति और ठंडक आ जाती है। मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। कोई दुख-क्लेश नहीं रहता, करमो की बहन ने कहा—मैंने आज़मा कर देखा है कि गोईंदवाल की बावली में एक डुबकी लगाकर मेरा अंतःकरण शुद्ध हो जाता है। मन प्रफुल्लित होने लगता है। यह बातें सुनकर करमो ने अपना मन बदल लिया, वह पहले गोईंदवाल जाएगी। बावली में स्नान करेगी। अगर उसके मन की भटकन फिर भी पूर्ववत बनी रही तो वह लाहौर जाएगी नहीं तो अपने घर लौट आएगी।

करमो गोईंदवाल गई। उसने स्नान किया। लेकिन उसके मन की अग्नि पहले की तरह सुलगती रही। जैसे कोई उसके शरीर के टुकड़े कर रहा हो। उसका चीर-हरण कर रहा हो।

गोईंदवाल आकर करमो के लिए अपने देवर गुरु अर्जन देव जी को ना मिलना मुमकिन नहीं था।

गुरु महाराज के गई, उसे वही आदर दिया गया जिसकी वह हक़दार थी। गुरु महाराज ने गुर-गद्दी से उठकर भाभी का स्वागत किया। लेकिन गुरु महाराज की गुरुआई वाली आभा को देखकर करमो के अंदर ईर्ष्या की अग्नि सुलग उठी। उसे लगा कि वह शान, वह शोभा उसके पति की थी, जिससे उसे वंचित रखा जा रहा था। उसके मन में आया कि एक लोमड़ी की तरह झूठ बोलकर वह सब कुछ छीन ले।

कुछ देर बाद गुरु माता गंगा जी के पास बैठकर बातों ही बातों में करमो उनसे कहने लगी—"जो ऐश्वर्य आपने भोगना है, भोग लीजिए। आख़िर तो गुरुआई हमें ही मिलेगी।"

माता गंगा जी ने उसे मुँह लगाना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन सामने बैठी एक गुरसिख औरत पूछ बैठी, "भला वह कैसे ?"

यह बीबी नीपूती है, बाँझ औरत गुरु की पत्नी तो हो सकती है पर गुरु की माता नहीं हो सकती। सूखे का मारा खेत कभी हरा हुआ है ? जब बात इनके सर से गुज़र गई तो गुरुवाई हमें ही मिलेगी। मेरी औलाद ही तख़्त मर बैठेगी। बेशक आज हमारे साथ धोखा हुआ है। हमें न्याय मिलकर ही रहेगा। अगर ईश्वर की इच्छा इन्हें गुरुवाई देने की होती तो पहले इनके आँगन को बसाया जाता। बीबी गंगा की गोद हरी होती।

करमो बुड़बुड़ा ही रही थी कि माता गंगा जी उठकर कमरे में चली गईं। उनका चेहरा लाल सुर्ख़ हो गया था। उनका गला भर आया था। उन्हें लगता था एक क्षण भी वह वहाँ रुकीं तो उनके आँसू बहने लगेंगे।

ईश्वर की करामात अगले दिन माता गंगा जी केश धो कर बाहर निकलीं तो बाहर चारपाई पर बैठीं तो करमो पर पानी की एक छींट जा पड़ी, वह तड़प उठी जैसे किसी बिच्छु ने उसे डंक मार दिया हो। "तेरी अपनी तो औलाद नहीं होती, तू मुझे भी बाँझ बनाना चाहती है ?" उन दिनों में यह अंध-विश्वास आम था कि बाँझ औरत के गीले बालों का छींटा किसी औरत पर पड़ जाए तो वह भी बाँझ हो जाती है।

"बाँझ औरत गुरु की पत्नी हो सकती है पर गुरु की माता नहीं" करमो के यह शब्द माता गंगा जी के सीने में जैसे चुभ गए। उनकी कोई औलाद भी नहीं हुई, यह बात तो उन्होंने सोची भी नहीं थी। सारे गुरसिख उन्हें अपने बच्चे प्रतीत होते थे। वह उन्हें अपने बच्चों की तरह ही प्यार करती थी। कभी कोई भेदभाव नहीं किया था।

तो भी गुरगद्दी का वरिस किसी को तो बनना था। वह भी सोढ़ियों के ख़ानदान में से, गुरु अमरदास जी यह वचन दे बैठे थे। इस वचन का पालन ज़रूरी था। पृथी चंद और माधो दास पहले ही वंचित किए जा चुके थे। अब यह ज़िम्मेदारी माता गंगा जी की थी कि गुरु पिता के वचनों पर फूल चढ़ाए जाएँ।

यह ख़्याल आते ही उन्हें लगा कि जैसे हर कोई उन पर आस लगाए बैठा है, हर किसी की नज़रें कुछ टटोल रही थीं, जैसे वह अपने फ़र्ज़ में लापरवाही कर चुकी हों। चारों तरफ़ प्रतीक्षा का वातावरण था।

गोईंदवाल में गुरु महलों के पीछे मवेशियों का खुला अहाता था। उसमें घोड़े थे, भैंसें थी, गायें थीं। हर नस्ल, हर रंग रूप के मवेशी। नीले रंग की एक गाय माता जी की बहुत प्यारी थी। सुडौल जिस्म, गठी हुई माँसपेशियाँ, माता जी के आते ही वह मासूम नज़रों से उनकी तरफ देख कर धीमे स्वर में रँभाने लगती जैसे बहुत देर से उनका इँतज़ार कर रही हो। माता जी भी उसके माथे को, थूथनी को सहलातीं, पलोसतीं, उसके पास खड़े हो कर उसे प्यार करती रहतीं। उसके साथ छोटी-छोटी बातें करती रहतीं। कई बार ऐसा भी होता था कि माता जी अमृतवेला में उधर आ निकलतीं। नीली गाय के पास रुककर बाणी का पाठ करतीं, जैसे नीली (गाय) को ही पाठ सुना

रही हों। नीली भी चुपचाप, बिना हिले-जुले कान उठा कर सुनती रहती। शायद पिछले जन्म में कोई भक्तिन थी जिसकी साधना में कोई विघ्न पड़ गया था।

गुरु घर के गौशाला के नौकर को जब यह अहसास हुआ कि नीली माता जी की लाडली गाय है तो उसकी विशेष ख़ातिर होने लगी। तीज-त्योहार वाले दिन नीली को सजाया जाता। आस-पड़ोस के हिन्दु घर तो चुपके से नीली की पूजा भी कर जाते थे।

इस बार जब माता जी गोईंदवाल आए, तो नीली कहीं दिखाई नहीं दी। पूछने पर पता चला कि नीली कहीं निकल गई थी, इसलिए उसे बेच दिया गया था, धीरे-धीरे उसका दूध सूखता जा रहा था। बछड़ा-बछड़ी काई होती नहीं थी। कई बार कोशिश की गई थी पर बेकार।

उस दिन अपने कमरे में अकेली बैठी माता जी को अचानक नीली की याद आने लगी। नीली बाँझ थी, उसकी कोख नहीं हरी हुई, इसलिए उसे बेच दिया गया था। कौन उस पर चरी बर्बाद करता। बेकार उसकी ख़ातिरें करता, नीली बंजर धरती के समान थी।

माता जी इन सोचों में पड़ी थी कि उनकी नौकरानी ने आकर याद कराया कि लंगर में उनका इंतज़ार हो रहा था।

"देवकी तुझे याद है हमारे यहाँ नीली नाम की एक गाय हुआ करती थी।"— "हाँ-बड़ी सुशील गाय थी, पर बेचारी बाँझ निकली।" देवकी ने नाक चढ़ा कर कहा।

"बाँझ क्या होती है ?" माता जी ने सवाल किया। जिस गाय के बछड़ा-बछड़ी और भैंस के कट्टा-कट्टी न हो उसे बाँझ भी कहते हैं। यह सुनकर माता जी का दिल डूब गया। नीली को ज़रूर किसी कसाई ने ख़रीदा होगा। वे सोच रही थीं कि जो गाय या भैंस बच्चा नहीं दे सकती उसे बेकार क्यों समझा जाता है।

उस दिन माता जी लँगर में नहीं गईं। न ही उनसे कुछ खाया गया। नौकरानी निराश होकर लौट गई।

"बाँझ औरत गुरु की पत्नी हो सकती है, गुरु की माँ नहीं," करमो के यह बोल माता जी के कानों में बार-बार सुनाई दे रहे थे। कितने ज़हर आफर थे यह शब्द। वह झुलस रही थीं दहकते हुए अंगारों पर।

अपने कमरे के एकांत में बैठी माता गंगा जी को लगा जैसे लहलहाते

हरे-भरे खेतों, रंग-बिरंगे फूलों-फलों से लदे बग़ीचों, झरझर करते चश्मों और फव्वारों की फुहारों में, ठंडी हवा के हिलोरों में घूमते हुए जैसे वह किसी वीराने में आ गई हों। सूखी हुई धरती, चिलचिलाती धूप, सुलगाने वाली लू, मिट्टी और धूप।

इस दम घोंटने वाले अहसास के बाद फिर एक ठंडी हवा का झोंका आया और उनकी आँखों में एक रौनक़ खेलने लगी, सामने उनके सरताज आ रहे थे। शांत, गंभीर, एकदम जैसे अमृत की वर्षा होने लगी हो। वातावरण में जैसे नग़्मे गूँजने लगे।

"आपने क्या आज व्रत रखा है ?" गुरु महाराज ने अपने भोले अन्दाज़ में अपनी पत्नी से पूछा। "हमें बतातीं तो हम भी नाग़ा कर लेते।" वे फिर अपने कमरे में चले गए। वह सुबह से ही यहीं बंद थे। जब गुरुबाणी उन को उठाती भी तो वे लगातार घण्टों तक अपने आप को एकांत स्थान में बंद कर लेते। गुनगुनाने लगते, फिर गाने लगते।

थोड़ी देर बाद उनके गायन की धुन सुनाई देने लगी—

ठाकुर तुम सरनाई आया ॥
उतर गयो मेटो मन का संसा
जब ते दर्सन पाया ॥ १ ॥ रहाऊ ॥
अन्बोलत मेरी बीरथा जानी
अपना नाम जपाया ॥
दुख नाठे सुख सहज समाए
अनद-अनद गुन गाया।
बाँह पकरी कडलीने अपने
गृह अँध कूप ते माया।
कहो नानक गुर बंधन काटे
बीछुरत आन मिलाया ॥ २ ॥

(सारंग महला ५)

माता गंगा जी एक अद्‍भुत स्वाद में आकर सुन रही थीं कि इतने में उनकी आँख लग गई। आधी रात का समय था कि जब उनके पतिदेव उधर आए। देखा कि गंगा जी पसीने में तरबतर अपने पलंग पर सो रही थीं। गर्मियों के दिन उनके दायें-बायें की खिड़कियाँ भी बंद थीं। कमरे में गर्मी के मारे एक घुटन सी थी। गुरु महाराज ने खिड़कियाँ खोलीं और सामने रखी

मोरपंख की पंखी से गंगा जी पर हवा करने लगे। पसीने से उनका मुँह माथा और बिखरे बाल जैसे तर हो गए हों।

बहुत देर तक गुरु अर्जन पंखी झलते रहे। पसीना सूख गया था। मुँह माथे का पसीना कबका सूख गया था। उनके गोरे-चिट्टे मुखड़े को ढँके हुए बालों का पसीना सूख गया था। जैसे उनकी खिलती हुई ज़ुल्फ़ें गालों के साथ खेल रही हों। थोड़ी देर के बाद माता गंगा जी ने करवट बदली और नींद में ही यह शब्द निकले—"बाँझ औरत गुरु की पत्नी हो सकती है, गुरु की माता नहीं।" गुरु महाराज ने सुना तो उनके होंठों पर एक मुस्कान खेलने लगी। माता गंगा जी पहले की तरह गहरी नींद में थीं। करमो भाभी के इस ताने की बात गुरु महाराज जी के कानों तक पहले ही पहुँच चुकी थी। गुरु महाराज बहुत देर तक पंखा झलते रहे। करवट बदलने के साथा माता गंगा जी की पीठ में से भी पसीना चू रहा था। जैसे अभी नहाकर चारपाई पर लेटी हों। दिन में गर्मी भी तो कहर की पड़ी थी।

(9)

यह देखकर कि श्रद्धालु गुरु महाराज के पीछे गोईंदवाल में इक्ट्ठे होने लगे थे, करमो आई तो एकाध दिन के लिए थी पर वहीं डटकर बैठ गई। बड़ी बहू होने के कारण वह हर चीज़ पर अपना विशेष अधिकार जमा लेती थी। गुरु महाराज ने यह देखा और चुपचाप माता गंगा जी के साथ गुरु के चक लौट गए। वह नहीं चाहते थे कि करमो कोई और बदतमीज़ी कर बैठे। कोई और नई मुसीबत खड़ी कर दे।

गुरु महाराज के जाने के बाद करमो को ऐसा लगता था कि श्रद्धालू भी उनके साथ ही चले गए हों। दो चार दिन बाद कोई भूला-भटका यात्री वहाँ आ निकलता तो उसकी तरफ़ कोई ध्यान न देता। गोईंदवाल में गुरु महाराज के खाली महल जैसे माता जी को काटने का दौड़ रहे थे। कुछ दिन पहले उन महलों में गहमागहमी रहती थी अब सुनसान, उदास किसी की याद में झुके हुए लगे थे।

आजकल गुरु के चक का नाम अमृतसर पड़ रहा था। चारों तरफ़ अमृत सरोवर की महिमा फैल रही थी। जो भी आता निहाल होकर जाता। लगता था कि सरोवर में स्नान करने से जन्म-जन्म के पापों की मैल उतर जाती थी। श्रद्धालु गुरु महाराज के आर्शीवाद लेकर—खुशी-खुशी अपने घरों को लौटते।

गुरु अर्जन देव जी को यह हरगिज़ गवारा नहीं था कि गुरु घर में किसी

किस्म की कोई बदमज़गी पैदा हो। जिस जायदाद पर पृथी चंद ने हाथ रखा, वही उसके हवाले कर दिए। जब उसने अमृतसर के महलों पर क़ब्ज़ा किया, गुरु महाराज गोईंदवाल चले गए। करमो अपने ख़ानदान को लेकर वहाँ जा धमकी, तो गुरु महाराज अमृतसर आ गए। यहाँ तक कि माधोदास भी पृथी चंद को समझाते रहते पर वह सब की अनसुनी कर रहा था। एक ही ज़िद कि सबसे बड़ा बेटा होने के नाते गुरुवाई पर उसका हक़ बनता था जो उसे थाली में परोस कर दी जानी चाहिए।

इधर गोईंदवाल में भी करमो ने महलों पर क़ब्ज़ा करके गुरु महाराज और माता जी का वहाँ रहना दूभर कर दिया। उधर पृथी चंद चूनामण्डी की जायदाद पर क़ब्ज़ा करके बैठ गया। धर्मसाल में इक्ट्ठी होने वाली संगत का मनमाने उपदेश देता, और तो और उसने तुकबंदी भी शुरू कर दी थी और अपनी अनाप-शनाप कवीशरी को गुरुबाणी कहकर प्रचलित करने लगा था।

गुरु अर्जन देव जी ने जब सुना, तो उनके पैरों तले ज़मीन निकल गई। वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे लेकिन गुरुबाणी का निरादर उन्हें मंज़ूर नहीं था।

शुरु-शुरु में जब पृथी चंद गुरु साहेबान की बाणी को अपने नाम से जोड़कर श्रद्धालुओं को गुमराह करता था। जब लोगों ने इस करतूत के लिए उसे शर्मिन्दा किया तब भी वह बाज़ नहीं आया। कई गुरुसिक्खों के पास गुरुबाणी की पोथियाँ भी थीं। अब उसने खुद तुकबंदी शुरु कर दी। बेसिरपैर के टोटके जोड़ता रहता। भाई बुड्ढ़ा, क्या भाई गुरुदास, और बाकी और गुरु सिक्ख भी परेशान थे। सारी क़ौम की छवि बिगड़ कर रह जाएगी।

पृथी को उसकी करतूतों से रोकने का कोई तरीका नहीं था। गुरुआई गुरु नानक की बख़्शिश थी, इसके अलावा गुरु अर्जन देव हर चीज़ का त्याग करने के लिए तैयार थे, ताकि वे ईश्वर भक्ति में लीन रह सकें। एकांत में भगवान के गुणगान कर सकें, गुरबाणी रच सकें, जिसक प्रवाह उनके भीतर से उमड़ रहा था। आठों पहर उनके पवित्र होठों पर नग़्मे गूँजते रहते। उन्हें गुरबाणी सुननी अच्छी लगती थी, गुरबाणी पढ़नी अच्छी लगती थी, गुरबाणी की रचना करना अच्छा लगता था। इसलिए वे एकांत की खोज में रहते। वे चाहते थे, अकाल पुरख में वे लीन रहें। पृथीया जिस जायदाद पर हक़ जमाना चाहता है, बेशक जमाले; जो धन मेहरबान ने सम्हाला है, बेशक सम्हाल ले। उन्हें सिर्फ़ ईश्वर की महिमा चाहिए थी और कुछ नहीं। उस दिन

माता भानी जी के पास एकांत में बैठे गुरु महाराज कहने लगे, "आप ने नाना जी से यह वर क्यों माँग लिया कि गुरवाई सोढी ख़ानदान में ही रहे ?"

"इसका जवाब मैं बाद में दूँगी। लेकिन अगर कोई यह सोचता है कि गुरु अर्जन को गुरवाई इसलिए मिली है कि उसकी माँ ने अपने पिता से कोई वचन ले लिया था तो यह अनर्थ होगा। मेरे अर्जन को तो गुर-गद्दी पर बैठना ही था। इस बात का फ़ैसला तभी हो गया था जब आप छोटे थे और घुटनों के बल चलते थे।

"भला कैसे ?" एक बार ऐसा हुआ कि तुम्हारे नाना जी दोपहर के भोजन के बाद आराम कर रहे थे। आराम के समय कोई परिंदा भी पर नहीं मार सकता था। सारी-सारी रात वह समाधि में लीन रहते। बेटा तब तू घुटनों के बल चलता था। बैठे-बैठे शाम के वक़्त क्षण भर के लिए मेरी आँख लग गई। मेरी आँख खुली तो मैंने सुना कि गुरु पिता जी के कमरे से किलकारियाँ भरने की आवाज़ आ रही है। यह क्या अनर्थ हुआ था ? वे सोए हुए थे, तूने जा कर उन्हें उठा दिया था। मैं जल्दी-जल्दी तुझे सम्हालने लगी। मुझे बेहद शर्म आ रही थी। ऐसे तो पहले कभी नहीं हुआ था। मेरी घबराहट को देख कर गुरु पिता कहने लगे, "रहने दे भानी बेटा यह मेरा दोहता बाणी का जाप किया करेगा। बाणी के जाप से जगत् का उद्धार करेगा। इससे भी पहले नाना जी एक बार विश्राम कर रहे थे। मैंने उनके पलंग के पास जाकर उन्हें झींझोड़ा तो उनकी आँख खुल गई। कहने लगे, "किसने हमारी चारपाई हिलाई है ?" मेरी गेंद उनके कमरे में जा गिरी थी।

"हाँ, तुम्हें कैसे पता चला ?" कोई कह रहा था।

माता भानी हैरानी से गुरु अर्जन देव जी के मुखड़े की ओर देखने लगीं। उन्होंने इस घटना का तो ज़िक्र किसी के साथ नहीं किया था।

"इससे ज़ाहिर होता है कि गुरिआई का फ़ैसला कहीं ओर होता है।" माता भानी जी कह रही थीं। "न पृथीया, न महादेव गुर-गद्दी के लिए जन्मे थे। यह बोझ तो मेरे सबसे छोटे लाल अर्जन के कन्धों पर पड़ना था।"

"बोझ ?" गुरु अर्जन देव जी के मुँह से निकला।

"हाँ, बेटा गुरिआई बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है और उसी को सौंपी जाती है जो इसके लायक़ हो। न पृथी चंद, न महादेव यह बोझ उठाने के क़ाबिल हैं।"

"वह कैसे ? उनके कन्धे मेरे से ज़्यादा मज़बूत हैं या तगड़े हैं, उनकी

पीठ भी ज़्यादा मज़बूत है।"

इसका जवाब उसी को पता है जो गुर-गद्दी को सुशोभित कर रहा है। सोढ़ी घराने के लिए गुरिआई का वर माँगने का जहाँ तक मेरा सवाल है, वो मैंने इसलिए नहीं माँगा था कि गुर-गद्दी पर बैठकर मेरे बेटे और पोते राजभाग का आनंद उठाएँगे। हो सकता है यह भी सोचा हो, लेकिन इस सब कुछ के लिए जान पर खेलना होगा। बहुत सी कुरबानियाँ देनी होगीं। चारों तरफ़ देखने पर भी मुझे कोई ऐसा दिखाई नहीं दिया जो इस लिए तैयार हो। जो इन कुरबानियों को बर्दाश्त कर सके। मैंने अपने से कहा, यह बोझ ता मैं ही उठाऊँगी। मेरी कोख का जाया ही इस कड़ी परीक्षा का सामना करेगा और मुसीबतें उठाएगा। अपने गुरु पिता से वचन लेते समय मैंने सूली को चूमा था! सूली पर तो अनेक चढ़ते हैं पर कोई विरला ही सूली को चूमता है। मेरे लाल मैंने सूली से रिश्ता कायम किया है। मैंने अपने परिवार के लिए गुरिआई इसलिए मांगी है ताकि गुरु पंथ की सेवा में हम सबसे अधिक हिस्सा ड़ाल सकें। समय आने पर इतिहास इस बात का साक्षी होगा। मैं भी कैसी पगली हूँ यह सब मैं उसे बता रही हूँ जो स्वंय अन्तरयामी है। जिसमें आदि से लेकर अंत तक समझ है। जिसे भूत और भविष्य का ज्ञान है।

और माता भानी जी की पलकें आँसुओं से भीगी हुई थीं। आँसू मोतियों की तरह छल-छला रहे थे। खिला माथा हँसता हुआ मुखड़ा, आँखों में गर्म-गर्म आँसू। जैसे कोई मीठे-मीठे दर्द का आनंद ले रहा हो।

(10)

करमो के ताने—"बाँझ औरत गुरु की पत्नी हो सकती है, गुरु की माता नहीं।" माता जी यह शब्द भुला नहीं पायीं। बार-बार उनके कानो में यह शब्द गूँज रहे थे। उन्हें खाना-पीना कुछ नहीं भाता था। वातावरण मैला-मैला प्रतीत होता था। हर चीज़ बुझी-बुझी, हर चीज़ में से उन्हें सडाँध सी आती थी। वे नित्य नेम करती थीं, अपना मन ईश्वर भक्ति में लगाती थीं, हाथ जोड़ती थीं, अरदास करती थीं, पर करमों के तानों की याद आते ही उन्हें लगता जैसे आसमान में उड़ रही अबाबील को कोई धरती पर पटक दे, धूल-मिट्टी में सनी हुई।

अनेक बुजुर्ग और सयानी दाईयों ने बताया था कि उनमें कोई कमी नहीं थी। जिन वैद्यों से और हकीमों से वह परामर्श लेती थी उनकी भी यही राय थी। जिस सयाने का पता चलता अपनी तसल्ली के लिए वे वहीं चल पड़तीं

पर उनकी कोख अभी तक हरी नहीं हुई थी। उधर उनके सरताज ऐसे थे जैसे कोई हृष्ट-पुष्ट सूरमा हों। ऊँचा लंबा पेड़ जैसा कद। विशाल चौड़ा माथा, मुखड़े पर एक अलौकिक नूर। घोड़े पर सवार होते तो घोड़े की टापों से वातावरण हिल उठता। रकाब में पैर डालते ही अड़ियल से अड़ियल घोड़े सीधे हो जाते। यह बात अलग थी कि उन्हें पढ़ने और गुनने से फ़ुरसत ही कम मिलती थी। राग-रागिनियों में दिलचस्पी और कविता रचना उन्हें अधिक प्रिय था। कई-कई दिन तक जैसे कोई चिल्ला काट रहा हो, अपने आप में गुमसुम रहकर गुरबाणी का जाप करते रहते। जब बाणी उन पर उतरती तो उनकी अधमुँदी पलकें, उनके होंठ एक अकथनीय रस से फड़कने लगते। जैसे सुबह के पवन के झोंकों में फूल-पत्तियाँ झूमने लगतीं। या फिर हाथ में सारंगी लेकर अपने आप साज़ बजाते रहते। कभी-कभी गाने भी लग पड़ते। खाने-पीने से एकदम लापरवाह। शाम से बंद होकर कभी रात को अपने कमरे की कुण्डी खोलते। और जब कारसेवा करने लगते तो सब श्रद्धालु उन्हें देखकर मुँह में अंगुलियाँ दबा लेते। मजाल है कोई कच्ची ईंट कहीं लग जाए। अपने सामने ईंटों के भटठ्ठे तैयार करवाते। भवन निर्माण कला में भी माहिर थे। अपने हाथों से राजगीरों को हर योजना के नक़्शे बनाकर देते। चूने-मिट्टी और गारे के सही अनुपात की जानकारी देते। ईंटों के पकाने के ढ़ंग, पत्थरों की तराशी, तरतीब से सँवारने की कला की भी उन्हें बेजोड़ जानकारी थी।

नम्रता और हलीमी के पुँज। ग्यारह साल की उम्र में ही वे सेहरा बाँध कर ससुराल के गाँव मऊ शादी करवाने आए थे। गाँव वालों ने सोचा, लड़का कुछ ज़रूरत से ज़्यादा सुशील है, इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ रिवाज है कि मिलनी से पहले हम घुड़सवारी का इम्तहान लेते हैं। देखते हैं हमारी लड़की को भी तुम सम्हाल कर रख सकोगे या नहीं। गाँव वालों की बात सुनकर बाकी बराती परेशान होने लगे। लेकिन दूल्हा ख़ुशी-ख़ुशी कहने लगा—"ठीक है, हम तैयार हैं। गाँव वालों ने एक पेड़ की टहनी काट कर खड़ी कर दी थी। सारा गाँव नेज़ेबाज़ी का करतब देखने इक्ट्ठा हो गया। दूल्हा जिस घोड़े पर चढ़ कर आया था, उसी पर वे पेड़ फर्लांग कर दूर निकल गए। फिर नेज़ा थामे तीर की तरह घोड़ों को तेज़ दौड़ाते हुए वे आए और पहले ही वार में उन्होंने पेड़ को छेद दिया। चारों तरफ़ तालियाँ बजने लगीं। वाह-वाह होने लगी। सब दूल्हे की बलाईयाँ ले

रहे थे। गाँव वालों का मुँह उतर गया। परीक्षा लेने वाले अपने आप को हारे-हारे अनुभव कर रहे थे।

और फिर वक़्त पड़ने पर वे सजीले जवान निकले। उन पर क़हरों का जोबन पड़ा था। मुखड़ा लाल सुर्ख़, मस्तानी आँखे, कसरतें कर-कर, मालिश करवाए हुए पुठ्ठे। और उनके रंग-रूप की आभा झेली नहीं जाती थी। माता जी के साथ आई नाइन कहा करती थी—"बेटी तेरे सात बेटे होंगे।"

अब इंतज़ार करते उन्हें बहुत साल बीत गए थे। उनका सूना आँगन हर वक़्त भायँ-भायँ करता रहता। पहले और बात थी। उनके जेठ पृथी चंद के बच्चे थे। उनके साथ रौनक़ रहती थी। महादेव ने बेशक शादी नहीं करवाई थी। लेकिन पृथी चंद का परिवार बड़ा था। जब से भाई अलग हुए थे, ख़ास तौर पर जब से पृथी चंद ने मनमानियाँ करनी शुरू कर दी थीं, और फिर उस बेहूदा औरत करमो के यह ताने—"बाँझ औरत गुरु की पत्नी बन सकती है, गुरमाता नहीं।" यह बोल बार-बार तीरों की तरह उनके कलेजे में चुभते थे तो उनका मन उचाट हो जाता।

माता गंगा जी सोचतीं ईश्वर ने उन्हें कितने भाग्य लगाए हैं। गुर-गद्दी उन्हें बख़्शी है। सब जगह चर्चा थी कि वे कितनी पहुँची हुई हस्ती है। श्रद्धालू और गुरुसिक्ख उनका नाम लेकर सफ़र शुरु करते थे। उनके मुँह से निकालने से पहले ही हर बात पूरी कर दी जाती। अनेक ज़रूरतमंद अपनी मनोकामनाएँ लेकर गुरु महाराज के पास आते और सत्तगुरु के आर्शीवादों से निहाल होकर जाते। उन्होंने कभी नहीं सुना था कि किसी की मुराद पूरी न हुई हो। आख़िर आस-पास से ही कतारें बांध कर जो लोग आते थे, उन्हें कुछ प्राप्त होता था, तभी तो चारों दिशाओं में गुरु नानक की गद्दी की महिमा थी। हिन्दू धर्म सदियों से चला आ रहा था। इस्लाम देश के हुक्मरानों का मज़हब था। फिर भी लोग अगर गुरुसिक्खी के लिए तरसते थे तो कोई बात तो ज़रूर थी। हिन्दू और मुसलमान परवानों की तरह गुरु महाराज के गिर्द मंडराते रहते थे। उनके दर्शनों के लिए तड़पते रहते थे।

और माता गंगा जी सोचती उनके मन की मुराद क्यों पूरी नहीं हो रही थी। उनकी सुनवाई उस दरबार में क्यों नहीं हुई थी ? उनका आँगन क्यों सूना था ? ज़्यादा नहीं, कम से कम एक बेटा तो उनकी बाहों में खेले। एक बालक की किलकारी उनके जीवन में संगीत भर देगी। एक ही बालक से गुरु अर्जन जैसे सतपुरुष की साख चल पड़ेगी। उनका पैग़ाम आगे चल

पड़ेगा। कई दिनों से माता गंगा जी ख़ामोश सी रहती थीं, उखड़ी-उखड़ी, उदास-उदास। अपने स्वामी गुरु अर्जन देव जी की सेवा में आठों पहर हाज़िर, उनकी रज़ा में राज़ी, लेकिन आठों पहर एक विनती उनके ज़ुबान पर रहती थी। वह हैरान थी कि उनकी सुनवाई नहीं हो रही थी।

माता गंगा जी सोचतीं, उनके पति तो गुरु नानक की गद्दी पर विराजमान थे। उन्हें तो घट-घट का ज्ञान था। वे तो निराश्रयों के आश्रय थे जिनके पास कोई स्थान नहीं था। उनके स्थान थे, जिनकी कोई इज़्ज़त नहीं थी उनकी इज़्ज़त थे। तो फिर माता जी की अकाँक्षा क्यों नहीं पूरी हो रही थी ? इस दर पर आया जब कोई ख़ाली नहीं जाता था तो फिर उनकी मुराद क्यों नहीं पूरी की जाती थी।

माँ बनने की चाहत, यही तमन्ना अपने सीने में लेकर वे अपने सरताज के मुखड़े की ओर देखती रहतीं। अब सो रहे हैं, अब स्नान कर रहे हैं, अब समाधी में लीन हैं, अब पढ़ रहे हैं, अब लिख रहे हैं, अब गा रहे हैं, हर आने-जाने वाले से अब मिल रहे हैं। माता जी सुबह-शाम खत्ने के वक़्त ख़ास तैयारियाँ करतीं। इसी तरह दिन, हफ़्ते, महीने बीत रहे थे।

माता गंगा जी सोचतीं, गुरु जी तो दो जहान के मालिक थे। ऋद्धियाँ-सिद्धीयाँ उनका पानी भरती थीं। उनकी पहुँच से कौन सी बात बाहर थी ? फिर भी उन्हें विश्वास था उनके मुँह से निकली हुई बात गुरु महाराज के लिए टालनी मुश्किल नहीं होगी। गुरु जी की विवाहिता पत्नी होते हुए भी माता जी औरत थीं, अपने दिल की बात भला उनसे कैसे कहतीं। अपनी चाहत के बारे में कैसे बतातीं ? अमृत की एक बूँद कैसे माँगती ?

सोच-सोच कर माता गंगा जी ने निश्चय किया कि वह भाई बुड्ढा जी के पास जाएँगी। आशीवाद देने के लिए उनसे कहेंगी। भाई बुड्ढा जी को गुरु नानक ने दीक्षा दी थी। गुरु घर में जब भी कोई समस्या उठती उनसे सलाह ली जाती।

एक दिन जब गुरु अर्जन भोजन कर रहे थे उन पर पंखा झलते हुए माता जी ने अपने पतिदेव से आज्ञा माँगी, मैं सोचती हूँ कि जाकर बाबा बुड्ढा जी के दर्शन कर लूँ।

"अगर आप औलाद चाहती हैं तो मेरे सिक्खों की सेवा करो। भाई बुड्ढा जी पुराने सेवक हैं, उनकी सेवा करो। जो वह वचन देंगे सो होगा।" गुरु महाराज ने फ़रमाया।

माता गंगा जी उनके चेहरे की ओर ताकती रह गयीं। श्रद्धा से उनका सर झुक गया।

भला यह भी कोई बात हुई। अगले दिन माता गंगा जी को अपने आप से ग्लानि होने लगी। पाँचवें गुरु नानक की पत्नी वर लेने के लिए किसी और के पास जाए ? भाई बुड्ढा जी बेशक सत्कार योग्य बुजुर्ग हैं। गुरु घर के अनन्य सिक्ख हैं। पर गंगा जी तो गुरु माता थीं। जिसके साथ उनकी शादी हुई थी। वे गुरगद्दी को सुशोभित कर रहे थे। माता जी किसी ओर के आगे हाथ क्यों फैलाएँ।

और उन्होंने फ़ैसला किया कि वह भाई बुड्ढा जी के पास नहीं जाएँगी। गुरु महाराज ने भी इसके बाद इस विषय में कुछ नहीं कहा, उन्हें ऐसी बातों के लिए फ़ुरसत नहीं थी।

माता गंगा जी सोचतीं, वे जिसे भी कहेंगी, मेरी कोख उजड़ी हुई है। इसे हरा करने के लिए मुझे आर्शीवाद चाहिए। एक बच्चे का दान चाहिए, मेरा आँगन सूना है। मैं अपना ख़ानदान आगे चलाने के लिए माँ बनना चाहती हूँ। सब यही कहेंगे, बीबी यह माँग तो आप अपने पति से क्यों नहीं करतीं ? वह तो दीन-दुनिया के मालिक हैं। दो जहान के मालिक। उनके दर पे आया कभी कोई ख़ाली नहीं गया। गुरु अमरदास जी ने गोईंदवाल के सुनार की बूढ़ी पत्नी का हाथ जोड़ने पर एक की बजाय दो बेटे बख़्शे, बूढ़ी औरत माँ बन गई थी। आज तक उस ख़ानदान का भाई-पोते वाली करके याद किया जाता है। ऐसे ही गुरु अर्जनदेव जी के पिता गुरु रामदास के पास एक बूढ़े दंपत्ति आए। उनकी कोई औलाद नहीं थी। सिर्फ एक बेटे का दान माँग रहे थे। गुरु महाराज ने फ़रमाया, "आपके भाग्य में औलाद नहीं लिखी।" वृद्ध दंपत्ति बोले, "सच्चे पातशाह, हम जानते हैं इसीलिए तो आपके चरणों में आए हैं। कृपा कीजिए, रेख में मेख मारिए। आपके यहाँ किसी बात की कमी नहीं।" गुरु महाराज का मन उनकी श्रद्धा देखकर करुणा से पिघल गया। बोले, "हमारे घर चार बेटे होने थे। एक बेटा हमने आप को दे दिया।" और उस बूढ़े पति-पत्नी के घर सचमुच औलाद हुई। उस बच्चे का नाम भक्तू रखा गया और गुरु महाराज के यहाँ चौथा बेटा नहीं हुआ।

माता गंगा जी सोचतीं, भाई बुड्ढा जी महान हैं। उनका साथ गुरु नानक देव जी के साथ रहा है। गुरु बाबे ने उन पर कृपा की है, लेकिन मेरे सरताज से बड़ा कौन है ? वे तो स्वंय गुरु नानक का स्वरुप हैं। गुरु नानक की गद्दी

के मालिक। उनके चाहने पर क्या नहीं हो सकता ? मुझ से किसी और के आगे हाथ नहीं फैलाया जाएगा।

बेशक माता गंगा जी ने पक्के मन से यह फ़ैसला कर लिया था और वे इस फ़ैसले पर कायम भी थीं। लेकिन इस बात का अहसास कि उनका आँगन सूना था। उनमें कोई बालक नहीं खेलता था, और जीवन के क्षण हाथ से खिसकते चले जा रहे थे। वे अक्सर परेशान रहती और जब उनकी जेठानी करमो का तानों की याद आती तो उनके मुँह का स्वाद कसैला-कसैला हो जाता। वे आस-पास के वातावरण में फटी-फटी आँखों से देखने लगतीं। कितनी देर तक ख़ामोश पड़ी रहतीं, जैसे सड़क के किनारे कोई औंधा पड़ा हुआ पत्थर हो, कोई प्यासा खेत हो।

बैसाख के शुरू के दिन थे जब गेहूँ की फ़सलें पक रही होती हैं, जाड़ा अपने आपको समेट रहा होता है, फिर गर्मी पैरों-पैर प्रवेश करती है, दो क़दम आगे एक क़दम पीछे। जब कोपलें फूटती हैं, फूल खिलते हैं, बहार का आगमन होता है। चारों तरफ जैसे रंगों की होली खेली जा रही हो। एक सुगंधि फैली होती है सारे वातावरण में। एक दिन दोपहर के बाद जब गुरु महाराज और माता गंगा जी शाम को उठे तो देखा सामने पक्षी का जोड़ा कई दिनों से लगातार एक घोंसला बना रहा था। उसमें से चीं-चीं करता हुआ एक बच्चा अपनी गुलाबी गर्दन उठाकर अपनी माँ को पुकार रहा था। इतने में चिड़िया झरोखे में से तेज़ चाल से उड़कर आई और बच्चे की चोंच में चोंच ड़ाल कर उसे दाना खिलाने लगी। वह उड़ कर जाती तो बाप उड़ कर आ जाता और बच्चे की चोंच में चोंच ड़ाल देता। कितनी देर तक बारी बारी से ख़ुराक देने का यह सिलसिला चलता रहा। जब चीख़-पुकार बंद हुई तो चिड़िया-चिड़ा एक आले में बैठकर परस्पर ताक रहे थे, जैसे संसार की सारी सहन-शक्ति उनके क़दमों में ढ़ेरी हो गई हो। गुरु महाराज उठ कर बाहर की ओर निकल गए। जब लौटे तो उन्होंने देखा माता गंगा जी पहले की तरह टकटकी लगाकर चिड़ी-चिड़े को देख रही थीं। वे भूल ही गई थीं कि इस समय गुरु महाराज दूध का सेवन किया करते थे। कढता हुआ तांबे की रंग वाली आभा का दूध भरा कटोरा पेश किया करती थीं। केसर और इलायचियों की सुगंध आती थी।

एक दिन गुरु महाराज सुबह से बैठकर हरिमन्दिर का चित्र बना रहे थे, जिस तरह का भवन वह चाहते थे तो उसकी तस्वीर बनाकर वह बाहर

निकले। नक़्शे तो वह पहले से ही तैयार कर चुके थे, लेकिन यह रंगीन चित्र उनके सपने का, बार-बार आने वाले सपने का प्रतिबिम्ब था। कलश और गुम्बदों की गोलाईयों का सुनहरा रंग, दरवाज़े और दीवारें चाँदी के रंग से रंगे। चारों तरफ़ खुले द्वार, ताकि लोग हर तरफ़ से प्रवेश कर सकें। बुनियाद नीची से नीची एक से लगातार ऊपर चढ़ती हुई मंज़िलें जिन्हें पार करके सच खण्ड में लोग पहुँच जाएँ। अमृत सरोवर के बीचों-बीच चारों तरफ़ सरोवर का शांत और शीतल जल, जैसे कोई सुर्खाब आकाश से नीचे उतर कर आया हो। उधर संगमरमर से झमझमाती परिक्रमा, सरोवर में तैर रहीं मछलियाँ। किसी मेढ़क का नामोनिशान नहीं। कहीं कोई बगुला भी कोई पंख नहीं फड़फड़ा सकता।

इस चित्र को बनाने में गुरु अर्जन देव जी को कई दिन लग गए। जब चित्र तैयार हुआ तो सब लोग देखकर वाह-वाह कर उठे। माता गंगा जी ने कुछ दिनों बाद इस चित्र को अपने कमरे की दीवार पर टांग दिया। सामने की दीवार पर चात्रिक का वह चित्र टंगा हुआ था जिसे गुरु महाराज ने लाहौर में बनाकर अपने गुरु पिता श्री गुरु रामदास जी को भेजा था। एक अकथनीय तृष्णा (प्यास) को उस चित्र में मूर्तिमान किया गया था। इसलिए कुछ दिनों से इस चित्र को देखकर माता गंगा जी को लगता कि यह तो उनका अपना चित्र है। बिलखती हुई ज़िन्दगी, तड़पते हुए नैन, कसमसाता हुआ अंग-अंग। फुरसत मिलती तो वह टकटकी लगाकर उसी तस्वीर को देखती रहतीं। लेकिन जिस दिन से दूसरी दीवार पर उन्होंने हरिमन्दिर साहिब का चित्र टांगा तो उसे देखकर माता जी को जैसे ठंडक पड़ जाती। जैसे कोई गर्मी से झुलसता हुआ शरीर ठंडे पानी में डुबकी मार ले।

कमरे की एक दीवार ख़ाली थी। चौथी दीवार पर तो दरवाज़ा और खिड़कियाँ थी। माता जी सोचतीं इस तीसरी खाली दीवार के लिए कोई चित्र होना चाहिए। बैठ-बैठ एक दिन वह गुरु महाराज के रखे रंगों से एक चित्र बनाने लगीं। यह चित्र तो एक बच्चे का था। खुला-चौड़ा, नूरानी माथा, अध-खुले, अध-मूँदे नयन बिल्कुल वही शक्ल जो कभी अपनी माता की गोद में बालक अर्जन की होगी।

माता जी सुबह से चित्र बनाने में व्यस्त थीं। कुछ खाया-पीया नहीं था। अब गुरु महाराज के लौटने का समय भी हो गया था। माता जी जल्दी तुलीका चला रही थीं। रंग भर रही थीं। इतने में गुरु महाराज उस कमरे

में आ निकले। माता जी के हाथ से तुलीका उठा कर उन्होंने चित्र की ओर देखा और चित्र को स्पर्श करने लगे। यह तो और का और चित्र निकल रहा था। माता जी ने तो एक संत का चित्र बनाया था, गुरु महाराज से मिलता-जुलता वह बालक जैसे कोई संत हो और बहादुर भी हो। ईश्वर भक्त भी हो, तलवारधारी भी हो। एक तरफ़ से देखने पर वह साधु लगता, दूसरी तरफ़ से वह सूरमा लगता। कितनी देर तक गुरु महाराज उस चित्र को सँवारते रहे, सजाते रहे। पत्नी-पति दोनों उस चित्र को बनाने में लीन हो गए थे कि उन्हें खाने-पीने की कोई सुध-बुध भी नहीं रही थी।

सेविकाएँ प्रतीक्षा कर-कर के थक चुकी थीं। गुरु महाराज के कमरे में एक ख़ामोशी थी। जब वे अपने कमरे में होते तो क्या मजाल कोई चिड़िया भी वहाँ पंख फड़फड़ा सके।

(11)

बात सत्ता-बलवंड से शुरु हुई थी। पृथी चंद के उकसाने पर जब इन दोनों साज़िन्दों ने बदतमीज़ी की थी तो गुरु महाराज ने उन्हें कीर्तन में आने की मनाही कर दी थी। अब सारी साध-संगत मिलकर कीर्तन करती थी। गुरु महाराज स्वंय सारंगी बजाते। ख़ूब समा बँध जाता। उधर सत्ता-बलवंड भूखे मर रहे थे। कोई उन्हें मुँह नहीं लगाता था।

किसी श्रद्धालु ने उन दोनों पर तरस खाकर माता गंगा जी के पास दोनों साज़िन्दों की सिफ़ारिश की। माता जी ने जब इसका ज़िक्र गुरु महाराज से किया तो उन्होंने बताया कि बलवंड ने तो यह हरकत दूसरी बार की थी, उसका दिमाग़ ख़राब हो गया था, सुमति देनी ज़रूरी थी। गुरु अंगद जी के समय एक बार भाई बुड्ढा जी ने बलवंड से किसी शब्द को सुनाने की फ़रमाइश की। उसने आगे से जवाब दिया, "भाई बुड्ढे वक़्त पड़ने पर गुरु महाराज के हुज़ूर में जब शब्द पढ़ूँगा तब सुन लेना। जिस-तिस के आगे मैं शब्द क्यों पढ़ूँ ?" यह सुनकर भाई बुड्ढा जी का मन खट्टा हो गया। पर जब गुरु अंगद देव जी को पता चला तो उन्होंने बलवंड को शब्द कीर्तन में आने की मनाही कर दी। पाँच दिन तक बलवंड भूखा मरता रहा। उसके मुँह में अनाज का एक दाना तक नहीं गया। हार कर वह बुड्ढा जी के चरणों में जा गिरा। बाबा जी ने क्षमा करने के लिए गुरु महाराज के आगे सिफ़ारिश की। उन्होंने उसे माफ़ करते हुए चेतावनी दी—"यह कभी न भूलना कि प्रेम के वश में होकर सिक्ख जब कुछ कहता है उसमें और गुरु में कोई अंतर नहीं

रहता।" गुरु महाराज के यह बोल सुनकर माता गंगा जी ने अपना मन टटोलना शुरु किया। माता जी को याद आया कि गुरु महाराज की सलाह के बावजूद माता जी औलाद का वरदान लेने के लिए भाई बुड्ढा जी के यहाँ नहीं गई थीं। इधर गुरु महाराज भाई बुड्ढा की बड़ाई करते हुए बता रहे थे कि गुरु अमरदास जी ने उन्हें 'सिक्खी की हद' कहा था। इसका अर्थ है कि किसी दूसरे ने उनसे अधिक सिक्खी नहीं कमाई थी। बाबा बुड्ढा जी की गुरु नानक के साथ हुई मुलाकात का ज़िक्र लोग इस तरह करते हैं—

एक दिन बन में भाई बुड्ढा गाय चराता था। साहिब का दीदार करते ही आगे दूध आ रक्खा और अरदास की, ग़रीब नवाज़ तेरा दरस किया है मेरा जन्म-मरण काट दीजिए जी।

बचन हुआ : तू तो अभी बालक है। तुझे यह बुद्धी कहाँ से प्राप्त हुई है। तो उसने कहा—जी हमारे गाँव में मुग़ल आकर उतरे थे। एक तो उन्होंने कच्चे खेत काट लिए और फसलें भी और सब कुछ। तो मेरे मन में आया कि इन यमदूतों और ज़ालिमों का हाथ किसी ने नहीं पकड़ा, इनका हाथ कौन पकड़ेगा ?

बाबे ने आर्शीवाद दिया—तू तो बालक नहीं। तेरी मति तो बुड्ढों जैसी है। तू तो बुड्ढा है। एकाग्र हो कर तू वाहे-गुरु का नाम ध्याएगा तो तेरा कल्याण होगा। नाम का जाप मन में करने से कल्याण होता है। जीवट (आरजा) भी बढेगा। गुरु नानक देव जी ने भाई बुड्ढा को एक वर भी दिया था—"मैं कभी तेरी आँखों से ओझल नहीं होऊँगा, तुम मुझे पहचान लोगे।"

इसका प्रमाण भी मिल गया, जब गुरु अंगद देव जी करतारपुर छोड़ कर माई विराई के घर अज्ञातवास क़र रहे थे। भाई बुड्ढा जी ने उन्हें वहीं जाकर ढूँड लिया। उन्होंने बलवंड से कहा—"रबाब बजाकर शब्द गाओ। गुरु नानक देव जी की आवाज़ सुनकर बाहर आ जाएँगे।" शब्द की धुन शुरु हुई ता गुरु अंगद देव जी बंद कमरे से बाहर निकल आए। गुरु महाराज के मुँह से भाई बुड्ढा जी की महिमा सुन कर माता गंगा जी के मन में उनके लिए श्रद्धा की एक बाढ़ आ गई। उन्होंने फ़ैसला कर लिया कि वे भाई बुड्ढा जी के दर्शनों के लिए ज़रूर जाएँगी। ऐसे महापुरुष मन की बातें बूझ लेते हैं, अन्य अनकही बातें भी सुन लेते हैं। माता जी को मुँह फाड़कर यह नहीं कहना पड़ेगा, "कृपा करके मुझे औलाद बख़्शीए।"

माता गंगा जी ने ऐसा ही किया। अगले दिन उन्होंने बहुत से पकवान

पकवाए। मिठाईयों के थाल और फलों की टोकरियाँ अपनी कुछ सहेलियों और नौकरानियों के हाथ में देकर भाई बुड्ढा जी के घर की ओर चल पड़ीं। भाई बुड्ढा जी ने गुरु घर की मवेशियों की देखभाल का ज़िम्मा अपने ऊपर ले रखा था और वे वहीं रहते थे। बस हफ़्ते में एकाध बार गुरु महाराज के दर्शन के लिए अमृतसर का चक्कर लगाते थे। माता गंगा जी एक से अधिक इक्के और रथों में सवार थीं। पकवान, मिठाईयाँ और फल नौकरानियाँ बैलगााड़ियों में ला रही थीं। गाँव की कच्ची सड़क पर उड़ती हुई धूल को देखकर दूर से ही भाई बुड्ढा जी परेशान हुए। कहने लगे "किसको इतनी मुसीबत पड़ गई है कि इतनी धूल उड़ाते हुए आ रहे हैं ?"

किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। भाई बुड्ढा जी तो एकांतवासी थे। जब माता गंगा जी का जुलूस गाँव में पहुँचा तो भाई बुड्ढा जी की प्रतिक्रिया सुनकर वे भौचक्की रह गईं। उन्हें तो लेने के देने पड़ गए थे। इन हालात में किसी की मनाकामना कैसे पूरी होती। घड़ी, दो घड़ी भाई बुड्ढा जी की सेवा में बैठ कर माता गंगा जी लौट आईं। उन्हें लगा जैसे वे ख़ाली हाथ लौट रही हों। उनका अंतःकरण साक्षी था कि उन्होंने बेकार ही एक महापुरुष के एकांत में विघ्न डाला था।

घर लौट कर माता जी ने सारी व्यथा गुरु महाराज को बताई। सुनकर उन्होंने मश्विरा दिया आप को यह नहीं करना चाहिए था। आप वर लेने गईं थी। दान माँगने वाले इस तरह की शान-शौकत का प्रदर्शन नहीं किया करते। अगर आपने अपनी मनोकामना पूरी करनी है तो आप अकेले जाईए। सिर्फ़ अपनी नौकरानी देवकी को साथ ले जाईए। अपने हाथ से हलुवा बनाकर ख़ुद भाई बुड्ढा जी के सामने उसे परोसिए। उन पर पंखा डोलाईए। जब वे हलुवा ग्रहण कर रहे हों मन ही मन उनका गुणगान कीजिए। अगर वे प्रसन्न हुए तो वे कृपालु हो जाएगें और आपकी प्रार्थना सुनी जाएगी। मनोवांछित वर पाएगीं। नम्रता और हलीमी से बढ़कर कोई आभूषण नहीं।

अगले दिन माता गंगा जी ने ऐसा ही किया। असीम श्रद्धा के साथ भाई बुड्ढा जी के सामने हाज़िर हुईं। भोजन ग्रहण करते हुए भाई बुड्ढा जी ने लाखों आर्शीवाद दिए। ख़ुशी से ख़ुद ही उन्होंने फ़रमाया—आपके यहाँ एक बालक का प्रकाश होगा, जो संत भी होगा और सूरमा भी। जिसके एक हाथ में माला होगी, दूसरे हाथ में शमसीर। जो बेसहारों का सहारा होगा, बैरीयों का नाश इस तरह करेगा जैसे मैने मुक्का कार कर अभी एक प्याज़ को तोड़ा

था।

माता गंगा जी ख़ुशी-ख़ुशी लौटीं। उन्हें लगा जैसे दूध से भरा कोई कटोरा हो, छलकती हुई कोई गागर हो, उनके क़दमों में बहारें ही बहारें हों। आठों पहर एक उन्माद गुरु भक्ति और गुरु सेवा में लीन रहतीं। अब उनका दिल कभी नहीं घबराता था। अब वे कभी उदास नहीं होती थीं। जैसे रिमझिम-रिमझिम एक झड़ी लगी हुई हो। नींद में भी उन्हें ऐसा ही लगता।

यह वह दिन थे जब उनके सरताज श्री गुरु अर्जन देव जी प्रतिदिन गुरबाणी के नए शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। काग़ज़ों के ढेर भरे जा रहे थे। 'जा मेरे आलस्य' नाम का जो शब्द गुरु महाराज इन दिनों उच्चारा करते थे, सुनकर माता जी को कण्टस्थ हो गया। इस शब्द की कुछ पंक्तियाँ उनके होंठों पर अक्सर थिरकने लगतीं।

वंवू मेरे आलसा हर पासे बेनंती।
रावऊ सहू आपनड़ा प्रभ संगि सोंहती।
संगे सोहंती कंत स्वामी दिनस रैनी रावीऐ।
सासि सासि चितारि जीवा प्रभु पेखि हरि गुन गावीऐ।
बिरहा लजाया दरस्स पाया अमिऊ दृष्टि सिजंती।
बिनवंति नानक मेरी इछ पुनि मिले जिस खोजंती।

(राग आसा, महला ५, छंत घर)

एकांत में बैठी माता जी के होंठ अपने आप मुस्कुराने लगते। बाबा बुड्ढा जी ने टोकरी में से एक प्याज़ उठाया और सामने रखी चौकी पर ऐसा मुक्का मारा कि पत्थर की तरह सख़्त प्याज़ एक चोट में ही कुचला गया। इस तरह का सूरमा उनके आँगन की रौनक़ बनने जा रहा था। उनकी कोख तो निहाल हो गई थी। आसमान से नूर बरस रहा था। धरती में से नग़मे फूट रहे थे। दुष्टों का दमन करने वाला होगा, वे अपने आप से कहतीं और फिर मन ही मन इस छवि को दुलारने लगतीं। इतनी वृद्धावस्था में भी भाई बुड्ढा जी ने एक ही मुक्के की चोट से प्याज़ को तोड़ कर रख दिया था। बैरियों का नाश करेगा। इस तरह की सौग़ात वह दुनियां को दे रहे थे। माता गंगा जी को इस तरह के सपने आठों पहर घेरे रहते।

माता गंगा जी माँ बनने वाली थीं, यह ख़बर सिक्ख संगतों में उल्लास की एक लहर बन कर घूमने लगी। सब ख़ुशी से एक दूसरे को बधाइयाँ दे रहे थे। यह अन्देशा अब टल गया मालूम होता था कि गुरु अर्जन देव जी

के बाद पृथी चंद की औलाद गुर-गद्दी संभाल लेगी। उधर पृथी चंद के बेटे मेहरबान ने भी अपने पिता की तरह ऊट-पटांग कविश्री शुरु कर दी थी। गुरबाणी को तोड़-मरोड़ कर पेश करता था। जहाँ-तहाँ शब्दों में अपनी पंक्तियाँ घुसेड़ कर मुँह-माथा बिगाड़ता रहता था।

यही नहीं पृथी चंद अपने ससुराल के गाँव हेहरी में अमृतसर की तरह छोटा सा सरोवर भी बना लिया था। दुख-भंजनी की बजाय दुख-निवारण नाम का एक स्थान भी क़ायम कर लिया था। उसका इरादा यह था कि गुरु अर्जन देव जी के जीवन-काल में वह हेहर गाँव से गुर-सेवकी चलाता रहेगा और फिर वक़्त आने पर अपने छोटे बेटे मेहरबान के साथ मिलकर गुरगद्दी संभाल लेगा।

अब यह ख़बर सुनकर कि माता गंगा जी की कोख हरी हो गई थी, पृथीए के पैरों की नीचे से ज़मीन निकल गई। जैसे अचानक बम फटने से उसका मन घायल हो गया। जैसे कश्तियाँ डुबो कर किनारे बहते हैं, कुछ इस तरह के शोक का वातावरण पृथी चंद के घर का था।

एकाध दिन के बाद उसकी पत्नी करमो ने पृथी चंद को काटना और ताने देना शुरु कर दिया। उसे लगता था जैसे उसके साथा धोखा हुआ था। सबसे बड़े बेटे के साथ शादी तो उसने इसलिए की थी ताकि वह गुरु माता कहलाए। इधर न पति गुरु बन सका था, न ही करमो को गुरु माता वाला आदर देता था। बल्कि उसका पति हार मान कर बसा-बसाया शहर छोड़कर ससुराल के गाँव में आ बैठा था। लाख यत्नों के बावजूद श्रद्धालु उस तरफ़ मुँह तक नहीं करते थे। ग़लती से कोई एक बार आ भी जाता तो फिर दुबारा आने का नाम नहीं लेता था। घर में आठों पहर कलह मची रहती, क्लेष पड़ा रहता, खाने-पीने में कोई स्वाद नहीं रह गया था। करमो को लगता जैसे रेत के तपते हुए कडाहे में वह भुन रही हो। उसका दिन-रात का चैन खो गया था। अपने पति से झगड़े मोल लेती रहती, बच्चों को कोसती रहती, उन्हें काटने को दौड़ती। इन दिनों तो उसके मुँह पर बहुत बुरी गालियाँ चढ़ गई थीं। हर किसी को बहुत गंदी गालियाँ देती रहतीं। आगे-पीछे ज़हर फैलाती रहती। करमो की समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि जिस औरत को शादी के इतने वर्ष बाद भी बच्चा पैदा नहीं हुआ था, इस उम्र में आकर भला उसे औलाद की आस कैसे लग गई थी। इसमें ज़रूर कोई भेद था। उसका घर वाला तो कहा करता था—"मेरे भाई को तो कविता करने से फुरसत नहीं,

वह नहीं कोई बच्चा पैदा करेगा।"

करमो उसे याद दिलाती—"गुरु नानक देव से बेहतर कविता कौन करेगा और वे दो बेटों के बाप थे।" पृथी चंद उसका मन बहलाने की कोशिश करता। "वे बेटे तो कविता रचने से पहले की देन हैं।"

"मैं कहती हूँ यह करामात कैसे हुई, इसका पता आप क्यों नहीं करते। मुझे तो लगता है कि इसमें ज़रूर कोई भेद वाली बात है।......... किसी ने रेख मारी है ? लगता है कहीं.......

और करमो अपने घर वाले की जान खार्ती रहती थी। रोजाना ताने देती थी। आख़िर हार कर पृथी चंद इस बात की सच्चाई की जानकारी पाने अमृतसर की ओर चल पड़ा कि आख़िर यह चमत्कार हुआ कैसे था ? उसे इस बात का भरोसा था कि गुरु अर्जन देव कुदरत के नियम में दख़ल देने वाले नहीं थे। लोगों के लिए कुछ भी कुरबान कर सकते थे, लेकिन अपने लिए किसी के आगे हाथ फैलाने वाले नहीं थे। अगर उनके भाग्य में कोई औलाद नहीं है तो न सही। वे तो माता भानी के बेटे थे। सबसे लाडले बेटे। जो भाणा मानने में ईश्वर की रज़ा में राज़ी रहने में अपनी बड़ाई समझते थे।

अमृतसर पहुँचा तो जो कहानी उसके चाटुकारों ने सुनाई उसे सुनकर उसके मन में आया कि अगर उसके पंख होते तो वह फौरन उड़कर अपनी पत्नी करमो को यह जानकारी देता। सब लोग उसके मुँह की ओर देखते रह गए। आप अभी आए और अभी किधर चल पड़े। पर उसने किसी की न सुनी और घर पहुँच कर करमो को सारी बात बताने के बाद सुख का साँस लिया।

करमो का एक रंग आता और एक जाता। पहले उसका चेहरा पीला ज़र्द हो गया फिर तमतमाने लगा।

पृथी चंद को जो कुछ कहना था कह चुका और कमरे में सर्द ख़ामोशी छा गई।

फिर इस ख़ामोशी को तोड़ कर करमो खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसी के क़हक़हे लगा रही थी। हँस-हँस कर दोहरी हो रही थी। इस बात पर मिट्टी डालो, यह भी कोई कहने वाली बात है, आख़िर करमो कमरे की कुँडी खोलकर बाहर चली गई। मैं भी सोच रही थी कि किस भेद की बात मेरा पति कमरे की कुँडी लगाकर मेरे साथ करना चाहता है, कुछ देर बाद करमो अपने आप से कह रही थी।

यह भी कोई करने वाली बात है, जिसके लिए यह भागा-भागा अमृतसर से आया है ? कुछ देर बाद करमो फिर अपने आप से कहने लगी।

लेकिन उसे लग रहा था कि अपने आँगन में उसके पैर नहीं टिक रहे थे। उसके भीतर उथल-पुथल मच रही थी। जूती पहनकर उसने अपनी पडौसिन का दरवाज़ा जा खटखटाया। कैसा संयोग कि उसकी पडौसिन अकेली थी। करमो उसके पास जा बैठी और मिर्च मसाला लगाकर जो कुछ उसके पति ने बताया था, उस औरत को बताने लगी। बहुत देर तक दोनों औरतें काना-फूसी करती रहीं। फिर करमो अपने आप बोली, "इस बात पर मिट्टी डालो, यह भी कोई कहने वाली बात है।" यह कहकर वह पडौसिन के आँगन में से निकल गई। पडौसिन अचंभे से हाथ मल रही थी।

अभी करमो की गर्मी शांत नहीं हुई थी। पडौसिन को छोड़कर वह अगले महल्ले चारंजण के घर जा घुसी। उसे तो जैसे चाँद चढ़ गया हो, "सांई ख़ैर करे।" कहकर मिली। इधर-उधर की बातें करने के बाद करमो ने दायें-बायें देखा। वह कमरों और दीवारों में से कान का निश्चय कर रही थी। फिर वह आगे बढ़कर चारजण के कान में फुस-फुसाने लगी।

"नहीं। यह कैसे हो सकता है।" चारजण कह रही थी।

"लो मैं कोई झूठ बोलती हूँ।" करमो उसे तसल्ली दिलवा रही थी।

"पहले तो गुरु वर दिया करते थे।" चारजण कहने लगी।

"अब तो गुरु वर माँगते हैं।" करमो ने मज़ाक़ किया।

मुझे कहते थे, मैंने मंत्र पढ़के हथेली पर सरसों जमा दी।

चारजण बार-बार करमो से बैठने के लिए कह रही थी लेकिन करमो ने तो यह आग दसों घरों में अभी और लगानी थी। उसके भीतर जैसे तूफ़ान मचल रहा था।

यहाँ से निकलकर वह साथ के महल्ले में साहूकारों के घर जा घुसी। वे लोग करमो की ख़ातिरें करने लगे। ठंडी-गर्म चीज़ों के बारे में पूछने लगे। करमो की इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह तो अपने मन की आग बुझाना चाहती थी। साहूकार की पत्नी को लेकर वह एकांत में बैठ गई और उसके कानों में सच फूँकने लगी। "वाह रे क़िस्मत !" साहूकार की पत्नी के मुँह से निकला। वहाँ से निकलकर करमो अगले घर पहुँची, फिर अगले महल्ले में। फिर उससे अगले महल्ले में शाम होने तक करमो ने यह कहानी सारे शहर में फैला दी। गली-गली, घर-घर में बात का बतंगड बन गया। गुरु

अर्जन देव जी को औलाद के लिए भाई बुड्ढे के आर्शीवाद की ज़रूरत पड़ी थी, यह बात पृथीए और उसकी पत्नी करमो ने सबसे कुछ इस ढंग से कही जैसे कोई भेद-भरी बात हो। जैसे यह अनर्थ हुआ हो। कहने का भाव यह था कि जिस आदमी को औलाद के लिए किसी के आगे हाथ फैलाने पड़े, वह औरों का कल्याण कैसे कर सकता है। उनका भाई गुर-गद्दी पर क़ब्ज़ा जमा कर बैठ गया था। हर सुनने वाले के मन में क्षण भर के लिए लाख संशय पैदा होने लगते।

गली-गली, घर-घर में लोग उकसावे में आकर निंदा करने लगे। हर आँगन में यही किस्सा था। उधर गोईंदवाल के लोगों को पहले से ही गिला था कि गुरु महाराज उनका शहर छोड़कर अमृतसर जा बसे थे। जो लोग सब कुछ छोड़कर गुरु महाराज के पीछे गोईंदवाल आ बसे थे, महसूस करने लगे कि उनके साथ धोखा हुआ है। व्यापार में मंदी आ गई थी। किसानों की ज़मीन की कीमत आधी रह गई थी। कारीगरों, दस्तकारों को नए काम ढूँढने पड़ गए थे। चारों तरफ़ धुँध छायी थी, बदहाली थी।

बेशक अधिकांश श्रद्धालु अमृतसर में जाकर बस गए थे। जो श्रद्धालु गोईंदवाल में रह गए थ, वे पृथी चंद और उसकी पत्नी करमो की लगाई आग को देख-देख कर परेशान होते रहते थे। करमो की कोई सहेली कहती इस तरह सजने से गुरुमाता का क्या बनेगा ?

नाईनों को बिठाकर उन्होंने कैसे बाल गुँदवाए थे। बेचारी नाईनों की तो अगुँलियाँ ही थक गई थीं। फिर जूही के फूलों की बेणियाँ। कलाइयों में चंपा के गजरे, हीरे और मोतियों से जड़े गोखरु, सच्चे सोने की कुहनियों तक चढ़ाई चूडियाँ, गले में रानीहार और झमेले, माथे पर ज़मुर्रद का टीका, पैरों में चाँदी की पाज़ेबें, कानों में झुमके, सर पर बंगाल के ढाके का रेशमी दुपट्टा, सतरंगी बूटियों से कढ़ा हुआ। उसके उपर कंधों को ढ़कता हुआ जामावार, किमख़्वाब का लाख कलियों वाला घाघरा जिसे चारों तरफ़ से नौकरानियाँ सम्हालतीं। महीन रेशमी चोली, ना पता लगता कि उघाड़ रही है।

करमो की लगाई आग के कारण लोग बढ़ा-चढ़ाकर बातें करते। सुना था--रथों, इक्के और बैलगाड़ियों का वह जुलूस लेकर निकली थीं। सबसे पहले रथ, फिर खुद पीछे इक्कों में सहेलियों की कतारें सजी-धजी जैसे आसमान से उतरी परियाँ हों। सड़कों के दोनों तरफ़ खड़े होकर लोग उन्हें देख रहे थे। जहाँ से गुज़रतीं, इत्र और फुलेल की खुश्बु लुटाती जातीं। उडते

हुए वस्त्र। हीरे-मोतियों से लदी हुईं। हाथों से ताल दे-दे कर गातीं और मुरली बजाती हुईं। रथ रोककर नाचने लगतीं। जहाँ मन आता, दोनों हाथ पकड़कर चक्कर खाने लगतीं। बेहद दर्दनाक गीत गातीं। मजाल है कि किसी को गुरबाणी की याद भी आई हो। भई और कुछ नहीं तो बाबा फ़रीद का वह श्लोक ही गा देतीं, "अजना सुत्ती कंत सियूँ अंग मुड़े-मुड़ जाए।" और रथों के पीछे बैलगाडियाँ थीं। करमो की सीखाई हुई औरत कोई ऐसा नक़्शा खींचती जैसे सब कुछ उसने अपनी आँखों से देखा हो। इस बैलगाड़ी पर तरह-तरह के पकवान लदे हैं, इन गाडियों पर मिठाईयों के थाल सजे हैं, इस गाड़ी पर मनोफल थे। इन पकवानों को बनाने में न जाने कितने रसोईए लगे होंगे। वे यह तक भूल गई थीं कि भाई बुड्ढा जी को माँस-मछली से परहेज़ है, वे वैष्णव हैं। इधर ताम्बे के पतीले, मुर्ग-मुसल्लम, क़लिए, दो प्याज़ टिक्कों और कबाबों से भरे हुए थे। घी और मक्खन से निचुडते हुए तंदूरी परांठे, तली हुई पूरीयाँ और लूचियाँ। मिठाईयों का तो कोई अंत ही नहीं था। खोए की मिठाईयां और रंग-बिरंगी बर्फियाँ, अनरसे और बालूशाहीयाँ, मखाने और पिन्नीयाँ, मोतीचूर के लड्डू और जलेबियाँ। बेचारे भाई बुड्ढा जी थोड़े से गुड़ के बग़ैर कोई मीठी चीज़ मुँह से नहीं लगाते थे। और उधर फलों के टोकरे थे। दूर-दूर के सेब, संतरे, केले, अंगूर, अनार और अमरूद। करमो की एक और परिचित कह रही थी। दूर से लगता था जैसे कोई लश्कर चढ़ आया हो। धूल और मिट्टी का गुब्बार ऊँचा हो रहा था। घोड़ों की हिन-हिनाहट, रथों और बैलगाडियों की गड़गड़ाहट। भाई बुड्ढा जी के गाँव के कुत्तों ने भौंकना शुरु कर दिया, गाय-भैंसें खूँटे उखाड़ने लगीं। भेड़ बकरियों के झुण्ड भयभीत होकर कभी इधर जाते, कभी उधर, चैन से नहीं बैठ पाते थे।

उस गाँव में जहाँ शांति का राज रहता था। सुबह-शाम जहाँ कोई ऊँचा नहीं बोलता था। सोई ख़ामोशी को उस दिन झटके दिए जा रहे थे। करमो के मुँह लग़ी शहर की नाईन हाथ मल-मल कर कह रही थी, "मर्द औरतें अपनी छतों से बाहर निकलकर ऐडियाँ उठा-उठाकर घबराहट से कच्ची सडक पर उड़ती हुई धूप को देख रहे थे। किसी को कुछ दिखाई देता तो किसी को कुछ। धडकते हुए सीने, फूली हुई साँसें। ऐसे तो तुर्कों या पठानों के लश्कर आते हैं।"

"यह किस पर आफ़त पड़ी है, कौन इतनी जल्दी में है।" भाई बुड्ढा जी के मुँह से निकला। यह कौन था जो उनका अमन भंग कर रहा था। उनके

सुख चैन में दख़ल दे रहा था। जब जुलूस उनके दरवाज़े पर पहुँचा तो भाई बुड्ढा जी ने किसी को मुँह नहीं लगाया। किसी पकवान, मिठाई या फल की ओर नज़र उठाकर नहीं देखा। गंगा बीबी का मुँह उतर गया और वह ज्यों की त्यों लौट आई। अब करमो की कोई नज़दीकी सहेली कुफ़र तोड़ रही थी।" उधर जब घर पहुँची तो पति ने उन्हें मुँह नहीं लगाया। उल्टा लेने के देने पड़ गए। इस तरह बेटे मिलने लगें तो लोग अपने-अपने घर में फ़ौजें इक्ट्ठी न कर लें।

जितने मुँह, उतनी बातें। जहाँ गली-गली, घर-घर में गुरु महिमा होती थी, करमो और पृथी चंद की लगाई आग से गुमराह हुए लोग दिन-रात निंदा में लगे रहते।

जितनी वे निंदा करते थे, उधर गुरु महाराज की शोभा उतनी ही बढ़ रही थी। मसंदों ने धन-उगराह कर गुरु के गोलक के लिए भेजना शुरु कर दिया। अमृत सरोवर की बड़ाई सुनकर लोग क़तारें बाँधकर स्नान करने के लिए अमृतसर आ रहे थे। दीवान सजते, कथा-कीर्तन होता, लोग ख़ुशियों से अपने-अपने घर लौटते। कईयों ने तो अमृतसर में ही रह जाने का फ़ैसला किया था और शहर फैलता-फैलता न जाने कहाँ तक पहुँच गया था।

किसी की मजाल नहीं थी कि करमो और पृथी चंद के फैलाए ज़हर का गुरु महाराज से ज़िक्र करे, पर उनसे कौन सी बात छुपी थी, वे घट-घट की बात जानते थे। लोग जो-जो कुफ़्र बोलते थे, उपद्रव खड़े करते थे, गुरु अर्जन देव जी को सभी बातों का ज्ञान था। फिर भी उन्होंने पृथी चंद और उसके परिवार के प्रति अपना मन कभी मैला नहीं किया। हाँ, एक बात का ध्यान वह ज़रूर रखते थे कि इस कोढ़ से माता गंगा जी किसी तरह बची रहें। दम घोंटने वाला, गला सूखाने वाला जो वातावरण पृथी चंद ने चारों तरफ़ बनाया हुआ था, उससे गंगा माता जी को दूर रखा जा रहा था। अमृत सरोवर में स्नान, गुरबाणी का पाठ और साध-संगत में जुड़कर कीर्तन सुनना, यही उनका नित्यनेम बन गया था। जब मन में आता तो वे सैर करने के लिए गुरु के बाग़ में चली जातीं। सेविकाएँ साये की तरह उनके आगे-पीछे लगी रहतीं। उनके आराम का पूरा-पूरा ख़्याल रखतीं। कभी उनके हाथ सहलाए जाते, कभी उनकी मालिश होती। दिन में जब उनका मन करता तो सेविकाएँ मिलकर उनके लिए लोकगीत गातीं, कभी उनका मन बहलाने के लिए नाचने लगतीं। इसी तरह दिन और हफ़्ते बीत रहे थे। माता जी खुश थीं, बहुत ख़ुश।

(13)

उस दिन माता गंगा जी खीझ उठी थीं। "हमें गुरिआई क्या मिली, सारा सुख-चैन छिन गया। उधर से भाई बुड्ढा जी ने तिलक लगाया, इधर फ़ैसला हुआ कि हमें गोईंदवाल के लिए तुरंत सफ़र शुरु करना है।"

"वह तो इसलिए क्योंकि गुरु पिता जी का फ़रमान था।" अपनी पत्नी को उदास देखकर गुरु अर्जन देव समझा रहे थे।

"रामदासपुर उनका अपना शहर है, ख़ुद का बसाया हुआ ?"

"लेकिन उनकी मरज़ी गोईंदवाल जाकर ज्योति-ज्योत समाने की थी। तो फिर इधर हमारे महलों पर जेठ जी ने पहरा कर लिया था।"

"बेशक तुम्हारा कहना ठ़ीक है, लेकिन कोई ज़्यादती करने पर आ जाए तो उसको मुँह क्या लगाया जाए।"

हम गोईंदवाल गए तो हमारे पीछे-पीछे वह लोग भी वहीं पहुँच गए। इसलिए कि गुरु पिता की याद में आयोजित दीवान में उन्हें पगड़ी बाँधी जानी थी। वह सबसे बड़े बेटे हैं।

"पगड़ी उन्हें बाँधी नहीं गई, भरी संगत में भाई बुड्ढा जी के हाथ से छीनकर अपने सर पर रख ली थी।"

"वैसे यह उनकी जल्दबाज़ी थी। मैंने भाई बुड्ढा जी से ख़ुद कह रखा था कि बेशक गुरिआई हमें बख़्शी गई है, बड़ा भाई होने के नाते पगड़ी पर भ्राता जी का ही अधिकार है।"

"ताकि जो भेटें श्रद्धालु देवें, उन्हें भ्राता जी इक्ट्ठी कर सकें, उस शाम ही गुरसिक्खों ने बारी-बारी से अनगिनत वस्त्र भेंट किए थे।"

"पैसा तो हाथों की मैल होता है, चढ़ावे की रक़म पर कभी आँख नहीं रखनी चाहिए।"

"तन तो ढकना पड़ता है। कल को मैं माँ बन जाऊँगी।"

"तुझे किसी चीज़ की कमी नहीं। ईश्वर की हम पर कृपा है।"

"गोईंदवाल से हम अमृतसर आ गए.......... क्योंकि यहाँ हमें हरिमन्दिर बनवाना है।"

"करमो और उसका ख़ानदान भी यहाँ आ धमका है। गुरु के महलों में गुरु जी ख़ुद नहीं रह सकते। हम दोनों एक कोठरी में पड़े हैं।"

"बेचारा अपने ससुराल के गाँव हेहर चला गया था। ढेरों धन ख़र्च करके उसने ठाठ-बाठ बनाया, पर उनकी बात नहीं बनी।"

"न ख़ुद चैन से बैठता है, न हमें बैठने देता है।"

"तुझे अपने जेठ के बारे में इस तरह नहीं सोचना चाहिए।"

"बेशक लेकिन इन हालात में रहा भी तो नहीं जाता, मेरी साँस घुटने लगती है। हर वक्त मन में कोई न कोई अन्देशा लगा रहता है।"

"तो फिर कहीं और निकल चलते हैं।"

"अब कहाँ जाएगें ? कितने महीने तो आप माझे के दौरे पर लगा आए हैं।"

"उस दौरे में सरहाली, भैणी, जिसका नाम हमने चोला रखा, तरनतारन, करतारपुर आदि कई स्थानों पर गुरसिक्खों से मिलने का मौक़ा मिला।" तरनतारन के सरोवर को देखकर नूरउद्दीन के पेट में शूल उठने लगे। हमने जो ईंटें पकाई थीं, वह उसने अपनी सराय के लिए हथिया लीं। लेकिन मैंने उसे मुँह नहीं लगाया। इतना ज़रूर है कि जहाँ की चीज़ है, वहीं लगेगी।

आपकी तो नीति है कि कोई एक गाल पर थप्पड़ मारे तो आप दूसरी गाल भी आगे पेश कर देंगे।

पृथी चंद की ओर से रोज़ की टोका-टाकी और बुड़बुडाहट से गुरु महाराज ख़ुद भी परेशान थे। शांति और एकांत के अभिलाषी, आजकल दिन-रात बाणी का उच्चारण कर रहे थे, जिसके पढ़ने और सुनने से मन को बेहद शांति मिलती थी।

इस तरह की रचना करने के लिए उन्हें ढेरों फ़ुरसत और मानसिक अमन-चैन की आवश्यकता थी।

अब वे चाहते थे कुछ दिन के लिए अमृतसर छोड़कर कहीं चले जाएँ ताकि पृथी चंद अपनी मर्ज़ी से गुरु सेवकी चला ले। लेकिन इतना दूर नहीं कि शहर में निर्माण आदि के जो काम जारी थे, उनके बारे में कोई सलाह-मश्विरा और पूछ-ताछ न की जा सके।

इससे भी ज़रूरी यह कारण था कि माता गंगा जी आस-औलाद वाली थीं, गुरु अर्जन जी चाहते थे कि होने वाले बच्चे की माँ उस तरह के वातावरण से दूर रहे, जिस तरह का माहौल अमृतसर में आठों पहर पृथी चंद ने बनाए रखा था।

अब उन्होंने वडाली जाने का फ़ैसला किया। वडाली गाँव अमृतसर से कोई दूर भी नहीं था, न ही इतना नज़दीक था कि पृथी चंद का पैदा किया हुआ कोढ़ उन्हें रोज़ाना परेशान करे।

"लेकिन सुना है कि वडाली में पानी की बहुत कमी है।" माता गंगा जी ने एतराज़ किया। "इसीलिए तो मैं सोच रहा हूँ कि हमारा वहाँ ज़ाना बेहतर रहेगा। वडाली में कुआँ खुदवाया जा सकता है।" गुरु महाराज ने भी वडाली में पानी की कमी के बारे में सुन रखा था।

"तो आप वहाँ अब कुआँ खुदवाने जा रहे हैं," माता गंगा जी ने हँस कर कहा। वे अपने सरताज की रज़ा में राज़ी थीं। वडाली जाने का तैयारियाँ शुरु कर दीं।

उधर पृथी चंद कई दिनों से इलाक़े के मालगुज़ारी के हाकिम सुलही ख़ान के साथ जोड़-तोड़ कर रहा था। सबसे यही कहता फिरता कि उससे बे-इंसाफ़ी हुई है, गुरुवाई भी छीनी गई है और उसे ख़ानदानी जायदाद से भी बेदख़ल कर दिया गया है। उसने सुलही ख़ान को रिश्वतें खिलाकर उसके साथ गहरे रिश्ते बना लिए थे। एक दिन शराब पीते वक़्त सुलही ख़ान ने अपने सीने पर हाथ रख के पृथी चंद को वचन दिया कि ज़रूरत पड़ने पर वह न केवल अमृतसर पर छापा मारके उसके छोटे भाई से गुर-गद्दी छीनकर उसे दिलवा देगा, बल्कि वह सिपाही भेजकर अमृतसर में पहरा बिठा देगा, कोई गुर-सिक्ख गुरु अर्जन देव के दर्शनों के लिए नहीं जा सकेगा।

सुलही ख़ान ने यह सब कहा ही नहीं, कुछ दिनों के बाद उसे पूरा करने की तैयारियाँ भी शुरु कर दीं। अब जब गुरु महाराज गंगा जी के साथ वडाली जा रहे थे तो पृथी चंद ने अफ़वाह फैला दी कि वे सुलही ख़ान के छापे से डरकर शहर छोड़ कर खिसक रहे हैं।

"गुरु बना फिरता है। जो आदमी अपनी और अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सकता, वह अपने श्रद्धालुओं की क्या रक्षा कर सकेगा ? औलाद के लिए भाई बुड्ढा जी की शरण में गया, अब सुलही ख़ान का नाम सुनकर जनाब शहर छोड़कर ही भाग गए हैं। न अमृत सरोवर ही उन्हें बाँध सका है, न हरिमन्दिर जिसकी चिनाई के लिए इतनी परेशानियाँ झेली जा रही हैं।" पृथी चंद जहाँ बैठता इसी तरह का ज़हर घोलता रहता।

(14)

यह ख़बर जब अमृतसर में गुरु महाराज के नज़दीकी गुरसिक्खों को मिली तो उनमें दहशत सी पैदा हो गई। वे सोचने लगे कि अगर गुरु अर्जन देव जी अमृतसर छोड़कर चले गए तो उन अनगिनित श्रद्धालुओं का क्या बनेगा, जो दूर-दूर से अपना घर-बार बेचकर गुरु की नगरी में आ बसे थे।

और जिस तरह का प्रचार पृथी चंद कर रहा था, यह देख कर तो उसकी हिम्मत और भी बढ़ जाएगी। उस जैसा आदमी जो कुछ भी कर गुज़रे वही थोड़ा है।

यह फ़ैसला हुआ कि कुछ अग्रणी गुरसिक्ख भाई बुड्ढा जी के नेतृत्व में गुरु महाराज के यहाँ हाज़िर हों और उनसे अपना इरादा बदलने के लिए विनती करें।

इस प्रतिनिधिमण्डल में भाई मंझ जी भी थे। भाई मंझ किसी समय सखी सरोवर के उपासक थे, जिनके बारे में गुरु अर्जन देव जी ने ख़ुद फ़रमाया था।

मंझ प्यारा गुरु को, गुर मंझ प्यारा।
मंझ गुरु का बोहिथा, जग लंघण हारा।

भाई मंझ जी को इतना ऊँचा रुत्बा प्राप्त था। इस महानता के लिए उन्हें कई सालों तक मेहनत करनी पड़ी थी। कहते हैं, "एक बार मंझ जी ने गुरबाणी सुनी तो वे मंत्रमुग्ध हो गए। सखी सरोवर की उपासना छोड़कर गुरु महाराज के चरणों में आ गिरे। यही विनती कि मुझे अपना सिक्ख बना लीजिए। गुरु महाराज ने उसे समझाया, सखी सरोवर की राह आसान है, सिक्खी का रास्ता कठिन है। सिक्ख बनने के लिए तन, मन, धन कुरबान करना पड़ता है। मंझ तलवार की धार पर चलने के लिए तैयार था। जो कीमत देनी पड़े वह देगा।

घर लौट कर मंझ ने पहला काम यह शुरु किया कि पीरख़ाना गिराकर धर्मशाला बनानी शुरु की। गाँव में बड़ी बदनामी हुई। लोगों ने उसे डराया कि उसे सखी सरोवर की बददुआ लगेगी। मंझ को कोई परवाह नहीं थी। उन दिनों सखी सरोवर की बड़ी मान्यता थी। उसके अनुयायिओं ने मंझ के घर आग लगा दी। उसके मवेशियों को एक-एक करके ज़हर देना शुरु कर दिया। मंझ ने परवाह न की। गुर भक्ति पर क़ायम रहा। मंझ कल तक गाँव का मुखिया था, अब हालत यहाँ तक पहुँच गई थी कि वह घास खोदकर बेचता और गुज़ारा करता। फिर भी गुर भक्ति में लीन, आने-जाने वालों की सेवा करके ख़ुश रहता। वह और उसकी पत्नी दोनों। एक दिन कोई मेहमान आया जिसे कुछ रक़म दरकार थी। भाई मंझ के पास फूटी कौड़ी तक नहीं थी, लेकिन ज़रूरतमंद की ज़रूरत पूरी करना ज़रूरी था। उसने अपनी जवान बेटी को बेचकर मेहमान का काम चलाया। ऐसे ही किसी और की

ज़रूरत पूरी करने के लिए मंझ को अपनी पत्नी गिरवी रखनी पड़ी। अब भाई मंझ फुरसत पा गए थे। छड़े-छांट थे गुरु महाराज के हाज़िर हुए और लंगर की सेवा में दिन-रात जुट गए। बर्तन माँजते, जंगल से लकडियाँ बिन कर लाते, और दौड़ भाग करते, आठों पहर गुरु की सेवा में जुटे रहते। एक बार गुरु महाराज के दर्शन हुए तो उनके पूछने पर मंझ ने बताया, वे लंगर की सेवा करते हैं और लंगर में ही भोजन करते हैं।

"यह ता मज़दूरी हुई," गुरु महाराज के मुँह से निकला। भाई मंझ जी ने उसी क्षण से लंगर में भोजन करना छोड़ दिया। रात को चक्की पीसते और जो कमाई होती, उससे अपना पेट पालते। या जंगल से दो गठरी लकडियाँ ले आते। एक गठरी बेचते और दूसरी गुरु महाराज को भेंट करते; लंगर की सेवा पूर्वत जारी थी। जंगल में से हर रोज़ लकडियाँ काट कर आ रहे थे, क़हर की आँधी शुरु हो गई, अचानक भाई मंझ एक कुएँ में जा गिरे। पर फ़ौरन संभलकर लकडियों के गठ्ठर को सिर पर उठा लिया और पानी में खड़े हो गए। गुरु महाराज इतने दिनों से भाई मंझ का इम्तहान ले रहे थे, कुछ सिक्खों के साथ जंगल में पहुँचे और भाई मंझ के लिए फ़ौरन एक रस्सी लटकाई गई। भाई मंझ ने पहले गुरु के लंगर के लिए इक्ट्ठी की गई लकडियों के गठ्ठर को उपर उठा कर लंगर में भेजा और फिर ख़ुद कुएँ से बाहर निकले।

उनकी यह श्रद्धा देखकर गुरु महाराज ने उन्हें सीने से लगा लिया और फ़रमाया, "आप की तपस्या सार्थक हुई।" इस प्रतिनिधिमण्डल में दूसरे गुरसिक्ख भाई बहलो जी थे। वे भी सखी सरोवर के चेले थे। एक बार गुरबाणी सुनकर गुरु भक्ति की ऐसी चाट लगी कि घर-बार छोड़कर गुरु के चरणों में आ टिके। अमृत सरोवर आदि के लिए ईंटें तैयार करने का काम अपने ज़िम्मे ले लिया था। किसी ने उनसे कहा कि ईंटों के भटठ्ों की आग में अगर गोबर मिला दिया जाए तो ईंटें और भी मज़बूत होती हैं। भाई बहलो ने शहर भर से गोबर इक्ट्ठा करके अपने तपाए भटठ्ों में ड़ालना शुरु कर दिया। इस तरह ईंटों का रंग लाल निकल आया था। यह देखकर गुरु महाराज ने भाई बहलो को बुलाया, अपनी खुशी प्रकट की और कहा—"भाई बहलो सबसे पहलो।" भाई बहलो का असली नाम बहलोल था।

तीसरे गुरसिक्ख थे भाई सालो जी जिनके हवाले गुरु की गोलक रहती थी, जहाँ बैठकर वे गोलक हिसाब करते थे। उस स्थान को भाई सालो का

टिब्बा कहकर याद किया जाने लगा। हाथ के सच्चे थे। गुरु घर का लेन-देन, रोकड़ खाता वही रखते थे।

ऐसे ही भाई गंगा जी राम थे। जब उन्हें गुरु घर के लंगर के मस्त होने की ख़बर मिली तो उन्होंने सौ मन बाजरा जिसे वह बेचने के लिए ले जा रहे थे, लंगर में लाकर डाल दिया। गुरु महाराज ने अनाज को इस शर्त पर क़बूल किया कि बैसाखी वाले दिन जब वे भाई गंगा जी को क़ीमत देने लगे तो उन्होंने गुरु के चरण पकड़ लिए। कहने लगे, "मेरे धन भाग थे कि मुझे सेवा का अवसर मिला। यही विनती है कि ऐसे अवसर और बख़्शे जाएँ।" भाई गंगा राम गुरु घर के अनन्य सेवक हो गए।

लाहौर से भाई बुद्धु जी भी आए थे। उनका पहला नाम भाई साधू था। गुरु घर से बड़ी प्रीति रखते थे। उनके अपने ईंटों के भट्ठे थे। एक बार उन्होंने भट्ठे की ईंटें तपायीं, अपने घर में संगत को आने का निमंत्रण दिया, लंगर का प्रबंध किया और अरदास कराई कि उनकी ईंटें ठीक से पकें, लेकिन जब लंगर परसा जा रहा था तो एक सिक्ख भाई लक्खू पटोलिया उधर से आ निकला। फटे-पुराने कपड़े, बुरा हाल। बाहर बैठे चौकीदार ने इस तरह के गँवार दिखने वाले आदमी को हवेली के भीतर जाने से रोका। जब उसने ज़िद की तो चौकीदार ने भीतर से किवाड़ बंद कर लिया। यह देखकर भाई लक्खू पटोलिया जी ने बाहर से आवाज़ देकर कहा कि ईंटें कच्ची रहेगीं।

और सचमुच ईंटें कच्ची रह गईं। यह कैसे हो सकता था, साध-संगत ने अरदास की थी। अरदास कैसे व्यर्थ जा सकती थी ? भाई बुद्धु जी गुरु महाराज के सामने हाज़िर हुए। गुरु महाराज ने उनकी विनती सुनी और फ़रमाया, आप के चौकीदार ने एक ग़रीब गुरसिक्ख को आने से रोका। इसलिए उसके कहने के अनुसार ईंटें कच्ची ही रहेंगी। लेकिन आपकी ईंटें पक्की ईंटों के भाव बिकेंगी।

ईश्वर का संयोग उन दिनों लगातार बारिश हो रही थी। इतनी बारिश हुई थी शहर के क़िले की दीवार कौ फ़ौरन ठीक करना ज़रुरी था। भाई बुद्धु जी की कच्ची ईंटें पक्की ईंटों के भाव ख़रीद ली गईं। यह देखकर भाई बुद्धु घर-बार छोड़कर गुरु महाराज का हो गया।

आठों पहर सत्‌गुरु के चरणों में हाज़िर रहता। उधर भाई आदम जी थे। उस साल अमृतसर में बड़ी सर्दी पड़ी। सब लोग सर्दी से ठिठुर रहे थे।

इधर कड़ाके की सर्दी, उधर बारिश और तूफ़ान। भाई आदम जी ने संगतों के ठहरने के स्थान पर लकडियाँ पहुँचाकर अलाव तपा दिए, रात-रात भर ख़ुद हाज़िर रहकर किसी अलाव को बुझने ने देते। नई-नई लकडियाँ डालते रहते। संगतों ने गुरु महाराज के सामने भाई आदम जी की प्रशंसा की। गुरु अर्जन देव जी ने उन्हें बुलाकर कहा—"आपकी सेवा प्रवान हुई। जो चाहें वही वर माँगिए। भाई आदम जी के घर में कोई संतान नहीं थी लेकिन इस बुढ़ी अवस्था में यह कैसे मुमकिन था ? चूँकि गुरु महाराज वचन दे बैठे थे। वे कहने लगे, अपने खाते में से एक बेटा आपको दिया। गुरु घर से इतना प्यार रखने वालों की विनती कैसी अनसुनी हो सकती थी? लेकिन उधर माता गंगा जी तो वडाली के लिए चल भी चुकी थीं। गुरु महाराज ने वचन दिया कि वे अमृतसर लौट आएँगे। थोड़ी देर के लिए वडाली जाना ज़रुरी था। फिर वडाली कौन सी दूर थी।

(15)

भाई बुड्ढा जी जान-बूझ कर पीछे रह गए थे। बाकी गुरसिक्ख गुरु महाराज से लौटने का वचन लेकर चले गए।

जब एकांत मिला तो भाई बुड्ढा जी ने गुरु महाराज से सवाल किया, "आपका वडाली जाना ज़रुरी है।"

ज़रुरी इसलिए है क्योंकि वहाँ लोगों को पानी की बड़ी तंगी है। बेचारी औरतें पानी के लिए कोसों पैदल चलके पानी भरने जाती हैं।

"यह ज़िम्मेदारी तो मुगलों की होनी चाहिए। कल शेरशाह ने इतना लंबा राजमार्ग बनवाया था। सड़क की दोनों तरफ़ पेड़ लगवाए। जगह-जगह मुसाफ़िरों के आराम के लिए सराएँ बनवाईं, कुएँ खुदवाए।"

"अकबर का ध्यान ज़्यादा अमन-ईमान क़ायम करने में लगा हुआ है। वह चाहता है कि मुग़ल राज्य की बुनियादें पक्की हो जाएँ। लोगों की भलाई के काम लोगों को ख़ुद ही करने पड़ेंगे।"

"ठीक यह समस्या सिख धर्म की है। अपनी जत्थेबंदी को मज़बूत करने का यही ठीक समय है, नहीं तो पृथी चंद जैसे लोग इसकी जड़ों को खोखला करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे।"

"हमारे भाई साहब को तो गुर-गद्दी का लालच खाते रहता है।"

"बेशक। लेकिन उसे यह नहीं मालूम कि गुर-गद्दी बड़ी क़ुरबानी माँगती है। यह गली बड़ी तंग हो सकती है।"

"जिन मुग़लों से वह दोसतियाँ गाँठ रहा है, उनके रंग-ढंग तो मुझे अच्छे नहीं दिखते। हालाँकि बाबा जी उन्हें ख़ुद हिन्दुस्तान की बादशाहत बख़्श गए हैं।"

"किसी को तो बस राज्य चाहिए, बेशक कोई तुर्क हो, कोई मुग़ल हो, कोई पठान हो।"

"यह राज-पाठ उनके हिस्से में ही क्यों लिखा गया है।"

"जब तक राज-पाठ तलवार के ज़ोर से क़ायम होते हैं, तो क्या आत्मिक शक्ति को उनका पानी भरना होगा ?"

"यह बात नहीं। आत्मिक शक्ति अपने आप में एक शहंशाहियत है।"

"इसकी समझ गुरु-कृपा के साथ आती है। तो फिर इंसान दो तलवारें बाँध ले एक मीरी की एक पीरी की। ऐसा लगता है कुछ देर बाद हमें ऐसा ही करना पड़ेगा।"

"हाँ, क्षितिज पर घनघोर काली छटा छा रही है। हमारे भाई साहब को यह सब कुछ नहीं दिखता।"

"उनकी आँखों पर तो पटट्ी बँधी है, अंधकार की, लालच की, संकीर्ण दृष्टि की पटट्ी।"

"अपने घर को ख़ुद ही आग लगा रहा है।"

"हमने घर में आग लगाई है। कोई आए तमाशा देखे।"

"हमारा भाई पृथी चंद वातावरण को इतना दूषित बनाए रखता है कि मैंने गंगा जी से कहा कि वे वडाली जाकर अमन-चैन की साँस लें।

"आप जब करतारपुर गए थे तो श्री चंद के साथ भी तो पृथी चंद के कोढ़ का ज़िक्र आपने किया होगा।"

"हाँ, वह भी परेशान थे।"

"और सुना है कि पृथी चंद इधर लोगों से कहता फिरता है कि मैं श्री चंद और मोहन की लड़ाई लड़ रहा हूँ। गुर-गद्दी बड़े साहबज़ादे को मिलनी चाहिए।"

"बेशक, इसीलिए तो मैनें दोआबे का दौरा किया, मांझे का दौरा किया अब वडाले जा रहा हूँ। अगर उसे कोई गुरु मानने के लिए तैयार है तो वह अपनी गुरु-सेवकी तैयार कर ले।"

"मुझे तो उनसे बड़ा ड़र लगता है, वे गुरबाणी को तो तोड़-मरोड़ कर गुरसिक्खों के सामने पेश कर रहे हैं, उन्हें गुमराह कर रहे हैं। पहले बाप

कविश्री करता था, अब बेटे ने भी शुरु कर दी है। पृथी चंद तो लाहौर में पीलू, कान्हा और झज्जू जैसे लोगों से मिलता रहता है।"

"बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है। गुरु बाबा नानक ने खुद ही इस तरफ़ ध्यान दिया था। बहुत ही गुरबाणी का संग्रह पोथियों में भी हो चुका है।"

"शुरुआत कर देनी चाहिए। जब सारी गुरबाणी इक्ट्ठी हो जाएगी, फिर अगले क़दम के बारे में सोचा जा सकता है।"

"गुरु बाबा नानक तो एक तरफ़ नागों के देश में गए थे, दूसरी तरफ़ मक्का, मदीना और बग़दाद पहुँचे थे। उधर श्रीलंका और लक्ष्यद्वीप, इधर मानसरोवर।"

"उस चप्पे-चप्पे की यात्रा करनी होगी, जहाँ-जहाँ गुरु महाराज पधारते रहे हैं।"

"बेशक गुरबाणी के साथ दूसरे संतों फ़कीरों की बाणी भी इक्ट्ठी की जा सकती है, जिसके आशय गुरसिक्खी से मेल खाते हों, जैसे बाबा फ़रीद, भक्त कबीर, नामदेव, रविदास जी जैसे भक्त।"

"यह तो बड़ा ज़िम्मेदारी का काम होगा। किस-किस को रखेंगे, किस-किस को छोड़ेंगे।"

"इसका फ़ैसला भी हम मिलकर इक्ट्ठे करेंगे। पहले बाणी इक्ट्ठी हो जानी चाहिए। लगता है आप की मंशा एक ग्रंथ का संपादन करना है।"

"हाँ, इन दिनों गुरसिक्खों के पास कई तरह की पोथियाँ हैं, लेकिन जरूरत एक महान ग्रंथ की है जिसमें ईश्वर भक्ति से जुड़े भक्तों की बाणी गुरु साहिबान की बाणी के साथ संकलित की जाए।"

"सत्य वचन। लेकिन यह काम अभी से शुरु करना होगा या हरिमन्दिर की नींव खुदने के बाद ही इस महान काम को हाथ में लिया जाए ?"

"हम सोच रहे हैं कि इधर हरिमन्दिर तैयार हो उधर इस ग्रंथ को हरिमन्दिर में स्थापित कर दिया जाए। भाई गुरदास जी आपकी मदद कर सकेंगे। लेकिन आपकी देख-रेख में ही यह योजना पूरी होगी।"

"हुज़ूर का हाथ हमारे सर पर होना चाहिए।"

"वक़्त थोड़ा है और काम बहुत करना है। इसके लिए अभी से कमर कसनी होगी।"

"सतगुरु वडाली से लौट आएँ, फिर इस योजना की रुपरेखा तैयार की जा सकती है।"

"समय कम है, जो ज़िम्मेदारी पूरी हो जाए वही बहुत है। मुझे तो क्षितिज पर घनघोर काली घटाएँ दिख रही हैं।"

"गुरु महाराज के चरण स्पर्श करके लौटते समय भाई बुड्ढा जी चिंता में डूब गए। गुरु महाराज ने दूसरी बार इस तरफ़ इशारा किया था। उनके मुखाअरविंद से इस तरह के शब्द निकलते तो एक भयानक से दृश्य चिंतित हो जाता। भाई बुड्ढा जी की नज़रों के आगे वो दृश्य तैरता रहता। उनके कानों में भयंकर आवाज़ें गूँजने लगती, इतनी ऊँची कि भाई बुड्ढा जी अपने कानों में अँगुलियां ड़ाल लेते और आँखें मूँद लेते।"

(16)

उस दिन लाहौर में चारों तरफ़ एक भयंकर ख़ौफ़ (त्रास) छाया था। बादशाह अकबर लाहौर आ रहा था। कुछ दिनों के लिए शाहाबाद में रुका तो उसे ख़बर मिली कि उसके ख़जाने के वज़ीर ख़्वाजा शाह मंसूर मिर्जा हकीम से मिलकर पंजाब पर हमला करने की योजना बना रहा था। उसके साथ और दरबारी हकीमुल-मुल्क और क़ासिम ख़ान भी मिल गए थे। यह गुप्त सूचना अकबर को उसके सेनापति मानसिंह ने दी। मानसिंह के हाथ में कुछ ऐसे ख़त भी लगे थे जिससे मंसूर और उसके साथियों की गद्दारी साबित हो चुकी थी। यह सुनकर अकबर ने मंसूर जैसे क़ाबिल मंजी को एक बबूल के पेड़ से लटका कर सभी अहलकारों के सामने फाँसी लगवा दी। अकबर का ख़्याल था कि ऐसा करने से बाक़ी दरबारियों को भी सबक़ मिल जाएगा।

और यही हुआ। मंसूर को सज़ा देकर अकबर अंबाला और सरहिंद होता हुआ जब पायल नाम के शहर में पहुँचा तो उसे ख़बर मिली कि मिर्ज़ा हकीम का लश्कर वापस चला गया था। देश पर आई बला टल गई थी।

पृथी चंद जो पिछले कुछ दिनों से यह सोचकर लाहौर आया था कि वह अपना मुक़द्दमा सरकारी दरबार में पेश करेगा, सब को कहता फिरता था, "ऐसा ही होना चाहिए। गद्दारों का यही इलाज है जो अपने मुल्क के हाकिम से धोखा करते हैं, उन्हें ऐसी सज़ा देनी चाहिए कि शेष सभी को भी सबक़ मिले।"

उसने मन में पक्का इरादा किया था कि पहली फ़ुर्सत में वह लाहौर के गवर्नर सईद ख़ान से मिलकर उसे गुरु अर्जन देव के खिलाफ़ भड़काएगा। उसने तो शिकायतों का ढेर इक्ट्ठा किया हुआ था। उधर अकबर चाहता था कि वह अटक के क़िले को मज़बूत करके अफ़ग़ानों का बार-बार हिन्दुस्तान

में हमला रोके। इसलिए उसने फ़ैसला कर लिया कि कुछ वर्षों के लिए वह लाहौर को अपनी राजधानी बना लेगा। वक़्त आने पर उसने ऐसा ही किया। चौदह वर्ष तक अकबर लाहौर में रहा। इस दौरान वह कश्मीर, काबुल और सिन्ध को पूरी तरह से क़ाबू करने में कामयाब हुआ।

चाहे वह कितना ख़ुदा परस्त था, हिन्दू और मुसलमानों के सहअस्तित्व का हामी था। लेकिन अपनी सरकार के लिए वह किसी भी क़िस्म का ख़तरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं था। जो बादशाह अपने विश्वासपात्र ख़ज़ाना-मंत्री को फ़ौरन फाँसी पर लटका सकता था, वह किसी दूसरे को कैसे माफ़ कर सकता था। ख़ास तौर पर पंजाब में जहाँ वह अमन-अमान चाहता था।

पृथी चंद की शिकायतें कुछ इस तरह की थीं; मेरा भाई अपने आप को सच्चा पादशाह कहता है, घोड़े की सवारी करता है। भला घुड़सवारी करने का फ़कीरों से क्या मतलब। पहले तो उसने एक अलग तालाब खुदवाया ताकि लोग हरिद्वार और बनारस न जाकर, गंगा जमना की यात्रा न करके इन लोगों के सरोवर में स्नान करने के लिए आया करें। फिर इन्होंने अपने महल बनवाए। क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का शोरबा। अब इन्होंने एक अलग राजधानी क़ायम करने के लिए नया शहर बसा लिया है। इसका नाम अमृतसर रखा गया है। वहाँ शहंशाह के ख़िलाफ़ साज़िशें हुआ करेंगी। जो आदमी अपने बाप का नहीं हुआ, वह किसका सगा हो सकेगा ?

गुरगद्दी पर क़ब्ज़ा करने के लिए जिसने अपने पिता को ज़हर देकर तीन दिनों के भीतर मार दिया। अभी तो वह 47 वर्ष के थे। अच्छे-भले वह गुरु के चक से चले थे। गोईंदवाल पहुँचे तो उनकी आँखें मूँद गईं। मेरे पिता को भी ऐसे ही ज़हर दिया गया था। पहले धोखे से मुझसे गुरगद्दी छीनी गई। फिर इस ड़र से कि मैं भाँडा न फोड़ दूँ, मेरे पिता जी को ज़हर देकर ख़त्म कर दिया गया। वे मुझे जान-बूझ कर गुरु के चक में छोड़कर गोईंदवाल चले गए। गद्दी सम्हालने के फ़ौरन बाद वहाँ पहुँचते ही उन्होंने मेरे पिता जी को ज़हर दे दिया और मुझे यतीम बना दिया। मैं सबसे बड़ा बेटा हूँ। गुरु के महलों पर मेरा क़ब्ज़ा है। अमृत सरोवर मेरी देख-रेख में बना है। महलों पर ख़र्च की गई कौड़ी-कौड़ी मैंने दी है। पूरा ख़र्च मैने दिया है। मैं वक़्त के हाकिम से इंसाफ़ लेने आया हूँ।

जहाँ बैठता इसी तरह अनाप-शनाप बकता रहता।

जब पृथी चंद इस तरह की निंदा चुग़ली में व्यस्त था, उसे पता चला

कि अकबर ने राजा बीरबल को अपना मुख्यमंत्री तैनात किया है। राजा बीरबल चाहे बड़ा विद्वान और प्रतिष्ठित था लेकिन कट्टर हिन्दू होने के नाते सिक्ख संगत के साथ उसका जानी बैर था। पृथी चंद ने सोचा इस तरह के हाकिम की मदद ली जा सकती है।

संयोग से उन्हीं दिनों में युसूफ़ ज़ई क़बीलों के ख़िलाफ़ ज़ैन ख़ान की कोंकर की हार से ख़फ़ा होकर अकबर ने राजा बीरबल को युसूफ़ ज़ईयों के ख़िलाफ़ चढ़ाई करने की हिदायत दी। ज़ैन ख़ान ने तो बीरबल की मदद करनी ही थी। इस चढ़ाई के ख़र्च के लिए बीरबल ने बादशाह से लिखित शाही फ़रमान जारी करवाया कि राजा अपने रास्ते में हर खत्री घर में से एक रुपए का कर वसूल कर सकेगा। जब बीरबल की फ़ौजों ने ब्यास नदी पार की तो अमृतसर वासियों से कर देने की हिदायत की। गुरु महाराज को यह मंज़ूर नहीं था। न ही गुरु के सिक्ख इस तरह के भेद-भाव को क़बूल करने के लिए तैयार थे। गुरु महाराज ने मुग़ल अहलकारों को समझाया कि बेशक वे खत्री हैं, पर वे गुरु नानक के सिक्ख हैं। गुरु घर में अटूट लंगर चलता था, जिसमें हर सिक्ख हिस्सा डालता था। अकबर ख़ुद इस तरह की उगाही में शामिल होना चाहता था। इससे पहले गुरसिक्खों पर कभी कर नहीं लगाया गया था। राजा बीरबल को अपने हुकुम पर फिर विचार करना पड़ेगा। बीरबल इसके लिए तैयार नहीं था, जब उसे गुरु महाराज के तर्क से परिचित कराया गया तो वह भड़क उठा। उसने कहा कि अमृतसर के लोग कर देने से इंकार करेंगे तो मैं फौज भेजकर सारे शहर को तहस-नहस कर दूँगा।

"इसकी नौबत नहीं आएगी।" बीरबल की भभकी सुनकर या चेतावनी सुनकर गुरु महाराज के मुँह से निकला। इधर बीरबल ने सिक्ख संगत को चेतावनी भेजी, उधर अकबर बादशाह का हुक्म मिला कि वह फ़ौरन युसूफ़ ज़ईयों के ख़िलाफ़ कुमुक लेकर पहुँचे। एक दिन की भी देर नहीं होनी चाहिए।

तो भी चलने से पहले बीरबल ने गुरु महाराज को कहलवा भेजा—अगर सारा कर इक्ट्ठा करके उसे पेश नहीं किया जाता तो वह जंग से लौटते ही गुरु साहिब के सारे परिवार को कोल्हू में पिरवा देगा।

जब गुरु महाराज को यह बात बताई गई तो शांति के पुँज गुरु अर्जन देव जी ने फ़रमाया, "हाँ, अगर वह लौटेगा तभी तो वह ऐसा करवा सकेगा

और ऐसा ही हुआ। युसूफ़ ज़ईयों के ख़िलाफ़ लड़ाई करते हुए बीरबल मारा गया और ज़ैन ख़ान कोकर जो दुश्मन के साथ मिला हुआ था, बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचा सका। इस लड़ाई में अकबर की फ़ौजों को करारी हार हुई।

जब बीरबल की मौत की ख़बर अमृतसर पहुँची, तब शहरियों ने सुख की साँस ली। गुरु महाराज के लिए उनकी श्रद्धा का समुद्र ठाठें मारने लगा। यह सब देख-देख कर, सुन-सुन कर पृथी चंद परेशान होता रहता था।

(17)

आषाढ़ के महीने की शुरुआत, कहरों की गर्मी थी, चिलचिलाती धूप जिसमें कव्वे की भी आँख बाहर निकल आवे। वडाली शहर भठ्ठी की तरह तप रहा था। धरती में से गर्मी फूट रही थी। चौपाए निढ़ाल होकर छाया की तलाश में ढ़ेरी हुए पड़े थे। वडाली शहर का आख़िरी कुआँ भी जवाब दे गया था। ऐसे तो प्रलय आ जाएगी। लोगों की साँस सूख गई थी। वह आकाश की ओर देख रहे थे कि अचानक आँधी आ गई। चारों तरफ़ अन्धेरा छा गया, रेत और मिट्टी उड़ने लगी। सीटियाँ मारती पुकारती हुई आंधी। फिर आसमान पर बादल छा गए। चारों तरफ़ जैसे काली घटा घिर-घिर कर आ रही हो, फिर बारिश होने लगी। बादल गरजते, बिजली चमकती, घनघोर बारिश शुरु हो गई। छल-छल बूँदें पड़ने लगीं। जल-थल एक हो गया। सूखी धरती के मुँह पर जैसे किसी ने पानी के छींटे मार दिए हों। बूँद-बूँद पानी के लिए तरसती धरती को जैसे ग़ोते आ रहे हों। आस-पास की धरती भी जैसे अंगड़ाई ले रही हो।

उधर शहर के बाहर बड़ी हवेली के कमरे के पीछे की कोठरी के अन्धेरे में एक बच्चे की किलकारी सुनाई दी। माता गंगा जी माँ बन गई थीं। गुरु अर्जन देव जी के घर एक बालक ने जन्म लिया था, जिसकी प्रतीक्षा गर्मी से तपती फुकती इस धरती पर स्वाति की बूँद की तरह कब से हो रही थी?

इस बालक का आगमन वर्षा की फुहार जैसा था। सब के दिलों में ठण्ड पड़ गई। हर चेहरे पर रौनक़ खेलने लगी। हर आँख में सुरुर झलकने लगा।

उधर जब करमो को यह ख़बर मिली तो वह उल्टी खाट पर लेट गई। उसका बेटा मेहरबान क्रोध से कूद रहा था। वह सोच रहा था कि उसके पिता ने सारी उम्र उससे झूठे वादे किए थे। झूठे वादे लगाए लगता। न पिता को गुरुवाई मिली थी, न अब उसके बेटे को गुरुवाई मिलने की कोई संभावना

रह गई थी। गुरगद्दी पर बैठने वाला तो वारिस आ गया था। "मुझे तो बेवकूफ़ बनाया जा रहा था।" मेहरबान बुड़बुड़ाता जिसके बाप को गुरगद्दी के क़ाबिल नहीं समझा गया था भला उसका बेटा किस खेत की मूली है। इतने वर्ष यह सोचकर कि गंगा चाची बाँझ है, हम अपने आप को धोखा देते रहे। हीरे जैसा बेटा पैदा करके उसने हमारे मुँह पर तमाचा दे मारा है। कोई कह रहा था कि गंगा चाची को तो प्रसूति की पीड़ा तक नही हुई थी। हँसती-खेलती वह कमरे से उठ कर भीतर कोठरी में गई और चारपाई पर लेटते ही सिक्ख क़ौम के छठे गुरु का प्रकाश हो गया। गली-गली में लोग कह रहे थे, पैदा होने के बाद पहले बच्चा रोता है और हमारा यह नौनिहाल हँसता हुआ दुनिया में आया। सुनते हैं चीख़ मारने की बजाय उसने किलकारी भरी थी और उसका नाम कितना सुन्दर रखा गया है—हरिगोबिन्द। "जिसका नाम हरिगोबिन्द है वह तो दो जहान का वाली होगा। उसे गुरगद्दी पर बैठने से कौन रोक सकता है ? हरिगोबिन्द। मैं पूछता हूँ 'गोबिन्द' नाम काफ़ी नहीं था या फिर वह—'हरि राम', 'हरी दास', 'हरी मल', कुछ भी हो सकता था। हरिगोबिन्द नाम रखके इन लोगों ने पृथी चंद और उसके बेटे मेहरबान के मुँह पर थूका है। मैं तो अब अपने ननिहाल चला जाऊँगा। दादीजाल का सुख मैंने देख लिया है।" जब मेहरबान इस तरह बुड़-बुड़ा रहा था तो पृथी चंद जो अपने दोस्त, लाहौर के साथ लगते इलाके के ज़मीनदार सुलही ख़ान के भतीजे सुलबी ख़ान से जोड़-तोड़ करके आया था, कमरे के बाहर आँगन में खड़ा अपने बेटे का क्लेश सुन चुका था। भीतर आकर कहने लगा—"बेटा तू क्यों इस तरह दुखी होता है ? गुरगद्दी पर तो वही बैठेगा जिसे जीवित रहने दिया जाएगा।"

पृथी चंद के मुँह से यह बोल निकले तो उसके दाँतों के नीचे जैसे जीभ आ गई। सामने वाली खिड़की के पास जा खड़ा हुआ और उसने मुँह का ज़हर बाहर गली में थूक दिया।

पृथी चंद के मुँह से बोल सुनकर कोठरी में एक दहशत सी छा गई। करमो और मेहरबान बिट-बिट पृथी चंद के चेहरे की ओर ताक रहे थे। कितनी देर तक यह ख़ामोशी छाई रही। करमो चुप। मेहरबान चुप। ख़ुद पृथीया भी चुप।

फिर इस ख़ामोशी को तोड़ते हुए पृथीया बोला, "इस उत्तराधिकारी को अगर ख़त्म न किया तो मेरा नाम भी पृथी चंद नहीं।" अगर अर्जन गुरु

महाराज का बेटा है तो मैं भी उसकी औलाद हूँ। मथुरा भट की चापलूसी की भी हद हो गई। "उसे साक्षात् हरि कह रहा है।" इन बातों से इनका दिमाग़ तो ख़राब होगा ही, करमो अब सर्पिणी की तरह ज़हर घोलती हुई बोली, "तभी तो उन्होंने साहबज़ादे का नाम हरिगोबिन्द रक्खा है।"

"जब बाप हरि है तो बेटे ने हरिगोबिन्द होना ही हुआ।" मेहरबान अपने दिल की बौखलाहट निकाल रहा था—"हरिगोबिन्द, दीन-दुनिया का मालिक।" वह नहीं जानता कि मुग़ल उसकी गर्दन दबाने की तैयारियाँ कर रहे हैं।

"तुम्हारी मुग़लों की भी भली पूछी।" सुना है कोई वज़ीर ख़ान है जो अब गुरु घर का नया श्रद्धालु बना है।" करमो बीच में बोल उठी।

"मैंने तो यह भी सुना है कि ख़ुद अकबर बादशाह चाचा को मिलने के लिए बेताब हैं।" मेहरबान अपने मन की आशंका व्यक्त कर रहा था। "मेरी बात मानो तो हम फ़ौरन कन्तो दाई को वडाली भेजते हैं। हमारी ख़ानदानी दाई है। पहले बच्चे भी तो उसके हाथों में पैदा हुए और पले हैं।"

"वह तो कल ख़ुद ही कह रही थी कि मैं वडाली जाकर गंगा बीबी को बधाई दूँगी।"

"तभी तो मुझे यह तरकीब सूझी है।" करमो कहने लगी। "कौन सी तरतीब ?" पृथीए ने पूछा।

फिर करमो, पृथी चंद और मेहरबान आपस में सिर जोड़कर खुसर-फुसर करने लगे। कितनी देर तक वह सिर जोड़ कर खिचड़ी पकाते रहे।

फिर वे ख़ुशी-ख़ुशी खाने-पीने लग पड़े। घर में पहले जैसी गहमा-गहमी दिखाई देने लग पड़ी। कुछ दिनों बाद करमो ख़ुशी से उछलती हुई अपने पति को बता रही थी कि उसने फत्तो दाई को वडाली भेज दिया है।

"मैं ने अपने सामने उसे इक्के में बिठाया है। पूरे पाँच टके इक्के वाले को दिए हैं।" करमो के पैर ज़मीन पर नहीं लग रहे थे। "बेबे फत्तो की हथेली पर भी कुछ रखा है या नहीं ?" मेहरबान उससे भी ज़्यादा उतावला था।

"उसका फ़ैसला तो तेरे बापू ने उसके साथ कल ही कर लिया था।"

पर जो काम मैं ने तेरे ज़िम्मे लगाया था, वह भी तूने किया है या सिर्फ़ ख़ानापूरी करने के लिए उसे भेजा है।

करमो ने इधर-उधर देखकर धीमे से कहा-"मैं ने अपने हाथ से उसके स्तनों पर लेप किया है।" जाते ही वह उस बच्चे को गोद में ले लेगी। ख़ानदानी दाई है। और फिर जब लोग इधर-उधर होंगे तो वह अपना गला

खोलकर बच्चे के मुँह में थन लगा देगी।

"और हरिगोबिन्द साहिब फिर हरी के पास पहुँच जाएँगे।" यह कहते हुए पृथी की बाँछे खिल गईं।

"जब तक यह काँटा निकल न जाए, मुझे चैन नहीं आने वाला।" मेहरबान अपनी सनक में बोल रहा था।

"तू तो पगला है, हम कोई कच्ची गोलियाँ तो नहीं खेलते।" करमो बोली।

गुर-गद्दी में कोई करामात है, इसलिए तो मैं दिन रात तड़प रहा हूँ। आख़िर हमारे चचा के पास क्या है, जो हमारे पास नहीं। महलों पर हमारा क़ब्ज़ा है, यहाँ भी और गोईंदवाल में भी। पैसों की हमें कभी कोई कमी नहीं आई। लेकिन जब पाँचवें गुरु ने कहा कि काबुल से लौटकर ही तो बीरबल कर वसूल सकेगा, तो बीरबल लौट कर नहीं आया, युसूफ़ ज़ईयों से लड़ते हुए मारा गया। जिस ज़ैन ख़ान की मदद करने वह गया था, बच गया और बीरबल अपनी जान गँवा बैठा।

"तभी तो बेटा हम तुझे गुर-गद्दी पर बिठाऐंगे।" पृथी चंद ने हाथ बढ़ा कर मेहरबान का हाथ पकड़ लिया जैसे वादा कर रहा हो।

(18)

उन दिनों अकबर लाहौर में था। कुछ बरसों के लिए उसने लाहौर को ही अपनी राजधानी बना लिया था। इस लिए पृथी चंद की शिकायत की ख़ुद पैरवी करना सुलही ख़ान के लिए मुमकिन नहीं था। पृथी चंद को दिए हुए वादे को पूरा करने के लिए उसने अपने भतीजे सुलबी ख़ान को हिदायत दी कि वह अमृतसर जाकर गुरु महाराज से गद्दी छीन कर पृथी चंद को उस पर बिठा दे। इस मामले में मुग़ल हुक्मरानों की दिलचस्पी का बड़ा कारण यह था कि वे गुरु महाराज की बढ़ रही सिक्ख सेवकों की तादाद पर पाबंदी लगाना चाहते थे। गुरसिक्ख देश के हर शहर में फैले हुए थे और गुरु महाराज के बताए रास्ते पर चलते हुए अपने-अपने भाईचारे में आदरयोग्य स्थान रखते थे। हुकुमत चाहती थी कि इस तरह की लोकप्रिय श्रेणी पर उसका असर-रसूख़ तभी हो सकता है, अगर पृथी चंद जैसे चापलूस को गुर-गद्दी का क़ब्ज़ा दिलवा दिया जाए। अकबर के मज़बूत इरादे को जानने वाले छोटे स्थानीय अहलकार अपने ही स्तर पर यह सारी खिचड़ी पका रहे थे। इधर फत्तो दाई वडाली के लिए चली, उधर पृथी चंद को ख़बर मिली

कि सुलबी ख़ान घुड़सवारों की टुकड़ी लेकर अमृतसर आ रहा था। ब्यास नदी के किनारे खडूर साहिब के पास पहुँच भी चुका था। पृथी चंद सोचने लगा, इधर फत्तो अपना काम करेगी, उधर सुलबी ख़ान अपना लश्कर लेकर अमृतसर पहुँच जाएगा। फिर मजाल है कि उसका भाई शहर में क़दम भी रख सके।

करमो ख़ुश थी, मेहरबान ख़ुश था।

करमो कहती थी यह सब सितारों का खेल है। अगर सितारे सही हों तो हर मनोकामना पूरी होती है।

ज़रुरत तो इस बात की है कि हुकुमत से बना कर रखी जाए। आख़िरकार तो इन्हें यहाँ का राज-पाठ बाबा नानक ने ही तो बख़्शा था। इसी लिए तो वह राज कर रहे हैं। पृथी चंद अपनी राय दे रहा था।

मैं कहता हूँ अगर वह कर लगाते हैं तो हमें देना चाहिए। मेहरबान हुकुमत के एक पिट्ठु की तरह सोचता था। हम में और बाकी हिन्दू शहरियों में फ़र्क ही क्या है ?

"हाँ, हमने कोई अपनी जेब से तो कर नहीं देना। गोलक में से सरकार का हिस्सा सरकार को दे दिया करेंगे।" करमो अपने बेटे के साथ सहमत थी।

"चाहे कुछ भी हो हाकिमों से बिगाड़नी नहीं चाहिए।" यह शब्द अभी पृथी चंद के होंठों पर ही थे कि ख़बर मिली कि दरया के किनारे सुस्ताने के लिए रुके सुलबी ख़ान की अपने उसके अहलकार हसन ख़ान ने हत्या कर दी थी। सुलबी ख़ान ने उसे तनख़ाह नहीं दी थी, इसलिए तकरार बढ़ गई थी।

सुनते ही जैसे पृथी चंद के सर पर किसी ने सात घडे ठण्डा पानी डाल दिया हो। उसका सारा गुस्सा ठण्डा पड़ गया। यही हाल मेहरबान का था।

उधर जब फत्तो दाई वडाली पहुँची तो सारे परिवार को एक चाव चढ़ गया। गंगा माता जी ने कहा मेरे जेठ जेठानी ने बच्चे के लिए हमारी ख़ानदानी दाई को बच्चे की सेवा के लिए भेजा है।

गुरु महाराज भी ख़ुश थे। फत्तो दाई ने पृथी चंद के सारे बच्चे जन्माए थे। उसे उनके ख़ानदान की मर्यादाओं और रहन-सहन का पता था। फत्तो ने भी आते ही बच्चे के सारे काम संभाल लिए। माता गंगा जी को सुर्ख़रु कर दिया।

एक दिन-दो दिन, चार दिन, हफ़्ता दस दिन बीत गए, तब भी वडाली से कोई ख़बर नहीं आई तो करमो और पृथी चंद दोनों उतावले पड़ गए।

इतने दिनों तक वह लेप फत्तो के थनों पर कैसे टिका रह सकता था।

फत्तो की मुश्किल यह थी कि नवजात बच्चे को देखकर उसकी दीवानी हो गई। और वह लेप जो करमो ने अपने हाथ से लगाया था, वह तो रास्ते में पसीने के साथ उतर गया था।

लेकिन करमो से किया गया वादा और उससे ली गई पेशगी रक़्म बार-बार फत्तो बाई को परेशान कर रही थी।

फिर वह गुरु अर्जन देव जी की ओर देखती, माता गंगा जी की ओर देखती; मजाल है कि उनके मुँह से पृथी चंद या उसकी पत्नी करमो के बारे में कोई बुरा बोल निकला हो या दुर्भावना व्यक्त हुई हो। पति-पत्नी दोनों सच्चा-सादा जीवन बिता रहे थे। जनता की सेवा करते थे। वडाली में पानी की कमी देखते हुए गुरु महाराज ने इतना बड़ा और गहरा कुआँ खुदवाना शुरु कर दिया था जिसमें छह रहट लग सकेंगे। गुरु साहिब ख़ुद फ़रमाते थे, ज़ो श्रद्धालु उनके दर्शनों के लिए आते, उनके द्वारा भेंट की हुई रक़म भी वे इसी काम के लिए इस्तेमाल करते, उनसे कार सेवा भी करवाते। बाक़ी समय गुरु महाराज एकांत में रहकर गुरु बाणी का जाप करते थे, या उनके होंठों पर 'सत्य नाम श्री वाहे गुरु' की ध्वनि होती थी या किसी नए शब्द के बोल वह गुनगुनाते रहते। कल शाम गंगा जी अपना रचा हुआ एक शब्द सुना रहे थे। कितनी सरल, कितनी साधारण भाषा जैसे कोई किसी से बातें कर रहा हो। और कितनी श्रद्धा थी उनके बोलों में :

तूं मेरा पिता, तूं है मेरी माता
तूं मेरा बंधु, तूं मेरा भ्राता
तूं मेरा राखा सबनी थाईं
तां भऊ केहा काड़ा जीओ॥ १॥
तुमरी किरपा ते तुझ पछाणा॥
तूं मेरी ओट, तूं है मेरा माणा॥
तुझ बिन दूजा अवरु न कोई
सभु तेरा खेलु अखाड़ा जीओ॥ २॥
जी जन्त सभि तुधु उपाये॥
जितु जितु भाणा तितु तितु लाये॥

सभ किछु कीता तेरा होवै नाही किछु असाडा जीओ ॥ ३ ॥
नाम ध्याइ महा सुखु पाया ॥
हरिगुण गाइ मेरा मनु सीत लाया ॥
गुर पूरै वजी वाधाई
नानक जिता बिखाड़ा जीओ ॥

(माझ महला ४)

फत्तो दाई भी उठते-बैठते इस शब्द के बोल....... गुनगुनाती रहती।

वडाली में गुरु महाराज का घर ऐसा था जैसा कोई स्वर्ग का टुकड़ा हो। हर समय गहमा-गहमी, हर समय हरि नाम की गूँज, हर समय खुशियों की मेहरों की बारिश, फत्तो दाई को लगता जैसा उसके मन की जन्म-जन्मांतरों की मैल उतर गई हो। हर समय वह अपने को धुला-धुला, उजला-उजला महसूस करती। उल्लास से भरी चारों तरफ़ खुशियाँ बिखेर रही थी। और वह बच्चा भी कोई साधारण बच्चा नहीं था। वह तो आसमान से उतरा हुआ कोई फ़रिश्ता था। मुखड़े पर नूर, नख-शिख कोमल, लेकिन किसी हटटे-कटटे सूरमा की तरह हाथ-पैर चलाता। मजाल है कभी उसने अपना पोतड़ा गिला किया हो, हाजत होते ही वह कुनमुना उठता। कई बार उसके पालने के पास बैठी फत्तो बाई ऊँघने लगती थी। बच्चा ज़ोर से टाँगे पटक कर सचेत कर देता।

कई दिन बीत चुके थे, हरि गोबिन्द जी पर फत्तो दाई जान दे रही थी। वे उस काम को भूल ही गई थी, जिसके लिए उसे वडाली भेजा गया था। उसने जो इक़रार किए थे, जो रक़म उसे पेशगी दी गई थी और जो ईनाम-इकराम करमो और पृथीए ने देने के वादे किए थे। उधर अमृतसर में पृथी चंद और उसकी पत्नी करमो, उनका बेटा मेहरबान बहुत उतावले हो रहे थे। उन्होंने सोच रखा था कि इधर से फत्तो दाई वडाली पहुँचेगी, उधर से बच्चे के ख़त्म होने की ख़बर आ जाएगी। लेकिन ऐसा तो कुछ भी नहीं हुआ था। करमो अपने पति पृथी चंद को काटने को दौड़ती और मेहरबान अपनी माँ को। आठों पहर घर में ज़हर घुला रहता, तू-तू, मैं-मैं होती रहती। हर कोई एक-दूसरे को कोसने लगता। एक दिन मेहरबान को पृथी चंद समझाने लगा—"बेटा इसमें निराश होने की कौन सी बात है। मैं किसी को वडाली भेज कर ख़बर लेता हूँ। हमसे बाहर जाने की उसकी मजाल नहीं। ढेरों रुपया हमने उसे पेशगी दे रक्खा है। अगर वह फिर भी सफल न हुई।" मेहरबान अपने पिता से पूछ रहा था।

"सफल नहीं हुई तो मेरे तरकश में और भी कई तीर हैं।"

"मसलन्,"

"वक़्त आने पर मैं बताऊँगा, तुझे अपने बापू पर विश्वास होना चाहिए।"

(19)

वडाली से फत्तो दाई की अभी भी कोई ख़बर नहीं आई थी। करमो राह देख-देख कर थक गई थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वडाली पहुँचकर उसे आख़िर क्या हो गया था। कितनी डींगें मारती थी—"मैं जाते ही उसके मुँह में थन दूँगी और वह ख़त्म हो जाएगा।" बड़े भाई से गुरुवाई छीनकर सबसे छोटे भाई को गुर-गद्दी पर बिठा दिया जाए। पृथी चंद सोच रहा था कि महादेव का यह अनुमान ठीक ही था कि उनके छोटे भाई का चरित्र उसकी नम्रता, शराफ़त, ईश्वर भक्ति, मिठास लोगों का दिल मोह लेती थी। उसे देखकर उसकी बुराई सोची नहीं जाती थी। इसी लिए न तो पृथी चंद, न उसके परिवार का कोई व्यक्ति इतने दुर्लभ बच्चे के जन्म की बधाई देने गया। बेशक पीठ के पीछे लोगों ने निंदा की थी। करते रहें। उसे किसका डर था ? उधर फ़त्तो दाई के करमो को सन्देशे आ रहे थे। हर दूसरे दिन कोई न कोई उसे याद कराता कि अमृतसर में उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। फत्तो जानती थी कि कौन उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, किस लिए उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। पर उसकी मुसीबत यह थी कि गुरु बालक ज्यों-ज्यों बड़ा हो रहा था, त्यों-त्यों और भी दिलचस्प होता जा रहा था। अब तो उसने हँसना भी शुरु कर दिया था। अब तो उसने खेलना भी शुरु कर दिया था। उसकी मोटी-मोटी काली आँखों की झलक पाकर मन करता था कि उसी को आदमी देखता ही रहे जैसे घूँट-घूँट पी रहा हो; शांति और सुख के सन्देश दे रहा हो। उसे देखकर फत्तो को लगता कि उसकी जन्म-जन्मांतरों की मैल उतर रही हो। वह बच्चे के बारे में कोई बुरी बात नहीं सोच पाती थी। अल्लाह का ख़ौफ़ उसके मन पर छा जाता। इतना सुन्दर, इतना हँसमुख, इतना चंचल बच्चा हर वक़्त गोद में आने के लिए उतावला रहता, तालियाँ मारता। इस तरह के बच्चे को कोई बुरी नज़र से कैसे देखे ? ज़हरीला लेप से कभी का उतर चुका था, फिर भी फत्तो नहाते समय अपने शरीर को बार-बार साफ़ करती, कहीं ज़हर का दाग़ रह न गया हो।

बच्चे को खिलाने वलि हर चीज़ को दस बार छान कर साफ़ करती, बीस बार छानती। पानी तक पिलाने से पहले अपने हाथ में से कटोरी भरके

तसल्ली कर लेती। फत्तो ने सोचा अगर अब कोई अमृतसर से सन्देश लेकर आया तो उसे साफ़-साफ़ कह देगी कि यह पाप उससे नहीं हो सकेगा। गुर बालक तो फ़रिश्ता था, कई बार उठते ही उसने देखा था कि उसके अंग-अंग में से इलाही नूर फूट रहा होता जैसे किसी ने लपेट कर कोई मोती रखा हो। इस तरह से हँसता था, खेलता था, देखता था, जैसे कोई आशीषें दे रहा हो। और जब हाथ-पैर मारने लगता तो इतनी तेज़ी और चंचलता से अंग-अंग को पटकता जैसे देखने वाले को कुचल कर रख देगा। इतना कस कर मुट्ठी बंद करता कि बोलना मुश्किल हो जाता। उसकी तरफ़ एक नज़र डाल कर कभी-कभी तो फत्तो काँप जाती। उसका अंग-अंग थर्रा उठता। ख़ुद ही वह अपने हाथों से कानों को पकड़ लेती जैसे मन ही मन अपने गुनाहों की मुआफ़ी माँग रही हो।

उधर इंतज़ार से उतावला हो कर पृथीया यह सोचने लगा कि अगर सुलबी ख़ान मारा गया था तो इसमें उसका क्या क़सूर था, आख़िर सुलही ख़ान ने उसकी मदद करने का वचन दिया था कि ज़रुरत पड़ेगी तो फ़ौज का पूरा ख़र्च उठाएगा, साथ में मुँह माँगा ईनाम भी देगा। पृथी चंद ने जाकर उसका दरवाज़ा खटखटाया।

"बेशक मैंने वादा किया था और मैं अपना वादा पूरा करने के लिए तैयार हूँ।" लगता था जैसे सुलही ख़ान उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह जवाब सुनकर पृथीया उसके मुँह की ओर ताकता रह गया। फ़ैसला हुआ कि एक हफ़्ते तक सुलही ख़ान अपने लश्कर समेत अमृतसर पहुँच जाएगा और पृथी चंद को गुर-गद्दी पर बिठा कर रहेगा। गुरु अर्जन तो पहले से ही शहर ख़ाली कर गए थे। सुलही ख़ान के वहाँ पहुँचते ही पृथी चंद का काम हो जाएगा।

पृथी चंद ने सोचा इस बीच वह अपने ससुराल के गाँव हेहर जाकर अपने रिश्तेदारों से मिल-जुल लेगा और फिर करमो भी तो वहाँ आई हुई थी।

करमो हेहर इसलिए आई थी कि वहाँ की एक फफ्फा-कुटनी को तैयार करके वडाली भेजेगी। यह औरत रिश्ते में फत्तो की बहन लगती थी। बड़ी चंट औरत थी फत्तो की मजाल नहीं थी कि वह नूरी का कहा टाल सके। फिर करमो ने अपनी कलाईयों से गोखरु उतारकर नूरी के हाथ में पकड़ा दिए थे।

इधर सुलही ख़ान राज़ी हो गया था, उधर नूरी मान गई थी। जिस दिन

नूरी को वडाली के लिए चलना था, उस दिन पृथी चंद हेहर पहुँचा। बस एक हफ़्ता और, उनकी मनोकामना पूरी हो जाएगी।

"इस उम्र में पैदा हुआ जब उनका बच्चा ख़त्म हो गया, तब वह पति-पत्नी सन्यास ले लेंगे। वह गुर-गद्दी के लिए किसी से नहीं कहेंगे।" करमो मन ही मन सोचकर अपने आप को धीरज बँधाती।

पृथी चंद कुछ रक़म सुलही ख़ान को पेशगी दे आया था, जब उसका काम हो जाएगा तो वह अमृतसर पहुँच कर बाक़ी रक़म भी दे देगा।

करमो ने घोड़ी का विशेष प्रबंध किया हुआ था और सब चीज़ें सुपुर्द करके उसने नूरी को हेहर से भेजा। चलते समय और रक़म उसकी मुट्ठी में डाली, इस ताकीद के साथ कि वहाँ पहुँचते ही वह फत्तो के कान खींचे और अपने हाथों से उसके थनों पर ज़हर का लेप करे।

नूरी वडाली पहुँची। उसने फत्तो दाई को बुला भेजा। नूरी को देखते ही फत्तो के होश उड़ गए। नूरी का इन्कार करना उसके बस की बात नहीं थी। उसके उसे कई भेद मालूम थे। फिर नूरी ने उसे समझाया—"पागल औरत इंसान को देखना चाहिए कि हवा किधर की बह रही है। सुलही ख़ान अपना लश्कर लेकर अमृतसर पहुँच रहा है और दो चार दिनों के बाद वह अपने सामने पृथी चंद को गुर-गद्दी पर बिठा देगा। मुग़ल लश्कर के सामने सर उठाने की किसमें मजाल है। सारे सिक्ख श्रद्धालु जो बन-बन कर बैठते हैं, सुलही ख़ान से धोखा करेंगे तो वह उनके सारे परिवारों को पीस कर रख देगा। फिर करमो बीबी ने अपने हाथों के दो गोखरु उतार कर तेरे लिए भेज़े हैं यह ले अपनी अमानत।

सोने के गोखरु देख कर फत्तो दाई ने अपनी क़मीज़ खोलकर छुपा दिए और नूरी ने अपने हाथों से उसकी छातियों से ज़हर का लेप कर दिया।

"कम्बख़्त, तेरे जोबन को देखकर ऐसा लगता है जैसे दूध उतर रहा हो।" नूरी ने फत्तो को छेड़ा। पुरानी सहेलियाँ थीं। और फत्तो के दिल में जैसे किसी ने मुक्का मारा हो, उसकी आँखों में जैसे आँसू छलक आए। "काश नूरी ने गुरु बालक को देखा होता। उसे देखकर छातियाँ चूने लगती थीं। दिए गए हुक्म के मुताबिक़ ज़हर से अकड़े हुए स्तन लेकर वह गुरु घर की ओर चल पड़ी। बच्चे का दूध पीने का समय हो गया था। बच्चा भूखा होगा। उसे वह छत पर एकाँत स्थान में ले जाएगी और उसके मुँह में अपना स्तन देगी। पहले दायाँ फिर बायाँ। नूरी ने यही उसे समझाया था।

दूसरी तरफ़ हेहर में पृथी चंद को पता चला कि वह जिस सुलही ख़ान का इंतज़ार कर रहा है, वह तो अपनी मंज़िल पर पहुँच चुका है। सुलही ख़ान और उसके साथियों का स्वागत करने के लिए सौग़ातों के ढेर लेकर उसे जा मिला। सारी रात नाच-गाना होता रहा और शराब के दौर चलते रहे। उधर पौफटी और सुलही ख़ान अपने पिछलग्गुओं के साथ घोड़ों पर सवार होकर हेहर की तरफ़ चल पड़ा। वहाँ से उन लोगों को अमृतसर पहुँचना था और फिर सबकी चाँदी हो जाएगी।

जब वे हेहर के बाहर पहुँचे तो पृथीया अपने प्रतिष्ठित मेहमान को अपना ईंटों का भट्ठा दिखाने लगा। इतना बड़ा भट्ठा था कि एक साथ लाख ईंटें पक कर तैयार हो जाती थीं। अभी कुछ दिन पहले ही तो भट्ठे को गर्म किया गया था। चारों तरफ़ आग का लाल सेंक फैल रहा था। सुलही ख़ान रात भर शराब पीता रहा था। उसका नशा अभी भी पूरी तरह नहीं उतरा था। वह घोड़े को एड़ी लगाकर नशे में जल रहे भट्ठे की आग का नज़ारा करना चाहता था। इसी वक़्त साथ के खेत में से अचानक एक तीतर उड़ कर, पंख फड़-फड़ाता हुआ उसके घोड़े के सर पर से उपर निकल गया। माथे पर तीतर का स्पर्श पाकर घोड़ा बिदक गया और एक दम बेक़ाबू होकर सवार समेत ईंटों के भट्ठे में जा गिरा।

शोर मचा, चीख़-चहाड़ा मचा। उधर सुलही ख़ान हाय तौबा कर रहा था, इधर उसके साथी लाचारी से तड़प रहे थे। उनके देखते ही देखते सुलही ख़ान अपने घोड़े समेत पहले एक जलती हुई मशाल बना, फिर ख़ाक हो गया। ठीक उसी समय वडाली में फत्तो दाई छत के एकांत में बार-बार साहबज़ादे को दूध पिलाने की कोशिश कर रही थी। बच्चे का दूध पीने का समय हो गया था। उसे फ़ौरन छातियों से चिपक जाना चाहिए था, लेकिन यह क्या वह तो बार-बार फत्तो की छातियों पर मुक्के मार रहा था। कभी बाँहें हिला-हिलाकर जैसे फत्तो के मुँह पर तमाचे मार रहा था। आख़िरकार जब फत्तो ने ज़बरदस्ती शुरु की तो बच्चा चीख़ने लगा।

इस तरह तो पहले वह कभी नहीं चीख़ा था। उसकी आवाज़ सुन कर नौकर-चाकर और माता जी भागते हुए सीढ़ियाँ चढ़ कर छत पर पहुँचे।

फत्तो दाई जैसे रंगे हाथ चोर पकड़ा जाए। ज़हर से लबा-लब उसकी छातियाँ, खुला गला उसके मुँह से बात भी नहीं निकल रही थी जैसे किसी को मिरगी का दौरा पड़ रहा हो। वहाँ जहाँ थी, वहीं ढ़ेर हो गई।

(20)

वडाली का एकांत। जाड़े का मौसम ख़त्म होने वाला था। दो क़दम आगे, एक क़दम पीछे। वातावरण में एक ख़ुशगवार गर्मी थी। यह अहसास और भी बढ़ जाता जब साहबज़ादा हरिगोविंद जी की कोई दिलफ़रेब किलकारी सुनाई पड़ती। वडाली से अमृतसर इतना दूर था कि पृथीए करमो और मेहरबान की बेहूदगीयों को भुलाया जा सकता था। वडाली से अमृतसर इतना नज़दीक था कि कोई अमृत बेला में पवित्र सरोवर का स्नान करके दिन चढ़ने पर फिर वडाली लौट सकता था। गुरु महाराज ख़ुद ऐसा ही करते थे। कभी सुबह, कभी शाम को अमृतसर सरोवर में स्नान को चल पड़ते।

सुलही ख़ान को तो रब ने ख़त्म कर दिया था। शहंशाह अकबर के राज्य में अब किसी की मजाल नहीं थी कि अमृतसर की ओर आँख उठाकर देखा जाए। फत्तो दाई ने पृथी चंद की करतूतों का भांडा फोड़ दिया था। चारों तरफ़ सुख था, शांति थी। वडाली में खुदवाए जा रहे इतने बड़े कुएँ में से खुला पानी निकल आया था। आस-पास के गाँव वालों की मजाल नहीं थी कि गुरु महाराज के सामने वडाली के निवासियों के साथ कोई ज़्यादती कर जाएँ। न अब कोई डाका पड़ा था, न उनके मवेशी किसी चोर ने खूँटे से खोले थे।

गुरु महाराज सब तरफ़ से अपने-आप को निश्चिंत महसूस कर रहे थे। शांत, स्थिर, गंभीर। उन्होंने फ़ैसला किया कि अब वह समय आ गया था, जब वे सुखमनी नाम के महाकाव्य को कलमबद्ध करेंगे। कई दिनों से वह इस बारे में सोच रहे थे।

यह ख़्याल आते ही उन्होंने इस रचना की रूप-रेखा निर्धारित कर ली। महाकाव्य में चौबीस अष्टपदियाँ होंगी। हर अष्टपदी में आठ पाद होंगे और हर अष्टपदी की शुरुआत श्लोक से होगी, जिसमें अष्टपदी का भावार्थ प्रकट किया जाएगा।

इस अद्वितीय काव्य में गुरु महाराज अपने नित्य के अनुभवों के आधार पर जीवात्मा को सुख शांति का मार्ग दर्शाने जा रहे थे। चौबीस अष्टपदियाँ इस लिए क्योंकि दिन में 24 घण्टे होते हैं। सुखमनी का मनोरथ प्राणी की हर घड़ी को सुखद और सफ़ल बनाना था। उसकी हरेक मनोकामना पूरी करना था। वह स्वयं इन दिनों ऐसा ही सुख महसूस कर रहे थे। कोई सुख ऐसा नहीं था जो उनको प्राप्त न हो।

और फ़ैसला हुआ कि वे हर दिन एक अष्टपदी का उच्चारण करेंगे। ताकि सिक्ख संगत साथ-साथ उसका आनंद उठा सके। रामसर के किनारे बेर के नीचे नई अष्टपदी का नित्य प्रतिपाठ करना भी नियत कर दिया गया।

अत्यन्त सादी बोली में, अपने समय के प्रचलित छंद को लेकर गुरु अर्जन देव जी के भीतर के कवि अपने अनुयाईयों के सामने जीने का दर्शन पेश कर रहे थे। गुरु नानक ने जो राह दिखाई थी, गुरु अंगद, गुरु राम दास और गुरु अमर दास जिस रास्ते पर चले थे, उस रास्ते को साफ़ करके और प्रशस्त करने जा रहे थे। बाक़ी सारे राहों का खण्डन, न कोई तप, न कोई हठ। न कोई व्रत, ना कोई पूजा। न सन्यास, न जंगलों का भ्रमण। न कोई क़ुरबानी, न कोई भेंट। न कोई जगराता, न कोई चिल्ला। हँसते-खेलते, पहनते, ओढ़ते, खाते-पीते, मुक्ति पाने की एक सरल रूप-रेखा गुरु महाराज तैयार कर रहे थे। वह रास्ता था—सिमरन का, गुरु अर्जन देव जी ने कहा :

सिमरियों सिमरि सिमरि सुख पावऊ ॥
कल क्लेश तन माहि मिटावऊ ॥
पर किस दा सिमरन ?
सिमरऊ जासु बिसुम्भर एकै ॥
और इस सिमरन का लाभ ?
प्रभ कै सिमरनि दुख जमु नस्सै ॥

....

प्रभु कै सिमरनि दुस्मन टरै ॥

....

प्रभु कै सिमरनि भय न ब्यापै ॥

....

रब कै सिमरनि ऋद्धि-सिद्धि नौ निधि ॥
प्रभ कै सिमरनि तीरथ स्नानी ॥

यह नहीं भूलना होगा कि हरी का सिमरन (स्मरण) बड़ी कठिन घाटी है। हरी का सिमरन वही करते हैं, जिनसे वह करवाता है :

से सिमरहि जिन आपी सिमराए ॥

और जब स्वयं सिमरन का वरदान बख़्शता है तो आत्मा निहाल हो जाती है।

प्रभ कै सिमरनि नाहीं जम त्रासा ॥

प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा
प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ ॥

....

हरि सिमरनि नीच चहुँ कुंट जाते ॥

हरी का सिमरन वहाँ सहायक होता है, जहाँ और कोई साथ नहीं देता।

जेह मात पिता सुत मीत न भाई ॥

....

जेह महाभियान दूत जम दलै ॥
जेह मुश्कल होवै अति भारी ॥

वह नाम जिसके सुमिरन की इतनी महानता है, कहाँ से प्राप्त होती है?

नानक पाइऐ साधु के संग ॥

जब नाम की प्राप्ति हो जाती है—

जिह मारग के गने जाहि न कोसा ॥
हरि का नाम ऊहा संग टोसा ॥
जिह पैदे महा अंध गुबारा ॥
हरि का नाम संगि ऊजियारा ॥
जहा पंथ तेरा कोन सिवान ॥
हरि का नाम तह नालि पछाने ॥
जेह महाभयान तपति बहुधाम ॥
तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छांम ॥
जह त्रिखा मन तुझु आकरथै
कह नानक वहाँ हरि हरि अमृत बरखै ॥

यही नहीं, 'हरि का नाम जन कौ मुक्ति, जुगति' की प्राप्ति में सहायक होता है। राम नाम के बराबर और कोई चीज़ नहीं।

जाप ताप ज्ञान सबिध्यान ॥
खट सास्त्र, सिमरिति वखियान ॥
जोग अभियास करम धरम किरिया ॥
सगल त्यागि बन मधे फिरिया ॥
अमित प्रकार किए बहु जतना ॥
पुन्न दान होमे बहु रतना ॥
सरीरु कटाई होमे करि राखी ॥

वरत नेम करै बहु भाती ॥

या

न्योल करम करै बहु आसन ॥

गुरु अर्जन देव जी का कहना है कि :

नहीं तुलि राम नाम बीचार ॥

गुरु महाराज याद कराते हैं कि कोई उस ईश्वर को कैसे भुला सकता है—

जिह प्रसादि घर ऊपरि सुख बसहि ॥
सुत भ्रात मीत बनिता संगि हँसहि ॥
जिह प्रसादि पीवहि सीतल जला ॥
सुखदाई पवनु पावकु अमुला ॥
जिह प्रसादि भोगहि सभि रसा ॥
सगल समग्रि संग साथि बसा ॥
दीने हस्त, पाव करन, नेत्र रसना ॥
तिसहि त्यागि अबर संग रचना ॥

इस तरह उस ईश्वर के आगे हाथ जोड़ कर वे अरदास करते हैं, जो सृष्टि का रचायिता है और जिसकी कृपा हो तो सारे सुख प्राप्त होते हैं :

तू ठाकुर तुम पहि अरदासि ॥
ज्यू पिंड सब तेरी रास ॥
तुम मात पिता हम बारिक तेरे ॥
तुमरी कृपा महि सुख घनेरे ॥
कोई न जानै तुमरा अंत ॥
ऊचे ते ऊचा भगवंत ॥
सगल समग्री, तुमरै सत्रधारी ॥
तुम ते होई सू आगिआ कारी ॥
तुमरी गति मिति तुम ही जानी ॥
नानकदास सदा कुरबानी ॥

गुरु महाराज का फ़रमान है—'गोबिंद भजन बिनु बृिथे सब काम' उसका सिमरन छोड़ कर किसी और वस्तु से प्रेम करना ऐसे है, जैसे :

बिरख की छाया सिंऊ रंग लावै ॥
ओह बिनसै ओह मनि पछुतावै ॥

ईश्वर के सिमरन के बिना और सब कुछ बेकार है। उसका कोई मुल्य नहीं।

मिथ्या स्रवन परनिंदा सुनहि ॥
मिथ्या हस्त पर दरथ कौ हिराहे ॥
मिथ्या नेत्र पेखत पर त्रिय रुपाद ॥
मिथ्या रसना भोजन अनस्वाद ॥
मिथ्या चरन पर विकार कौ धावहि ॥
मिथ्या मन पर लोभ लुभावहि ॥

फिर याद कराते हैं कि :

"जिह प्रसाद छतीह अमृत खाहि,
हे प्राणी तिस ठाकुर कौ रख मन माहि ॥"

सातवीं अष्टपदी साध-संगत की महिमा का बखान करने के लिए उचारी गई :

जो इच्छै साई फल पावै ॥
साध कै संग न बिरथा जावै ॥

अगली अष्टपदी में ब्रह्मज्ञानी के स्वरूप को रेखांकित किया गया है। ब्रह्मज्ञानी का स्वभाव, उसका रहन-सहन, उसकी पहुँच :

ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप ॥

....

ब्रह्मज्ञानी निर्मल ते निर्मला ॥

....

ब्रह्मज्ञानी कै मित्र सत्रु समान ॥

लेकिन ब्रह्मज्ञानी की पदवी वही प्राप्त कर सकता है,

"जिस करै प्रभु आप ॥"

और फिर इस अष्टपदी के अंत में गुरु अर्जन देव जी ने ब्रह्मज्ञानी की बड़ाई ब्यान करते हुए यहाँ तक दावा किया है कि ब्रह्मज्ञानी आप निरंकार होता है।"

ईश्वर का सुमिरन करने वालों का कोई अंत नहीं। लाखों करोड़ों उसका नाम जपते हैं, लेकिन उसे कोई विरला ही पाता है।

कई कोटि होए पुजारी ॥
कई कोटि आचार ब्योहारी ॥

कई कोटि भये तीरथ वासी ॥
कई कोटि बन भ्रमहि उदासी ॥
कई कोटि बेद के स्रोते ॥
कई कोटि तपीसर होते ॥
कई कोटि आत्म ध्यान धारहि ॥
कई कोटि कवि काबि बीचारहि ॥
कई कोटि नवतन नाम ध्यावहि ॥
नानक कर्ते का अंत न पावहि ॥

उसे वही पाता है जिस पर उसकी किरपा होती है :

नानक जिस जिस भावे तिस तिस निस्तारै ॥
....
अपने जन को सासि सासि संमारै ॥
नानक ओइ परमेसुर के प्यारे ॥

और जिन पर उनकी मेहर होती है, उनमें अहंकार नहीं होना चाहिए। नम्रता प्राणी का एक गहना है, पर नम्रता भी ईश्वर की देन है।

जिस कै अंतर राज अभिमान ॥
सो नरक पासी होवत स्वान ॥
....
धनवंता होइ करि गर्बा नै ॥
तृन समनि कछु संग न जानै ॥
....
सभ तै आप जानै बलवंत ॥
छिन में होइ जाइ भसवंत ॥
....
करि किरपा जिस कै हिरदय गरीबी बरसावै ॥
नानक ईहा मुक्त आगे सुख पावै ॥

गुरु अर्जन जो खुद पृथी चंद की निन्दा का शिकार थे, अगली अष्टपदी में निन्दा को कड़े शब्दों में धिक्कारते हैं।

संत की निन्दा नानका
बहुरि बहुरि अवतार ॥

पर अगर संत कृपा करे, दयालु हो जाए तो निन्दक को माफ़ भी किया

जा सकता है :

संत किरपाल किरपा जे करै ॥
नानक संत संग निन्दक भी तरै ॥

इसलिए प्राणी को चतुराई छोड़कर केवल सिमरन में लग जाना चाहिए। केवल एक ईश्वर पर आस रखनी चाहिए।

मानुख की टेक ब्रिद्धि सब जान ॥
देवन कौ एकौ भगवान ॥

....

उस्तति मन महि करि निरंकार ॥

....

चरन चलऊ मारग गोबिन्द ॥

ईश्वर सर्बकला संपूर्ण है। वह हरेक के घट-घट को जानता है। उसे हरेक की चिंता है। जो चाहे कर सकता है :

सगल की चिंता जिस मन माहि ॥
दुख सुख प्रभ देवन हार ॥

....

मिरतक कौ जीवालनहार ॥

पर इस बात का एहसास केवल उन्हीं को होता है, जिन पर प्रभु प्रसन्न होता है। वही उसकी मेहर के पात्र होते हैं।

अपने जन का परदा ढाकै ॥
अपने सेवक की सर पर राखै ॥
अपने दास को देइ बडाई ॥
अपने सेवक को नाम जपाई ॥

....

सतगुरु सिख की करै प्रतिपाल ॥

....

सतगुरु सिख का हलत-पलत संवारै ॥

सिमरन की महिमा बताते हुए गुरु अर्जन हैरान कर देने वाला भरोसा दिलाते हैं :

सरब बैकुंठ, मुक्ति, मोख पाए ॥
एक निपथ हरि के गुन गाए ॥

किन्तु जो बात कवि गुरु अर्जन को परेशान करती है, वह समाज में बुराई का कड़वा अस्तित्व है। वे फ़र्माते हैं कि अगर यह सृष्टि ईश्वर की रचना है तो फिर बदी कहाँ से पैदा हुई। ये सवाल वे बार-बार अपने से करते हैं :

जब अकार इह कछु न द्रिसटेता॥
पाप पुन्न सब कहते होता॥
जब धारी आपन सून समाधि॥
तब बैर विरोध किस संग कमाति॥

यही नहीं जब इस सृष्टि का खेल ख़त्म होगा, एक ईश्वर ही होगा तो फिर ये नरक और स्वर्ग क्यों ?

खेल संकोचै तऊ नानक एकै॥

यहाँ पहुँच कर वे सवाल करना छोड़ देते हैं और अपने आप को उसकी रज़ा के हवाले कर देते हैं :

जा तिस भावै ता सृस्ट उपाये॥
आपने भागै लये समाये॥

और इन्सान को यह मशवरा देते हैं :

सचु वापारु काहु वापारी॥

....

नौ निधि अमृत प्रभ का नाम॥
देहि महि इसका बिसराम॥

....

सब मधि अलिप्तो रहै॥

सारे गुण प्राणी के अन्दर हैं। आवश्यकता है कि वह अपने गुरु का उपदेश सुने, श्वास-श्वास सिमरन करे। जिनके मन में राम नाम बस जाता है, वे बड़े भाग्यशाली होते हैं। उनके दुख और रोग कट जाते हैं। सब कामना पूरी हो जाती है।

पूरे गुर का सुनि उपदेस॥
पारब्रह्म निकटि करि पेख॥
सासि सासि सिमरहु गोबिन्द॥
मन अंतर की उतरै चिन्द॥

....

निरमल सोभा अमृत ताकी बानी ॥
एक नाम मन माहि समानी ॥
दुख रोग बिन से मै भरम ॥
साध नाम निरमलता के करम ॥
सब ते ऊच ताकी सोभा बनी ॥
नानक इह गुणि नामु सुख मनी ॥

(21)

"सुना है आप लाहौर जाने की सोच रहे हैं।" माता गंगा जी ने गुरु महाराज से पूछा।

"हाँ।" गुरु महाराज कुछ ज़्यादा ही गंभीर लग रहे थे।

"जेठ जी ने पिछले दिनों में जो कुछ किया है, वह जो कुछ करें, सो ही थोड़ा है।" माता गंगा जी परेशान थीं।

पारब्रह्म प्रभ भये दयाला
सिव कै बाणि सिर काटियो
....

गुरु अर्जन देव जी ने यह शब्द उच्चारे और साहबज़ादे को गोद में लेकर दुलारने लग पड़े।

"पारब्रह्म प्रभ भये दयाला"। बार-बार वे यह बोल दुहरा रहे थे। एकाध दिन के बाद वह लाहौर के लिए रवाना हो गए। पिछले कई बरसों से वे लाहौर नहीं गए थे। पिछले कई दिनों से लाहौर जैसे उन्हें बुला रहा था।

रावि नदी के किनारे आबाद लाहौर मुग़ल बादशाहों की राजधानी सिर्फ़ इसलिए नहीं बन सका था क्योंकि यह शहर देश के एक तरफ़ था। शायद इस लिए भी, क्योंकि उत्तर-पश्चिम से आने वाले हमलावरों की राह में पड़ता था। फिर आज अकबर बहुत दिनों से लाहौर में ही टिका हुआ था। उसे लाहौर की खुली सडकें, हरे-भरे खेत पसंद थे। नदी किनारे बसा होने के कारण पानी की इफ़रात थी। लाहौरिये अपनी सड़कों को पानी से धोते थे। बाग़-बागिचों से इसे सजाकर रखते थे। रावी के उस पार के चमन ख़ास तौर पर आँखों को सुरुर बख़्शते थे। एक तरफ़ कश्मीर, दूसरी तरफ़ काबुल कंधार, बलख़ और बुख़ारे के व्यपार के रास्ते में बसा यह शहर हर तरह के सौदागरों को आने का निमंत्रण देता। यहाँ की मण्डियों और बाज़ारों में गहमा-गहमी बारह महीने छाई रहती थी। परदेसी आते तो मेले-ठेले लगे

रहते। नाच-गाने की महफ़िलें जमतीं। हिन्दू लाहौर से प्यार करते थे। क्योंकि रामचंद्र के बेटे लव ने इसे बसाया था। मुसलमान इसके दीवाने थे। उनके पीर दाता शकरगंज का यहाँ आस्ताना है। मियाँ मीर जैसे सूफ़ी यहीं आ बसे थे। यह शाह इनायत क़ादरी और शेख़ भल्ली शाह जैसे फ़क़ीरों का ठिकाना था। शाह हुसैन, पीलू और छज्जू जैसे शायर लाहौर की शोभा बढ़ा रहे थे।

इस तरह के खाते-पीते खुशबाश शहर को जैसे नज़र लग गई हो। पिछले कुछ समय से क़हरों का सूखा पड़ा था। लाहौर में महामारी फैली हुई थी। लोग मक्खियों-मच्छरों की तरह मर रहे थे। अकबर बादशाह जो पिछले कई बरसों से लाहौर में टिका था, इन दिनों कलानौर चला गया था। एक तो अकाल, फिर चेचक का प्रकोप, लाहौर का बुरा हाल हो गया था। असल में गुरु महाराज के लाहौर आने का यही कारण था। लाहौर शहर को ज़रूरत थी किसी नेता की जो इस दुखदाई घड़ी में ग़रीब-गुरबे की ख़बर लेता।

लाहौर पहुँचते ही गुरु अर्जन देव जी ने लंगर शुरु कर दिया। बिना धर्म-कर्म, ज़ात-पात के भेद-भाव के आठों पहर लंगर लगाया था। गुरु के सिक्ख जत्थे बनाकर गली-गली में घूमते और सड़ रही लाशों को ठिकाने लगाते। बीमारों का इलाज होता, भूखों को पेट भर खाने को मिलता, लावारिस मुसलमान लाशों के कफ़न-दफ़न का इंतज़ाम किया जाता, हिन्दू मुर्दों का दाह-संस्कार होने लगा।

एक तरफ़ सूखा पड़ने से भुखमरी, दूसरी तरफ़ चेचक जैसी महामारी। बाज़ार बंद हो गए थे, लाहौर की गलियाँ सुनसान रहने लगी थीं। मुसलमानों को नमाज़ें भूल गईं, हिन्दू मंदिरों की ओर रुख़ नहीं करते थे। बस सिर्फ़ चूना मण्डी की धर्मसाल में दोनों समय कीर्तन होता था, आसा की वार, आनंद साहब का पाठ और फिर अरदास। भोग पड़ने पर गुरु सिक्खों की ड्यूटियाँ लगाई जातीं। लंगर का प्रबन्ध, बीमारों की दवा-दारू, मुर्दों की संभाल।

सूखे से बेकार हुए किसानों को काम पर लगाने के लिए गुरु महाराज ने डब्बी बाज़ार में तालाब खुदवाना शुरु कर दिया। इस काम की ज़िम्मेदारी कर्मचंद और हुकुमचंद नाम के गुरसिक्खों को बख़्शी गई। रिश्ते में सेहारिमल चाहे गुरु महाराज के बुज़ुर्ग थे, लेकिन सत्गुरु का प्रताप देख कर वे अपने आप को उनके सेवक और श्रद्धालु गिनते थे। हर काम में उनकी सलाह ली जाती थी। फिर दूनीचंद की बेटी शक्ति थी। उसे तो जैसे रब ने गुरु महाराज की सेवा का मौक़ा बख़्शा हो। दूनीचंद की हवेली में दवाख़ाना खोल दिया

गया था।

लाहौर शहर सचमुच 'ज़हर-क़हर' बना हुआ था। आकाश की आँख पहले की तरह सूखी थी। पूरे एक बरस से बारिश की एक बूँद भी नहीं बरसी थी। कुएँ और तालाब सूख गए थे। रावी नदी सिमटती-सिमटती न जाने कहाँ पहुँच गई थी। आस-पास के नदी नाले न जाने कब से आँख मिचौनी खेल रहे थे। चारों तरफ़ मवेशियों के हुजूम बेलगाम घूम रहे थे। जगह-जगह पर बेहाल होकर गिरते, एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर जान दे देते। आस-पास के ग्रामीण शहरों की ओर आते। शहर पहले से ही महामारी के कारण ख़ाली हो रहे थे।

कुछ हफ़्तों के बाद गुरु महाराज ने चून मण्डी वाले जन्मस्थान को भी गिराकर नए सिरे से बनवाना शुरु कर दिया, ताकि बेकार लोगों को काम मिल सके, भूखों का पेट भर सके।

तब भी पूरी नहीं पड़ रही थी। आस-पास की मण्डियों से धड़ा-धड़ मदद आ रही थी। गुरु महाराज अपनी निगरानी में बीमारों की तीमारदारी गली महल्लों की सफ़ाई, नालियों से गंदे पानी का निकास, लावारिस बच्चों का पालन-पोषण, विधवा हो गई औरतों की देखभाल करते।

गुरु महाराज लाहौर-वासियों को देख-देख कर हैरान होते। हिन्दू तो पहले से कर्म-काण्ड, रस्म-रिवाज, छूआ-छूत, भेद-भाव और कई तरह के वहमों और अंधविश्वासों से ग्रस्त थे, उनकी देखा-देखी मुसलमान भी टोने-तावीज़ों, शमशानों में विश्वास करने लगे थे। ख़ानक़ाहों पर दीये जलाते। मक़बरों पर माथे रगड़ने लगते। और तो और चेचक के डर से शीतलामाता के मंदिर में मिठाईयाँ चढ़ाते। माँस आदि से परहेज़ करते। सब्ज़ी-तरकारियों में भी मिर्च-मसाले से परहेज़ करते। कई लोग तो घर में आग तक न जलाते, कहीं माता ख़फ़ा न हो जाए। ठण्डी चीज़ों को तरजीह दी जाती। बासी रोटियों और मीठे चावलों को खाकर गुज़ारा करते। लोगों को समझाया गया कि यह बीमारी है, माता का क्रोध नहीं है। जहाँ तक हो, मरीज़ को अलग हवादार कमरे में रखा जाए। बुख़ार बढ़ने पर माथे पर ठण्डे पानी की पट्टियाँ रखी जाएँ। शीतला मंदिर से लाई गई मिट्टी में पानी मिलाकर मरीज़ पर छिड़काव न किया जाए। जब फफोले निकलें तो उसे फोड़ा न जाए। मवाद भर जाए, तब भी नहीं। सबसे ज़्यादा इस बात का ख़्याल रखा जाए कि जब फफोले सूख कर छिलके बन जाएँ तो उन्हें इक्ट्ठा करके जला दिया जाए या

धरती में गाड़ दिया जाए, ताकि हवा से उड़कर यह छिलके बीमारी न फैला सकें।

यह बीमारी जिस घर में घुसती है, पूरे परिवार को अपने साथ ले जाती है। गुरु महाराज सफ़ाई और ईश्वर भक्ति पर ज़ोर देते थे। ईश्वर के भाणे को मानने की ताकीद करते।

कुछ दिनों बाद इस मुहिम में गुरु महाराज का एक अनन्य सिक्ख वज़ीर ख़ान आकर शामिल हो गया। पूरे लाहौर में वज़ीर ख़ान का एक बड़े हकीम के रूप में चर्चा था। लेकिन उसे जलोदर की बीमारी थी। एक बार किसी गली में से गुज़रते हुए उसे सुखमनी साहब की कुछ पंक्तियाँ सुनाई दीं। उसे लगा जैसे तप रही धरती पर रिम-झिम फुहार आ गई हो। सुखमनी साहब के रोज़ाना पाठ से वह फिर स्वस्थ हो गया।

अभी गुरु महाराज लाहौर में ही थे कि उन्हें ख़बर मिली कि साहबज़ादे हरिगोबिंद जी को भी चेचक निकल आई थी। माता जी समेत सब परेशान थे। लगातार सन्देशे आ रहे थे। लेकिन लाहौर में शुरु किए काम को बीच में छोड़कर वह नहीं जा सकते थे। जिन हिदायतों का प्रचार लाहौर में किया जा रहा था, उन्हीं को गुरु महाराज ने माता जी को भी भिजवा दिया। घर-बाहर गली-मुहल्ले की सफ़ाई। बच्चे को खुले हवादार कमरे में रखना और सुबह-शाम शब्द कीर्तन करना और हरि का नाम जपना। ग़रीब-गुरबे की सेवा करना।

लेकिन साहबज़ादे की हालत तो पहले से ही ख़राब हो गई थी। माता गंगा जी को डर था कि उनके बैरियों में से शायद किसी ने जादू टोना न करवाया हो। लोग उन्हें समझाते थे कि यह माता का क्रोध था। उन्हें शीतला मंदिर जाकर प्रसाद चढ़ाना चाहिए, पूजा करानी चाहिए। गुरु महाराज इन सब बातों की सख़्त मनाही करते थे। लेकिन साहबज़ादे का बुख़ार तो क़हर ढा रहा था। वे ज़ोर से चीख़ें मार रहे थे। उधर शरीर के चप्पे-चप्पे पर निकले फफोलों का दर्द। माता गंगा जी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। साहबज़ादा तो हाथ से जा रहा था। माता जी बार-बार सिक्खों को गुरु महाराज की ओर दौड़ा रही थीं। उधर गुरु अर्जन देव जी की मजबूरी थी कि अपने सिर पर ली गई ज़िम्मेदारी से कैसे आँखें मूँद लेते।

आख़िर परेशान होकर माता जी ने कहलवा भेजा—"बच्चा हाथ से गया समझो, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा।"

गुरु महाराज ने पास पड़े काग़ज़ पर एक दोहा लिखा और माता जी को भिजवा दिया।

जब गुरसिक्ख वापस पहुँचा तो साहबज़ादे को भला चंगा देखा—माता जी ने गुरु महाराज का भेजा लिफ़ाफ़ा खोला। काग़ज़ पर एक दोहा लिखा था :

शीतला ते रखिआ बिहारी ॥
पार ब्रह्म प्रभ किरपा धारी ॥

(22)

लाहौर में हालात सामान्य हो रहे थे। बारिश हो गई थी। महामारी का क्रोध मध्य पड़ गया था। गुरु महाराज को लाहौर में आए कोई आठ महीने बीत गए थे। उनके पीछे अमृतसर में हर घड़ी हर पल उनकी प्रतीक्षा हो रही थी। लाहौर से चलने से पहले उन्होंने फ़ैसला किया कि एक शाम वे मियाँ मीर जी के यहाँ रहेंगे। यह सुनकर गुरु अर्जन देव जी आ रहे हैं, लाहौर के कुछ शायर भी मियाँ मीर जी के आस्ताने पर इक्ट्ठे हो गए। हर किसी की ज़बान पर यह चर्चा थी कि सूखे और महामारी के दिनों में गुरु अर्जन देव जी ने लाहौर वालों की कितनी सेवा की थी। उस शाम गुरु महाराज से जो कवि मिलने आए थे, उनमें शाह हुसैन, छज्जू, पीलू और काना थे।

शाह हुसैन सूफ़ी फ़क़ीर थे। पीलू ने मिर्ज़ा साहिबाँ का क़िस्सा लिख कर बड़ा नाम पैदा किया था। गाँव-गाँव में मेलों-ठेलों में लोग पीलू के क़िस्से की फ़रमाइशें करते थे। छज्जू और काना भगत थे।

गुरु अर्जन देव जी की बाणी ख़ुद उनके मुँह से सुनने और अपनी कविता उन्हें सुनाने का यह बढ़िया मौक़ा था। कुछ देर एक दूसरे की ख़ैरियत सुनकर-बताकर मियाँ मीर जी के कहने पर फिर कवि गोष्ठी हुई।

मियाँ मीर जो के इशारे पर सबसे पहले काना भगत जी ने अपना कलाम पेश किया। काना भगत जी सच्चे सादा जीवन का प्रचार करते थे। उनकी कविता पर उस समय के सूफ़ी मत की छाप थी। सबसे पहले उन्होंने यह काफ़ी सुनाई :

औघड़ पंथ प्रेम पैण्डे मैं इकलड़ी मुट्ठी।
गुज्झी सांग लगी तन मेरे, करक कलेजे नूं उट्ठी।
जे सौ आखां मुड़ सां नाहीं, कदर खल उपट्ठी।
कान्हा कहै मैं थल चढ़ कूकां, मैं इश्क पुन्नूं दे लुट्ठी।

हर कोई वाह-वाह कर रहा था। श्रोताओं की ओर से एक और काफ़ी सुनाने की फ़रमाहश की गई।

अब कान्हा जी ने भक्ति-रस की एक रचना पेश की :

"पंडिता ऐ विधि कभि समझाई,
नरक़ सुरग और बुद्ध मुक्त कहो, कवन दिसा कहै भाई?
उत्तर कि दक्खिन, पूरब कि पच्छिम, आकास पियाल कि माही?
बिन गोबिन्द और नाहीं, कोई औगात कहां ते जाही।"

....

कान्हा ने काफ़ी के यह बोल ख़त्म ही किए थे कि भगत छज्जू ने यह फ़रमाइश की कि—"सलले सलल समझीए" वाली काफ़ी वे सुनाएँ। सब ने इसकी ताईद भरी। कान्हा जी ने तीसरी काफ़ी गाकर सुनाई :

जिनी आप पछाता, सो आतम-दरसी कहीयै।
आपु महि खोजे, आपी महि बहीये।
लीव दसवें लावऊ गगन, मगन होए रहीये।
सब कान्ह ही कान्हा, जैसी सलले-सलल समाईये।

यह काफ़ी सुन कर श्रोताओं पर भक्ति का रंग चढ़ गया।

अब साईं मियां मीर जी ने भगत छज्जू जी को इशारा किया। भगत छज्जू जी ने गीता का कविता में अनुवाद किया था। उनकी कविता में भी भक्ति की रंगत थी। दुनियावी सुख त्याग कर वे ईश्वर भक्ति से जुड़ने की सलाह देते थे।

पंज पैसे तेरी गुथली, त्रै मूठे दुई खोटु।
छज्जू खोटा वणज करेन्दियां, नित टुटाऊ तोटु।
मूड़ी टके सत करो, वण ना ना सार।
छज्जू नाल सुजान दे संग कर, लंघी वंझे पार।

लगता था छज्जू भगत जी की बात नहीं बनी। शायद उनकी बोली भाषा ही मुख्य कारण थी। हल्की-सी वाह-वाह हुई फिर चारों तरफ ख़ामोशी छा गई।

अब मियां मीर जी ने पीलू की ओर इशारा किया। कवि पीलू अपने किस्से मिर्ज़ा साहिबाँ के लिए बेहद लोकप्रिय हो चुके थे। उनके किस्से के कुछ बोल तो हर आदमी की ज़बान पर थे। गाए जाते थे। गली मोहल्लों में, बैठकों में, सभाओं में गाए जाते थे :

पीलू आखे शायरा कितवल गया जहान
बह-बह गय्याँ मजलिसाँ, लग-लग गए दीवान

....

चढ़ दे मिर्ज़ा ख़ान नूँ जट वंझल देंदा मत्त।
भठ रन्ना दी दोस्ती, खुरी जिना दी मत्त।
हस-हस लान दियाँ यारियाँ, रो-रो देंदियाँ दस्स।

....

साहिबाँ गई तेल नूं, गई पसारी दी हट्ट।
तेल भुलावे बाणियाँ दित्ता शहद पलट।
वणज गवालये बाणियाँ बलद गवालये जटट्।
तिन सो नागा खिड़ रिहा हो गए चौड़ चपट्ट॥

उस शाम की मजलिस में पीलू जी ने जान बूझ कर भक्ति-रस के श्लोक पेश किए :

पीलू असां नालों सो भले जो जमद्याँ ही मोये।
उना चिक्कड़ पाँव न बेड़िया, न आलूद भये।
पीलू पुछ दा टिकरी तेरा कौन मकान।
किथ्थे हाथी घोड़ियाँ, किथ्थे लाल निशान?
किथ्थे मट शराब दे, किथ्थे लील दुकान।
नारी अते गभरु, कबंरा विच इस्थान।

अब मियां मीर ने शाह हुसैन की ओर देखा। शाह हुसैन की शायरी में सूफ़ी रंग भाया था। लाल कपड़ों में लिपटा शाह हुसैन वज्द में आकर अपने शेर पेश कर रहा था। बहुत देर तक एक के बाद एक काफ़ी दोहे गा-गाकर सुनाता रहा :

दरद विछोड़े का हाल, नीं मैं किन्नू आखाँ?
सूलाँ मार दीवानी कीती,
बिरहों पिया साडे खियाल, नी मैं किन्नू आखाँ?
कहे हुसैन फ़कीर सांई दा,
देख निमाणियां दा हाल, नी मैं किन्नू आखाँ?

....

रब्बा मेरे हाल दा महरम तूँ,
तू है ताना, तू है बाना, सब कुछ मेरा तूँ।

कहे हुसैन फ़कीर निमाणा मैं नहीं सब तूँ।

....

सजन बिन राताँ होईयाँ वड्डियाँ,
मास झरे झर पिंजर होया, कण-कण गईयाँ हड्डियाँ,
इश्क छुपायां छुपदा नाहीं, बिरहों तनावों गड्डियाँ।
राँझां जोगी मैं जो झाणी, मैं केकर छड्डियाँ।
कहे हुसैन फ़क़ीर सांईं दा, तेरे दामन लग्गियाँ।

वक़्त बहुत बीत चुका था, अभी तो लोगों को गुरु महाराज को भी सुनना था। मियां मीर जी ने कई बार हाथ उठाकर शाह हुसैन को रुकने के लिए कहा। लेकिन वह तो आँखें मूंद कर एक नशे में, एक आवेश में, सर मार-मार कर गा रहे थे। अब उन्होंने एक और काफ़ी शुरू कर दी थी :

जेती-जेती दुनिया मेरे राम जी तैथों मंग दी
कुण्डा देईं, डण्डा देईं, कोठ्ठी देईं भंग दी
साफ़ी देईं, मिर्चां देईं, मित्रति देईं रंग दी
पोस्त देईं, बाटी देईं, चाटी देईं खंड दी
शान देईं, ध्यान देईं, महिमा साधू संग दी।
शाह हुसैन फ़कीर साईं दा; ऐ ही दुआई मलंग दी।

शाह हुसैन जी "मेहमाँ साधू संग दी" बार-बार पुकार रहे थे बाहें फैलाकर जैसे मिन्नतें कर रहे थे। काबू में ही नहीं आ रहे थे। बड़ी मुश्किल से मियां मीर जी ने उन्हें पकड़ कर अपनी बाहों में लपेट लिया।

अब सब की नज़रें गुरु अर्जन देव जी के ऊपर लगी हुई थीं। सारे हाथ जुड़े हुए थे, जैसे प्रसाद की माँग कर रहे हों। सच्चाई यह थी कि लाहौर के सभी बड़े-बड़े कवि मियां मीर जी से मिन्नतें कर रहे थे कि अमृतसर लौटने से पहले एक महफ़िल में उनकी मुलाकात गुरु साहब से कराई जाए। इनमें कुछ की मर्ज़ी यह भी थी कि किसी न किसी तरह जो ग्रंथ महाराज जी की अगुवाई में तैयार किया जा रहा था, उसमें इन लोगों की कविता भी शामिल की जाए।

समय बहुत हो गया था और अगली सुबह गुरु महाराज को अमृतसर के लिए प्रस्थान करना था, इसलिए उन्होंने जैत श्री राग में उच्चारे गए एक शब्द के दो छंद सुनाने का फ़ैसला किया :

दासन प्यासी दिन सू राति चितवऊ अनदिन नीत ॥

खोलि कपट गुर मेलीआ नानक हरि संगि मीत ॥१॥
सुन यार हमारे सजन इक करऊ बेनंतिया ॥
तिसु मोहन लाल प्यारे हऊ फिरऊ खोजंतिया ॥
तिसु दस प्यारे सिर धरी उतारे इक भोरी दरसनु दीजै ॥
नैन हमारे प्रिया रंग रंगोर इकु तिलु भीना धीरी जै ॥
प्रभ सिउ मनुलीना जीउ जैसे जल मीना चात्रिक जीवैं तिसंतिया॥
जन नानक गुरु पूरा पाया सगली तिखा बुझंतिया ॥१॥
यार वे प्रिय हभे सखिया मू कहिन जेहिया ॥
यार वे हिक्डूँ हिकचाड़ै हऊ किसु चितेहिया ॥
इक दूँ, इकि चाड़े अनि प्यारे नित्य कर दे भोग बिलासा ॥
तिना देखि मनि चाऊ उठंदा हऊ कदि पाइ गुण तासा ॥
जीनी मझडा लालु रीझाया हऊ तिसु आगै मनु डेंहिआ ॥
नानकु कहै सुणि बिनऊ सुहागनि मूदसि डिक्खा पिरु केहिआ ॥२॥
(जैतसरी महला ५ छंद घर एक)

बेशक रात बहुत बीत गई थी, लेकिन शाह हुसैन की ज़िद थी कि वे गुरु अर्जन देव जी द्वारा रचित "बारह माह" ज़रूर सुनेंगे। बारह माह लंबी रचना थी इसलिए मियां मीर जी के कहने पर गुरु महाराज किसी एक महीने का पाठ सुनाने के लिए राज़ी हो गए :

मघ्घर माह सोहंदिया हरि पिर संग बैठड़िआह ॥
तिन की सोभा किया गणी जि साहिब मेलड़िआह ॥
तन मनु मऊलिया राम सिऊ संग साध सहेलड़िआह ॥
साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़िआह ॥
तिन दुखु न कबहू उतरै से जम कै वीस पड़ियाह ॥
जिनी राविआ प्रभु आपणा से दिस्सनि नित्य खड़िआह ॥
रतन जवे हर लाल हरि कंठ तिना जड़िआह ॥
नानक बाँछे चूड़ि तिन परभ सरणि दरि पड़ियाह ॥
मंघ्घरी प्रभु अराधना बहुड़ि न जनमड़ियाह ॥

गुरु महाराज ने यह शब्द ख़त्म ही किया था कि इस बार मियां मीर जी कहने लगे एक और शब्द मेरी फ़रमाइश पर। मियां मीर जी को इंकार करना मुमकिन नहीं था। गुरु महाराज ने बिलावल राग में यह शब्द सुनाया।

सांति पाई गुरु सति गुरु पुरे ॥

मुख उपजे बाजै अनहद तुरे ॥ राहऊ ॥
ताप, पाप, संताप विनासे ॥
हरि सिमरन किल विक्ख सभी नासे ॥
अनदु करहू मिलि सुंदर नारी ॥
गुरि नानकि मेरी पैज सवारी ॥ २ ॥

क्या छज्जू भगत, क्या काना, क्या पीलू, क्या शाह हुसैन सब जैसे सकते में आ गए हों। गुरु महाराज जैसे उठ कर खड़े हो गए। बाहर उनकी पालकी आई हुई थी। गुरु सिक्ख बड़ी देर से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। घण्टियाँ बजाते हुए पालकी वाले जब आँख से ओझल हुए तो शाह हुसैन और पीलू दोनों के मुँह से एक ही साथ निकला—"अनदु करहू मिली सुंदर नारी ॥ यह सुनकर मियां मीर जी उनकी बेचैनी समझ गए। फिर भीतर अपने हुजरे में बैठ कर उन्हें समझाने लगे—"हमारे और बाबा नानक के घर में यही फ़र्क़ है" वे हँसते, खेलते, पहनते, खाते अल्लाह को पाने का रास्ता जानते हैं। हम दुनिया को घर-बाहर को छोड़ कर भटकते रहते हैं।"

तो फिर हमारी कविश्री का क्या होगा। काना भगत पूछने लगा।

जो ग्रंथ गुरु महाराज तैयार कर रहे हैं उसमें वह शमिक नहीं हो सकेगी। छज्जू भगत ने कहा तो बाक़ी लोग एक दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे।

इतने में मियां मीर जी उठ कर बाहर निकल गए थे।

(23)

जैसे किसी को पागलपान सवार हो गया हो। बरकते की हालत कुछ इस तरह की थी। उसके घर वाले ने बड़ी मुश्किल से उसे मज़हबी जुनून से निकाला था। न इस्लाम, न कोई गुरु, न कोई सूफ़ी न कोई संत। आजकल उस पर एक नया पागलपन सवार हुआ था जिस क्षण से उसने शहज़ादा सलीम के महलों की एक कनीज़ नादिरा की मुहब्बत की दास्तान सुनी थी तो जब घर वाला कचहरी से वापस आता तो वह पहला सवाल यही पूछती "आज क्या हुआ है?" किस बारे में क्या हुआ है?" यूसूफ़ जान बूझकर उसे चिढ़ाता। नादिरा के बारे में बरकते खीजकर पूछती।

तेरी नादिरा को ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ देने का हुकूम जारी किया गया है। यह क़हर है, बेइंसाफ़ी है।"

"बदतमीज़ लौण्डी शहज़ादा सलीम की मंजूरे नज़र क्या हो गई उसका

दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया है।"

"उसे शंहशाह अकबर ने खुद अनारकली कह के तारीफ़ की है। इसका मतलब यह नहीं कि बह मल्लिका बन गई है।

हर हसीन औरत मल्लिका होती है जो किसी के दिल पर राज करती है। अनारकली का परस्तार तो वली अहद सलीम है।

महाबली ने जान बूझकर उसे नाचने के लिए शीश महल में बुलवाया। हमने उसे समझाया, उसकी माँ को समझाया कि नाचते वक़्त एक नज़र उठा कर भी शहज़ादा सलीम की तरफ न देखे, शहंशाह तो उसका इम्तहान ले रहे हैं।

तो फिर कौन सी बिल्ली ने छींक मार दी।

"गवाँर लौण्डी"। उसने शहंशाह की ओर आँख उठा कर नहीं देखा लेकिन शहज़ादा सलीम के चेहरे से उसकी नज़र हिल ही नहीं रही थी। लगातार उसकी ओर देखे जा रही थी। तौबा-तौबा वह कैसे नाच रही थी जैसे किसी पर भूत सवार हो गया हो। तबलची थक गया, सारंगी वाला पछाड़ खा-खा कर गिर रहा था लेकिन वह थी कि एक ताल में नाचे जा रही थीं बदन से पसीना चू रहा था उसका अंग-अंग एक उन्माद में छलक रहा था। खुद शहंशाह अकबर वहाँ जलवा अफ़रोज़ थे और यह बेहूदा लड़की उनकी तरफ़ देखे बग़ैर जैसे शहज़ादे सलीम की बलाएँ ले रही हो, उसे सिज्दे कर रही हो, उसकी हर तान शहज़ादे के अरदल में टूटती। जैसे रबड़ की गुड़िया हो। चमचमाती, झूमती, चंबे की छड़ी जैसी गौरी चिट्टी अपने ताल को और-और तेज़ करती हुई एक लटटू की तरह घूम रही थी। लगता था अगले क्षण ही वह हवा में उड़ जाएगी। इसी वक़्त भरे दरबार में शहज़ादा सलीम ने न अपने अब्बा हुजूर, न किसी दरबारी की परवाह करते हुए अपना लाखों रुपयों का मोतियों और हीरों का हार गले से उतारकर लड़की के क़दमों में ढ़ेर कर दिया। मालूम है उस कम अक़्ल ने क्या किया?"

"तस्लीम की होगी और मोतियों का हार, कबूल कर लिया होगा।"

काश! उसने ऐसा किया होता, तेरी अनारकली ने हार को उठाकर चूमा, आँखों से लगाया ओर अपने गले में पहन लिया। अब वह नाचने ही लगी थी मि शहंशाह ने मजलिस बर्खास्त कर दी और हुक्म दिया मि इस बदज़ात लौण्डिया को ज़िन्दा ज़मीन में दफ़ना दिया जाए।

"महाबली अकबर कभी इस तरह का हुक्म नहीं दे सकते थे। यह

आपके जैसे किसी सड़े हुए क़ाज़ी की करतूत होगी।"

"तुझे हमेशा अपने शहर के क़ाज़ी में ऐब नज़र आता है।"

"महाबली अकबर के राज में यह कभी नहीं जो सकता।"

बाहर से खेल कर आया बरकते का बेटा माँ-बाप में तकरार सुन कर एक तमाशाहे की ज़बान में कह रहा था।

बीच में सिर्फ एक ही रात है। सुबह ढ़ोल बजेगा। गली-गली शाही एलान सुनाया जाएगा कि नीले गुम्बद के पीछे दिन-दहाड़े सारी जनता के सामने अनारकली को दीवार में चुनवा दिया जाए।

"यह अन्याय है।" बरकते उछल रही थी।

"तेरा मतलब है कि कनीज़ को यह हक़ दिया जाए कि वह मुग़ल तख़्त के जानशीन पर जादू-टोना करके हिन्दुस्तान का राज सम्हाले।" उसका पति उसे समझा रहा था।

"सलीम उस से प्यार करता है।"

एक शहज़ादा जिस को चाहे प्यार कर सकता है। इसका यह मतलब नहीं कि उसे सर पर उठा लिया जाए।

"अनारकली ने कब कहा है किं उसे कोई सर पर उठा ले।"

"तो वह फिर और किसी से निकाह क्यों नहीं पढ़वा लेती?"

मरद ज़ात ने औरत को कभी नहीं पहचाना। औरत अपने दिल का सौदा सिर्फ़ एक बार करती है। वह तो वली अहद के साथ कहीं भाग जाना चाहती थी।

"आपका मतलब है कि अनारकली के लिए शहज़ादा सलीम तख़्त छोड़ने के लिए तैयार था।"

"बेशक दिलाराम नाम की एक लौण्डी ने उनकी मुख़बरी की है।"

"कमबख़्त खुद शहज़ादे पर फ़िदा होगी।"

"यह तू कैसे कह सकती है?"

हुक्मरानों के हुक्म में और होता ही क्या है, ख़ैर इस बार तो तेरही उँगली सच्चाई की ओर इशारा कर रही है।"

"भला कैसे।"

"सच मुच दिला राम नाम की यह लौण्डी सलीम पर जान देती है। इसकी तस्दीक़ हो चुकी है। लेकिन इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि वली अहद को दो कौड़ी की एक नाचने गाने वाली के लिए हिन्दुस्तान की हुकुमत

कुरबान करने की इजाज़त दे दी जाए।"

"इस सज़ा से उस लड़की को बचाने का कोई तरीक़ा नहीं।"

"कोई नहीं।"

"उसे दीवार में चुनवाया जाएगा फ़रमान जारी हो चुका है। शाही हुक्म की तैयारी शुरु भी हो चुकी है।"

"उस बदनसीब लड़की की कोई भी मदद नहीं कर सकता।"

"कोई नहीं।"

"मेरे गुरु महाराज कर सकते हैं। गुरु अर्जन देव जी आजकल बाबा नानक के तख़्त पर जलवा अफ़रोज़ हैं। हाय मैं कितनी बदनसीब हूँ उनसे कितनी दूर निकल आई हूँ।"

"अच्छा ही हुआ। तू उनके साथ होती तो तेरा अपना हश्र भी कुछ इसी तरह का होता।"

"क्या मतलब?"

"तेरे इस घर की चार दीवारों से बाहर बहुत कुछ होता है बीबी, जिसकी ख़बर तेरे कानों तक नहीं पहुँचती। मुग़लों और मुग़लों के मुसाहिबों को यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दुस्तान का राज बाबा नानक ने उन्हें बख़्शा है।"

"अमृतसर के काफ़िरों के लिए तेरे दिल में अभी तक अक़ीदत बाक़ी है।"

"काश होती।"" यही तो मेरा सरमाया था जिसे तेरे साथ रहकर मैं गवाँ बैठी।"

"इसको औरत ज़ात का पागलमन कहते हैं।" यूसूफ़ ने एक जीते हुए हुक्मरान की तरह बरकते की तरफ़ देखा और उसे बाँह से पकड़कर साथ के कमरे में ले गया। साथ उनका बेटा था। दस्तर खान और मुलाज़िम ने खाना परोस दिया था।

बरकते से उस शाम खाना नहीं खाया गया। सोचों में डूबी वह अपने पति (घर वाले) को, अपने बेटे को खाना खिलाती रही। क़भी- कोई खाद्य पदार्थ उनके सम्मुख रखती, कभी कोई पकवान उन्हें पेश करती। बरकते सोच रही थी, वह कैसे इस मर्द के हाथ बँधी गुलाम बनी हुई थी। इस तरह की तो वह कभी भी नहीं थी। जो यूसफ ने यह कहा था मि किसी मर्द का साथ एक औरत की जिन्दगी का अल्लमिया हो सकता है, इसके एक बहुत अहम सच्चाई छिपी थी। यूसफ के साथ के लिए उसे एक बहशत, जो उसके

हाथ में आई थी, गुम हो चुकी थी। यूसफ का साथ दे रहा बेटा, जो उसने उसे दिया था। जिस दिन से वह इस बेटे की मां बनी थी, उसने कभी भी कमाल का स्मरण नहीं किया था। एक पैंदा या फिर उसका पिता यूसफ।

(24)

बरकते की उस सारी रात पलक नहीं लगी। एक निर्दोष को जैसे दरगोर किया जा रहा था। यह कहाँ का न्याय था? पर न्याय था भी कहां? फिर बरकतें के अन्दर से आवाज़ आती, उसका अपना घरबाला (पति) शहर का मुफ़्ती अपनी पहली पत्नी का रतआरा था और उसकी कभी किसी ने पुछ-पड़ताल नहीं की थी। मुगलों का इन्साफ पता नहीं कैसा था?

यूसफ की पहली पत्नी का जब भी सोचती, बरकतें को लगाना वह औरत मरी नहीं होगी। ज़रूर कहीं जीवित होगी। भले ही वह अमृतसर गुरु महाराज के चरणों में टिक गई हो। जिस तरह की पगली औरत यूसफ उसे बतलाता था, वह कुछ भी कर सकती थी। यह भी सम्भव था, किसी दिन वह उनके आँगन में आ जाए। निकाह से ली गई औरत (स्त्री) थी। यूसफ ने उसे तलाक तो दिया नहीं था। मुसलमान मर्द एक से अधिक पत्नियां रख सकता है। वह आएगी तो बरकते को धक्के मारकर बाहर निकाल देगी।

उसकी मजाल नहीं थी। फिर बरकते सोचती, इसका यूसफ के साथ पहले निकाह हुआ था। अब तो बरकते यूसफ के लालों जैसे बेटे पैंदाखान की मां थी। कितना सुन्दर जवान होगा।

और फिर बरकते को अपने दूसरे बेटे की याद आती। चप्पे की दूरी पर वह अमृतसर में रहता था और मजाल है कभी उसने जमाता (मां) याद किया हो। और बरकते की पलकें गीली हो जातीं। उसने कमाल के साथ हमेशा अन्याय किया था। यदि वह नहीं आया था तो आप कौन सी उसकी खबर लेने गई थी? जैसे सड़े गरों से जोगी निकलता है, ऐसे अमृतसर को छोड़कर यह आ गई थी और यहां आकर वह एक और बेटे की मां बन गई थी। इसका मुँह भी कौन सा था उनके जाने का? लाहौर के मुफ्ती की औरत। वह सात पर्दों में रहती थी। उसकी सन्तान को पाल रही थी।

अगली सुबह जिस (हठ) करके बरकते यूसफ के साथ चल पड़ी। उनका बेटा पैंदा मरतब जा रहा था। फैसला यह हुआ कि जिस स्थान पर अनारकली को दीवार में चिनवाया (चिना) जा रहा था उसके सम्मुख की मंजिल को चौबारे में जालीदार पर्दे के पीछे वह इस कहर (जुल्म) को अपनी

आँखों से देखेगी।

"पर इस सब की शहज़ादा सलीम कैये इज़ाजत दे रहा है?" रास्ते में बरकते अपने मर्द से पूछने लगी।

"वह कौन होता है इज़ाजत देने वाला? शंहशाह के फरमान की तामील हो रही है।"

"मुझे लगता है, वह किसी न किसी तरह यह वारदात नहीं होने देगा।"

"बीबी, हमने कच्ची गोलियां (कौडियां) नहीं खेली। शहजादे को उसके एवान में बंद कर दिया गया है।"

"क्या मतलब, सलीम को कैद कर दिया गया है?"

"कैद (जेल) हिरासत में है वह। उसके साथ के लिए उसका दोस्त बख्तिआर भी उसके संग है।"

"और कहीं शहज़ादा को बेथही न कर बैठे?"

"बेशक।"

"मैं सोचती हूँ यह कहीं पिता-पुत्र में अनारकली की मुहब्बत की फुसफुसी दास्तान तो नहीं।"

"महाबली के विषय में यह इलजाम (दोष) कोई नहीं सोच सकता।"

"मेरा मतलब है नादरा को अनारकली का नाम तो तुम्हारे महांबली ने ही दिया था।"

"वह नाच रही थी, गा रही थी कि जहांपनाह ने उसके हुसन उसके नाच गाने की दाद देते हुए उसे अनारकली कह कर पुकारा। हर शंहशाह इसका हकदार होता है।"

इस तरह की फ़िज़ूल (व्यर्थ) बहस पति-पत्नी में हो रही थी कि वे उस मंज़िल पर जा पहुँचे जहां बरकते अनारकली को बंदीखाने में से लाया जा रहा देख सकेगी और उसे ज़िंदा दरगोर कर दिया जाएगा। बरकते सोचती आज ज़रूर कुछ हो कर रहेगा। इस तरह के अनर्थ कुदरत कैसे कबूल कर सकती थी। पर इस मंज़िल में तो ढेर से लोग इकट्ठे थे।

तमाशबीन।

इन लोगों में शाही हरम की दिलाराम नाम की कमीज़ भी थी। जब उसे पता चला कि शहर का मुफ़्ती अपनी बेगम के साथ उस मंजिल में आ रहा है तो उसके हाथ-पैर डर से फूल गए। पसीने छूटने लगे। बार-बार वह हाथ जोड़ती। हाथ फैलाकर सिज्दे में गिर जाती। किसी की समझ में कुछ नहीं

आ रहा था, कोई कुछ सोचता तो कोई कुछ कहता।

सामने एक पुरानी खोली को साफ करके तीनों की तरफ दीवारों की चिनाई शुरू हो गई थी। बीच में बस इतनी जगह छोड़ दी गई थी जिसमें एक आदमी मुश्किल से खड़ा हो सकता था। दोनों तरफ सरकारी प्यादे उस जगह को घेर कर खड़े थे। उनके पीछे हाथ में नेज़े पकड़े, फौजी वर्दी पहने घुड़ सवार थे।

"बस कोतवाल के आने की कसर है फिर मुलज़िम को लेकर शाही हुक्म की तालीम कर दी जाएगी।" यूसूफ ने सामने के नज़ारे का जायज़ा लेते हुए बरकते से कहा। अलग कमरे में कदम रखते ही बरकते पर जैसे एक दहशत छा गई हो। फटी-फटी आँखों से वह सामने खण्डहर को देख रही थी। जिसमें चमगादड़ों के अण्डे थे। जगह-जगह कुत्तों का फेंका हुआ गन्ध था आख के पौधे, हरमल के कंटिले पेड़ चप्पे-चप्पे पर उगे हुए थे।

"वक़्त तो हो गया है, पता नहीं देर क्यों कर रहे हैं? मुलज़िम को लाना चाहिए।" युसूफ ने फिर कहा।

वह मुलज़िम ज़रूर है पर कसूरवार नहीं। इतने में दायें हाथ के परदे के पीछे से एक नाज़नीन आगे बढ़ी और युसूफ़ के कदमों में गिर पड़ी उनके पीछे उसकी एक अभिन्न सहेली एक और सुन्दर औरत थी।

"हुजूर यह दिलाराम है महल की कनीज़। मैं मखादीद हूँ आप मेरे अब्बा इलाही बख़्श को जानते हैं।"

"हाँ लेकिन यह............युसूफ़ ने दिलाराम की ओर एक नज़र देखा। इतने में बरकते ने आगे बढ़कर उसे सामने रखी चौकी पर संभाल कर बिठा लिया।"

"हुज़र मरवादीद गवाह है, नादिरा का कोई क़सूर नहीं। सारा क़सूर मेरा है।" दिलाराम की आँखों में जैसे आँसूओं की झड़ी बह रही हो।

"यह नादिरा कौन है?" बरकते ने पूछा।

"नादिरा ही तो अनारकली है। यह नाम तो उसे एक दिन ज़िल्ले इलाही ने दिया था।" युसूफ़ ने बरकते को समझाया।

"तो इसी नाम के चलते सारी आफ़त आई है।" अब मखादीद बोल रही थी।

"हुजूर मैं छुट्टी पर गई हुई थी। मेरी अम्मा बीमार थी।" दिलाराम हाथ जोड़कर फिर युसूफ़ के कदमों में आ बैठी थी और लगातार बोलते जा रही

थी।" मेरी गैर हाज़िरी में जहान पनाह ने एक शाम नादिरा का नाच देखा, इस कमबख़्त का गाना सुना और वे इस पर मेहरबान हो गए।

"उसकी माँ ने नादिरा को भी तो बेहद सजा कर भेजा था।" मरवारीद बीच में वोली।

"क्यों न सजाती हर माँ बेटी को सजाती है, हर माँ चाहती है कि उसकी बेटी की चारों तरफ़ तूती बोले।" दिलाराम ने सबको ख़ामोश करते हुए अपना कलाम जारी रखा। शंहशाह ने खुश होकर उसे मोतियों और हीरों का हार बख़्शा था और उसे अनारकली कह कर पुकारा था। सुना है कि वह अनार की कली की तरह ही उस शाम महफ़िल में थिरक रही थी। कँवारी लड़की के पीले ज़र्द चेहरे पर गुलाबी आभा मचल रही थी। मैं जब छुट्टी से लौटी तो पूरे हरम पर जैसे अनारकली का राज था। मुझे कोई पूछता ही नहीं था। मुझे लगा जैसे किसी का राज-पाट छीन लिया गया हो। मैंने अपने मन को समझाया नादिरा ज़िल्ले इलाही की नज़रों में मक्बूल थी लेकिन वह मेरे सपनों तक नहीं पहुँच सकती थी, मैं तो शहज़ादा सलीम की दीवानी थी। मैंने सोचा उस मंजिल तक तो कभी भी नहीं पहुँच सकेगी। फिर एक शाम के अन्धेरे में मैंने क्या देखा अनारकली और सलीम, सलीम और अनारकली महल के बाग़ में एक ऊँची सी गुलाब की क्यारी के पीछे बैठकर दिल की बातें कर रहे थें, मन के भेद ले रहे थे। हाय मैं तो लुट गई, जिस शहज़ादे के मुँह सक एक बोल सुनने के लिए मैं कितने दिनों से तड़प रही थी वह तो जैसे अनारकली की मिन्नतें कर रहा था, मोहब्बत की ख़ैरात मांग रहा था और वह हसीन लड़की अपने परों पर पानी नहीं पड़ने दे रही थी। बार-बार यही की रही थी "ज़िल्ले इलाही क्या कहेगें? जहाँ पनाह मेरी बोटी-बोटी कटवा कर कुत्तों को खिला देंगे। मैं कहीं मुँह देखाने के क़ाबिल नहीं रहूँगी।" यह सुनकर मेरे तन मन में आग लग गई। जिस ने मत के लिए मैं अल्लाह के सामने आठों पहर हाथ जोड़ती थी। नादिरा उसे किस बेदर्दी से ठुकरा रही थी। कहानी यहीं खत्म हो जाती तब भी काई बात नहीं थी। लेकिन दरअसल बात यह थी कि वह लड़की दिली जान से शहज़ादे पर क़ुरबान हो गई थी। हर वक़्त चुप-चुप, हर वक़्त रोआँसी-रोआँसी रहने लगी थी। न हँसती न खेलती, न उसे गाना अच्छा लगता न नाचना। उसकी सहेलियाँ हैरान थीं। उसकी माँ परेशान थी। जैसे किसी की याद में गुम-सुम हो। किसी सपनों को सीने से लगाई मदहोश नज़रें चारों तरफ ताकत रहती।

जैसे कोई उसकी दुनिया में आने वाला हो लेकिन आ नहीं रहा था। जैसे कोई मुंडेर पर बैठ कर राहों पर इंतज़ार कर रहा हो। एक शाम तभी मखारीद ने आकर मुझे बताया कि उसने अपने आँखों से देखा था—सावन की फुहार पड़ रही थी महल की उसी ऊँची गुलाब की बेल के पीछे सरू के एक पेड़ से पीठ लगाए मेरा सलीम खड़ा था और नादिरा एक बेल की तरह उसके साथ लिपटती जा रही थी। हुजूर पहले नादिरा ने शंहशाह को अपना निशाना बनाया अब वली अहद को भी उसने काबू में कर लिया था। मुझे लगा कि जैसे मेरे सारे रास्ते बंद कर दिए गए हों। दिलाराम को भला यह कैसे मंजूर होता। कभी हरम की हर ज़बान पर दिलाराम की चर्चा होती थी। जिसके नग़में महल के हर कोने में गूँजते थे जिसके घुँघरूओं की झनकार सुन कर दरबारी साँस रोक लेते थे उस से उसकी सारी कायनात छीनकर उसे कंगाल बना दिया गया था और एक औरत की ईर्ष्या, कुछ दिनों बाद जब शीश महल में महफ़िल लगाने की शाही फ़रमाहश हुई तो मैं ने मरवारीद की मदद से शीशों को ऐसी तरतीब दी कि अनारकली और शहजादा सलीम की मोहब्बत का सारा राज़ फ़ाश हो गया। खुद ज़िल्ले इलाही ने भी अपनी आँखों से सब कुछ देख लिया। अनारकली जैसे शहज़ादे के लिए नाच-गा रही थी और वली अहद जैसे हर बोल और हर हरकत पर निसार हो रहे थे। भरी महफ़िल में किस तरह एक दूसरे को इशारे कर रहे थे। फिर शहज़ादा सलीम ने हीरों का वह हार गले से उतार कर अनारकली को पेश कर दिया था जो उसके अब्बा ने उसे तोहफ़े में दिया था। आख़िर कौन सा बाप यह बर्दाश्त कर सकता है? लेकिल मैं यह जानती थी कि जहाँपनाह नादिरा को ऐसी सज़ा देगें। हुजूर यह जुल्म है बे-इंसाफी है। आप शहर के मुफ़्ती हैं अब भी वक़्त है आप एक मासूम की जान बचा सकते हैं। मैंने जब से सुना है कि ज़िल्ले इलाही पधार रहे हैं, मैं आप पर ही आस लगाए बैठी हूँ। मैं आपकी कदम बोसी करती हूँ।

यह कहते हुए दिला राम मुफ़्ती युसूफ़ के क़दमों में ढ़ेर हो गई। वह बेहोश हो गई थी। उसे होश में लाने के लिए सब भाग-दौड़ कर रहे थे।

(25)

इतने में इक्के पर सवार होकर कोतवाल आ गया। कोतवाल के आने की देर थी कि संगिनों से लैस सिपाहियों के घेरे में एक डोली उतारी गई और अगले क्षण डोली में से अनारकली निकली। उसने पर्दा हटाकर क़दम

बाहर रखा तो आस-पास जमा लोगों की साँस जैसे रुक गई।

जैसे झम-झमाती दुल्हन हो। लाल सूर्ख़ रेशमी कपड़ों में, सलमे-सितारे से जड़े लाल दुपट्टे से अपने फूल चिड़ियों से सजाए बालों को ढकने की बेकार कोशिश कर रही थी उसने चारों तरफ़ हज़ारों की गिनती में खड़ी जनता को झुककर सलाम किया। जैसे पके हुए अनार की ताज़ी कली हो, उसके चेहरे से सुर्खी फैल रही थी।

गहनों से लदी हुई थी। मांग में चन्द्रमा, माथे पर टीका, कानों में कर्ण फूल, मोर भँवर और बालियाँ। नाक में हीरे की लौंग, जिसकी चमक सबको चकाचौंध कर रही थी। नाक में ओठों तक झूलती हुई नथ। गले में सच्चे मोतियों और हीरों के रानीहार जो उसे ज़िल्ले इलाही और शहज़ादा सलीम ने बख़्शे थे। सोने की अशिर्फियों की हमेल। बाहो में बाजू बँद। कलाईयों पर गजरे और कंगन कोहनियों तक पहनी चूड़ियाँ, कमर में सोने के कमरबंद और मेखला, उँगलियों में अगूँठियाँ, ऐडियों में चाँदी के घुघँरूओं से सजी पायलें जो छन-छनाने के लिए बेताब हों। पैरों अंगूठों में छल्ले।

सामने बनाई गई दीवारों की तरह संगीनों से लैस प्यादे मुलाज़िमा को ले जा रहे थे, इतने में एक डोली और आई। इसमें अनारकली की माँ और उसकी बहन सुरैया थी। कहारों ने डोली नीचे रखी ही थी कि उसकी माँ ने डोली से बाहर निकल कर अपनी बेटी को बाहों में ले लिया। चार क़दमों की दूरी पर सुरैया दुल्हन की तरह सजी फटी-फटी आँखों से अपनी बहन को देख रही थी। स्तब्ध। जैसे उसकी समझ में नहीं आ रही थी कि अब क्या होने जा रहा है। सुरैया सोच रही थी क्या सचमुच उसकी बहन की बली अहिद सलीम से मोहब्बत करने की सज़ा ज़िन्दा गाड़ कर दी जाएगी। वह तो कहा करती थी कि मैं शहज़ादे की तरफ कभी आँख उठाकर नहीं देखती अगर मैंने उसकी आँखों में मोहब्बत की तस्वीर को पढ़ लिया तो मैं क्या करूँगी? और फिर वही बात हुई एक नज़र उसके चेहरे पर डालते ही वह वली अहद की बाहों में ढेरी हो गई। सुरैया के कहने ही पर तो उसने ऐसा किया था अगर किसी को कोई मुग़ल शहज़ादा प्यार करे तो कोई भला कैसे उसको अन्देखा कर सकता है। सलीम तो उसे अपनी मल्लिका बनाना चाहता था। बार-बार कहता था "अगर ज़िल्ले इलाही इजाज़त नहीं देगें तो हम कहीं निकल जाएँगे। मैं तेरे साथ किसी गुमनाम नुक्कड़ में रूखी-सूखी खाकर गुज़ारा कर लूँगा। तेरे साथ जीऊँगा तेरे साथ मरूँगा। महतों के सारे सुख

मैं तेरी एक नज़र पर कुरबान कर सकता हूँ और अब वह शहज़ादा कहाँ है सुरैया अपने आप से पूछ रही थी। "जिसकी महबूबा को इस तरह पत्थर की दीवारों में चिना जा रहा है वह मुग़ल वली अहद कहाँ है कल को वह कैसा बादशाह बनेगा। उसे तो प्रजा से न्याय करने की तरबीयत दी जा रही थी! महावली अकबर का इतना नाम था यही उसका इंसाफ है? आखिर उसकी बहन का क्या कसूर था? आखिर कोई किसी से मोहब्बत करे तो उसे कैसे इंकार किया जाए? और जब मोहब्बत करने वाला वली अहद हो तो उसे कैसे इंकार किया जाए? लाख सपने उसकी पलकों में लटके हों, लाख क़ौल-क़रार उसके ओठों पर थिरकते हों?

इतने में कोतवाल के सब्र का प्याला जैसे छलकने लगा उसने इशारा किया और दो घूसे से फुफकारते कडियल जवान आगे बढ़े अनारकली को उसकी माँ से अलग कर दिया गया। उन्हें अपनी तरफ आते देख कर माँ ने बेटी के माथे पर चूमा और खुद ही उससे अलग हो गई। एक बोल भी उसके मुँह से नहीं निकला। उसकी आँखों में से एक आँसू भी नहीं बहा।

जब प्यादे अनारकली को संगीनों के साये में अपने साथ ले जाने लगे तो सुरैया चीख़कर अपनी माँ के सीने से लिपट कर फ़रयाद करने लगी। अधेड़ उम्र की माँ से भी और संयम न हो सका। माँ बेटी विलाप कर रही थीं फ़रयादें कर रही थीं, आस-पास खड़ा विशाल जन समूह भी अब अपने आँसूओं को रोक नहीं पा रहा था। सबकी पलकें गीली हो गई थी। सूरैया बार-बार अपनी बहन की ओर बढ़ने की कोशिश करती। सिपाहियों ने उसे रोक रखा था। उसकी माँ बेहोश होकर ज़मीन पर ढेर हो गई थी। अनारकली की बलाएँ लेती हुई रो-रोकर बेहाल हो रही थी।

उधर अनारकली पीछे देखे बग़ैर एक उल्लास में आकर मीठी चाल से चलती हुई अपने ठिकाने की ओर बढ़ रही थी जैसे किसी को अपनी मंजिल मिल गई हो, उसका अंग-संग एक चाव में पुलकित हो रहा था। हँसता खेलता हुआ चेहरा, जैसे कोई अपनी महवूब की बाहों में लिपटने के लिए पेश कर रही हो। अपनी माँ और बहन की फ़रयादें उसे सुनाई नहीं दे रही थीं। अब तो चारों तरफ इक्ट्ठी हुई भीड़ ने भी नारे लगाने शुरू कर दिए थे। यह जुल्म है। यह क़हर है। लोगों दुहाई है। जनता को इस तरह उत्तेजित देख कर कोतवाल ने सिपाहियों और घुडसवारों को सचेत कर दिया। संगीनें तन गयीं। घोड़े हिनहिनाने लगे। इधर उधर भागने लगे।

उधर अनारकली चिना जा चुकी तीन दीवारों के बीच जा खड़ी हो चुकी थी। चमकता हुआ चेहरा, खिला हुआ माथा, जैसे किसी को अगले ही क्षण किसी के अलिंगन की प्रतीक्षा हो। क्षण भर बाद जनता ने अनारकली जिन्दावाद के नारे लगाने शुरू कर दिए सुनकर वह सज्दे में गिर पड़ी। अब राज-मजदूरों ने दीवारों की चिनाई शुरू कर दी। अनारकली के कानों में कोई नग़्मा गूँज रहा था इस नग़्में की मीठी धुन में उसने अपनी आँखें मूँद ली। उसने राज-मज़दूरों का काम आसान कर दिया था।

उसकी माँ और बहन की चीखें और ऊँची हो गयीं। आस-पास खड़े लोग, मर्द-औरतों की भीड़ और भी उत्तेजित हो गई। नारे और भी तेज़ हो रहे थे किसी समय भी जनता बेकाबू हो सकती थी, कोतवाल ने और कुमक मँगवाई और सब सिपाहियों को सावधान कर दिया।

सज्दे में गिरी अनारकली के सामने दीवार का एक रद्दा लग चुका था। बस दो रद्दे और लाल सीलों से कब्र को ढक दिया जाएगा।

उधर लोग बेक़ाबू हो रहे थे। अनारकली जिन्दाबाद के नारे लग रहे थे। वली अहद सलीम, वली अहद सलीम, वली अहद सलीम पुकार रहे थे। यह देखकर राज मज़दूरों ने फुर्ती से चिनाई शुरू कर दी।

रो-रो कर बेहाल हुई अनारकली की माँ बे-होश होकर गिर पड़ी थी उसके हाथ पैर मुड़ गए थे उसकी बहन विलाप कर-कर के अपने टुकड़े कर रही थी। जैसे एकत्रित जन समूह को चुनौती दे रही हो। उसकी बहन को बचाने वाला कोई नहीं था, एक मासूम जान को इंसाफ दिलवाने वाला कोई नहीं था?

लोग एक लावे की तरह उछल रहे थे। कोतवाल की मदद के लिए और कुमक भी पहुँच गई थी। सन-सनाते हुण नेज़े और भगदड़ मचाते घुडसवार। "अनारकली जिन्दाबाद, नादिरा बीबी जिन्दाबाद" के नारे गूँज रहे थे और लोग भीड़ में शामिल हो रहे थे क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या मर्द, क्या औरतें, छोटे बड़े सब।

लग रहा था कि फौरन सब कुछ ढेर हो ज़ाएगा। समंदर के लहरों की तरह जन समूह बिफर रहा था, फुंकार रहा था। नारे और तेज़ हो गए थे। सुरैया का विलाप और हृदय विदारक हो रहा था। राज-मज़दूर पहले से भी ज़्यादा फुर्ती से अपना काम ख़त्म कर रहे थे। अब तीसरा रद्दा भी ख़त्म हो रहा था अब गेरुए रंग की सीलों से बस कब्र को ढक देना था।

उधर उत्तेजित जनता ने पुलिस के बनाए घेरे को ज़ोर लगाकर तोड़ना शुरू कर दिया। किसी वक़्त भी संगीन धारी सिपाहियों की यह दीवार गिर सकती थी। एक धक्का और तो जनता आगे बढ़ कर कब्र को मलियामेट कर देगी।

कोतवाल शाही फ़रमान की तामील कर रहा था फिर अचानक आँधी आ गई धूल-मिट्टी चारों तरफ़ उड़ने लगी देखते-देखते घुप्प अन्धेरा छा गया। आसमान पर घटा घोप छा गया। हाथ पर रखा हाथ भी दिखायी नहीं देता था। आँधी लोगों को उछाल-उछाल कर फेंकती। जिसका जहाँ सींग समाया निकल भागा। सिपाही अपना सिर छुपाने लगे। लोग किसी तरह से अपने को ढोंप रहे थे कि बादल गरजने लग पड़े। काली घटा घिर आई। मूसलाधार बारिश शुरु हो गई। बादल कहे कि आज ही बरसना है आँधी कहे कि यही धूल उड़ाने का मौका है। क्षण भर में सारा मैदान खाली हो गया। आस-पास की सभी खिडकियाँ बंद हो गयीं। छतों पर इक्ट्ठा लोग ग़ायब हो गए। कुछ गिने चुने सिपाही जैसे कैसे कब्र के पास रह गए थे। इसी तूफान और वर्षा में रात हो गई।

पूरी रात शहर में बारिश और तूफ़ान से कोहराम मचा रहा। संगीनों से लैस सिपाही पहले की तरह क़ब्र की रखवाली भी करते रहे। अगले दिन सुबह ज़ब कुछ सर्दी हुई तो रात भर के जागे मुग़ल सिपाही ऊँघले लग पड़े फिर एक, दो, तीन, चार, क़ब्र पर तैनात सारे के सारे सिपाही एक-एक करके सो गए। दिन चढ़ा तो कहीं उनकी आँख खुली। सबने देखा कि अनारकली की क़ब्र फूलों और पत्तों के नीचे जैसे दबी पड़ी है। आस-पास के पेड़ों की डालियाँ, टूट-टूट कर क़ब्र पर आ गिरी थीं। नहाए धोए फल औ पत्ते। फिर हर रोज़ ऐसा होता, इधर से दिन निकलता उधर से अनारकली की क़ब्र पर ताज़े खिले फूलों का अंबार लग जाता। न जाने किस समय लोग अनारकली की बे-जोड़ मोहब्बत को अपनी अक़ीदत का नज़राना पेश कर जाते थे।

अनारकली को दीवार में चिने जाते देखकर जैसे क़ुदरत ने विद्रोह कर दिया था। कुछ इस तरह का तूफ़ान बरकते के भीतर भी उमड़ आया। वह इतने दिनों से लाहौर में आई थी पर उसने शक्ति से सम्पर्क भी क़ायम नहीं किया था। एक दिन जब आँधी और तूफ़ान बादल और बारिश उमड़-उमड़ कर पेड़ों को फेंक रही थे उसी वक़्त बरकते अपने पति युसूफ़ को उसके काम पर भेजकर बुर्क़ा पहन कर उस गली में जा घुसी जिससे उसकी सैकड़ों

यादें जुड़ी हुई थी। इनी चंद की हवेली में क़दम डालते ही उसका दिल जैसे खिल उठा। इस चौकठ के भीतर तक कभी नानक ने प्रवेश किया था। इन दीवारों और कमरों को निहाल किया था। बरकते को जैसे इस हवेली मतें से सुगंध की लपटें आ रही थीं। उसका अंग-अंग सरशार हो रहा था। जल्दी-जल्दी चल रही थी। बूंदा-बांदी जारी थी। बरकते अपने को फूल की तरह हल्का महसूस कर रही थी। जैसे अभी नहाकर आई हो। जैसे किसी के बदन से मैल की बट्टियाँ उतर गई हों। जैसे कोई भूला भटका फिर अपने ठिकाने पर लौट आया हो, बरकते को कुछ ऐसा ही महसूस हो रहा था।

ड्योढ़ी पार करके अभी उसने आँगन में क़दम रखा ही था कि सामने शक्ति दायें हाथ पूजा के कमरे में ही निकल रही दिखायी दी। बरकते से अपने चेहरे से बुरका हटा दिया।

उन्हें बिछड़े हुए एक ज़माना बीत गया था और वे किन हालात में विछड़ी थीं। बरकते और शक्ति बार-बार एक दूसरे के गले लगकर प्यार करने लगतीं। उन्होंने अभी कितनी बातें करनी थीं। लेकिन सबसे पहले अनारकली की दीवारों में चिने जाने की ख़बर थी जो लाहौर शहर की गली-गली में घर-घर में चर्चा का विषय बनी हुई थी। बरकते ने अनारकली का मौत से अलिंगन करना, अपने आप को ज़िंदा दीवारों में चिनवा लेना, यह सारा चित्र शक्ति को पेश किया और फिर मुग़ल इंसाफ और इस्लाम के एख़्लाकी दस्तूर को कोसने लग पड़ी। शक्ति बार-बार उसके मुँह की ओर देख रही थी। उसका पालन-पोषण कुछ इस तरह से हुआ था कि वह उअपने धर्म से बेहद प्यार करती थी लेकिन किसी दूसरे धर्म की निंदा करना उसे अच्छा नहीं लगा था।

इधर बरकते बार-बार कानों को हाथ लगाती और लगातार बोले जा रही थी। बीबी यह भी कोई मज़हब है जो वहशत से शुरु होता है, और वहशत पर आकर ख़त्म होता हैं। मैं पूछती हूँ अगर मर्द चार बीवियाँ रख सकता है तो औरत क्यों नहीं चार मर्दों के साथ बच सकती। बेचारी एक कनीज़ को इसलिए ज़िंदा दफ़ना दिया गया क्योंकि वह बाप-बेटे दोनों की मंज़ूरे नज़र हो गई थी। दोनों को भा गई थी। बाप ने उसे अनारकली का नाम दिया, बेटा उस पर फ़िदा हो गया। मैं पूछती हूँ, यह कहाँ का इंसाफ है अगर जहाँ पनाह को यही ईर्ष्या थी तो वह बाप बेटा दोनों उस बेचारी लड़की की बोटी-बोटी बाँट लेते, औरत की क़िस्मत में तो रूई की तरह धुना

जाना लिखा है। धुनकने वाला कोई हो, दो हों या चार हों, चार हों या हज़ार।

"बाबा नानक ने तो ऐसा नहीं कहा।" शक्ति ने बरकते को टोका। "तभी तो मैंने आज इस दरवाज़े को आकर खटखटाया है। मैं बाबा नानक की शरण तलाशती हुई आई हूँ।" बरकते एक श्रद्धालू के लहजे में बोल रही थी।

तू तो पाँच वक़्त नमाज़ पढ़ने वाली मुसलमान थी। शक्ति ने उसे याद करवाया वह तो मैं अभी भी हूँ। वह मैं फिर भी रहूँगी। क्यों? क्या मुसलमान होकर वह बाबा नानक का मुरीद नहीं हो सकता।

"बेशक हम जन्म जात सिख नहीं हैं मेरे तो बाल सफ़ेद हो गए हैं। बेटा-बेटी ब्याहे गए हैं लेकिन अभी तक मन में एक भटकन सी लगी रहती है। मंज़िल फिर दिखायी नहीं दे रही।"

"बीबी अगर तेरा यह हाल है तो जिसके भाग्यों में उस हवेली में रहना लिखा है जहाँ बाबा नानक ने चरण डाले थे तो हम जैसे अभागे लोगों का क्या हश्र होगा।"

"एक वक़्त था जब इस्लाम में तेरी अक़ीदत देखकर मैं हैरान हो जाती थी" शक्ति अतीत को याद कर रही थी।

"वह अक़ीदत तो अब भी है लेकिन जो सुरूर बाबा नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास या फिर आजकल गुरु अर्जन देव जी की बाणी पढ़ सुन कर आता है उसका रस कुछ और है।"

"वह कैसे।"

"क्योंकि यह लोग मेरी बोली भाषा में बात करते हैं।"

"अरबी, फ़ारसी तो मैंने भी पढ़ी है लेकिन अपनी मातृ भाषा का रस कुछ और ही होता है।"

"यह तो है लेकिन मैं आज तेरे साथ दिल की बात करने लगी हूँ। मुझे तो गुरबाणी जैसे झकझोर कर रख देती है जब गुरबाणी सुनती हूँ तो मेरे कलेजे में एक हूक सी उठती है। मैं क्या करूँ कुरआन शरीफ़ की आयतें सुन कर ऐसा नहीं होता मैं मुसलमान माता-पिता के घर पैदा हुई। मुसलमान से मेरी शादी हुई लेकिन गुरबाणी के बोल मेरे कानों में गूँजते रहते हैं। ऐसा लगता है कभी-कभी जैसे गुरबाणी यहाँ के मुसलमानों के लिए उच्चारी गई हो।

कबीर मुल्ला मुनारे किआ चढाई सांई ता बहरा होइ ॥

....

गली भिसति न जाईअै, छूटै सचु कमाइ ॥

....

घरि घरि मीआं सभना जीआं बोली भवर तुमारी ॥

....

अलहु ऐकु मसीति बसतु है अबरू मुलखु किसु केरा ॥

बरकते तू बड़ी भाग्यशालिनी है तुझे कितनी गुरबाणी याद है शक्ति को हैरानी ही रही थी।

मैं तो गोंहडवाल के बाद अमृतसर में रही हूँ तुझ से कौन-सी बात छिपी है। गुर बाणी सुनती हूँ तो जैसे मेरे दिल में कोई चीज़ चुभती धंसती (आत्मसात्) चली जा रही हो। मैं ने लाख कोशिश की है, मेरे भीतरी की मुसलमान को कुरआन की शरीफ़ की आयतों से ऐसा महसूस नहीं होता। कोने से पंजाबी है जिसे इस तरह के बोल सुनकर कुछ होने नहीं लगता।

"करमी आनै कपड़ा बदरी मोखु दुआरू ॥"

....

"सचहु औरे सभु को उपरि सचु आचारू ॥"

....

"घले आवहि नानका सदे उठी जाहि ॥"

....

"सचु पुराणा होवै नाही सीता करै ना पाटै ॥"

....

"हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ ॥"

"तौबा-तौबा, बरकते तुझे सुनकर तो मुझे ग़ोते आने लगते हैं। शक्ति उसे साथ के कमरे में ले गई उसकी ख़ातिरदारी करने। फिर सारा दिन बैठकर पुराने दिनों की बातें करने लगीं। शक्ति ने उसे बताया कि गुरु अर्जन देव सारी गुरबाणी को एक ग्रंथ में संपादित कर रहे हैं। इसी आशय से दूसरे भक्तों, संतों फ़कीरों की बाणी भी इक्ट्ठी की जा रही है ताकि प्रस्तावित ग्रंथ में शामिल की जा सके। शक्ति के पास जितनी हस्तलिपियाँ थीं उनकी पहली नक़ल उसने गुरु महाराज को भिजवाई है, गुरु महाराज के आदेश पर उसने सारी हस्तलिपियों की एक गठरी बाँधकर भाई गुरदास जी को भेज दी थी।

मुझे एक बात की समझ नहीं आती वह यह है कि बाबा नानक ने मुग़लों की साथ पीढ़ियों को राज क्यों बख़्शा।

"तख़्त राजा सो बहे जी तख़्ते लायक़ होय।" शक्ति ने उसे याद करवाया।

"यह लोग तख़्त पर बैठने के लायक़ हैं जो किसी ग़रीब कनीज़ को ज़िंदा ज़मीन में गड़वा देते हैं, बरकते के मुँह का स्वाद अभी तक कड़वा था।"

"लगता है कि बाबा नानक की अपने समय के हाकिमों और मुग़लों में से किसी को चुनना था सो उन्होंने मुग़लों को तरजीह दी।"

"हाँ प्रजा अपने पठान हुक्मरानों से सख़्त बेज़ार थी।" बरकते शक्ति से सहमत थी, उसने गुरबाणी में से याद की हुई पंक्तियाँ सुनानी शुरु कर दी।

तानु पापु दोह राजा महता, कूडु होआ सिकदार ॥
काम लेनु सदि पुछिऐ, बहि बहि करै बीचारु ॥

....

राजे सीह मुकदम कुते
जाह जगाइन बैठे सुते ॥

....

काजी हाइ कै बहै निआह ॥
फेरे तसबी करे खुदाई।
बढी लै कै हकु गनाए।
जे को पूछै तां पडि सुगार।

उस दिन पूरा वक़्त बरकतें और शक्ति बैठकर बातें करती रहीं। फिर बरकते घर लौटने के लिए उठ खड़ी हुई। उसके बेटे का मदरसे से लौटने का वक़्त हो चुका था।

"तूने अपने इस बेटे का क्या नाम रखा है?" शक्ति ने बुर्क़ा पहनती हुई बरकते से पूछा।

"इसके बाप ने उसका नाम पईंदा ख़ान रखा है। बड़ा लड़ाका है, हर रोज़ उलाहने लेकर घर आता है किसी को थप्पड़ मारता है किसी को मुक्का। कोई न कोई झगड़ा करता ही रहता है।"

बड़ा होगा तो उसे फ़ौज में भर्ती करवा देना शक्ति ने राय दी।

"मैं तो उसे गुरु महाराज की शरण में भेजना चाहूँगी।"

"उनके पास तो कोई फ़ौज नहीं। वहाँ जाकर तो वह संत ही बनेगा।"

"काश कि वह संत-सिपाही बन सके।" बरकते ने इन शब्दों में अपने अरमानों का ज़िक्र किया और वादा किया कि वह शक्ति से फिर मिलती रहेगी अपने घर की ओर निकल गई। ड्योढ़ी में पहुँचकर उसने फिर बुर्के से अपना मुँह ढंक लिया।

(26)

सूरदास दादू जंस कीना।
कान्ह दास तेरे नाम संग लीना
नेति नेति कहि वेद सुनावै,
संत धूरि नानकु जन पावै।

यह तुकबंदी मेहरबान की थी। जो उसने क़ाग़ज़ पर लिखी थी। किसी सिक्ख ने गुरु अर्जन देव जी को यह काग़ज़ लाकर दिया था। लाहौर से लौटे गुरु महाराज को अभी बहुत दिन नहीं हुए थे। बेशक गुरु महाराज को मेहरबान और पृथीचंद के बारे में पूरी खबरें मिलती रहती थी। उन दोनों ने कविश्री भी शुरु कर दी थी और गुरबाणी को बिगाड़कर लोगों में अपनी रचनाएँ प्रचलित कर रहे थे, लेकिन उन्हें इस अनर्थ का पता नहीं था कि वह गुरु नानक का पवित्र नाम भी अपनी तुकबंदी के साथ जोड़ रहे थे। एक टुकड़े में तो काना भगत की स्तुति की गई थी जिसे अभी कुछ दिन पहले गुरु महाराज लाहौर में निराश करके लौटे थे। उनकी रचना गुरु आशय से मेल नहीं खाती थी।

यह तो वही बात हुई कि जैसे कोई चूहा किसी पेड़ की जड़ों को खोखला करना शुरु कर दे। जिस पेड़ की गुरु महाराज दिन-रात की मेहनत से सींच-सींच कर हरा भरा देखना चाहते थे, मेहरबान और पृथी चंद उसकी मिटटी पलीत करने पर तुले हुए थे।

गुरु महाराज को यह भी पता चला कि यह बाप बेद्या अमृतसर से पूरा सामान उठाकर हेहर में जा बसे थे। वहाँ उन्होंने एक सरोवर भी बना रखा था। एक हरिमंदिर भी खड़ा कर लिया था और दुख निवारण नाम की एक बेरी भी ढूँढ ली थी। माता गंगा जी का यह ख़याल कि पिरथिये और साहबज़ादे की एक के बाद एक ख़त्म करने की करतूते ख़त्म हो चुकी थी। अमृतसर में अब वह नही टिक सकेगा। गुरु के श्रद्धालुओं के सामने नहीं आ सकेगा। यह उनका भोलापन था। वे लोग पहले की तरह गुरु घर की निंदा करते थे और अब इस इंतज़ार में थे कि अगला वार कब और कहाँ किया

जाएगा। पहली बात गुरु महाराज ने यह की कि भाई बुड्ढा और भाई गुरदास को बुलवा भेजा। गुरबाणी में मिलावट करना सबसे ख़तरनाक हमला था जो गुरु पंथ पर हो सकता था। इस पर अभी से क़ाबू पाना ज़रूरी था। गुरु महाराज़ ने पहले भी इस बार में कुछ आदेश दिए थे। लेकिन आज की बैठक में वह इस काम को युक्ति से शुरु करने का सोच रहे थे। भाई गुरदास जी की मदद के लिए भाई बन्नो जी को बुलाया गया, भाई पैड़ा और दूसरे निकटवर्ती गुरु सिक्ख भी आकर इस जलसे में शामिल हो गए।

बेशक गुरबाणी की संभाल और एक पोथी की शक्ल में उसका संपादन करना पृथी चंद और उसके गुमराह बेटे की हरकतों से हो रहे नुक़सान पर क़ाबू पाना ज़रूरी था। गुरु महाराज गुरबाणी की पवित्रता, अखण्डता और उसके आशय के स्वरूप को ज्यों का त्यों बनाए रखना चाहते थे। उसे एक महान ग्रंथ में संपादित करना चाहते थे ताकि पृथी चंद और मेहरबान जैसे भ्रष्ट बुद्धि वाले लोग बाणी में मिलावट करके इसका स्वरूप न बिगाड़ सकें, इसका निरादर न कर सकें।

इसलिए गुरु नानक देव जी और उनके बाद के गुरु साहिबान को तैयार की पोथियों के अलावा अगर कोई बाणी क़लम बद्ध होने से रह गई थी तो उसे भी तलाश करना और परखना, संजोना जरूरी था। पहले भी गुरु अर्जन देव एक बार बता चुके थे कि सिक्ख गुरु साहिबान की बाणी के साथ दूसरे साधू-संतों और महापुरुषों की बाणी भी इक्ट्ठी की जाए। सिर्फ इस बात का ध्यान रखना होगा कि यह बाणी गुरु बाणी के आशय के साथ सहमत हो एकेश्वरवाद, उसकी स्तुति, सच्चा सादा जीवन, ऊँच-नीच के भेद से रहित, मेहनत करना और बाँट कर खाना जैसी भावनाओं को यह रचना दर्शाती हो।

और जहाँ तक मुमकिन हो ऐसी बाणी साधारण लोगों की बोली में हो, वह बोली जो जन-साधारण को आसानी से समझ में आ सके।

यह ग्रंथ सबका सांझा ग्रंथ होगा, जिसे सब लोग अपना सकेगें, आदर दे सकेगें, इस काम के लिए भाई गुरदास जी जिसकी भी सहायता चाहें ले सकते हैं।

चूँकि गुरबाणी साधारण प्रचलित रागों में उच्चारित गई थी इस लिए बाणी को भी रागों के अनुसार ही तरतीब देनी होगी। हर राग, हर शब्द की गिनती करके उसे अंकित करना होगा ताकि कोई भी संपादित की गई बाणी में ही किसी रचना में से कम कर सके न बढ़ा सके।

बेशक एक साल लगे, दो साल लगें, तीन साल लगें जब सामग्री इक्ट्ठी हो जाएगी तो इसका संपादन करना होगा। इसलिए गुरु महाराज ने रामसर के एक कोने पर पेड़ों की एक झुग्गी बना रखी थी। वहाँ तंबू लगाया जा सकता था या कमरा बनवाया जा सकता था। संपादन का काम वह खुद करेंगें लोग सामग्री इकट्ठी करके, इसकी सूचना गुरु महाराज को साथ-साथ भेजते जाएँगे। बाणी इकट्ठी करने में नज़दीक या दूर, परदेस, न ऊँची-नीची, ज़ात न धनवान-निर्धन में भेदभाव करना होगा। जितना समय और जितनी मेहनत अमृतसर को तैयार करने में लगी थी उतना ही समय और मेहनत इस नई योजना को पूरा करने में लगानी होगी।

एक दिन गुरु अर्जन अपने घर में कुछ ज़्यादा ही फ़िक्रमंद दिखायी देते थे। भाई बुड्ढा और भाई गुरदास जी कब से उनकी आज्ञा लेकर जा चुके थे। शाम पड़ने लगी थी तब भी गुरु महाराज चिंता में खोए पूर्वत बैठे थे। इस बीच ऐसा भी हुआ कि साहबज़ादा हरिगोविंद को खिलाने वाली औरत बच्चे की ऊँगली पकड़कर उनके पास आई तब भी वह अपने ध्यान में लीन रहे। कविता नहीं कर रहे थे जब गुरबाणी का उच्चारण करते तो गाने के साथ-साथ काग़ज़ क़लम लेकर उसे लिखते जाते थे। माता गंगा जी ने परेशान होकर माता भानी जी के साथ ज़िक्र किया। गुरु महाराज कभी नहीं बैठे थे। कोई बात ज़रूर थी जो उन्हें परेशान कर रही थी।

बीबी भानी जी अब वृद्ध हो चुकी थी। किसी भी मामले में वह बहुत कम दख़ल देती थी अक्सर वह पाठ या नाम सिमरन में अपना समय बिताती थी लेकिन बहूरानी को परेशान देखकर गुरु महाराज के कमरे में गयी और पूछने लगी। वह क्यों अपने आप में खोये बैठे हैं। भाई बुड्ढा और भाई गुरदास जी को गए बहुत सा समय गुज़र चुका था।

"बीबी भानी जी के बार-बार आग्रह करने पर गुरु महाराज ने आख़िर अपने मन की गाँठ खोली। वे कहने लगे गुरुवाई सोढ़ी ख़ानदान तक सीमित रखने का वचन आपने नाना जी से लिया था वह मुझे अभी तक परेशान करने लगता है मैं सोचने लगता हूँ कि इस ज़्यादती को कैसे समेटा जाए।"

"बेटा अगर यह ग़ल्ती है तो यह मेरी है।" बीबी भानी जी अब बोल रही थीं मैं इसकी सज़ा भुगतने के लिए तैयार हूँ।"

"सज़ा भुगतने के लिए तो मैं खुद भी तैयार हूँ लेकिन सज़ा भुगतने से यह प्रवृत्ति ख़त्म नहीं होगी।" गुरु अर्जन देव जी आवेश में थे। शांति के पुंज वह कभी भी इतने भावुक नहीं हुए थे।

"बेटा आप गुरु गद्दी पर विराजमान हैं। भूत-भविष्य की आपको समझ है। अगर इसका कोई उपाय है तो वह आप को ही करना पड़ेगा। मुझे तो लगता है कि क़हर आ रहा है।"

"इसी लिए तो मैंने इस ज़िम्मेदारी, यह बोझ अपने परिवार के सिर पर ले लिया है।"

"एक-एक करके सोढी ख़ानदान को क़ुरबानियाँ देनी पड़ेगीं।"

"मैंने इस से कब इंकार किया है।"

"आपके पोते, उसके बेटों को इसका हर्जाना भुगतना पड़ेगा।"

"बेशक, मैं जानती हूँ लेकिन बेटा आप बाबा नानक की (ज्योति) जोत हैं पाँचवें गुरु नानक हैं, अगर यह भूल थी तो इसका उपाय आपको ही खोजना पड़ेगा। मैं जानती हूँ कि गुरु घर में हर समस्या का समाधान होता है।"

"मुझे ख़ून की नदियाँ बहती दिखाई दे रही हैं।"

"मैं गुरु माता होकर आपके आगे हाथ जोड़ती हूँ, आपको इसका कोई उपाय सोचना चाहिए।" अब माता भानी जी छल-छल आँसू गिरा रही थीं। उनके हाथ जुड़े हुए थे। जैसे पछतावे की मूर्ति हों।

गुरु महाराज थोड़ी देर और सोच में डूबे रहे फिर उन्होंने सेवक को बुलाकर आदेश दिया कि भाई बुडढा जी और भाई गुरुदाय जी को वापस बुलाया जाए।

वे भी अभी कुछ देर पहले ही हुज़ूर को मिलकर गए थे। लेकिन घट-घट को जानने वाले की जैसी मर्ज़ी। भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी को फिर बुला भेजा गया।

"और सारे काम छोड़कर सारे काम रोककर गुरु साहब के लिए बाणी इकट्ठी की जाए।" गुरु महाराज ने फ़रमाया।

भाई बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी और बीबी भानी जी सब एक दूसरे के चेहरे की ओर ताकने लगे।

उस रात अपने-अपने घर लौट रहे भाई बुड्ढ़ा जी ने भाई गुरदास जी को सुनाकर कहा—"ग्रंथ साहब"॥

"यह तो बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है।" भाई गुरदास बोले।

"मुझे तो इस ग्रंथ का नक़्शा और का और दिखाई दे रहा है" भाई बुड्ढा जी ने भाई गुरदास जी से कहा।

(27)

जैसे कोई और दूसरा काम न हो, गुरु अर्जन देव जी ने दिन रात पोथी की तैयारी में अपने आप को व्यस्त कर लिया। आस-पास के शहरों में उससे पहले जब भी गुरु महाराज जाते रहे थे अपने निकट वर्ती गुर सिक्खों को भेजकर गुरबाणी को इकट्ठा कर गाने लगे। जो भी पोथियां मिलतीं उन्हें एकत्रित करके यथा संभव उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार करवाते। दूसरे भगतों की बाणी को पोथियों को पढ़ा गया जन साधारण की ज़बान पर प्रचलित बाणी की छान-बीन की गई। रामसर के किनारे के पास जैसे कोई भारी दफ्तर खुल गया था।

गुरु महाराज न सारी एकत्रित बाणी को खुद पढ़ के रागों में बाँटना था, उनकी धुनें निर्धारित करनी थीं, राग विद्या का ज्ञान उनसे अधिक और क़िसी में नहीं था। "हाँ, मेरी लिखाई इतनी सुन्दर नहीं।" गुरु महाराज भाई गुरदास से कहने लगे। "बाणी को उतारने का पूरा काम आप को करना पड़ेगा। काग़ज़ का इंतज़ाम किया जाए। रोशनाई बढ़िया होनी चाहिए। बाँस या काँटे की क़ल्में अच्छी रहेगीं। मुझे पंक्षियों के पंखों की क़लमें कभी नहीं भार्यी।"

"भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी के मन में कुछ संशम थे जिनसे वह निवृत होना चाहते थे।"

"कुछ बाणी ऐसी है जो गुरु बाबा नानक के नाम से बेशक प्रचलित है पर लगता है कि वह गुरु महाराज की बाणी नहीं।" भाई बुड्ढा जी कह रहे थे।

"उसका फ़ैसला हम करेंगें।" गुरु महाराज ने फ़रमाया। "जो बाणी गुरु घर के आशयों से मेल नहीं खाती वह बाणी गुरु महाराज की नहीं हो सकती।"

"यह फ़ैसला बड़ा नाज़ुक होगा।" पास बैठे भाई बन्नो जी कहने लगे।

"कौन सी पत्नी है जो अपने पति के बोल नहीं पहचानती भाई गुरदास जी नहीं बोले।" मैं तो जब गुरबाणी का उच्चारण सुनता हूँ तो मेरे भीतर हूक उठती है।"

यह सुनकर गुरु महाराज की तसल्ली हो गई।

जो बात मुझे परेशान करती है वह यह है कि कई भगत ऐसे हैं जिनकी अधिकतर बाणी गुरु आशय के अनुसार है पर कहीं कोई दोहा, कोई **श्लोक**,

कई शब्द गुर सिक्खों के लिए ग़लत फ़हमियाँ पैदा कर सकता है। गुरु महाराज ने फ़रमाया और जो शब्द गुरुबाणी के अनुकूल न समझे गए, उन्हें छोड़ भी दिया गया।

"हाँ, कहीं-कहीं ऐसा करना ज़रूरी हो जाएगा भाई बुड्ढा जी ने हामी भरी।

उदाहरण के तौर पर फ़रीद जी कहते हैं :

फ़रीदा रत्ती रत न निकले जे तन चीरै कोइ॥
जो तनु रत्ते रब्ब स्यो तिन तनी रतु न होइ॥

"अब सवाल उठता है कि रक्त के बिना शरीर कैसे कैसे जिंदा रह सकता है?" भाई गुरदास जी एक महत्वपूर्ण नुक्ता उठा रहे थे।

"इसका इलाज मैंने सोच लिया है।" गुरु महाराज फरमाने लगे। यह श्लोक ज्यों का त्यों शामिल कर लिया जाएगा लेकिन इसके साथ ही यह श्लोक भी अंकित कर दिए जाएँगें।

इहु तन सभो रतु है, रतु बिनु तन न होइ॥
जो सह (रहे) रत्ते आपने, तिन तन लोभ रत न होइ॥
भय पईये तन खीन होई, लोभ रत विच्च हू जाई॥
जीउ बसैंत्री धातु सुधु होइ,
तिउ हरि का भव दुरमति मैल गवाइ॥
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रंगु लाइ॥

"एक बात और"। भाई बुड्ढा जी पूछने लगे "आम जनता राग विद्या से परिचित नहीं है, प्रचलित वारां की धुनें भी निश्चित की दी जाएं। टुण्डे असराजे की वार जैसी कई और धुनें हैं जो गुरबाणी से मेल खा सकती हैं। ज़रूरी बात यह है कि गुरबाणी गाई जाए। गुर सिक्खों में कीर्तन प्रधान होगा।" गुरु महाराज ने स्पष्टीकरण दिया।

"और भी कई मामले सामने आएँगें। भाई बन्नो जी योजना की विशालता से जैसे भयभीत हो रहे थे।

"सुबह अमृत बेला से शाम तक इस रामसर के किनारे पेड़ों की झुग्गी के पास बैठ कर इस काम को पूरा करना है, चाहे कितना ही समय क्यों न लग जाए।"

गुरु महाराज ने निर्णयात्मक ढंग में कहा।

और फिर सचमुच गुरु महाराज ने अपने आप को इस योजना के लिए

समर्पित कर दिया। सुबह साध-संगत में कीर्तन समाप्त होने के बाद सीधे रामसर किनारे लहलहाते पेड़ों के नीचे आकर बैठ जाते। सामने रामसर तालाव का जल आँखों को सरशार कर देता। हर प्रकार के पेड़ों में पक्षी चहचहाते, ठण्डी मीठी हवा चलती, भाई गुरदास और दूसरे सिक्ख, उनके पीछे-पीछे आकर, अपने-अपने कामों को सम्हाल लेते।

एकत्रित हो गई बाणी को रागों में बाँटना; इस बात का ध्यान रखना कि महत्वहीन रागों को शामिल न किया जाए। दीपक जैसे रागों की ग्रंथ में कोई जगह नहीं की। हर राग को निर्धारित करना उसकी निशान देही करना कुछ ऐसी ज़िम्मेदारियाँ थी जो गुरु महाराज ने अपने उपर ले रखी थी। शब्दों का चयन करने का फ़ैसला भाई गुरदास जी पर छोड़ दिया गया था।

जब बाणी इकट्ठी हो चुकी तो पूरा कमरा भर गया। अब उससे पूर्व निर्धाति क्रम के अनुसार संपादित करना था। पहले गुरु नानक, उसके बाद गुरु अंगद साहब, फिर गुरु अमरदास और उनके बाद गुरु रामदास। गुरु महाराज ने अपनी बाणी को अपने क्रम के अनुसार अंत में स्थान दिया। फिर भगतों की बाणी। अंत में रागों से बाहर की बाणी की बारी आनी थी जैसे श्लोक, संस्कृति, सवैय्ये, गाथा आदि।

इस योजना से संबंधित गुर सिक्ख योजना की विशालता देख-देख हैरान होते, गुरु महाराज खुद हत्थ-पैर धोकर उस कमरे में प्रवेश करते जहाँ गुरबाणी की प्रतिलिपियाँ तैयार की जा रही थीं। गुरु महाराज को ऐसा करते देखकर गुरु सिक्ख भी अधिक सावधानी बरतते। किसी की मजाल नहीं थी कि बिना हाथ पैर धोए इस कमरे में दाख़िल होता या ऊँची अवाज में बोल सकता। कोई फ़ालतू बात नहीं कर सकता था। हर बाणी को चाहे वह किसी भी गुरु महाराज की होती, किसी भगत की होती, पूरा-पूरा आदर दिया जाता। हर हस्तलिपि को उठाने से पहले गुरु महाराज उसे अपने माथे से लगाते, फिर प्रतिलिपियाँ उतारे का काम शुरु होता। बाणी का एक भी पृष्ठ कभी किसी ने फ़र्श पर गिरा नहीं देखा था।

तीन साल की लगातार मेहनत के बाद जब ग्रंथ तैयार हुआ तो गुरु महाराज ने फ़ैसला किया कि उसे हरिमंदिर साहब में स्थापित किया जाएगा। ताकि गुर सिक्ख श्रद्धापूर्वक पाठ कर सकें, पाठ सुन सकें। यह भी फ़ैसला हुआ कि ग्रंथ साहब को सम्हालने की सबसे पहली ज़िम्मेदारी भाई बुड्ढा जी को सौंपी जाएगी। भाई बुड्ढा जी की उम्र इस ज़िम्मेदारी को

सम्हालने की इजाज़त नहीं दे रही थी लेकिन इस महान आदर की पदवी से वह इंकार न कर सके।

गुर सिक्ख देख-रेख कर हैरान हो रहे थे कि गुरु महाराज ग्रंथ साहब को कितना आदर दे रहे थे। कई लोग अपने आप से सवाल पूछते आख़िर तो पोथी ही है। बेशक "बड़ी पोथी सही"। गुरबाणी की पोथियाँ घर-घर में पाई जाती थीं।

ग्रंथ साहब के प्रति उनकी श्रद्धा और आदर भाव देख कर सब लोगों को आश्चर्य होता। वे तो खुद गुरु महाराज थे। निओटों की ओट, निआश्रयों के आश्रय, सच्चे पादशाह। भाई बन्नो जो पोथी के संपादन के साथ कई तरह से जुड़े हुए थे, इस बात का अहसास था कि एक महान रचना का जन्म हो चुका है जिसके मुक़ाबले की रचना संसार में न कहीं थी, न कभी होगी। उसकी यह लालसा थी कि किसी न किसी तरह, ग्रंथ साहब की नक़्ल कर ली जाए। लेकिन यह कैसे यह कैसे संभव हो सकता था। गुरु महाराज इसके लिए कभी राज़ी नहीं होंगे। वह तो पोथी के हर अक्षर का इतना आदर करते थे।

यह विचार गुरु महाराज के मन में खुद ही छाया था। वह जानते थे कि अगर एक बार ग्रंथ साहब का हरिमंदिर में प्रकाश हो गया तो फिर नक़्ल करानी मुश्किल हो जाएगी। अभी वह फ़ैसला नहीं कर पाए थे कि सवाल पैदा हुआ, इतने भारी ग्रंथ की जिल्द कौन बाँधेगा। अमृतसर में तो ऐसा जिल्दसाज़ नहीं था। जिल्द तो लाहौर से ही बँधबानी होगी, लेकिन क्या गुरु अर्जन देव पोथी को अपने से अलग करेगें।

भाई बन्नो की इच्छा थी कि जिल्द लाहौर से बँधवाई जाए। उन्होंने अपने साथ भाई बुड्ढा और भाई गुरदास जी को भी राज़ी कर लिया। तीन बरस की तैयारी के दरम्यान इस योजना से जुड़े सारे काम भाई बन्नो करते थे सो यह ज़िम्मेवारी भी उन्हीं को सौंपी गई। गुरु महाराज की जानकारी थी कि भाई बन्नो क्यों बार-बार जिल्दसाजी के लिए लाहौर का ज़िक्र कर रहे थे। वे खामोशी से उनका तक़ाज़ा सुन लेते। अब जब भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी ने भी अपनी सहमति प्रगट की तो गुरु महाराज ने अपनी रज़ामंदी दे दी।

भाई बन्नो जी तो खुशी से जैसे फूले न समाए, खुशी-खुशी वे लाहौर जाने की तैयारी करने लग पड़े पर ज्यादा तैयारी वे काग़ज़, क़लम और

रौशनाई की कर रहे थे और उन्होंने आस-पास के कातिब भी बुला लिए थे जो उनके साथ लाहौर जाने के लिए तैयार थे। इनमें अमन प्रमुख था। आस-पास के ज़्यादातर या अधिकांश कातिब अमन के शार्गिद थे जिनमें सुन्दरी भी शामिल थी।

गुरु महाराज को इसकी ख़बर मिल चुकी थी कि भाई बन्नो जी के मन में इतनी श्रद्धा, इतनी लालसा क्यों थी किसी तरह इस महान ग्रंथ की नक़ल तैयार कर ली जाए। क्या पता वे सोचते हों कि कहीं मुग़ल ही हरिमंदिर पर चढ़ाई करके ग्रंथ साहब पर क़ब्ज़ा न कर लें कहीं पृथी या उसका बेटा मेहरबान जी इस महान रचना को चुरा न ले। कौन सी चीज़ उन्होंने नहीं हथियाई थी? क्या पता कोई प्राकृतिक आपदा आ जाए। इस तरह की पोथी तो एक करिश्मा था, ईश्वर की एक देन थी जो बार-बार नहीं मिला करती फिर भाई बन्नो जब देखते कि गुरु महाराज ग्रंथ साहब की रचना के प्रति कितने सावधान थे तो उनका दिल जैसे काँप उठता। अगर कोई मात्रा ग़लत हो गई, कोई शब्द उल्टा सीधा हो गया, अगर कोई तुक छुट गई, कोई शब्द रह गया तो क्या होगा? यह तो महापाप गिना जाएगा। जो अक्षम्म अपराध होगा और गुरु महाराज जो आदर पोथी को दे रहे थे क्या वह इतना आदर दे सकेगा।

और फिर कातिबों में कोई अपनी ओर ही बाणी मिला दे तो गुरु महाराज के पास वक़्त होगा कि वह मूफ मसविदे से हर पन्ना, हर पंक्ति, हर अक्षर, खुद मिला सकें?

कोई उस ग्रंथ को चुरा भी सकता था।

बारिश में पृष्ठ भीग भी सकते थे, नदी नाले में बह भी सकते थे। अमानत में ऐसी ख़यानत छुपाए नहीं छुपेगी। वह गुरु महाराज को क्या मुँह दिखाएंगे नहीं, नहीं, वह ऐसा नहीं करेगा। कानों को हाथ लगाने लगा। शाम को रहरास के पाठ के बाद गुरु महाराज के सामने बार-बार नाक रगड़ रहा था।

सारी रात उसे नींद नहीं आई, पलंग पर लेटा करवटें बदलता रहा उसकी पसलियां दुखने लगी थीं। पर यह इच्छा कि कम से कम ग्रंथ साहब की एक लिपी और तैयार होनी चाहिए उसने अपने साथ कई कातिबों को लाहौर चलने के लिए भी तैयार कर लिया था। अगली सुबह वह जाने की तैयारी कर रहा था।

लेकिन भाई बन्नो के मन ने उसे फटकारा यह चोरी और ग़द्दारी है, जब गुरु महाराज को उसकी करतूत का पता लगेगा तो वह उन्हें मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहेगा। भाई बन्नो एक अजीव संशय में था। आख़िर उसने अपने मन को समझाया—गुरु महाराज तो सारी बातें जानते हैं, अगर उन्हें यह मंज़ूर न होता कि पोथी की नक़ल न की जाए तो वह बेशक जिल्द साज़ी के लिए किसी और को लाहौर भेज सकते हैं। फिर वह सोचता जिन कातिबों को उसने तैयार कर लिया है उनका क्या बनेगा?

गुरु महाराज अपने फ़ैसले पर क़ायम थे ग्रंथ की जिल्दसाज़ी जरूरी थी जिसके लिए पोथी को लाहौर भेजा जाएगा उसकी ज़िम्मेदारी भी भाई बन्नो को सौंपी गई थी।

यह आख़िरी फैसला था भाई बन्नो के लिए गुरु महाराज की रज़ामंदी थी कि ग्रंथ साहब की नक़ल बेशक की जाए और भाई बन्नो ने अपनी मनमर्ज़ी की ली। पोथी को लाहौर ले जाकी जिल्द की तैयारी आदि के सिलसिलों में कातिबों की मदद से उन्होंने ग्रंथ की प्रतिलिपि पूरी की ली। क्योंकि यह काम कई कातिबों द्वारा किया गया था इसलिए कई शब्द जोड़ों में फ़र्क़ आ गया। लाहौर से लौट कर एक भारी दीवान में भाई बुड्ढा जी को पहले ग्रंथी होने का मान बख़्शा गया। ग्रंथ की संभाल और उसका पाठ भाई बुड्ढा जी की अभिरुचि थी। उस दिन हरिमंदिर साहब में बड़ी गहमा-गहमी रही। ग्रंथ की स्थापना के बाद संगतों दर्शनों के लिए उमड़ कर आ रही थीं।

जब शाम को रहरास का पाठ हो चुका तो सवाल पैदा हुआ कि रात के समय पोथी को कहाँ स्थापिम किया जाए।

"मेरी कोठरी में, मेरे पलंग पर।" गुरु महाराज के यह बोल कर सारे गुर सिक्ख अचंभे में पड़ गए।

"हुज़ूर आप विश्राम कहां करेंगे?" भाई बड्ढ़ा जी ने पूछा।

"मेरा बिछौना नीचे फ़र्श पर बिछाया जाए", गुरु महाराज ने फ़रमाया। यह सुनकर निकटवर्ती गुर सिक्ख अचंभे में भर गए।

"जिसे हम पोथी कहते हैं वह एक महान ग्रंथ है और इसका भविष्य इससे ही महान प्रतीत होता है।" भाई बुड्ढ़ा जी ने भाई गुरदास से कहा।

(29)

जैसे मुँह तक भरे ज़हर के मटके हों, पृथी चंद और मेहरबान दो काले नाग थे, आठों पहर ज़हर छीकते रहते, लगता था कि बाप बेटा दो धुखती

हुई धुनियां हो उबल-उबल कर अपने किनारे जलाते रहते। उनकी कोई तरकीब सिरे नहीं चढ़ी थी। कोई तरकीब कारगर नहीं हुई थी। कोई साज़िश, कोई चुग़ली काम नहीं आई थी। एक-एक करके सब रास्ते बंद हो रहे थे, बाप-बेटे से शर्मिन्दा था, बेटा बाप का मुँह नहीं देखना चाहता था। अब गुरु महाराज ने ग्रंथ साहब को हरिमंदिर में स्थापना करके वह रास्ता भी बंद की दिया था। जिस पिछले दरवाज़े में से घुसकर बाप बेटा गुर गद्दी पर क़ब्ज़ा करने की सोच रहे थे। मीणियां ने जो ग्रंथ तैयार किया था उसे कोई नहीं पूछता था।

सोच-सोच कर पृथी चंद को एक तरकीब सूझी। पीलू, शाह हुसैन, छज्जू और काना भगत जिनकी कवित्री को गुरु महाराज ने नई तैयार की गई पोथी में शामिल नहीं किया था, उन्हें भड़काया जा सकता था। सभी लाहौर में रहते थे। शहंशाह अकबर भी उन दिनों लाहौर में थे। किसी तरह लाहौर के कवियों की मदद से अगर वह शंहशाह तक पहुँच सके तो उससे कहकर पोथी को ज़ब्त करवाया जा सकता था। बेशक बाबा नानक ने मुग़लों की सात पीढ़ियों को राज बख़्शा था मगर उन्होंने यह भी तो कहा था :

रतन विगाड़ि बिगोये कुत्ती मोया सार न काई॥

यहीं नहीं गुरु बाबे ने एक स्थान पर शिकायत की थी कि उनका नाम भी मुसलमानों जैसे रख लिया था—

कलि परिवाण कैते कुरान
पोथी पंडित रहे पुराण॥
नानक नाव भमा रहमान॥
कर करता तू एको जान॥

(राम कली महला १)

तो फिर पोथी में गुरु बाबे की वह पंक्ति भी होगी—"घर-घर मियां सबना जियाँ बोली और तुम्हारी"॥ उस समय के हुक्मरान के ख़िलाफ लोगों को भडकाना नहीं था तो और क्या था?

मेहरबान गुरु अर्जुन देव जी की उच्चारण की गई बाणी में से तो तुकों को बिगाड़ कर उन पर हँसता रहता। उनकी बोली पर एतराज़ कर रहा था।" बिलावल राग में चाचा जी का एक शब्द है वह फ़रमाते हैं—"कहु नानक गुर भय दयाला, हर रंग न कब हुँ लहता"॥ यह "लहता" भला कौन सी चीज़ हैं। यह सुनकर पृथीया बोल उठा।

ऐसे तो राग गौड़ी में अपने शब्द में उन्होंने कहा है "बिनवंत नानक कतं मिलेया लोड़ते हम जैसा" ॥ भई "लोड़ते" का कोई जवाब नहीं। "हमारे गुरु नानक की मिट्टी पलीद की जा रही है जब बाप बेटा इस तरह के बोल बोल रहे थे कुफ़्र तोल रहे थे माता भानी जी उन्हें समझाने के इरादे से उनके पास आयीं। वह कुछ देर से बाहर खड़ी सब कुछ सुन रही थी। अब उनसे रहा नहीं गया। लाफ-पीकी होकर भीतर कोठरी में आयी और अपने बेटे और पोते को फटकारने लगीं।

तुम्हें पता है यह तो सत गुरु नानक देव महाराज जी की है? तेरी जीभ जल न गई जिससे ऐसे कुबोल निकले। यह आदि काल की बाणी है। "जैसी में ओवे खसम की बाणी, तैसड़ा करी वे ज्ञान लालों।" इस बाणी में अगर दोष निकालोगे तो तुम्हारे जीभ में कीड़े पड़ेगें और पृथी चंद मैं तुझे माँ के नाते समझाती हूँ तू यह रास्ता छोड़ दे अपने मेरा पुत्तर देवता है। उसे गुर गद्दी मिली है क्योंकि उसे इसके लायक समझा गया। पुश्तैनी नहीं है यह, जो जिसके क़ाबिल हो।

देखीये माता जी यह कहानी मैं कई बार सुन चुका हूँ और सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ यह बताईये आपने गुर गद्दी सोढ़ी ख़ानदान के लिए माँगी थी या नहीं।

"बेशक।"

"पहले भी कभी ऐसा हुआ था जैसा अपने चाहा।"

"नहीं।"

"आपने मर्यादा की बात की है। बाबर के बाद हुमायूँ और हुमायूँ के बाद अकवर सबसे बड़ा साहवज़ादा तख़्त पर बैठा है कि नहीं।"

"तो क्या"।

"मेरा क्या क़सूर है कि मुझे गद्दी से वंचित रखा जा रहा है? मैं अपने पिता गुरु का सबसे बड़ा साहबज़ादा हूँ।"

"यह फ़ैसला तो वह करता है जो गुर गद्दी पर बैठा होता है।"

मेहरबान बीच में बोल उठा "पहले तो हमें धीरज बँधाया गया था।"

"कोई वात नहीं अर्जुन बे-औलाद है उसके बाद गुर गद्दी मेहरबान को मिलेगी।"

"जो अर्जुन को ईश्वर ने औलाद बख़्शी है तो इसमें किसी का क्या क़सूर है ईश्वर की कृपा हुई है"। माता गंगा जी हाथ जोड़कर आकाश की

ओर ताक रही थीं। "ईश्वर की कृपा नहीं, भाई बुड्ढा जी की कृपा हुई है।"

"क्या मतलब" माता गंगा जी कड़क कर बोली।

"मतलब साफ है अपने कमरे से बाहर निकलकर कभी आपने सुना है लोग क्या-क्या कहानियाँ कहते हैं। यह नही सुना कि किसी गुरु ने अपने सिक्ख से औलाद का दान माँगा हो गुरु अपने गुरु सिक्ख के आगे हाथ फैलाता अच्छा लगता है?

"कुफ्र है कुफ्र है। हे ईश्वर! यही सुनने के लिए मैं ज़िंदा हूँ हे बाबा नानक मुझे अपने पास बुला लो। माता गंगा जी अपने कानों में ऊँगलियाँ दे रही थीं। उनकी आँखों में से धल-धल आँसू बह रहे थे और वह फ़ौरन खड़ी खड़ी वहाँ से बाहर निकल गई।

उन्हें बाहर जाता देखकर मेहरबान बुड़बड़ाने लगा। किसी ने यह नहीं सुना होगा कि साक्षात् गुर गद्दी पर विराजमान होने के बावजूद गुरु अपने चेले के आगे प्रार्थना करे।

लोग सच्ची बातें करते हैं सास को ऊँचा बोलते सुनकर पृथी चंद की पत्नी चौबारे से नीचे उतर कर अपनी राय दे रही थी।

"भला लोगों की ज़बान को कोई बंद कर सकता है"। मेहरबान लोगों की हाँ में हाँ मिला रहा था।

"मैं इस दुकान को बंद कराऊँगा"। पृथी चंद अब ज़हर उगल रहा था।" मैं कल ही लाहौर जाकर अकबर बादशाह के सामने इस पोथी का कच्चा चिट्ठा खोलूँगा न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।"

(30)

पृथीया अपनी धमकी के मुताविक् अगले दिन लाहौर नहीं जा सका उसके घर से लौट कर माता भानी जी जब अपने कमरे में घुसी तो पलंग पर लेटते ही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।

यह ख़बर उन तक पहुँचने से पहले ही मेहरबान को लगा जैसे उसकी जीभ पर कोई छाला उग आया हो। उसने सोचा शायद यह दादी माँ की बद दुआ थी।

"मेरी जीभ पर छाला निकल आया है"। कमरे में सो रहे अपने पिता पृथीचंद को जगाकर मेहरबान ने अपनी चिंता ज़ाहिर की। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी।

"कोई छाला-वाला नहीं। क्षण भर के लिए नीम का पत्ता मुँह में रख कर

गर्म पानी में नमक डालकर ग़रारे कर ले।" यह कह कर पृथीचंद करवट बदल कर लेट गया। मेहरबान ने घबराहट में फिर कहा, "पिता जी मुझे लगता है कि यह छाला दादी माँ का श्राप हैं।

"वहम नहीं किया करते"। अब पृथीचंद उठकर अपने निवाड़ी पलंग पर बैठ गया। जिस माँ ने अपने बेटों में भेद भाव किया हो। उसका श्राप किसी को नहीं लग सकता।

"लेकिन इससे इंकार भी नहीं किया जा सकता कि चाचा जी ने बहुत सी बाणी उच्चारी है। सुखमनी साहब ही ले लो इस तरह की रचना पर तो कोई भी कविश्री माँग कर सकता है। एक महामत्य की योजना बनानी और फिर उसे विचारों की लड़ी में इस सरलता से पीरोना मामूली बात नहीं।"

"सुखमनी" मुझे तो इसे पढ़कर कभी भी सुख नहीं मिला। पृथीचंद नाक चिढ़ा रहा था। यह सब निकम्मी बातें हैं। पढ़कर मेरे मन को सुख मिले तो मैं जानूँ। "आपकी और बात है आपको तो सिर्फ़ गुरिआई मिलने पर सुख मिल सकता है।"

"यह बात भी है पर क्या तू इससे इंकार कर सकता है कि तू अपने चाचे से बढ़िया कविश्री करता है?"

"सोई रानी जो खसमें भानी।"

"सुखमनी" में तो भाषा की ग़ल्तियाँ ही बेहद हैं।"

"भाषा तो एक बर्तन है उसकी चीज़ वह होती है जो उसमें ड़ाली जाती है।"

"अगर बर्तन ही मैला हो।"

"अमृत फिर भी अमृत ही रहता है।"

"ऐसा लगता है कि तूने भी चाचे की गुर सिक्खी क़बूल कर ली है। रातों रात उसका जादू तुझ पर भी चल गया है। बता अब तेरे छाले का क्या हाल है।"

मेहरबान जीभ को गालों में घुमाता है। छाला तो अब कहीं भी नहीं था।

"तूने चाचे की स्तुति की है तो छाला ग़ायव हो गया है।"

"शायद यही बात है।"

"लक्ख लानत तुझ पर। लगता है तू भी कमज़ोर पड़ गया है, कान खोलकर सुन ले मुझे गुरगद्दी मिले या न मिले मैं तुझे गुरगद्दी पर ज़रूर बिठाऊँगा चाहे इसके लिए मुझे कोई भी क़ीमत देनी पड़े।"

"सुना है चाचा का बेटा ख़ैर से ही आए-गए का हँस बोलकर स्वागत करता है।"

"अभी तूने मेरे हथकण्डे देखे नहीं" "मैं सोचता हूँ यह बाजी हारी हुई है।"

"वाह! यह तू कह रहा है? गद्दी पर विराजमान गुरु छोटी सी कोठरी में पड़ा है और हमने महल संभाल लिए हैं। यहाँ भी, गोईंदवाल में भी और किसी को क्या चाहिए?"

हमारी क़िस्मत में हार लिखी है। आपने एक सपेरे को ढेरों रूपये देकर भेजा था ताकि ज़हरीला साँप डस कर गुरु बालक को ख़त्म कर दे। सपेरे ने मजमा लगाकर लोग इकट्ठे किए इससे पहले कि गर्दन पकड़ कर कुचल दी। लोगों को अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। लेकिन लोग इतबार नहीं कर रहे थे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। फिर अपने उस बेचारे ब्राहमण को दही में संख्या मिलाकर बच्चे को खिलाने के लिए तैयार किया। गुरु बालक ने दही को अपने होठों से लगाया तक नहीं। ब्राह्मण खुद भी मर गया साथ में वह कुत्ता भी। जिसे दही खिलाया गया था। आप जानते हैं ब्राह्मण ने आँखें मूँदने से पहले आपका भाँड़ा फोड़ दिया था। यह बात और कि चाचा-चाची इस बात का शोर नहीं मचाते। आपने बेकार ही नन्दू की जान ली।

"नन्दू कौन?"

"वही नंद राम जो गुरु बालक के साथ खेलता था और जिसे आपने हरि गोबिंद को खिलाने के लिए ज़हरीली मिठाई दी थी।"

"कम अक़्ल का लड़का था।"

उसकी एक जेब में ज़हरीली मिठाई थी और एक में साधारण।

उसे समझाया गया था कि वह खुद से जेब की मिठाई खाये और हरिगोविंद को दूसरी जेब की खिलाए। इसके विपरीत उसने खुद तो बायीं जेब की मिठाई खाई और बच्चे को दायीं जेब की खिलाता रहा। इसमें भला हमार क्या क़सूर है अपनी मौत वह खुद मरा है।

"वह खुद नहीं मरा, उसे उसके कर्म ले डुबे हैं और मुझे लगता है कि हमारा अंत भी नहीं होगा।"

"तेरा तो दिमाग़ ख़राब हो गया है। ज़्यादा पढ़े-लिखे लोगों में यही तो ख़राबी होती है।"

"फिर तो आपको खुश होना चाहिए। कल कोई कह रहा था कि चाचा जी ने गुरु बालक को भाई गुरदास के पास पढ़ने के लिए भेजा है।"

"हाँ भाई बुड्ढा जी ने बालक को बख़्शीश दी, भाई गुरदास जी उसे विद्या का दान देंगें और गुरु महाराज जो लोगों का आगा-पीछा सँवारने का दम भरते है। वेचारे भोले-भाले गुर सिक्खों को चकमे देते रहते हैं।"

"मैं सोचता हूँ कि हमें फिर वापस हेहर चले जाना चाहिए। अब हम किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं।"

"तू तो पागल है, एक बार मुझे लाहौर हो आने दे देखना मैं कैसा उपद्रव मचाता हूँ। वर्ना मेरा नाम पृथी चंद नहीं। आज तक तो मैंने किसी से हार नहीं मानी और तो और मैं गुरगद्दी पर बैठे अपने बाप को खरी-खरी सुना दिया करता था।

"तभी तो हमारी यह हालत हुई है। सब कुछ है फिर भी हम बाप-बेटा अपने को ख़ाली-ख़ाली महसूस करते हैं। कोई ऐसी चीज़ नहीं जो हमें मयस्सर न हो तो भी हमारा भीतर-बाहर ख़ाली-ख़ाली है। जैसे कोई वीरान हुजरा हो, जल बिन कुंभ।"

इतने में पृथीचंद की पत्नी चौबारे से उतर कर नीचे आई। "आज बाप-बेटा सुबह-सुबह क्या वार्तालाप ले बैठे हैं?" कमरे में घुसते ही वह पूछने लगी।

"करमी, मेरी गठ्ठरी बाँध दे मैं आज लाहौर जा रहा हूँ।"

"कल आप कहते थे कि हेलर जाना है आज कहते हैं लाहौर जाना है। बाक़ी बच्चे नानिहाल में उदास हो रहे होंगे।"

"हेलर कौन सा भाग गया है। वह भी अपना घर है, यह भी अपना घर। हेलर हम लोग आते-जाते रहते हैं। पहले मैं लाहौर जाकर तेरे देवर का मुँह बंद करना चाहता हूँ।"

"हाँ, देवरानी का अहंकार आजकल झेला नहीं जाता। वली अल्दि की माँ बन गई है न और अपने भाई की ओर देखो, सुना है नई तैयार की गई पोथी को सिर पर उठाकर सुबह हरिमंदिर लाता है और शाम के समय सिर पर उठाकर अपनी कोठरी में ले जाता है, रात को पोथी पलंग पर सोती है और गुरु महाराज नीचे फ़र्श पर लेट जाते हैं। यह कभी किसी ने नहीं सुना होगा।"

"ताकि लोग पोथी को चढ़ावे चढाएँ।" मेहरबान से बिना बोले न रहा

गया।

"मुझे बस एक बार लाहौर से हो आने दो। न रहेगी पोथी न पोथी को सर पर उठाकर घूमने वाला।"

"माता जी मेरी जीभ पर छाला निकल आया है।" मेहरबान बोलां

"तुम्हारे छाले का क्या कहना, अपने आप निकल आता है, अपने आप बैठ जाता है।" पृथीचंद बोल रहा था।

इतने में ख़बर आई कि माता भानी जी नहीं रही थीं। पृथीचंद की समझ में नहीं आ रहा था कि वह अब क्या करे?

(31)

"मुझसे एक भारी ग़ल्ज़ी हो गई है।" रुस्तम ख़ान की जवान-जहान बेटी कौलाँ हज़ात मियां मीर के तकिये में अपने पीर के हुजूर में बैठकर एकांत में हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही थी।

"अब क्या हुआ है? तेरे अब्बा रुस्तम ख़ान ने कोई नया शोशा छोड़ा है?" मियां मीर हँसकर अपने अनन्य मुरीद से पूछने लगे। कौलाँ अक्सर हज़ात के सामने शहर के क़ाज़ी, अपने ऊठबा की घिनौनी करतूतों के बारे में ज़िक्र करती रहती थी।

"इस बार मैं भी उतनी ही गुनाहगार हूँ जितने अब्बा सरकार हैं।"

"इतना कौन से क़हर हो गया है?"

"बात यूँ हुई। कल शाम को नौकर ने आकर बताया कि बाहर दीवान ख़ाने में पृथीचंद नाम का कोई सिख अमृतसर से आया बैठा था। अब्बा जान से मुलाक़ात करना चाहता था। अमृतसर का नाम सुनकर मुझे जैसे चाव चढ़ गया, मैंने पूछवा भेजा, "वह कौन है किस काम से आया है? कोई सुख-सन्देश लाया?"

"नौकर ने आकर बताया वह गुरु रामदास जी का सबसे बड़ा साहबज़ादा है। गुरु अर्जन देव जी का बड़ा भाई। अब्बा जान को पहले ही कहीं मिल चुका था। उनके लिए कोई सन्देश लाया है।"

हुजूर अंदाज लगा सकते हैं कि अमृतसर से आए किसी आदमी की क्या-क्या ख़ातिरें हुई होंगीं। वह गुरु के घर से आया था, अब्बा जान घर नहीं थे। अम्मी जान और मैंने मिलकर जैसे उसे सर पर ही उठा लिया।"

"अब्बा जान के आने तक हमारे नौकर लगातार उसकी सेवा में जुटे रहे। कभी फल लाते, कभी मिठाईयाँ। कभी पीने के लिए शरबत तो कभी

कुछ। रसोई में मैं खुद अपने हाथों से हर चीज़ तश्तरियों में परोस कर भेज रही थी। बलख बुख़ारे से आए सूखे मेवों की थैलियों को पहली बार खोला गया। मैं बार-बार पर्दे के पीछे से इशारे करते बस एक नज़र अमृतसर से आए मेहमान के दीदार की चाहत पूरा वक़्त मेरे होठों पर नग़में थिरकते रहे। कभी मैं अम्मी जान के मुँह की ओर देखती तो कभी अम्मी जान मेरी मुँह की ओर निहारतीं। न जाने मेहमान की ख़िदमत करते हुए किस को ज़्यादा अच्छा लग रहा था।"

"इतने में अब्बा जान आ गए। हमने उन्हें सांस भी नही लेने दिया और उनसे कहा कि बहुत से मुलाक़ातियों के पहले हमें उस मेहमान से मिलने दिया जाए जो अमृतसर से आया है।"

"मैं जानता हूँ वह क्या कहेगा। एक बार पहले भी मेरी उससे मुलाक़ात हो चुकी है। अब्बा बेपरवाही से कहने लगे। लेकिन हम दोनों ने उन्हें रुकने नहीं दिया।"

"जब वह अब्बा के दफ़्तर में लगाया तो उसकी शिकायतें सुनकर मेरे पैरों के तले से जैसे ज़मीन निकल गई। मैं जैसे मर गई, मेरे हाथ में अगर कोई नेज़ा होता तो मैं पर्दे के पीछे से उसे नेज़े में बींध कर उसे बाहर फेंक दे देती जैसे कोई मरे हुए चूहे को फेंक देता है।"

"तौबा-तौबा हम माँ बेटी ने उस कमबख़्त की कितनी ख़ातिरें की थीं, जैसे बाँदियाँ हाथ जोड़कर करती हैं।"

"लेकिन हुआ क्या? लड़की तू बात आगे भी बढ़ाया कर।" हज़रत की दिलचस्पी जैसे बढ़ रही थी।"

"होना क्या ख़ाक था। आप जानते हैं कि गुरु महाराज का यह भाई जैसे उनका बैरी हो।"

"यह तो सारी दुनिया जानती है। उसे बात का गिला है कि गुर-गद्दी पर उसे क्यों नहीं बिठाया गया। उसकी बजाय सबसे छोटे भाई को क्यों गुरगद्दी बख़्शी गई है। हमारे यहाँ भी आया था मैंने उसे मुँह नहीं लगाया। नत्था से कहकर उसे बाहर से ही लौटा दिया। कह दो हज़रत की फ़ुर्सत नहीं। इस तरह के मुलाक़ातियों के लिए मेरे पास कभी फुर्सत नहीं होती।"

"तौबा-तौबा। उस बेहूदा आदमी के लिए हमने अब्बा जान को सात काम छोड़कर मुलाक़ात के लिए मजबूर किया।"

गुरु महाराज की चुग़लियाँ करता होगा, कहता होगा गुर गददी पर मेरा

हक़ है, मुझे मेरा हक़ दिलाया जाए मैं इंसाफ मॉगने आया हूँ। अगर मुझे नहीं तो मेरे बेटे को गुर-गददी दिलाई जाए। वह बड़ा आलिम है बहुत बड़ा शायर है। इस तरह की बातें वह हर किसी से कहता फिरता है। उस दिन कोई मुझे बता रहा था कि इस तरह की शिकायत उसने शाह हुसैन से भी की थी।

"अब तो वह और भी ऊँचा चढ़ा मालूम होता है।"

"अब उसे क्या तकलीफ़ हो गई है?"

"ऐसा लगता है कि गुरु अर्जुन देव जी ने कोई पोथी इकट्ठी की है।"

"हाँ ग्रंथ साहब", "मुझे इसका इल्म है, बड़ी मेहनत से उसकी तैयारी हुई है, मैं खुद उधर फेरी डालने की बात सोच रहा हूँ, बाबा फ़रीद शकर जंग (रहमतुल्लाह) की बाणी उसमें शामिल की गई है और भगतों और फ़कीरों का कलाम भी उस पोथी में दर्ज है। पूरे तीन वर्ष इस पोथी की तैयारी में लगे हैं। हमारे शाह हुसैन की मर्ज़ी थी कि उसका कलाम भी शामिल किया जाए, पर लगता है कि उसकी बात नहीं बनी।"

"भगत कबीर की बाणी शामिल हो गई है?"

"भगत कबीर की क्या बात है, उन जैसा खुदापरस्त बुर्जुग शायर कभी-कभी पैदा होता है।

हुजूर उनके ही किसी भजन पर एतराज़ किया जा रही है जिससे अमृतसर के गुरु साहब ने अपनी पोथी में शामिल किया है।"

"कौन सा भजन? मैं भी तो सुनूँ।"

"मुझे भजन तो याद नहीं पर काबे के बारे में कई शेर है॥"

"अच्छा वो :"

रोज़ा धरे निमाज़ गुज़ारे, कलमा भिसत्ति न होई॥

सतरि काबा घट ही भीतरी जेकर जाने कोई॥

"इसमें भला एतराज़ की कौन सी बात है, तुझे पता है, कबीर एक ब्राह्मण के घर पैदा हुआ और पला था, उसे एक मुसलमान जुलाहे दंपत्ति ने पाला था। कबीर ने बनारस को भी तो माफ़ नहीं किया। वह कहता है :

मन हु कठोर मरै बनारस नरक न बाँचा जाई।

हरि का संत मरै हाड़ंबै तां सगलि सैन तराई॥

"अब्बा जान को तो कोई बहाना चाहिए, झट ज़िल्ले-इलाही तक यह शिकायत पहुँचाने के लिए तैयार हो गए।"

"रुस्तम ख़ान ने अगर ऐसा किया तो बड़ा अन्याय होगा।"

"मुझे तो इस बात का अफ़सोस है कि हम माँ बेटी उस ग़ल्त आदमी की इतनी ख़ातिर क्यों करती रहीं। यह सुनकर कि वह अमृतसर वाले गुरु महाराज का बड़ा भाई है अम्मी जान ने तो उससे पर्दा भी नहीं किया।

बाबा नानक शाह फ़क़ीर॥

हिन्दू का गुरु, मुसलमान का पीर॥

"पंजाब के चप्पे-चप्पे पर लोग गुरु नानक को इस तरह याद करते हैं। बाबा नानक का दर तो सबके लिए खुला है, शंहशाह अकबर दीन-ए-इलाही का ज़िक्र करते हैं, गुरु नानक का चलाया पंथ दीन-ए-इलाही जैसा ही तो है। अल्लाह की महानता में विश्वास, न कोई ऊँचा न कोई नीचा, मेहनत करनी और बाँट कर खाना और मुसावात क्या होती है?"

"मुझे लगता है अब्बा बाज़ नहीं आएगें आज कल शहंशाह भी यही हैं। हुज़ूर आप अब्बा को क्यों नहीं समझाते?"

तेरा अब्बा बड़ा संकुचित है भला मानस उसका मुँह नहीं लगाता।"

लेकिन इस तरह का भाई भी नहीं कोई देखा जैसा पृथीचंद है। तौबा-तौबा उसके अंदर कितना ज़हर भरा है सारा वक़्त गुरु महाराज की बदनामी करता रहा।"

"तेरे अब्बा को ओर क्या चाहिए, उसकी तो बाँछे खिल गई होंगीं।"

"आप से कौन सी ब्रात छिपी है।"

(32)

वही बात हुई। रुस्तम ख़ान अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आया। शहर का काज़ी शिकायत कर रहा था, शहंशाह अकबर उसे अनसुना नहीं कर सकता था, चाहे अकबर खुद गुरु घर का श्रद्धालु था। बादशाह ने हुक्म जारी किया कि पोथी को उनके सामने पेश किया जाए।

पृथीचंद को लगा कि वह जीत गया है। वह फ़ौरन उछलता-कूदता अमृतसर लौटा। वह शंहशाह अकबर से हुई मुलाक़ात का ब्यौरा इस तरह बना रहा था, जिसे सुनकर अपने बाप की हरकत पर उसे खीज महसूस हुई। वह सोचने लगा ठीक है, गुरगद्दी के मामले में उनसे धोखा हुआ था लेकिन उसके भीतर का विद्वान कैसे गवारा करता कि गुरबाणी को सरकारी दरबार में बदनाम किया जाए। उसके भीतर गुरु नानक के लिए श्रद्धा थी उसने मन ही मन फ़ैसला किया कि वह इन सब बातों से कोई सरोकार नहीं रखेगा।

उसी दिन से वह अपना सारा समय गुरु नानक का जीवन वृतांत लिखने में लगाएगा। वह सारा सामान बाँधकर हेहर जाने के लिए तैयार हो गया। पृथीचंद उसके मुँह की ओर देख रहा था अजीब लड़का है उसी के लिए तो बाप यह सब कुछ कर रहा था और उसी का मुँह कैसे फूल गया था। सूजा रहे, अब तो तीर कमान से निकल चुका था।

मेहरबान के भीतर एक अजीब परिवर्तन आ गया था। गुरबाणी की जितनी प्रतिलिपियाँ उसके हाथ आयीं उसने बाँध लीं।

"तुझे बाबा जी के बारे में कौन सी जानकारी है कि तू इतनी भारी ज़िम्मेदारी अपने सर पर ले रहा है।" चलते बक़्त पृथीचंद ने मेहरबान को जैसे रोका।

"मैं बाबा नानक जी को उनकी बाणी में देखता हूँ। बाबा गुरु महाराज का स्वरूप है। उनके शब्द पढ़ते समय मुझे बाबा जी के दर्शन ही जाते हैं जैसे वह साक्षात मेरे सामने आ खड़े हो।" मेहरबान ने अपने पिता को चुनौती दी।

पृथीचंद की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसका बेटा तो जैसे पल-पल कुछ का कुछ हो गया हो। वह तो कोई और ही भाषा बोल रहा था।

"फिर तो मेरा देवर सच्चा है, जो पोथी को पलंग पर सुलाता है और खुद नीचे ज़मीन पर लेट जाता है।" करमो मुँह बनाकर बोली जैसे अपने बेटे और देवर दोनों का मज़ाक़ उड़ा रही हो।"

"इतने में एक सिक्ख बाहर से आया और पृथीचंद को मुख़बरी करने लगा-महाबली अकबर ने पोथी को लाहौर मँगवा भेजा है।"

"अच्छा यह बात है।" पृथीचंद ने इस तरह हैरानी दिखाई जैसे इस बात का कोई इल्म ही न हो।

"गुरु महाराज तो पालकी तैयार करवा रहे हैं जिसमें इस पोथी को लाहौर ले जाया जाएगा।"

"पृथीचंद ने सुना तो एकदम क़हक़हा मारकर हँसने लगा। बार-बार हाथ पर हाथ मारकर हँसता। हँसी से उसका पेट दुख रहा था। पोथी के लिए पालकी तैयार हो रही है।"

"पोथी के साथ भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी लाहौर जाएँगे। गुर सिक्ख ने अपनी बात जारी रखी। भाई बुड्ढा और भाई गुरदास बेचारे पैदल जाएँगें और पालकी को कहार उठाकर ले जाएँगे। पृथीचंद ने फिर

क़ह-क़हा लगाया।"

पृथीचंद जब इस तरह गुर घर का मज़ाक़ उड़ा रहा था, मेहरबान जैसे साँप की तरह छटपटा रहा था। कुछ देर बाद जब वह सारे ठट्ठे मज़ाक़ से फुर्सत पा चुके तो मियां-बीबी यह देखकर हैरान रह गए कि उनके सामने खड़ा मेहरबान क्रोध में लाल-पीला हो रहा था। यह मुझे हो क्या रहा है। करमो अपने बेटे से मुख़ातिब हुई।

"आज मुझे विश्वास हो गया है कि सचमुच मेरा पिता गुरगद्दी के लायक़ नहीं। आज मुझे यकीन हो गया है कि हम इस महान आदर के बिल्कुल हक़दार नहीं।"

"क्या मतलब?" पृथीचंद लाल-सूर्ख़ होकर बोला। "मैंने यह कहा था कि गुरु साक्षात् अपनी बाणी में विराजमान है। उसका सबूत यह आदर है जो मेरे चाचा पोथी को देते हैं।"

"वह तो हमेशा से ख़ब्तीयों की तरह हरकतें करता रहा है।"

"और आप ने गुरुबाणी की चुग़ली सरकारी-दरबार में पहुँचा दी। इससे बड़ा अनर्थ क्या हो सकता है?"

"सिर्फ मुझे ही इस पोथी से शिकायत नहीं है तू लाहौर जाकर देख भगत काना कितने ख़फा हैं।"

"उन्हें तो इस बात का दुख है कि उनकी बाणी पोथी में शामिल नहीं की गई।" यह कोई ज़्यादती नहीं। तू नहीं जानता कि काना जी की पहुँच आगरे तक है। शंहशाह का माल वज़ीर चंदू उनका रिश्तेदार है।

"काना कवि है उसे गिला हो सकता है, आप को क्या शिकायत है। गुरबाणी की पोथी को चुग़ली करके आपने अपने सिर पर क्यों पाप लिया?"

"तेरे लिए। कृतज्ञ यह सब मैंने तेरे लिए किया है ताकि तुझे गुरगद्दी मिल सके।"

"मुझे गुरगद्दी नहीं चाहिये। इस तरह गुर-गद्दी पाकर मैं नरक का भागी नहीं बनना चाहूँगा।"

"वाह बेटा, अब करमो बोली "कोई अपने पिता के सामने इतनी ऊँची आवाज़ से बोलता है?"

"मैं अभी, इसी घड़ी इस घर से निकल रहा हूँ फिर कभी इस आँगन में क़दम नहीं रखूँगा। यह कहते हुए मेहरबान घर से बाहर निकल गया।"

"पुत्तर, तू मेरी बात तो सुन, करमो उसे आवाजें देती रही। लेकिन

मेहरबान सुनी-अनसुनी करके आँखों से ओझल हो गया।"

उसे पुकारती हुई करमो उसके पीछे गई थी। कुछ देर बाद निराश होकर आँगन में लौट आई। पृथीचंद पहले की तरह पत्थर का बुत बना खड़ा था। उसकी समझ में यह नहीं आ रही था कि यह मन क्या हो गया था, उसके पैरों तले से ज़मीन निकल गई हो। जिस बेटे के लिए यह सब कुछ कर रहा था, वही उसका साथ छोड़कर चला गया था।

"कहाँ गया है?" कुछ देर बाद पृथीचंद ने अपनी बीबी से पूछा "मालूम नहीं" करमो मरियल आवाज़ में बोली।

"हेहर गया होगा, और कहाँ जाना है?"

"मैं अपने पुत्तर को जानती हूँ अब वह यहाँ कभी नहीं आएगा।"

"अगर वह नहीं आएगा तो हमें हेहर जाने से कौन रोक सकता है?" पृथीचंद ने एक हारे हुए जुआरी की आवाज़ में कहा।"

(33)

रुस्तम ख़ान तो जैसे बहाना ढूँढ रहा था। वह पहले से ही अपनी बेटी कौलाँ की गुर भक्ति से परेशान था। उठते-बैठते वह यही गुन-गुनाती रहती थी :

फूटो आण्डा भरम का मन ही भरो परकास
काटी बेरी पगह ते गुर किनी बंद खलास॥

रुस्तम ख़ान ने अकबर तक न केवल शिकायत ही पहुँचाई, इस बात को भी निश्चित किया कि जल्द से जल्द इस मामले पर कारवाई भी हो जाए। ख़ास तौर पर शंहशाह के आगरे लौटने से पहले वह चाहता था कि मुक़दमे की सारी सुनवाई उसके सामने हो, लाहौर में ही हो।

इधर कौलाँ आठों पहर हाथ जोड़ती रहती थी अपने अब्बा की हर हरकत की, ख़बर मियां मीर जी को पहुँचाती थी। मियां मीर जी भी चिंतातुर थे। रुस्तम ख़ान ने अपने साथ कानहा नामे, छज्जू, पीलू और शाह हुसैन को बतौर गवाह के शामिल कर लिया था। उन लोगों को शिकायत थी मि गुरु महाराज ने इनके कलाम को अपनी पोथी में शामिल नहीं किया था।

पृथीचंद अपनी चुग़ली की पैरवी करने लाहौर नहीं गया। लेकिन उसे इस बात का विश्वास था कि उसकी लगाई आग ज़रूर सुलग कर रहेगी। ख़ास तौर पर लाहौर का क़ाज़ी रुस्तम ख़ान मुक़्दमे को आख़िरी दौर तक ले जाएगा। उसने तो पृथीचंद को भरोसा दिलाया था कि वह गुरु अर्जन देव

जी के संपादित ग्रंथ को शंहशाह से ज़ब्त करवा कर रहेगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। एक बार पोथी ज़ब्त हो गई तो पृथीचंद की दुकान फिर चालू हो जाएगी। उसका बेटा मेहरबान जा रूठ गया था, वह भी सीधे रास्ते पर आ जाएगा। लेकिन मेहरबान जिस ढंग से घर से निकमा था पृथीचंद अभी तक उस दृश्य को भूल नहीं सका था। मेहरबान ने कनखियों से जैसे अपने पोते को आँगन में से निकलते वक़्त देखा था। वह नज़ारा पृथीचंद के सीने में जैसे कोई कटार की तरह चला रहा था। उसके सीने में जैसे तीरों का गुच्छा आ चुका हो; उसके रोम-रोम को छेदकर रख गया हो। आठों पहर उसे अपने सीने में से चीसें उठतीं महसूस होती थीं। दिन प्रति दिन वह दुर्बल होता जा रहा था।

उसकी पत्नी ने उसको लाख समझाया लेकिन रुस्तम ख़ान बाज नहीं आया। बल्कि अपनी बेटी की तरह अपनी पत्नी को भी ग़ल्त रास्ते पर डालने लगा था।

जिस दिन पोथी लाहौर पहुँची, रुस्तम ख़ान ने अपने रसूख से कह सुन कर ग्रंथ के ख़िलाफ शिकायत की सुनवाई का समय भी तय करवा लिया। रुस्तम ख़ान को भला कौन इंकार कर सकता था?

मुक़्दमे की सुनवाई दरबारे आम में होनी थी, दोनों पक्षों के लोगों से दीवाने आम खचा-खच भरा था। छोटे बड़े कई दरबारी थे। उनके सामने एक चौकी पर बड़े आदर से पोथी को रेशमी कपड़ों में लपेट कर रखा हुआ था। रुस्तम ख़ान सभी को कह रहा था कुरआन पाक से भी बड़ी इसकी जिल्द है। बज़ीर ख़ान सामने बैठा ख़ामोशी से कसमसा रहा था। उसे विश्वास था कि मुक़्दमे का अंत कुछ भी नहीं होगा फिर भी वह अपने चोगे की जेब में दायें हाथ की जेब में उसकी ऊँगलियाँ झम झमाते सच्चे मोतियों की माला पर एक साथ फिर रही थीं। भाई बुड़ढ़ा और भाई गुरदास जी के साथ स्थानीय धर्मशाला के कितने ही सिख हाज़िर थे।

दूसरी ओर उधर कानहा, छज्जू, शाह हुसैन, पीलू और अनेक चेले थे। शाह हुसैन बार-बार अपने साथियों की याद दिलाते "इस में बाबा फ़रीद रहमतुल्लाह की बाणी भी शामिल है। इस बात का ख़याल रक्खीएगा।"

कानहा बोल उठा "तेरी और बाणी तो शामिल नहीं, पृथीचंद तो मुझे भरोसा दिलाकर गया है कि अगर उसे गुर-गद्दी मिली तो वह हम सब का कलाम अपनी किताब में शामिल कर लेगा। उसका बेटा मेहरबान, खुद अच्छा

भला शायर है। मेरा तो शागिर्द बना फिरता है।

"कितना ज़ुल्म है छोटे-मोटे भाटों की बाणी शामिल कर ली गई और हमारी दरख़ास्त की कोई सुनवाई नहीं हुई।" पीलू को शिकायत थी।

तुझ से भूल हो गई। तुझे मिर्ज़ा साहिबा के क़िस्से में से वे पंक्तियाँ सुनानी चाहिए थीं :

"कढ कलेजा लै गई ख़ान खीवे दी धी
गज़-गज़ लंमियाँ मेहिआँ रंग जो गोरा सी।
जे देवे प्याला ज़हर दा मैं मिर्ज़ा लैंदा पी।
जो कस-कस मारे बरछियाँ मैं मूहों न करदा सी।"

सुनकर शाह हुसैन बोले मुश्किल यह है कि गुरु अर्जन के कान में शायद तेरा तो शेर पड़ गया है।

चढ़दे मिरज़े ख़ान नूँ जट वंज्झल देंदा मत्त।
भठ रनां दी दोस्ती खुरी जिनां दी मत्त

उन्हां पीर बाबा नानक ने तो कहा था :

सो क्यों मंदा आक्खीऔ जित्त जमहि राजान ॥

यह बोल अभी शाह हुसैन के मुँह में ही थे कि शंहशाह अकबर के जलवा अफरोज़ होने का ऐलान लग पड़ा—

बा अदब, बा मुलाहिज़ा, होशियार।
बा अदब, बा मुलाहिजा होशियार ॥
बा अदब, बा मुलाहिज़ा, होशियार ॥।

लगता था शहंशाह अकवर ने जैसे दर्शनों के लिए पोथी को मँगवाया हो, बड़े शौक़ से भाई बुड्ढ़ा जी के रखे रेशमी रूमाल को हटाने के लिए कहा फिर जब पोथी का आकार देखा तो आगे बढ़कर कहने लगे शहंशाह : यह किताब तो दुनिया में अपना सानी नहीं रखती।

यह सुनकर रुस्तम ख़ान का चेहरा उतर गया। वह वोला "ज़िल्ले इलाही इसमें इस्लाम और ब्राह्मण मत दोनों के ख़िलाफ कुफ़्र तोला गया है।"

"इसका फ़ैसला अभी हो जाएगा।" अकबर ने किसी पन्ने की तरफ़ इशारा करके भाई बुड्ढ़ा जी को पढ़ने का हुक्म दिया।

भाई बुड्ढ़ा जी ने शब्द उच्चारा :

ख़ाक नूर करदं आलम दुनियाइ ॥
आसमान ज़मीन दरख़्त अब पैदाइस खुदाइ ॥

बंदे जसम दीदम फ़नाह ॥
दुनिया मुरदार खुरदनी ग़ाफ़िल हवाह ॥ रहाऊ ॥

शहंशाह अकबर बीच में ही बोल उठे "वाह वाह, यह तो रूह की ठण्डक पहुँचाने वाली बाणी है।" भाई बुड्ढा जी ने शब्द का उच्चारण रोक लिया। शहंशाह के कुछ और कहने से पहले ही कानहा उठ कर कहने लगे—"हजूर को अगर जान की अमानत पाऊँ तो मेरी अर्ज़ है कि यह बुजूर्गवार ज़बानी याद किया हुआ शब्द पढ़ रहे हैं। हजूर ने जिधर इशारा फ़रमाया है तो नहीं। क्योंकि हममें से गुरुमुखी अक्षर कोई नहीं जानता। किसी पढ़ने वाले को बुलाया जाए जो इसमें से महाबली के निशान रक्खे शब्द को पढ़कर सुनाए।

"बेशक, यह एतराज़ वाजिब है" शहंशाह ने कहा और बादशाह अकबर के फ़रमान से सड़क पर जाते एक व्यक्ति साहिब दयाल को पकड़कर लाया गया। वह गुरमुखी अक्षर पढ़ सकता था। बादशाह के इशारे पर उसने जो शब्द पढ़ा, वो यह था :

घर में ठाकर नदर न आवै ॥
गल महि पाहनूँ ल लटकावै ॥
भर में भूला साकतु फिरता ॥
नीरु बिरौले खप्प-खप्प मरता ॥ रहाऊ ॥
जिस पानूँ को ठाकुर कहता ॥
ओह पहानूँ ले उसको डुबता ॥
गुनहगार लून हररामी ॥
पाहन नाव न पार गिरामी ॥
गुर मिलि नानक ठाकुर जाता।
जलि थलि महीअलि पूरन बिधाता ॥

(सूही महला ५)

शब्द का उच्चारण सुनता हुआ महावली अकबर जैसे अचंभे में आ गया। उसके हाथ जुड़ गए, सर झुक गया आँखें एक सरूर में अधखुली अधमुंदी, ओठ काँप रहे थे। एक बादशाह का तमतमाता लाल चेहरा रेशम की तरह मुलायम पड़ गया। मुँह से कुछ कहे बग़ैर शहंशाह आगे बढ़ा और अंगरखे में से मुठठी भर मोहरें भर कर पोथी को भेंट कर दीं। फिर भाई बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी से मुख़ातिब होकर बोले—"यह तो इलाही बाणी है। मेरी ग़ल्ती माफ़ हो। मैंने आपको तकलीफ़ दी। मैं खुद अमृतसर हाज़िर होकर

इस पाक (पवित्र) पोथी का फिर दर्शन हासिल करूँगा और गुरु महाराज को अपनी श्रद्धा पेश करूँगा।"

फिर भाई गुरदास जी ने पोथी को अदब से उठाकर अपने सर पर रख लिया जब तक पोथी दरबारे आम से बाहर नहीं चली गई शहंशाह अकबर हाथ जोड़े खड़े रहे।

फिर दरबार बरख़ास्त कर दिया गया। उस दिन कोई सरकारी कारवाई नहीं हुई।

(34)

पृथीचंद जान बूझकर अमृतसर में रुक गया था कि वह लाहौर से आई खुशख़बरी लेकर हेहर जाएगा और मेहरबान को मना लेगा। उसे रत्ती भर भी शक नहीं था कि अकबर के फ़रमान से उस पोथी को ज़ब्त कर लिया जाएगा और इस तरह कहानी ख़त्म हो जाएगी।

लेकिन लाहौर में खेले गए नाटक को सुनकर उसके हाथों के तोते उड़ गए। जहाँ खड़ा था वहीं कलेजा थामकर बैठ गया। उसके मन ने कहा—पृथीचंद तू बाज़ी हार गया है। तेरी मात हो गई है। गुरु घर में जन्म लेकर तूने अपनी आबरू को मिट्टी में मिला लिया है। तूने अपने गुर पिता को नाराज़ किया अपनी माता को क्लेष पहुँचाया। अपने भाई से विमुख हुआ। यहाँ तक कि तेरा बेटा जिसकी ख़ातिर तूने सब कुछ किया था तुझे छोड़कर चला गया है। तेरा अंत बुरा होगा। उसे लगा जैसे ज़िन्दगी पर उसकी पकड़ ढ़ीली पड़ गई है किनारे भीगते जा रहे हैं। जैसे कोई किनारे पर आ खड़ा हो, नीचे गहरी खाई थी। शाम को जब वह बाहर निकला तो उसे लगा कि गली-मुहल्ले, बाजार में लोग उस आदर से खुश थे जो पोथी को सरकारी दरबार में मिला था। हर आदमी खुशी से इसका ज़िक्र कर रहा था। नए-नए लोग पोथी के दर्शनों के लिए हरिमंदिर के दर्शन के लिए जा रहे थे। दर्शन से लौटे लोग ग्रंथ में से सुनी गुरबाणी की पंक्तियाँ लोगों को सुना रहे थे।

पृथीचंद को लगा जैसे लोग उसे पहले की तरह सत्कार नहीं दे रहे। न कोई उठकर खड़ा होता था, न कोई चलना बंद करता था। न किसी के हाथ जुड़ते थे, न किसी का सर झुकता था और तो और उस दिन शाम को जब वह घर लौट रहा था तो एक गली के मोड़ पर उसे देखकर एक अवारा कुत्ता इस तरह से भौंका जैसे कोई अंजान मुसाफिर हो। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। पृथीचंद सोच रहा था कि उसने तो इस शहर की एक-एक

अपने हाथों से लगाई थी। शहर के कौव्वे और कबूतर तक उसको जानते थे।

घर पहुँच की उसने करमो को बोरिया-बिस्तर बाँधने की ताकीद कर दी। अब वे लोग इस शहर में नहीं ठहरेंगें। वह हेहर चला जाएगा। वह सोचता था वहाँ उसकी सिक्खी-सेवकी पहले की तरह बनी हुई थी।

अगले दिन जब वह सोकर उठा तो बाहर से कोई मेहमान आकर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दिल्ली शहर से शहंशाह के दीवान चंदू का कोई सन्देशा लेकर आए थे। यह सुनकर पृथीचंद के जान में जान आ गई। जरूर कोई अच्छी ख़बर होगी। वह तेज़ी से तैयाह होने लगा। नहा-धोकर किम ख़्वाब और ज़रबफ़्त के कपड़े पहन कर बैठक में उसके मेहमान इंतजार कर रहे थे। उसने उनका स्वागत किया। वही बात थी। चन्दू गुरु घर से अपना रिश्ता जोड़ने की बात सोच रहा था। चन्दू की बेटी शादी के काबिल हो गई थी और अपने एक पुरोहित को योग्य वर की तलाश में भेजा था। किसी ने बताया था कि गुरु अर्जन देव जी का साहबज़ादा हरिगोबिंद का इलाके भर में कोई सानी नहीं था। देखने में जितना सुन्दर था लिखने, पढ़ने, घुड-सवारी और तीरंदाजी में भी उतना जी निपुण था।

"वह तो अभी बच्चा है, मुश्किल से ग्यारह बरस का है। हमारे अपने घर में मेरा सबसे छोटा बेटा जवान जहान हो गया है। कहीये तो अगली पूरनमासी को हम बारात लेकर आपके घर आ जाएँगें। पृथीचंद ने अपने बेटे का प्रस्ताव रखा लेकिन उसे लगा कि किसी ने उसकी तरफ़ ध्यान तक न दिया हो।"

करमो ने मेहमानों की खूब ख़ातिर की। वे खा पीकर, सौग़ातें लेकर आगे चल पड़े। पृथीचंद और करमो उनका मुँह देखते रह गए।

"लाहौर से ही आएँ लौट कर बात पक्की कर जाएगें। पृथीचंद ने करमो को तसल्ली दी।"

"खाएँ खसमों को, मेरा बेटा कौन सा बगली पहने घूमता है।" करमो ने कहा और हेहर जाने की तैयारी में लग गई।

करमो कपड़ा-लत्ता सम्हाल रही थी और पृथी चंद कह रहा था कि "अकबर से तो मुझे भी कोई उम्मीद नहीं थी। मैं सोचता हूँ कि मैं सरहिन्द के नक़्श-बंदियों से मिलकर साज़िश करता। वे लोग तेरे देवर को एक नज़र भी नहीं दे सकते।

"वह तो कट्टर मुसलमान सुन्नी हैं।"

"तो क्या हुआ। दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है।"

"कैसा ज़ुल्म है, माँ जाया भी आज दुश्मन हो गया है।" करमो के मुँह से निकला और उसने हैरानी से अपने पति की ओर देखा।

पृथीचंद को लगा जैसे उसकी पत्नी भी अजनबी हो गई है। उसने सोचा वह बाहर जाकर सवारी का प्रबंध कर आएगा। लेकिन घर से बाहर क़दम रखते ही उसे गली मुहल्लों की चहल-पहल, शहर के बाज़ार की गहमा-गहमी और रौनक़ से चिढ़ होनग लगी। चारों तरफ़ उसे एक कोलाहल सुनाई दे रहा था और उसका दिल जैसे बेचैन हो जाता। उसे अडोस-पडोस अब अजनबी और पराया सा मालूम होता था।

अगले दिन अपने भाई को मिले बग़ैर हरिमंदिर के दर्शन किए बग़ैर पृथीचंद सारा सामान, उठाकर हेहर के लिए चल पड़ा।

हेहर पहुँचा तो उसके लिए एक और क़हर की निराशा उसका रास्ता दे रही थी।

उसका बेटा मेहरबान बाबा नानक की जन्म साखी तैयार करने में जी जान से लगा हुआ था। माँ-बाप, बहन-भाई किसी से उसने कोई वास्ता नहीं रखा था। दिन रात अपनी धुन में मस्त, वह लिखने में जुटा रहता। हेहर आए उन्हें एक हफ़्ता होने लगा था, मेहरबान ने अपने माता-पिता की ओर पलट कर भी नहीं देखा था। कोरे काग़ज़ काले करता रहता है। करमो लाचारी में हाथ मलती रहती।

आख़िर हार कर पृथीचंद उसके कमरे में गया सामने पड़े एक सफ़े (पृष्ठ) पर शीर्षक लिखा था—"गुरु अर्जन का अकबर बादशाह को साखी सुनाना" पृथीचंद की जिज्ञासा जागी और वह मेहरबान की लिखाई पढ़ने लगा।

तब एक दिन गुरु बाबे नानक जी के पास गुरु अंगद ने प्रार्थना की कि पादशाह अगर आपको भाए तो चलकर जंगल देखिये। तब करतारपुर से गुरु बाबा नानक जी जंगल की धरती आया। तब गुरु बाबा नानक जी चला जाता है उद्धान के बीच, जंगल में और सिक्ख साथ हैं जब उन सिक्खों ने कहा: "बाबा जी सलामति हम प्यासे हरि" कहे रे तुम प्यासे हो? कहे "जी बहुत प्यासे हैं?" तब गुरु बाबा नानक जी ने कहा "क्या करीये, यहाँ तो गँगा भी कहीं नजदीक नहीं। तब इतने ही कहने पर हवा की तरह गँगा आ गई। तब

गुरु बाबा ने सिक्खों से कहा—"हाँ तुम प्यासे हो, पीयो।" तब उन्होंने सिक्खहू गँगा जल पीया और नहाए भी। फिर और लोगों ने कहा कि यहाँ जंगल में पानी पैदा न होता था यह दरिया कहाँ से पैदा हुआ? तब तमाशगीर लोग देखने को चले। तब गुरु बाबे नानक जी ने कहा : "यह लोग तमाशगीर हैं शोर करेंगें तब बाबे नानक ने पीछे की तरफ हाथ किया। वे लोग पीछे ही हट गए आगे कोई न आ सका। ए साक्खी अकबर बादशाह ने सुनाई थीं जब गुरु अर्जन लाहौर आए मिला था अकबर बादशाह को। बोले वाहे गुरु।"

पृथीचंद ने पतरा पढ़ा तो जैसे उसके तन मन में आग लग गई। उसने तो अपने छोटे भाई को अभी तक गुरु स्वीकार नहीं किया था और इधर इसका पुत्तर भी उसे गुरु भी मानने लगा था और उसकी कहानियाँ भी सोचने लगा था।

बिना एक शब्द अपने बेटे से कहे पृथीचंद अपने कमरे में आकर चारपाई पर लेट गया और फिर कभी नहीं उठा।

(35)

चंदू के भेजे हुए पुरोहित पूरे पंजाब का दौरा कर आए थे पर उन्हें ऐसा कोई वर नहीं जंचा था जिसे वह चंदू की बेटी के योग्य समझ सकें। हार कर वह अमृतसर गए यह सोच कर कि गुरु महाराज के साहबज़ादे को एक नज़र तो देख लें। वह जहाँ भी गए थे लोग साहबज़ादे के गुण गाते नहीं थकते थे। उन्होंने भाई बुड्ढा जी से फिर गुरदास जी से विद्या प्राप्त की थी। फ़ारसी और अरबी पढ़ी थी। बैणी नाम के पंडित ने उन्हें संस्कृत में निपुण बनाया था। शास्त्रों के ज्ञाता थे ज्योतिष, हिकमत हर तरह की पंडिताई सीख कर अब भाई जेठा जी की देख रेख में घुड़ सवारी, तीरांदाज़ी, नेजेबाज़ी, गोला-बारूद का इस्तेमाल, बन्दूक की निशानेबाज़ी की सिखलाई ले रहे थे।

इसे कौन ग्यारह वर्ष का कहता है। यह तो सोलह वर्ष का होगा। साहबज़ादे के दर्शन करके दिल्ली से आए पुरोहितों में से एक बोला। "दमकता हुआ तेजस्वी चेहरा, ऊँचा लम्बा क़द-बुत, खिला हुआ माथा, उसके नयनों की रौशनी जैसे आँखों को चुँधिया रही हो।" दूसरा पुरोहित बोला।

"इसके चेहरे पर तो नूर बसता है, इसकी भवैं तो किसी सिपहसलार जैसी हैं। यह तो कोई बड़ा योद्धा बनेगा।"

"मैं तो सोचता हूँ कि इससे पेशतर कोई और इससे नाता गाँठे, हमें

लौटकर अपनी सरकार से बात कर लेनी चाहिए।"

"क्या यहीं गुरु महाराज के कान से यह बात न निकाल दी जाए?"

"इन्हें भला क्या एतराज़ होगा। चँदू शाह जैसा घर और उनकी चाँद जैसी बेटी, सुघड़ और सुशील इस तरह के रिश्ते कोई रोज़-रोज़ थोड़े मिलते हैं।"

और इस तरह किसी और से बात किए बगैर पुरोहित तेज़ी से लौट गए ताकि अपने जजमान को जाकर अपनी कारगुज़ारी से परिचित करायें। वहाँ उनकी प्रतीक्षा हो रही थी।

दिल्ली पहुँच कर पुरोहित बड़े खुश थे। इस रिश्ते की बात सुनकर उन्हें जितना भी इनाम इकराम मिले, उतना ही थोड़ा होगा।

नौज। लेकिन वे यह क्या सुन रहे थे? चंदू को पता चला तो वो जैसे उनको काटने दौड़ा।

"क्या सोचा है आपने मेरी बेटी कोई भीखमंगी है? चंदू लाल पीला हो रहा था। आपको कोई और घर नहीं मिला? सिक्ख सेवकों की दित्-दान पर पलने वाला घर ही रह गया था? उन लोगों की हैसियत ही क्या है कि मुग़ल बादशाह के दरबारियों के साथ रिश्ता जोड़े? यह तो चौबारे की ईंट को नाली में लगाने वाली बात हुई। मेरी बेटी तो मुग़ल शहज़ादियों के साथ उठती बैठती है। क्या एक मंदिर के पुजारी के घर जाएगी, उसकी भीक्षा खाने के लिए? तौबा-तौबा मैं तो यह कभी सोच भी नहीं सकता था। अंधेर साईं का हमने अपनी बेटी को कितने नाज़ों से पाला है। इतनी सुन्दर है कि हाथ लगाए मैली होती है। गोरी, निछोला।"

कितनी देर तक चंदू इस तरह ज़हर छोड़ता रहा। अगले दिन दिल्ली शहर में घर-घर इसकी चर्चा होने लगी। कुछ कहते पुरोहितों को जजमान के सामने यह तज्वीज़ नहीं रखी चाहिए थी। कईयों की राय थी, चंदू को इस तरह तेज़ी-तर्रारी से नहीं बोलना चाहिए था। चंदू तो मुग़ल बादशाह का मुलाज़िम है, गुर अर्जुन सच्चे पादशाह हैं, दो जहान के वाली। उनका राग लोगों के दिलों में है। उनका नाम लेकर लोग सफ़र शुरू करते हैं। चंदू का उनके साथ मुक़ाबला ही क्या है?

यह बात चलती-चलती अमृतसर में गुरु महाराज तक भी पहुँच गई कि चंदू ने गुरु घर के बारे में इस तरह के कुबोल बोले थे। दिल्ली से आए गुरसिक्ख, गुरु महाराज को बता रहे थे कि दिल्ली शहर की संगत सख़्त

ख़फ़ा थी। उन्होंने फ़ैसला किया था कि न ही वह चंदू को मुँह लगाएगे न ही उसकी बेटी का रिश्ता कहीं और होने देंगे। अब तो उन लोगों को अपनी बेटी सारी उम्र कुँआरी घर बैठानी होगी।

गुरु महाराज उनकी ख़फ़गी सुनते रहे। फिर उन्होंने दिल्ली के प्रमुख लोगों को समझाया—"अकबर का वक़्त और था, लोग अभी तक उसे महाबली करके याद करते हैं। अब वह नहीं रहा। जहाँगीर की बात दूसरी है। आदमी जाना जाता है संगत से जिसमें वह उठता-बैठता है। जैसा बादशाह वैसे उसके दरबारी। हम किसी के घर रिश्ता माँगने नहीं गए। उन्होंने खुद ही इस रिश्ते के बारे में सोचा ख़ुद ही इस तज्वीज़ को रद्द कर दिया, इसमें हमारा क्या गया (बिगड़ा) है।"

"पर सच्चे पादशाह हजूर के प्रति इस तरह कुबोल बोलते उसे शोभा नहीं देते थे। वह शंहशाह का दरबारी है।" दिल्ली से आए गुरसिक्ख अभी भी ख़फ़ा थे।"

"आपका कहना सही है, चंदू अपने कर्मों की सज़ा ख़ुद भुगतेगा।"

"हमारी यह प्रार्थना है कि अब अगर वह आकर नाक भी रगड़े, तो भी साहबज़ादे हरिगोविंद जी का रिश्ता चंदू के घर हरगिज़-हरगिज़ नहीं होगा।"

दिल्ली से आया एक गुरसिक्ख कह रहा था। उसका मुँह झाग-झाग हो रहा था।

"बेशक, यह माँग उचित है और इस पर कियी को एतराज़ नहीं होना चाहिए।" गुरु साहव ने दिल्ली से आए प्रतिनिधि जत्थे को विश्वास दिलाया। लेकिन चंदू का इस तरह एक क़ौम के सरताज के बारे में कुवचन बोलना, क्या आप नहीं सोचते कि इसकी शिकायत शंहशाह जहाँगीर को करनी चाहिए। क्या इस तरह के ग़ल्त आदमी का राज दरबार में रहना प्रजा के हित में है? दिल्ली से लौटे प्रमुख लोगों में से एक कह रहा था।

जिस बादशाह का अपना बेटा बग़ावत पर तुला हो उस हुक्मरान को कोई पराये की शिकायत करे भी तो कैसे? गुरु महाराज ने गुरुसिक्खों को कुछ दिन पहले शहज़ादा खुशरू के साथ हुई मुलाकात का ब्यौरा दिया।

शहजादा खुसरु को अपने दादा अकबर की ओर से तख़्त का इशारा मिल चुका था। अकबर अपने बेटे सलीम (जहांगीर) की करतूतों से हमेशा परेशान रहता था। सबसे बड़ी ज़्यादती जो उसने की वह अकबर के सबसे लायक़ वज़ीर अबुल फ़ज़ल को धोखे से अपने एक रूहिल्ले चाटुकार के हाथ

से मरवा देना था। अकबर के दरबार में ख़ान आज़म और राजा मान सिंह खुसरू को अकबर को वारिस बनाना चाहते थे। ख़ान आज़म खुसरू का ससुर था और मान सिंह उसका मामा। लेकिन मरने से पहले अकबर ने अपनी दस्तार सलीम के हवाले की। साथ में हुमायूँ की तलवार भी। तख़्त पर बैठते ही सलीम ने अपना नाम जहाँगीर रखा और खुसरू को आगरे के क़िले में कैद कर दिया।

ख़ुसरू किसी तरह हिरासत में से फ़रार होने में कामयाब हो गया और उसने अपने पिता के ख़िलाफ़ बग़ावत का झण्ड़ा बुलंद कर दिया। शुरु में उसके 150 घुड़सवार थे। फिर हुसैन बेग बदख़्शी तीन सौ सिपाही लेकर उसके साथ आ मिला। रास्ते में शहर और गाँव लूटता हआ लाहौर के रास्ते में वह गुरु अर्जन देव की शरण में हाज़िर हुआ। उन दिनों गुरु महाराज तरन तारन में थे। एक बेसहारा ऋणी उनसे आशीष माँग रहा था। गुरु अर्जन देव जी दया के सागर थे। सियासतदाँ तो थे नहीं। उनके दर पर जो भी आता राज़ी होकर जाता। गुरु महाराज ने शहज़ादे को तिलक भी लगाया और पाँच हज़ार रूपये की थैली उसकी मदद के लिए भी दी।

दिल्ली से आए सिक्ख यह सुनकर सर धुनने लगे। वे मुग़ल दरवार में जोड़-तोड़ की कार्रवाईयों से अच्छी तरह से परिचित थे। उनके मन में अशंका हुई कि चुदू जैसा दुष्ट इस घटना का ज़रुर लाभ उठाएगा और जहाँगीर को जो अपने पिता अकबर जैसा उदार हरगिज नहीं था। गुरु घर के ख़िलाफ़ भड़काएगा। जो बादशाह अपने बेटे को क़ैद कर सकता था वह किसी पराए के साथ जो भी करे वही थोड़ा।

(36)

चंदे कुबोल तो बोल बैठा लेकिन उसके घर में कोढ़ पड़ गया।

उसकी बहू पद्मा जो गुरसिक्ख घराने में ब्याही थी उल्टी चारपाई लेकर पड़ गई। उसके ससुर ने गुरु महाराज के बारे में बुरे शब्द कैसे बोले थे? उसके मन में बार-बार बेचैनी होती। क्या वह यह नहीं जानता था कि शंहशाह जहाँगीर के पिता अकबर को गुरु घर का आर्शीवाद मिला था? और तो और उसके परदादा बाबर को बाबा नानक निरंकारी ने सात पीढ़ियों का राज बख़्शा था। उसके दादा हुमायूँ को जब वह शेरशाह से मार खाकर भाग रहा था गुरु अंगद देव जी ने भरोसा दिलाया था कि कुछ बरस बाद फिर देश भर उसकी हुक्मरानी हो जाएगी। अभी तो अकबर उसी दिन दिल्ली

लौट रहा था। रास्ते में गुरु महाराज की तैयार पोथी के दर्शनों के लिए अमृतसर में हाज़िर हुआ था।

बद्‌दिमाग आदमी चंदू यह सब कुछ सुन-सुन कर अनसुनी कर रहा था और इधर उसकी बेटी जब उसे गुरु अर्जुन देव से साहब ज़ादे हरिगोविंद जी के बारे में बताया। उनकी फूट रही जवानी, उनका रंग रुप, उनकी विद्दता, शूरवीरता, उनके आँखों के सामने आठों पहर एक फ़रिश्ता-सीरत सूरज घूमती रहती। उसे खाना पीना कुछ अच्छा न लगता। ऐसा लगता जैसे कोई स्वर्ग उनके हाथ में से सरक गया हो। हर वक़्त रोआँसी, हर वक़्त खोई-खोई उनके कानों में कोई नग़में गूँजते। यह नग़में सिसकियों में बदलने लगते।

चंदू की पत्नी इन सब बातों को जानती थी दिन-रात कलपती रहती थी। एक तरफ़ बहू रानी फिक्र में थी, दूसरी तरफ़ जवान-जहान बेटी संताप में थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पुरोहित पूरे पंजाब का दौरा कर लौट आए थे। आगे-पीछे, ज़ात-बिरादरी में और कोई योग्य वर दिखायी नहीं दे रहा था। जिस तरह वह लड़की अमृतसर के रिश्ते के बारे में दीवानी हुई फिरती थी वो तो कुछ भी कर सकती थी। इधर उसके बहू-बेटा उसे चैन से बैठने तक नहीं दे रहे थे।

आख़िर हार कर चंदू की घर वाली उस रात झगड़ा लगाकर बैठ गई। अगर लड़की के भाई-भाभी राज़ी थे, अगर लड़की खुद गुरु घर की शैदाई थी तो उन्हें क्या एतराज़ हो सकता था। उन्हें तो शुक्र करना चाहिए था कि उनके सिर से ज़िम्मेदारी उतर रही थी। क्या वक़्त बीत गया था। उन्हें चाहिए था कि वे लड़की के हाथ पीले करके, फुर्सत पा जाएँ।

आख़िर चंदू को यह बात समझ में आई। उसका अपना मन कई बार उसे कोसने लगता था। उससे ग़ल्ती हुई थी। लेकिन एक मुग़ल दरबारी को फरावनियत, वह अपनी ग़ल्ती क़बूलने को तैयार नहीं था। उस दिन देर रात गए तक उसकी पत्नि उसके साथ लड़ती झगड़ती रही। आख़िर चंदू ने हथियार फेंक दिया। उसने रिश्ते के लिए रज़ा मंदी दे-दी। अगली सुबह उसने सबसे पहले पुरोहितों को बुलवा भेजा और आदेश दिया कि जैसे भी हो अमृतसर जाकर प्रस्तावित रिश्ते को पक्का कर आएँ।

चन्दू तो मान गया। लेकिन जो वचन गुरु महाराज ने दिल्ली की सिक्ख संगत को दिया था वह कैसे टलता? पुरोहित बेशक अमृतसर गए थे। कितने दिनों तक गुरु महाराज के आगे हाथ जोड़ते रहे थे। मिन्नतें करते रहे थे।

चंदू की बदतमीज़ी की भूल बख़्शवाते रहे थे लेकिन फैसला दिल्ली की संगत के हाथ में था। गुरु महाराज बेबस थे। पुरोहित दिल्ली लौटकर पहले शहर के गुरुसिक्खों से जोड़-तोड़ करते रहे पर उनकी कोई दलील कारगर नहीं हुई। एक के बाद दूसरी मुसीबत। जब उन्होंने यह धमकी दी कि चंदू बड़ा ख़ाराज़, कड़वा बोलने वाला आदमी था और उसे ख़फ़ा किया गया तो वह गुरु घर को नुक़सान पहुँचा सकता हैं गुरुसिक्ख इस तरह की धौंस मानने वाले नहीं थे। वह टस से मस नहीं हुए और फिर वही बात हुई चंदू ने सुना तो सटपटा कर रह गया। एक जूती उतारता तो दूसरी पहन लेता। ज़हर से झाग निकालता हुआ अपनी पत्नी को और घर के दूसरे लोगों को भी ताने सुनाता। बार-बार दाँत पीसता, ज़हर घोलता और कहता कि मैं अमृतसर शहर की ऐसी-तैसी कर दूँगा। गुरु अर्जन को ऐसा सबक़ सीखाऊँगा कि वह हमेशा-हमेशा के लिए याद रक्खुँगा।

उसकी पत्नी के पास देने के लिए कोई जवाब नहीं था।

उसकी बहू और बेटी अपने-अपने बंद कमरों में बार-बार गुरु महाराज का ध्यान धर कर क्षमस याचना कर रही थीं। माथे रगड़ रही थीं।

चंदू जैसे मौक़े की तलाश में था अगले दिन दरबार में जैसे उसके हाथ में आ गया हो। लाहौर से ख़बर आई कि ब्यास नदी के किनारे पर हुई झड़प में शहज़ादा खुसरु की बग़ावत को दबा दिया गया, शहज़ादे और उसके सैकड़ों साथियों को गिरफ़्तार कर लिया था। चंदू ने सुना तो अपने ओर से मिर्च-मसाला लगाकर बताने लगा कि उसे अमृतसर से यह ख़बर मिली थी कि गुरु अर्जन देव जिन्होंने बाबा नानक की गद्दी को अपने बड़े भाई पृथीचंद से छीन कर ख़ुद सम्हाल लिया था, और शहज़ादा ख़ुसरु की मदद की थी। पहले उसके माथे पर तिलक लगाया उसकी पीठ थपथपायी फिर भारी रक़्म की थैली शहज़ादे को पेश की थी। यही नहीं व्यास की लड़ाई में गुरु अर्जन देव के चेले गुरसिक्ख साहबज़ादा ख़ुसरु के पक्ष में मुग़ल फौजों से भी लड़े थे। कुछ मारे गए थे, कुछ पकड़े गए थे।

एकाध दिल बाद चंदू ने जो इल्ज़ाम गुरु अर्जन देव जी के विरूद्ध लगाए थे उसने सच्ची झूठी तस्दीक़ भी उसने करवाली। दरबार के पुराने मुसाहिब यह सब कुछ मानने के लिए तैयार न थे। उनका कहना था मि गुरु नानक पंथी कभी ऐसा नहीं कर सकते थे; बाबा नानक ने तो मुग़ल ख़ानदान को हिन्दुस्तान की बादशाहत बख़्शी थी अभी तो कल ही अकबर बादशाह गुरु

महाराज के दर्शनों के लिए अमृतसर गया था। दीवान चंदूशाह की सूचना ग़ल्त मालूम होती थी। लेकिन कुछ ऐसे दरबारी भी थे जो हमेशा चंदू का साथ देते थे। उनकी मित्र मण्ड़ली गुरु महाराज की निंदा करने में चंदू की हिमायत कर रही थी।

जहाँगीर की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। फ़ैसला यह हुआ कि वह कुछ दिन के लिए कश्मीर जा रहा है, रास्ते में लाहौर में रूककर इस मामले में खुद तफ़्तीश करके फ़ैसला देगा। अब चंदू के लिए यह बात पक्की करनी बाकी थी कि किसी तरह शहंशाह के साथ लाहौर जाने वाले दरबारीयों में शामिल कर लिया जाए। कुछ दरबारी शँहशाह से पहले लाहैार भेजे जा रहे थे। अगर उनमें चंदू का नाम आ सके तो और भी अच्छा होगा। वह लाहौर के काज़ी रूस्तम ख़ान और गर्वनर मुर्तज़ा ख़ान से मिलकर गुरु अर्जन देव जी के ख़िलाफ़ मामला तय कर लेगा।

चंदू यह भी चाहता था कि शंहशाह जितने दिन कश्मीम में बिताएँ वह अपने परिवार के साथ लाहौर रहकर बेटी के योग्य वर ढूँढ लेगा और अगर हो सका तो उसकी शादी से भी सुर्ख़रू हो जाएगा। जवान-जहान बेटी एक भारी ज़िम्मेदारी थी। इधर उसकी बीबी भी उसे चैन नहीं लेने देती थी।

चंदू की बीबी भी सच्ची थी, उसकी बेटी और बहू अपनी-अपनी जगह पर गुरु घर की दीवानी थी। उसकी बहू तो सिक्ख परिवार में से ब्याह कर आई थी। लेकिन उसकी बेटी की श्रद्धा पागलपन की हद तक पहुँच गई थी। बस इतना ही कारण था कि उसने पुरोहितों के मुँह से गुरु महाराज के साहबज़ादे की स्तुति सुनी थी और लड़की ने जैसे पूरी तरह से आत्मसमर्पण कर दिया था।

उस दिन चंदू की पत्नी जब अचानक अपनी बेटी के कमरे में गई तो उसके पैरों तले ज़मीन निकल गई, देखा कि जिस तरह की तस्वीर साहब ज़ादा हरिगोविंद की पुरोहितों ने खींची थी एक कागज़ पर हुबहू वैसी शक्ल बनाकर लड़की ने एक आले में रक्खी थी और उसके सामने चंपा की कलियाँ फैलायी हुई थीं। शुक्र है लड़की खुद कमरे में नहीं थी।

(37)

अपनी बेटी माला का यह फ़ैसला सुनकर कि वह शादी अगर करेगी तो केवल साहब ज़ादा हरिगोविंद से, नहीं तो जीवन पर्यन्त कुआँरी रहेगी। चंदू और भी तिलमिला उठा। उसकी एकलौती बेटी थी और फिर इतनी

सुन्दर, इतनी सुशील, इतनी सुघड़, इस तरह की लड़की को कोई मुग़ल ले जा सकता था। उनका उठना बैठना भी शाही घरानों के साथ रहता था। अकबर ने कुछ इस तरह की परंपरा चला रक्खी थी। राजपूतनियों मुग़ल महलों में रसनध्बसने लगी थीं। बेशक उनके लिए महलों में पूजा-स्थान भी बनवा दिए थे। घण्टियाँ बजती थीं, आरतियाँ होती थीं, लेकिन चंदू शाह तो माला बेटी को अपनी जात-बिरादरी में ही देने को राज़ी था। जैसे भी हो वह अपनी ज़िम्मेदारी से सुर्ख़रु होना चाहता था। अपने फिर पुरोहितों को बुला भेजा। उन्हें फिर अमृतसर जाने के लिए कहा। एक तरफ़ अपनी बेहूदगी के लिए क्षमा याचना की, दूसरी तरफ़ धमकी भी दी कि शहज़ादा ख़ुसरु को तिलक लगाने और आर्थिक मदद देने के लिए गुरु साहब को पछताना भी पड़ सकता है।

हुक्म से बँधे पुरोहित अमृतसर गए। चंदू शाह की क़िस्मत में जैसे गुरु घर की फटकार लिखी थी। इससे पहले कि पुरोहित गुरु साहब के सामने हाज़िर होकर चंदू शाह की ओर से अरदास-विनती करते, उनकी आँखों के सामने एक विचित्र नाटक खेला गया।

सुबह का दीवान समाप्त हो रहा था कि एक गुरसिक्ख गले में पल्ला ड़ालकर गुरु अर्जन देव जी के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। यह डल्ला निवासी भाई पारो का पोता नारायण दास था।

"हजूर आप निराश्रितों का आश्रय हैं।" वह विनती कर रहा था। निवट की ओट हैं। निपत्तों की पत्त हैं। हमारी एक बेटी है, गुरु घर की श्रद्धालु जिसे हम दोनों पति-पत्नी ने गुरु के निमित्त किया हुआ है अब वह बड़ी हो गई है। हमारी एक अरदास है कि हमारी जायी को सच्चे पादशाह अपने साहबज़ादे हरिगोविंद जी के लिए स्वीकार करके हमारा मान रखें।"

"चंदू शाह के पुरोहितों में से एक ने दूसरे को चुटकी काटी और हक्के बक्के होकर वे दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे। इतने में गुरु महाराज ने एक नज़र सामने बैठे अपने श्रद्धालुओं की ओर देखा और फ़रमाया सेवकों की अरदास सुनी गई है।" गुरु महाराज के मुखार्विंद से यह शब्द निकले तो संगत जयकारों से इस शुभ फ़ैसले का स्वागत भी कर दिया। तीन बार जयकारे उठे।

चंदू शाह के पुरोहित अपना सा मुँह लेकर दीवान में से उठकर बाहर आ गए। उन्हें अपने पर, अपने जजमान चंदू पर तरस आ रहा था। इस

दरबार में जिसका काम होना रहता है। पलक झपकते ही हो जाता है और कुछ लोग लगातार बरसों तक इस दरवाज़े पर ऐड़ियाँ रगड़ते रह जाते हैं। ऐसा क्यों होता है। एक पुरोहित दूसरे से कह रहा है।

माला का यह फ़ैसला आख़िरी था कि अगर वह शादी करेगी तो साहबज़ादा हरिगोविंद से ही करेगी। इधर जब चंदू शाह को अमृतसर से कोरा जवाब मिला तो उसने फ़ैसला कर लिया कि वह इस निरादर का बदला लेकर साँस लेगा।

माला की भाभी पदमा अजीब संशय में थी जैसे किसी ने उस पर टोना कर दिया हो। माता ने पहला काम यह किया कि गुरमुखी अक्षर सीखे। अपनी भाभी से गुरबाणी की पोथियाँ लेकर सुबह-शाम पाठ करने बैठ जाती उसकी माँ देख-देख कर परेशान होती। एक तरफ़ उसके पति का खौफ़, दूसरी तरफ उसकी बेटी की भक्ति और प्रेम, उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। बहु और सास सोच-सोच कर हार गई थीं। बारी-बारी से उसको सुमति देने लगती थीं। लेकिन माला टस से मस नहीं हो रही थी। एक और नई मुसीबत खड़ी हुई जब उस दिन कुछ नटनियाँ माला के पास आयीं। गर्मियों के दिन थे, अपने ठण्ड़े किए चौबारे में उनको लेकर पूरी दोपहर माला हीर-रांझे का क़िस्सा सुनती रही। जो दामोदर ने लिखा था और बड़ा प्रचलित हो गया था। पूरा दिन बीतने के बाद नटनियों से कहा कि वह तील दिन तक लगातार आएँ।

न खाने की सुध, न पीने की परवाह। आठों पहर बस "आक्ख्य दमोदर मैं अक्खीं डिट्ठा" माला इस क़िस्से के कोई न कोई बोल गुन गुनाती रहती।

"यह तुझे क्या हो गया है?" एक दिन उसकी भाभी उससे पूछने लगी। सुबह-शाम कितने सुन्दर ढंग से बाणी पढ़ती है। अब तूने गुटके की ओर कभी मुड़कर नहीं देखा। "माला चुप"। "सारा-सारा दिन तू कंधी नहीं करती तीन दिन से तू नहाई नहीं"। माला चुप्प।

"कल रात मैंने देखा कि तू अपने पलंग पर नहीं थी। मैं घबरा गई तूझे तलाशती हुई मैं छत पर गई तो मैंने देखा कि सफ़ेद दूधिया चाँदनी में तू सबसे ऊँची छत के पीछे खड़ी एक टक आकाश क़ी ओर देख रही थी जैसे तारों में किसी को तलाश कर रही हो।"

माला के टप-टप आँसू गिरने लगे। मुँह से कुछ नहीं बोल रही थी। लेकिन उसके आँसू थे कि मोतियों की लड़ी की तरह अपने आप बहते जा

रहे थे।

"इस तरह तो तू खुद भी ख़ार होगी, मुझे भी परेशान करेगी।"

यह बोल अभी भाभी के मुँह में थे कि ऊपर से माला की माँ आ गई। लगता था कि ननद-भौजाई में हुई सारी बात उसने सुन ली थी। अब उसकी माँ उसे समझाने लगी। "तेरे बाप में बहुत गुस्सा है, तुझे पता ही है कि मैंने उसके साथ कैसे अपनी ज़िन्दगी बिताई है वह तो गुरु महाराज के भी बैर पड़ा हुआ है। दिन रात उसे और कुछ सूझता ही नहीं इसीलिए तो वह सरकार के साथ लाहौर आया है। वह तो आज या कल में ही कोई नया शोशा छोड़ने वाला है। मैं हाथ जोड़ती हूँ हमारी मिट्टी न पलीद कर तू अमृतसर वाले साहबज़ादे के सपने देखती है तेरा बाप उन्हें जड़ से नष्ट करना चाहता है............. मेरी लाडली तू उसका ख्याल छोड़ दे।"

कुछ देर से माला टकटकी लगाकर कोठरी की छत की ओर देख रही थी और फिर पहले की तरह छत की ओर ताकती हुई गाने लगी—

"उल्टी हीर हिय्ये वीच राँझा हाल न जाने कोई।"
राँझा-राँझा कीन्नू आक्खाँ, मैं आप्पे राँझा होई।

अचानक माला के मुँह से यह बोल सुनकर उसकी माँ और भाभी जैसे सकते में आ गई हों। "माला-माला मेरी बच्ची, यह तुझे क्या हो गया है?" उसकी माँ ने आगे बढ़कर माला को अपनी बाँहों में ले लिया।

"माला मेरी लाडली बहन तू ऐसे छत की ओर क्यों देख रही है?" एक नज़र मेरी ओर देख। उसकी भाभी पद्मा माला के चेहरे को अपने दोनों हाथों में लेकर कह रही थी। तेरे सर को गर्मी चढ़ गई है। तीन दिन से तू नहाई नहीं। अपना क्या हाल बनाया हुआ है जैसे कोई लड़की शादी से पहले माइयाँ पर बैठी हो। उसकी माँ माला को पुचकार रही थी, दुलार रही थी। माला एकदम अपनी माँ की आँखों में आँखें डालकर कहने लगी।

मरद पराया न छूहे असानूँ ना महरम हत्थ न लाई।
अस्सा कामल मुर्शिद पाया, कुझ लोडिंदा नाही।
कैन्नूँ तुम समझाये माये ज़ोरी न्यायू करिंदी।
लूँ-लूँ अन्दर राँझा वडेया, खरस्स खेडियाँ नूँ देंदि।
खारे अत्तूँ व्रप खलोसां, तदों नूँ समझऊँ दी।

और फिर पता नहीं उसमें इतना ज़ोर कैसे आ गया। माला ने अपने आप को माँ की बाँहों से अलग कर लिया। यह देख कर उसकी भाभी पद्मा

आगे बढ़कर उसे पकड़ने लगी। माला ने उसे ऐसा धक्का दिस कि वह पलंग पर उल्टी जा गिरी। अपने को आज़ाद करके माला ऊँचा-ऊँचा गाने लगीं, साथ में नाच भी रही थी।

नं कोई आक्खो हीरे मैनूँ न कोई आक्ख सलेटी।
ज़ात सनात पछाने नाहीं, मैं चाक्के नाल चकेटी।
कदों चुचक पियो मेंडा, मैं कदन उना दू बेटी।

उसकी भाभी पद्मा और माला की माँ बेबस बिट-बिट उसकी तरफ़ देख रही थीं। माला की माँ रब्ब का लाख-लाख शुक्र मना रही थी क उसका पति चंदू शाह बाहर गया हुआ था। डेरे में नहीं था। इतने में गाती-गाती माला धड़ाम से गिर पड़ी। फिर कुछ देर बाद उसकी आँख लग गई।

(38)

"मां बदौलत इस बात से परिचित हैं कि अर्जन नाम का कोई हिन्दू ब्यास के किनारे गोईंदवाल में एक साधू के वेश में रहता है।" जहाँगीर कामरान बाग़ में लगे आरज़ी दरबारे ख़ास में अपना ज़हर उगल रहा था। इसका नतीजा यह हुआ कि कई सीधे साधे हिन्दू और अंजान, कम अक़्ल मुसलमान भी उसके पीछे चल पड़े हैं। वह अपने आप को पीर और औलिया बताता है। लोग उसे गुरु कहकर बुलाते हैं। चारों तरफ महिवाल और मवेशी चराने वाले अक़्ल के अंधे उसके चेले बने हुए हैं। यह सिलसिला तीन-चार पीढ़ियों से चलता आ रहा है। मां बदौलत कितने अरसे से सोच रहे हैं कि इस कुफ्र की दुकान को बंद किया जाए ताकि इस आदमी को अहले सुन्नत में शामिल किया जाए।

"शहंशाह जहाँगीर ज़िन्दाबाद" हज़ूर ने हमारे दिल की बात की है। चंदू शाह बोला।

"जहांपनाह इस बात की तस्दीक़ हो गई है कि गुरु अर्जन नाम के हिन्दू ने जो अपने आपको पीर बताता है। शहज़ादा खुसरु के माथे पर तिल्क लगाया, उसकी कामयाबी के लिए दुआ माँगी और चलते वक़्त भारी रक़म से भरी एक थैली भी उसे भेंट की।" अब मुर्तज़ा ख़ान बोल रहा था।

"थैली में पाँच हज़ार रूपए थे।" दीवान चंदू शाह ऐसे कह रहा था जैसे उसने खुद गिन कर रक़म रक्खी हो।

यह सब सुनकर वज़ीर ख़ान परेशान लग रहा था। "ज़िल्ले इलाही इस इत्ला में कोई सच्चाई नहीं"। अब उसकी बोलने की बारी थी। "मैं गुरु अर्जन

देव जो को ज़ाती तौर पर जानता हूँ चेचक के दौरान जो ख़िदमत उन्होंने शहर के लोगों की की थी वहाँ की याद हर शहरी की ज़बान पर है। लोग उनके गुन गाते नहीं थकते। उनकी रचना सुखमनी................"

इस वक़्त सवाल यह नहीं मां बदौलत के सामने अब मामला यह है कि अर्जन नाम के इस गुरु ने खुसरू की मदद की है या नहीं। शहंशाह जहाँगीर ने वज़ीर ख़ान को टोका।

"ज़िल्ले इलाही, पहील बात यह है कि गुरु अर्जन न हिन्दू है न मुसलमान। वह गुरु नानक की गद्दी पर बैठे हैं। गुरु नानक के सिक्ख न तिलक लगाते हैं और न इस तरह के रस्मों-रिवाजों में उनका कोई विश्वास है। बाबा नानक ने तो हर क़र्म-काण्ड़ के ख़िलाफ आवाज़ उठाई थी।

"बेशक़ लेकिन आम लोगों के संस्कार भी कभी बोझ हैं? चंदू शाह बहस कर रहा था।

"कोई कहता है पाँच हज़ार मोहरें दी गयीं, कोई कहता है पाँच हज़ार रूपये।" शहंशाह जहाँगीर जैसे अपने आप को सुनाकर बोल रहा था।

"जहाँ पनाह यह कुफ़्र है, इस तरह लुटाने के लिए एक फ़कीर के पास दौलत कहाँ से आई। वज़ीर ख़ान अपनी बात पर क़ायम था।"

"लेकिन वज़ीर ख़ान लाहौर के रास्ते में मां बदौलत की मुलाक़ात शेख अहमद सरहिंदी के साथ हुई, वह भी तो यह कही रहा था।" जहाँगर बोला।

ज़िल्ले इलाही। सरहिंद के शेखों के बारे अगर जानकारी लेनी हो तो हज़रत मियां मीर को बुलाकर पूछ लीजिए। वे तो कई महीने सरहिंद में रहकर आए हैं। हज़रत फ़रमाते हैं कि सरहिंद वालों की तंग नज़री और बदले की भावना को देखकर उनका दम घुटने लगा था। सरहिंद में उन्हें जोड़ों का दर्द रहने लगा। वे लाहौर आकर भले चंगे हो गए।"

"दरबार के सामने सवाल यह है कि गुरु अर्जन ने बाग़ी शहज़ादे खुसरु की मदद की या नहीं।"

"नहीं की।" वज़ीर ख़ान पहले की तरह भरोसे से बोला। "की, ज़रुर की" वज़ीर ख़ान को सुनकर रूस्तम ख़ान और दीवान चंदू शाह दोनों एक साथ बोल उठे।

दरबारे ख़ास में यह बहस अभी जारी थी कि पैरों में बेड़ियाँ, हाथों में हथकडियाँ, शहज़ादा खुसरु को शहंशाह जहाँगीर के सामने पेश किया गया। शहज़ादे का रंग पीला-ज़र्द, शरीर हड्डियों की मूठ, वह छल-छल आँसू

बहा रहा था। बार-बार हाथ जोड़ता, सर झुकाता, माफ़ी माँगता शहंशाह के क़दमों में गिरने की कोशिश कर रहा था। "सीधे खड़े रहो।" शहंज़ादे को गिरता देखकर शहंशाह जहाँगीर चिल्लाया।

शहज़ादे की दायीं तरफ़ उसका जरनैल हुसैन बेग बदख़्शी खड़ा था और बायीं तरफ़ अब्दुल रहीम। फिर शहंशाह के सामने ख़ुसरु का मुक़दमा पेश किया गया। ज़िल्ले इलाही जहाँ पनाह आगरे से हीरे और जवाहरात का संदूक़ चुराकर जैसे यह गुमराह शहज़ादा अपने दादा महाबली अकबर की मज़ार पर फ़ातहा पढ़ने के बहाने फ़रार हुआ तो—यह शिकायत हज़ूर के सामने पहले भी पेश की जा चुकी है।

उस वक़्त बदकिस्मत शहज़ादे के साथ सिर्फ़ तीस घुडसवार थे। लेकिन जब यह पंजाब की ओर बढ़ा तो हुसैन बेग बदख़्शी जी इस वक़्त शहज़ादे की दायीं तरफ़ खड़ा है इसके साथ आकर मिल गया। इनके साथ अब कोई बारह हज़ार की फ़ौज इक्ट्ठी हो गई। रास्ते में इन्होंने शाही ख़ज़ाने के लिए भेजा जा रहा क़रीब एक लाख रूपया हजूर के ख़िदमतगारों से फूटा।

ऐसे ही दिल्ली से गुज़रते हुए इन्होंने नरेला की सराय को जलाया और फिर लाहौर का दीवान अब्दुल रहीम आकर इनके साथ शामिल हो गया। रास्ते में यह ग़रीब किसानों को लूटते और खुले आसमान के नीचे सोते थे। जहाँ गीदड़ और लोमडियाँ इनके पैरों को सूँघते थे, इनके मुँह चाटते थे फिर यह पंजाव में आ घुसे।

रास्ते में यह लोग तरनतारन में गुरु अर्जन देव जी के यहां हाज़िर हुए और उनसे मदद माँगी। कोई किसी के दर पर फ़रियादी बन कर जाए तो उसके लिए कुछ न कुछ किया जाता है। शहज़ादे को ज़रुर मदद मिली होगी। फिर शहज़ादा हजूर के बालिद बुज़ूर्ग वार महाबली अकबर के साथ एक बार पहले भी गोईंदवाल सिक्ख दरबार में हाज़िर हो चुका था।

"इस तरह शहज़ादा जब लाहौर पहुँचा तो दिलावर ख़ान ने इसका रास्ता बंद कर दिया। लाहौर में इन्हें घुसने नहीं दिया गया। हांलाकि शाही फ़ौज से ज़्यादा शहज़ादे के समर्थक थे। पूरे नौ दिन तक शहज़ादे के लश्कर ने क़िले को घेर कर रखा। इतने में शाही फ़ौज को दिल्ली और आगरे से भेजी गई कुमुक की ख़बर मिली और बाग़ियों ने फ़ैसला किया कि व्यास के किनारे वे जहाँपनाह की फौजों के साथ मुक़ाबला करेगें। बाग़ियों के पास

उस वक़्त कोई दस बारह हज़ार घुडसवार थे।

उधर शाही फ़ौजें शेख फ़रीद बुख़ारी जी की अगुवाई में गोईंदवाल के किनारे ओर व्यास दरिया को पार करने में कामयाब हो गयीं।

इसके बाद भैरोवाल की जंग हुई जहाँ हमारा नारा "बादशाह सलामत जिंदाबाद" था। फैसलाकुन साबित हुई। बाग़ियों के लश्कर की तबाही की दी गई। कुछ लोग भागने में कामयाब हो गए। बाक़ियों को कै़दी बना दिया गया या मौत के घाट उतार दिया गया। बाग़ी शहज़ादा आगरे से चुराकर लाए हुए हीरे और जवाहरात का सन्दूक मैदाने जंग में ही छोड़ कर भागने में सफ़ल हो गया। पर भैरोवाल में उसकी सख़्त हार हुई।

इसके बाद की कहानी से जहाँपनाह वाक़िफ़ हैं। कैसे हुसैन बेग और अब्दुल रहीम के साथ बाग़ी शहज़ादा जान बचाकर फ़रार हो गया। यह लोग रावी दरिया पार कर गए। लेकिन चिनाव दरिया पार करने से पहले हजूर के ख़ादिम अब्दुल क़ासिम ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया और अब यह बाग़ी ज़िल्ले-इलाही के सामने पेश किए जा रहे हैं।

इतने में शहज़ादा खुसरु रो-रो कर निढाल हुआ ग़श खाकर गिर पड़ा था। सब उसकी ओर तरस भरी निगाहों से देख रहे थे कि शंहशाह जहाँगीर क़हर भरी आवाज़ में बोला "यह मक्कार है, इसको पकड़कर खड़ा कर दिया जाए, शाही दरबार में पेश होने के आदाब इसको मालूम होने चाहिए।

और शंहशाह जहाँगीर के हुक्म के मुताबिक़ उसी तरह बेड़ियों और हथकड़े ही जकड़े शहज़ादे को कै़द ख़ाने मतें फेंक दिया गया। जहाँ उसकी आँखों पर चमड़े के ढक्कन चढ़ाकर उन्हें बंद कर दिया गया।

शंहशाह के फ़रमान के मुताबिक हुसैन बेग और अब्दुल रहीम को पहले गधों पर बिठाकर शहर में घुमाया गया। फिर एक गधे और बैल को मार कर उनकी खालों में उन्हें ज़िन्दा मढ दिया गया। क्योंकि गधे की खाल को सूखने में ज्यादा समय लगता है। हुसैन बेग ने कोई बारह घण्टे तड़प-तड़प कर जान दे दी। बाक़ी जो सैकड़ों बाग़ी पकड़े गए थे उन्हें मिर्ज़ा कामरान के बाग़ से लेकर जहाँ जहाँगीर ने दरबार लगाया था शहर की सड़क की दोनों तरफ़ सूलियाँ खड़ी करके लटका दिया गया ताकि बाक़ी प्रजा को भी सबक़ मिले।

"हजूर ने गुरु अर्जन देव के बारे कोई फ़ैसला नहीं दिया।" दीवान बरख़ास्त होने से पहले दीवान चंदू शाह ने शंहशाह को याद करवाया।

"हाँ-हाँ गुरु अर्जन देव को दो लाख रुपए का जुर्माना किया जाता है।"

"हजूर अगर वह जुर्माना न भरें। दीवान चंद बोला।" जहाँपनाह यह मैं इस लिए पूछ रहा हूँ कि ज़िल्ले इलाही मलका मोअज़्ज़माँ के साथ कश्मीर तशरीफ़ ले जाने की बात सोच रहे हैं। जुर्माना न भरने पर सज़ा का फ़ैसला, गुर्तज़ा खान पर छोड़ा जाता है। इस तरह कामरान बाग़ में लगाया शंहशाह जहाँगीर का दरबार स्थगित/खत्म हआ।

(39)

मुग़ल बादशाह जहाँगीर ने गुरु अर्जन देव जी पर दो लाख रुपए जुर्माना किया गया है। जब यह बात गुरु महाराज को बताई गई तो उनके मुख पर अकस्मात् एक मुस्कान खेल गई जैसे वह इसी ख़बर की प्रतीक्षा में हो।

"लेकिन सच्चे पादशाह हमारा क़सूर क्या है? भाई पैड़ा जी लाल पीले हो रहे थे।"

"हम जुर्माना नहीं भरेंगे।" भाई पिराना जी कह रहे थे।

"बाप जागीर को गुरु घर के नाम लगा गया है और बेटा जुर्माना भरने का हुक्म दे रहा है।" भाई बिद्धीचंद जी क्रोध में उछल रहे थे।

"यही अदले जहाँगिरी है जिसकी इतनी चर्चा सुनते हैं?" भाई जेठा जी परेशान थे।

"मुग़ल बादशाह अपने लिए काँटे बोने लगे है।" भाई लंगाहा जी चिंता में डूबे मालूम होते थे।

"यह कलयुग है।" गुरु महाराज अपने सिक्खों को समझा रहे थे। कभी किसी ने सुना है कि बाप बेटे में तख़्त के लिए छीना-झपटी हो? अगर कोई बाप अपने बेटे को हथकड़ी लगा सकता है, बेड़ी पहना सकता है तो फिर और किसी के साथ जो भी सूलूक करे वो थोड़ा ही है। मुझे चारों तरफ़ अन्धेरा ही दिख रहा है। तुम पाँचों जने मेरे साथ लाहौर जाने की तैयारी करो। मुग़ल अहलकार आते ही होंगे।"

"अगर यह बात है तो सिक्ख संगतें मुग़लों को लगाया डण्ड पूरा कर देंगी।" भाई गुरदास जी सामने बैठे सारी बातें सुन रहे थे वह हाथ जोड़े खड़े हो गए।

"सिक्ख संगत पर यह कर क्यों लगाया जाए?" गुरु महाराज एतराज़ कर रहे थे।

"क़तई नहीं।" गोलक का पैसा सिक्ख संगत की अमानत है उसे सिक्ख

भाई चारे, साध-संगत के हित के लिए इक्ट्ठा किया जाता है।" गुरु महाराज समझ रहे थे कि मुग़ल बादशाह की वक़्ती ख़ारबाज़ी के लिए इस रक़म को हरगिज़-हरगिज़ नहीं बरता जा सकता।

इतने में लाहौर से एक गुरु प्यारा आया। बहुत परेशान था। उसने ख़बर सुनाई कि मुग़ल शंहशाह ने जो फ़रमान जारी कियास था उसमें केवल दो लाख जुर्माना ही नहीं था बल्कि गुरु महाराज को गिरफ्तार करके लाहौर लाने के लिए भी कहा गया था। साथ ही उनकी पूरी औलाद, माल-असबाब हर चीज़ को ज़ब्त कर लेने का भी हुक्म था।"

यह सुनकर आस-पास के सारे गुर सिक्ख भड़क उठे। अगर उसका बेटा बग़ावत कर सकता है तो हम भी विद्रोह करेंगे। मुग़ल सरकार के हुक्म की पैरवी करने वाले अमले को गुरु की नगरी में घुसने नहीं दिया जाएगा। हम मर जाएँगें, मिट जाएँगें, पर यह अन्याय नहीं होने देंगे। सवाल सिक्ख संगत के वक़ार का है।"

जब गुरु के सिक्ख अमृतसर में इस तरह उत्तेजित हो रहे थे उधर में रुस्तम ख़ान की बेटी कौलाँ हज़रत मियाँ मीर को दरबार में हाज़िर होकर उन्हें वह बातें सुना रही थीं जो उसने अपने अब्बा के मुँह से सुनी थी। वह बार-बार एक ही बात कह रही थी। "अगर ऐसा हो गया तो शहर में तबाही आ जाएगी।"

"बीबी होगी वही जो अल्लाह को मंजूर है, लेकिन इस तरह का कोई हुक्म शंहशाह से जारी किया है तो हमेशा-हमेशा के लिए अदले जहांगीरी को धब्बा लग जाएगा। तू मुझे इस मामले की पूरी जानकारी पहुँचाती रहना। अब तू जा पीछे लोग तुझे तलाश कर रहे हैं। तेरा अब्बा गुस्से में है।"

इधर कौलाँ बीवी लाहौर में बेहाल हो रही थी तो उधर लाहौर पहुँचे गुरसिक्ख को साथ लेकर भाई बुड्ढा जी गुरु महाराज के दरबार में हाज़िर हुए। दूर से ही भाई बुड्ढा जी को देख कर गुरु महाराज कहने लगे बस आपकी ही राह देख रहे थे, अच्छा हुआ आप आ गए।"

"लेकिन हज़ूर लाहौर से यह सज्जन किस तरह की बुरी ख़वर लेकर आए हैं। भाई बुड्ढा जी की साँस फूल रही थी।"

"यही तो कि गुरु अर्जन को गिरफ्तार करके लाहौर लाया जाए और उनके पूरे परिवार और माल असबाब को जब्त कर लिया जाए।" गुरु महाराज ने साधारण लहजे में कहा। आस-पास वैठे गुरसिक्ख जो पहले से

ही परेशान थे गुरु महाराज के मुख से ही यह सुनकर निढाल होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे जैसे उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या नाटक खेला जा रहा था।

कुछ देर तक दोनों तरफ चुप्प छायी रही। गुरु महाराज के नयन मुँद गए। कुछ देर के बाद उनके ओठों में से एक ध्वनि सुनाई दी।

तेरा कीआ मीठा लागे ॥
हरि नाम पदारथ नानक माँगे ॥

इतने में माता गंगा जी साहबज़ादा हरिगोविंद जी के साथ पधारीं। बेहद परेशान लग रही थीं। लगता था कि उन्हें आने वाले अनर्थ की इत्ला मिल चुकी थी। माता जी का चेहरा बेशक उतर गया था लेकिन साहब ज़ादा हरिगोविंद जी का मुखड़ा पहले की तरह चमचमा रहा था।

माता जी और साहबज़ादे को देखकर गुरु महाराज ने फ़रमाया यह भी अच्छा हुआ कि आप अपने आप आ गए। मैं आपको सन्देश भेजकर बुलाने वाला था। लाहौर से शाही फ़रमान लेकर अहलकार किसी वक़्त भी पहुँचा सकता है। हमें लाहौर जाना होगा। लौटना अकाल पूरख के हाथ में है। इसलिए हमारी यह मंशा है कि भाई बुड्ढा जी गुरु घर की मर्यादा के अनुसार साहब ज़ादा हरिगोविंद जी को गुरु गद्दी का तिलक लगा दें।

गुरु महाराज के यह वचन सुनकर सब हैरान रह गए। ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। यह क्या भाणा होने जा रहा था? सब अपनी आँखों में लाखों सवाल लिए गुरु महाराज के शांत, गंभीर मुखड़े की ओर देख रहे थे। उधर बाहर परिक्रमा में जो जवान-जहान गुरु सिक्ख लाहौर से आए एक यात्री से शाही फ़रमान की ख़बर सुनकर उत्तेजित हो गए थे, अब सर जोहड़ कर अमृत सरोवर के किनारे एक कोने में जा बैठे और कुछ इस तरह का मश्विरा करने लगे।

"सिक्ख पंथ आज एक मोड़ पर खड़ा हुआ है। ऐसा लगता है कि मुग़लों ने हमारी हस्ती को खत्म करने का फ़ैसला कर लिया है।"

"हमने यह कभी नहीं कहा कि वे राज न करें, राज उनके बलबूते के ज़ोर पर होता है। जब तक मुग़ल की बाँह में ज़ोर है राज उसी का होगा। लेकिन हमारी शिनाख़्त (पहचान) को कोई नहीं मिटा सकता, चाहे बाबर हो, चाहे हुमायूँ हो, चाहे कोई अकबर हो, चाहे कोई जहाँगीर।"

हम उनकी प्रजा हैं, प्रजा के कुछ फ़र्ज़ होते है, प्रजा के कुछ अधिकार

भी होते हैं।

राजा बराबर के भाईचारे का अग्रणी होता है "गुरु बाबे ने इनकी साथ पीढ़ियों को हिन्दुस्तान की हुक्मरानी बख़्शी थी, न्याय करने के लिए, अन्धेर गर्दी तो पहले भी तो हो रही थी।"

"हमारा धर्म, हमारी सभ्यता, हमारा भाईचारा अलग है, अलग रहेगा।"

"हमारा गुरु, हमारा हरि मंदर (मंदिर), हमारी पोथी सिक्ख क़ौम की यह कायनात कोई नहीं छीन सकता।"

जब नौजवान गुरसिक्ख एक-एक करके बोल रहे थे, इतने में गिन-गिन कर क़दम बढ़ाते हुए भाई गुरदास जी आए और उन्हें मश्विरा देने लगे :

"अब समय बातें करने का नहीं, काम करने का है आप में से कुछ नवजावन घोड़े जोत कर तैयार हो जाएँ और साहबज़ादा हरिगोविंद जी को शाम पड़ने पर दोआबे की ओर ले जाएँ।"

उधर गुरु महाराज के दीवान में आदेश पाकर भाई बुड्ढा जी गुरु नानक देव जी के समय से चली आ रही सिल निकाल लाए ताकि साहब ज़ादा हरिगोविंद जी को गुर-गद्दी पर स्थापित कर दिया जाए।"

भाई बुड्झा जी के हाथ में सिल देखकर साहबज़ादे हरिगोविंद जी अकस्मात बोल उठे, "अब समय शमशीर का है।"

"दो शमशीरों का" गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाने लगे। "एक शमशीर मीरी की, एक शमशीर पीरी की।"

गुरु महाराज के वचनों से जैसे अकस्मात हर चेहरे पर अमृत का छिड़काव हो गया हो, सारे मुखड़े उल्लास में खिलने लगे।

"आज तक हर सिक्ख का निशाना संत बनने का था। अब हर सिक्ख संत सिपाही हुआ करेगा।" गुरु महाराज बोल सुनकर चारों तरफ के गुरसिक्खों के रंगों में जैसे ताज़ा लहू दौड़ने लग पड़ा। उनके बाहों के पुठ्ठे जैसे अकड़ने लगे, बाँहें फड़कने लगीं।

"हमें सच्चाई का पल्ला पकड़ कर धर्म के राह पर चलना है लेकिन इस रास्ते में अगर ज़रूरत पड़ी तो हमारा साथ शमशीर के साथ होगा।" हरिगोविंद जी की आवाज़ में एक आत्म विश्वास था, जिसके अहसास से हर किसी के मन में हिलोर उठी।

अब गुरु अर्जन देव जी गुर गद्दी से उठ कर नीचे आए। भाई बुड्ढा जी ने साहब ज़ादा हरिगोविंद जी को गुर गद्दी पर विराजमान कराया,

तिलक लगाया, पिता अर्जन देव जी समेत सबके हाथ जुड़ गए। सब शीश गुरु हरिगोबिंद के सामने झुक गए।

(40)

गोसाइ मिहण्डा इठड़ा ॥
अम अबे था वहु मिठड़ा ॥
भैण-भाई सभि सजणा ॥
तु धु जेहा नाहि कोई जीउ ॥

(सिरी राग महला ५)

कौलों बीबी सुबह से कुछ गुन-गुना रही थी। सिरी राग में कोई धुन थी, न उसकी अम्मी, न उसके अब्बा को बोल समझ में आ रहे थे। यह धुन बड़ी सुरीली थी और कानों को बड़ी सुहानी लगती थी, रस में भीगी। मधुर। श्रद्धा में ओत-प्रोत। लेकिन लड़की के होंठों पर यह कौन से बोल थे? अजनबी-अजनबी से लगते थे।

फिर उसका बाप क़ाज़ी रुस्तम ख़ान बेटी के कमरे में गया। अपने आप गुनगुनाती हुई लड़की कुछ देर के लिए बाहर बाग़ीचे मे टहल रही थी, उसके अब्बा के पैरों तले से ज़मीन निकल गई, यह तो गुरु अर्जुन की बाणी थी। उसके कमरे में मेज़ पर पेड़ काग़ज़ के टुकड़े पर सारा शब्द फारसी अक्षरों में लिखा हुआ था। नीचे दर्ज था—गुरु अर्जन देव जी महाराज।

रुस्तम ख़ान को जैसे आग लग गई हो। उसका लहू खौलने लगा था। मुँह से झाग निकल रही थी। उसने कडकती आवाज़ में अपनी बीबी को बुलाया, "सईदन, देख अपनी जायी की करतूत।"

"क्या हो गया है, आप ज़रा धीमी आवाज़ में नहीं बोल सकते।" कौलाँ की अम्मी वज़ू कर रही थी लोटे को ज्यों का त्यों छोड़कर आई थी।

"देख अपनी बेटी की करतूत, यह सुबह से उस काफ़िर के किसी नुस्ख़े में से विर्द कर रही रही है।"

"अब यह कौन है? आप को तो आस-पास हर कोई काफ़िर दिखाई देता है।"

"वही अमृतसर वाला, जो अक़्ल के अंधों का गुरु बना फिरता है।"

इतने में कौलाँ अपने अब्बा की नाराज़गी सुन कर बग़ीचे से आई और दरवाज़े मे रुक गई।

"अंधेर साईं का, वक़्त का हुक्मरान जिसे सूली पर चढ़ाना चाहता है, यह लड़की उसके गुरु बनाए बैठी है।"

रुस्तम ख़ान ज़हर की झाग उल्ट रहा था।

कौलाँ ने क्षण भर के लिए अपने ओठों को जैसे दाँतों के नीचे दबाया और इससे पहले कि उसका अब्बा कोई और बेहूदा बात मुँह से निकाले वह धीरे से बोली, "अब्बा जान वह वली अल्लाह है जिसे आप काफ़िर कह कर याद कर रहे हैं। सच्चा पादशाह।"

"खामोश कमज़ात लड़की, तू उसे सच्चा पादशाह कहती है, जिसे हथकड़ी लगाकर हम अमृतसर से लाएँ है और जिसे अब क़िले में क़ैद किया गया है।"

"मैं मरी! यह जुल्म है कौलाँ की जैसे जान खुश्क हो गई हो, मैं आपको हाथ जोड़ती हूँ अब्बा सरकार यह ज़ुल्म न करो, वे दीन-दुनिया के मालिक हैं।"

"अपने दीन-दुनिया के मालिक का हाल जाकर देख आज से वह भूखा, प्यासा काल कोठरी में पड़ा है।"

"आखिर आप यह गुनाह क्यों कर रहे हैं?" अब कौलाँ की अम्मी बोली।

"तू भी अपनी बेटी की तरफ़दारी करती है?" जानती है सुबह से यह लड़की क्या गुन-गुना रही है :

गोसाइ मिहण्डा इण्डा ॥

अम्मी से भी अब्बा से भी मीठा है इसे अपना गुरु और फिर हमारे साथ इसका क्या रिश्ता है।

"आप ऐसा क्यों कहते हैं, हमारी एक ही औलाद है, ब्यारे का बीज।" कौलाँ की माँ अपने घर वाले को समझा रही थी।

"सईदन तेरी औलाद काफ़िर है।"

"बेशक अगर किसी अल्लाह के प्यारे में अक़ीदत लाना कुफ़्र है तो मैं काफ़िर हूँ।" अब कौलाँ की आवाज़ भी ऊँची हो गई थी।

"तेरे गोसाई का देखना क्या हाल होता है। उस बाग़ी शहज़ादे के लिए दुआ माँगना। उसकी दुआ का असर तू ने देखा है। हाकिमों ने खुसरु की आँखें नोच कर कुत्ते और कव्वे को खिला दी हैं और अब तेरे गुरु की वारी है।" क्रोध से रुस्तम ख़ान के मुँह में झाग निकल रही थी।

कौलाँ मिन्नत कर रही थी, "अब्बा सरकार मैं आपके पैर पड़ती हूँ, गुरु साहब की बेअदवी कर के आप गुनाहगार न बनिएगा। आपको दोनों जहाँ में कोई जगह नहीं मिलेगी।

"बेअदबी! अगर वह दो लाख रूपए का जुर्माना नहीं भरेगा तो देखना उसका क्या हाल होता है।"

"वह तो काई पहुँचा हुआ फ़क़ीर है। आप क्यों इस मामले में पड़ते हैं?" उसकी बेगम फिर उसे मश्विरा दे रही थी "शंहशाह जाने और उसका काम जाने।"

"शहंशाह ने यह मामला हमारे अहलकारों के सर पर छोड़ दिया है और यह फ़ैसला हुआ है कि इस चिलचिलाती धूप में जब लू चलेगी और अंग-अंग झुलस रहा होगा, उसे गर्म तवे पर बिठाया जाएगा। देखेंगे वह जुर्माना कैसे नहीं भरता।"

"जुर्माना वह नहीं भरेगा", कौफाँ एक उन्माद में बोली "तवे के नीचे चूल्हे में कई मन लकड़ी जलाई जाएगी।" जुर्माना वह नहीं भरेगा।" कौलाँ पहले की तरह बोली।

"गर्म तवे पर बिठाकर उसके नंगे शरीर पर गर्म रेत डाली जाएगी।"

"फिर भी वह जुर्माना नहीं भरेगा।" कौलाँ कह रही थी जैसे उसके भीतर बैठा कोई उसे उकसा रहा हो।

"फिर उबलते पानी के देग़ में उसे बिठाया जाएगा। नीचे चूल्हे में आग की लपटें उठेगीं। रुस्तम ख़ान अपनी सारी सोची हुई साज़िश को ब्यान कर रहा था।

"मेरा गुरु कसूरवार नहीं। वह जुर्माना कभी नहीं भरेगा।" कौलाँ पहले की तरह निडर होकर जैसे एलान कर रही थी।

तो फिर तू देखना उसे भी हुसैन बेग की तरह किसी गाय को ज़बह करके उसकी खाल में................।" कहता हुआ रुस्तम ख़ान कमरे में से निकल गया। कुछ देर के लिए चारों तरफ सन्नाटा छाया रहा। फिर कौलाँ की अम्मी ने बेटी को अपनी बाँहों में भरकर सामने चौक़ी पर बिठा दिया। अपने पल्ले से उसके माथे का पसीना पोछ रही थी। उसके हाथ उठा-उठा कर अपने होंठों से लगा रही थी। उसके गालों पर गिरते बालों को समेट रही थी।

"तेरे जैसे सिद्क़ पर कोई लाख-लाख बार कुर्बान जाए", कुछ देर बाद सईदन बोली।

अपने आप ही कौलाँ के हाथ जुड गए उसकी आँखें डब डबा गईं। उसने सिर उठाकर ऊपर देखना शुरु कर दिया जैसे अल्लाह का शुक्र कर रही हो, जिसे दसे यह नेमत बख़्शी थी।

इतने में उन्होंने देखा, बग़ीचे के पार का फाटक खुला और रुस्तम ख़ान अपनी सवारी में जा बैठा।

तेरा अब्बा ज़रुर क़िले की तरफ गया है। आज सुबह वह कुछ इसी तरह की बात कर रहा था।

"इतने में मैं हज़रत के तक़िये पर जाकर उन्हें इस अनर्थ के बारे में बताऊँ अम्मी जान आप कहारों से कहिए पालकी ले आएँ, मैं जल्दी-जल्दी गुसुल करके तैयार होती हूँ।"

कौलाँ की माँ तेज़ी से बाहर निकल गई। वह तो अपनी बेटी की ख़ातिर कुछ भी कर सकती थी। उसके ईमान, उसके सिदूंक पर वह बलिहारी जा रही थी।

कुछ देर बाद वह कहारों को हिदायत दे रही थी। "बीबी को हज़रत मियाँ मीर के तकिये पर तुरंत पहुँचाना है।"

(41)

घनघोर अंधेरी रात थी, हाथ को हाथ नहीं दिखायी देता था। अंधेरी रात और गर्मी। लगता था कि सारे दिन की तपी हुई धरती अभी तक तप रही थी। हवा में लू का क्रोध ज्यों का त्यों क़ायम था। पसीना पहले की तरह टपक रहा था।

घर के बाक़ी लोग सो चुके थें कोई छत पर, कोई ज़मीन के नीचे गीली रेत से ठण्डे किए तहख़ाने में। बस सिर्फ़ पदमा जाग रही थी। आज की रात वह नहीं सोएगी। बार-बार उसके होठों पर यह तुक आती :

मिरा मन लोचे गुर दरसन ताई।

आधी रात का वक़्त होगा दूर पिछवाड़े में कोई कुत्ता बार-बार करवटें लेता। थूथनी उठाकर हवा में भौंकता जैसे उसे दूर क्षितिज पर कोई क़यामत खड़ी दिखाई दे रही हो।

पड़ोस के बग़ीचे में रहट की रीं-रीं, ठक-ठक बंद हो गई थी। बैल थक

गए थे। चमन के माली को नींद ने दबोच लिया था।

पद्मा के घर वाला पीछे दिल्ली में रह गया था वह लाहौर नहीं आया था। पद्मा का साथ देने के लिए माला उसके कमरे में सोती थी। कोतवाली के घड़ियाल ने जब रात के बारह बजाए तो पद्मा चुपके से अपने पलंग से उठ खड़ी हुई। उसके साथ की चारपाई पर माला सो रही थी। अलहड़ जवानी की गहरी नींद। पद्मा सोच रही थी कि अगर कोई उसके सर पर ढोल बजाए तब भी माला की आँख नहीं खुलेगी।

पोले-पोले क़दमों से पद्मा साथ की कोठरी में गई। अपने गहनों का सन्दूक खोल कर एक, दो, तीन, चार जितने भी गहने उसके हाथ में आए, पल्लू में बाँध लिए फिर अपने आप को ढंक कर लफेट कर वह बाहर कोठरी में आई। वहाँ माला खड़ी जैसे उनका इंतजार कर रही थी।

भाभी मैं जानती थी आज रात तू क्या करने जा रही है, माला ने अकेले में उससे कहा, "मैंने कल शाम तेरी बातों से ही अंदाज़ा लगा लिया था।"

"तो फिर" पद्मा के मुँह से निकला।

"मैं भी तेरे साथ चलूँगी"।

"इस काली-बहरी रात में तू अकेली नहीं जा सकती।"

माला ने पक्का इरादा कर लिया था।

"यह कैसे मुमकिन हो सकता है, मैं दो पाप नहीं करना चाहती।"

"यह पाप नहीं पुण्य है तू अकेली नहीं उनका पल्लू पकड़ कर पार हो सकती, मुझे भी साथ ले जाना होगा।"

"एक जवान कुँआरी लड़की को ऐसे करना शोभा नहीं देता।" पद्मा ने फ़ैसला नुमा लहजे में कहा।

"भाभी मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ तुझे मैं अकेली कदापि नहीं जाने दूँगी। रास्ते में हुस्न का बाज़ार पड़ता है तू अकेली वहाँ से कैसे गुज़रेगी?"

"यह सुनकर पद्मा ने हथियार फेंक दिए। अगले क्षण ननद-भौजाई घर के पिछले दरवाज़े को धीमे से खोलकर बाहर निकल गयीं।"

पद्मा के पल्ले से उसके गहने बँधे हुए थे। उसके हाथ में शरबत की सुराही थी। माला ने मिठाई की वह थैली भी सम्हाल ली थी जिसे उसकी भाभी सारा दिन तैयार करती रही थी।

पद्मा और माला हवेली से बाहर निकली ही थीं कि आँधी चलने लगी।

आस-पास की गलियों में धूल-कंकड़ के ढेर लगने लगे। पद्मा ने सोचा एक तरह से यह अच्छा ही हुआ। किसी को उनके साहट की आवाज़ सुनायी नहीं देगी। आँधी में लिपटी हुई वह अपने ठिकाने पर पहुँच जाएंगी। फिर पद्मा के भीतर से कोई याद कराता, ठिकाना तो ऐसे कह रही है जैसे कोई दरवाज़े खोलकर तेरा इंतजार कर रहा हो। यह तो ठीक था आँधी उन्हें पटका-पटका कर फेंकती क़दम-क़दम पर ख़तरा था। धन गुरु अर्जन, धन गुरु नानक का सिमरन करती हुई धड़कते हुए दिलों से ननद भौजाई आख़िर क़िले के फाटक पर पहुँच गयीं।

यह कैसे सम्भव था कि पहरेदार किसी को आधी रात के वक़्त बिना इजाज़त क़िले में आने देता। फिर इस तरह के क़ैदी के साथ मुलाक़ात के लिए जिसे शंहशाह ने खुद क़सूरबार ठहराया था। पद्मा और माला हाथ जोड़ रही थीं। अपने ईष्ट को एक प्याला शर्बत और कुछ मिठाई भेंट करके वह लौट आएंगी। बारी बारी से पद्मा और माला मिन्नतें कर रही थीं लेकिन चौकीदार टस से मस नहीं हो रहा था।

आख़िर पद्मा ने अपने पल्लू से बँधे गहनों की गठरी खोलकर सारे गहने पहरेदार के सामने ढ़ेर कर दिए। मोतियों और हीरे से जड़े सोने के गहनों को (एक नज़र) देखकर पहरेदार की बाँछे खिल गयीं। आँख झपके ही वह पसीज गया। घी-खिंचड़ी हो रहा था।

"दोनों को नहीं मैं एक को जाने दूँगा आख़िर मुझे भी तो किसी को जवाब देना है।" पहरे चालाक से मुँह बनाकर बोला।

पद्मा और माला ने एक दूसरे की ओर देखा और आँखों ही आँखों में फ़ैसला किया कि इससे पहले कि चौकीदार अपना मन बदल ले या कोई और आफ़त आ जाए उन्हें मान लेना चाहिए।

"भाभी आप जाओ, मैं पहरेदार भाई के पास रुक जाती हूँ," माला ने पद्मा को सलाह दी।

इतनी गर्मी थी तो जिस काल कोठरी में गुरु अर्जुन देव जी को बंद किया गया था वह मच्छरों से भिन-भिना रही थी। सामने गंदगी का ढेर था सारे क़िले का कूड़ा जैसे वहाँ इक्ट्ठा होता हो। बदबू से नाक सड़ रही थी। चूहे और छू-छूंदर सब जगह घूम रहे थे।

पद्मा गुरु महाराज के सामने हाथ जोड़ने खड़ी थी। मिन्नतें कर रही

थी लेकिन वे चंदू के घर का शर्बत कैसे पीते फिर उन्होंने प्रण किया हुआ था कि जब तक उन पर लगाए गए जुर्म को वापस नहीं लिया जाता, वह भूखे-प्यासे रहेगें। किसी बे-गुनाह को पकड़कर क़ैदी बना लेना, इस अंधेर गर्दी को वह मिटाकर रहेगें या खुद मिट जाएंगे।

"मैं एक गुर सिक्ख की जायी हूँ। मेरा क़सूर इतना ही है कि मैं एक पापी के घर में ब्याही गई हूँ। पद्मा मिन्नतें कर रही थी। मैं नित्य आपकी बाणी का पाठ करती हूँ। आपने मेरी ननद का रिश्ता नहीं कबूला, उसके बाप की बेहूदगी करके लेकिन वह क़िले के बाहर आपके दरसनों के लिए तड़प रही है। उसने प्रण किया है वह सारी उम्र कुँआरी रहेगी लेकिन अगर शादी करेंगी तो सिर्फ श्री हरिगोविंद के साथ।

"कभी-कभी माँ-बाप के गुनाहों की सज़ा उनके बच्चों को भुगतनी पड़ती है।" गुरु महाराज ने सुनकर फ़रमाया।

"हजूर इस शर्वत का एक घूँट पी लीजिए। मैं पूरा दिन मिठाई तैयार करती रही हूँ। फालसे का रस निकालकर मैने यह शर्वत बनाया है। इसमें मेरी सारी ज़िन्दगी के अरमान समोये हुए हैं।"

गुरु महाराज चुप थे।

"हजूर मैं आपकी सिक्ख हूँ। मेरे माता पिता आपके श्रद्धालू हैं आपका नाम लेकर सफ़र शुरु करते हैं। मेरी माँ ने गुरु बाबा नानक को याद करके मुझे प्राप्त किया था। मेरे सात भाई थे उनके आँगन में कोई बेटी नहीं खेलती थी जो अपने भाइयों को राखी बाँध सकती।"

गुरु महाराज पहले की तरह ख़ामौश थे—"महाराज इस काली-बहरी रात में लाख ख़तरे मोल लेकर मैं आपके चरणों में हाज़िर हुई हूँ।"

तुम्हारी श्रद्धा से मुझे इंकार नहीं। तू कुछ और माँग ले, तेरी मनोकामना पूरी होगी।

अगर आप कृपालू हुए हैं तो फिर सच्चे पादशाह यह वर दीजिए कि आपके साथ मैं भी इस संसार से छुटकारा पालूँ फिर हमेशा-हमेशा के लिए आपके चरणों में आपकी सेवा में जुड़ी रहूँ।"

गुरु अर्जन देव जी ने सुना और एक नज़र आकाश की ओर देखकर अपना मेहरों भरा हाथ बीबी पद्मा के सर पर रख दिया।

जैसे कंप कपी छिड़ गई, पद्मा को महसूस हुआ कि वह पहले जल

रही थी अब उसे ठण्ड़क मिल रही हो। उसे चारों तरफ रौशनियों दिखायी देने लग पड़ीं। उसके कानों में नग़में गूँजने लगे जैसे गुरु महाराज की जय-जय हो रही हो।

यह मैं क्या सोच रही थी कि मेरे इष्ट को किसी ने क़ैद किया हुआ हो, यह मैं क्या सुन रही थी कि मेरे गुरु महाराज को किसी ने हथकड़ी लगाई है कि निवटों की ओट, गुरु अर्जन दो-दिन से भूखे प्यासे हैं? दो जहान के वाली, उनकी रज़ा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। यह तो एक खेल है जो मेरे हजूर ने खुद रचाया है। फिर अपने से सवाल-जवाव करती हुई पद्मा के होंठों पर यह तुक थिरकने लगी।

महजरु झूठा की तोनूं आपि ॥
पापी कउ लागा संतापु ॥
जिसहि सहाई गोविंद मेरा ॥
सि कउ जम नहीं आवै नेरा ॥

(42)

शंहशाह जहाँगीर के राज में किसी की मजाल नहीं थी कि हज़रत मियां मीर को कोई रोक सके। सारी जनता जानती थी कि खुद शंहशाद मलका नूर जहाँ के साथ हज़रत के तकिये पर हाज़िर होता था। कई बार ऐसा भी होता था कि शंहशाह को हज़रत से मुलाक़ात करने के लिए कई-कई दिन इंतजार करनी पड़ती थी। बार-बार शाही पैग़ाम आते, इधर हज़रत डाँट कर मना कर देते। उस दिन जब मियां मीर जी की सवारी लाहौर के क़िले पर पहुँची उन्हें देखकर सारे दरवाज़े एक-एक कर खुलते गए। चारों तरफ शोर मचा हुआ था—हज़रत तशरीफ़ लाए हैं, हज़रत गुस्से में हैं। आज क़िले के दारोग़ा की ख़ैर नहीं।

हज़रत के साथ उनका ख़िदमत गार मियां नत्था था।

फिर मियां नत्था ने एक तरफ़ इशारा करके कहा, "उधर उस दायीं तरफ़ वाले बुर्ज की ओर, मैदान में।"

हुज़ूर पल भर के लिए रूक जाईए मैं छाता मँगवाता हूँ उधर कहरों की धूप है। क़िले का दारोग़ा कह रहा था, "और उधर तो शाही क़ैदी............।" इतने में हज़रत की नज़र सामने खुले आँगन के एक कोने पर पड़ी। कई मन लकड़ियों के ढेर के पास एक चूल्हा जल रहा था। चूल्हे पर एक देग रखी

हुई थी। हज़ूर ने वहाँ पहुँच कर देखा, देग में पानी उबाला जा रहा था। और फिर उसकी नज़र सामने सिक्चों वाले कैद खाने पर पड़ी। गुरु अर्जन सिक्चों के पीछे सिर्फ़ एक जाँघिया पहने नंग-धडंग पालथी मार कर बैठे हुए थे। मियां मीर भाग कर इधर गए। दुआ-सलाम हुई।

"आपने अपना यह क्या हाल बना रक्खा है?" गुरु महाराज को देखकर हज़रत तड़प उठे।

तो फिर यह सच है कि आप को गर्म तवे पर बिठा कर आपके जिस्म पर गर्म रेत डाली गई? इतना अन्धेर, आप के सारे शरीर में छाले पड़े हुए हैं।

नत्थे ने धीमी आवाज़ में बताया, "इतना ही नहीं हजूर देग में जो पानी खौल रहा है उसमें अब इन्हें बिठाया जाएगा।

"खोलो यह सिक्चों वाला दरवाज़ा।" अब हज़रत क्रोध में आकर किले के दारोग़ा को हुक्म दे रहे थे।

पास खड़े एक कर्मचारी ने एक नज़र दारोग़ा की ओर देखा और फिर आगे बढ़ कर सिक्चों वाला दरवाज़ा खोल दिया। हज़रत अपने ख़िदमत गार नत्था के साथ अंदर गए। काल कोठरी बहुत तंग थी। बाकी लोग बाहर ही खड़े रहे।

"अन्धेर साईं का।" इतनी पहुँच वाले होकर भी आपने अपने की इन दुष्टों के हवाले कर दिया है?" एक फ़कीर पर किसके हुक्म से यह जुल्म हो रहा है? अब हज़रत किले के दारोग़ा से मुख़ातिब थे। मैं सब तहस-नहस कर दूँगा। आज आपके साथ यह हुआ है कल मेरे साथ यह हो सकता है, मुझमें और आपमें फ़र्क़ ही क्या है? मैं पूछता हूँ इस अत्याचार के लिए कौन ज़िम्मेदार है? हज़रत फिर दारोग़ा से पूछ रहे थे। इस शहर में क़हर मचेगा। अल्लाह की लानत............. हज़रत ख़फ़ा हो रहे थे कि गुरु महाराज ने हाथ उठाकर उन्हें शांत रहने के लिए इशारा किया।

"मियां जी इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं।" गुरु महाराज ने हज़रत के लिए अपने पास बैठने के लिए जगह ख़ाली की।

उनके पास बैठ कर हज़रत मियां मीर ने गुरु महाराज के छालों को नज़दीक से देखा तो उनकी आखें भर आयीं। "यह जुल्म है, यह अन्याय है।" हज़रत जैसे दाँत-पीस रहे थे।

"उसकी रज़ा है।" गुरु अर्जन देव जी ने धीमे से फ़रमाया।

"अल्लाह अपने प्यारे को इस तरह का कष्ट नहीं पहुँचा सकता।"

"सच की राह पर इस तरह के पड़ाव आते है।" गुरु महाराज ने मियां मीर को याद कराया।

"मैं शहर की ईंट से ईंट बजा दूँगा।" हज़रत क़हर में थे।

"अहिंसा अपने आप में सच की तलाश है।"

"वह कैसे?"

अहिंसा ईश्वर में विश्वास से पैदा होती है। गोले, बन्दूक, तीर और तलवार बाज़ार से मिलते हैं, अहिंसा अल्लाह की देन है। आहिंसा को अपनाने के लिए भगवान में भरोसा चाहिए।

"इस तरह कष्ट आपको दिए जा रहे हैं ऐसी तकलीफें आपको दी जा रही हैं तौबा-तौबा।"

"इस की तो कुर्बानी कहते हैं। सितम सहना, उसकी रज़ा में रहना। अपने भीतर आत्मिक बल पैदा करना और इस तरह जुल्म को भस्म कर देना।"

यह तो बदी के सामने हार मानने वाली बात हुई।" यह आत्मा की टक्कर है, ज़ालिम के इरादे के साथ। दुनिया में तीन तरह के लोग होते हैं—बुज़दिल जो अपने आप को बचाने के ख़ातिर सर झुका कर अन्याय को झेल लेते हैं। दूसरे सूरमे जो अन्याय के विरुद्ध जूझते हैं और तलवार का मुक़ाबला तलवार से करते हैं। मार देते हैं या मर जाते हैं और तीसरी श्रेणी को मैं सत्यग्रही कहता हूँ जिन्हें अहिंसा में विश्वास होता है। जो अपने आत्मिक बल से अत्याचारी के अत्याचार को क्षमा करते हैं, मोहब्बत, हमदर्दी और सच्चाई से उसे आस्था के राह पर ले आते हैं।

"लेकिन इंसान इस तरह के दुख झेलने के लिए नहीं बना।" हज़रत मियां मीर को अभी भी तसल्ली नहीं हुई थी।

"बेशक।" गुरु महाराज बोले—"जान बूझकर कष्ट झेलना और बात है। अहिंसा का यह रुप सचेत होकर कष्ट झेलना है। मैं मुगल सम्राट को इंसाफ़ की झलक दिखाना चाहता हूँ, सच की राह पर चलता हुआ, उसे सच की पहचान कराना चाहता हूँ। जो जैसी राह पर चलता है, उसकी मंज़िल की शक्ल भी वैसी ही होती है। या यूँ कह लीजिये जो मंज़िल दरकार हो, उसी तरह का रास्ता ढूँढ़ना पड़ता है।"

"कई राह अलग-अलग होती हैं।"

सच्चाई का रास्ता, नैतिकता का रास्ता हमेशा सही मंज़िल तक पहुँचाता है। इसमें कभी हार नहीं होती।"

"आपका मतलब है कि जो जुल्म आप झेल रहे हैं इनका ज़ालिम पर कोई असर होगा?"

"मैं जहाँगीर को बुरा नहीं समझता मैं उसे बीमार समझता हूँ। मैं उसे अपना दुश्मन नहीं समझता, अपना उसे हमसफ़र समझता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वह अपने संस्कारों की कैद में से निकलकर आज़ाद हवा में साँस ले। नैतिकता का आनंद उठाए।"

"रुस्तम ख़ान जैसे फ़िरका परस्त और चंदू शाह जैसी ख़ारबाजों को कौन समझाएगा।" हज़रत अपनी अशंका को ब्यान कर रहे थे।

"वह जो हर किसी के दिल में बसता है, उसका ठिकाना जहाँगीर बादशाह के दिल में भी है, क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के और चंदू शाह के दिल में भी है। मैं उन्हें इतना चाहता हूँ कि उन्हें इस बात का अहसास नहीं होने देना चाहता कि उनकी हार हो गई है।"

"जो भी है लेकिन इस तरह का अत्याचार न किसी ने देखा है न सुना है। मेरे जीते-जी ऐसा नहीं...............।

हज़रत मियां मीर यह बोल रहे थे कि अचानक कोई धुन सुनाई दी। जैसे आकाश में से कोई चमत्कारी संगीत झर रहा हो। लाखों बाँसुरियाँ बज रही थीं। घुंघरु छनक रहे थे, परियाँ गा रही थीं। यह कौन थे, हाथों में महकते हुए फूलों के हार लिए जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों ? उसके रास्तों पर मुठ्ठियाँ भर-भर कर केसर का छिड़काब हो रहा हो। कौन आने वाला था जो अभी तक नहीं आया था?

हल्की-हल्की ठण्ड। गुन-गुनी धूप मीठी-मीठी हवा के झोंके। दूर तक फैली हरियाली फूलों, फलों से झुके हुए पेड़। चहक रहे पक्षियों की क़तारे। उछल रहे झरने। कल-कल करती नदियाँ। सोई-सोई झीलें। एक खुमार, एक मस्ती, एक उन्माद।

और फिर हज़रत मियां मीर को जैसे झकझोर कर सपने में से जगाया हो, गुरु अर्जन देव जी के मुख से यह शब्द झर रहे थे :

"जा तू मेरै वलि है ता क़िआ मुहछंदा॥

तुधु सभु किछु मैतो सडापिआ जा तेरा बंदा ॥
लखमी लोटि न आवई खाह खरचि रहंदा ॥
लख चउरासीह मेदनी सभ सेब करंदा ॥
इह वैरी मित्र सभि कीजिआ नह मंगहि मंदा ॥
लेखा कोए न पुछई जा हरि बरवसंदा ॥
अनंदु भइआ सुख पइआ मिलि गुर गोबिंदा ॥
सभे काज सवारीअै जा तुधु भावंदा ॥"

(डखणे महला ५)

(43)

बरकते के घरवाले मुफ़्ती युसुफ़ को यह पता था कि बरकते के भीतर गुरु घर के लिए श्रद्धा थी, चाहे वह कितनी नमाज़ें पढ़ती रहती थी। खुद सिक्ख संगत की कमज़ोरियों का ज़िक्र वह बेशक कर लेती थी लेकिन किसी की मुँह से बाबा नानक के धर्म की किसी कमज़ोरी, किसी कोर-कसर की बात वह बर्दाशत नहीं कर सकती थी। इस लिए घर की अमन-शांति के लिए युसूफ़ ने गुरु अर्जन देव जी के बारे में जो ज़िक्र भी सरकारी दरबार में होता था बरकते से उसका चर्चा कभी नहीं करता था। इधर शक्ति से सम्पर्क होने के बाद बरकते को सारी साज़िश का पता चल गया। वह यह भी जानती थी कि सारे मामले में शहर के क़ाजी, दीवान चन्दू शाह और उसके अपने घर वाले मुफ़्ती का कितना हिस्सा था। यूसूफ से उसे यह गिला था कि वैसे तो हर छोटी-छोटी बात उसके सामने लेकर बैठ जाता था लेकिन गुरु महाराज के साथ ही रहे इस अन्याय का उसने कभी घर में कभी ज़िक्र नहीं किया था।

"तुझ से डरता है, तू उसका सिर-मुँह नोच लेगी।" शक्ति ने बरकते को सुनाकर कहा। अप्नने घर वाले को काम पर भेजकर बरकते सुबह-सुबह शक्ति के घर आकर बैठी थी।

शक्ति ने बरकते को बताया कि वह अपने सारे गहने बेचकर गुरु अर्जन देव जी महाराज पर लगाया जुर्माना भरने का फ़ैसला कर लिया था। लेकिन गुरु महाराज ने इसकी इजाज़त दी थी। शहर के प्रमुख लोग क़िले में गुरु अर्जन देव जी के सामने हाज़िर होकर उनकी मिन्नतें कर चुके थे मगर वह राज़ी नहीं हुए थे। "जब हमारा कोई क़सूर नहीं हम जुर्माना क्यों भरें?" गुरु

महाराज का फ़रमान था।

यह फ़ैसला हुआ कि गुरु महाराज अगर जुर्माना नहीं भरते तो उनको कष्ट दिए जाएँ। लाहौर की उस गर्मी में उन्हें गर्म तवे पर......................, अभी यह शब्द शक्ति के होठों पर ही थे कि बरकते ने आवेश में आकर उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया। उससे अब यह सब नहीं सुना जाएगा। अपना गुस्सा पीकर वह दुलीचंद की हवेली में से निकल गई। बरकते की आँखों के सामने बार-बार गुरु अर्जन देव जी की शांत मूरत तैरने लगती। सुन्दर लम्बी दाढ़ी, चमचमाते रेशमी बाल, उनकी मोटी-मोटी स्याह काली आँखें एक सुरुर में, एक लोर में जैसे मख़मूर हों। नयन जिन्हें कुछ दिख रहा था। खुला-चौड़ा नूरानी माथा। इस से लबरेज़ ओंठ, जिन पर आठों पहर नग़मे थिरकते रहते थे। ऐसा लगता जैसे मधुरबाणी की रिम-झिम होने लगी हो। गहूँआ रंग, गालों पर एक गुलावी आभा जैसे कोई बिछुड़े में बिलख रहा हो, तड़प रहा हो। एक निरंतर याद, एक प्रतीक्षा, एक लगन। मंजिल पर पहुँच कर, एक और उडान भरने की चाहत। लम्बी नाक, पतले कान, मोतियों के दानों जैसे सफ़ेद दुधिया दाँत। बरकते को जब भी उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसे लगा जैसे उनके मुखड़े से कोई लौ उठ रही हो। बरकते की आँखों चुधियाँ जाती, सर झुक-झुक जाता। यही जी करता कि वह मुख से कुछ उच्चारें तो माहौल में शहनाइयाँ बज उठें, गीतों की गूँज सुनाई देने लगे। परियाँ नाचती हुई आकाश से उतर आएँ। ठण्ड़ी मीठी हवा के झोंके चलने लगें। रंग-बिरंगे फूल खिल जाएँ। जाड़े की गुन-गुनी धूप मख़मली हरियाली से अठखेलियाँ करने लग पड़े। पंक्षी चहचहाएं, पशु ताल देने लग पड़ें।

कुछ इस तरह के आनंद में डूबी बरकते अपने घर पहुँची। उसके घर वाले के आने में अभी काफ़ी समय बाक़ी था और आजकल तो वह और भी देर से आता था। गुरु अर्जन देव जी का मामला शहंशाह जहाँगीर ने इनके हवाले जो कर दिया था। शहर के क़ाज़ी और शहर के मुफ़्ती के सुपूर्द किया गया था। बादशाह खुद कश्मीर की सैर के लिए चला गया था। रास्ते में बरकते अपने बेटे को मरदसे से पकड़ लाई।

घर पहुँच कर पहला काम उसने यह किया कि लड़के को अमृतसर भेजने की तैयारी शुरु कर दी। उसके कपड़े-लत्ते बाँध लिए और उसके साथ जाने के लिए एक नौकर तैनात कर दिया। अब बरकते पयंदे को पास

बिठाकर समझाने लगी, "बेटे यह तो तुझे पता ही है कि तेरा एक भाई भी है जो अमृतसर में तेरी मौसी के पास रहता है यह फ़ैसला हुआ है कि अपनी बाक़ी पढ़ाई तू अमृतसर में रहकर पूरी करेगा। कुछ दिनों के बाद मैं भी वहाँ आ जाऊँगी। यह सुनकर पयंदा ख़ान खिल उठा। वह कई बार कमाल के बारे में पूछता रहता था, बार-बार अमृतसर जाकर उससे मिलना चाहता था। नटखट लड़का, घोड़े का सफ़र, नए शहर की सैर, वह तो जाने के लिए बरकते से भी ज़्यादा उतावला था। नए कपड़े, नई तिल्ले वाली जूती, सर पर तुर्रे वाला मुसद्दी का साफ़ा, वह बाहर खड़े घोड़े पर जा बैठा, दूसरे घोड़े पर घर का पुराना नौकर करमा था। फिर अमन और सुंदरी के नाम ख़त देकर, सब चीज़ें सम्हाल कर बरकते ने अपने बेटे को सफ़र पर भेज दिया।

और अब बरकते सुनसान-अकेले घर में अपने शौहर मुफ़्ती का इंतजार करने लगी। यह सोचकर कि आज की शाम वह शहर के मुफ़्ती के सामने कौन सा मुक़द्दमा दायर करेगी। उसका शरीर झूमने लग पड़ता। उसका अंग अंग ऐंठ रहा था जैसे किसी को बुख़ार चढ़ा हो। यह देखकर उसका घर वाला आज पहले से भी ज़्यादा देर कर रहा था। वह मुस्करा उठती।

शाम ढली, अन्धेरा हुआ। अन्धेरा गहरा हो गया बरकते इशां की नमाज़ पढ़ पढ़ चुकी थी। आज की रात वह ज़्यादा देर तक सजदे में गिरी रही।

और फिर मुफ्ती घर लौटा।

"मैं खाना-खाकर आया हूँ।" उसने सामने इंतजार में बैठी बरकते को देख कर कहा।

"वह तो मुझे पता ही था। आज कल आपके दावतों के दिन हैं। नाच और गानें। जाम के दौर।"

"मगर मैंने दो घूँट दारू के पी लिए तो तेरे पेट में क्यों शूल पड़ते हैं। मैंने तुझे कभी मना किया है तू भी चाहे तो पी लिया कर।" युसूफ़ ने हिचकी लेते हुए कहा। वह कपड़े बदल कर सोने की तैयारी में था।

"बेटा कहाँ है?" सामने पयंदे की चारपाई ख़ाली देखकर युसूफ़ ने पूछा।

"मैंने उसे अमृतसर भेज दिया है।" बरकते ने बताया।

"अमृतसर"। वो कब?

"आज सवेरे।"

"वि ı लिए।"

"मेरा बेटा अमृतसर रहेगा, गुरु बाबा के घर में एक सिक्ख की तरह उसकी शिक्षा-दीक्षा होगी।"

"क्या मतलब।"

"मतलब साफ़ है।"

"मुझसे पूछे बग़ैर तूने मेरे बेटे को अमृतसर भेज दिया।"

"हाँ।" मैं उसे यहाँ के माहौल से पाक रखना चाहती हूँ। गुरु बाबे ने कहा है—लाहौर शहर, ज़हर, क़हर।

"और अमृतसर सिफ़तों का घर!" युसूफ़ ने शराब में बदमस्त होकर बरकते के मुँह पर एक थप्पड़ मार दिया। बरकते ने क्षण भर के लिए छत की ओर देखा जैसे कह रही हो। इसी बात की तो मैं राह ताक रही थी।

"हम उस दुकाने फरेब (झूठ) को बंद करने की सोच रहे हैं और तूने शहर के मुफ़्ती के बेटे को शिक्षा-दीक्षा के लिए अमृतसर भेज दिया है।

"सच पुराणा हावै नाही सीता कदे न पाटे।" बरकते ने गुरबाणी में से इस तुक का उच्चारण किया।

"तुझे पता है तेरे अमृतसर के गुरु का क्या हाल हो रहा है गर्म तवे पर बिठाकर दसे कबाब बना दिया गया है।" "जो सच रते तिन सच्चे भावै।" बरकते जैसे एक उन्माद में थी।

"खौलते पानी की देग में उसे उबाला जाएगा जैसे बैगन को उबाला जाता है।"

"सचे मारग चल दियाँ, उसतति करे जहान" बरकते एक नशे में थी जो ब्यान के बाहर था।

अगर फिर भी उसकी श्वाँस बाक़ी रही तो उसे गाय की खाल में मढ़ दिया जाएगा।

"सच हु डरै सबु को ऊपर सच आचार।" यह कहते हुए बरकते ने सामने रखे तकिये के नीचे छुपा कर रखे छुरे को निकाला और पलक झपकते ही अपने घर वाले मुफ़्ती के सीने में भोंक दिया।

युसूफ़ हक्का-बक्का उल्टा जा गिरा। उसके सीने में से लहू की धार बह रही थी जैसे कोई फ़व्वारा फूट पड़ा हो। बरकत एक शेरनी की तरह अपने मर्द पर छूरे का दूसरे वार करने के लिए आगे बढ़ी थी। उसने इसकी ज़रुरत

नहीं समझी। उसके मुँह से झाग निकल रही थी।

क्षण भर के लिए युसूफ़ ने उसे इस तरह देखा जैसे विश्वास न हो रहा हो कि यह सब सच था फिर धीरे धीरे उसकी आँखों की रौशनी बुझने लगी।

"यह वही छुरा है जिससे तूने अमृतसर की हमारी गली में अपनी मिथली वीवी को मारा था। इसे तूने पहचाना। इससे पहले कि तू गुरु बाबे की एक और श्रद्धालू को मारने के लिए यह छूरा इस्तेमाल करना मैंने सोचा कि मैं इसी छूरे से कुदरत का इंसाफ कर दूँ जो बहुत दिनों से लडका पड़ा है। और जो क़हर आप पाँचवे बाबा नानक के साथ कर रहे हैं वह भी मुझे दिख रहा है। शांति के पुंज, अहिंसा के अवतार वह तो खिले हुए माथे से आप के सारे सितम झेल लेंगे, लेकिन कुदरत के इंसाफ की भी तो कोई माँग है। मैंने सोचा, आज की रात मैं वह इंसाफ करुँगी, मैं जो शहर के मुफ्ती की बीबी हूँ................" यह बोलते हुए बरकते ने देखा सामने लहू लुहान पड़े मुफ्ती के आँखों की रोशनी बुझ चुकी थी। लहू से सना छुरा हाथ में पकड़े बरकते अपने खाविंद की लाश के पास बैठकर वक़्त की सरकार के न्याय की प्रतीक्षा करने लगी।

(44)

हज़रत मियाँ मीर गुरु महाराज के यहाँ होकर गए थे। चंदू शाह और रुस्तम ख़ान जैसे जहाँगीर के दरबारीयों और मुसाहिवों को पता चला जो कुछ भी उन्होंने सोच रखा था वह सब उन्होंने जल्दी-जल्दी से कर लिया। जुल्मों की एक घिनौनी दास्तान। अगली सुबह गुरु अर्जन देव जी का पवित्र शरीर जैसे झुलस गया हो। छात्रों से बिंध गया था। जैसे आग में से आलू को भून कर निकाला जाता है। वह संगति जो हज़रत मियां मीर की संगत में सुनाई दिया था, ज्यों का त्यों फिर उभर रहा था। फैल रहा था। तेज़ हो रहा था।

उधर क़ाज़ी रुस्तम ख़ान और दीवान चँदू शाह अपने हम-प्याला और हम-निवाला साथियों के साथ मश्विरा कर रहे थे।

"अब और प्रतीक्षा करना ख़तरे से ख़ाली नहीं।"

"बस कुछ घड़ियों और पलों की बात बाक़ी रह गई है।"

"मेरी इत्तला यह है कि मुलज़िम को इस बात का इल्म था कि वह लाहौर से वापस नहीं लौटेगा। चलने से पहले वह गुर-गद्दी पर बेटे को

बिठाकर आया है।" अब चँदू शाह बोल रहा था।

"और गुर-गद्दी पर बैठने वाला शहर से ग़ायब है। उसे तलाश किया जा रहा है।" रुस्तम ख़ान ने कहा। उसके शाही अहलकार अमृतसर से निराश होकर लौट आए थे।

"आखिर वह कहाँ जाएगा। आज नहीं तो कल पकड़ा जाएगा।" हमारे जासूस उसके पीछे लगे हुए हैं।

"शंहशाह का फ़रमान है कि इस दुकाने-बातिक (झूठ की दुकान) को बंद करना होगा।"

"वह तो हो ही जाएगी।" मुलज़िम की कहानी आज ख़त्म समझो।

लेकिन जो सवाल हमारे सामने पेश है, वह है मुलज़िम को तख़्त बंद करके पानी में डुबोना।"

"जहाँ पनाह का फ़रमान है कि मुलज़िम की मौत क़िले में हरगिज़ नहीं होनी चाहिए।"

"रावी हमारे पडोस में है। पानी में डुबोना कौन सा मुश्किल हैं।

"शहतीर से बाँधकर दरिया में बहा देगें।"

"पश्चिम एशिया में जहाँ से हमारे मुग़ल आए हैं दस्तूर है कि किसी वली या फ़क़ीर को ना तलवार से मौत के घाट उतारा जा सकता है, न सूली पर चढ़ाया जा सकता है।"

इतने में मुलज़िम के पहरे के लिए तैयार सिपाहीयों की टुकड़ियों में से एक आदमी सन्देशा लेकर आया कि गुरु अर्जन ग़ुसुल के लिए कह रहे हैं।

"लो फिर तो हमारा काम बन गया।" चंदू याह बोला। उनसे कहो कि स्नान अब वह रावी दरिया में ही कर सकेगें।

"राखी पर शहतीर, सुतली और बाक़ी छोटी-मोटी चीज़ों का इंतजाम दारोग़े का होगा।" रुस्तम ख़ान हिदायत दे रहा था।

"जिस रास्ते से मुलज़िम को निकलना है, सड़क के दोनों तरफ़ सिपाही तैयार कर दिए जाएँ। मुझे ख़बर मिली है कि पाँच हट्टे-कट्टे सिक्ख मुलज़िम के साथ अमृतसर से आए हैं।"

"उसके बाद और भी आ रहे हैं। आज पाँचवा दिन है क़तारों के क़तारों सिक्ख लाहौर पहुँच रहे हैं।"

सड़क पर सिपाही तैनात करने से शायद लोगों को पता नहीं चल

सकेगा कि मुलज़िम को क़िले के बाहर ले जाया जा रहा है।"

"इस तरह तो बफवा भी हो सकता है।"

"किसी की माँ ने ऐसा लाल पैदा नहीं किया।" अब दारोग़ा बोल रहा था, "शहंशाह जहाँगीर का राज है।"

"फिर सारे इंतजाम पूरे कर लिए जाएँ।"

"एक तरह से यह अच्छा ही होगा। लोगों को सबक़ मिल सकेगा। फिर कोई इस तरह धर्म की दुकान खोलकर नहीं बैठा करेगा।"

यह ख़बर कि गुरु महाराज स्नान के लिए रावी दरिया में ले जा रहे हैं, आग की तरह सारे शहर में फैल गई। लोग क़तारें बाँध कर क़िले की तरफ़ चल पड़े। क़िले से लेकर रावी दरिया तक सड़क के दोनों तरफ़ श्रद्धालुओं की भीड़े जमा हो गयीं। लोगों के कंधे आपस में छिले जा रहे थे। लोग उन राहों पर चादरें बिछा रहे थे जहाँ से उनके इष्ट को गुज़रना था। संदल और गुलाब का छिड़काव हो रहा था। सेहरे पिरोए जा रहे थे। हार बनाए जा रहे थे। गुरु महाराज पर बरसने के लिए जगह-जगह पर फूल-पत्तियों के ढेर लग गए थे। चारों तरफ़ एक उत्साह था, एक चाव था। उधर चँदू शाह शहर के घर में पद्मा ने सुना तो तेज़ क़दमों से ग़ुसूल में गई तथा स्नान किया। कपड़े बदले। अपना सबसे बढिया रेशमी जोड़ा पहना। कंधी की, बाल बनाए। मोतिए की वेणी से अपने जूड़े को सजाया। कलाईयों में चमेली के गजरे। पलकों में काजल। माँग में सिंदूर। पैरों पर अलता। और फिर वह पोथी लेकर सुखमनी का पाठ करने बैठ गई।

माला यह सोच ही रही थी कि वह पद्मा से पूछे आज सुबह-सुबह वह किस बात की तैयारी कर रही है क्यों इस तरह सज रही है। इतने में उसने सुख मनी साहब का पाठ शुरु कर दिया। अब उससे बात नहीं की जा सकती थी। पूरा घण्टा, उससे भी ज़्यादा वक़्त वह पाठ करने में लगाएगी। सुखमनी का पाठ हमेशा इतना ही समय लेता है।

कौलाँ को जब ख़बर मिली, वह चुपके से अपनी बैठक की खिड़की की तरफ़ गई। उनकी हवेली सड़क के किनारे थी। जिधर से गुरु महाराज ने गुज़रना था। वह हाथ जोड़ रही थी, दुआएँ माँग रही थी, "गुरु महाराज का वह स्नान गुसले सेहत हो।" पिछले कुछ दिनों से उसका अब्बा घर में ख़ामोश रहता था। जब से कौलाँ ने हज़रत मियाँ मीर जी को शिकायत की थी, वह

कोई सरकारी बात घर में नहीं करता था।

"या अल्लाह गुरु महाराज तंदरुस्त हो जाएँ। खुशी-खुशी अमृतसर लौटें। जहाँ मुझ ख़ाक सार जैसे अक़ीदतमंद उनके दर्शन कर सकें। कृतार्थ हो सकें।" कौलों बार-बार आकाश की तरफ़ प्रार्थना कर रही थी।

कौलाँ ने बैठक की खिड़की खोली और देखा सड़क के दोनों तरफ खड़ी श्रद्धालुओं की भीड़। एक स्वर में गायन कर रही थी—"जपऊ जिन अर्जुन देव गुरु फिरि संकट जोन गरभ न आयो।" जैसे समंदर की लहरें उठ रही हों। दायीं तरफ से गुर सिक्ख गाते, "जपऊ जिन अर्जुन देव गुरु" और बायीं तरफ़ की संगत जवाब में अलापती "फिरि संकट जोन गरभ न आयो।" एक श्रद्धा में, एक नशे में एक उन्माद में लोग बार-बार गा रहे थे। सारा वातावरण जैसे इस तुक से गूँज रहा हो। हाथ जोड़े, आँखें बंद, सिर झुला रहे मर्द, औरतें, बच्चे, हिन्दु-मुसलमान सिक्ख हज़ारों की गिनती में खड़ी प्रतीक्षा करती हुई मख़्लूक़ गा रही थी—"जपऊ जिन अर्जुन देव गुरु फिरि संकट जोन गरभ न आयो। बीच-बीच में कुछ लोग जयकारा छोड़ते—"गुरु अर्जुन देव—" बाक़ी लोग उनके पीछे पुकारते पर तक हरि।

"गुरु अर्जुन देव परतक हरि"

इतने में कौलाँ ने देखा सामने क़िले का दर्शनी द्वार खुला। शायद गुरु महाराज जलवा अफ़रोज हो रहे हैं। कौलाँ ने अपने आप से कहा। दायें सिपाही, बायें सिपाही, पीछे सिपाही, चमचमाती नंगी तलवारें, उनके पीछे घुड़-सवारों की टुकड़ी। नेजों से लैस। सड़क किनारे खड़े गुरु प्यारों में जैसे उत्साह का ज्वार उमड़ आया हो। चारों तरफ़ गुरु अर्जुन देव जी की जय। गुरु बाबा नानक की जय के नारे गूँजने लगे।

और एक दम ख़ामौशी जैसे सकता छा गया हो। यह क्या? गुरु अर्जन तो जैसे हड्डियों के मूठ रह गए हों। झुलसा हुआ मुँह-माथा, हाथों-बाहों पर छाले, टाँगों पर छाले, पैरों पर छाले, उनसे तो चला भी नहीं जा रहा था। पाँच ही दिनों में उनका यह क्या हाल हो गया था। सड़क के दोनों तरफ खड़े गुर सिक्ख जैसे साँस रोक कर बिट-बिट देख रहे हों।

भीड़ को इस तरह अचानक ख़ामोश देखकर गुरु महाराज ने हाथ जोड़े और बेहद पतली आवाज़ में फ़रमाया :

तेरा कीआ मीठा लागे ॥

हरि नामु पदारथु नानकु मांगै ॥

हाथ जोड़े बार-बार यही तुक उनके मुखारविंद से निकल रही थी :

तेरा कीआ मीठा लागै ॥
हरि नामु पदारथु नानकु माँगै ॥

भौंचक्की हुई भीड़ उन्हें बेबस देख रही थी हाथ बँधे सर नवाए खड़ी थी कि गुरु महाराज सामने वाले क़िले से उतर रावी के किनारे की ओर निकल गए।

कौलाँ पहले की तरह स्तब्ध फटी-फटी आँखों से गुरु महाराज को देखती रही जैसे उसका सत प्राण किसी ने चूस लिया हो। खिड़की में बैठी जैसे सिल-पत्थर हो गई हो।

उधर माला अपनी भाभी को सुखमनी साहब का पाठ सुना रही थी। पद्मा ऐसे लग रही थी जैसे आसमान से उतरी कोई परी हो। गोरा रंग, छने काले खुले रेशम के लच्छों जैसे कंधों पर फैले उसके बाल, सर पर झमझमाती चुन्नी। बार-बार माला को उस पर लाड़ आने लगता लेकिन भाभी तो पाठ कर रही थी। उसे टोकना मुनासिब नहीं था। पद्मा भाभी के होंठों से अब यह तुकें सुनाई दे रही थीं :

धन्न धनु धनु जग आया ॥
जिस परसाद सब जगत तराया ॥
जन आवन का इहे सुआऊ
जन के संग चिति आवै नाऊ ॥
आप मुक्तु-मुक्तु करे संसारु
नानकु तिस जन कौ सदा नमस्कारु ॥

माला को अपनी भाभी पर बेहद प्यार उमड़-उमड़ कर आ रहा था। उसका मन करता था आके बढ़ कर उसे अपनी बाहों में ले ले। अपने सीने से लगा ले कितनी सुरीली, कितनी मधुर, कितनी प्यारी आवाज़। बैठक की खिड़की में स्तब्ध बैठी कौलाँ को जैसे किसी ने झिझोड़ कर उठाया हो, उसके कलेजे में कोई अकथनीय दर्द उठा; जैसे उसके सीने में किसी ने गोली दाग़ दी हो। वह मूर्छित सी, फटी-फटी आँखों से खिड़की से बाहर देख रही थी, जैसे तलाश रही हो यह गोली कहाँ से आई थी। चंदू के घर में एक एकांत कमरे में बैठी बहु पद्मा सुख मनी साहब का पाठ कर रही थी। माला एक

टक अपनी भाभी की ओर नज़रें जमाए हुई थी। जैसे किसी पर टोना हो गया हो। अब पद्मा इन तुकों का उच्चारण कर रही थी :

जिस मनि बसै सुनै लाई प्रीति
तिस जन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम-मरण ताका दुख निवारै
दुलभ देह तत्काल उधारै
निर्मल शोभा अमृत ताकी बाणी ॥
एक नामु मन माही समानी ॥
दुख रोग बिनसे भय भरम ॥
साध नाम निर्मल जाके करम ॥
सबतै ऊँच ताकी सोभा बनी ॥
नानक ऐ गुण नामु सुख मनी ॥

(सुखमनी)

पाठ करते-करते पद्मा का सिर झुकता जा रहा था। आवाज़ धीमी पड़ती जा रही थी जैसे माथा टेक रही हो। उसका मस्तक उसकी पोथी के साथ जा जुड़ा था। माला यह क्या देख रही थी जैसे किसी गुबारे में से हवा निकल जाए। पद्मा भाभी ठण्ड़ी होती जा रही थी। पीली पड़ गई थी। यह देख कर माला के मुँह से चीख़ निकल गई। इस तरह की चीख़ें चारों तरफ़ से खिड़की से बाहर टुकुर-टुकुर निहार रही थी। कौलाँ को भी सुनाई देने लगीं। रावी के किनारे भाणा बरत गया था।

छटा खण्ड

(1)

दोआबे में डरोली नाम के क़स्बे के बाहर एक अटारी के सामने घने पेड़ों के नीचे भाई बिधी चंद, भाई लंथाहा, भाई पैड़ा, भाई जेठा और भाई पिराणा पाँच गुर सिक्ख घोड़े तैयार करके, तीर कमानों और नेज़ों से लैस होकर प्रतीक्षा कर रहे थे। गुरु हरिगोबिंद जी अभी विश्राम गृह से बाहर नहीं आए थे। उधर दिन निकल आया। हवा फिर गुन-गुनी होने लगी है। पिछली रात तीन तक लू चलती रही थी, इन दिनों बेहद गर्मी पड़ रही है, इंसान को झुलसा देती है। सारा-सारा दिन जैसे कौव्वे की आँख निकलती है। एक तरफ़ सतलुज, दूसरी तरफ़ ब्यास, दोआबे में पानी की बेशक कमी नहीं, लेकिन इस तरह की भूनती हुई गर्मी (जैसे आकाश से आग बरस रही हो) हरेक को परेशान किए हुए है। और तो और इंतज़ार कर रहे शिकारी कुत्ते माणक और मोती भी चिल-पों मचा रहे थे। उतावले हो रहे थे। जैसे कह रहे हों अगर धूप और निकल आई तो शिकार अपनी माँद में घुस जाएगा। गुरु महाराज का अपना घोड़ा निलाम्बर भी अनेक बार हिन हिना चुका है। आज महाराज इतनी देर क्यों कर रहे हैं। ऐसा भी नहीं था कि पाठ कर रहे हों। पाठ कर रहे होते तो उनके गले की मधुर ध्वनि बाहर सुनाई देती। अमृत वेला में उठे थे। स्नान कर चुके हैं। वस्त्र बदल चुके हैं। दस्तार सजा चुके हैं। बहुत देर से ना कोई अटारी के भीतर गया है ना कोई भीतर से बाहर आया है। एक मक्कारी भरी चुप है। मन तपिश से बेचैन है। इस तरह की ख़ामौशी तो किसी ने न गुरु महाराज के डेरे पर देखी न सुनी। इस दर पर तो लोग आते जाते रहते हैं। निहाल होते रहते हैं। जरुरत मंदों की ज़रुरतें पूरी की जाती हैं। आस लेकर आया कोई निराश नहीं लौटता। बेशक इस क़स्बे में आए उन्हें बहुत दिन नहीं हुए, पर है तो यह उनके ससुराल का क़स्बा। बेशक यहाँ के श्रद्धालुओं को गुरु महाराज के आगमन की सूचना नहीं दी गई। लेकिन ज़रुरत मंदों को ज्यों-त्यों ख़बर लगती जाती है, अपने इष्ट की सुगंध आ जाती है, वह मधुमक्खियों की तरह टूट पड़ते हैं। कल ऐसा होता रहा परसों भी यही बात थी। जिस दिन गुरु महाराज का आगमन हुआ उस दिन तो गुरु

सिक्ख ढोलकियाँ, छैने लेकर एक मंजिल पहले से ही गुरु महाराज को जा मिले थे। कितने उत्साह से उनका स्वागत किया गया; सारे रास्ते में फूलों की वर्षा होती रही। गुरु महाराज को हारों से लाद दिया गया। ना जाने कैसे यहाँ की संगत को पता चल गया था। गुरु महाराज के साथ आ रहे पाँच गुरु सिक्खों ने तो किसी को ख़बर नहीं की थी। फिर भी इतनी जनता। हुम-हुमाकर इक्ट्ठी हो गई थी। फिर कैसे उन्होंने चुपके से गुरु महाराज को सिर पर उठा लिया हो। ग्यारह-बरस की कोई उम्र भी उम्र होती है? लेकिल कुछ लोग तो पैदा ही लोगों के दिलों पर राज करने के लिए होते हैं। जनता जैसे उनका बाट (रास्ता) देख रही हो।

इतने में दूर क्षीतिज से घूल के बादल उड़ते दिखायी दिए। कोई घुड़सवार था, सरपट घोड़े को दौड़ाता हुआ आ रहा थां सफेद रंग के अरवी घोड़े पर सवार घुडवार ही था। अब साफ़ दिखाई दे रहा था कि वह कोई सिक्ख था, लेकिन पहचाना नहीं जा सकता था। इतनी तेज़ी से सरपट घोड़ा दौड़ा रहा था, यह तो कोई मसंद था।

अब घुड़सवार उनके नज़दीक पहुँच गया था। उदास शोक में डूबा चेहरा, साँस छोकनी की तरह चल रही थी। मुँह से बोल नहीं निकल रहे थे।

घोड़े से उतरकर उसने क्षण भर के लिए उसे थपथपाया फिर वह आम के पेड़ों के नीचे खड़े, बैठे गुरु सिक्खों की ओर देखने लगा जो गुरु महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसकी आँखों में से अब आँसू बहने लगे थे।

"क्यों, ख़ैरियत तो है", बिधी चंद ने आगे बढ़कर उस से पूछा। उसके हाथ जुड़े हुए थे पर मुँह से बोल नहीं निकल रहे थे।

"क्यों, कहीं मुगलों ने हमला तो नहीं कर दिया?" भाई लहंथाहा ने सवाल किया।

"कहीं मेहरबान ने तो कोई उपद्रव खड़ा नहीं किया, आजकल तो वह भी बिगड़ा फिरता है।" भाई पैड़ा जी बोले।

उसे फिर पुराने पागलपन का दौरा पड़ा है कि ग्यारह बरस का बालक गुर गददी पर कैसे बैठ सकता है। भाई जेठा जी अपनी आशंका ब्यान कर रहे थे। "माता जी की सेहत तो ठीक है? भाई बिराग जी को ख़याल आया कि पीछे माता गंगा जी परेशान होंगे; अपने सिर के साईं को लाहौर भेज बैठी थीं आर उनका लाल गुरु महाराज के आदेश के मुताबिक इधर दो-आबे की ओर निकल गया था। मसंद की आँखों में से छल-छल आँसू बह रहे थे लेकिन

लाख कोशिशें करने पर भी मुँह से आवाज़ नहीं निकल रही थी।

इतने में उधर गुरु महाराज श्री हरि गोबिंद साहब अटारी में से निकले। नए आए गुरु सिक्खों की आँखों में आँसू देखकर और आस पास खड़े अपने साथियों को परेशान देखकर वह कहने लगे—"सो अनहोनी हो गई है।"

यह सुनकर सबके मुँह खुले के खुले रह गए। ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे। हज़ूर यह क्या फ़रमा रहे थे। "ज्योति जोग से ज्योति मिल गई है।" अभी-अभी उन्होंने चोला छोड़ा है। ऊपर आकाश की ओर देखो। आपको कुछ दिखाई नहीं दे रहा? शांति के पुँज को जुलूस में ले जाया जा रहा है आपको शाहयाने बज़ते सुनाई नहीं देते। राग, रतन, परिवार, परियाँ शब्द गा रही हैं। आदम और हव्वा के ज़माने से आज तक कोई भाणे अनहोनी को मानकर जान पर नहीं खेला।

सच्चे पादशाह, जुर्माना न देने की हालत में उन्हें लाहौर में नक़ाबिले बर्दाश्त यातनाएँ देने का शाही फ़रमान सुनाया गया है।" अब मसंद के मुँह से यह बोल निकले।

और जानी-जान गुरु हरिगोबिंद अपने आप बताने लगे—कि उन्हें जलते तवे पर बिठाया जाए। नीचे मनों लकड़ियाँ जलाकर आग सुलगाई जाए। लाहौर शहर की चिलचिलाती दोपहर में उनके नाजुक शरीर पर वेलचों से गर्म रेत डाली जाए। फिर भी अगर वो जुर्माना भरने के लिए राज़ी न हों तो उबलती देग़ में उनके छालों से भरे जिस्म को डुबकियाँ दी जाएँ। और फिर. .... और फिर............... । निराश्रयों के आश्रय, निओटों की ओट, निताणों के तान, सत्य गुरु पिता ने हत्यारों को किसी और उपद्रवों का मौक़ा ही नहीं दिया। रावी में स्नान के लिए गए, दरिया की ठण्ड़ी लहरों ने पाँचवें गुरु नानक को अपनी बाहों में समेट लिया और दुष्टों के देखते ही देखते पानी की लहरें उनके नाशवाण शरीर को अपने साथ बहाकर ले गयीं। उनकी आत्मा तो पहले ही पहले ही परमात्मा के साथ एकाकार हो गई थी।

हज़ूर तो कुछ नहीं भूले, लेकिन यह फ़रमान सुनकर लाहौर शहर में एक कोहराम मच उठा है। हज़रत मियां मीर............"

"सिक्ख संगत आज एक मोड़ पर आ पहुँची है हमें अपनी पहचान बनाए रखने के लिए जूझना होगा। इसलिए चारों तरफ़ तैयारी की ज़रुरत है।"

"लाहौर की संगत तो जुर्माना भरने के लिए तैयार थी। हजूर नहीं माने।" मसंद हाथ जोड़े अर्ज़ कर रहा था।

"क्यों मानते? उनका क़सूर भी क्या था? शहज़ादा ख़ुसरू को आशीष देने की इतनी भारी सज़ा।" इस तरह का ज़ुल्म कभी किसी ने सुना है? कभी किसी ने देखा है? गुरु नानक के दर पर जो भी आता है दीक्षा लेकर जाता है। गुरु महाराज एक आलौकिक उन्माद में थे।

"सच्चे पादशाह गुरु सिक्ख तो लाहौर की ईंट से ईंट बजाने की तैयारी कर रहे हैं लेकिन आहिंसा के अवतार स‹‹ गुरु अर्जन देव जी ने सबको कड़ुवा वचन बोलने की आज्ञा नहीं दी।

"वह भी एक रास्ता है। गुरु बाबे नानक का बताया रास्ता हलीमी का, एकता का, नम्रता का, मीठास का, कुर्बानी का रास्ता। हत्यारों के अत्याचारों को ईश्वर की रज़ा मानकर सर-माथे पर क़बूल कर लेने का रास्ता।

सच्चे पादशाह शाही फ़रमान सुनकर गुरु महाराज ने पवित्र मुख से जैसे झुर-झुरी फूटी हो उन्होंने केवल इतना ही कहा :

तेरा कीआ मीठा लागै ॥
हरि नामु पदारथु नानकु माँगै ॥

और जब भी उनके होंठ थिरकते तो इसी गुरु वाक्य की ध्वनि सुनाई देती :

"तेरा कीआ मीठा लागै ॥
हरि नामु पद... नानकु माँगै ॥

मसंद हाथ जोड़कर उदास मन से बता रहा था। "बेशक वो एक रास्ता है", पर ... और भी रास्ता है.......... यह शब्द गुरु हरिगोबिंद जी के होंठों पर थे कि सामने कुछ क़दमों की दूरी पर खड़ा मसंद का घोड़ा हिनहिनाया, उसकी हिनहिनाहट सुनकर गुरु महाराज के सामने हाथ जोड़े खड़े सिक्खों के घोड़े भी हिन हिनाने लगे। और फिर जैसे हर किसी के हाथ-पैर फूल गए। दायें हाथ के घने जंगल में से एक ख़ूँखार बाघ दहाड़ता हुआ तेज़ी से उनकी ओर बढ़ रहा दिखाई दिया। गुरु महाराज ने बिना इधर-उधर देखे भाई विधी चंद के कन्धे से लटक रहे कमान को छीन कर तरकश में से एक तीर निकाला और पलक झपकते ही कमान खींच कर दस क़दम दूर खड़े बाघ को तीर से वहीं का वहीं बींध कर रख दिया। गुरु महाराज का छोड़ा तीर बाघ की छाती में जाकर इस तरह चुभा कि बाघ बल खाता हुआ वहीं का वहीं ढ़ेर हो गया। दूसरे तीर के बाद उसके मुँह से ख़ून की धार फूटने लगी। चारों तरफ ख़ून का ढेर इक्ट्ठा हो गया। सिर्फ़ ग्यारह साल की उम्र में जब उनकी

मस भी नहीं फूटी थी, अपने इष्ट का यह करिश्मा देखकर उनके उपासक मान भरी नज़रों से गुरु गोबिंद की तरफ़ देखने लगे। सब के सर झुकने लगे हाँ तो मैं कह रहा था गुरु महाराज ने अपना ब्यान जारी रक्खा : "एक रास्ता गुरु पिता जी का है जान कुर्बान करके दूसर का दिल जीत लेना। एक और रास्ता है जान पर खेलना, जान पर खेलकर ज़ालिम को हार मानने के लिए मजबूर कर देना। दोनों रास्ते साथ-साथ चलते हैं जैसे दो पगडंडियाँ हों। एक की सिक्के के दो पहलू। ज़रुरत तो होती है बद को उसकी बदी से छुटकारा दिलाया जाए, ज़ालिम को जुला के पैतरे से मुक्त करवाया जाए। शांति नाम है ख़ामौशी का; शांति शोर की अनुपस्थिति को भी कहते हैं। जीवन संघर्ष में किसी ख़ंदक़ में भी छुपकर जान बचाई जा सकती है और कड़ुवी असलीयतों का मुक़ाबला करके भी। यह फ़ैसला सूरमे को खुद करना पड़ता है कब ढ़ाल से काम लेना है, कब तलवार से।

इतने बरसों से सिक्ख भाईचारा मुग़ल साम्राज्य से सत्य और अहिंसा का साधन बरतता रहा है। गुरु नानक ने मुगलों को बादशाही इसलिए बख़्शी थी क्योंकि पठान हुक्मरानों के अत्याचार अपने शिखर पर पहुँच चुके थे। अब जब मुग़ल भी पठानों के रास्ते चल पड़े हैं तो इनको भी सीमा में बाँधना होगा। पिता गुरु महाराज का भी यही आदेश था।

"अहिंसा का बदी के साथ मुक़ाबला है। हिंसा होशियारी से सारे जोखिम उठाकर संघर्ष में जूझना है। गुरु पिता जी की भी यही मंज़िल है जो हमारी है। मुग़ल साम्राज्य में धर्म और इंसाफ, सच्चाई और भाईचारे को उजागर करना इसकी नीवों को पक्का करना। भारत देश की महान परंपराओं को सजीव करना। लगता है कि यह जंग लंबी चलेगी और कुर्बानियाँ माँगेगी; हमें इसके लिए तैयारी करनी है। एक नए रास्ते की रूप रेखा बनानी है। मानवीय मूल्यों को उजागर करना है.............. ।"

(2)

इस तरह बोलते जैसे अचानक किसी याद ने आ घेरा हो जैसे अचानक भीतर से कोई टीस फूटी हो। क्षण भर के लिण ख़ामौश रहकर उनके नयन छनकने लगे।

फिर बिना इधर उधर देखे बिना किसी से बात किए जैसे क़दम गिन-गिन कर चलते हुए सामने अटारी की ओर चले गए।

एक बेटे के सर पर उसके पिता का साया उठ गया था। गुर सिक्ख

हक्के-बक्के उनकी तरफ़ देख रहे थे।

गुरु महाराज आँख से ओझल हो गए। शिकार के लिए तैयार गुरु सिक्ख और अभी-अभी अमृतसर से आया मसंद पहले की तरह गुप-चुप खड़े अब एक दूसरे के मुँह की ओर देख रहे थे।

"उसने गुरु पिता के एकलौते साहबज़ादे हैं, शायद उन्हें अपने पिता की याद आ गई थी।" मसंद ने अनुमान लगाया।

इसका मतलब यह है कि गुरु अर्जुन देव जी को शहीद कर दिया गया। भाई लंछाहा की आवाज़ रुँध गई थी।

भाणा (अनहोनी) बरत गया (हो गई)। जब मैं वहाँ से निकला शाही फ़रमान जारी हो चुका था उसे कौन टाल सकता है? मसंद बता रहा था।

"मियां मीर जी जैसे किसी बुज़ूर्ग ने अत्याचार को टालने की कुछ कोशिश तो जरुर की होगी। लेकिन वहाँ चंदू जैसे ख़ारबाज़ भी तो हैं और फिर पलीता पृथी चंद का लगाया हुआ है।

उसके बेटे मेहरबान की ओर देखो इतनी श्रद्धा से उसने गुरु बाबा नानक जी की जनम साखी तैयार की थी और अब फिर गुरु हरिगोविंद जी के बैर पड़ गया है। भला ग्यारह बरस का बालक गुर-गद्दी पर कैसे बैठ सकता है, मेहरबान कहता है। भाई पिराणा परेशान थे।

मसंद बोला मेरी राय में उसकी नाराज़गी में वज़न तो है कुछ देर के लिए अगर वह भी गुर गद्दी का झूला झूल लेता तो कौन सी प्रलय आ जाती। "क्या मतलब?" अनेक आवाजें भड़क उठीं। मेरा मतलव यह है कि उसने गुरु नानक देव जी की इतनी सुन्दर जनम साखी तैयार की है। आपने नहीं देखी मैंने पोथी को पढ़ा है। इस तरह की प्रौढ़ गुरु संतान के तजुर्बे से लाभ उठाया जा सकता था। आज सिक्ख पंथ पर बड़ी विपदा आई हुई है।" मसंद फिर बोला।

"आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई आपका मतलब है कि पृथी चंद के बेटे को गुर-गद्दी दी जाती? भाई बिधी चंद पूछ रहे थे।

"बेशक!" अब मसंद ज़्यादा भरोसे से अपनी बात कह रहा था। गुरु महाराज की यह बात कि हिंसा और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं मेरी समझ में नहीं आई।

"हमारी समझ से कई बातें उपर भी होती हैं।" भाई पिराणा फिर बोले।

"आपका मतलब है, हम मुग़ल फ़ौजों से लोहा लेने जा रहे हैं? मुग़ल

लश्कर का मुक़ाबला करने की हमारी क्या मजाक।

"क्यों नहीं?" भाई बिधी चंद एक दम आवेश में आ गए।

"कई बातें उम्र और अनुभव से इंसान सीखता है।" मसंद अपने भीतर पैदा हुई शंका को प्रकट कर रहा था। मैं तो मानता हूँ कि पहले तो हमें खुसरु को मुँह ही नहीं लगाना चाहिए था। आख़िर वह बग़ावत करके आया था। अगर यह ग़ल्ती हो गई तो जुर्माना भर देना चाहिए था। हाकिम तो आख़िर हाकिम होता है। क्यों किसी को मौक़ा दिया जाए। और अब वक़्त की सरकार के ख़िलाफ़ सिर उठाने से सर देना भी पड़ सकता है।

"भाई साहब आज आप यह कैसी बातें कर रहे हैं, मैं तो सुन सुन कर हैरान हो रहा हूँ।" भाई पैड़ा जी जो अभी तक ख़ामौश थे आख़िरकार बोल पड़े।

"हैरान मैं ख़ुद भी हो रहा हूँ। मसंद ने अपनी मजबूरी को स्वीकार किया। सामने ख़ून के ढेर में ठण्ड़े हुए बाघ को देखकर मुझे अजीब लग रहा है। एक ईश्वर भक्त को इस तरह शिकार करके क्या मिला। क्षण भर में बेचारे बाप को ढेरी कर दिया।

"आप चाहते हैं कि बाघ हम सबको ढेरी कर देता" भाई बिधी चंद मसंद को लाजवाब करते हुए कहते।

"फिर भी मैं सोचता हूँ कि गुरु महाराज का यह कहना कि जंग लंबी चलेगी मेरी समझ से बाहर है। एक अध्यात्मवादी को हिंसा का ज़िक्र करना ठीक नहीं है। गुरु नानक के नाम लेखा की लडाई से क्या मतलब? तब तो ईश्वर भक्ति की जगह हम क़वायदें करनी शुरु कर देगें।"

"मुग़ल तो हमारा बीज नष्ट करने पर तुले हैं, क्या आप इसके लिए तैयार हैं?" भाई बिधी चंद के सब्र का प्याला छलक रहा था।

"गुरु नानक ने पंथ चलाया था ईश्वर भक्ति के लिए, सच्चा, जीवन जीने की कला जनता को सीखाने के लिए। गुरु नानक ने अपने उपदेश से बाबर को सही रास्ते पर डाला था, तलवार उठाकर उसके साथ जंग नहीं की थी।

और अब छठा गुरु नानक, वक़्त के तक़ाज़े को देखते हुए आप को नया रास्ता बता रहा है। अगर वो रास्ता ठीक था तो इस रास्ते में क्या ख़राबी हैं। भाई बिधी चंद मसंद को याद करा रहे थे।

मैं कहता हूँ इन झगड़ों में पड़ने की हमें क्या ज़रुरत है। राज राजे करते हैं, हमारा काम तो मेहनत करना और बाँटकर खाना है। या फिर नाम जपना

जैसे बाबा नानक ने हिदायत की थी। गुरु अगंद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जन देव जी जिस रास्ते पर चलते रहे।

इस रास्ते पर चलकर पाँचवें पादशाह को जान पर खेलना पड़ा। हमारे पूरे भाईचारे को चुल्लू भर पानी में डूब कर मर जाना चाहिए। जिसके नेता को इस तरह कष्ट दे-देकर शहीद कर दिया गया।" क्रोध से भाई लंघाहा जी के मुँह से झाग निकल रही थी।

"मैं सिर्फ़ इतना पूछ रहा हूँ कि अब आप अमृत बेला में उठकर पाठ करेगें रब्ब का नाम लेगें या कसरतें करेंगे, तीर-कमान पकड़कर शिकार को निकलेंगे? अमृतसर के सरोवर में स्नान करेंगे या मुग़लों से झड़पें लेंगे या उनकी जेलों को भरेंगे?"

"मुझे मसंद जी की बात ठीक लगती है।" भाई पैडा अब बोले।

"मेरी राम में गुरु हरिगोविंद साहब को तजुर्बा नहीं है। उनकी अभी उम्र ही क्या है, उन्हें अभी समझाया जा सकता है, मसंद गुस्ताख़ी कर रहा था।

"अगर हम नहीं समझाएँगे तो कौन समझाएगा।"

उधर पाँचवें पादशाह लाहौर पहुँचे उधर उन्होंने हमें हिदायत की कि हम गुरु हरिगोविंद जी की सेवा में हाज़िर हो जाएँ। उनके अंग-संग रहे।" भाई पैड़ा जी कह रहे थे।

"अंग-संग इसलिए कि शाही फ़रमान में गुरु हरिगोविंद सिंह जी को भी हिरासत में लेने की बात की गई है, इतना ही नहीं, सारी जायदाद को ज़ब्त करने का हुक्म जारी हुआ है।" मसंद अपने तर्क को पक्का कर रहा था।

"इसीलिए तो हम छिप कर यहाँ बैठे हैं। असलीयत से मुँह फेरकर सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता।" भाई पैड़ा जी मसंद की ताईद कर रहे थे।

"देश के हुक्मरान का इतना भारी लश्कर हम कैसे मुक़ाबला करेंगें। उनके पास अनगिनत लाठी और घोड़े हैं। हुक्मरानों की बाँहें लम्बी होती हैं, हम मुग़लों का मुक़ाबला नहीं कर सकते।" मसंद हिम्मत हार रहा था।

"क्यों नहीं कर सकते?" भाई बिधी चंद उत्तेजित हो रहे थे। हमारे सर पर बाबा नानक का हाथ है। अगर हमारा रास्ता इंसाफ का है तो हम अन्याय के विरुद्ध, लूट-खसूट के विरुद्ध, असमानता के विरुद्ध अगर छठे गुरु नानक जी के अगुवाई में लड़ेंगें तो जीत हमारी होगी।"

जिस गुरु हरिगोविंद को आप ग्यारह बरस का जानकर कमज़ोर

समझते हैं, न तजुर्बेक़ार समझते हैं, उस सूरमे ने आपके सामने आँख झपकते ही खूँ-ख़ार बाघ को ढ़ेरी कर दिया है।" अब भाई लंघाहा जी बोल रहे थे।

"हमें नहीं भूलना चाहिए कि हुमायूँ ख़ुद चलकर हमारे पास आया था। महाबली अकबर भी गुरु घर में हाज़िर हुआ था। ईश्वर भक्ति के लिए, जन-सेवा के लिए हमारा नाम हुआ है, हमारे गुरु महाराज भूले-भटकों को नेकी की राह पर डालते रहे हैं। मसंद को टोक कर भाई बिधी चंद कहने लगे और कल जहाँगीर का अपना बेटा खुसरु भी जो हमारे यहाँ आया था, हमारी मदद माँगने क्योंकि हमारे साथ अन्याय हो रहा था। सिक्ख संगत को जहाँ भी ज़ुल्म और अन्याय की भनक पड़ेगी तो उसके साथ जूझेगी।

"तो फिर हमारे गुरुद्वारों का भी वही हाल होगा, हमारे करतार पुर, खडूर साहब, गोईंदवाल और अमृतसर का जो कल, मथुरा, हरिद्वार, काशी और द्वारका के मंदिरों का हुआ था।"

"यह तो जीते जी मर जाना हुआ।"

"मसंद भाई साहब यह तो बड़ी कायरता है।"

"कायरता नहीं असलीयत/वास्तविक है।" हमें परमार्थ का रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए।

"वो रास्ता छोड़ने के लिए कौन कह रहा है?" भाई लंघाहा जी अब समझा रहे थे। हमने तो दो तलवारें बाँधी हैं एक दायें एक बायें, मीरी और पीरी दोनों को अपनाया है।"

"तो फिर हमें तैयार रहना चाहिए, क़दम-क़दम पर हुकुमत से जूझने के लिए।" मसंद की बात अधूरी थी कि सामने अटारी में से एक सेवादार आया। गुरु महाराज उसे याद कर रहे थे।

यह सुनते ही वह सेवादार के साथ चल पड़ा।

यह तो पुराना गुरु सिक्ख है। गुरु अर्जन देव जी के इतना निकट था इसे क्या हो गया है और की और दलीलें दे रहा है। नई तरह की बातें कर रहा है। भाई जेठा जी आपकी क्या राय है। आपने इतनी देर से मुँह नहीं खोला।

"इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।" अनेक गुर-सिक्खों के मुँह से ये बोल निकले।

मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा।

(3)

जब इस बात की पुष्टि हो गई कि गुरु अर्जन देव जी ज्योति-जोत समा गए हैं, एक गैरतमंद सपूत गुरु हरिगोविंद जी एहतिसात की सभी ज़रुरतों को एक तरफ करते हुए अमृतसर लौट आए। पीटे माता गंगा जी अकेली थी। गुरु महाराज को इस बात का भी अहसास था कि इस तरह के क़हर, इस तरह के ज़ुल्म, इस तरह के अन्याय की बात सुनकर सब जगह की संगतें अमृतसर चली आएँगी। अमृतसर एक तरह से सिक्ख पंथ की राजधानी बन चुका था। इन हालात में हरिगोविंद जी का ग़ैर-हाज़िर होना मुनासिब नहीं होगा। फिर माता गंगा जी को साथ की ज़रुरत होगी। उन्हें धीरज बाँधाना बहुत ज़रुरी था। उनका साथी इस तरह के दुखःदायी हालात में चला गया था।

गुरु अर्जन देव जी ने जब उन्हें दो-आबे की ओर अपने ससुराल के गाँव में चले जाने के लिए कहा था तो आख़िर इसमें भी कोई गहरा कारण था। गुरु देव पिता जी ने उन्हें अमृमसर छोड़ जाने के लिए आदेश क्यों दिया था? इसलिए कि वे नहीं चाहते थे कि कितनी छोटी उम्र में उनका लाल मुग़लों की यातनाओं का शिकार हो। शाही फ़रमान तो यह था कि अगर गुरु महाराज जुर्माना नहीं भरते तो उनके ख़ानदान को हिरासत में ले लिया जाए। उनकी जायदाद को जब्त कर लिया जाए। वे जुर्माना कभी नहीं भरेंगे, यह निश्चित बात थी। अचानक एक सुबह यह सुनकर कि गुरु हरिगोविंद जी अपने साथी गुर सिक्खों के साथ अमृतसर लौट आए हैं, भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी दोनों नाख़ुश थे। इन हालात में जब चारों तरफ आतंक का वातावरण का, सिक्ख संगत संताप झेल रही थी, किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। छठे गुरु साहब की अमृतसर वापसी ने गुरु महाराज के परिवार के और उनके निकटवर्ती लोगों के लिए एन नई समस्या खड़ी कर दी थी। किसी वक़्त भी कुछ हो सकता था।

"मुझे तो डर है, मुग़लों के जासूस यहीं आस-पास घूमते होंगे। गुरु महाराज को गिरफ्तार कर लेंगें।" भाई बुड्ढ़ा जी ने अपनी आशंका ब्यान की।

वहाँ बैठे भाई गुरदास जी परेशान हो रहे थे। फ़िक्रों में डूबे हुए, "पहले मुझे माता जी की फ़िक्र रहती थी, कहीं उनकी धर-पकड़ न हो जाए, अब तो मामला और भी गंभीर हो गया है।" भाई गुरदास, भाई बुड्ढा जी के साथ सहमत थे।

"सवाल यह है कि अगर ख़तरा न होता तो पाँचवें पादशाह यह आदेश क्यों देते कि गुरु हरिगोविंद जी, गुर-गद्‌दी का तिलक लेते ही दोआबे की ओर निकल जाएँ। वे जानी-जान थे, उन्हें मुग़ल हुक्मरानों के कपट की समझ थी।" भाई बुड्‌ढा जी को जैसे कुछ समढ में न आ रहा हो। बार-बार दायें-बायें सर हिलाने लगते।

"लेकिन गुरु महाराज के बिना हमारा क्या बनेगा। भाई गुरदास जी जैसे अपने आप को सुनाकर कह रहे हों—"गुरु महाराज के बिना हरिमंदर एक साधारएा धर्मसाल होकर रह जाएगा। गुरु महाराज के बिना अमृतसर शहर की रौनक़ जाती रहेगी। गुरु महाराज नहीं होंगे तो इतना लंबा सफ़र करके यात्री यहाँ क्यों आएगें? श्रद्धालुओं के मन की मुरादें कौन पूरी किया करेगा?"

"करने कराने वाले वे आप हैं।" भाई बुड्‌ढ़ा जी बोले, "इन सब की उन्हें समझ है। वे जानी जान हैं मन की बातें बूझते हैं, दिलों की जानते हैं, हमें अपने इष्ट में भरोसा रखना चाहिए।"

"बेशक। लेकिन मुझे गुरु महाराज की उम्र के कारण आशंका है। ग्यारह बरस की आयु भी कोई भी आयु होती है।"

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे गुर-गद्‌दी को सुशोभित कर चुके हैं। गुरु हरिगोविंद अब गुरु नानक का रुप हैं। उसी ज्योत की लपटें मुझे उनके भीतर जलती हुई दिखाई देती हैं।

"फिर भी उम्र का तजुर्बा कुछ महत्त्व रखता है। उस दिन गुरु अर्जन देव जी ने कोख हरी हो जाने की असीस लेने के लिए आपके पास भेजा था।"

इधर भाई बुड्‌ढा जी और भाई गुरदास जी इस तरह के वार्तालाप में मगन थे, उधर गोईंदवाल से सुन्दरी के यहाँ से आई नसीम सपरिवार बैठी छोटी-छोटी बातें कर रही थी।

"मैंने तो जब इस क़हर की बात सुनी तो मेरी आँखों में से आँसुओं की झड़ी बह निकली। घर का हर प्राणी परेशान होने लगा। उधर शहर में हाहाकार मच गई।"

"यहाँ अमृतसर में इतना कुछ नहीं हुआ। एक दहशत सी बेशक छा गई थी। सब जैसे हक्के-बक्के रह गए हों, चारों तरफ़ एक ख़ामौशी छा गई थी। जैसे एक दशा काली घटा उमड़ आई हो। सब लोग सोगवार मालूम हो रहे थे। घने-काले बादल बरसने की तैयारियाँ कर रहे थे, लेकिन बरस नहीं रहे थे। कुछ इस तरह की कैफ़ियत थी।" तेजी बता रही थी।

"मैं सोचती हूँ, शायद इसलिए कि जाने से पहले सत्गुरु साहबज़ादे को गुरियाई दे गए थे।" नसीम अनुमान लगा रही थी। सत् गुरु जानी-जान थे, उन्हें पता था कि लाहौर में क्या होने वाला है। इस सितम के लिए वे आप तैयार थे और संगत को भी तैयार कर रहे थे।"

"लेकिन यह तो हमने कभी भी नहीं सोचा था कि उन्हें इतनी यातनाएँ दी जाएंगी ओर गुरु महाराज को श्वास त्यागने पड़ेगें। हमारा ख़्याल था कि ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें क़ैद कर लिया जाएगा और फिर वज़ीर ख़ान जैसे गुर सिक्ख और मियां मीर जैसे बुर्ज़ुग बीच में पड़कर मामला रफ़ा-दफ़ा करवा देंगें।"

"दरअसल लगता है कि जहाँगीर अपने बेटे ख़ुसरु की बग़ावत से बहुत भयभीत हो गया है।"

"सुना है, अनारकली की मज़ार पर अब मक़बरा बनवा रहा है।"

"बेचारी को ज़मीन में ज़िंदा दफ़न किए जाने से नहीं बचवा सका मर्द जात, झूठ-मूठ का दिखावा कर रहा है।" शैली बताता है, कि ब्यास के किनारे शाही-फ़ौजों के साथ ख़ुसरु के लश्कर की जो झडप हुई, अगर गुर सिक्ख उसकी मदद न करते तो शहज़ादा कभी भी नहीं बच सकता था।

"क्या यह सच है कि गुरु महाराज के अनुयायियों ने बाग़ी शहज़ादे की मदद की?"

"क्यों न करते? इस दर पर जब भी कोई सवाली आया है उसका हाथ लोगों ने पकड़ा है। चाहे गुरु महाराज का आदेश नहीं था पर आम जनता किसी ज़रुरत मंद की मदद करना चाहे तो उसे रोका नहीं जा सकता। हमारे अपने मुज़ारे इस लडाई में शामिल हुए।"

"तब तो फिर मुग़ल दरबार सच्चा है।" सुन्दरी हाथ मलने लगी। इसका यह मतलब तो नहीं है कि किसी की जान ले ली जाए।" नसीम गुरु घर की आस्था वान, उत्तेजित हो रही थी।

इतने में कमाल घर आ घुसा और कहने लगा—"भई चलो हद हो गई। आप लोग तैयार भी नहीं हुए? उधर कीर्तन शुरु हो गया है, बेशुमार संगत इकट्ठी हुई है। कोई रोना-धोना नहीं, कोई आँख गीली नहीं होगी। गुरु महाराज का आदेश है।"

सत्गुर भाणै आपण्णै बही पखारु सदाया।'
मत मै पिछै कोई रोवैसी, सो मै मूलि [illegible] ॥

कमाल के मुँह से गुरु महाराज का फ़रमान सुनकर नसीम की आँखें छल-छलाने लग पड़ी। इस तरह की शहादत पर कोई करे भी तो क्या, आँसू रोके नहीं रूकते।" वह फभक फफक कर रो रही थी।

अंते सत् गुरु बोलया मैं पिछछै कीरतनु करिअहु निरबानु जीओ ॥

कमाल ने याद करवाया और फिर सब हरि मंदिर जाने के लिए तैयार हो गए। चलने से पहले कमाल ने इधर-उधर देखा और पूछने लगा "ये वीरु कहाँ गई है दिखाई नहीं दे रही।"

"वह सुमन के साथ बाज़ार गई है।" नसीम ने उसे बताया।

कमाल का मुँह उतर गया। अपने कमरे में से तैयार होकर निकली सुन्दरी ने उसे देखा तो उसे कमाल पर बहुत तरस आया जब से सुमन आया था, वीरां हर वक्त सुमन के साथ उठती-बैठती जैसे कमाल की भूल ही गई हो।

हरिमंदर के रास्ते में नसीम फिर उन यातनाओं का ज़िक्र करने लगी जो गुरु महाराज को लाहौर में दी गई थी। मैं सोचती हूँ तो मेरा मन काँपने लगता है। सुन्दरी कह रही थी, फुलका उलटते वक़्त तवे का ज़रा सा भी सेक लग जाए तो अँगूली सारा दिन जलती रहती है और उन्हें तो जलते हुए तवे पर बिठाया गया। तौबा! तौबा!! उन्हें जिन्हें हर श्रद्धालु आँखों में बिठाए रहता था। सुन्दरी जब इस तरह बोल रही थी तो उनके साथ-साथ चल रहा कमाल उसके कंधे पर गिर गया और फूट-फूट कर रोने लगा। उस दिन तो उसकी आँखों में एक आँसू भी नहीं देखा था। सब हैरान थे कि आज उसे क्या हो गया है?

सुन्दरी उसके दिल का दर्द जानती थी कुछ देर बाद उसने उसे याद कराया..........

सत्गुरु पुरखु जि बोलया गुर सिक्खां मनि लई रजाई जीयो।

कमाल ने सुना तो फटी-फटी आँखों से सुन्दरी की ओर देखने लगा जैसे पूछ रहा हो............

"क्या मतलब?"

(4)

सचमुच उन्हें देर हो गई थी।

जब नसीम, सुन्दरी और परिवार के बाकी लोग हरिमंदर साहब पहुँचे तो दीवान भर चुका था। अमन तो सुबह से वहीं था। उसने अपना नाम पाठ

करने वालों में दर्ज करवाया हुआ था। जो पिछले दस दिनों से पोथी का पाठ कर रहे थे। एक पाठ ख़तम होता तो दूसरा शुरु हो जाता।

आज का दीवान अंतिम अरदास का दीवान था। पोथी के आख़िरी पाठ का भोग कभी का पड़ चुका था और कीर्तन हो रहा था। सोगवार वाताचरण, मारु राग, धीमी लय, बुझे-बुझे सुर वातावरण सहमा सा था। हर आदमी ख़ामोश रुआँसा-रुआँसा था।

लाहौर से शक्ति आई थी। गुरु महाराज के अनेक रिश्तेदार श्रद्धालु और गुर सिक्ख थे। वे लोग भी थे जिन्होंने रावी दरिया की ओर जा रहे गुरु महाराज के दर्शन किए थे। आँखों देखा जो हाल उन्होंने बताया उसे सुनकर गुर-सिक़्खों के दिल बुझ-बुझ जाते। आतंक का अहसास और गहरा हो जाता किसी को खाने-पीने की होश नहीं थी। जो भी सुनता हाथ जोड़कर खामोश हो जाता। बात करने वाली रह भी कौन सी गई थी। जिस पंथ के सत्कार योग्य गुरु महाराज को इतनी यातनाएँ दी गई थी। उस पंथ को ज़िंदा रहने का क्या हक़ था। कुछ लोग सोच रहे थे इस से अच्छा तो उन्हें मर जाना चाहिए था। किस मुँह से वे लोग अब अपनी महान परंपरा का किसी से जिक्र किया करेंगें। उनके बाबा नानक ने बाबर की सात पीढ़ियों को हुक्मरानी बख़्शी थी। उनके गुरु अंगद से मदद माँगने के लिए हुमाँयू हाज़िर हुआ था। महाबली अकबर पैदल चलकर आया था और गुरु महाराज के दर्शनों से पहले लंगर में बैठ कर उसने प्रसाद ग्रहण किया था और अब उस क़ौम के इष्ट का इतना निरादर किया गया था। उसे क़ैदी बनाया गया। शाही क़िले में उसे यातनाएँ पहुँचाई गयीं और शांति के पुँज गुरु महाराज ने आख़िर अपना चोला छोड़ दिया। किसी सिक्ख ने शिकायत नहीं की ऊँचा बोल नहीं बोला। हज़रत मियां मीर आए, क्रूर होकर ख़ामौश हो गए।

नसीम सोचती, मैं ही पगली हूँ जो इस तरह छल-छल आँसू रोती रही गोइंदवाल के और लोग भी तो फफक-फफक कर रोते थे लेकिन यहाँ अमृतसर में जैसे लोगों की पलकों में आँसू आकर लौट जाते हों, छिप रहे हों। कहीं इसका कारण ख़ौफ तो नहीं था। फिर बहुत देर सोचने के बाद सैकड़ों को देखकर उसके दिल ने हामी भरी हों यह खौफ़ था। हर आदमी भयभीत था बाज़ के साये की तरह हर किसी के चेहरे पर गर्दन निकाल कर डर झाँक रहा हो।

गुरु के सिक्ख जिनकी ऐडी कभी ज़मीन पर नहीं लगी थी आज कैसे

धीरे-धीरे कदम चल रहे थे। हर मंदर के जिन सेवादारों के जयकारे आसमान में गूँजते थे, कैसे मरियल सर में हुँकारे भर रहे थे। नज़रें नीची, सर झुके हुए आज हरिमंदिर साहब में पक्षी क्यों नहीं चहक रहे थे? जेठ आषाढ के दिन पसीने की धारें फूटतीं। गर्मी बेशक इन दिनों में पड़ती। लेकिन इस तरह की तपिश न किसी ने देखी। इधर ही दिन निकला उधर से लू चलने लगी। बच्चे पानी पीकर आते, फिर पानी पीने के लिए प्याऊ की ओर चल पड़ते। गोद के बच्चे बेचैन पड़ने लगते। माएँ बार-बार उन्हें दूध पिलातीं, ऊँची आवाज़ सुनने के लिए कोई कान जैसी राज़ी नहीं था।

सारींदे की सोगवार मधुर धुन के साथ कीर्तनयी शब्द का गायन कर रहे थे..........

सूरज किरणि मिलै, जल का जलु हुआ राम ॥
ज्योति-ज्योति रली समपूरण थिया राम ॥
बरहमु दिसै-बरहमु सुणियै, एकु एकु वखाईयै ॥
आतम पसारा करण हारा, परभ बिना नहीं जानियै ॥
आपि करता, आपि भुगता, आपि कारणु कीआ ॥
बिन वंति नानक सेही जाणिहि, जिनि हरि रसु पीआ ॥

(बिलावल महला ५)

"सूरज किराणी मिलै" जब रागी सज्जन यह बोल उच्चारते तो दूर दूर तक बैठी संगत की जैसे हूक निकल जाती, जैसे हर किसी के सीने में तीरों के गुच्छे आकर चुभ रहे हों। लोग बार-बार गुरु महाराज के विछुड़े के अहसास से ठण्ड़ी साँसे भरते।

आख़िर नसीम से अपने ऊपर और जब्र नहीं हो सका उसके आँसू गालों तक लुढक आए। यही हाल सुन्दरी का था। वह बार-बार ऊँगलियों से जैसे अपने आँसूओं को रोक रही थी। कभी दायें, कभी बायें ऊपर तक उसके हाथ उठ रहे थे। "सूरज किरणि मिलै जल का जलु हुआ" सुन्दरी अनायास गुनगुना रही थी। उसकी आवाज़ में एक दर्द था, एक वैराग था जैसे कलेजा निकाल कर बाहर रख रही हो।

पता नहीं कमाल कहाँ ग़ायब हो गया था। सब को संगत में बिठाकर अदृश्य हो गया था। सुमन और वीरों भी कही दिखायी नहीं दे रहे थे।

इतने में गुरु हरि गोबिंद जी आकर साधु-संगत में शामिल हो गए। दूर से ही उन्हें आता देख कर साध-संगत हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। शांत,

गंभीर, दमकता हुआ मुखड़ा केसरी रंग की दस्तार और कलगी, झम-झम करते माथे पर आत्म सम्मान की झलक। काले-स्याह नयनों में एक पैनी दृष्टि, एक लटकता हुआ सपना, अपने आप में एक दृढ़ विश्वास। निरभहू। ऊँचा लम्बा सुडौल बदन एक तीक्ष्णता, अंग-अंग में से बंद-बंद में से टप-टप करती वीरता।

नया पहरावा, कमर कसकर बाँधी हुई। एक कृपान म्यान में एक तलवार हाथ में चुस्त पयजामा, तंग-कुर्त्त, सफ़ेद दूधिया रेशमी पोशाक जैसे आसमान से उतरा कोई फरिश्ता हो। उनके आते ही एक ख़ुश्बू चारों तरफ़ फ़ैल गई। वे आए तो हर दिल एक उल्लास में हुमक उठा। जैसे नक़्शा ही बदल गया हो। सुरमई घटाओं में से जैसे अचानक चाँद निकल आए, किरणें छोड़ने लगे।

गुरु महाराज विराजे। संगत ने फिर अपना आसन ग्रहण किया। लेकिन नसीम दीवानों की तरह हाथ जोड़े खड़ी रही। टक-टकी लगाकर सत् गुरु की ओर निहार रही थी। वह दोबारा बैठना जैसे भूल ही गई हो। बस इतनी गनीमत थी कि देर से पहुँचने के कारण वे लोग सबसे आख़िरी पंगत में बैठे थे। उनके पीछे और कोई नहीं था। जिनका रास्ता वह रोक रही हो।

इतने में रागी जत्थे का शब्द समाप्त हुआ और गुरु हरिगोविंद जी ने साध-संगत को सम्बोधित किया।

तौबा-तौबा इनको कितनी गुरबाणी याद है। ईस छोटी उम्र में कितना अभ्यास है उनका। क़दम-क़दम पर गुरबाणी में से तुकों का उच्चारण करके जैसे प्रमाण दे रहे हों....

जउ तउ प्रेम खेलनका चाउ ॥
सिर धरि तली गली मेरी आओ ॥
इतु मारगि पैर धरीजै ॥
सिरु दीजै काणि न कीजै ॥

(सलोक वारां तों वधीक)

सुरा सो पहचानीये जु लरे दीन के हैत ॥
पुरजा-पुरजा कटि मरै, कबहू न छाडे खेतु ॥

(सलोक कबीर)

मरणु मुण्डा सा सूरिआ हकु है, जो होइ मरनि परवाणो ॥
सूरे सेई आगै अखिअहि, दरगह पावहि साची माणो ॥

(वडहंस महला १)

कबीर अैसी होइ परी मनको भावतु कीनु ॥
मरने ते किआ डरपना, जब हाथि सिधउरा लीन ॥
(सलोक कबीर)

अब उनकी आवाज़ और ऊँची हो गई थी चेहरा तमतमा रहा था। और गंभीर हो गए थे। साध-संगत में विराजमान प्रत्येक प्राणी को तैरती हुई एक नज़र से देख रहे थे, उनके बोल अब सावन के घिर आए बादलों की तरह जैसे ब्रस पड़े हों। तड़-तड़ करके गर्मा भी रहे थे, ठण्ड भी डाल रहे :

आज सिक्ख संगत एक दोराहे पर आ खड़ी है। हमारी हस्ती को चुनौती दी जा रही है। हमारी सभ्यता हमारी परंपरा को चुनौती दी जा रही है। दोस्ती का जो हाथ हमने हमलावरों की ओर बढ़ाकर उन्हें अपनाया था उस हाथ को उन्होंने काट लिया है। जिन्हें हमने अपने दिल में जगह दी, उन्होंने विश्वासघात करके हमारे भीतर सेंध लगा ली है। कल तक जो इस घर से असीसें लेने आते थे, आज हमें आँखें दिखा रहे हैं।

बेशक राज राजों को ही करना होता है लेकिन राजा एक परिवार के मुखिया जैसा होता है। अगर परिवार के किसी प्राणी के साथ अन्याय हो बाक़ी कुटुम्ब ख़ुश नहीं रह सकता। जिस परिवार में बदमज़गी है। उस परिवार के मुखिये को इसका दुख भोगना पड़ता है। मैं कहता हूँ उन्हें इन सारी बातों का परिणाम भुगतना पड़ेगा जो अत्याचार उन्होंने किया है, जो क़हर उन्होंने ढाया है।

गुरु नानक के सिक्ख आज से कसरतें करेंगे, डण्ड-बैठकें करेंगे, तेल की मालिश करके अपने पट्ठों को इस्पात जैसा बनाऐंगे। हमारे लोग खेलों और कुश्तियों में हिस्सा लेंगे, पहलवानियों के दंगल होंगे। सिक्ख घुड़सवारी किया करेंगे। मनोरंजन के लिए नेज़ा बाज़ी किया करेंगे। हम शिकार पर निकला करेंगे और खूँखार जंगली जानवरों, बाघों और शेरों से जूझा करेंगे।

गुरु की ख़ुशियाँ प्राप्त करने के लिए अब भेंट स्वरूप तेग़ और तलवार, नेज़े और बरधे, तीर और कमान, घोड़े और बाज़ गुरु की नगरी में भेजने होंगे। गुरसिक्खों को कमर बाँधकर हमारे पास हाज़िर रहना पड़ेगा, हरिमंदर की रक्षा की ज़िम्मेदारी अब हमारी अपनी होगी।

अमृतसर शहर की रक्षा के लिए शहर से बाहर लोहगढ़ नाम का एक क़िला बनाया जाएगा। सौ घुड़सवार, चार सौ प्यादे, तीस तोपची इस क़िले में तैनात किए जाएँगें। हम अपना सिक्का-बारूद, अपनी तोपें ख़ुद बनाऐंगे।

हमारी अपनी छावनी होगी। कोई अब गुरु की नगरी की ओर आँख उठाकर नहीं देख सकेगा। जो यहाँ हमला करने आएगा उसे मुँह की खानी पड़ेगी, चाहे कोई शैद ख़ान हो, चाहे कोई मुतर्ज़ा ख़ान। पिछले छह सौ सालों से हमलावरों के घोड़े हमारे देश को अपने खुरों से नीचे लताड़ते आ रहे हैं अब और ऐसा नहीं होगा। हमें अपनी ग़ैरत, अपने आत्म सम्मान को बनाए रखना है।

हरिमंदर में पोथी का पाठ होगा, शब्द कीर्तन होगा, ईश्वर से लौ लगाने के यत्न होंगे। सुबह भी शाम को भी। हरिमंदर आत्मसुधार और आत्मिक उन्नति का केन्द्र पहले की तरह बना रहेगा। लेकिन हरिमंदर के सामने इस खुले मैदान में कुश्तियाँ हुआ करेंगी, गतके की सिखलाई होगी, घोड़ों को सिधाया जाएगा, क़ाबू में लाया जाएगा। तीरों और बंदूक़ों के निशाने पक्के किए जाएंगे।

फिर वहाँ एक चबूतरा बनाया जाएगा, जिसकी चिनाई भाई बुड्ढा जी, भाई गुरदास और हम अपने हाथों से करेंगे। यह हमारी क़ौम का अकाल तख़्त होगा। इसी तख़्त के सामने सियासत और समाज की समस्याओं पर विचार किया जाएगा, उन्हें सुलझाया जाएगा। हमने मुग़ल इंसाफ़ के खोखलेपन को देख लिया है। हम और अपने आप को उनके रहम और करम पर नहीं छोड़ेंगे।

हमारे पंथ का अपना निशान होगा, अपना झण्डा होगा, अपना नगाड़ा होगा।

अमृत वेला से शब्द कीर्तन हो रहा है। सारिंदे और सारंगी की दिल चीरने वाली धुनों में हमने अपने इष्ट की याद में विलाप किए हैं, हाथ जोड़े हैं, अरदास की है, अब भाई अब्दुल्लाह, भाई नत्था और बिंबाक ढाडी वारें पेश करेंगे। भाई गुरदास जी की अगुवाई में और वारें लिखी जाएंगी और वारें गायी जाएंगीं।

गुरु महाराज का आदेश पाकर भाई अब्दुल और उनके साथी, भाई नत्था और भाई बिंबाक अपनी-अपनी ढड पकड़ कर खड़े हो गए और वारें गाने लगे।

सच्चा तख़त सोहायो सिरी गुर पाइकै ॥
छब बरनी नहीं जाए, कहो क्या गाइकै।
रव सगी भै मलीन सु दरस दिखाइकै।

सिरी गुरु तख़त विराजै, पर भू ध्याइकै।
मीर अब्दुल औ नत्था जस्स रहे बनाइकै।

(5)

यह आशंका कि गुरु अर्जन देव जी की शहीदी के बाद, इस बहाने कि उन्होंने जुर्माना नहीं भरा था, और पोथी में कोई तबदील करने पर भी राज़ी नहीं हुए थे, गुरु घर पर और अत्याचार होंगें और जहाँगीर सिक्ख मत को समूल नष्ट करके अपने इरादे को पराकाष्ठा तक पहुँचाएगा, क्षण भर के लिए निर्मूल साबित हो रहा था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि जिस बेरहमी से गुरु महाराज को कष्ट दिए गए थे उन्हें देखकर किसी की अंर्तात्मा भी विद्रोह कर सकती थी। फिर जहाँगीर तो एकदम आराम पसंद, अय्याश और शराब का शौक़ीन होने के कारण अधिक झमेले डाले नहीं रखना चाहता था। फिर मुग़ल दरबार के नज़दीक चंदू और सप्तम ख़ान जैसे दुष्ट थे लेकिन वज़ीर ख़ान और मियां मीर जैसे गुरु घर के श्रद्धालु भी थे जिनकी किसी हद तक सुनवाई होती थी। उधर जहाँगीर को कंधार के शाह अब्बास की बग़ावत दबाने के लिए क़ाबुल जाना पड़ा और इस मुहिम ने कोई दो बरस तक शहंशाह को परेशान रखा।

यह देखकर कि जिस तरह की धर-पकड़ का सिक्ख संगत को ख़तरा था, उस तरह की कोई बात दिखाई नहीं दे रही थी। फिर भी गुरु हरिगोविंद जी अपनी योजना के मुताबिक़ दिन-रात तैयारी में व्यस्त रहते, उधर कुछ गुरु सिक्ख इन बातों को फालतू समझकर परेशान रहने लगे। कुछ श्रद्धालुओं के मन तो जैसे विचलित हो रहे थे।

सिक्ख भाईचारे की मुसीबत यह थी कि अभी कल ही तो गुरु अर्जन देव मुँह से एक बोल बोले बिना, हिंसा का शिकार हो गए थे। वे अहिंसा के अवतार थे उन्होंने रब के भाणे को मीठा करके मान लिया था। उन्होंने किसी की शिकायत नहीं की थी। बस सच्चाई का दामन थामकर अपने प्राण त्याग दिए थे। अगर वे चाहते तो क्या नहीं कर सकते थे ? सिर्फ़ मियां मीर जी को ही इशारा करते तो वे तहलका मचा देते।

फिर गुरु हरिगोविंद जी ने जो सपना देखा था, जिस तरह की नई सभ्यता का उन्होंने मन में नक़्शा बनाया था वह सब कितना फ़र्क था, कितना अजनबी था, ख़ास तौर पर बुद्धिजीवी सिक्खों के लिए जिन्हें न दिन में चैन आता था न रात को आराम मिलता था। भाई बुड्ढा जी, कुछ निश्चय नहीं

कर पा रहे थे। भाई गुरदास जी परेशान थे।

उधर कुछ मसंद थे जो किसी को चैन नहीं लेने दे रहे थे। उठते-बैठते एक ही रट लगाते थे कि सिक्ख संगत को मुग़ल दरबार से रिश्ते बिगाड़ने नहीं चाहिए जो हो गया सो हो गया। कुछ क़सूर हमारा अपना था; ज़्यादा क़सूर बेशक सरकार का था। सरकार का तो हमेशा ज़्यादा क़सूर होता है प्रजा को अनदेखी करनी पड़ती है।

कई और सिक्ख उन्होंने अपने पीछे लगा लिए थे। लोग बैठे-बैठे अपने आपसे सवाल करते—अब हम सिमरन क्या करेंगे या निशानेबाज़ी किया करेंगे ? अब हम कीर्तन सुना करेंगे या कुश्तियाँ लड़ा करेंगे ? अब पोथी का पाठ किया करेंगे या बाज़ उड़ाया करेंगे ?

प्रताप मल ज्ञानी नाम के एक हिन्दू के घर में झगड़ा मचा हुआ था। उसका जवान-जहान बेटा मुसलमान होना चाहता था। बाप परेशान था, उसने पूछा, "आख़िर तुझे इस्लाम में क्या दिखाई दिया है जो तू हिन्दू धर्म को छोड़ रहा है ?" 'आज़ादी' इस्लाम में खाने-पीने की आज़ादी है, हिन्दू भाईचारे की साग-सब्जियाँ खाकर मैं तंग आ गया हूँ। "अगर यह बात है तो तू गुरु का सिक्ख बन जा, गुरु सिक्खों को नवें गुरु हरिगोविंद जी ने इस तरह की बंदिशों से मुक्त कर दिया है।"

"जब से पयंदा ख़ान अमन के यहाँ आया था, सुंदरी इस बात का विशेष तौर पर ध्यान रखती थी कि उसका खान-पान वही हो जैसा वह लाहौर में बरकते के घर में खाने का आदी था। कमाल के संस्कार और तरह के थे। वह भाई गुरदास जी का शिष्य था, उसने अपने तौर-तरीके बिल्कुल नहीं बदले, माँस घर में पहले भी पकता था अब ज़्यादा पकने लग पड़ा था। कमाल की तरह शाकाहारी रहा। कहता मैं शिकार कर सकता हूँ लेकिन माँस मुझसे नहीं खाया जाता।" सुंदरी उसे छेड़ती, "तरे भाई गुरदास जी वैष्णव हैं और तू उनका बसता उठा कर चलता है।" "बसता बरदार नहीं, चमचा।" पयंदे ने उससे छेड़खानी करनी शुरूकर दी थी। अभी उसे यहाँ आए चार दिन ही हुए थे, लेकिन लहू का रिश्ता था।

मेहरबान की तो जैसे ईश्वर ने सुन ली हो, जिस दिन से गुरु हरिगोविंद जी के भाषण के बारे पता चला उसने उसका मज़ाक़ उड़ाना शुरू कर दिया। "क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोखा अब हमारा भाई मुग़लों से लोहा लेगा।" वह सबसे कहता फिरता अभी इसकी मस तो फूटी नहीं, दूध के दाँत

ज्यों के त्यों मुँह में हैं और यह शहंशाह जहाँगीर का मुक़ाबला करने की सोच रहा है। मेहरबान जब अब इस तरह के कुवचन बोलता तो उसे लगता जैसे श्रोता उसके कथन में दिलचस्पी ले रहे हों, कई कानों को उसके बोल अच्छे लगते थे। मसंदों की तो पहले से यह धारणा थी कि कुछ देर के लिए जब तक साहबज़ादा हरिगोविंद प्रौढ़ नहीं हो जाते, मेहरबान को, गुर-गद्दी की ज़िम्मेवारियाँ सौंपी जा सकती हैं। गुर-गद्दी सोढी ख़ानदान में ही रहेगी। फिर भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी की अगुवाई तो प्राप्त थी ही।

माता गंगा जी ने अपने सिरताज गुरु अर्जन देव जी के कागज़ पत्तर क़लमदान आदि समेटने शुरू कर दिए। बेटे की इस तरफ़ कोई रूचि नहीं थी। अपना नित्य नेम बेशक करते, गुरबाणी का पाठ करना भी उन्हें अच्छा लगता था। कभी सरिंदा लेकर नहीं बैठते थे। अधिक से अधिक, ढढ सारंगी वालों की वारें उन्हें अच्छी लगती थीं। कल शाम को बैठे जयमल फत्ता की वार सुनते रहे थे। चित्तौड़ के राजपूतों की शूरवीरता की कथाएँ सुनना उन्हें पसंद था।

गली-गली में बच्चों ने बाँसों की खप्पच्चियाँ चीरकर कमान बना लिए थे, तीर गढ़ लिए थे। हर महल्ले में गतके की सिखलाई के नज़ारे देखने में आते। कहीं मालिशें हो रहीं, कहीं कुश्तियाँ और दंगल रचाए जा रहे हों और तो और शैली ने अमन के लिए भी गोइंदवाल से एक घोड़ा भेज दिया था। शैली ने घोड़ों का व्यापार शुरू कर दिया था। काबुल, कंधार, ईरान और इराक़ से बढ़िया नस्ल के घोड़े मँगवाने का उसने सिलसिला शुरू कर दिया था। घोड़ों के व्यापार में खेतीबाड़ी से ज़्यादा आमदनी की संभावना थी।

कई दिनों से उनके घर आया सुमन वीरां को घुड़सवारी सिखा रहा था। वीरां को भी घुड़सवारी का ऐसा चस्का पड़ा कि सुबहो शाम घोड़ा लेकर सुमन के साथ बाहर निकल जाती। कमाल उसकी मुँह की तरफ़ देखता रह जाता। एक दिन जब वह ललचाहे आँखों से वीरां के जोबन को निहार रहा था तो वीरां ने उससे कहा, "कमाल तू भी घुड़सवारी क्यों नहीं करता ? एक दिन घोड़े पर बैठकर तो देख कितना मज़ा आता है।" कमाल को पढ़ने लिखने से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती थी या फिर भाई गुरदास जी की सेवा में रहता था। घर आता तो उनकी वारों की नक़ल करने बैठ जाता। भाई गुरदास जी रोज़ नई वारें लिखते थे। जबसे गुरु हरिगोविंद जी ने वारें सुनने में दिलचस्पी लेनी शुरु की थी, भाई गुरदास जी नई से नई वारें लिखते

थे। अब तो वह सिक्ख इतिहास की वारों में क़लम बद्ध करने क। सोच रहे थे। अमृतसर शहर का वातावरण कुछ और का और ही रहा था। अमृतसर के साथ-साथ बाक़ी शहरों में भी धीरे-धीरे नया संदेश पहुँच रहा था, जहाँ-जहाँ गुरसिक्ख थे उनके नए-नए शौक़ देखने में आ रहे थे। उनके नए-नए रंग ढंग ही रहे थे।

एक दिन गुरु महाराज के मुखारविन्द से यह फ़रमाइश निकली कि उन्हें बावन सिक्ख चाहिए जो एक तरह से सुरक्षा की टुकड़ी होंगे और अगले दिन से गुरु महलों के बाहर भीड़ लग गई। सैंकड़ों नवजवान हाज़िर थे। उन्हें बस दो वक़्त का लंगर और साल छहमाही में कुर्ता और कच्छा पहनने के लिए दरकार था। इनमें सुमन भी था, कमाल भी था, पयंदा भी था। केवल सुमन को चुना गया। कमाल का डील-डाल अच्छा था पर क़द थोड़ा छोटा था और पयंदा की उम्र थोड़ी कम थी। दो-चार बरस उसे और रुकना पड़ेगा। हाँ, दौड़ने में छलाँग लगाने में वह कईयों से तेज़ था। दमकता हुआ चेहरा, इस्पात की तरह ढले हुए पठ्ठे, ऊँचा लम्बा क़द, आस-पास सभी को प्रभावित करता। ख़ास तौर से गुरु महाराज को वह अच्छा लगा। बहुत देर तक उसके साथ बातें करते रहे। लेकिन कच्ची उम्र थी। यह जानकर कि वह अमृतसर में ही रहेगा, गुरु महाराज ने उसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए विशेष हिदायत दी। उसे तीरंदाज़ी कुश्ती आदि सिखाने के लिए प्रबंध किया। उस शाम जब वे लोग घर लौटे, कमाल का सिर झुका था, वह उदास-उदास था सुमन और पयंदा दोनों ख़ुश-ख़ुश थे। सुमन का चुनाव हो गया था और पयंदे को चुने जाने का विश्वास दिलाया गया था।

"सबसे अच्छी बात यह है कि तू अब हमारे घर रह सकेगा", शाम को एकांत पाकर वीरां ने लाड भरे लहजे में सुमन से कहा। वह यह नहीं जानती थी कि साथ के कमरे में बैठा कमाल गुटके में से पाठ कर रहा था।

वीरां के बोल सुनकर कमाल जैसे सुन्न पड़ गया। उसके हाथ में पकड़ा गुटका खिसक कर उसकी झोली में जा पड़ा। उसने फ़ौरन गुटके को अदब से उठाया और माथे से लगाकर कपड़े में लपेट दिया, थोड़ी देर बाद वह जूता पहनकर बाहर निकल गया।

देर रात बीतने तक भी कमाल घर नहीं लौटा। सब सोच रहे थे कि वह भाई गुरदास जी के यहाँ रुक गया होगा। "मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक की होती है।" वीरां ने कुछ ऐसे कहा कि सुंदरी को यह अच्छा नहीं लगा।

कमाल अगले दिन भी नहीं लौटा। शाम तक प्रतीक्षा करने के बाद उसकी तलाश होने लगी। लेकिन उस रात और उससे अगली रात भी उसकी कोई ख़बर नहीं मिली। भाई गुरदास जी के यहाँ वह गया नहीं था न ही हरिमंदर में किसी ने उसे देखा था।

जब हर कोई चिंता में डूबा था। वीरां को लगा कि उसकी माँ बार-बार उसे इस तरह देख रही थी जैसे कोई किसी क़सूरदोषी की ओर देखता है। वीरां अपने मन को टटोलने लगी। छत के एकांत में बैठी वीरां की कितनी बरस पुरानी यादें आँखों के सामने तैरने लग पड़ीं। फिर अचानक वह एक जगह आकर खड़ी हो गई। उसे लगा जैसे पनीरी की शक्ल में कोई नन्हा पौधा किसी ने जड़ से उखाड़कर मुँडेर पर फेंक दिया हो। लंबी जड़ों वाला पौधा। उल्टा गिरा हुआ था। लाख कोशिशों के बावजूद यह दृश्य बार-बार उसकी आँखों के सामने आकर रेखांकित हो जाता।

इसी वक़्त गोइन्दवाल से ख़बर आई कि कमाल वहाँ चला गया था। घोड़ों के नए व्यापार में वह शैली का हाथ बटाने लग पड़ा था।

(6)

जाड़े के दिन थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। बारिश की झड़ी सर्दी की तरह चिपकी हुई थी। पाँच दिन से किसी ने सूरज का चेहरा नहीं देखा था। लोग कहते कि कुछ दिन और इसी तरह की रिमझिम लगी रहेगी। हर चीज़ सिली-सिली थी, गलियों में क़िचड़ था। रात ख़त्म नहीं होना चाहती थी।

भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी को न दिन में आराम था न रात को चैन थी। भाई गुरदास जी तो ज़्यादा ही परेशान थे। उम्र का तक़ाज़ा, भाई बुड्ढा जी, ज़्यादा श्रद्धालु थे, ज़्यादा भावुक थे। उनका लिखने पढ़ने के साथ ज़्यादा संबंध था। वह ज़्यादा सोचते थे। सोचने के नए तरीक़ों को, रहन-सहन के नए तरीक़ों को स्वीकार करने में, अपने में ढालने में कठिनाई होती थी। पहले तो गुरु महाराज ने फ़रमाया था कि बावन सिक्ख भर्ती किए जाएंगे। जिनकी ज़िम्मेदारी हरिमंदर और गुरु घर की सुरक्षा होगी। यह बात समझ में आ सकती थी, मुग़लों ने जो पहले किया था और अभी तक कर रहे थे, उस सबको देखते हुए, इस तरह की सावधानी उचित थी। लेकिन अब गुरु महाराज ने अपना लक्ष्य और बढ़ा दिया था। ऐसा भाई गुरदास सोच रहे थे, सात सौ जवान और भर्ती किए जा रहे थे यही नहीं, उनके साथ साठ

तोपची भी दरकार थे। घुड़सवार होंगे तो उनके लिए घोड़े ख़रीदने पड़ेंगे, तोपचियों के लिए तोपों की ज़रूरत पड़ेगी। इस सबका ख़र्चा गुरु की गोलक में से होना था।

आस-पास के मसंदों और गुरु प्यारों को हिदायतें भेजी जा रही थीं कि आगे से गुरु भेंट में घोड़े होने चाहिए, तेग़ और तलवारें होने चाहिए, गोला-बारूद होना चाहिए। अनुभवी मिस्त्रियों और कारीगरों को इकट्ठा करके लोहारों और पुराने फ़ौजियों की मदद से तोपें बनाई जा रही थीं।

ख़ुद गुरु महाराज सुबह-शाम शिकार के लिए जाते थे। हर बार पूछने पर यही पता लगता कि वह शिकार पर गए हैं; कभी पश्चिम, कभी उत्तर, कभी दक्षिण यही नहीं हर बार वह ढेरों शिकार लाते। जँगली सुअर, हिरण और खरगोश, अब तो उन्होंने चीते और दूसरे जंगली जानवरों का शिकार करना शुरू कर दिया था। शाम को जब लौटते तो ढेरों शिकार चारों तरफ़ के गुरु प्यारों में बाँटते थे ख़ुद भी दोनों वक़्त माँस खाते थे, अपने श्रद्धालुओं को भी इसका चस्का डलवा रहे थे।

उस दिन भाई गुरदास जी से न रहा गया। सुबह होते ही वे भाई बुड्ढा जी के यहाँ गए। फ़िक्रों में डूबे हुए वे भाई बुड्ढा जी को अपने मन की वेदना बताने लगे। भाई बुड्ढा जी उनका क्लेश देख रहे थे। बहुत देर तक उनकी दास्तान सुनते रहे कई बार शाम की रहरास में भी गुरु महाराज शामिल नहीं होते थे क्योंकि उन्हें शिकार से लौटने में देर हो जाती थी। कई बार सुबह अमृत वेला में भाई साहब को ऐसा लगता था जैसे गुरु महाराज उतावली में हों। बाहर घोड़ों पर सवार शिकारी उनकी प्रतीक्षा कर रहे होते थे। शिकारी कुत्ते भी उतावले हो रहे होते थे। कई बार ऐसा भी होता कि बाहर से आए यात्रियों को गुरु महाराज के दर्शनों के लिए दो-दो, चार-चार दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। फिर ऐसा शिकारी भी कभी किसी ने देखा-सुना नहीं था जो प्रतिदिन शिकार के लिए जाता था फिर पहले गुरु साहबान की तरह उन्होंने गुरबाणी भी नहीं उच्चारी थी। एक शब्द भी नया नहीं, अब कितने दिन गुरगद्दी पर बैठे उन्हें हो चुके थे भाई बुड्ढा जी सुनते रहे, सुनते रहे उनसे कौन सी बात छुपी हुई थी ? पहले की तरह वह बाहर थोड़े रहते थे, हरिमंदिर के ग्रंथी होने के नाते वे हर रोज़ देखते रहते थे, गुरु महाराज संगत में कब शामिल होते हैं कब नहीं। आख़िरकार वे बोले, "भाई साहब आपकी सारी चिंताएँ अपने स्थान पर उचित हैं, लेकिन गुरु हरिगोविंद जी गुर-गद्दी

पर विराजमान हैं। वे तो छठे गुरु नानक हैं। जानी-जान, हर बिगड़ी को सवारने वाले। हम कौन होते हैं उनकी किसी हरकत में दोष निकालने वाले? मैं तो सोचता हूँ कि यह उनके खेल हैं।"

"बेशक।" भाई गुरदास जी ने एकदम संभलते हुए कहा फिर भी उम्र का तक़ाज़ा है मैं सोचता हूँ कि माता गंगा जी के साथ बात करनी चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि मुग़ल कोई और बहाना तलाश लें। बालावस्था है। अगर फिर हमला हुआ तो माता जी अकेली जान हैं, हम तो कहीं के नहीं रहेंगे।

यह बात भाई बुड्ढा जी की समझ में आ गई और भाई गुरदास जी के साथ माता गंगा जी से मिलकर बात करने के लिए तैयार हो गए। फ़ैसला हुआ कि अगले दिन सुबह चौकी के बाद वे दोनों माता गंगी के सामने हाज़िर होकर अपनी व्यथा बयान करेंगे।

भाई बुड्ढा जी से मिलकर भाई गुरदास जब अपने घर लौट रहे थे तो घर के बाहर उन्हें एक मसंद मिल गया। इधर-उधर की बातें करते हुए भीतर भाई साहब के आँगन में बैठ गया। फिर अपने आप कहने लगा कि मैं कई दिनों से सोच रहा हूँ कि आपसे बात करूँ, क्या आप नहीं सोचते कि सिक्ख संगत को ग़लत रास्ते पर डाला जा रहा है ?

"क्या मतलब ?" भाई गुरदास जी एक दम उत्तेजित हो गए उनका चेहरा तमतमा उठा।

"मेरा मतलब है कि कहाँ माला जपना, सिमरन करना, पाठ-पूजा, लंगर की सेवा, मेहनत करना, बाँटकर खाना। कहाँ ग़रीब-गुर्बे की मदद आए-गए की सेवा, नम्रता, सादगी, त्याग की भावना, अमन-शांति और कहाँ घोड़े और खच्चर, तोपें और तीर, गोले, बारूद, तेग़ें और तलवार, कहाँ नित्य शिकार पर जाना और ढेरों मासूम जानवरों और पक्षियों की हत्या करना। क्या यह गुरु नानक के नामलेवा सिक्खों को शोभा देता है ? भाई बुड्ढा जी के पास जाने की मेरी हिम्मत नहीं हुई लेकिन मैंने सोचा कि आप इस समस्या को जरूर समझ सकेंगे। आप दानिशवर हैं इस अनर्थ पर कोई अंकुश लगा सकेंगे। मुझे तो लगता है कि मुग़लों का लश्कर किसी दिन आकर हमें दबोच लेगा और गुरु नानक की उम्मत का कोई नाम लेवा भी नहीं बचेगा। उधर शहंशाह का दीवान चंदू शाह पहले की तरह बैरी है। लाहौर का सूबेदार जो कुछ भी करे सो ही थोड़ा। मेहरबान अपनी जगह पर चिढ़ा बैठा है। चारों तरफ़ गुरु घर के बैरी मौक़े की तलाश में है। जो कुछ कर सकते हैं, करने

का यही समय है। नहीं तो हमें सदा-सदा के लिए पछताना पड़ेगा। मुग़लों ने पहले हमारे साथ कौन सा ज़ुल्म नहीं किया। लाहौर से जो कहानियाँ सुनने में आ रही हैं, गुरु अर्जुन देव जी को जैसी यातनाएं दी गयीं सुनकर ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैं आपके हाथ..................."

मसंद ऐसे बोलता रहा था कि भाई गुरदास जी ने उसे हाथ के इशारे से रोका और अत्यंत गंभीर लहजे में फ़रमाया :

"मुझे कुछ मसंदों की आशंकाओं की सूचनाएँ मिलती रहती हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम गुरसिक्ख हैं और छठे पादशाह हमारे गुर महाराज हैं। वे गुर गद्दी को सुशोभित कर रहे हैं। वे खुद गुरु नानक हैं। जो काम बाबा नानक अपने जामे में पूरा नहीं कर सके वह काम गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जन देव तथा अब गुरु हरिगोविंद के रूप में पूरा हो रहा है। अकाल पुरख ने उन्हें भेजा है, जनता की भलाई के लिए। हम कैसे पार उतरेंगे, वह ही जानते हैं। सिक्ख का फ़र्ज़ है, गुरु की रज़ा में राज़ी रहे। गुरु जानी-जान हैं सर्व कला सम्पूर्ण हैं। क्या आपने उनके मस्तक की आभा नहीं देखी, उनके नयनों का नूर क्या आप नहीं देखते ? उनके मुखड़े का नूर सहा नहीं जाता। ग्यारह बरस की उम्र में कोई इस तरह दिलों की बातें बूझता है, मनों की बातें जानता है, जैसे हमारे गुरु महाराज करते हैं। कछुए की उम्र ख़रगोश से ज़्यादा होती है, लेकिन ख़रगोश छलाँगे लगाता हुआ कछुए को पीछे छोड़ जाता है। गुरु महाराज उकाब हैं, बाज़ हैं, हम चिड़ियाँ हैं, काल चींटियाँ हैं।"

भाई साहब ऐसे बोल रहे थे तो मसंद के जैसे रोम-रोम के किवाड़ खुल रहे हों, उसके आँखों में एक नई रौशनी आ रही थी, उनके हाथ जैसे जुड़ रहे थे, उसका सर झुक रहा था। फिर आगे बढ़के मसंद ने भाई गुरदास जी के चरण पकड़ लिए, उसकी पलकों में से आँसूओं की झड़ी बरसने लगी। मसंद को लगा कि इतने दिनों तक वह किसी बंद गला घोंटने वाली गली में बैठा था। अन्धेरे और कीचड़ की दल-दल में फँसा क्षीण होता जा रहा था। भाई गुरदास जी ने जैसे उसे नए सिरे से जीवन दान दिया हो, उसे फिर सीधे रास्ते पर डाला हो।

मसंद भाई तो अपने सारे संशयों का निवारण कर चला गया लेकिन उसके पीठ मोड़ते ही भाई गुरदास जी को अपने-आप से ग्लानि होने लगी। जो संशय मसंद भाई ने प्रकट किए थे, वही भाई गुरदास जी को अपने भीतर

बैठे अनुभव हो रहे थे। मसंद की कही सारी बातें भाई गुरदास जी के चेहरे पर चित्रित थीं। वो बातें दिन रात उन्हें भी परेशान करती रहती थीं। मसंद चला गया लेकिन उसकी एक-एक आशंका भाई गुरदास जी के कानों में गूँजने लगी, एक-एक शिकायत दस-दस बातें सुनकर सुनाई देतीं उन्हें लगता सचमुच कहीं ख़राबी थी। सिक्ख संगत किसी ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर पड़ गई थी।

अगले दिन कीर्तन के बाद जब तक वे भाई बुड्ढा जी के साथ माता गंगा जी के आगे हाज़िर नहीं हुए, इस तरह की शंकाओं में ग़ोते खाते रहे। उनकी हैरानी की हद न रही जब माता गंगा जी के सामने बैठे भाई बुड्ढा जी हाथ जोड़कर बिल्कुल वही बोली बोल रहे थे जो मसंद भाई कल उनके आँगन में बैठ कर बोल रहा था। यही समस्याएँ उन्हें भी परेशान कर रही थीं। यही मुद्दे बार-बार उनके सामने आकर खड़े हो जाते थे। उन्हें घूरने लगते थे, जिन मुद्दों का वह ज़िक्र कर रहे थे।

माता गंगा जी चुपचाप सारी बातें सुनती रहीं। फिर जब भाई बुड्ढा जी ख़ामोश हुए तो माता जी ने उन्हें याद कराया—भाई साहब आपको याद होगा कि जब मैं आप से आशीर्वाद के लिए हाज़िर हुई थी तो आप भजन कर रहे थे। एक प्याज़ को मुक्का मारके आपने कुचल दिया था और मुझसे कहा था—"जैसा मैंने मुक्का मार कर इस प्याज़ को तोड़ा है तुम्हारे यहाँ भी एक ऐसा ही सूरमा होगा जो बैरियों को कुचल देगा, उनके सर फोड़ देगा, वही तो........................"

यह सुनकर भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी के मन के कपाट जैसे खुल गए हों। सारी शंकाएं दूर हो गई थीं। गद्-गद् हुए दोनों गुरु सिक्ख माता जी का आशीर्वाद लेकर वहाँ से चले आए। वही सूरमा तो गुरु हरिगोविंद जी थे।

(7)

सुमन उन 52 संत-सिपाहियों में से था जो हरिमंदर की सुरक्षा के लिए विधिपूर्वक गुरु महाराज द्वारा तैनात किए गए थे। हरेक के पास अपना घोड़ा था। घोड़े की देखभाल उसकी निजी ज़िम्मेदारी थी। जब गुरु महाराज शिकार के लिए निकलते तो इनमें से अकसर लोग उनके अंग-संग रहते थे, कुछ ज़्यादा-कुछ कम।

पिछली बार शिकार की मुहिम पर पयंदा भी उनके साथ जुड़ गया था,

सुमन के साथ हो लिया था। गुरु महाराज का चहेता था इसलिए उसे कोई कुछ नहीं कहता था। गुरु महाराज घोड़े से उतरते तो वह आगे बढ़कर घोड़े की लगाम पकड़ लेता। घोड़े को पुचकारने लगता, तीर की तरह तेज़ दौड़ता था, देखते-देखते हवा में उड़ने लगता था। शिकारी कुत्तों से पहले ही गिरे हुए शिकार को हथिया लेता चाहे झाड़ियों में हो, चाहे खाई में हो, चाहे खुले मैदान में हो, कई बार ऐसा भी होता, गुरु महाराज मुर्ग़ाबी को गिराते तों उसके धरती पर गिरने से पहले पयंदा भाग कर उसे हाथ में दबोच लेता। गुरु महाराज के शिकारी कुत्ते अपने रखवालों से भी ज़्यादा पयंदा ख़ान से हिले हुए थे। उसके पीछे-पीछे घूमते रहते। गुरु महाराज के बाज़ की ओर पयंदा ललचाई नज़रों से देखता रहता लेकिन बाज़ कभी उसके हाथ नहीं आता था, सुमन हमेशा उससे छेड़ख़ानी करता, "तू अभी बच्चा है तुझे दो साल अभी और रुकना पड़ेगा।" पयंदे को इसकी परवाह नहीं थी गुरु महाराज का लाडला था, वे शिकार पर जाते तो उनके सारे निज़ी काम करता। गुर हरिगोविंद उसे फल और मिठाईयाँ बख़्शते। उसकी तरबियत का ख़ास ख़्याल रखते। अपने सामने उससे कुश्तियाँ कराते। जीतने पर उसे इनाम देते। अपने हाथ से उन्होंने उसे गतका चलाना सिखाया था, नेज़े बाज़ी में वह निपुण हो गया था। तिरंदाज़ी में तो कोई बिरला ही उसका मुक़ाबला कर सकता था। निडर इतना किं एक बार ठाठे मारती नदी में कूद पड़ा जबकि उसको तैरना भी नहीं आता था। मुश्किल से डूबते-डूबते बचा। इसके बाद उसने तैरना सीखा जब तक तैरने में माहिर नहीं हो गया वह पानी से बाहर नहीं निकलता था। जो काम शुरु करता पूरी जान लगा देता। दिन प्रति दिन बदलता जा रहा था। हट्टा-कट्टा जवान निकल रहा था। झम-झम करता मुँह-माथा उसकी तरफ़ देखने पर आँखें धुँधिया जाती थीं। गुरु महाराज का आदेश था कि पयंदा जितना दूध चाहे पीए जितने अण्डे-माँस खाना चाहे खाए, उसे कोई रोक टोक नहीं थी। गुरु महाराज बार-बार अपने साथियों को सुनाकर कहते कि पयंदा ख़ान को ऐसा सूरमा बनाना है कि उसके चेहरे की तेज को कोई बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। यह मेरी फ़ौज का सिपहसालार बनेगा। उनके यहाँ आकर ठहरी हुई शक्ति इन बातों को सुनकर हैरान होती रहती। उसने जान बूझकर बरकते की हरकत के बारे में किसी से ज़िक्र नहीं किया था न ही उसने किसी को बताया था कि बरकते कैसे आजकल हवालात में सड़ रही थी। उसने अपने जुर्म का इक़बाल कर लिया था और

फिर कोई कारण नहीं था कि उसे फाँसी न दी जाए। यह सोचकर, शक्ति जितने दिन अमृतसर रही, पयंदे को बार-बार लाड करती रहती। एक बहादुर माँ का बेटा था। शेरनी की तरह अपने इरादे की वह पक्की थी और इसी तरह का सूरमा उसका बेटा निकल रहा था। जैसे माँ ने गुरु महाराज की हत्या का बिना किसी को बताए बदला लिया था। शक्ति को यह सोचकर धीरज बँधता कि बरकते की संतान गुरु महाराज की सेवा में लग गई थी। इससे बढ़कर माँ के लिए ख़ुशी की क्या बात हो सकती थी। शक्ति सोचती थी कि उसके लाहौर लौटने तक कोई अप्रत्याशित बात न हो गई हो तो वह किसी न किसी तरह बरकते तक यह सन्देश ज़रूर पहुँचा देगी। उसके अंतिम सांस आसानी से निकलेंगे।

उस दिन शिकार से लौट कर पयंदा शक्ति के पास बैठकर उसे कल के शिकार की व्यथा सुना रहा था..........फलां गाँव वालों ने गुरु महाराज के आगे फ़रयाद की कि पड़ोस के जंगल में एक चीता था जिसके मुँह को इंसान का ख़ून लग गया था। बूढ़ा होने के कारण जंगली शिकार तो उसके हाथ आता नहीं था, न कोई हिरण न कोई ख़रगोश। पहले वह जंगल में चरने के लिए गए मवेशियों की हत्या कर लेता था। जब से चरवाहे चौकन्ने रहने लगे तो उसने सुबह-शाम गाँव में आना शुरू कर दिया। जहाँ कहीं कोई अकेला-दुकेला बच्चा या बूढ़ा उसके हाथ लगता, हमला करके उसे जबड़े में पकड़ कर जंगल में ले गया। गुरु महाराज ने सुना तो अपने साथियों और गाँव वालों को इकट्ठा करके पहले तो जंगल में डाका ड़लवाया। हू-हा करते, ढोल बजाते, पटाख़े छोड़ते लोग जंगल के भीतर घुसते गए, लेकिन चालाक चीता अपनी मांद में छुपा रहा, शाम हो गई तब भी हाथ नहीं आया। अब गुरु महाराज ने फ़ैसला किया कि वे पानी के एक छप्पड़ के पास शीशम के एक पेड़ पर सारी रात बैठेंगे। चीता पानी पीने ज़रूर आएगा। पहले भी वह वहीं पानी पीने आता था। उसके पैरों के निशान छप्पड़ के पास कीचड़ में देखे जा सकते थे। पयंदा ख़ान की विनती सुनकर गुरु महाराज इसलिए राज़ी हो गए कि उनके कुछ और साथियों के साथ पयंदा ख़ान भी साथ के पेड़ों में छिपकर शिकार की राह देख सकता था।

सब लोग दम साधे बैठे थे। उधर आसमान पर चाँद निकला इधर जंगली जानवरों ने पानी पीने के लिए छप्पड़ पर आना शुरू कर दिया। लोमड़ गीदड़, हीरण साही आ रहे थे पर चीते की कोई ख़बर नहीं थी। गुरु

महाराज का हुक्म था कि बूढ़े चीते के सिवा किसी और जंगली जानवर से कुछ न कहा जाए।

इसी वक़्त एक मोर ने पुकारना शुरू कर दिया। इस पुकार पर जंगल के और पंछियों ने भी चीख़-पुकार शुरू कर दिया। छोटे-छोटे जंगली जानवर इधर-उधर छिपने लगे। गुरु महाराज सर्तक हो गए थे। यह निशानी थी कि चीता पानी पीने आ रहा था। बात बिल्कुल सच निकली, सामने की बड़ी झाड़ी के पीछे से बूढ़ा खुर्राट चीता निकला। एक तो उसकी उम्र ज़्यादा हो गई थी दूसरे वो एक टांग को दबाकर चल रहा था। उसके आदम ख़ोर बनने का यही कारण था। वह भाग कर शिकार नहीं कर सकता था। इधर चीते ने पानी पीने के लिए गर्दन झुकाकर पानी छुआ, उधर गुरु महाराज का तीर उसकी गर्दन में जा चुभा। एक तीर से बछड़े जैसा भारी चीता वहीं के वहीं ढेर हो गया।

चूँकि मैं शीशम की निचली टहनी पर बैठा हुआ था मैं छलांग मार कर पेड़ से उतरा और दौड़ कर चीते की तरफ़ बढ़ा। मेरे हाथ में बस एक नेज़ा था और कुछ भी नहीं। सब मुझे मना कर रहे थे। पर मैं सुनी-अनसुनी कर रहा था। चीता सामने झाड़ी के पास था। अभी मैं उससे चार क़दम ही दूर था कि दम तोड़ रहा ज़ख्मी चीता एक दम हरकत में आ गया और उछल कर मेरी तरफ़ झपटा। पेड़ पर बैठे सब लोग चीख़े। लेकिन इतने में मेरा नेज़ा चीते के खुले जबड़े को चीरता हुआ उसकी गर्दन तक पहुँच चुका था फिर चीता औंधा जा गिरा। अब वह नहीं हिल सका। मैंने अपने नेज़े को पहले की तरह दबाए रखा जैसे उसको बिंध कर रखना हो। फिर पेड़ से उतरकर सब लोग छपड़ के नज़दीक आ गए। लेकिन मैंने अपना नेज़ा नहीं छोड़ा जब तक चीता ठण्डा होना नहीं शुरू हो गया। फिर तो सबने जैसे मुझे सर पर ही उठा लिया हो। गुरु महाराज ने कई बार मुझे थपथपाकर शाहबासी दी। मेरी पीठ आपको फूली हुई नहीं लग रही मुझे तो लगता है कि जैसे फूल सी हल्की हो गई हो।

पयंदे के बारे में सुमन की राय कोई अच्छी नहीं थी। "बहुत बोलता है", उसे शिकायत थी। चूँकि सुमन की राय उसके बारे में अच्छी नहीं थी, वीरां भी उसे मुँह लगाने को राज़ी नहीं थी, "शेखियें बघारता है।" अक्सर उसकी निंदा करती रहती। पयंदे की जितनी बुराई की जाती, सुंदरी और भी ज़्यादा उसका ख़्याल रखती। हमेशा अमन से यही कहती, "बरकते ने बड़े भरोसे से

अपने बेटे को हमारे पास भेजा है, यह हमारे परिवार का एक सदस्य है।"

अमन अपनी बीवी के साथ सहमत था। लेकिन सुमन और वीरां उसके बारे में अपनी राय नहीं बदल सके थे।

पयंदा ख़ान में गुरु महाराज को एक जानबाज़ फ़ौजी बनने की संभावनाएं दिखलायी देती थीं। वे उसे किसी न किसी तरह अपने साथ ही लगाए रखते थे। कुछ दिनों बाद जंगल में शिकार के लिए निकले तो उन्हें चीते के दो बच्चे एक मांद के बाहर झाड़ी में छिपे हुए मिल गए। शिकारी उठाकर उन्हें अपने साथ ले आए। गुरु महाराज ने पयंदा ख़ान को यह ज़िम्मेदारी सौंपी कि वह इन चीतों के बच्चों को पाले और सधाए। पयंदा ख़ान को जैसे एक खेल मिल गया हो। चीते के बच्चों को कभी दूध पिलाता तो कभी माँस की बोटियाँ खिलाता। वक़्त बीतने पर वह बच्चे बड़े हो गए और गुरु महाराज के साथ शिकार के लिए जंगल में ले जाए जाने लगे। उनकी मदद से शिकार खेला जाता था। जहाँ शिकारी घात लगा कर बैठते चीते के बच्चे शिकार को घेरकर वहीं ले आते। पालतू चीते जंगली जानवरों का शिकार बहुत अच्छा करते थे लेकिन मजाल है कि किसी इंसान को कोई नुक़्सान पहुँचा जाएँ।

(8)

आजकल हरिमंदर के सामने बनाए गए चबूतरे की ओर ज़्यादा ध्यान दिया जा रहा था। चबूतरा पहले एक गज़, फिर दो गज़, फिर तीन गज़, अब चार गज़ ऊँचा हो गया था। चबूतरे पर चढ़ने के लिए एक तरफ़ सीढ़ियाँ बनाई गयीं। छोटे आकार की नानकशाही ईंटों को विशेष तौर पर पकाकर लाया गया। फिर उनके ऊपर संगमरमर चढ़ाया गया। सफ़ेद धूपिया, रेशम जैसा चमकता हुआ संगमरमर हर समय धोया-धाया लगता था, इसके ऊपर मख़मली गद्दे बिछाए गए। गाव-तकिये रखे गए। सुबह-शाम गुरु महाराज यहाँ विराजमान होते।

कलगी को तो वे पहले से ही दस्तार में सजाते थे। उनका अलग झण्डा था। केसरिया रंग का। देग़-तेग़ फ़तह का चिन्ह। बहुत बड़ा नगाड़ा बनवाया था। जब तख़्त पर बैठना होता तो नगाड़े पर चोट मारी जाती। सार ठाठ राज दरबार जैसा था। हरिमंदर आध्यात्मिक उन्नति के लिए था। ईश्वर भक्ति आत्मिक शांति के अभिलाषी वहाँ हाज़िर होते। अकाल तख़्त समाजिक और राजनैतिक मामलों के निपटारे का स्थान था। गुरु महाराज सच्चे पादशाह

थे, ज़रूरतमंदों की समस्याएँ सुनते और उनका समाधान करते।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने अकाल तख़्त पर छत्र लगवाना भी शुरू कर दिया। इतना शानदार छत्र बनवाया कि उसे देखकर चाहे मुग़ल दरबार के मुँह में भी पानी आ जाता। जब तक गुरु महाराज तख़्त पर विराजमान रहते, पीछे से कोई न कोई सेवक चंवर ज़रूर डुला रहा होता। धीरे-धीरे लोगों ने अपने मामले गुरु महाराज के सामने अपनी समस्याएँ पेश करने लगे और वे मुग़ल कचहरियों की तरह उन पर फ़ैसले देते। गुरु के सिक्ख अब सरकारी दरबार में नहीं जाते थे।

यह सब देख कर गुरु घर के वैरियों के पेट में शूल चुभते रहते। काना भगत जो दीवान चंदूमल का चचेरा भाई था एक-एक बात चंदूमल को बताता रहता था। यही ख़ारबाज़ी थी कि उसका कलाम पोथी में क्यों नहीं शामिल किया गया। चंदू की बेटी अभी भी अनब्याही बैठी थी। उसकी माँ आठों पहर कूढ़ती रहती। फिर जब लोग दीवान चंदू और उसकी पत्नी को आकर बताते कि गुरु हरिगोविंद जी किस ठाठ से रहते थे तो जैसे आग में जैसे घी पड़ जाता। कलगी सजाते थे, तख़्त पर बैठते थे। लोग चंवर झुलाते थे, उनके ऊपर छत्र लगता था।

उधर चंदू की बेटी की एक ही ज़िद थी कि अगर शादी करनी है तो गुरु हरिगोविंद जी के साथ करूँगी और किसी के साथ नहीं। जिस तरह उसकी भाभी ने प्राण त्यागे थे तब से तो वह गुरु घर के प्रति और भी दीवानी हो गई थी।

हार कर चंदू ने एक लाख रुपया देकर अपने पुरोहितों को फिर अमृतसर भेजा। गुरु महाराज ने उन्हें मुँह नहीं लगाया। वह तो चंदू का नाम सुनने को भी तैयार नहीं थे। गुरु महाराज जहाँगीर से भी ज़्यादा चंदू को दोषी समझते थे। ज्यों-ज्यों उन्हें गुरु अर्जन देव जी की शहादत के विवरण मिलते, उनके लिए चंदू एक तरह से पाप का प्रतीक बनता जा रहा था। सारी साज़िश उसकी थी। उसी ने अपना दरबारी रसूख़ इस्तेमाल करके गुरु महाराज को यातनाएं दी थीं। वही उनकी हत्या के लिए ज़िम्मेवार था। उसके अपराध के लिए उसे सज़ा मिलनी बहुत ज़रूरी थी। किसी क़ीमत पर उसे क़ाबू करना होगा। बेशक वह दरबारी था। अगर ज़रूरत पड़ी तो दिल्ली दरबार तक पहुँच पैदा करनी होगी।

दिल्ली लौटने से पहले पुरोहित माता गंगा जी के दर्शनों के लिए हाज़िर

हुए। उनकी कोशिश थी कि किसी तरह माता जी की सिफ़ारिश से गुरु महाराज का मन बदला जा सके। "गुरु घर निर्भय है, निरवैर है।" वे कह रहे थे। चंदू को ईश्वर की ओर से तो सज़ा मिल चुकी है। गुरु अर्जन देव जी की शहीदी की ख़बर सुनते ही उसने प्राण त्याग दिए थे। उसकी बेटी घर में चटाई बिछाकर बैठी हुई है। उसने ज़िद पकड़ रखी है कि अगर शादी करूँगी तो गुरु हरिगोविंद जी के साथ नहीं तो सारी उम्र कँवारी रहूँगी।

"वे मानेंगे तो नहीं लेकिन मैं कोशिश करके देखती हूँ।" माता जी ने पुरोहितों को विदा किया।

और उस शाम जब गुरु हरिगोविंद जी अकेले थे, माता गंगा जी अपने लाल को समझाने लगीं, "बेटा मुझसे ज़्यादा तो यह क़हर किसी और के साथ नहीं हुआ, और मैंने ईश्वर के भाणे को मान लिया है। मैंने मुग़ल हुक्मरान और चंदू दोनों को माफ़ कर दिया है। गुरु बाबा नानक ने यही शिक्षा हमें दी है कि किसी का डर न मानो। और न ही किसी के साथ बैर रखो। तेरे पिता जानी-जान थे। दो जहान के मालिक थे। उनसे कौन सी बात भूली थी ? कौन सी बात उनकी आज्ञा से बाहर थी, अगर वह चाहते तो जो अनर्थ हुआ उससे वह रोक नहीं सकते थे ? उन्होंने ईश्वर का भाणा मीठा कर के माना। हमें भी उनकी रज़ा में राज़ी रहना चाहिए।" गुरु हरिगोविंद जी चुपचाप माता जी की बात सुनते रहे। जब वे अपनी बात कह चुकीं तो महाराज ने अपनी प्रतिक्रिया कुछ इस तरह प्रगट की...............

"गुरु बाबा नानक का बताया रास्ता एक सीधा रास्ता है जिस पर सिक्ख संगत चलती आ रही है। चलती रहेगी। गुरु नानक देव जी ने इस रास्ते की रूप रेखा खींची, गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास और फिर पूज्य गुरु बाबा रामदास जी उस राह पर चलते रहे। पांचवें गुरु नानक उस राह पर चलते हुए अपनी जान पर खेल गए। बेशक, उन्होंने भाणे को मीठा जानकर स्वीकार किया।"

पर आज सिक्ख संगत एक दोराहे पर खड़ी है, हम भाणे को मानेंगे लेकिन सच्चाई के लिए, न्याय के लिए, धर्मयुद्ध भी करेंगे। हमारी जंग साधारण लड़ाईयों जैसी नहीं होगी; यह लड़ाई केवल धर्मा लोग लड़ेंगे धर्म की रक्षा के लिए। यही सन्देश गुरु पिता जी ने लाहौर से भेजा था। गुर-गद्दी पर बैठने के समय यही शपथ हमने ली थी।

जिस दुष्ट ने झूठा इल्ज़ाम लगाकर एक महापुरुष की जान ले ली, उसे

इस पाप का दण्ड भुगतना पड़ेगा। यह सज़ा ईश्वर की ओर से दी जाएगी। हम तो केवल इसका माध्यम बनेंगे। चंदू ने जैसा घिनावना अपराध किया है उतनी ही घिनौवनी सज़ा मिलेगी। यह मेरा पक्का विश्वास है। चन्दू को अपने किए का फल पाना पड़ेगा। जिस तरह के कष्ट उन्होंने गुरु पिता जी को पहुंचाए हैं उसी तरह के कष्ट उसे भुगतने पड़ेंगे। एक स्वाभिमानी भाईचारे का यह तक़ाज़ा है। इसीलिए तो हमने ९५ तलवार मीरी की और एक तलवार पीरी की ग्रहण की है। गुरसिक्ख अब संत भी होंगे, सिपाही भी होंगे, संत-सिपाही !

"यह तो मुग़ल राज में अपना राज क़ायम करना होगा", माता गंगा जी ने सारी योजना को समझते हुए कहा।

"बेशक हलीमी राज, अगर शीश ही देना है तो अब गुरसिक्ख धर्म की रक्षा के लिए, न्याय की बेदी पर जूझते हुए क़ुर्बान हुआ करेंगे।" गुरु महाराज ने कहा, "गुरु पिता नाम पदारथ माँगते हुए यातनाएँ सहते रहे।"

"वे ईश्वर के भाणे को मान रहे थे।" माता गंगा जी ने अपने बेटे को अपना दृष्टिकोण समझाया।

"ईश्वर का भाणा यह भी हो सकता है कि बदी और अन्याय के साथ जूझा जाए।" गुरु महाराज को एक नया रास्ता दिखायी दे रहा था। "यह रास्ता गुरु पिता जी ने मेरे लिए रेखांकित किया है।"

"उन्होंने तो सारी उम्र किसी के सामने ऊँचा बोल नहीं निकाला था", माता गंगा जी बोलीं।

"हर क़ौम, हर भाईचारे की ज़िन्दगी में एक पड़ाव आता है जब उसे एक नया मोड़ मुड़ना पड़ता है।"

"बेशक बाक़ी लोग भी तो इसके लिए तैयार हों", बाबा बुड्ढा जी तो सुन्न पड़ गए हैं। भाई गुरु दास जी जैसे संशय में हैं। मसंद अपनी अलग ही बोली बोल रहे हैं। इसीलिए तो हमने इतने रास्ते के बारे में सोचा है इस रास्ते पर चलकर सारी सिक्ख संगत फिर से एकसूत में पिरोई जाएगी। एक आदेश के लिए हमें जूझना होगा। अभी हम एक भाईचारा हैं; हमें एक क़ौम बनना है। कुठाली में ढलकर एकजुट होना है। जनता का एक समूह होता है। एक लश्कर का अनुशासन होता है जो क़दम से क़दम मिलाकर उसे चलाता है। एक लक्ष्य पर पहुँचना। एक निशान जिसे प्राप्त करने के लिए सब जान पर खेलने के लिए उतावले होते हैं, हमें अपनी कौम की ताक़त का

अहसास तब होगा जब हम मुग़लों के साथ लोहा लेंगे। हम लोगों में जो छोटी-मोटी दूरियाँ हैं, रहन-सहन सोचने के तरीकों और सपनों के अंतर को दूर करने के लिए हर हाथ में. तलवार पकड़ानी होगी। "कहाँ ईश्वर का सिमरन, कहाँ तलवार की खनकार ?" माता जी सर हिला रही थीं।

जंग अपने आप में ईश्वर की कचहरी होती है जिसमें इंसाफ़ किया जाता है, हमारी आज की सभ्यता तलवार की ही तो देन है। कृष्ण ने अर्जन को तलवार उठाने के लिए कहा था। जो तलवार उठाते हैं, जंगों में जूझते हैं, उनके हृदय विशाल होते हैं, वे माफ़ कर सकते हैं, जैसे सिकंदर ने पोरस को माफ़ किया था और जैसे उसको अपना दोस्त बना लिया था।

"यह मैं कैसे मानूँ कि किसी को तलवार के घाट उतारना ईश्वर का नाम लेने के बराबर होता है।" माता जी ने अपना संशय प्रगट किया।

"मेरे सूरमे के हाथ में शमशीर होगी और होठों पर ईश्वर का नाम होगा। लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं महान आदेशों के लिए, तलवार उठाना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं होता, तलवार वही उठाते हैं जिन्होंने कोई सपना देखा होता है, जो किसी आदेश के लिए जान कुर्बान करने के लिए तैयार होते हैं।"

"तो भी अमन और दोस्ती वैर-विरोध से कहीं अच्छी उपलब्धी है।"

तर्क के लिजलिजे वाद-विवाद से एक सूरमे का दहक रहा चिंतन ऐसा लगता है जैसे लाल तपते हुए लोहे में से चिंगारियाँ फूट रही हों। जो लड़ते हैं उन्हें हार का मुँह भी देखना पड़ता है। माता गंगा जी अभी तक अपने तर्क पर क़ायम थीं।

सच की कभी हार नहीं होती। पांडव क़दम-क़दम पर कौरवों से हारते रहे, लेकिन जब सत्य के लिए हथियार उठाए तो जीत उन्होंने ही की।

प्रेम भक्ति की ख़ुशी एक तरफ़ और लड़ाई में लहू से लथपथ तलवार दूसरी तरफ़, कोई किस को चुनेगा।

"शिवालयों और मंदिरों की दहलीज़ें हमेशा लहू की बलि के लिए प्यासी रही हैं। रोम में, यूनान में, चीन में ऐसा ही होता रहा है।"

"लड़ाई संसार में सर्वनाश फैलाती है", माता जी फिर बोलीं। "लड़ाई को संसार से ख़त्म करने का उपाय लड़ाई ही है", गुरु महाराज ने फ़ैसला सुनाने के लहजे में कहा।

"तेरी तू ही जाने", यह कहते हुए माता जी उठ खड़ी हुयीं। पालतू चीतों

का जोड़ा गुरु महाराज के साथ आकर खेलने लगा था। उनके पीछे-पीछे पैंदा ख़ान आ रहा था।

(9)

कमाल की कोई खोज-ख़बर नहीं थी। जब का गोइन्दवाल गया था तब से न लौटकर कभी अमृतसर आया न ही किसी को याद किया।

अगर उसने इन लोगों को भुला दिया था तो इन लोगों ने भी इसकी खोज-ख़बर नहीं ली थी। सुंदरी को जब इस बात का अहसास होता, उसका दिल मसोस जाता। वह एक भावुक माँ थी। उसे ख़ास तौर पर अपनी बेटी वीरां पर हैरानी होती। किस तरह कमाल से चिपकी रहती थी और अब जैसे पूरी तरह सुमन की हो गई हो। कमाल के बिना एक क्षण नहीं निकालती थी और आजकल............?

कमाल भाई गुरदास जी का बस्ता उठाकर चलता था। ईश्वर भक्त था। दोनों समय हरिमंदर जाता। मजाल है कभी अपना पाठ भूल जाए। पूरा जपजी उसे याद था। भाई गुरदास जी पर जैसे जान छिड़कता था जब वो शहर में होते थे तो आठों पहर वह उनके साथ नत्थी रहता था। रात को सोने से पहले बहुत देर तक जाग कर सिमरन करता रहता था। ख़ुद सिमरन करता वीराँ को भी सिमरन की प्रेरणा देता रहता। बात-बात में भाई गुरदास जी की बाणी में से तुकों उच्चारण करता रहता।

मुरदा होइ मुरीद न गली होवणा।...............
निव चले सों गुरु प्यारा।...............
होई वड़ेवाँ जग्ग विच बीरे तन खेह नाल रलाया।

....
घण हरि बूँद सोहावणी नीवी होई अगसहूँ आवै।

....

तल्लीनता, हलीमी और नम्रता का पुतला, बेहद मृदु भाषी। जैसे मीठा शहद उसके होंठों पर घुल रहा हो, हर किसी के काम आकर ख़ुश। भाई गुरदास जी का दीवाना, उनके गुण गाते हुए उसकी ज़बान नहीं थकती थी। घर में सबसे घी-शक्कर होता रहता था। मजाल है कभी उसने बरकते को बुरा-भला कहा हो। उसका ज़िक्र आता तो ख़ामोश हो जाता। सुंदरी ने उसे पाला था। उसके साथ उसका इलाही जोड़ था। वह भी उसकी हर छोटी से छोटी ज़रूरत का ख़्याल रखती थी। उसके मन के किसी कोने में एक

बेटे की इच्छा जो सुलगती रहती थी, कमाल ने उस इच्छा को पूरा कर दिया था। कमाल की याद और सुंदरी वीरां को देख-देख कर हैरान होती रहती थी। कुछ ही दिनों में वह सुमन के साथ कैसे घुल-मिल गई थी जैसे कमाल उसे याद ही न आता हो। और सुमन जवान-जहान लड़का था, कमाल से कितना फ़र्क़ था। खेलने का शौक़ीन, घुड़सवारी का दीवाना जब से गुरु महाराज के अंगरक्षकों में भर्ती हुआ था, मालिशें कराता, डण्ड बैठकें निकालता। हर समय उसकी ज़बान पर तीर और तलवार, नेज़ा बाज़ी और शिकार का ही चर्चा रहता। गुरु प्यार माँ-बाप का बेटा, गुरु घर में बेशक उसकी श्रद्धा थी। अमृतबेला में उठता। साध-संगत में मिल बैठता, कीर्तन सुनना उसे विरसे में मिला था, लेकिन ज़्यादा मन उसका कसरत में लगता, शिकार खेलने में लगता, घुड़सवारी, कुश्ती में लगता। और तो और आजकल उसे शतरंज खेलने से भी फुर्सत नहीं मिलती थी। सुन्दरी जब भी अपने पति से उसका ज़िक्र करती तो अमन का हमेशा यही जवाब होता, "हवा ही बदल रही है।"

सचमुच लोग और के और हो रहे थे। बैसाखी वाले दिन और दूसरे तीज-त्योहारों पर कीर्तन करने वाले अकसर डफ़-सारंगी वाले होते जो खड़े होकर ऊँचे-लंबे सुर में वारें पेश करते। इन वारों में सर कटवाने वाले सूरमों के कारनामों का ज़िक्र होता, जो जान पर खेल गए थे या फिर नेज़े बाज़ी होती। दूर-दूर से घुड़ सवार आते तमाशबीन सड़क के किनारे भीड़ लगाकर घण्टों तक खड़े रहते। कुश्ती के दंगलों में अनेक अखाड़ों के पहलवान अपनी-अपनी क़िस्मत आज़माते। सम्मी नाचने वाले नट, गतका खेलने वाले जाट, झाँकियाँ दिखाने वाले बहूरूपिये; और की और रौनक़ होती। अक्सर गुरु महाराज इस तरह के मनोरंजनों में ख़ुद शामिल होते। जीतने वाले पहलवानों, नेज़े बाज़ी में अव्वल आने वाले घुड़सवारों, समाज की कुरीतियों पर हँसने वाले नटों और भाण्डो, सबसे बढ़िया वार गाने वाल डफ़-सारंगी वालों को ईनाम बाँटे जाते।

यह नहीं कि हरिमंदर या और धर्मसाला में पाठ नहीं होता था। कीर्तन नहीं होता था। सुबह शाम गुर मर्यादा पूर्वत जारी थी। पर ऐसा लगता था जैसे आजकल आम लोगों के मनोरंजन और के और हो गए हों। लोग अक्सर शिकार पर जाते। माँस-मछली का प्रयोग गुर-सिक्खों में कभी वर्जित नहीं था लेकिन ऐसा लगता था कि इन पदार्थों का सेवन आजकल अधिक लोकप्रिय

होता जा रहा था। शिकारी एक दूसरे से मुक़ाबला करके शिकार करते। किसने ज़्यादा हिरण गिराए हैं। किसने अधिक जंगली सुअर मारे हैं। किसने चीता मारा है, किसने शेर गिराया है।

लोगों ने शिकारी कुत्ते पालने शुरू कर दिए थे। हर खाते-पीते घर के आदमी के हाथ पर बाज़ बैठा हुआ दिखाई देता। अचानक वीरां की वारें सुनना अच्छा लगता था। ख़ासतौर पर दुल्हा-भट्टी की वार उसे बहुत अच्छी लगती थी। मुग्ध होकर सुनती रहती थी।

सांदलबार के भट्टी राजपूत सरदार फ़रीद की बीवी लद्धी अजीब संशय में थी। बाहर मर्दानी बैठक में बादशाह अकबर का मनसबदार बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। लद्धी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसने जो फ़ैसला करना है अभी करना होगा। उसे माँ बने मुश्किल से एक पखवाड़ा हुआ होगा। सामने पालने में सोया उसका लाल जैसे कोई सुहाना सपना देख रहा था।

बात ऐसे हुई कि अकबर बादशाह ने लाख मन्नतें मानकर लाख सिज्दे करके हाथ जोड़कर एक बेटा माँगा था। तब वली अहद पैदा हुआ था। इसी ने वक़्त आने पर हिन्दुस्तान के तख़्त पर बैठना था। बादशाह ने ख़ुश होकर इसका नाम शेख़ू रखा था। लेकिन नंजूमियों ने शहज़ादे की जन्म पत्री देखकर फ़तवा दिया कि नवजात बच्चा बड़ा होकर बेशक तख़्त के क़ाबिल होगा और तख़्त को भी सुशोभित करेगा। लेकिन अभी उसे अपनी माँ के दूध से वंचित रहना पड़ेगा। राजकुमार के लिए एक राजपूत माँ के दूध का इंतज़ाम करना पड़ेगा। जो ठीक उसी घड़ी में पैदा हुआ हो जब शहज़ादा पैदा हुआ था।

पूरे सूबे में आस-पास तलाश होने लगी और पता लगा कि ठीक उसी दिन, उसी घड़ी में, लद्धी ने एक बेटा जन्मा था इस बच्चे का नाम दुल्ला था।

लेकिन मुश्किल यह थी कि दुल्हे के बाप और दादे दोनों की लाहौर के सूबेदार ने छह महीने पहले हत्या की थी। हत्या भी ऐसी कि जिसे भुलाया नहीं जा सकता था। बाप-बेटा दोनों को तलवार के घाट उतारा गया था। फिर उनके कटे हुए सर शहर के शाहलमी दरवाज़े पर लटकाए गए थे ताकि लोगों को सबक़ मिले।

उनका क़सूर एक यह कि उन्होंने कर नहीं दिया था। और जब कर

वसूलने वाले अहलकार वहाँ आए तो उन्होंने उन्हें झिड़क कर खदेड़ दिया था। फिर जब सूबेदार के यहाँ लाहौर में उनकी पेशी हुई तो स्वाभिमानी भट्टी राजपूतों ने सूबेदार के साथ बहस छेड़ दी, तू-तू-मैं-मैं होने लगी। फिर बाप-बेटा दोनों ने अपनी तलवारें नंगी कर लीं। यह देखकर सूबेदार के अंगरक्षकों ने उन्हें फ़ौरन वहीं ख़त्म कर दिया।

इस घिनौनी वारदात को अभी छह महीने हुए थे। लद्धी सोच रही थी कि वह उस हाकिम की औलाद को कैसे अपनी छाती का दूध पिलाए जिसके राज में उसके पति और ससुर की हत्या हुई थी और अगर वह ऐसा नहीं करती तो अल्लाह जाने मुग़ल और कौन सा क़हर उस पर ढा दें। हो सकता है उसके पति की निशानी उसका लाल भी उससे छीन लें। लद्धी तो सोचती उसका बेटा दुल्ला बड़ा होकर अपने अब्बा का बदला लेगा। स्वाभिमानी राजपूत दुश्मनों के टुकड़े करके खुद भी सुख़रू होगा और अपनी माँ के कलेजे में भी ठण्डक डालेगा और इधर शहंशाह का फ़रमान था कि वह अपने लाल का दूध वली अहद के साथ सांझा करे। यह कैसे मुमकिन हो सकता था। शहंशाह का हुक्म था कि लद्धी चाहे तो महाबली के हरम में शामिल हो जाए और उसकी ऐसा करने की मर्ज़ी नहीं तो उसके लिए सांदलबार में महल बनवाया जा सकता था, वली अहद को उसके पास रहने के लिए वहाँ भेज दिया जाएगा। लेकिन शहज़ादे को उसे दूध पिलाना पड़ेगा जैसे कोई माँ अपने बच्चे को पिलाती है उसके लिए दुनिया की सारी नेमतें मुहय्या करा दी जाएंगी। सोच-सोच कर लद्धी राज़ी हो गई। आख़िर मुग़ल ने भी तो पुरानी बदमज़गी भुला दी थी। मंसबदार ख़ुद चलकर उसके पास आया था वह भी पुराना वैर भुला देगी।

लद्धी ने दायां स्तन अपने जाये के लिए रक्खा और बायां स्तन शहजादे के लिए नियत कर दिया और एक शेरनी की तरह दो मासूम बच्चों को पालने-पोसने लगी। ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े हो रहे थे उनका आपस में मेल बढ़ रहा था। हर समय मिलकर खेलते, खाते-पीते। घर की रौनक़ बनाए रखते।

चाहे दोनों के लिए अलग-अलग स्तन रखे गए थे पर लद्धी देखती दुल्ला हमेशा शेख़ू से ज़्यादा जबर रहता। कोई बात नहीं। एक तरह से वह भाई थे, एक मां का दूध पीकर बड़े हुए थे। दुल्ला और शेख़ू एक दूसरे पर जान देते थे।

जब बच्चों का दूध छूट गया तो शहज़ादा महलों में लौट गया और दूल्ले

को लद्धी ने मस्जिद के मौलवी के पास पढ़ने के लिए भेज दिया। दूल्ले का पढ़ने-लिखने में बिल्कुल मन नहीं लगता था। गुलेल पकड़कर मैनाओं, चिड़ियों और कव्वों को मार गिराता। कुछ और बड़ा हुआ तो उसने पानी भरने जा रहीं, पानी भरके आ रहीं लड़कियों को सताना शुरू कर दिया। पेड़ों के पत्ते में छिपकर ऐसा निशाना लगाता कि बेचारी लड़कियों के घड़े फूट जाते। हर रोज़ लोगों के गिले और उलाहने सुनकर लद्धी थक गई थी।

फिर एक दिन नंदी नाम की एक ब्राहमन लड़की जिसका घड़ा उसने फोड़ा था दुल्ले को पकड़कर ताने देने लगी, "अगर तू इतना ही पाटेख़ान है तो जाकर अपने पूर्वजों का बदला क्यों नहीं लेता, मुग़लों ने तेरे बाप और दादे के टुकड़े-टुकड़े करके भरे बाज़ार में उनके सर टांगे थे।"

दूल्ले ने सुना तो उसके चारों कपड़े में आग लग गई। उसका ख़ून लगने पड़ा उन्हीं क़दमों से वह सीधा घर गया और अपनी मां से इस राज़ के बारे में पूछताछ करने लगा जो उसने अपने बेटे से इतने दिन छुपा कर रखा था।

जब उसने बहुत ज़िद की तो लद्धी ने उसे सारी व्यथा सच-सच बता दी और फिर वह दुल्ले को पकड़कर अपनी हवेली के तहख़ाने में ले गई जहाँ उसके बाप और दादे के हथियार, तलवारें और ढालें, नेज़े और बरछे उसने संभाल कर रखे थे। दुल्ले को लग रहा था जैसे एक-एक शस्त्र लहू का प्यासा हो। उसने अपने अब्बा की शमशीर को देखा, अपने दादा के नेज़े को उठाकर माथे से लगाया और बाहर निकल कर ख़ानदानी नगाड़े पर चोट मारी।

नगाड़े की चोट बग़ावत का एलान थी। उस दिन से दुल्ले ने सांदलबार के जवान-जहान लड़कों को अपने पीछे लगा लिया। घुड़सवारी करते, शिकार खेलते, अहंकारी अमीर साहूकारों को लूटते और लूट का धन ग़रीब-ग़ुर्बे में बांटते रहते।

जब दुल्ले के साथ काफ़ी बड़ी फ़ौज इकट्ठी हो गई तो सबसे पहले उसने अपने मामे के गाँव पर हमला किया। जब मुग़लों ने उसके बाप और दादा का इस तरह क़त्ल किया था तो उसका मामा उनकी मदद के लिए क्यों नहीं आगे आया था ? अपने परिवार का यह निरादर उसने कैसे बर्दाश्त कर लिया था ?

दुल्ला और उसके साथियों ने कई दिनों से कर देना बंद कर दिया था। बल्कि अगर कोई सौदागर सांदलबार से निकलता उस वक़्त वे अपनी ओर

से लगाया कर वसूल करते। यही नहीं एक बार तो एक सरकारी दस्ता उनके क़ाबू आ गया था और उन्होंने लाहौर से आगरे ले जाया जा रहा सारा खज़ाना लूट लिया।

दुल्ला भट्टी की हरकतों की शिकायत सरकारी दरबार में होती रहती थी, लेकिन सब लोग इन शिकायतों को सुना-अनसुना कर देते थे। आख़िर शेख़ू बाबा का हमशीर था। जब इस फ़ितूर की तो लाहौर के सूबेदार ने एक जासूस भेजा ताकि वह दुल्ले भट्टी की हरकतों का आँखों देखा कच्चा चिट्ठा लाहौर दरबार को पहुँचाए।

दुल्ले को जब इस बात का पता चला तो उसने सरकारी जासूस को पकड़कर उसका सर मुंडवा दिया और उसे धक्के मारकर सांदलबार से खदेड़ दिया। अब और कोई चारा नहीं था। निज़ामुद्दीन नाम के एक सिपहसालार को सांदलबार पर चढ़ाई करने के लिए कहा गया। निज़ामुद्दीन सांदलबार में छावनी डाल कर बैठ गया और दुल्ला भट्टी के लोगों पर नज़र रखने लगा।

सांदलबार के जवान-जहान लड़कों के अलावा सांदलबार की लड़कियाँ भी दुल्ला भट्टी की दीवानी थीं। इनमें से कई लड़कियों को दहेज़ देकर उनकी शादी करवाई थी, कई उसकी क़हरों की जवानी पर कुर्बान थीं।

सुंदरी नाम की उसकी एक प्रशंसक ग्वालिन का भेस बनाकर निज़ामुद्दीन के लश्कर में गाने लगी और उसने लौट कर ख़बर दी कि मुग़लों की फ़ौज दुल्ला भट्टी को गिरफ़्तार करना चाहती थी। दुल्ले ने सुना तो उल्टा निज़ामुद्दीन के लश्कर पर हमला कर दिया। उसकी मां बार-बार उसे मना करती रही लेकिन उसने उसकी एक नहीं सुनी।

लड़ाई कई दिनों तक होती रही। जब मुग़ल लश्कर के पैर उखड़ने लगे तो शेख़ू बाबा ख़ुद कुमुक लेकर निज़ामुद्दीन की मदद के लिए तैयार हो गया। लेकिन दुल्ला किसी के क़ाबू में नहीं आ रहा था। एक ही ज़िद कि वह अपने बाप-दादा का बदला लेकर रहेगा।

आख़िर यह फ़ैसला हुआ कि दुल्ला भट्टी और शेख़ू आपस में लड़कर फ़ैसला कर लें। बेगुनाह फ़ौजों को मरवाने का कोई फ़ायदा नहीं था। लद्धी को जब पता चला तो वह कभी दुल्ले के, कभी शेख़ू के सामने हाथ जोड़ती। दोनों को उसने अपनी छाती से दूध पिलाया था। दोनों उसके बेटे थे। वे कैसे उनको लड़ता देख सकती थी ?

पर बेचारी लद्धी की कोई सुनवाई नहीं हुई। आख़िर दुल्ला और शेख़ू आपस में लड़ने लगे। जब दुल्ले का पलड़ा भारी होता तो लद्धी सज्दे में गिरकर शेख़ू के लिए दुआ माँगती और शेख़ू जब उसके बेटे पर हावी हो जाता, बेचारी माँ दुल्ले के लिए हाथ जोड़ती। ऐसा बार-बार होता रहा। दोनों सूरमे कभी इधर तो कभी उधर जूझते रहे। आख़िर जब शेख़ू थका-थका, हारा मालूम होने लगा तो यह देखकर मुग़ल फ़ौज के सिपाही दुल्ले पर टूट पड़े और अगले क्षण उस सूरमे के सर को सर से अलग कर दिया।

उस दिन जब वीरां दुल्ला भट्टी की वार सुनकर आई तो वह बार-बार सुमन को शेख़ू कहकर बुला रही थी। "पर तेरा दुल्ला कौन है ?" सुमन ने वीरां को छेड़ते हुए कहा।

दुल्ला तो कब का गोइन्दवाल चला गया है। वीरां ने जवाब दिया। रसोई में रांधने-पकाने में व्यस्त सुंदरी ने जब सुना तो उसे लगा जैसे उसके कलेजे में कतार चुभ गई हो। जैसे मक्खन में से बाल निकाला जाता है उसी तरह इस लड़के और लड़की ने कमाल को अलग कर दिया था।

(10)

संक्रांति की सुबह थी। सुंदरी और अमन अमृत वेला से हरिमंदर साहब दर्शनों के लिए आए हुए थे। पहले सुखमनी साहब का पाठ हुआ। फिर शब्द-कीर्तन रागी जत्था गा रहा था.......

दरसन पियासी दिनसु राति चित वउ अनदिनु नीत ॥
खोलि कपट गुरि मेलिया, नानक हरि संगि मीत ॥

गुरु महाराज अभी नहीं पधारे थे। ऐसा लगता था कि कीर्तन करने वाले गुरु प्यारे सारी की सारी साध-संगत की चाहत को बयान कर रहे हों, हर दिल में एक प्रतीक्षा थी। हर चेहरे पर एक तमन्ना थी। हर आँख में एक लालसा थी। बच्चे, बूढ़े, जवान-जहान लड़के-लड़कियाँ सब गुरु हरिगोविंद जी के दीवाने होते जा रहे थे। 'दरसन पियसि दिन सुर राति' रबाबी बार-बार इस तुक का उच्चारण करते तो हर सीने में हर छाती में जैसे विलाप फूट रहा हो। शायद इसलिए कि गुरु हरिगोविंद हर गुरसिक्ख की अकांक्षा का प्रतीक बनते जा रहे थे; उनकी क़हरों की जवानी, उनके मस्तक की आभा, उनकी भवों का उल्लास, उनके नयनों की शोख़ी, उनके मुखड़े का जलाल, उनके रस भीगे होंठों की शहद में डूबी मिठास, उनकी फूट रही जोबन की मस, उनका नित्य ऊँचा हो रहा क़द, उनके इस्पात जैसे कंधे, उनका चुस्त

पहनावा, रेशमी वस्त्रों को गुरसिक्ख देखते ही देखते रह जाते। जैस आँखों की प्यास बुझ न रही हो। हाथ जुड़ जाते, सर झुक जाते, हर ज़बान पर 'धनगुरु हरिगोविंद' 'धनगुरु हरिगोविंद' की ध्वनि थिरकने लग पड़ती।

पीली-पीली धूप निकल आई थी। मालूम नहीं आज गुरु महाराज ने देर क्यों कर दी थी। संगरांद के दिन आस-पास की बेहद संगत इकट्ठी थी। करतारपुर और खडूर, गोइन्दवाल और तरनतारन से गुरसिक्ख दर्शनों के लिए आए हुए थे। फिर सामने से गुरु महाराज आते हुए दिखाई दिए। आगे पाँच अंगरक्षक, उनके पीछे गुरु महाराज; पीछे अंगरक्षक और उनके पीछे हाथ जोड़े श्रद्धालु। गुरु महाराज के आगमन पर साध-संगत में खड़े होकर जयकारों के साथ अपने इष्ट का स्वागत किया। "संत गुरु हरिगोविंद जी की जय, गुरु महाराज की जय।" हरिमंदर जयकारों से गूँज रहा था। सुंदरी ने देखा, आज गुरु महाराज ने दायें कंधे पर कमान चढ़ाया हुआ था पीठ के पीछे तरकश था। कितने प्यारे लग रहे थे। जैसे संसार के उद्धार के लिए कोई फ़रिश आकाश से उतरा हो। साध-संगत भी गुरु साहब का तीर-तरकश देखकर उत्साहित हुई। बार बार लोग जयकारे बोलकर न थकते थे न हारते थे। फिर गुरु महाराज ने अपने आसन से हाथ जोड़ कर संगत का आदर स्वीकार किया और सब से बैठने के लिए इशारा किया।

सब अपने-अपने स्थान पर बैठ रहे थे, इतने में सुंदरी ने देखा कि भाई बन्नो संगत में से उठ कर तेज़ी से बाहर जा रहा था। उसके चेहरे से लगता जैसे ख़फ़ा हो। नथुने चढ़े हुए गाल तमतमा रहे। क्रोध की साक्षात मूर्ति। कुछ बुड़-बुड़ा रहा था। होंठों में से झाग निकल रही थी। इसे क्या हो गया है ?

फिर सुंदरी को याद आया कि गुरु महाराज का नया पहरावा देखकर वह चिढ़ गया होगा। अमन ने सुंदरी को भाई-बन्नो की गुरु महाराज के मीरी के स्वरूप से असहमत होने से परिचित करवा रक्खा था। अमन ने सुंदरी से एक बार भाई बन्नो के बारे में बताया था, "बड़ा ग़लत आदमी है, अपने आपको अफ़लातून समझता है। इसे घमण्ड इस बात का है कि यह गुरु अर्जन देव जी के निकटवर्तियों में से है, लेकिन किसी को इसकी करतूत का नहीं पता। इसने सत्गुरु से छिपकर पोथी की नक़ल ही नहीं करवाई बल्कि उसमें कुछ और शब्द भी जोड़ लिए हैं। यह पाप है-महापाप। अपने इष्ट से द्रोह करने वाला नरक का भागी होता है।"

सुंदरी के कानों में अमन के यह बोल गूँज रहे थे कि उसने देखा कि

सामने मर्दों की पंगत में से उठ कर अमन भी भाई बन्नो के पीछे चला गया था।

" आज तो कुछ होकर रहेगा" सुन्दरी ने मन में कहा और वह सोचने लगी कि अमन को रोक कर समझायेगी कि उसे वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। जो करेगा सो भरेगा उन्हें क्या ? सुंदरी अभी गुस्से में कोई फ़ैसला नहीं कर पाई थी कि एक औरत आई उसका नाम जीवणी था। कहने लगी, "हम कल के आए हुए हैं आपको तलाश करते रहे हैं, नसीम ने आपके लिए एक ख़त दिया है।"

उधर गुरु महाराज के आगमन के बाद डफ़-सारंगी का जत्था खड़े होकर भाई गुरदास जी की रची हुई एक वार पेश कर रहा था। गोइन्दवाल वाले परिवार की ख़ैरियत बताकर जीवणी अपनी स्थान पर जा बैठी। सुंदरी ने अभी यह भी पता करना था कि अमन कहाँ गया था, कहीं भाई बन्नो के साथ न उलझ रहा हो और अभी नसीम का ख़त भी उसने पढ़ना था। ख़त मुहरबंद था। ज़रूर कोई ख़ास बात होगी।

सुंदरी संगत में से उठ कर बाहर सरोवर के किनारे एकांत स्नान पर जाकर बैठ गई और नसीम का ख़त पढ़ने लगी। नसीम का ख़त पढ़ते-पढ़ते सुंदरी के रोंगटे खड़े हो रहे थे। वही बात हुई जिसका उसे कभी-कभी शक होता था। औरत ज़ात थी इस बात का उसे बहुत पहले से एहसास हो गया था। सुंदरी सोच रही थी शायद तभी उन्हें एक दूसरे के साथ उठना-बैठना अच्छा लगता था। हँसना-खेलना अच्छा लगता था।

नसीम ने लिखा था।

"जब से गोइन्दवाल आया है, बुझा-बुझा रहता है। यह लड़का कितना चंचल होता था। कितना चुस्त, तेज़-तरंरार। अब बातों बातों में इसकी आंखें भीग जाती हैं। कई बार बात करते-करते अचानक रुक जाता है; जैसे कोई रुकावट आ गई हो, जैसे किसी की कोई और बात याद आ गई हो। हर वक़्त खोया-खोया, अपने आप में गुम-सुम। मैं तो देख-देख कर हैरान होती रहती हूँ। कई बार सोचा तुझे ख़त लिखकर पूछूं कि इस लड़के को हो क्या गया है। मुझे इस पर बहुत तरस आता है। बरकते ने इसके साथ कभी इंसाफ़ नहीं किया। लेकिन यह सोचकर मन को धीरज बंधता था कि हमारे घर में इसे हमेशा प्यार मिला है। फिर तूने तो इसे अपने बेटे की तरह पाला है। शैली की समझ में भी कुछ नहीं आता। वह इसी कोशिश में रहता है कि इसे

किसी न किसी काम में लगाए रखे। घोड़ों के व्यापार की सारी ज़िम्मेदारी इसके कंधों पर डाल दी है। इस सिलसिले में उसे बाहर भी जाना पड़ता है। कई-कई दिन दौरे में निकल जाते हैं लेकिन जब भी लौटता है तो पहले की तरह उदास-उदास लगता है। मैं इसे कई बार कह चुकी हूँ-बेटा अगर तेरा दिल यहाँ नहीं लगता तो तू बेशक अमृतसर लौट जा। पर यह भी इसे मंज़ूर नहीं। क्योंकि शैली का काम इतना फैला हुआ है। उसे कौन संभालेगा। पगला कोई उससे पूछे कि जब तू नहीं आया था तो भी तो शैली का काम काज, लेन-देन चल ही रहा था। बेशक इसके आने से शैली को सहूलत हो गई है, उसका काफ़ी काम इसने अपने ज़िम्मे ले लिया है। मैं हमेशा कोशिश करती हूँ कि किसी न किसी तरह इसका मन लगा रहे। लेकिन ऐसा लगता है जैसे किसी का कोठा गिर पड़ा हो, इसकी तसल्ली नहीं होती। कल रात आंगन में सोये-सोये वह बोल रहा था, प्रलाप कर रहा था :

"वीरो मैं तुझे कहता था कि तू इस पहाड़ी पर नहीं चढ़ सकेगी पर तू सुनती नहीं थी। एक मुग़लानी के बेटे और सुशील माता-पिता की लड़की का क्या साथ ? कोई साथ नहीं, कोई साथ नहीं, कोई साथ नहीं।"

और फिर 'कोई साथ नहीं' की मुहारनी रटते हुए वह फिर सिरहाने पर सर रखकर गहरी नींद में सो गया। मैं सामने अपनी चारपाई पर बैठी तस्बीह फेर रही थी। अल्लाह का शुक्र है कि शैली घर में नहीं था। लाहौर गया हुआ था। कमाल का प्रलाप सुनकर इसके दिल के रिसते ज़ख़्म देखकर सारी रात मेरी आँख नहीं लगी अब सुबह उठते ही मैं तुझे यह ख़त लिख रही हूँ। वीरां को ऐसा हरगिज़ नहीं करना चाहिए था। आगे आप मियां-बीवी जो मुनासिब समझो कर सकते हो। हमारा लड़का वहाँ आपके पास है उसका ख़याल रखना। वैसे तो अमृतसर गुरु की नगरी है। उसके सर पर गुरु महाराज का हाथ है।

ख़त ख़त्म करके सुंदरी तेज़ क़दमों से घर की ओर चल पड़ी। वह सोच रही थी भला यह भी कोई बात हुई। वह बेटी को समझा लेगी। इतने में उसने देखा कि बाबे की बेरी के नीचे अमन, भाई बन्नो के साथ ऊँची आवाज़ में बहस कर रहा था। एक ही सांस में बोलता जा रहा था।

"मुरदा होहि मुरीद न गली होवणा।
साबरु सिदिक़ शहीदु भरम, भऊ खोवणा।"

गुरसिक्ख को क्या लगे और गुरु महाराज के किसी काम में किन्तु क्या

लगा ? गुरु महाराज तरकश पहनकर साध-संगत में आए हैं। मैं कहता हूँ हम सब को भी कल से तीर-कमानों से लैस होकर उनके सामने हाज़िर होना चाहिए। इसे गुरसिक्खी कहते हैं। बेशक अभी तक हम संत हैं जो कुछ कल लाहौर में हमारे साथ हुआ है, अब हमें संत सिपाही बनना होगा। अगर हमें अपनी हस्ती को क़ायम रखना है, वक़्त के शहंशाह ने साफ़ शब्दों में कहा है कि मैं इस दुकान को बंद करना चाहता हूँ। क्या आप अपनी हस्ती को मिटाने के लिए तैयार हैं ?

उस दिन मैंने आप से कहा गुरु महाराज की आज्ञा के बग़ैर हमें पोथी की नक़ल तैयार नहीं करनी चाहिए। आपने हमें भी और अपने आपको भी यह कहकर तसल्ली दी 'सो हम करह जो आपि कराए' गुरु महाराज जानी-जान हैं। अगर उनकी मर्ज़ी नहीं कि पोथी की प्रतिलिपि तैयार की जाए तो वे किसी और को इसकी जिल्द बनाने के लिए लाहौर भेज देंगे। क्योंकि गुरु महाराज ने अपना इरादा नहीं बदला आप पोथी की नक़ल तैयार करने के लिए इसे उनकी सहमति समझ लो। लेकिन मैं पूछता हूँ कि पोथी में जो शब्द आपने अपनी ओर से डाले हैं वो भी क्या गुरु महाराज की आज्ञा से डाले हैं।

"मैंने कोई शब्द अपनी ओर से नहीं डाले", भाई बन्नो कहने लगे, "मेरी पोथी में तीस राग हैं, जैसे भाई गुरुदास जी की क़लम वाली प्रति (पोथी-बीड़) में हैं।"

यह सुनकर अमन के मुँह से क्रोध की झाग उठने लगी और उसने भाई बन्नो की पोथी में हरेक फ़ालतू शब्द गिनाना शुरू कर दिया।

(1) राग सोरठ में—"अऊ धू जो-जोगी गुर मेरा। इस पद का जो करै निबेरा।" गुरु महाराज का यह शब्द नहीं है।

(2) रामकली में—महला पाँचवा—'रूण झवाणा' की दो तुकों की जगह पूरे चार पद हैं।

(3) मारू राग में—"मीरा बाई का शब्द है।"

(4) सारंग में—"छाड़ि मन, हरि बिमुखन को संग" पूरा शब्द है।

अभी अमन ने अपना विवरण ख़त्म नहीं किया था कि सुंदरी घर के लिए चल पड़ी। अमन उसकी कोई बात नहीं सुनने वाला था और सुंदरी को इस बात की जल्दी थी कि किसी तरह वह घर पहुँचकर अपनी बेटी को बताए कि कमाल उससे कितना प्यार करना था और कैसे उसका प्यारा था।

कमाल जैसा सुघड़ और सुशील साथ मिल जाए तो किसी को और क्या चाहिए ? सुंदरी को लगा जैसे उसके मन की मुराद पूरी हो गई हो, जैसे उसका सपना साकार हो गया हो। उसकी एक ही बेटी थी, कमाल को घर जवाई बनाकर वे लोग सुख और शांति से अपनी आयु पूरी कर लेंगे।

मन ही मन वह इस तरह के सुहाने नज़ारे गढ़ती हुई घर पहुँची। आँगन में क़दम रखते ही उसने सामने कमरे में देखा, वीरां और सुमन, सुमन और वीरां-अचानक उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। अन्धेरे की परतें लगातार एक दूसरी की ऊपर चढ़ती जा रही थीं। अन्धेरा और चक्कर, चक्कर और अन्धेरा सुंदरी के क़दम जहाँ थे वहीं के वहीं जमकर रह गए। उसे लगा जैसे वह बर्फ़ की तरह ठण्डी हो गई हो। एक बेजान सिल।

(11)

जहाँगीर क़ाबुल, कंधार, कश्मीर और शिवालिक की पहाड़ी राजाओं से निपट चुका था। सल्तनत में कहीं भी कोई ख़ास फ़ौजी कार्रवाई नहीं हो रही थी। सियासी मामलों की ओर से निश्चित शहंशाह आजकल एक जज़्बाती उलझन में फंसा हुआ था। कई बरस हुए ग़्यास बेग नाम का एक अहलकार अकबर का एक तरह से ड्योढ़ीबरदार था। उसकी बेटी मेहरउल निसा थी। हुस्न में उसका कोई जवाब नहीं था। उसके बारे में मशहूर थ कि जब उसके अब्बा रोज़ी की तलाश में ईरान से हिन्दुस्तान आ रहे थे, तो रास्ते में इस लड़की का जन्म हुआ था। चूँकि माँ-बाप ग़रीब थे, फ़ाक़े काट रहे थे, वे बच्ची को वहीं एक पेड़ के नीचे छोड़ कर आगे निकल गए। थोड़ी दूर जाकर मियां-बीवी दोनों पछताने लगे, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उनकी सबसे पहली औलाद थी। पेड़ के पास पहुँचकर देखा कि एक सांप ने नवजात बच्ची पर अपने फन की छाया की हुई है। ग़्यास बेग की क़दमों की चाप सुनकर सांप बच्ची को छोड़कर पेड़ पर चढ़ गया। माता-पिता ने अपनी बेटी को संभाला और अपने रास्ते पर चल दिए। इस बच्ची का नाम उन्होंने मेहर-उन-निसा रखा। चाँद जैसी सुंदर जो थी।

जब वह जवान हुई तो उसके हुस्न की कहानियाँ चल पड़ीं। जहाँगीर जो उन दिनों में शहज़ादा सलीम के नाम पर जाना जाता था एक नज़र में ही मेहर-उन-निसा को दिल दे बैठा। उसका पिता अकबर कैसे मुग़ल वली अहद को एक मुलाज़िम की बेटी के साथ शादी करने की इजाज़त देता। इससे पेशतर कि मामला और बिगड़ता, अकबर ने ईरान से आए एक

अहलकार शेर अफ़ग़न के साथ लड़की का निकाह करवा दिया।

कहते हैं जहाँगीर के दिल में मेहर-उन-निसा के मुहब्बत की चिंगारी पहले की तरह सुलगती रही और वह जब तख़्त पर बैठा तो पहला काम उसने यह किया कि शेर अफ़ग़न को मरवा कर कुछ दिनों के बाद मेहर-उन-निसा को महलों में अकबर की एक विधवा बेगम की सेवा के लिए मुलाज़िम रख लिया।

आजकल जहाँगीर उस घड़ी का इंतज़ार कर रहा था कि कब मेहर-उन-निसा अपने शौहर को भूल जाए ताकि वह उसे अपनी बेगम बना ले।

उस दिन जहाँगीर अपनी सौतेली मां सलीमा बेगम के महलों में से होकर आया था। बहुत खिला-खिला लग रहा था। दरबारी जानते थे कि इसका कारण क्या हो सकता था। दीवान चंदू शाह कई दिनों से इस तरह के किसी मौके की तलाश में था। आज मौका पाकर वह शहंशाह से मुख़ातिब हुआ, "जहाँ पनाह ! अगर जान की ईमान पाऊँ तो मैं एक अर्ज़ करूँ।" जहाँगीर ने रज़ामंदी में सर हिलाया और चंदू ने भरे दरबार में गुरु हरिगोविंद जी के ख़िलाफ़ अपनी निज़ी ज़हर उगलना शुरू कर दिया........."ज़िल्ले इलाही, लाहौर से कोई बीस-बाइस कोस की दूरी पर अमृतसर नाम के नए बसाए शहर में सिक्ख संगत नाम का एक सम्प्रदाय है। हज़ूर इससे वाकिफ़ हैं। इसका गुरु हरिगोविंद आजकल कुछ ज़्यादा हह ग़स्ताख़ होता जा रहा है।"

"पहले मा बदौलत को यह बताया जाए कि दो लाख का जुर्माना जो हमने उसके पिता गुरु अर्जन पर लगाया था, उसे अदा किया गया है या नहीं। मालूम होता था कि पिछले दिन नवरोज़ की जश्नों में पी गई शराब का नशा अभी भी शहंशाह पर चढ़ा हुया था।"

"हज़ूर नहीं। कुछ राशि उसकी निजी जायदाद को ज़ब्त करके बेशक वसूल की गई है। लेकिन अब उसके बेटे का जुर्म उससे भी ज़्यादा संगीन है।"

"मां बदौलत को यह ख़बर मिल चुकी है कि उसने हरिमंदर के सामने एक चबूतरा बनवाया है उसका नाम अकाल तख़्त रखा है। इसके ऊपर वह कलगी लगाकर बैठता है। उसके सर पर सुनहरी छत्र तानी जाती और जोबदार उस पर चंवर डुलाते हैं। उसने अपना झण्डा लहराना शुरू कर

दिया है और नगाड़ा बजाकर उसके तख़्त पर बैठने का एलान किया जाता है। और कुछ।"

"ज़िल्ले इलाही, अब उसने अमृतसर में अपने महलों के नज़दीक लौहगढ़ नाम का एक क़िला बनवा लिया है। इस क़िले में सात सौ घोड़े, तीन सौ घुड़-सवार, साठ (60) तोपची और चार सौ प्यादे जिन्हें दोआबे और मालवे में से फ़र्ती किया गया है, छावनी डालकर जम गए हैं। यह उसकी फौज है, उसके सिक्ख उसे भेंट में हथियार पेश करते हैं। तलवारें और संगीने, अरबी और इराक़ी घोड़े उसके असल की ज़ीने है, हर रोज़ शिकार खेलने जाता है। धर्म और रब के नाम के साथ कोई सरोकार नहीं।"

"यही तो मा बदौलत चाहते थे। मज़हब की हर दुकानों को हम बंद करने की बातें सोच रहे। अच्छा हुआ कि वह सीधे रास्ते पर आ गया है। आप लोगों ने उसके वालिद गुरु अर्जन को तकलीफ़ें पहुँचाकर आप लोगों ने उनकी हत्या कर दी। यह मेरा इरादा हरगिज़ नहीं था। लाहौर के क़ाज़ियों और दीवान चंदू शाह ने ख़ुद मिलकर अदले जहाँगीरी पर एक ऐसा धब्बा लगाया है जो कभी नहीं मिट सकेगा।

लेकिन हज़ूर, यह शख़्स अपने आप को सच्चा पादशाह कहलवाता है। यह भी कोई बात हुई।

अच्छा-अच्छा अगर इस दरबार की यही मर्ज़ी है तो उसे मा बदौलत के सामने पेश किया जाए। मैं ख़ुद उससे मिलकर मामले का फ़ैसला करूँगा। तुम लोगों ने उसके वालिद के साथ पहले ही बड़ी ज़्यादती की है।

जब जहाँगीर का हुक्मनामा अमृतसर पहुँचा तो चारों तरफ़ एक भय छा गया। लोग सहम गए, आतंकित हो गए। गली-गली में खुसुर-फुसुर (काना-फूसी) होने लगी—जो बोलता, यही कहता यह तो होना ही था। भला कोई बात भी हुई एक धार्मिक नेता के सामने ऐसी उथल-पुथल का क्या मतलब। हम सिक्ख तो कहीं के भी नहीं रहेंगे। पहले गुरु अर्जन देव जी को इसी तरह लाहौर बुलवाया गया था और वह लौटकर नहीं आए थे। अब यह गुरु दिल्ली जाएंगे। तो रब न करे, यह भी लौटकर नहीं आएंगे।

उधर भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी भी पसो-पेश में थे। एक तरफ़ आम गुरसिक्खों की प्रतिक्रिया, दूसरी तरफ़ गुरु महाराज का अनोखा रहन-सहन, फ़र्क़ रंग-ढंग, पहले से निर्धारित, राजसी शान और राजसी संयम। भाई बुड्ढा जी कभी भाई गुरदास जी को बुला भेजते, जब इकट्ठे

होते तो दोनों में से कोई अपने मन की घुण्डी न खोलता। कभी भाई गुरदास जी, भाई बुड्ढा जी के पास चले जाते लेकिन दिल की बात किए बग़ैर लौट आते थे।

गुरु महाराज जानी-जान थे। संगत में छाये आतंक को समझते थे। यह भी जानते थे कि भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जैसे सतकार योग्य गुरसिक्खों की क्या मजबूरी थी। मुँह से कुछ नहीं बोलते थे पर भीतर-भीतर कसमसा रहे थे।

गुरु घर में बीवी दमोदरी जी आजकल चुप-चुप रहती थीं। रूँआसी-रूँआसी, न खाने में दिलचस्पी, न पहनने-सजने का शौक़। उस रात उनसे रहा नहीं गया और वे फूट पड़ीं। गुरु महाराज ने इसका कारण पूछा तो वे कहने लगीं। मुझे आपका दिल्ली जाना अच्छा नहीं लग रहा। "लेकिन शहंशाह ने बुलवा भेजा है।"

"किसी और को भेजा जा सकता है, पहले एक बार भाई गुरदास जी लाहौर गए थे जब शहंशाह अकबर को पोथी की बाणी के बारे में कोई शिकायत की गई थी।"

बेशक, पर इस मौक़े पर मेरा जाना ज़रूरी है।

पहले मुग़ल बादशाह हमारे यहाँ आते रहे हैं, हुमायूं गुरु अंगद देव जी के यहाँ हाज़िर हुआ था, अकबर अनेक बार हमारे यहाँ आया। आप गुरु नानक की गद्दी को सुशोभित कर रहे हैं। इन मुग़लों ने हमारे साथ पहले कोई कम ज़ुल्म किए हैं, गुरु पिता जी को कैसी कैसी तकलीफ़ें पहुँचायी थीं।

"इसीलिए तो मैं दिल्ली जाना चाहता हूँ। मैं शहंशाह को इन सब बातों से परिचित कराना चाहता हूँ। चंदू की करतूतों का कच्चा चिठ्ठा मुल्क के हाकिम के सामने रखना चाहता हूँ।"

"आपका मतलब है कि मुग़ल इंसाफ़ करेगा ?" मुझे शक है ? जो कुछ चंदू ने हमारे साथ किया है उसका दण्ड उसको दिलवाकर रहूँगा यह मेरा फ़र्ज़ बनता है। गुरु पिता जी को जो-जो तकलीफ़ें पहुँचायीं गयीं। उनकी ज़िम्मेवारी किसी हद तक चंदू और लाहौर के क़ाज़ियों पर है। लाहौर के मुफ्ती का हाल तो उसकी अपनी बीवी ने बिगाड़ दिया है। गुरु घर की श्रद्धालु थी और चंदू को उसकी करतूत की सज़ा हमको देनी है। चंदू की अगवाई में जो कष्ट गुरु पिता जी को पहुँचाए गए, वही कष्ट चंदू को भुगतने पड़ेंगे। यह अकाल पुरख का भाणा है।

"अकाल पुरख का भाणा मानते हुए गुरु पिता जान पर खेल गए। नहीं तो उनके बस में कौन सी बात बाहर थी।"

"वो भी ईश्वर का भाणा था। लेकिन उस भाणे को मानने की हिम्मत किसी-किसी में होती है। गुरु अर्जन देव जी जैसा, ईश्वर-भगत कभी-कभी इस संसार में आता है।"

"जो कुछ भी हो मुझे मुग़लों से बड़ा डर लगता है।"

"इस डर से ही तो मैंने सिक्ख संगत को युक्त करना है। मैं हर सिक्ख को 'निरभऊ' (निर्भय) बनाना है, इसीलिए मैंने यह दूसरी तलवार ग्रहण की है। सिक्ख न किसी को डराएंगे, न किसी का डर क़बूल करेंगे।"

"निरभऊ-निरवैर।"

"आप आजकल साध-संगत में छाया आतंक नहीं देखते।"

"मैं देखता हूँ।"

"आप भाई बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी के चेहरे पर एक प्रश्न चिन्ह नहीं देखते। जैसे वे किसी संशय में हो ? उन्हें जैसे समझ नहीं आ रही क्या करें, क्या न करें। हर आदमी एक ख़ौफ़ के परछावें में घूम रहा है।"

"मैंने हर गुरसिक्ख को इस ख़ौफ़ से मुक्त करना है। अपने इस बाहुबल के साथ।" गुरु महाराज ने अपने बाहुबल को प्रदर्शित करते हुए कहा और माता दमोदरी जी ने उनके हाथ को पकड़ कर अपनी आँखों पर रख लिया और उनकी आँख लग गई।

(12)

पास की पलंग पर दमोदरी जी सो रही थीं। पक्की नींद में अचेत। लेकिन गुरु हरिगोविंद जी की आँख नहीं लग रही थीं। वे पलंग से उठ कर सामने तख़्त पर बिछी शेर की खाल पर जाकर विराजमान हो गए और नाम जपने लगे।

'सतिनाम श्री वाहे गुरु'। सतिनाम श्री वाहे गुरु। सारी रात उन्होंने 'सतिनाम श्री वाहे गुरु' का जाप करते हुए समाधि में गुज़ार दी। अमृतवेला में जब माता दमोदरी जी की आँख खुली, वह हाथ जोड़कर गुरु महाराज को आदर देने लगीं तो उनकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गयीं। उनके सरताज की पलंग तो ख़ाली थी। बेतहाशा उनकी आँखें इधर-उधर गुरु जी को तलाशने लगीं, क्या देखती हैं कि उनकी पीठ-पीछे खिड़की के साथ बिछे दीवान पर गुरु हरिगोविंद जी अन्तर्ध्यान होकर बैठे

थे। कमरे का वो कोना अमृतवेला के आधे-अधूरे प्रकाश में चमक रहा था। उनके चेहरे से एक नूर बरस रहा था। उनके मस्तक के गिर्द सुनहरी रौशनी का एक गोला बना हुआ था। सारे कमरे में से एक भीनी-भीनी ख़ुशबू आ रही थी। दमोदरी जी के कानों में बस सतिनाम श्री वाहेगुरु की धुन सुनाई दे रही थी। उन्हें सिर्फ़ यही महसूस हो रहा था।

फिर पीछे के आंगन में किसी मुर्ग़े ने बांग दी। एक बार—दूसरी बार—तीसरी बार गुरु महाराज के रस से भीगे नयन खुल गए, जैसे कमल की बंद कलियाँ खिल जाती हैं। एक अलौकिक स्वाद में दमोदरी जी के हाथ जुड़ गए सर झुक गया। रिम-झिम, रिम-झिम की जैसी फुहार पड़ रही हो। उनका अंग-अंग सरशार हो रहा था और फिर पति-पत्नी अपने दैनिक कार्य-कलापों में जुट गए। स्नान, नित्य नेम। हरिमंदर साहब के दर्शन। कीर्तन। अरदास।

हरिमंदर में सुबह की चौकी भरके आज भाई बुड्ढा जी ने आँखें मूँद कर, सावधान खड़ी संगत के सामने अपनी अरदास को कुछ इस तरह समाप्त किया।............

"हे अकाल पुरख, हे ईश्वर, घट-घट के जाननहार वाहेगुरु जी सिक्ख संगत पर आज जो संकट आ पड़ा है, आप गुरु सिक्खों के अंग-संग रहिय्येगा। सुमति बख्शिए। हमें गुरु बाबा नानक के सीधे रास्ते पर डाले रखिएगा। वो काम कराईए जो आपको अच्छे लगें। चरणों की प्रीत, चरणों की ओट, चरणों का आसरा, बख़्शिए। हर हाल में रक्षा कीजिए। सिक्ख संगत के सर पर हमारे गुरु महाराज का कृपा भरा हाथ बना रहे। सतगुरु की छत्र छाया के नीचे गुरसिक्ख विकसित होते रहें।" सब लोग महसूस कर रहे थे कि अरदास कर रहे भाई बुड्ढा जी का स्वर जैसे भावुकता में भीगा हो। उनकी आवाज़ में एक ख़ौफ़ था। जैसे साध-संगत के अंतःकरण की पुकार हो। अरदास ख़त्म हुई तो साध-संगत के लौटने के पहले ही गुरु हरिगोविंद सिंह जी खड़े हो गए और भरे दरबार को संबोधित करने लगे......

"प्यारी साध-संगत जी, गुरु बाबा नानक की आशीषें आपको, जैसे सब भाईयों, भाईयों को मालूम हो गया होगा कि हमें मुग़ल दरबार ने दिल्ली बुलवा भेजा है। और हमने फ़ैसला किया है कि हम शहंशाह से मिलने जाएंगें। यही राय गुरु घर के श्रद्धालु वज़ीर ख़ान ने दी है जो मुग़ल बादशाह का हुक्मनामा लेकर आए हैं।"

लेकिन जब से यह पैग़ाम आया है, हम देख रहे हैं कि गुरसिक्खों में एक डर फैल गया है। कहीं हमारा भी वही हश्र न हो जो गुरु पिता, गुरु अर्जन देव जी का मुग़ल दरबार ने किया था। बेशक यह ख़तरा सच्चा है। हम मुग़ल साम्राज्य का लगाया जुर्माना नहीं देंगे, न ही पहले दिया है। यही नहीं जो अत्याचार गुरु पिता पर ढाए गए उनके लिए ज़िम्मेदार सरकारी अहलकारों को सज़ा दिलवाना भी हमारी ज़िम्मेवारी है। ईश्वर की कृपा से हम इस ज़िम्मेवारी से सुख़रू होंगे। हमारे दिल्ली जाने का सबसे बड़ा कारण यही है। वर्ना हम किसी गुरसिक्ख को प्रतिनिधि बनाकर भेज सकते थे। किसी न किसी को दिल्ली भेजा जा सकता था।

"साध-संगत जी दिल्ली दूर है। जाने में भी कई दिन रह जाएंगें इसलिए हमने फ़ैसला किया है कि हमारी अनुपस्थिति में, गुरसिक्खों की अगुवाई भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी करेंगे। भाई बुड्ढा जी आत्मिक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करेंगें और भाई गुरदास जी सामाजिक और राजनैतिक मसलों को निपटाया करेंगे। हरिमंदर में यहाँ सुबह-शाम कीर्तन ज्यों-का-त्यों होता रहेगा। संगतें भी पहले की तरह दर्शनों के लिए आती रहेंगी। निहाल होती रहेंगी। गुरु बाबा नानक की कृपा बनी रहेगी।"

"यह हमारी विनती है, यह हमारा आदेश है, गुरु बाबा सहायता करें।"

गुरु महाराज का यह एलान सुनकर संगत हक्की-बक्की रह गई। जो संशय उन्हें पहले से परेशान कर रहे थे तो और भी पक्के हो गए थे।

बिना किसी से कोई भी बात किए बग़ैर गुरु महाराज अपने घर के लिए निकल गए। साध-संगत स्तब्ध होकर हाथ जोड़े खड़ी रह गई। लोग सोच रहे थे शायद उनके घिनौने से घिनौने अंदेशे सच हो रहे थे।

"यह दिल्ली से लौटकर नहीं आएंगें।" हर मुंह में से जैसे यह पुकार एक विलाप बन कर निकल रही थी। कई पलकें सजल हो गई थीं। कई सिसकियां सुनाई दे रही थीं। अशक्त संगत की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। लोग इस तरह परेशान खड़े थे कि उन्होंने देखा भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी एक दूसरे से कोई मश्विरा करके हाथ जोड़े, गुरु महाराज के पीछे-पीछे चल पड़े।

भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी सचमुच गुरु हरिगोविंद जी के हज़ूर में बैठे अपनी शंकाओं का निवारण कर रहे थे। गुरु महाराज के आदेश की अवज्ञा करने का तो सवाल ही नहीं था, वे अपनी सोच को साफ़ कर रहे

थे ताकि साध-संगत की अगुवाई कर सकें।

गुरु महाराज ने उन्हें समझा......."आज गुरसिक्खों को शक्ति की ज़रूरत है। आत्मिक शक्ति और बाहुबल की शक्ति। बेशक यह कायनात आत्मिक शक्ति से पैदा हुई है। आत्मिक शक्ति के सहारे दुनिया वजूद में आई है। लेकिन अगर बाहुबल की शक्ति न होती तो यह सृष्टि कब से मिट गई होती। शक्तिशाली लोग उभर कर ऊपर आ जाते हैं, कमज़ोर नीचे रह जाते हैं। तेज़ चाल से चलने वाले आगे निकल जाते हैं, फिसड्डी पीछे रह जाते हैं। आज मुग़ल हम लोगों पर इसलिए राज कर रहे हैं क्योंकि वह यहाँ के निवासियों से ज़बर्दस्त निकले हैं। उन्हें पछाड़ सके हैं। कुदरत के कुछ नियम होते हैं, जिनमें आम तौर पर दख़ल नहीं दिया जाता। जो दाख़ल देता है, उसे इसकी क़ीमत चुकानी पड़ती है।"

"वो तो ठीक है लेकिन हमने अहिंसा का मार्ग अपनाया है।"

"बेशक अहिंसा के मार्ग पर वही चल सकते हैं जो शक्तिशाली हों, अहिंसा का मार्ग कमज़ोरों का मार्ग नहीं। गुरु पिता गुरु अर्जन देव जी ने अहिंसा को अपनाया, भाणे को माना जबकि वे अत्याचारी का सर्वनाश कर सकते थे। हज़रत मियां मीर लाहौर की ईंट से ईंट बजाने के लिए कह रहे थे और अहिंसा के अवतार उन्हें शांत रहने का पाठ पढ़ा रहे थे। अहिंसा तब ही अर्थ रखती है जब कोई हिंसा कर सके तो भी अहिंसा का दामन पकड़े रहे। बलहीन की अहिंसा नहीं, मजबूरी होती है। हमने सिक्ख संगत को हर मुहिम के लिए तैयार करना है, उनमें आत्म सम्मान पैदा करना है।"

"सत्गुरु इन बातों को बेहतर समझते हैं, लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि हमें हाल ही में तो अहिंसा का पाठ पढ़ाया गया है। पाँचवें पादशाह ने शहीदी का जाम पीकर हमें इस राह पर डाला है।" अब भाई गुरदास जी बोल पड़े।

"अहिंसा का रास्ता भी हमारा एक रास्ता है।" गुरु महाराज बड़े धीरज से समझा रहे थे—"और रास्ते भी तो अपनाए जा सकते हैं। किसी मंज़िल पर पहुँचने के लिए एक से अधिक रास्ते भी हो सकते हैं। आपके सामने कोई दुष्ट किसी अबला औरत या मासूम बच्चे को कष्ट पहुँचा रहा हो तो आप अहिंसा का पल्ला पकड़े रहेंगे या अत्याचारी का मुक़ाबला करके निर्दोष की रक्षा करेंगे।"

भाई गुरदास जी निरूत्तर हो गए।

"अहिंसा एक आदर्श है। हिंसा एक युक्ति है। आज अगर हमें अन्याय ग़रीबों पर अत्याचार और हाकिम के मनमानेपन का मुक़ाबला करना है, इंसाफ़ और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना है तो हो सकता है कि हिंसा एक युक्ति के तौर हमारे काम आए। अधिकार उनको दिए जाते हैं जो अधिकारों को लेना जानते हैं। अधिकारों को संभालने की शक्ति रखते हैं।"

"पूरी सिक्ख संगत में आज एक त्रास दिखाई देता है।" अब भाई बुड्ढा जी बोल रहे थे। "हर चेहरे पर एक ख़ौफ़ छाया हुआ है, क्या पता कल क्या होने वाला है।"

"अहिंसा कुछ भी हो, वो डरपोक का हथियार नहीं", गुरु महाराज उत्तेजित हो रहे थे, "हमने अपने सिक्ख श्रद्धालुओं में से ख़ौफ़ को निकालना है। क्षमा वही कर सकता है जिसमें सज़ा देने का बल हो। अहिंसा, हिंसा से अगले पड़ाव का नाम है। अहिंसा उन्हें शोभा देती है, जो हिंसा कर सकते हों। डर और अहिंसा का कोई मेल नहीं। हिंसा ताक़त का अनर्गल इस्तेमाल नहीं। ना ही हिंसा नफ़रत है। अगर बुज़दिली और हिंसा में से चुनाव करना हो, मैं हिंसा को चुनूँगा। गुरु पिता जी पर मुग़लों ने अत्याचार ढाए, यह मुग़लों की भीतरी कमज़ोरी के सूचक थे। मेरे विचार में हिंसा का संकल्प उसकी मदद करता है, जिस पर हिंसा ढाई जाए। जब मेरे सिक्ख तलवार उठाएंगें, तो मारने और मरने वाले दोनों पक्षों का उद्धार होगा, कल्याण होगा। इस तरह की हिंसा में जीतने और हारने वाले दोनों आत्म सम्मान से जी सकेंगे। गुरु पिता जी गुरु अर्जन देव जी अहिंसा के पुजारी थे। शीतल स्वभाव और शांति के पुंज थे, वे अपनी जान पर खेल गए। बिना किसी भय के जान देने की हिम्मत का नाम अहिंसा है। अगर यह नहीं तो शमशीर का इस्तेमाल करना एक धर्म है ताकि सूरमा लड़ता हुआ, मारता हुआ, खुद मर जाए। बजाय इसके कि वह आतंक में सुलगता रहे, या ख़तरे के डर से छिपता फिरे। इस तरह के लोग मानसिक तौर पर हिंसा के भागी होते हैं। मैंने अपने गुरु सिक्ख के हाथ में इसलिए शमशीर पकड़ाई है कि भय से मुक्त हो सके। हिंसा और अहिंसा विरोधी भावनाएँ नहीं, अहिंसा अपनी जगह पर है, हिंसा अपनी जगह पर। अहिंसा का प्रयोग किसी गुरु अर्जन देव जी के बस की बात है। हमें हिंसा का मुक़ाबला हिंसा के साथ करना होगा। यही कारण है कि हमें पीरी के साथ मीरी की तलवार भी ग्रहण करनी पड़ी।"

गुरु महाराज ऐसे बोल रहे थे तो भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी

दोनों एक साथ शीश झुकाकर गुरु हरिगोविंद जी के चरणों में गिर पड़े। उनके सारे संशय दूर हो गए थे।

(13)

भाई बुड्ढा जी की तसल्ली हो गई थी। तसल्ली तो भाई गुरदास जी की भी हो गई थी लेकिन वे दानिशमंद थे, उनका मन बार-बार विचलित होने लगता था। यही हाल भाई जेठा जी का था। भाई साल्लो, भाई बुड्ढा जी के साथ सहमत थे। ख़ास तौर पर इसलिए कि वज़ीर ख़ान को सुखमनी साहब का पाठ करने से जलोदर के रोग से छुटकारा मिला था, वह इस बात की ज़मानत दे रहा था कि गुरु महाराज को दिल्ली में कोई मुश्किल नहीं आएगी। बल्कि एक अवसर मिलेगा कि वे शहंशाह को चंदू की करतूत से परिचित करा सके। वज़ीर ख़ान को भरोसा था कि एक बार जहाँगीर ने अगर गुरु महाराज के दर्शन कर लिए तो उनके चेहरे का नूर, उनके मस्तक की आभा, उनके आत्मिक बल का जलाल देखकर वह उनका प्रशंसक हो जाएगा। वह हुस्न परस्त हुक्मराँ गुरु हरिगोविंद जी को मिलकर ख़ुश होगा। दोनों की कई आदतें एक सी हैं, दोनों घुड़सवारी के शौक़ीन हैं। बढ़िया से बढ़िया घोड़े की सवारी करते हैं। दोनों शिकार के शौक़ीन हैं। शिकार करते हुए कई-कई दिनों तक दूर-दूर निकल जाते हैं और ढेरों शिकार मार कर लाते हैं। जंगली सुअर, बाघ शेर और चीते उनके सामने खड़े नहीं हो सकते थे।

आख़िरकार जब गुरु महाराज दिल्ली के लिए प्रस्थान करने लगे, उनके अंगरक्षकों के दस्तों को तो साथ जाना ही था, लौहगढ़ के क़िले में तैनात कई फ़ौजी भी तैयार हो गए। लेकिन गुरु महाराज हर मंज़िल पर फ़ालतू लोगों को पीछे लौटाने के लिए राज़ी करते जा रहे थे। लौटने वाले आख़री जत्थे को गुरु महाराज ने विशेष तौर पर हिदायत की कि वे हरिमंदर की पवित्रता को बनाए रखें। हरिमंदर में कोई नशा करके नहीं आएगा। कोई कुरीति नहीं होगी। हरिमंदर सिक्ख संगत का काबा है। वहाँ सबकी मनोकामनाएँ पूरी हुआ करेंगी।

रास्ते में संगतों को निहाल करते हुए गुरु महाराज दिल्ली पहुँच गए।

सुमन अंगरक्षकों के दस्ते में था इसलिए वह गुरु महाराज के साथ आ सका था। पयंदा ख़ान को आने की इजाज़त नहीं मिल सकी थी। सधाये हुए चीते और बाज़ उसके साथ हिले हुए थे। उनकी परवरिश की ज़िम्मेदारी

उसी पर थी। उसका पीछे रहना ज़रूरी था। पयंदा ख़ान मन मसोस कर रह गया। उठते-बैठते गुरु महाराज की मिन्नतें करता रहा लेकिन उसकी सुनवाई नहीं हुई।

दिल्ली पहुँचकर पहली फ़ुर्सत में सुमन अकेला बैठा परिवार को ख़त लिख रहा था। कल कुछ सिक्ख अमृतसर लौटने वाले थे। उनके हाथ यह ख़त भेजा जा सकता था।

लिखतुम सुमन, मेरी परम प्यारी ताई सुंदरी, ताऊ अमन और वीरां वाली जी हम राज़ी ख़ुशी दिल्ली पहुँच गए हैं आपकी राज़ी-ख़ुशी गुरु महाराज से मांगता हूँ।

यहाँ हम लोगों ने यमुना नदी के किनारे एक खुले बग़ीचे में एक डेरा डाला है। एक तरफ़ मजनू का टिल्ला नाम का गुरुद्वारा है यहाँ गुरु बाबा नानक ठहरे थे। यहाँ की संगतों ने बहुत सुंदर गुरुद्वारा बनवाया हुआ है। सुबह शाम यहाँ गुरसिक्ख इकट्ठे होते हैं, कथा-कीर्तन होता है।

गुरु महाराज की अभी तक शहंशाह के साथ मुलाक़ात नहीं हुई। आज या कल में बस होने वाली है। गुरु महाराज के दर्शनों के आने की ख़बर सुनकर उनके दर्शनों के लिए लोगों का तांता लगा हुआ है। परसों एक फ़कीर आया; पूछने लगा, "आप बाबा नानक की गद्दी पर बैठे हैं लेकिन सुना है कि आपने तीन औरतों के साथ शादी की हुई है। उनके बच्चे भी होंगे ?"

गुरु महाराज ने जवाब दिया औरत ईमान है, औलाद निशान है।

फिर फ़कीर ने कहा आप इतने ठाठ से रहते हैं, लगता है जैसे आप के ऊपर जैसे धन-दौलत की वर्षा हो रही हो। आपके पास बेशुमार घोड़े और कुत्ते हैं। फ़क़ीरों को इतने आडम्बर की क्या ज़रूरत है।

गुरु महाराज ने सुना तो मुस्कुराकर कहा कि धन-दौलत गुज़ारे की चीज़ है और घोड़ा शान है। फ़कीर अपना सा मुँह लेकर शांत हो गए।

कल एक महात्मा यहाँ आया था, लोग उसे गोस्वामी कहकर बुलाते हैं। गुरु महाराज से पूछने लगा, "आप यह तलवार क्यों लिए फिरते हैं ? गुरु नानक के नाम लेवा को यह शोभा नहीं देता। अमीरी और फ़कीरी का कोई मेल नहीं।"

गुरु महाराज ने एक नज़र उस पर डालकर कहा, 'बातन फ़कीरी ज़ाहिर अमीरी।' महात्मा ने गुरु महाराज के चरण पकड़ लिए उसकी जैसे आँखें खुल गयीं।

अमृतसर से दिल्ली के रास्ते में चलने के बाद हर पड़ाव पर गुरु महाराज कई गुरसिक्खों को लौटने के लिए राज़ी करते थे। लेकिन कई ऐसे भी भाग्यवान थे, जिन्हें वह अपनी सेना में शामिल भी करते जा रहे थे। इनमें से कुछ तो मुग़ल फ़ौज से निकाले गए लोग थे। बस दो वक़्त का लंगर में भोजन और हर छह महीने के बाद एक कुर्ता और जांघिया उनकी मांग थी। सब यही कहते हैं कि यह जन्म भी सफल अगला जहान भी सफ़ल। इनमें ख़्वाजा सराय नाम का एक फ़ौजदार भी है और मार ख़ान नाम का एक सूबेदार भी है। और तो और जसलमेर का राजा राम प्रताप भी आजकल गुरु महाराज की शरण में आ बैठा है। सुबह शाम सेवा में हाज़िर रहता है अपने साथ लाए गए फ़ौजी दस्ते को गुरु महाराज ने पाँच टोलियों में बाँटा है। हर टोली का अलग सरदार है जो अपने साथियों की सिखलाई और तर्बियत की ज़िम्मेदारी भी एक साथ निभाता है। मैं प्यारा जत्थे सिंह के जत्थे में हूँ। हमारा काम हथियार इकट्ठे करना, गोला-बारूद करना और रसद पानी का प्रबंध करना है। ऐसे ही भाई जेठा जी रसाले के सरदार हैं। भाई पराणा जी को भूगोल की जानकारी है इसलिए वे इलाक़े की सूचनाएँ इकट्ठी करते हैं। रास्ते में ब्यास और सतलुज नदियों को पार करने में उनकी अगुवाई बड़ी कारगर सिद्ध हुई। लेकिन सबसे प्रमुख जत्था भाई लंगाह जी का है जो हमेशा आगे-आगे रहता है, सफ़र में भी और शिकार में भी। इस दस्ते की सुबह शाम सिखलाई होती है, कभी क़वायद, कभी घुड़सवारी, कभी नेज़ेबाज़ी, कभी तीरंदाज़ी, कभी कुछ और कभी कुछ। एक और टोली भाई बिधिचंद की निगरानी में, लुक-छिप कर हमला करने की फ़िराक़ में रहती है। कोई करे भी तो क्या। गुरु महाराज दस गुरु सिक्खों को लौटने को राज़ी करते हैं, शाम तक दस और भर्ती हो जाते हैं। उनके मुखड़े का जलाल देखकर हर आदमी गुरु महाराज का मुरीद हो जाता है। शहद की मक्खियों की तरह श्रद्धालु आते हैं, सारे रास्ते में गुरसिक्खों की क़तारें, दर्शनों के लिए टूट पड़ती रही हैं। जिन रास्तों से गुरु महाराज को गुज़रना होता है, लोग उन राहों पर आँखें बिछाए रखते हैं। शहरों में से गुज़रने के वक़्त सत्गुरु के जुलूस की शान देखने वाली होती है। क़दम-क़दम पर फूलों की वर्षा होती है। कोसों तक लोग अपने गाँव के आस-पास सड़कों को साफ़ करके रखते हैं। शरबत की छबीलें लगाते हैं। गुरु महाराज की सवारी के लिए पालकी व घोड़े पेश किए जाते हैं। आजकल गुरु महाराज को अकसर हथियार भेंट में दिए जाते

हैं। ढ़ाल और तलवार, तीर और कमान। मुग़ल फ़ौज में प्रशिक्षित तोपची हमारे साथ शामिल हो गए हैं। जब मैं यह ख़त लिख रहा था तो अमृतसर से आकर एक सज्जन ने बताया कि भाई गुरदास जी ने कोई नई वार गुरु महाराज के बारे में लिखी है। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस तरह हैं..........

धरमसाल कर बहीदा इक्कत थां न टिकै टिकाया।
पातशाह घर आंवदे, गढ़ चढ़िया पादशाह चढ़ाया।
उम्मत महल न पाँव दी, नट्ठा फिरे न डरे-डराया।
मंजि बहि संतोख दा, कुत्ते रख शिकार खिलाया।
बाणी कर, सुण गाँव दा, कत्थो न सुणै, गाव सुणाया।
सेवक पास न रक्खियन, दोखी दुष्ट आगू मुंहिलाया।

पूरी वार तो इस गुरसिक्ख को याद नहीं आ रही है, पर जो तुकें सुनाई गयी हैं। उनके आस-पास बड़ी चर्चा हो रही है। हर तम्बू में कान-फुसी होती रहती है। जहाँ भी चार गुरसिक्ख इकट्ठे होते हैं, बस यही चर्चा होती है। हर कोई परेशान है। भाई गुरदास जी ने यह क्या लिख मारा है। यह तो गुरु महाराज पर 'किन्तु' करना हुआ। यह तो सत्गुरु का निरादर है। बेशक चलने से पहले भाई गुरदास जी ने गुरु महाराज के सकुशल लौटने के लिए साध-संगत से अरदास करवाई। भाई बुड्ढा जी ने अकाल पुरूष के सामने विनती की थी कि गुरु महाराज का बाल भी बाँका न हो। पर इसका यह मतलब तो नहीं कि भाई गुरदास जी इस तरह की नुक्ताचीनी करने लगे। सत्गुरु सर्वज्ञ हैं उनसे कौन सी बात छिपी है। गुरु के हर काम को शिरोधार्य करना सिक्खों का कर्त्तव्य है।

सुना है कि किसी ने वार की यह पंक्तियाँ गुरु महाराज तक भी पहुँचा दी हैं। उन्होंने सुनकर बस यही कहा कि अमृतसर से मँगवाई जाए। भाई गुरदास जी जैसा विद्वान विचलित नहीं हो सकता।

गुरु महाराज तो सच ही कहते हैं, भाई गुरदास जी ने तो अपनी एक वार में कहा है,

'गुर गोविंद, गोविंद गुरु, हरि गोविंद सदा विगसंदा।'
गुरमुख मारग चलना खण्डेधार कार निभहंदा।

और आगे वह कहते हैं...........

सतिगुर वंशी परमहंस, गुर सिक्ख हँस-हँस निभहंदा।
प्यो दादे दे राह चलंदा।

आज अगर कमाल गोइंदवाल न गया होता तो उसे सारी हक़ीक़त की ख़बर होती। भाई गुरदास जी का वस्तावरदार होने के नाते उसे भीतर की बात ज़रूर पता होती। बाक़ी के ख़त में उसने कमाल के बारे में इधर-उधर के इशारे करते हुए जैसा वीरां वाली को चिढ़ा रहा हो। फिर उसने शहंशाह जहाँगीर की मेहर-उन-निसा के साथ मोहब्बत की प्रचलित कहानियों का ज़िक्र शुरू कर दिया। "शहंशाह ने उसे नूरजहाँ का ख़िताब दिया है", सुमन ने इस तरह से अपने ख़त को ख़त्म किया। कहते हैं कि वो बेहद ख़ूबसूरत है। ऊँची-लम्बी सरू के पौधों जैसा क़द जैसे हमारी वीरां है, और वीरां जैसे ही नैन-नक़्श। बस गोरी ज़रा ज़्यादा है। कच्चे दूध जैसा रंग। हमारी वीरां जैसी नहीं। उसका रंग तो ऐसा है जैसे सारा दिन उपलों की आँच पर काढ़ा गया पंज कल्याणी भैंस का दूध हो। केसरी रंग की आभा हो जिसमें। कहते हैं कि शहंशाह जैसे नूरजहाँ का गुलाम बन गया है। नूरजहाँ अगर दिन कहे तो दिन, वह रात कहे तो रात। जैसे हमारी वीरो सारे परिवार को नचाती रहती है, एक मिनट के लिए भी चैन नहीं लेने देती। उसका हमेशा सात गुणा बीस का सौ होता है।

बाँस के खोल में ख़त बंद करने के बाद अमृतसर जा रहे गुरु सिक्ख के हवाले करते हुए सुमन सोचने लगा उसे वीरां के बारे में इस तरह नहीं लिखना चाहिए था। लेकिन अमृतसर का यात्री तो जा ही चुका था।

(14)

उस दिन गुरु महाराज की मुलाक़ात शहंशाह के साथ होनी निश्चित की गई थी। सुबह अमृत बेला से वे अपने नितनेम में व्यस्त थे। नितनेम के बाद शाही दरबार में जाने के लिए जब वह तैयार हो रहे थे तो उन्हें बार-बार भाई गुरु दास जी की वार का ख़्याल आ रहा था। सचमुच वे एक स्थान पर टिक कर नहीं बैठते थे। सचमुच बाहर से आए यात्रियों को कई बार एक-एक दिन दो-दो दिन उनके दर्शनों के लिए रुकना पड़ता था। बेशक उन्होंने घोड़े और कुत्ते पाल रखे थे, शिकार खेलने के शौक़ीन थे, वे हर रोज़ शिकार करने जाते थे। माँस का सेवन करते थे; आस पास उनके श्रद्धालुओं को भी शिकार का चाव चढ़ा रहता। माँस-मछली से भी कोई परहेज़ नहीं रहा था। अब पिता गुरु अर्जन देव जी की तरह गुरबाणी उच्चारने का उन्हें कभी मन नहीं किया था। गुरबाणी कभी उन पर उतरी भी नहीं थी। बिना शक वह पहले गुरु महाराज के दरबार में मुग़ल बादशाह हाज़िर हुआ करते थे और

आज वह ख़ुद अमृतसर से सैंकड़ों कोस यात्रा करके शहंशाह के सामने पेश होने के लिए आए थे।

लेकिन चंदू को उसके किए की सज़ा देने का और कोई तरीक़ा नहीं था। यह तभी मुमकिन हो सकता था अगर वह जहाँगीर का विश्वास प्राप्त करके उसे चन्दू की करतूत से परिचित करा सकें और ऐसे करने का उन्होंने पक्का इरादा किया हुआ था। लेकिन अपने गुरु पिता की हत्या का वह बदला ज़रूर लेंगें। एक सपूत होने के नाते उनका यह फ़र्ज़ बनता था। बदी एक असलियत है जिसे ईसा ने माना, हज़रत मोहम्मद ने माना और बाबा गुरु नानक ने इससे इंकार किया था। गुरु हरिगोविंद जी को बदी का नाश करना था।

फिर उन्हें ख़याल आता, शायद भाई बुड्ढा जी और भाई गुर दास जी उनसे सहमत नहीं थे। अपना दृष्टिकोण पेश करने के लिए वे अनेक बार हाज़िर हुए थे। हो सकता है उनकी तसल्ली न हुई हो और गुरु जी के दृढ़ इरादे को देखकर उन्होंने सहमति प्रकट कर दी हो। अगर वे संतुष्ट होते तो भाई गुर दास इस तरह की वार क्यों लिखते ? मगर जो वार उन तक पहुँची थी वह सम्पूर्ण नहीं थी, अंतिम तुकें छूटी हुई थीं। अंतिम तुकों में ही तो भाई गुरदास अपने मन की गुथ्थी खोला करते थे, अपना मनोरथ पूरा किया करते, अपना निष्फल निकाला करते थे।

कुछ ऐसी बातें सोचकर गुरु महाराज दरबार में जाने के लिए पोशाक भी पहन रहे थे जैसे कोई शहज़ादा हो। उनका कुर्ता, उनका अंगरखा अपनी चम-चमाहर से आँखों को चुँधिया रहे थे। नीचे कच्चे रेशम के कुदरती रंग का चूड़ीदार पाजामा। कुरते और अंगरखे के नीचो नीच काश्मीरी ऊन की एक कती हुई फतूही। जिस पर सैंकड़ों हीरे और मोती जड़े हुए थे जो अंगरखे में से झांक रहे थे। गुलाबी रंग की रेशमी दस्तार सजाकर गुरु महाराज ने सोने की तहें चढ़ा हुआ दोशाला अपने कंधों पर ले लिया। कमर में कटार बाँधी। पैरों में मख़मली जूती डाली जो रेशम जैसे मुलायम रहती। नोक से लेकर ऐड़ी तक जिस पर रंग-बिरंगी रेशमी कढ़ाई की हुई थी। चलने से पहले क्षण भर के लिए उन्होंने कुछ सोचा और फिर मस्तक पर हर रोज़ की तरह कलगी लगी है। ऐसा लगा पहले उनका ऐसा करने का इरादा नहीं था।

मुग़ल दरबार में जाने के लिए तैयार होकर, गुरु महाराज ने एक बार

फिर आईने में देखा। एक नज़र अपनी छवि को देखकर सहसा उनकी आँखें छल-छलाने लग पड़ीं। उनका मुखड़ा लाल सुर्ख़ हो गया। उनके गुरु पिता को इस तरह कष्ट दिए गए थे जैसा किसी अपराधी को कष्ट दिए जाते हैं। सुलग रहे गर्म तवे पर उनको बिठाया गया, उनके कोमल शरीर पर गर्म रेत फेंकी गई। उन्हें गर्म पानी के देग़ में बैठने के लिए कहा गया। उनका पूरा का पूरा शरीर छालों से छिद गया होगा। कितनी पीड़ा हुई होगी उन्हें। पीड़ा हुई थी। यह सोचना अन्याय है कि महापुरुषों को पीड़ा नहीं होती। अगर इस सारे क्लेष से बचना होता तो वे अपनी दैवी शक्ति से इस घटना को टाल भी तो सकते थे। अपने सहयोगी मियां मीर का कहना मानकर अपने आप को इन सारी बातों से मुक्त करवा सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। वे कैसे तड़पे होंगे। कैसे उन्होंने यह सब सहा होगा और फिर कैसे उन्होंने प्राण त्यागे होंगे। ज्योति में जोत समा गई।

ऐसा सोचते हुए गुरु महाराज के मुख पर जैसे एक दृढ़ इरादा झलकने लगा। चाहे कोई भी क़ीमत भरनी पड़े वे अपने गुरु पिता के हत्यारों को सज़ा देकर रहेंगे। वे सिक्ख संगत को तैयार करेंगे कि दुबारा इस तरह का अत्याचार उन पर न हो सके। ज़्यादती करने वाले को इसका दण्ड भुगतना पड़ेगा। गुरु पिता तो ईश्वर के भाणे को मानकर चले गए थे, अब ईश्वर के भाणे में साध-संगत की मरज़ी भी शामिल होगी।

गुरु हरिगोविंद जी का दरबार में हाज़िर होना सिर्फ़ एक दिखावा था। दीवान चंदू शाह और उसके अहलकारों ने शहंशाह जहाँगीर को बताया था, उसके कान जिस तरह भरे थे, इस बात का पहले ही फ़ैसला हो चुका था कि गुरु महाराज को तुरंत गिरफ़तार कर लिया जाए और ग्वालियर के क़िले में बंद कर दिया जाए। इन सब बातों की तैयारी पूरी कर ली गई थी। "मैं इस झूठ की दुकान को हमेशा-हमेशा के लिए बंद कर दूँगा।" जहाँगीर बार-बार अपने दरबारियों को जतलाता रहता था।

गुरु महाराज जब दरबार में हाज़िर हुए शहंशाह की आँखें जैसे चौंधिया कर रह गयीं। गुरु महाराज के क़दम रखते ही जहाँगीर को लगा जैसे चारों तरफ़ एक ख़ुशबू फ़ैल गई हो। सुबह की ताज़ी हवा का जैसे एक झोंका आया हो, उसका अंग-अंग मख़्मूर हो गया। एक तरह का हल्का-हल्का एक नशा जो जाम पीकर उसे चढ़ा करता था। कुछ इस तरह की कैफ़ियत, जो पहली बार मेहर-उन-निसा की पहली झलक देख कर उसे महसूस हुई थी

और फिर हमेशा उसकी याद करके उसका अंग-अंग अलसाया रहता। उसके मन में कुछ-कुछ होने लगता। इस तरह का अहसास उसके रोम-रोम में फैल रहा था।

गुरु जी का शाही ठाठ नरेशों जैसा उनका पहरावा, उनकी कलगी, हीरे-मोतियों से जड़ी हुई। इस तरह की शान जिससे कोई शहज़ादा भी रश्क करने लगे।

और फिर वह कितने सजीले जवान थे। जैसे कोई अनबिंधा मोती हो। इस तरह का जलाल उसने कभी नहीं देखा था। उनके चमकते हुए मस्तक में से जैसे किरणें फूट रही हों। उनकी भवों का घेरा उनके हृदय की विशालता का सूचक था। इस तरह की छवि तो किसी सूरमे की होती है। उनके चमकते हुए नयनों की पलकें जैसे किसी विशाल दिमाग़ की सूचक हों, धीरे-धीरे रास्ता बनाती हुई सीने में उतरती जा रही थीं। उनकी नज़रों में कोई संकोच नहीं था कोई सहम नहीं थी, एक अकथनीय आत्म-सम्मान उनमें झलकता था। उनके गालों की आभा ऐसी थी जैसे रिम-झिम बरखा हो रही हो। मोतियों के दानों जैसे कोमल, नाज़ुक ओंठ। उनकी आवाज़ की गरज में जैसे कोई बब्बर शेर चुनौती दे रहा हो। टूट-टूट कर पड़ती जवानी का शिखर मेहनत से कमाया, सँवाराया हुआ क़द-बुत। जहाँगीर के सारे इरादे, सोची-समझी सारी दलीलें धरी की धरी रह गयीं। उसका मन तो इस नौजवान से दोस्ती करने का हो रहा था। शहंशाह की बाँहें इस हसीन मेहनमान को गले से लगाने के लिए उत्सुक हो रही थीं। वह सोचता कुछ और था उसके मुँह से दूसरी तरह के बोल निकल रहे थे।

"सुना है आप शिकार खेलने के शौकीन हैं।"

"सुना है आप को घुड़सवारी का बहुत शौक़ है।"

"सुना है आपका निशाना कभी नहीं चूकता।"

"सुना है कि आपके पास अरबी घोड़े हैं।"

"सुना है, आपने शिकार के लिए चीते पाल रखे हैं।"

"सुना है आपके बाज़ अमृतसर के आसमान पर राज करते हैं।"

अचानक जहाँगीर को ख्याल आया कि वह गुरु हरिगोविंद के साथ किस तरह की बातें कर रहा है। एक बिगड़ा हुआ नौजवान जिसे सुधारने के लिए मुग़ल शहंशाह ने उसे दिल्ली बुला भेजा था। इस तरह के बाग़ी को तो ज़्यादा से ज़्यादा सज़ा देनी होगी। ख़ुद बिगड़ा हुआ, औरों को भी ख़राब

कर रहा था। उसके पिता पर शहंशाह ने खुद दो लाख रुपए का जुर्माना किया था जिसकी अदाएगी अभी बाक़ी थी। उसे तो ग्वालियर के क़िले में क़ैद करने का तो फ़ैसला कर लिया गया था।

शहंशाह के दरबारी सुन-सुन कर हैरान हो रहे थे। अब जहाँगीर नौजवान गुरु महाराज के साथ मिलकर शिकार खेलने की योजना बना रहा था। यह दोनों तो आगरे की ओर शिकार करने जा रहे थे। शहंशाह ने अगले पखवाड़े की अपनी सारी मुलाक़ातों को रद्द कर दिया सारे और काम रोक दिए जा रहे थे। विदेशी मेहमान डी-लेट से जो मुलाक़ात तय हुई थी उसका क्या होगा ? सबसे ज़्यादा फ़िक्रमंद दिवान चंदू शाह था। यह तो बड़ा ही ग़र्क़ हो गया था। वह सोचने लगा शिकार खेलते वक़्त गुरु महाराज इसका भाण्डा फोड़ देंगे। फिर क्या बनेगा ?

अब दरबार बरख़्वास्त करके शहंशाह जहाँगीर अपने साथ उन्हें महलों की ओर ले जा रहा था, अपने घोड़े दिखाने के लिए, अपनी बंदूकें दिखाने के लिए जो उसे विदेशों से सौग़ात में मिली थीं। दरबारी ने हैरान होकर अपने मुँह में ऊँगलियाँ दबा लीं। मानो शहंशाह पर टोना कर दिया गया हो। उधर अहलकारों ने कैद करने का फ़रमान तैयार करके रखा हुआ था। बस शहंशाह के मुहर की कसर बाक़ी थी और इधर मुग़ल शहंशाह एक बाग़ी के साथ घुल-मिल रहा था। सिख धर्म की दुकानें-बातिल (झूठ की दुकान) को मिटाने और ख़त्म करने की बात कहाँ गई। किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

दीवान चंदू शाह का दिल बैठता जा रहा था। उसका सर चकरा रहा था। उसे लगता जैसे अभी वह बेहोश हो रहा हो। उधर उसके घर में एक कुँवारी लड़की बैठी थी इधर दरबार में जब उसकी करतूत का भेद खुलेगा तो शहंशाह उसके पूरे ख़ानदान को कोल्हू में पिसवा देगा। दरबार बरख़्वास्त करके जब शहंशाह आँख से ओझल हुआ तो दरबारी आपस में कुछ इस तरह की कानाफूँसी करने लगे। "लाहौर के हाकिम मुर्तज़ा ख़ान की शिकायत का क्या बना।"

"अभी अमृतसर वालों को दो लाख का जुर्माना भरना होगा।"

"मुझे तो पहले पता था कि इस क़िस्से में से कुछ नहीं निकलना।"

"बाबा नानक की गद्दी पर बैठा है, बड़ी पहुँच वाला फ़कीर था गुरु नानक।"

"एक नज़र में ही उसने ज़िल्ले इलाही को अपना मुरीद बना लिया। इसको जादू कहते हैं जो सर पर चढ़कर बोले।"

"सच्ची बात तो यह है कि नौजवान बहुत सुंदर है।" "इसे तो अपनी फ़ौज का सिपहसालार होना चाहिए।" "मैं तो शहंशाह को मश्विरा दूँगा कि इसे पंजाब का हाकिम बना दूँगा।"

"हाँ-हाँ, इसे क़ाबू करने के सर दर्द से बचने का बढ़िया तरीक़ा है।"

"पहाड़ी राजों को सीधा करके रखेगा, काबुल, कंधार की ओर से कोई हमला नहीं करेगा।" बहुत देर तक दरबारी इस तरह की बातें करते रहे। दीवान चंदू शाह का सुन-सुनकर लहू सूखता जा रहा था।

(15)

गुरु महाराज के दर्शन करके शहंशाह जहाँगीर पर सचमुच एक अजीब कैफ़ियत तारी हो गई थी। जैसे वह सहम गया हो। यह अल्लाह का डर था। उसे पहली बार अपनी हस्ती का अहसास हुआ। कायनात में उसकी क्या जगह थी ? उसे पहली बार महसूस हुआ कि वह बेशक महाबली अकबर का बेटा था, मुग़ल तख़्त को सुशोभित कर रहा था, लेकिन वह इंसान भी था, उसे अपने अस्तित्व की जुस्तजू परेशान करने लगी। चालीस बरसों से ऊपर हो चुके जहाँगीर को सत्रह बरस के जवान गुरु हरिगोविंद जी का दर्शन करके एक अजीब तरह की हीन भावना महसूस होने लगी। उसे अपना आप बहुत ही तुच्छ लगने लगा जैसे उसका मन ख़ाली हो गया हो, चारों तरफ़ सूनापन फैल गया हो।

महल के एक एकांत कोने में बैठा जहाँगीर गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान वलिअल्लाह से एक के बाद एक सवाल कर रहा था। जैसे कोई प्यासा उमड़ते-झरते ठण्डे पानी के चश्मे के किनारे खड़े हो अंजलि भर-भर कर पानी पी रहा हो। अपनी प्यास मिटा रहा हो। क्षण भर के लिए जैसे वह शहंशाह न रहकर एक ज़रूरतमंद शहरी बन गया हो। शायद इसी लिए वह दरबार बर्ख़ास्त करके आया था। पहला सवार ज़हाँगीर ने पूछा :

"यह कायनात कैसे वजूद में आई।"

गुरु महाराज ने फ़रमाया, "यह बोल पूर्वज मेरे गुरु पिता के हैं।"

ख़ाक नूरकरदं आलम दुनीआइ ॥
असमान-जिम्मी दरख़्त आब पैदायिसि खुदाई ॥

(तिलंग महला ५)

और ये बोल बाबा नानक के हैं;

साचे ते पवना भया पवनै ते जलु हुइ।
जल ते त्रिभवनु साजिआ घटि-घटि जोति समोइ।

(सिरी राग महला १)

यह सारा आडम्बर ईश्वर का बनाया है। सबसे पहले हवा बनी, हवा से पानी वजूद में आया और फिर पानी में से जीव-जन्तु, पेड़ों की उत्पत्ति हुई। पैदा की गई हर वस्तु एक ईश्वर की ज्योति है। वही नूर शहंशाह जहाँगीर में है जो उसके द्वार पर खड़े किसी दरवेश में है।

यह सुनकर बादशाह एक मुसावात का पता हुआ। ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे तख़्त से उठाकर नंगी धरती पर बिठा दिया हो। यही तो इस्लाम कहता है। बेशक इस तरफ़ उसने ध्यान नहीं दिया था। नमाज़ पढ़ते वक़्त राजा और प्रजा एक पंक्ति में खड़े होकर अल्लाह की विनती करते हैं।

अगर हर कोई एक अल्लाह का पैदा किया हुआ है तो हिन्दू और मुसलमान में क्या फ़र्क़ है। हिन्दू ईश्वर, परमेश्वर और पारब्राह्म को मानते हैं। मुस्लमान अल्लाह और रब को।

इसके जवाब में गुरु महाराज ने राग प्रभाती में भगत कबीर जी के इस शब्द का उच्चारण किया :

अवलि अलह नूर उपाइआ कुदरति के सभ बंदे॥
एक नूर ते सबु जगु उपजा कौन भले को बंधे॥
लोगा भरमि न भूलहि भाई॥
ख़ालिकु, ख़लक़, ख़लक़ में ही ख़ालिक़ु पुरि रहियो सख नाहि॥
माट्टी एक अनेक भ्रांतिकरि साजि-साजन हारे॥
ना कछु पोछ माटी के भाण्डे, न कछु पोछ कुम्हारै॥
सभ महि सच्चा एको सोयी। तिसका कीआ सबु कछु होई॥
हुकुमु पच्छानै सु एको जाने बंदा कहीऐ सोयी॥
अलहू अलखु न जाई लख्खिया गुरु गुरि गुड़ दीना मीठा।
कही कबीर मेरी संका नाट्ठी सरब निरंजनु डीठा।

जहाँगीर को जैसे अभी भी तसल्ली नहीं हुई थी, वह इस बात का साफ़-साफ़ शब्दों में जवाब चाहता था कि हिन्दू और मुसलमान में से अच्छा कौन है।

गुरु महाराज शहंशाह की ज़िद पर मुस्कुराए और उन्होंने कहा :

हिन्दू अन्ना तुरकु काणा ॥
दूहाँते ज्ञानी सयाणा ॥
हिन्दू पूजे देहुरा।
मुसलमान मसीति ॥
नामे सोयी सेविआ जह देहुरा न मसीति ॥

(भगत नामदेव)

ऐसा लगा कि शहंशाह जहाँगीर को इस बात पर विश्वास हो गया कि गुरु बाबा नानक का पंथ न्यारा था। इसी को मिटाने का उसने फ़ैसला किया था। लेकिन सामने बैठा नौजवान इतना हसीन था, इतना मनमोहना था कि जहाँगीर कुछ और सोच ही नहीं सकता था, बार-बार उसका दोस्ती भरा हाथ नौजवान की ओर बढ़ रहा था जैसे कोई चुंबक उसको खींच रही हो।

लेकिन नहीं, उसकी आत्मा जैसे फिर विद्रोह कर उठी। इस नए पंथ का उसे ख़ात्मा करना है। इसे जड़ से उखाड़ना है। इस्लाम का तभी पंजाब में बोलबाला हो सकता है। उसने तो सुन रखा था कि कई कम अक़्ल गँवार इस्लाम को छोड़कर सिक्ख धर्म को अपना रहे थे और तो और उसके अपने अहलकारों में वज़ीर ख़ान और गुंचा बेग सिक्ख गुरुओं का गुण-गान करते थकते नहीं थे। यह कुफ़्र है। अगर इनमें कोई रब्बी ताक़त होती तो इस नौजवान का अपना पिता क्यों इस तरह की तकलीफ़ें झेलता ? यह सब फ़रेब था। अंध-विश्वास था। लोगों को ग़लत रास्ते पर डाला जा रहा था। इस झूठ को समेटना होगा।

"मा बदौलत को इस बात का अफ़सोस है कि आपके अब्बा को इस तरह जान देनी पड़ी। लेकिन अगर गुरु बाबा नानक के पंथ में कोई इलाही ताक़त होती तो क्या इन बातों को टाला नहीं जा सकता था ? ख़ास तौर पर हमने तो सिर्फ़ जुर्माना किया था, जो तकलीफ़ें उन्हें पहुँचाई गयीं, वह नीचले अमले का फ़ैसला था।"

"वह फ़ैसला न शहंशाह का था न किसी और का। वह फ़ैसला ऊपर वाले का था, जिसे आप अल्लाह और हम अकालपुरख के नाम से याद करते हैं। उस भाणे को मानते हुए मेरे पिता गुरु अर्जन देव जी ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए।"

"मुझे आपकी बात समझ में नहीं आई।" जहाँगीर ने उत्सुक होकर पूछा, "इसका मतलब यह है कि आस-पास की जा रही ज़्यादतियों के लिए किसी

को क़सूरवार नहीं ठहराया जा सकता ? जो भी होता है वह किसी इलाही फ़रमान के मुताबिक़ होता है।"

बेशक, यह ज़्यादतियाँ तभी मुमकिन होती हैं जब जिन पर ज़्यादतियाँ ढ़ाई जा रही हों वे कमज़ोर होते हैं अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकते। जिस इंसान में बाहुबल होता है, उसका हक़ कोई नहीं छीन सकता है। अल्लाह में ईमान और आपके ईश्वर में नाम लेने का कोई फ़ायदा नहीं। जहाँगीर ने पूछा।

"है भी और नहीं भी। बिना सोचे समझे, 'राम', 'राम', रटने का कोई लाभ नहीं। यह तो बल्कि इंसान को मंद बुद्धि बना देता है। राम नाम जपने का फ़ायदा तभी है, अगर कोई राम जैसा बनने का यत्न करे। अल्लाह के बताए रास्ते पर चले। जैसा अल्लाह का तसव्वुर है उसी तरह का बने। राम का नाम जपने वाला अगर राम जैसा आज्ञाकारी बेटा नहीं, राम जैसा वफ़ादार पति नहीं, राम जैसा प्यारा भाई नहीं, राम जैसा सूरमा नहीं, राम जैसा मर्यादा पुरुषोतम नहीं, तो राम का जाप बेकार है।"

जहाँगीर बोला : "आप गुरु नानक की गद्दी पर बैठे हैं इसका सबूत कोई करामात करके दिखा सकते हैं।" शहंशाह जहाँगीर ने आख़िरी प्रश्न किया। उसके लहजो में अब अन्‌‌ था जैसे किसी की परीक्षा ले रहा हो।

गुरु बाबा नानक न कहा था, "इंसान खुद एक करामात है।" आपको मुझमें करामात नहीं दिखाई देती और गुरु महाराज ने आँखें भरकर जहाँगीर की अँखो में देखा। बादशाह जैसे मंत्र-मुग्ध हो गया हो। एक जादू का असर जैसे किसी ने उस पर टोना कर दिया हो। अब जहाँगीर ने हथियार फेंक दिए। उससे और कोई बात नहीं हो सकी। इस श़क्स (व्यक्ति) को देखकर वह सिहर उठा। यह देखकर गुरु महाराज ने कहा, "इंसान सचमुच अपने आप में एक करामात है। वक़्त आने पर मैं आपको इसका सबूत दूँगा।" और फिर यह मुलाक़ात मिलकर शिकार खेलने के फ़ैसले पर ख़त्म हुई।

गुरु महाराज उठ कर गए तो नूरजहाँ जो जहाँगीर को तलाश करती हुई वहाँ आई थी, जालीदार पर्दे के पीछे खड़ी सारी वार्तालाप सुन रही थी, आकर शहंशाह के पास बैठ गई।

"यह फरिश्ता सीरत आपका मंज़ूरे नज़र कौन था ?" एक बार उसे देखने के बाद उसकी छवि ने तो जैसे मुझे बाँध कर बैठा लिया हो, कोई अल्ला वाला मालूम होता है। एक नूर था उसके चेहरे पर, छलकती हुई

जवानी भँवरें जैसी काली आँखें। पंजाब का गेहुँआ रंग। हृष्ट-पुष्ट। आपने देखा, उसकी बाँहें कितनी लंबी हैं। जब जाने के लिए उठ कर खड़ा हुआ तो उसकी बाँहें उसके घुटनों से नीचे तक पहुँच रही थीं। बोलता तो ऐसा लगता जैसे कोई नग़मा गूँज रहा हो। उसकी आवाज़ जैसे चाँदी के घुँघरू छनक रहे हों।

"तौबा-तौबा बेगम, तुम तो जैसे उसे दिल दे बैठी हो।" शहंशाह ने नूरजहाँ को टोक कर कहा, "तुम्हें पता था वह कौन था ?"

"कोई भी था, ग़ैर-मामूली शख़्सियत का मालिक था।"

"यह एक बाग़ी है।"

"क्या मतलब ?"

"यह सिक्खों का छठा गुरु है। गुरु नानक की गद्दी पर बैठा है। बाबा नानक के बताए भाईचारे, मेल जोल एकता के रास्ते को छोड़कर इसने बग़ावत का रास्ता अख़्तियार कर लिया है। सेली (माला) को छोड़ कर शमशीर उठा ली है। घोड़ों की सवारी करता है, शिकार खेलता है और अपनी फ़ौज में लोगों को भर्ती कर रहा है। हमारे कई लोग भी इसकी फ़ौज में जाकर शामिल हो गए हैं।"

"लेकिन आप तो उसके साथ मिलकर शिकार खेलने का वादा कर रहे थे।"

"हाँ, मैं क्या करूँ, मेरी भी मजबूरी है, उसे देखकर, उसकी बातें सुनकर मैं उसका बुरा नहीं सोच सकता। माबदौलत ने उसे अमृतसर से दिल्ली इसलिए बुलाया था ताकि उसे ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर लिया जाए लेकिन उससे मिलकर मैंने अपना मन बदल लिया। इसके वालिद पर हमने दो लाख का जुर्माना किया था। उसने ख़ुसरे की बग़ावत में भी मदद की थी।"

"वही जिसे लाहौर के क़िले में तकलीफ़ें पहुँचाकर मौत के घाट उतारा गया था।"

"हाँ।"

"सुना है, लाहौर के क़ाज़ियों ने बड़ा क़हर ढ़ाया था। आपसे पूछे बग़ैर मनमानियाँ करते रहे।"

"उसका नतीजा अब हमें भुगतना पड़ रहा है। इस नौजवान ने अपना क़िला बना लिया है। अपनी फ़ौज इकट्ठी कर ली है। और तो और इसका

अपना तख़्त है जिस पर वह शाही शान से बैठता है। ऊपर छत्र पीछे चंवर। तुमने इसकी कलगी नहीं देखी ?"

नूरजहाँ को जैसे किसी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसे तो गुरु महाराज के शीश के गिर्द एक ज्योति पुंज दिखाई दिया था जिसे याद करके वह मदहोश हो रही थी।

(16)

यह सुनकर कि गुरु महाराज मुग़ल शहंशाह के साथ शिकार के लिए आगरे के पास के जंगल में जा रहे हैं। अमृतसर में ख़ुशी की एक लहर दौड़ गई, हर तरह के संशय दूर हो गए। गुर सिक्ख सोचने लगे जो बादशाह किसी को अपने साथ शिकार खेलने के लिए आमंत्रित कर सकता है, ज़रूर वह उन सब बातों को भूलना चाहता है, जो पहले हो चुकी हैं।

शहंशाह ने दोस्ती का हाथ बढ़ाया था और गुरु महाराज ने सहृदयता से उसे पकड़ लिया था। अमृतसर में सब यही सोच रहे थे कि वे भी मुग़ल राज से अपना वैर-विरोध भूल जाएंगे। आख़िर गुरु अर्जन देव जी को यातनाएं देने का हुक्म जहाँगीर ने नहीं दिया था। यह तो चंदू की करतूत थी। अगर गुरु महाराज अब शहंशाह का विश्वास कर सकने में कामयाब होते हैं तो चंदू को अपने किए की सज़ा भुगतनी पड़ेगी। यही तो गुरु महाराज कहते थे। कई बार उन्होंने यह इच्छा प्रगट की थी। हर सिक्ख की यही तो तमन्ना थी। चंदू को सज़ा ज़रूर देनी है। चंदू का वही हाल कराना है जो उसने गुरु अर्जन देव जी का किया था। अब हालात ने जो मोड़ लिया था लोग इस पर ख़ुश थे बहुत ख़ुश। हर कोई यही सोचता था, गुरु महाराज की जुगत कामयाब साबित हुई है। आख़िर बाबा नानक की गद्दी पर बैठे हैं।

लेकिन माता दमोदरी जी को लगता था जैसे क्षितिज पर पहले की तरह काले बादल उमड़ रहे थे। उन्हें अपने आस-पास अन्धेरा प्रतीत होता। वह सोचतीं, शायद इसलिए कि वे अपने सिरताज से बिछड़ी हुई हैं। गुरसिक्खों का खुशियाँ मनाना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। वह सोचतीं इसमें भी मुग़ल दरबार की कोई चाल छुपी हुई है।

उधर नूरजहाँ गुरु महाराज की कहानियाँ कहती थकती थी। वह भी शहंशाह के साथ शिकार के लिए तैयार हो गई। कहने लगी मैंने कभी शिकारगाह नहीं देखी। कैसे जंगली जानवरों को चारों तरफ़ से घेरा जाता है फिर उनका शिकार किया जाता है। उसने सुन रखा था कि इस तरह के

शिकार में हाथी व शेर, बाघ व चीते पर इकट्ठे निशाना बनाए जाते हैं। एक तरह से युद्ध के मैदान का नज़ारा होता है। जगह-जगह पर औंधा पड़ा शिकार सम्भाला नहीं जाता। हड़कंप मच जाता होगा।

शिकार के बारे में सोचकर नूरजहाँ आवेश में आकर बार-बार जहाँगीर को सुनाकर कहती और अगर नूरजहाँ की मर्ज़ी थी तो उसे कौन रोक सकता था। कुछ दिन के बाद ठीक उसी तरह का दृश्य था जैसा नूरजहाँ ने सुन रखा था।

घना जंगल। एक बूढ़े-पुराने बरगद पर मलका के लिए मचान बनाया गया था जहाँ से वह अपनी कनीज़ के साथ नज़ारा देख रही थी। शहंशाह जहाँगीर और गुरु हरिगोविंद अलग-अलग हाथियों पर सवार थे। जहाँगीर के हाथी के आगे-पीछे उसके मुसाहिबों के हाथी थे, घोड़े थे। सब अपने-अपने हथियारों से तैनात थे। गुरु महाराज के साथ आए अंगरक्षक घोड़ों पर सवार होकर गुरु महाराज के हाथी के साथ-साथ रहने की कोशिश कर रहे थे।

पानी की एक कुदरती झील के गिर्द, चारों तरफ़ खुला मैदान था जिसमें सिर तक ऊँची घास उगी हुई थी। खब्बल घास और सरूटा उसके पीछे जंगल था। जिसमें कई कोसों तक हर तरह के जंगली जानवर थे। इस जंगल को 'रक्ख' कहते थे। इसमें सिर्फ़ शहंशाह ही शिकार कर सकता था या उसके ख़ास मेहमान। उत्तर की ओर से एक दरिया आता था जो जंगल के दायें हाथ का चक्कर घेरता हुआ पूरब की ओर निकल जाता था।

सर्दियों के दिन। सूरज की गुन-गुनी धूप, सुहावनी सुहावनी लग रही थी। पुरवैया धीरे-धीरे चल रही थी और एक दिल को छूने वाला संगीत पैदा कर रही थी। वातावरण एकदम शांत था। बीच-बीच में किसी मोर की आवाज़ या किसी जंगली जानवर के डकारने की आवाज़ इस ख़ामोशी को तोड़ती, फिर चुप्पी छा जाती। एक भीनी-भीनी खुशगवार खुशबू थी जो ज़रदस्ती पलकों को भारी-भारी कर रही थी। अंग-अंग अलसाया हुआ लगता था।

और फिर अचानक दरिया की तरफ़ छोड़ कर दूर-दूर तक घेरा डाले बैठे लोगों की ओर से ढ़ोल पीता जाने लगा। तूतनिया बजाई जा रही थीं। हज़ारों मददगार हू-हा कर रहे थे। हरेक के हाथ में नेज़े और बरछे थे। धुआँ छोड़ती हुई, दग-दग करती मशालें थीं। ज्यों-ज्यों शोर बढ़ता, जंगल में हलचल होने लगी, हर जंगली जानवर अपनी-अपनी माँद में से निकलकर शेर

से दूर भागने की कोशिश करने लगा। लेकिन शोर तो इधर-उधर हर तरफ़ से आ रहा था। दूसरी तरफ़ भी दरिया बहता था। पिछले दिनों में हुई बरसात के कारण दरिया लबालब भरा हुआ था।

और फिर शिकार नज़र आने लगा। शिकारियों के तीर एक के बाद एक छूटते और वातावरण में आतंक पैदा कर रहे थे। लगातार तीरों की शूँ-शाँ सुनाई दे रही थी। बंदूक़ें सिर्फ़ शहंशाह और उनके हिफ़ाज़ती अहलकारों की टुकड़ी के पास थी। विशाल घुले घास के मैदान में जंगली भैंसें, नील गाय, हिरन और बारहसिंघे ढेरी हो रहे थे। हाथी और शेर, भालू और बाग़, अभी सामने नहीं आए थे। उधर ढोल डमा-डम बज रहे थे। हाँकने वाले तरह-तरह की आवाज़ें निकाल रहे थे, थालियाँ बजायी जा रही थीं, छैने बजाए जा रहे थे, तूतनियों और नफ़ीरियों की लगातार गूँजती आवाज़, ऐसा लगता जैसे कोई लश्कर टूट पड़ा हो।

सामने दरिया में उतरी मुग़ार्बियाँ कभी की उड़ गयी थीं। जिनके अभी पंख निकल रहे वह बार-बार अभी उधर लौट कर आते थे, लेकिन जंगल में आए तूफ़ान को देखकर आसमान में ग़ायब हो जाते। अब हाथी और खूँख़ार जंगली जानवरों की बारी थी। शहंशाह और गुरु महाराज एक-एक को निशाना बना रहे थे। इधर-उधर बायें-दायें ढेर लग रहे थे-बिधे हुए चीते और बाग़, हाथी। एक-एक जानवर पर दस-दस, बीस-बीस तीर बरसाए जाते। चीख़-चिहाड़ा मचा हुआ था। बिंध हुए हाथियों की गरज और ज़ख़्मी शेरों की चिंघाड़, ख़ून के फ़व्वारे फूट रहे थे। धरती लाशों से अटी-पटी जा रही थी। शिकारी एक दूसरे को दाद देते और हो-हल्ला मचा रहे थे जैसे प्रलय आ गई हो। उधर ढोल वालों के ढोल ऊँचे हो रहे थे। छैनों की आवाज़ से कान में कुछ और सुनाई नहीं पड़ रहा था। हर शिकारी अपना-अपना हिसाब रख रहा था, उसने कितना वार किया तथा कितना शिकार गिराया था। शहंशाह का खाता उसके मुसाहिब रख रहे थे। गुरु साहब का हिसाब उनके गुर सिक्ख रख रहे थे। ऐसा लगता कि गुरु महाराज का पलड़ा भारी था। उधर शहंशाह और उसके अंगरक्षकों के बंदूकों की गोलियाँ (सिक्का) ख़त्म हो गयी थीं। अब तीर कमान और नेज़े, तलवारें और ढालें ही शिकारियों के पास रह गयीं थीं। शिकार गाह अपने पूरे शिखर पर थी।

जंगली जानवरों को मक्खियों और मच्छरों की तरह ढेरी होता देखकर नूरजहाँ और उसकी कनीज़ की पलकें दुखने लगी थीं। कुछ देर से नूरजहाँ

ने अपनी आँखों को मूंद लिया था। ऐसा करके जैसे उसे सकून मिल रहा था और फिर अचानक हाहाकार मच गया। एक शेर शहंशाह जहाँगीर के हाथी के बग़ल से निकला और सामने आकर हाथी पर झपटना चाहा। अचानक एक ख़ौफ़नाक शेर का हाथी पर झपटना देखकर जहाँगीर के हाथ-पाँव फूल गए। शाही अंगरक्षक शेर पर तीर नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि निशाने से फिसलकर तीर कहीं शहंशाह या उसके हाथी को नुक़सान न पहुँचा जाए और शेर इतना नज़दीक पहुँच गया था कि शहंशाह का तीर उस पर कारगर नहीं हो सकता था। वह नेज़े का इस्तेमाल कर सकता था। लेकिन नेज़ा उससे थामा नहीं जा रहा था। अगला एक और हमला हुआ तो छलांग लगाकर शेर शहंशाह के हौदे तक पहुँच जाएगा। यह देखकर नूरजहाँ की चीख़ निकल गई। शहंशाह के साथी शिकारी एक सकते में आ गए बे-बस।

यह देख कर गुरु हरिगोबिंद शमशीर पकड़ कर अपने हाथी से छलांग मारकर उतरे और बिजली की तेज़ी से शहंशाह पर हमला कर रहे खूँख़ार शेर पर टूट पड़े। जैसे पहलवानों का दंगल होता है। एक वार, दूसरा वार, तीसरा वार और शेर औंधा जा पड़ा। क्या शहंशाह, क्या नूरजहाँ, क्या बाक़ी शिकारी, क्या अंगरक्षक किसी को अपनी आँखों पर इत्बार नहीं हो रहा था। सामने सांड जैसे बड़े आकार का शेर औंधा पड़ा हुआ था और उसके आस-पास ख़ून का छप्पर लग गया था।

कुछ देर तक शेर तड़पता रहा फिर उसकी हरकत धीमी (मंद) पड़ने लगी। फिर वह ठण्डा पड़ गया और उसका हिलना-डुलना बंद हो गया।

(17)

सामने ख़ून के छप्पर में शेर ढेरी हुआ पड़ा था। चार क़दमों की दूरी पर गुरु महाराज अपनी चमचमाती हुई तलवार की नोक को धरती पर टिकाए शेर की ओर एक टक देख रहे थे। उनका दूसरा हाथ उनकी बायीं बग़ल पर था और उधर शहंशाह और मलका, शिकारी और अंगरक्षक जैसे एक सकते में आ गए थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था। वह अल्लाह का शुक्र करें या सामने खड़े सूरमा को आदर से सिर पर उठा ले।

इस तरह अपनी जान को खतरे में डालकर घने बीहड़ जंगल में अकेले प्रचण्ड, उन्मत्त, क्रुद्ध चिंघाड़ रहे शेर के साथ जूझना और फिर उसे देखते ही देखते चित्तकार देना एक चमत्कार था। जैसे सपना हो, किसी को अपनी

आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

फिर दोनों हाथ फैलाकर मलका ने आसमान की ओर देखा और इधर शहंशाह जहाँगीर के मुँह से निकला, 'मरहबा'। फिर एक स्वर में बाक़ी शिकारी अंगरक्षक, महावत, साईस और बाक़ी के पीछलग्गू 'मरहबां', 'मरहबा' चिल्लाने लगे। कितनी देर तक इस तरह गुरु महाराज का गुणगान होता रहा। फिर शहंशाह ने अपने हाथी से नीचे उतरकर हरगोविंद जी को गले से लगा लिया। खूँख़ार शेर का क्रोध देखकर बाक़ी शिकारी पानी-पानी हो रहे थे।

शिकार के लिए आए सारे अहलकार सोच रहे थे कि इस तरह का साहस, इस तरह की हिम्मत किसी साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं थी। कइयों ने बाबा नानक के पंथ के बारे में सुन रखा था। यह करिश्मा देख कर सिक्खी के लिए उनकी श्रद्धा जैसे छलकने लगी। मलका नूरजहाँ का यह विश्वास जैसे पक्का हो गया कि गुरु हरिगोविंद कोई वली अल्लाह थे। उनके मुखड़े पर जिस नूर की झलक मलका ने देखी थी उसे नज़रअंदाज़ करना उसके बस में नहीं था। पहली बात, उसने गुरु महाराज से पर्दा करना छोड़ दिया, अल्लाह के महबूब से कोई पर्दा नहीं करता, शहंशाह उससे सहमत था।

शिकारगाह के बाद इधर-उधर और शिकार होने लगा। गुरु महाराज का तंबू शहंशाह के तंबू के साथ लगाया जाता था। यह सोचकर कि अगर गुरु महाराज न होते तो कुछ भी हो सकता था। शहंशाह कृतज्ञ भाव से अपने ख़ास मेहमान की ख़ातिरें करता हुआ न थकता। मल्लिका देख-देख कर हैरान होती, चाहे चौपड़ हो, ताश या शतरंज हो जो खेल भी वह दोनों खेलते जीत हमेशा गुरु महाराज की होती। वे तो चौगान में भी सबको हरा देते थे। ग़ज़ब की जवानी उन पर टूट-टूट पड़ रही थी।

और वे हसीन कितने थे ! जैसे कोई अनबिंधा मोती हो। मल्लिका नूरजहाँ ने आज़मा कर देखा। जितनी बार वह उनकी तरफ़ देखती, उनकी नज़रें उनके मुखड़े में धंस कर रह जातीं। खिली हुई आँखें, इस तरह का सच्चा और सुच्चा प्रभाव डालतीं कि भीतर बाहर, जैसे धुल जाता। उनके नयनों की रौशनी, जैसे चाँद की किरणें उजाला बिखेर रही हों, बंद-बंद रौशन हो जाता। उनके ओंठों की ओर देख कर मलका के मुँह में जैसे सुगंधित शहद घुल जाता। वह मन ही मन घूँट-घूँट इस का आनंद उठाती

रहती। जिस हसरत, जिस आस्था से गुरु महाराज के श्रद्धालु अपने ईष्ट के चरण छूते, उसे देखकर नूरजहाँ का अंग-अंग मचल-मचल उठता। उसका जी करता कि अगर वह हिन्दू-स्तान की मलका न होती तो वह अपने आप को इस हसीन बुत पर निछावर कर देते। जब भी मौक़ा मिलता, गुरु महाराज से वार्तालाप करने बैठ जाती।

इन दिनों शहंशाह गुरु महाराज के कृतज्ञ थे। उनकी ख़ातिर में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे। गुरु महाराज ने मौक़ा पाकर जहाँगीर को चंदू की करतूत से परिचित कराया। उन्होंने शुरू से लेकर सारी बात बताई। कैसे चंदू की बेटी की गुरु महाराज के साथ रिश्ते की बात चली थी। कैसे चंदू ने अपने पुरोहितों की तजवीज़ पर कुबोल कहा। ताना दिया कि चौबारे की ईंट नाली में नहीं लगाई जा सकती, कैसे दिल्ली के श्रद्धालुओं ने गुस्सा किया। फिर कैसे हार कर उसने दुबारा पुरोहितों को रिश्ते के लिए अमृतसर भेजा। लेकिन गुरु महाराज राज़ी नहीं हुए। इस बात से चिढ़कर चंदू ने गुरु घर के साथ वैर ठान लिया। लाहौर के क़ाज़ियों के साथ मिलकर पांचवें गुरु अर्जन देव जी को ऐसी यातनाएं पहुँचाई गयीं कि बयान नहीं किया जा सकता। संक्षेप में उनकी शहीदी की सारी ज़िम्मेदारी चंदू के सिर थी।

मालूम होता था कि शहंशाह को इस सारे मामले से अनजान रखा गया था। यह तो उसे मालूम था कि दो लाख का जुर्माना न भरने के कारण गुरु अर्जन देव जी को गिरफ़्तार कर लिया गया था। लेकिन लाहौर के क़िले में क़ैद करके उन पर हुए अत्याचारों के बारे में जहाँगीर को बिल्कुल वाक़फ़ियत नहीं थी बस इतना ही उसे पता था कि हिरासत के दौरान ही गुरु महाराज ज्योति जोत समा गए थे।

गुरु महाराज की शिकायत सुनकर शहंशाह बहुत शर्मिंदा हुए और उसने वादा किया कि राजधानी में लौटकर वह चंदू को सीधा करेगा। उठते-बैठते शहंशाह चंदू को कोसता रहता।

यह जानकर गुरु महाराज को लगा कि जिस उद्देश्य को लेकर वे मुग़ल सम्राट के पास आए थे वह पूरा हो गया था। चंदू को उसके किए की सज़ा दिलवानी थी, शहंशाह ने इसका वादा कर दिया था।

ख़ुशी से क़ाफ़िला आगरे की ओर लौट रहा था कि शहर से कुछ कोस पहले एक अत्यंत रमणिक स्थान पर डेरा लगाया गया। दरिया के किनारे शहंशाह दोपहर के बाद सुसता रहे थे कि सामने खेतों में काम करता हुआ

एक घसियारा शहंशाह के अंगरक्षकों की मिन्नत करके जहाँगीर के सामने हाज़िर हुआ। शहंशाह एक पेड़ के नीचे बैठे थे। जब वे शिकार वग़ैरह के लिए निकलते थे तो प्रजा का कोई भी आदमी जहाँगीर को मिल सकता था। अपनी फ़रियाद पेश कर सकता था। शहंशाह को अपने अदले जहाँगीरी पर बड़ा मान था।

कहते हैं कि एक बार नूरजहाँ के हाथ से एक धोबी की हत्या हो गई। महल में बैठी वह तीर चलाने का आभास कर रही थी कि ग़लती से उसका तीर दरिया के किनारे कपड़े धो रहे एक धोबी को जा लगा और वहीं पर उसके प्राण निकल गए। धोबी की पत्नी ने शहंशाह से फ़रियाद की। जहाँगीर ने अपने महल के बाहर एक रस्सी टांग रखी थी जिसके खींचने से भीतर घण्टी बजती थी और बादशाह ख़ुद फ़रियादी की फ़रियाद सुनने के लिए झरोखे में जलवा अफ़रोज़ होता था। धोबन की फ़रियाद जायज़ थी। मलका नूरजहाँ ने अपने क़सूर का इक़बाल भी कर लिया था। किसी की हत्या करने वाली की सज़ा, हत्यारे का सर क़लम कर देना था। मलका नूरजहाँ इसके लिए तैयार थी। उसने कहा, "मुझसे अपराध हुआ है, मुझे चाहे फ़ाँसी लगा दी जाए चाहे सूली पर चढ़ा दिया जाए। धोबिन ख़ुश थी कि उसके साथ न्याय हो रहा था। उसके मर्द की हत्या के बदले मलका को मौत की सज़ा दी जा रही थी। इस से पेशतर कि शहँशाह अपना फ़ैसला सुनाते, जहाँगीर के एक वज़ीर ने कहा कि हत्या धोबिन के ख़ाविंद की हुई है, इसलिए इंसाफ़ का तक़ाज़ा है कि हत्या करने वाली के शौहर को मज़लूम के हवाले कर दिया जाए वह जी चाहे उस से सलूक, चाहे उसे सूला पर लटकाए चाहे उसे फाँसी दे।

"मैं हाज़िर हूँ।" शहंशाह ने कहा।

धोबिन ने सुना तो वह दुविधा में पड़ गई। इस तरह के न्यायप्रिय बादशाह को कोई कैसे बुरा सोच सकता था।

जहाँगीर के इस न्याय की चर्चा पूरे सूबे में हुई थी। जो भी सुनता उसके कानों पर इतबार नहीं होता था।

उस शहंशाह को मिलने के लिए एक मामूली घसियार सामने हाथ जोड़े आ रहा था। सामने शहंशाह के पास पहुँचकर, उसने ज़मीन पर लेटकर प्रणाम किया और अपने लंगोट में सम्भाल कर रखे एक टके को निकालकर बादशाह को पेश करते हुए कहा, "सच्चे पादशाह ! मैंने सुना था कि आप

इधर शिकार के लिए निकले हैं तो मैंने सोचा, मैं आपके सामने हाज़िर होकर, अपनी आज की कमाई पेश करूंगा। सच्चे पादशाह, मेरा परलोक सुधार दो। यह जून तो किसी न किसी तरह कट गई, मैं चाहता हूँ आप मेरे सिर पर हाथ रखें और मेरे अगले जहान को सँवार दें।"

जहाँगीर ने घसियारे की विनती सुनी और कहा, "मैं तो सिर्फ़ बादशाह हूँ, सच्चा 'पादशाह' तो सामने उस तंबू में ठहरा हुआ है।" यह कहते हुए जहाँगीर ने गुरु महाराज के ठिकाने की ओर इशारा किया। घसियारे ने यह सुनकर शहंशाह जहाँगीर को पेश किया टका उठा लिया और उस तंबू की ओर चल पड़ा जिसमें गुरु हरिगोबिंद विराजमान थे।

अपना टका मुट्ठी में लेकर गुरु साहब के तंबू की ओर जा रहे घसियारे को देख कर शहंशाह जहाँगीर का तन-मन जैसे सुलग गया हो। "तो फिर यह सच है कि यह नौजवान अपने आप को सच्चा 'पादशाह' कहता है। दीवान चंदू शाह ने मुझे जब यह बताया था तो मैंने उस पर इतबार नहीं किया था मैंने सोचा मेरे दरबारी बाबा नानक की गद्दी को वैसे ही बदनाम करते हैं। यह तो जैसे किसी की आस्तीन में छुपा हुआ साँप है। अगर यह सच्चा पादशाह है तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं, महाबली अकबर का बेटा झूठा पादशाह हूँ। यह देशद्रोह है। यह देश के शहंशाह के ख़िलाफ़ बग़ावत है। इसे तो यहीं कुचलना होगा।"

जहाँगीर का ख़ून खौल रहा था। वह मुंह से छाग छोड़ता हुआ अपने तंबू की ओर चल पड़ा जहाँ मलका नूरजहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

जहाँगीर ने सोचा, कि पहले उसने जो फ़ैसला किया था कि गुरु हरिगोबिंद को दिल्ली बुलाकर ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया जाए, वह अपने उसी फ़ैसले पर क़ायम रहेगा, वही ठीक था।

(18)

ग़ुस्से में आकर शहंशाह अपने ख़ेमे में चला गया। सामने क़ालीन पर गावतकिये के सहारे बैठी मलका नूरजहाँ एक बेयाज़ में से कुछ पढ़ रही थी। मलका पढ़ने में इतना लीन थी कि कब जहाँगीर ख़ेमे में आया, कब उसके पास आकर खड़ा हो गया। आख़िर यह क्या था जिसे मलका इतने ध्यान से पढ़ रही थी। शहंशाह ने अचानक नूरजहाँ के हाथ से बेयाज़ छीन ली। नूरजहाँ का जैसे होश-हवास गुम हो गया। जहाँगीर बेयाज़ पढ़ रहा था;

राह दोवै खसमु एको जाणु ॥

....

मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर ॥

....

जे जीवै पति लबी जाइ ॥
सभु हरामु जेता किछु खाइ ॥

....

गरीबा उपरि जि खिन्जे दाड़ी ॥
पार ब्रहमि साअगनि महि साड़ी ॥

....

राती होवनि कालिया सुपेदा सेवं ॥

....

सच्चु पुराणा होवै नाहि सीता कदै न पाटे ॥

....

ना हम चंगे आखिया बुरा न दिस्सै कोइ

....

तख़्ति राजा सो बहै जि तख़्तै लायक़ि हुइ।
जिनि सच्चु पहचाहणिया सच्चु राजै सोइ।

....

घरि-घरि मीआ सभनां जीआ बोली ऊवर तुमरी ॥

....

सचु पुराणा नाथीऐ नामु न मैला होइ ॥

....

बाबीहा जिस नो तू पुकार दा तिस नो लोचै सभुकोइ।

....

पणी महि देखु मुखु जैसा ॥
नामे को सुआमी विठलु ऐसा।

"यह आप क्या लेकर बैठ गये हैं ? यह मेरी बेयाज़ है। पिछले कुछ दिनों से पंजाब से आए आप के ख़ास मेहमान से सुने कुछ बोल याद करने के लिए मैं उन्हें सम्भालती रही हूँ।" मलका ने शहंशाह के हाथ से बेयाज़ लेने के लिए हाथ बढ़ाया, लेकिन जहाँगीर पृष्ठ उलट कर पढ़ता जा रहा था;

खंभ विकांदड़े जेलहा घिन्ना सावी तोलि ॥

....

करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ॥

....

हकु पराया नानका उसु सूअर उसु गाय ॥

....

जो हमरै मनि चिति है स्वामी सा बिधि तुम हरि जनहु मेरी ॥

....

पापा बाझहु होवै नाहि मुइआ साथि न जाई ॥

....

जो तूं ब्राहमणी जाइआ ॥ तउ आन बाट काहे नहि आइआ ॥

....

हउ मैं दीरघु रोगु है दारू भी इसु माहि ॥

....

हम नहि चंगे बुरा नहीं कोइ ॥

....

जिसनौ आपि खोआये करता खुसि लै चंगिआइ ॥

....

बेयाज़ को पढ़ता-पढ़ता शहंशाह एक अकेली नुक्कड़ में जा बैठा। अब बेयाज़ उसकी झोली में पड़ी थी। जहाँगीर को ऐसा लगता था जैसे सच्चे मोतियों से उसकी झोली भरी हो। हीरे और जवाहरात उसके आगे पीछे बिखरे थे जैसे फूलों की बारिश हो रही हो। रिमझिम, रिमझिम मोतियों के कलियों की फुहार पड़ रही थी। कभी कोई तुक, कभी कोई बोल उसके कानों में गूँजने लग पड़ता। शहंशाह का अंग-अंग, रोम-रोम प्रफुलित हो रहा था। रौशनी की एक चकाचौंध थी। इल्म के ख़ज़ाने जैसे खुल गए हों। उसे महसूस होता जैसे वह आकाश में उड़ान भर रहा हो। ऊपर और ऊपर छढ़ता जा रहा था। फूल जैसा हल्का हो गया था, धुलाई के बाद। साफ़-साफ़ उजला-उजला। सारे कड़वे बोल उसे भूल गए थे। उसे अपना आप अच्छा-अच्छा लग रहा था। आस-पास सुखी-सुखी मालूम हो रहा था वह एक स्वाद में मख़मूर सा बैठा था।

दिन ढल रहा था। जहाँगीर के पीने का वक़्त हो गया था। नूरजहाँ

उसका जाम बनाकर लाई। उसके पास खड़ी थी और पीने वाला उसकी तरफ़ एक नज़र उठाकर भी नहीं देख रहा था। कहाँ वह वक़्त-बेवक़्त शराब लेकर बैठ जाता था और अब नूरजहाँ जो परियों की तरह हसीन थी, जाम पकड़े उसके इंतज़ार में खड़ी थी।

"आज नहीं।" आख़िर जहाँगीर ने कहा—"तुम्हारी बेयाज़ के एक-एक शब्द में जैसे घूंट-घूंट नशा भरा हो।"

"मैं तो इस नौजवान की याददाश्त पर हैरान हूँ। कैसे अपनी पोथी में से फ़र-फ़र वह याद की हुई गुरबाणी सुनाता है।" "यह तो इल्म का ख़ज़ाना है। हर बोल में से एकेश्वरवाद की ख़ुश्बू आती है। यह तो इलाही बाणी है।" शहंशाह जैसे अपने आप को सुनाकर कह रहा हो।

"वे बोलते थे और जो बोल मेरे दिल को झिंझोड़ते थे, उन्हें मैं अपनी बेयाज़ में क़लमबंद कर लेती थी। मैं तो हैरान हूँ, उस ग्रंथ में और न जाने क्या कुछ होगा ?"

"उस पोथी को यह लोग 'ग्रंथ साहिब' कहकर याद करते हैं। 'ग्रंथ साहिब', जैसे कोई जीती जागती हस्ती हो।"

"ऐसा लगता है, आज आप को जाम की तलब नहीं।" नूरजहाँ तश्तरी में रखा जाम वापस ले जाने लगी।

"नहीं, अब तुम बनाकर लाई हो तो तुम जैसे साक़ी को इंकार तो नहीं किया जा सकता।" यह कहते हुए शहंशाह जहाँगीर ने मलका नूरजहाँ के हाथ से जाम पकड़ लिया, फिर एक के बाद एक वह लगातार जाम पीता जा रहा था।

रात हो गई। काली बहरी रात। शराब पीते हुए जहाँगीर को लगा, रात और गहरी हो रही थी। काला अन्धेरा उसकी रूह में बढ़ता आ रहा था, उसके ख़ून में दौड़ने लगा था।

कुछ देर के बाद शहंशाह को मौसीक़ी की तलब हुई। मलका ने ताली बजाकर कनीज़ को बुलाकर कहा कि मौसीक़ी की महफ़िल लगाई जाए।

"मौसीक़ी की महफ़िल तो आज की शाम, गुरु हरिगोबिंद जी के ख़ेमे में जमी हुई है।" कनीज़ ने बताया।

"तो फिर मा बदौलत उसी महफ़िल में शामिल होंगे।" शहंशाह ने कहा और बिना सूचित किए मलका नूरजहाँ के साथ गुरु हरिगोबिंद साहब के ख़ेमे में हो रहे मायन में जाकर शामिल हो गए। कोई गुर सिक्ख संगीतकार राग

तिलंग में यह शब्द गा रहा था।

यक अरज गुफ़्तम पेसि तों दरगोश कुन करतार ॥
हक़ा कबीर, करीम तू बे अैब परवर दिगार ॥
दुनिया मुक़ामे फ़ानी तहरीक दिलदानी ॥
मम सर गुइ अज़राईल गिरफ़्त : दिलहेच नदानी ॥ रहाऊ ॥
ज़न पिसर पदर बिरादराँ कस नेस दस्तंगीर ॥
आख़िर बेअफ़्तम कश नदारद चूँ सवद तकबीर ॥
सभ रोज़ गश्तम दर हवा कर देम बदी ख़ियाल ॥
गाहे न नेकी कार करदम ममई चिनी अहवाल ॥
बद बख़्त हम बख़ील ग़ाफ़िल बे नज़र बेबाक ॥
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकराँ पाख़ाक ॥

(राग तिलंग महला १ घर १)

महफ़िल में शामिल हर किसी के हाथ पैर फूल गए। शब्द सुनते हुए शहंशाह जहाँगीर की आँखों में से छल-छल आँसू बहा रहे थे। शब्द ख़त्म होते ही मलका शहंशाह को बाँह से पकड़कर अपने ख़ेमे में ले आयी।

अपने ख़ेमे में पहुँचते ही जहाँगीर को फिर शराब की इच्छा हुई। उसे लगा, उसका सारा नशा उतर गया हो।

फिर रात देर तक जहाँगीर जाम पर जाम चढ़ाता रहा। वह रुक भी नहीं रहा था। नूरजहाँ बार-बार उसे रोकती लेकिन वह बाज़ नहीं आ रहा था। आख़िर नशे में चूर होकर वह कुछ इस तरह बड़-बड़ाने लगा—

"सच्चा पादशाह ! महाबली अकबर के बेटे सलीम ! तू तो सिर्फ़ बादशाह है, तू अपने आप को बेशक जहाँगीर कहे, तू सच्चा पादशाह नहीं। सच्चा पादशाह कोई और है। नूरजहाँ तुम एक मामूली बादशाह की बेगम हो।"

"आप को यह क्या हो रहा है। क्या बोले जा रहे हैं ?" मलका ने अपने पति को डाँटते हुए कहा।

"तुम देखना मैं उस सच्चे पादशाह का क्या करता हूँ ?"

मलका ने हैरान होकर पूछा, "सच्चा पादशाह—सच्चा पादशाह की यह क्या रट आपने लगाई हुई है।"

"मुझे बस राजधानी पहुँचने दे, इसका जवाब मैं तुम्हें दूँगा।" यह कहते हुए शहंशाह जहाँगीर नशे में औंधा हो गया।

(19)

शहंशाह जहाँगीर ने आख़िर हुक्म सुनाया, "इसे ग्वालियर के क़िले में सबसे ज़्यादा संगदिल दारोग़ा के हवाले कर दिया जाए।"

उन दिनों क़ैदियों के लिए तीन क़िले निश्चित किए गए थे। जिन क़ैदियों को मौत की सज़ा सुनाई जाती थी, उनके लिए रणथम्भोर का क़िला था। क़िले की सबसे ऊपरी छत से अपराधी को नीचे गहरी खाई में ढकेल दिया जाता। धरती पर गिरने से पहले ही पहाड़ी के पत्थरों से टकरा-टकरा कर उसकी जान निकल जाती थी। जिन्हें उम्र क़ैद की सज़ा मिलती थी, उनके लिए रोहतास का क़िला था और ग्वालियर के क़िले में वह रजवाड़े क़ैद किए जाते थे जो जुर्माना अदा करने में या तो असमर्थ होते थे या एतराज़ करते थे।

जहाँगीर के दरबार में एक भी आदमी को गुरु हरिगोबिंद जी के साथ हमदर्दी नहीं थी बजाय इसके कि शेर के हमले से शहंशाह की जान बचाने के लिए गुरु हरिगोबिंद जी की तारीफ़ करते, वे उनके ख़िलाफ़ शिकायतें गिनवा रहे थे—"इसका रहन-सहन एक ख़ुद मुख़्तार हुक्मरान जैसा है। अपना शहर। अपना क़िला। अपनी फ़ौज, जिसमें हमारी फ़ौज के लोग भी शामिल किए जाते हैं, जिनका नाम कट चुका होता है। उसके घोड़े शाही अस्तबल के घोड़ों से कहीं ज़्यादा तेज़ हैं। इन लोगों ने अपनी तोपें बना ली हैं, तोपची रख लिए हैं। इसका अपना तख़्त है। जिस पर यह कलगी लगाकर बैठता है, ऊपर छत्र लगता है, पीछे से चंवर झूलता है। जब से इसने तख़्त पर बैठना शुरू किया है, उस पूरे इलाक़े से कोई मुक़दमा कभी मुग़ल सरकार के क़ाज़ियों के सामने पेश नहीं हुआ। यह तो हुकुमत के भीतर हुकुमत क़ायम करने वाली बात हुई।"

"मा बदौलत सिर्फ़ बादशाह हैं और वह 'सच्चा पादशाह' है।" शहंशाह जहाँगीर ने दाँत पीसते हुए का और शाही फ़रमान पर मोहर लगा दी।

कहाँ मिलकर शिकार खेलना, कहाँ अपने मेहमान को क़ैद की सज़ा सुनाना, मलका नूरजहाँ ने सुना तो सटपटा कर रह गई।

गुरु महाराज के साथ आए पाँच सिक्ख ज़िद करके उनके साथ ग्वालियर तक चल पड़े। बाक़ियों को वापिस अमृतसर लौटा दिया गया। उनमें सुमन भी था। ग्वालियर के क़िले में आलमगीर दरवाज़े की सबसे ऊँची मंज़िल के एक कोने के कमरे में गुरु जी को नज़रबंद किया गया। यह कमरा

पठार के पूरब की तरफ़ है और यहाँ से शहर का नज़र बड़ा रमणीक प्रतीत होता है।

जब गुरु महाराज को बंदी बनाए जाने की ख़बर अमृतसर पहुँची तो एक कोहराम मच गया। दमोदरी जी बार-बार कहतीं, "मुझे तो पहले से ही यह खटका था।" बस उन्होंने एक ही ज़िद पकड़ ली कि अगर उन्हें क़ैद किया गया है तो मैं भी उनके साथ क़ैद गुज़ारूँगी। गुरु महाराज के घर से सब कोई यही कह रहे थे। कई सिक्ख ग्वालियर जाने के लिए तैयार हो पड़े, जिन्होंने मन्नतें मांग रखी थीं, उनकी मन्नतें गुरु महाराज के दर्शनों के बग़ैर कैसे पूरी होतीं। सैंकड़ों कोस का सफ़र पूरा करके यात्री अमृतसर आते और गुरु महाराज को यहाँ न पाकर दर्शनों के लिए उत्सुक होने लगते।

क़िले में क़ैदी रजवाड़े ख़ुश थे, गुरु महाराज की संगत में उनका जन्म सफ़ल हो जाएगा। हर क़ैदी उनकी संगत के लिए तरसता रहता।

उधर गुरु महाराज ग्वालियर के क़िले में पका अन्न मुँह में नहीं डालते थे। यही ज़िद कि वे मुग़ल राज्य का अन्न नहीं खाएंगें, किसी की समझ में नहीं आ रही थी कि इस समस्या को कैसे सुलझाया जाए ? उनके साथ क़िले में क़ैद कई राजाओं ने भी अन्न खाना बंद कर दिया। क़िले का हाकिम हरि राय परेशान था जिस क्षण से उसने गुरु महाराज के दर्शन किए थे, वह उनका मुरीद हो गया था। सुबह-शाम गुरु महाराज के सामने हाज़िर होकर, हाथ जोड़कर उन्हें मनाने के लिए मिन्नतें करता रहता कि वह अपना अनशन समाप्त कर दें।

फिर गुरु महाराज के गुर सिक्खों को एक तरकीब सूझी। उन्होंने सुझाव दिया कि वे शहर में मज़दूरी करके अपनी कमाई से गुरु महाराज का भोजन तैयार करेंगे। इस भोजन को ग्रहण करने के लिए गुरु महाराज राज़ी हो गए।

गुरु महाराज क़िले में नज़रबंद थे और उधर उनके श्रद्धालुओं की अटूट पंक्तियाँ ग्वालियर आतीं, क़िले के बाहर गुरु महाराज के कमरे के नीचे, दीवार के आगे सर झुकातीं, चूमतीं और मन की मुरादें कह कर लौट जातीं। कई श्रद्धालु तो कई-कई दिन डेरा लगाकर क़िले से बाहर बैठे रहते, अरदासें करते, हाथ जोड़ कर छल-छल आँसू रोते। गुरु महाराज से बिछुड़ना उन्हें या उनसे बर्दाश्त नहीं हो रहा था।

सुबह-शाम आलमगीर दरवाज़े से बाहर मेला लगा रहता, गुरसिक्ख

ढोलक, छैने बजाते हुए आते और क़िले की दीवार के पास बैठे कीर्तन करते। गुरु महाराज का ध्यान कर अपने बच्चों का नामकरण करते। राखी वाले दिन कई औरतें आकर अपनी राखियाँ क़िले के बाहर की दीवार के नीचे रख जातीं। लोग दीवार को प्रसाद चढ़ाते और आलमगीर दरवाज़े के बाहर प्रसाद खाने वाले ग़रीब गुरबों की भीड़ लगी रहती।

उधर चंदू अभी भी बाज नहीं आया था। वह मुग़ल दरबार का दिवान था। उसने मुझे ग्वालियर के क़िले के अधिकारी हरिराय को एक गुप्त चिट्ठी लेकर हिदायत की कि वह किसी न किसी तरह गुरु महाराज की हस्ती मिटा दे। इसके बदले में वह शाही दरबार से उसकी पाँच हज़ार रुपए सालाना तरक़्क़ी करवा देगा और जो सहूलतें वह चाहेगा उसे पहुँचा दी जाएंगी। हरिराय को यह ख़त लिखा है जब पत्र मिला उसने वह पत्र ज्यों का त्यों गुरु महाराज के सामने लाकर रख दिया।

कुछ दिनों बाद चंदू ने अपने बेटे धर्मचंद को एक चोला (कमीज़) देकर भेजा और क़िले के दारोग़े को कहलवाया जाए कि वह चोला गुरु महाराज को पहनाया जाए। चोले के कपड़े में ऐसा ज़हर मिलाया गया था कि उसे पहनने वाला किसी असाध्य बीमारी का शिकार होकर ख़त्म हो जाता। अब गुरु महाराज के श्रद्धालुओं की समझ में आया कि वे क़िले में पका हुआ अन्न क्यों नहीं खाते थे। उसमें ज़हर मिलाकर क़ैदियों को खिलाया जाता था और वे किसी न किसी बीमारी में घुल-घुल कर प्राण त्याग देते थे। क़िले का दारोग़ा वह चोला लेकर गुरु महाराज के पास आया। गुरु महाराज ने वह चोला भी अपने पास रख लिया। गुरु महाराज की अनुपस्थिति में सिक्ख संगत व्याकुल हो रही थी। अमृतसर के निवासी थे परेशान थे ही; उन्हें गुरु महाराज के नित्य दर्शन नहीं होते थे, दूर और निकट के यात्रियों को भी निराश होना पड़ता था। भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी को यह चिंता थी कि गुरु घर के श्रद्धालु 'मीनियों' के पीछे न लग जाएं। गुरु महाराज ने पृथीचंद के परिवार को 'मीनियों' का परिवार कह कर तिरस्कृत किया था। इन हालात में भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी की ज़िम्मेदारी बढ़ गई थी। उन्होंने चौकियों की प्रथा शुरू की। इसकी बजाय के गुरसिक्ख गुरु महाराज को तलाशने के लिए आएं ढोलक और छैने का कीर्तन करते हुए रागी जत्थे रात को मशालें लिए गली-गली में घूमते और गुरु महाराज का सन्देश लोगों तक पहुँचाते। इस तरह की चौकियें अमृतसर शहर और गाँव

में भी भरी जाती थीं। गाँव-गाँव में घूमकर, बाणी का गायन करते गुरसिक्ख जनता में एक नई जागृति ला रहे थे। मशालें जलाईं जातीं, रात के अन्धेरे में जब सब लोग अपने ठिकाने पर पहुँच जाते, गुरबाणी के गायन से गुरसिक्खी का प्रकाश घर-घर में पहुँचाया जाता।

अब एक नई लहर शुरू हो गई। इस तरह की एक चौकी चलती-चलती ग्वालियर भी पहुँच गई। इसकी अगुवाई भाई बुड्ढा जी कर रहे थे। आलमगीर दरवाज़े से बाहर कई दिनों तक दिन रात मशालों की रौशनी में गुरसिक्ख कीर्तन करते और अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते। गाकर और नाचकर कई वज्द में आ जाते। एक मेला सा लगा रहता। इस तरह की चौकियाँ और प्रभात फेरियाँ, गाँव-गाँव और शहर-शहर निकाली जातीं। मुग़ल हुकूमत परेशान होने लगी। उधर नूरजहाँ जहाँगीर को आराम से नहीं बैठने देती थी। यह भी कोई बात हुई ! किसी को कोई 'सच्चा पादशाह' कहकर पुकारता था तो उसको क़ैदी बना देने की क्या तुक थी। शाही महलों में झगड़ा छिड़ा रहता। सुबह शाम यही तकरार होती।

कुछ दिनों के बाद नूरजहाँ का मन कहने लगा, "'सच्चा पादशाह' तो वह है।" इतना [illegible] नौजवान न कभी देखा था न सुना था। गुरु महाराज की छवि उसकी आँखों में बसने लगी। बार-बार वह अपनी बेयाज़ को लेकर बैठ जाती। उनके मुखरविंद से सुनी गुरबाणी का एक-एक बोल उसके रोम-रोम को रौशन कर देता। उसे अपना आप अच्छा-अच्छा लगता। वह फूल की तरह अपने को हल्का महसूस करती। भरी-भरी और सुबक-सुबक, जैसे कौसर की गागर हो। बस होंठों से छूते ही वह घूँट-घूँट में आबे हयात पी सकती थी। उसकी बेयाज़ के कुछ पन्ने अगर उसे इस तरह मदहोश कर सकते थे तो जो ख़ज़ाना गुरु हरिगोबिंद जी के पास था उसे पाकर तो वे आकाश में उड़ानें भरते होंगे। उन पर इलाही नूर का वास होगा या इलाही नूर से वे सरोबार होंगे।

(20)

एक दिन बैठे-बैठे वीरांवाली ने अचानक अमृतसर छोड़कर गोइन्दवाल जाने का फ़ैसला कर लिया।

कमाल को यह ख़बर मिल चुकी थी कि वीरांवाली गोइन्दवाल आ रही है, तो भी वह शैली के व्यापार के सिलसिले में वहाँ से दूर चला गया था।

यह ख़बर वीरांवाली को भी मिल गई थी कि कमाल बाहर जा रहा है

तो भी उसने गोइन्दवाल जाने का फ़ैसला नहीं बदला। कहरों की जवानी वीरांवाली पर उतरी थी। यौवन का शिखर। उसकी ओर देखा नहीं जाता था। उसकी आँखों का ख़ुमार उसके गालों से फूटती लाली। उसके माथे की आभा, उसके लंबे बाल जो सम्हलने में नहीं आते थे। मजाल है, चुन्नी उसके सिर पर टिक जाए। उसका क़द-बुत सुन्दरी से भी एक बालिश्त ऊँची हो गई थी। हर वक़्त गुम-सुम, खोयी-खोयी उदास-उदास, जो कपड़ा पहनती वही उसको सजता। उसका जोबन छलक रहा था। उसकी माँ सुन्दरी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बेटी की ओर एक नज़र देखती तो उसके हाथ-पैर फूल जाते। वह बिटिया रानी को समझाती, लड़की तो गुटका लेकर पाठ ही किया कर। सुबह शाम हरिमंदिर हो आया कर। वीरां से यह सब नहीं होता था। गुटका लेकर पाठ करने बैठती तो उसका मन कहीं न कहीं भागने लग पड़ता। हरिमंदिर का सोचकर उसे अपना आप मलीन प्रतीत होता। कब वह साफ़ स्वच्छ होगी और कब दरबार साहब का दर्शन कर सकेगी। पहले सुमन उसके मन पर सवार रहता था। सुमन के सिवा और कुछ भी नहीं। अब जब से वह गुरु महाराज के साथ दिल्ली चला गया था, उसने वीरां की एक भी नहीं सुनी थी, आजकल उसे कमाल की याद सताने लगी थी।

वह सोचती, मेरी पहली मोहब्बत तो कमाल के साथ हुई थी। बेशक सुमन कमाल से कहीं अधिक सुंदर था, लेकिन कमाल की नम्रता, कमाल का सुघड़पन, कमाल की शराफ़त, कमाल की लगन, कुछ ऐसे गुण थे जो जादू का असर रखते थे।

सुंदरी के मना करने के बावजूद वीरां गोइन्दवाल आ गई थी। कोई पराया घर तो नहीं था। नसरीन और नसीम उस पर जान छिड़कती थीं। नसरीन बूढ़ी हो गई थी तो क्या था ? वीरों को उसने पोतियों की तरह पाला था।

गोइन्दवाल का वातावरण जैसे उसे काटने को दौड़ता, कमाल का कुछ पता नहीं था कि कब लौटेगा। कोई चिट्ठी-पत्री भी नहीं। नसरीन उसकी लाख ख़ातिरें करती, बलाइयाँ लेती, वह तो मन ही मन उसे अपनी बहू बनाए बैठी थी, लेकिन वीरां थी कि उसे खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। दीवारें और छतें जैसे उसे काटने को दौड़ रही हों। बार-बार एकांत के सूनेपन को देखकर कहती सुमन क्यों उसे इस तरह छोड़कर चला गया था।

कमाल को भी इन्हीं दिनों सफ़र पर जाना था। अगर चला भी गया था तो अब वापस क्यों नहीं आ रहा था। पगली (दीवानी) लड़की।

उसे अपने अंग-अंग में से एक महक फूट रही प्रतीत होती। कपड़े पहनती तो उसे लगता जैसे उसके अंगों को रगड़ रहे हों, उसके भीतर से कुछ छलकने लगता। उसका जी करता कि ऊँची आवाज़ में किसी को पुकारे। जी भर कर रोए। अकारण ही उसकी पलकें आँसुओं से डबडबाने लगतीं।

एक दिन एकांत में बैठी गाने लग पड़ी। सावन के दिन, बाहर आकाश पर बादल घुमड़-घुमड़ कर आ रहे थे। कमरा बंद करके वह अकेली गा रही थी और उसके आँसू टपक रहे थे। कितना दर्द, कितना विरह था उसकी आवाज़ में।

मोरी रुण-झुण लाया भैणे सावनु आइआ ॥
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिनि लोभी-लोभ लुभाया ॥
तेरे दरसन विटहु खन्नीये वंझा, तेरे नाम विटहु कुरबाणो ॥
जा तू तां मैं मांड किया है तुधु बिन किहा मेरा माणो ॥
चूड़ा [illegible] पलंघ सितु मुद्धे सणु बाही सणु बाहा ॥
ना मनिय[illegible] न चूड़ियां, न सेवंगड़ियां ॥
जो सहै कण्ठि न लगिया जलन से बाहुड़िया।
सब सहिय्या सहु, रावणि गय्या। हऊ दाधी कै दरि जावाँ ॥
अंमाली हउ खरी सुचजी ते एकि न भावां ॥
माठि, गुंदाई परीआ मसि माग संधूरे ॥
अगे गयी न मन्नीआ मरउ विसूरिं विसूरे ॥
मैं रोवंदी सभु, जगु रूण्डड़े वठा हुँपखेस ॥
इकु न रूण्ना मेरे तन का बिरहा जिनि हउ पिरहु, विछोड़ी ॥
सुपने आया भीगया, मैं जलु भरेया रोइ ॥
आइन सका तुझ कनि प्यारे भेज न सका कोइ ॥
आउ सुभागी नीदंड़िये मतु सहु देखा सोई ॥
तै साहिब की बात जि आखे कहु नानक किया दीजै ॥
सीसु वढ़ै करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै ॥
किउ न मरीजै, जीअड़ा न दीजै जा सहु भया विडाणा ॥

[वडहंस महला १ घर २]

शब्द क्या गा रही थी, एक-एक बोल को जैसे जी रही हो। नसीम ने भी सुना, नसरीन ने भी सुना। कितनी देर तक वह गाती-गाती ख़ामोश हो गई; शायद उसकी आँख लग गई थी।

जब उसने कमरे का दरवाज़ा खोला तो जैसे कांट-छाँट हो चुकी हो; फूल की तरह हल्की, शांत, अडोल (स्थिर), नसीम के पास आ बैठी। नसरीन ने उसे ख़ामोश देखकर सलाह दी, "वीरां बेटी तू गुरु महाराज की बनाई बावली पर चौरासी पाठ क्यों नहीं करती ? तेरा मन भी लगा रहेगा और बावली पर किए गए पाठ मन की हर मुराद पूरी करते हैं। हमने तो जब-जब ये पाठ किए हैं हमारी मनोकामना पूरी होती रही है।" नसीम ने भी हामी (हाँ में हाँ) भरी।

वीरां वाली ने सुना तो जैसे आशा की एक किरण उसे दिखाई दी हो। अगले दिन अमृतबेला में नहा धोकर उसने बावली साहब का पाठ करना शुरू कर दिया। उसे चौरासी पाठ करने थे। जपजी साहब उसे पूरा याद था। एक पौड़ी का पाठ ख़त्म होता, वह दूसरी पौड़ी पर जा बैठती। आँखें मूँद कर पाठ किए जा रही थी। उसके मन ठण्डक फैल रही थी। उसके अंदर की ख़ुश्की जैसे उड़ गई थी। एक पाठ, दो पाठ, दस पाठ के बाद वीरां को लगा जैसे ठण्डी मीठी पवन उसके साथ अठकेलियाँ कर रही हो। न खाने की सुध न पीने की परवाह, एक दिन, दो दिन, तीन दिन चौरासी पाठ ख़त्म करके जब वीरां घर लौटी तो देखा कि आँगन में कमाल बैठा था। यह तो करामात थी। वीरां को जैसे आँखों पर विश्वास नहीं आ रहा हो। घर में उस वक़्त कोई और नहीं था। उसका मन हुआ कि आगे बढ़कर कमाल की बाँहों में ढेरी हो जाए।

और फिर उसे अपने आप पर शरम (लज्जा) आने लगी। सहम कर, शरमा (लज्जित हो) कर वह बैठ गई और दोनों बातें करने लग पड़े।

"तू कब आई वीरो ?" कमाल पूछ रहा था।

"तू कब आया कमाल ?" वीरां सवाल कर रही थी।

इतने में एक-एक करके परिवार के बाक़ी लोग भी पहुँच गए। आँगन भरा-भरा लगने लगा। कमाल हर बार ढेर सी सौग़ातें ख़रीद कर लाता था। वीरां के लिए कुछ भी नहीं था। उसे यह मालूम थोड़े था कि सचमुच वह गोइन्दवाल आकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके लिए ही तो उसने बावली साहब की सीढ़ियों पर बैठकर पाठ किए थे।

"तेरे लिए मैं कुछ नहीं लाया।" उस शाम जब वे अकेले हुए, कमाल ने शर्मिन्दगी भरे लहजे में कहा।

"बस तू आ गया है, इतना काफ़ी नहीं।" वीरां के बोलों में बेअनन्त (अगाध) प्यार प्रतीत हो रहा था। और वह कमाल की ओर इस तरह से देख रही थी जैसे उसकी बाहों में जाने को विह्वल हो रही हो। एक पंक्षी की तरह उसमें उल्लास भर गया था। ख़ुश, बहुत ख़ुश। इसलिए कि उसने जिस चीज़ के लिए हाथ जोड़े थे वह मिल गई थी। जो कुछ उसने चाहा था, उसकी झोली में आ गिरा था।

उस दिन वीरां ऐसे सजी जैसे पहले कभी नहीं सजी थी। उसने अपने बालों में फूल चिड़ियाँ डालीं। जैसे उसके पंख लग गए हों और वह अंदर से बाहर और बाहर से अंदर उड़ रही हो। उसकी समझ में नहीं आता था कि हो क्या रहा था ? हँसी के फ़व्वारे छूट रहे थे। उसका मन करता, किसी बहाने से वह नाचे। कोई उसे कहे और वह गाए। ख़ुशियों के गीत। मलहार के गीत। गाती-गाती, नाचती-नाचती किसी की बाहों में खो जाए।

आशाओं की, सपनों की जैसे छलकती हुई गागर हो। वीरां के पैर धरती पर नहीं लग रहे थे। शाम हो रही थी, कमाल बहुत देर से बाज़ार गया हुआ था। वीरां को पता था कि वह इतनी देर क्यों लगा रहा था। उसके लिए कोई सौग़ात ख़रीद रहा हो। ख़ाली हाथ जो आया था। बिना किसी तोहफ़े के वह वीरां को कैसे मिल सकता था।

आँगन में पूरा परिवार बैठा था। लेकिन वीरां को लग रहा था जैसे वह अकेली हो। उसके कान बाहर ड्योढ़ी पर लगे हों। अभी कमाल लौटेगा। इतनी देर क्यों लगा रहा था ?

इतने में किसी ने ड्योढ़ी का दरवाज़ा खटखटाया इससे पहले कि कोई उठ कर कुण्डी खोलता, वीरां उछल कर किवाड़ खोलने चली गई। शाम के अँधेरे में ड्योढ़ी भी अंधेरी थी। दरवाज़ा खोलकर क्या देखती है कि सामने सुमन खड़ा था। लदा-फांदा।

हक्की-बक्की वीरां उसके कंधे से लिपट गई।

अचानक सुमन के लौटने से घर में ख़ुशियों की एक लहर दौड़ गई। सब जने हँस रहे थे। कहकहे लगा रहे थे। सुमन की ख़ातरें (आवभगत—सेवा-मान) होने लगीं। उसकी लाई हुई पोटलियाँ खोल-खोल कर दिल्ली की सौग़ातें देखी जाने लगीं। इनमें वीरां के लिए रानीहार था,

कण्ठा था, तीनों कपड़े की पूरी पोशाक थी। देख-देख कर वीरां का एक रंग आता, एक रंग जाता, वह यह बात तो भूल ही गई कि कमाल उसके लिए सौग़ात ख़रीदने के लिए बाज़ार गया है।

सुमन क्या आया जैसे घर का पूरा नक़्शा ही बदल गया। बेहद गहमा-गहमी रहने लगी। हर वक़्त वह दिल्ली की कहानियाँ सुनाता रहता। कैसे गुरु महाराज की एक झलक पाकर शहंशाह जहाँगीर उनका दिवाना हो गया था। और तो और मलका नूरजहाँ तो जैसे उन पर न्योछावर थी। नूरजहाँ का ज़िक्र आते ही सुमन अचानक ख़ामोश हो जाता। चारों तरफ़ एक ख़ामोशी छा जाती। सुमन को देखकर वीरां का मन नहीं भरता था। कितना सुंदर जवान था। कितना ऊँचा क़द-बुत। जैसे सूरमा हो। गुरु महाराज का दिवाना, उनकी कहानियाँ सुनाते हुए उसका मुँह नहीं थकता था।

सुमन के आने से आँगन भरा-भरा सा लगने लगा था। जैसे छतों और दीवारों में से नग़में फूट रहे हों। हर समय जैसे ठण्डी-मीठी हवा के झोंके बहते रहते थे। रिम-झिम पड़ रही फुहार। मुण्डेरों पर बैठे पंक्षी चहचहाते रहते। रात को आकाश तारों से चमचमाता रहता।

दो दिन, चार दिन, छह दिन पता नहीं समय कैसे बीत गया। और फिर अमन और सुंदरी, तेजी को साथ लेकर वहाँ आ गए। उस दिन रात को देर तक दोनों परिवार बैठ कर घुसर-फुसर करते रहे।

अगली सुबह पता चला कि वीरां और सुमन की शादी का फ़ैसला हो गया। अगली पूर्णमासी को उनकी शादी होनी थी। कुछ दिन के बाद अमन और सुंदरी अपनी बेटी को लेकर अमृतसर लौट गए। दोनों पक्ष शादी की तैयारियाँ करने लगे। फिर सुमन आर वीरां की शादी। एक फेरा, दूसरा फेरा, तीसरा फेरा और चौथे फेरे के बाद एकांत में बैठा कमाल जो चुपचाप यह सब देख रहा था। फेरों में पढ़े जा रहे शब्दों के स्थान पर उसके कानों में मुहब्बत के वो बोल गूँज दे रहे थे जो कभी वीरों ने उससे कहे थे। इस लड़की से उसे डर लगने लगा था।

आज उसे पता चला कि उसके डर का क्या कारण था। क्यों वह डर कर वीरां जैसी एक हसीना से दूर-दूर रहा करता था। जब कभी उसका हाथ वीरां के हाथ को छूता, जब कभी उनके अंगों का स्पर्श होता तो बिजली जैसा झटका उसके रोम-रोम में महसूस होता।

फेरों से पहले उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह बारातियों की

तरफ़ बैठे या घरातियों की तरफ़। और अब उसकी आँखों के सामने अंधेरा जा रहा था।

फेरे हुए, अरदास हुई। सब एक दूसरे को बधाइयाँ दे रहे थे। कमाल कहीं भी नहीं था। अमृतसर में सबने सोचा कि वह गोइन्दवाल लौट गया होगा। पीछे उसके लिए तो काम भी बहुत थे। डोली लेकर जब वे गोइन्दवाल पहुँचे तो कमाल वहाँ भी नहीं था।

(21)

ग्वालियर के क़िले में गुरु महाराज ख़ुश थे, बहुत ख़ुश। अब उन्हें ईश्वर भक्ति के लिए बहुत समय मिलता था। कुल मिलाकर 52, छोटे बड़े राजा उनकी संगत के लिए थे। दोनों वक़्त मेला सा लगता। कुछ दिन बाद दमोदरी जी और परिवार के बाक़ी लोग भी उन्हें आ मिले। क़िले का दारोग़ा गुरु जी का अनन्य भक्त था। सिवाय इसके कि वे क़िले से बाहर नहीं जा सकते थे, उन पर और किसी तरह की पाबंदी नहीं थी।

कई श्रद्धालु तो यह भी मानने लगे थे कि जब उनकी मर्ज़ी होती, गुरु महाराज बाहर निकल जाते थे। शिकार भी करते थे। कई गुरसिक्ख कहते थे कि उन्होंने गुरु जी के दर्शन किए थे। कोई कहता था कि उसने उन्हें घोड़े पर सवार देखा था। कोई कहता, वे समाधि में लीन दिखाई देते हैं। कई श्रद्धालुओं को अमृत बेला में अकाल तख़्त पर विराजमान गुरु महाराज के दीदार हो जाते थे। जैसा कोई उनके बारे में सोचता, वैसा ही उनकी सुनी जाती।

यह देखकर कि पंजाब में सिक्खी का प्रचार मुश्किल हो रहा है गुरु महाराज ने भाई बुड्ढा जी को हिदायत की कि पहाड़ी राज्यों में और दूर-दराज़, बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे प्रदेसों में मसंद भेजे जाएं। इन प्रांतों के प्रसिद्ध व्यापारी गुरु महाराज के अनुयायी हो गए।

इधर गुरु हरिगोबिंद जी की दिनचर्या पूर्ववत् चल रही थी, उधर जहाँगीर की अंतरात्मा उसे आठों पहर कचोटती रहती थी। शाही गुमान में बेशक वह मुँह से नहीं स्वीकारता था पर मन ही मन घुलता जा रहा था। इतना भी कोई अकृतज्ञ होगा जिस व्यक्ति ने अपनी जान की बाज़ी लगाकर उसे खूँख़ार शेर के हमले से बचाया था, उसी मेहमान को चार दिन बाद उसने क़ैदी बनाकर क़िले में क़ैद कर दिया था। जहाँगीर को खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था फिर उसका दिल डूबने लगा। अजीब-अजीब

तस्वीरें उसकी आँखों के सामने घूमने लगतीं। रात को नींद में उसे डरावने सपने आते, वह प्रलाप करने लगता। रात-रात भर दीवानों की तरह टहलता रहता। उसके अनेक इलाज हुए। हकीम, वैध, विदेशी डॉक्टर। कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

उसे लगता जैसे आसमान से तारे छूटकर उसे निशाना बना रहे हों। वह जल कर राख हो जाएगा। जिस शेर का गुरु हरिगोबिंद जी ने वध किया था वह फिर से ज़िंदा हो गया था और उसका पीछा कर रहा था, उसकी बोटी-बोटी करके खा जाएगा। उसकी मलका नूरजहाँ उसके लिए जैसे पराई हो जा रही थी। रात को बार-बार उठ कर वह देखता, मलका अपनी ख़्वाबगाह में सो रही है कि नहीं। कई बार झाँकते हुए ऐसा लगता जैसा मलका का पलंग ख़ाली हो। उसके पसीने छूटने लगते सारी-सारी शाम वह जाम पर जाम पीता रहता था। लेकिन उसे ख़ुमार नहीं चढ़ता था, जैसे कोई कड़वे पानी के घूँट भर रहा हो। एक शाम मलका ने शहंशाह का दिल बहलावे के लिए नाच-गाने का ख़ास इंतज़ाम किया। राजधानी की मशहूर नाचने-गाने वालियों को बुलवा भेजा। नाच गाने के दौरान शहंशाह ने अपने कपड़े फाड़ने शुरू कर दिए। सभी को कोसना शुरू कर दिया। साज़िन्दों के साज़ तोड़ कर फेंक दिए। बड़ी मुश्किल से शहंशाह को क़ाबू में लाया गया।

मलका नूरजहाँ की धारणा थी कि यह सब इसलिए हो रहा था कि शहंशाह ने गुरु हरिगोबिंद जी के साथ अन्याय किया था। ग़लत दरबारियों के पीछे लगकर उसने एक खुदापरस्त औलिया को नाराज़ कर लिया था। जहाँगीर इस बात को मानने से इंकार करता था। एक ही सनक कि अगर वह, सच्चा पादशाह था तो शहंशाह की फिर अपनी क्या हस्ती थी ? जब कोई आकर उसे कोर्निश करता तो शहंशाह कहता, "मुझे सच्चा 'पादशाह' कहो, मैं ज़िल्ले इलाही नहीं, 'सच्चा पादशाह' हूँ।" दरबारी सुनकर हैरान होते।

जब कोई दवा कारगर न हुई तो मलिका नूरजहाँ ने हारकर नजूमियों को बुला भेजा। उन्होंने बताया कि यह सब ग्रहों का चक्कर है। शनि शहंशाह का पीछा कर रहा था और यह बड़ा प्रबल ग्रह था। शहंशाह को सोने से तौलकर, उसका सारा सोना दान करना था। नजूमियों का कहना माना गया बावजूद कोई फ़र्क नहीं पड़ा।

शहर-शहर, गाँव-गाँव, मस्जिदों और मंदिरों में दुआएँ माँगी गयीं। ग़रीब

गुरबे को ढेर सा दान किया गया। शहंशाह की हालत ज्यों के त्यों थी बल्कि और बिगड़ती जा रही थी। उन्हीं दिनों में भाई जेठा जी उधर आ निकले। यह सुनकर कि गुरु महाराज का कोई निकटवर्ती सिक्ख शहर में आया है, मलका नूरजहाँ ने उन्हें बुलवा भेजा। भाई जेठा जी शहंशाह की बीमारी से वाक़िफ़ थे। कहने लगे, "शहंशाह से बड़ी भारी ग़ल्ती हुई है। उन्होंने एक ईश्वर भक्त को क़ैदी बनाकर रखा हुआ है। इसका इलाज एक ही है कि गुरु महाराज को फ़ौरन रिहा कर दिया जाए और उनसे विनती की जाए कि वह शहंशाह के लिए अरदास करें और दुआ माँगें। एक बार गुरु महाराज की कृपा दृष्टि हो गई तो शहंशाह पूरी तरह से स्वस्थ्य हो जाएंगें।

भाई जेठा जी ने जैसे मलका नूरजहाँ के दिल की बात भाँप ली हो। मलका ने जहाँगीर से गुरु महाराज की रिहाई का फ़रमान जारी करवा कर फ़ौरन ग्वालियर में भेज दिया साथ में भाई जेठा जी को भी भेज दिया।

खुशी के मारे जेठा जी के पैर धरती पर नहीं लग रहे थे। वह सोच रहे थे कि उन्होंने वो कुछ कर दिखाया है जो किसी और ने नहीं किया था। वह फूले नहीं समा रहे थे। वह कहते थे कि मैं ही तो शेर बनकर शहंशाह को डराता रहा हूँ। मैं ही तो उसे सपनों में परेशान करता रहा हूँ।

गुरु महाराज ने सारी बात सुनी और जेठा जी से कहा कि बाहर जाकर नदी में से एक लोटा पानी का भरकर ले आएं। जेठा जी की समझ में यह बात नहीं आई। अनमने मन से लोटा उठाकर नदी की ओर चल पड़े।

इधर क़िले के दारोग़े को जब शाही फ़रमान मिला तो सब जगह ख़ुशी की लहर दौड़ पड़ी। गुरु महाराज के रिहाई की तैयारियाँ होने लगीं। लेकिन क़िले में क़ैद रजवाड़े यह सुनकर परेशान होने लगे। ख़ास तौर पर नालागढ़ का राजा धर्मचंद जो उनका अनन्य भक्त बन गया था, गुरु महाराज की संगत में, उसका दोनो-जहान सँवर रहे थे। अब उनका क्या बनेगा ? गुरु महाराज के क़िले में आने से पहले के दिनों को याद करके रजवाड़ों का दिल बैठ जाता। आख़िरकार वह मिलकर गुरु महाराज के सामने हाज़िर हुए—"सत्गुरु हमारा क्या बनेगा ?" बार-बार वह यही कहे जा रहे थे। सामने उनका भक्त धर्मचंद हाथ जोड़े खड़ा था।

इतने में जेठा जी नदी में से पानी का लोटा भरकर ले आए थे। गुरु महाराज ने उनके हाथ में भरा लोटा देखा और आदेश दिया—अब इस लौटे के पानी को फिर से नदी में उल्टा दीजिए। यह सुनकर जेठा जी को और

हैरानी हुई। पहले उनसे लोटा भर कर पानी मँगवाना, फिर पानी को नदी में फेंकने के लिए कहना, इन सब का क्या मतलब था ? पर गुरु महाराज का हुक्म जेठा जी फिर नदी की ओर चल पड़े।

जब वे नदी से ख़ाली लोटा लेकर लौटे गुरु महाराज ने भाई जेठा जी से पूछा, "जब आप नदी में से लोटा पानी का भरकर लाए थे, नदी को कोई फ़र्क़ पड़ा था।" "नहीं सच्चे पादशाह। नदी में से एक लोटा पानी निकल जाए तो नदी को क्या फ़र्क़ पड़ता ?" भाई जेठा जी ने कहा।

"जब आपने पानी का लोटा दोबारा जाकर नदी में उल्टाया था तो नदी को कोई फ़र्क़ पड़ा था ?" गुरु महाराज ने फिर पूछा।

"हुज़ूर एक लौटे से नदी का पानी न तो कम होगा न बढ़ेगा।" यह कहते हुए जेठा जी की समझ में अब आ गया कि गुरु महाराज उन्हें क्या सबक़ सिखाना चाहते थे। उन्हें अपनी करनी पर इतना गुमान नहीं करना चाहिये था। गुरसिक्ख में हलीमी होनी चाहिए, एकाग्रता होनी चाहिये। जो कुछ होता है, सो गुरु महाराज आप करते हैं।

यह बात जेठा जी को समझ आ ही रही थी कि उन्होंने गुरु महाराज को क़िले के दारोग़े को यह कहते सुना, मैं क़िले को तब तक छोड़कर नहीं जाऊँगा जब तक इन 52 राजों को रिहा नहीं किया जाता। यह फ़ैसला सुनकर सब लोग स्तब्ध रह गए।

जेठा जी असमंजस में सामने खड़े थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वे तो मलका को यह वादा करके आए थे, मेरे गुरु महाराज को अगर रिहा कर दिया जाए तो शहंशाह ज़रूर स्वस्थ्य हो जाएंगें। भाई जेठा जी की प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती।

गुरु महाराज भाई जेठा जी के संशय से परिचित थे। कुछ देर बाद मुस्कुराकर कहने लगे, "हमें इस बात का एहसास है कि शहंशाह जहाँगीर ने हमें क्यों इस क़िले में भेजा था। सज़ा उसी को मिलेगी जिसने हमें क़िले में भिजवाया है। जहाँगीर अपने क़सूर की सज़ा भुगत चुका है। आप बेशक राजधानी में जाकर उन्हें कह दीजिए कि शहंशाह कुछ दिनों में भले-चंगे हो जाएंगे।"

ऐसा ही हुआ। जब भाई जेठा आगरा पहुँचे तो दिनों-दिन शहंशााह जहाँगीर स्वस्थ्य होते गए। फिर हवा-पानी बदलने के लिए दिल्ली चल पड़े।

सब यही कहते कि गुरु महाराज की दुआ से शहंशाह का रोग जाता

है। लेकिन वे ख़ुद पहले की तरह क़ैद ख़ाने में थे। बादशाह के लिए यह कैसे मुमकिन था कि गुरु जी के साथ 52 और क़ैदियों को रिहा कर देते ? इनमें से कइयों ने विद्रोह किया था, कुछ और अत्यंत संगीन जुर्मों की सज़ा भुगत रहे थे।

(22)

शहंशाह जहाँगीर की स्वास्थ्य लाभ के जश्न मनाए जा रहे थे। इन जश्नों में हज़रत मियां मीर को भी बुलाया गया। हज़रत को पहले भी कई बार सन्देशे भेजे गए थे, विनती की गई थी, लेकिन वे राज़ी नहीं हुए थे। बल्कि बार-बार याद कराने से जवाब में वह डाँट देते थे।

हज़रत बेशक आए थे शहंशाह के निमंत्रण पर, लेकिन वे हज़रत निज़ामुददीन की दरगाह पर थे। जहाँगीर और नूरजहाँ दरगाह में हज़रत के सामने टाट पर बैठे हुए थे। उस शाम शहंशाह और मलका को उन्होंने आर्शीवाद दिया था। यह शान थी मियां मीर जी की क्योंकि वह ख़ुद भी टाट पर बैठते थे, चाहे बादशाह हो, शहज़ादा हो वह उसे भी टाट पर बिठाते थे।

बात शहंशाह की बीमारी से शुरू हुई। हज़रत जहाँगीर से कुछ इस तरह मुख़ातिब हुए। "तुझे यही दुख था कि हरिगोबिंद को 'सच्चा पादशाह' क्यों कहा जाता है ?" शहंशाह सुनकर पसीने से तर हो गया। हज़रत को किसने यह जाकर बताया ? उसने तो इस बारे में किसी से चर्चा नहीं की थी।

"गुरु हरिगोबिंद 'सच्चे पादशाह' हैं। जब मैं एकांत में नूरे इलाही को याद करता हूँ तो मुझे अकसर हरिगोबिंद उस दरगाह में विराजमान दिखाई देते हैं। तूने उनके चेहरे का नूर कभी नहीं देखा ?"

यह सुनकर मलका नूरजहाँ टक-टकी लगाकर जहाँगीर की तरफ़ देखने लग पड़ी जैसे कह रही हो, उनके मुखड़े की ओर निहार कर मेरी तो आँखें हमेशा चौंधिया जाती हैं।

"पहला क़सूर यह है कि उसके वालिद मुहतरम को तकलीफ़ें देकर ख़त्म कर दिया गया।"

"हज़रत, मैंने तो सिर्फ़ जुर्माना किया था।" शहंशाह बोला।

"मैं जानता हूँ हज़रत ख़फ़ा हो रहे थे। मैं जानता हूँ कि शहंशाह ने अपना हुक्म सुनाकर मामला लाहौर के क़ाज़ी पर छोड़ दिया था। लाहौर के क़ाज़ी जैसा तंग नज़र और फ़िरक़ा परस्त इस्लाम में कोई और शायद ही

पैदा हुआ हो और फिर उसे आपका दरबारी चंदू शाह उकसा रहा था। गुरु हरिगोबिंद जी ने चंदू की बेटी का रिश्ता स्वीकार नहीं किया था। कैसे करते एक दरवेश और दुनियादार का क्या मेल है ? क़ाज़ी और चंदू दोनों ने मिलकर एक फ़रिश्ता सीरत ख़ुदा परस्त दरवेश की जान ले ली। गुरु अर्जन को मैं कई बरसों से जानता हूँ। लाहौर में हमारा अक्सर साथ रहता था। कभी मैं उनके यहाँ जाता कभी वह मेरे यहाँ आते थे। इस तरफ़ उन जैसा शायर कोई पैदा नहीं हुआ। जहाँगीर ने शिकायत की, हुज़ूर सुना है उनकी पोथी में हर तरह के फोले दर्ज हैं, इस्लाम के ख़िलाफ़ भी लिखा है। यही तो मेरा एतराज़ था। वे कहने लगे कि मैं एक जुमला भी इधर से उधर नहीं करूँगा। यह भी कोई बात हुई।"

मेरी बेयाज़ में जो कलाम उस दिन आपने पड़ा था उसमें ऐतराज़ की बातें थी। अब मलका नूरजहाँ ने पूछा उसकी बात कुछ और है। यह तो आयतें थी। उन्हें पढ़कर माबौलत सुसर में आ गए थे। यही कुछ बाक़ी पोथी में है। हज़रत शहंशाह को समझा रहे थे। गुरु बाबा नानक 'बाबर के' और 'बाबे' के लोगों को मिलाने आए थे। इसीलिए ख़ाकसार भी सिंध से चलकर यहाँ आया है।

आपके सरहिंद वाले लोग बुराइयाँ पैदा कर रहे हैं। शेख अहमद जैसा गुमराह मौलवी मैंने कोई नहीं देखा। उधर लाहौर के सूबेदार मुर्तज़ा ख़ान की फ़ाराऊनियत का कोई ठिकाना ही नहीं। लाहौर का क़ाज़ी क्या और मुफ़्ती क्या ? मुफ़्ती का गला तो उसकी अपनी बीवी ने दबा रखा है। गुरु घर की वह श्रद्धालु थी। लाहौर के क़ाज़ी की खुदापरस्त बेटी हमारे तकिये पर आती है उसकी बेहूदगियां हमें बताती रहती है।

"पर हुज़ूर इस दुकाने-बातिल (झूठ की दुकान) को बंद नहीं करना चाहिए ?" जहाँगीर अभी तक अपनी बात पर क़ायम था।

अमृतसर का हरिमंदर सिक्ख क़ौम का काबा है, अगर उनमें कोई द्वेष होता तो क्या वे इस ख़ाकसार को मंदर की आधार शिला रखने को कहते। कभी किसी ने सुना है कि एक धर्म की इबादतगाह का शिलान्यास दूसरे धर्म का फ़क़ीर रख रहा है ? यह क़दम जोड़ने वाला था। हमने हिन्दुस्तान को अपनाया है। अगर हम यहाँ के लोगों के साथ जुड़ कर बैठेंगे तभी यहाँ इस्लाम जड़ पकड़ेगा। उनकी दुकान बंद करने से बात नहीं बनती।

फिर हुज़ूर हमें रास्ता दिखाइये मैं तो मानती हूँ कि गुरु हरिगोबिंद जी

ने इनके लिए दुआ माँगी तभी इनकी सेहत ठीक हुई है। मलका नूरजहाँ अर्ज़ कर रही थी।

हज़रत शहंशाह को बता रहे थे, "तेरी मौत शेर के हाथों लिखी हुई थी। गुरु हरिगोबिंद की संगत का फल था कि तेरी रेख में मेख मारी गई। वह तो लाहौर आए ही इसलिए थे कि वे मुल्क के हाकिम की मदद करें इसे कहते हैं सच्ची फ़क़ीरी। उनके पूज्यनीय पिता को जिस राज्य में मौत का जाम पीना पड़ा उसके एकलौते बेटे ने शहंशाह की जान बचाने के लिए जान की बाज़ी लगा दी।"

"हज़रत मैं क्या करता ? सब आकर उनके ख़िलाफ़ मेरा कान भरते थे।" जहाँगीर ने ऐतराज़ पेश किया।

"यह बात सच है।" मलका ने अपने शौहर की हामी भरी।

सच और झूठ का कोई साथ नहीं होता। मेरे आस्ताने पर गुरु अर्जन देव ने जब तेरे दिवान चंदू के रिश्तेदार काना भगत के कलाम को अपनी पोथी में शामिल करने से इंकार किया तो उसका मुँह बन गया। फिर जब गुरु अर्जन देव ले गए तो मैंने अपनी कानों से सुना। चंदू छज्जू भगत से कह रहा था, "मैं इस अपमान का बदला लेकर रहूँगा। गुरु यह नहीं जानता कि हमारी दिल्ली तक भी पहुँच है।"

शहंशाह बुड़बुड़ाया, "चंदू शाह तो गुरु के ख़िलाफ़ बोलते हुए थकता नहीं।"

क्योंकि उसके आँगन में उसकी जवान-जहान बेटी ज़िद् में चटाई पर बैठी है—"अगर शादी करूँगी तो गुरु हरिगोबिंद के साथ नहीं तो सारी उम्र कुँवारी रहूँगी।"

"कौन सी दोशीज़ा उनके साथ शादी करने के लिए बेक़रार नहीं होगी।" मलका बोली।

"मेरी ज़िन्दगी में तो इस क़दर हसीन नौजवान नहीं आया।"

"इस तरह के फ़रिश्ते को इतने बरस क़िले में बंद रखा गया। मैं तो सुन-सुनकर हैरान होता रहता हूँ।"

"हज़रत, एक घसियारा सच्चे पादशाह को तलाशता हुआ मुग़ल शहंशाह के पास आया। मेरे तो तन-मन में आग लग गई।"

बेशक वह 'सच्चा पादशाह' है, बाबा नानक की गद्दी पर बैठा है। तू ज़मीन की दुनिया का बादशाह है। इससे ऊपर भी एक दुनिया है जिसका

बादशाह भी हरिगोबिंद है। याद रखकर यह कल्मा मियां मीर कह रहा है।

'तौबा-तौबा' मलका कानों को हाथ लगाने लगी। "जो बीमारी आपको चिपकी थी, जो डरावने भयानक सपने आपको आते थे, जिसका इलाज आपकी इस दुनिया के कोई हकीम-वैध के पास नहीं था। आप सर पटक पटक कर हार गए। यह सच है हज़रत भाई जेठा नाम के एक गुरसिक्ख के पास इलाज था। मुझे किसी ने बताया और मैंने उसे बुलवा भेजा। बेशक जेठा नाम के पंजाबी की यह मेहरबानी है।" शहंशाह तस्लीम कर रहा था।

"उसकी नहीं, उसके गुरु की यह इनायत है।" "उसकी माँगी दुआ का नतीजा है कि तेरा क्लेष कट गया।"

"हज़रत बेहतर जानते हैं।" मलका बोली।

"लेकिन अब किया क्या जाए वे कह रहे हैं कि मेरे साथ बावन और क़ैदियों को रिहा किया जाए और इनमें से कोई कहीं का राजा है, कहीं का राजकुमार है, इन पर हर तरह के इल्ज़ाम हैं।" शहंशाह अपनी मजबूरी बता रहा था।

"जो लोग इतने बरस गुरु हरिगोबिंद जैसे खुदा परस्त इंसान की संगत में रहे हैं उनका कल्याण तो जैसे हो ही गया है। उन्हें कोई क़ैद में नहीं रख सकता। मेरी बात मानकर फ़ौरन इन सब को रिहा कर दिया जाए।"

जो हज़रत का हुक्म है शहंशाह ने अपनी रज़ा-मंदी बताई।

जो भी गुरु हरिगोबिंद का पल्ला पकड़े उसे रिहा कर दिया जाए जिनके लिए बहिश्त के दरवाज़े खुल गए हैं, उन्हें ग्वालियर का क़िला क़ैद नहीं रख सकता।

शहंशाह ने सिर झुका कर, हाथ जोड़ते हुए कहा, "बेहतर, कल सुबह सबसे पहले यह फ़रमान जारी कर दिया जाएगा।"

"यही नहीं, मेरी राय है कि गुरु हरिगोबिंद को मुग़ल सल्तनत का दोस्त बनाया जाए। मैं तो यह भी कहूँगा कि पंजाब जैसा सूबा उनके हवाले कर दिया जाए।

ऐसा सूबेदार पाकर पंजाब के सारे मसले सुलझ जाएंगे। मलका ने हामी भरी।

निहायत खुश मिज़ाज़ आदमी है। शिकार में तो बादशाह को भी मात देता है। कमाल का निशाना है उसके कमान से छूटा तीर कभी ख़ाली नहीं जाता। उसके घोड़े शाही घोड़े से कहीं तेज़ हैं। शहंशाह इस तरह गुरु

हरिगोबिंद का गुणगान कर रहा था कि मलका बोली, "गुस्ताख़ी माफ़, वह ख़ुद कितना ख़ूबसूरत है मुझे तो उसके मुखड़े के गिर्द नूर का एक दायरा दिखाई देता है।"

"बिल्कुल ऐसे नूर का दायरा उसके वालिद के चेहरे के गिर्द मैं देखता था, जिस तरह उन्हें तकलीफ़ें दी गयीं; उस जैसा लोकप्रियता का मालिक अगर चाहता तो मुग़ल सल्तनत का तख़्ता पलट सकता था लेकिन उसने तकलीफ़ों को इलाही फ़रमान मानकर क़बूल कर लिया इसे अदमत शददुत (अहिंसा) कहते हैं।"

शहंशाह ने वायदा किया, "मैं उसे रिहा ही नहीं करूँगा, दीवान चंदू शाह को उसके हवाले कर दूँगा जो सलूक चाहे वह करे।"

"सबसे बड़ी बात यह है कि इस तरह के फ़रिश्ता सीरत इंसान का साथ अपने आप में एक खुदाई है। अब आप जा सकते हैं, मेरी मगरब की नमाज़ का वक़्त हो गया है।" हज़रत मियां मीर ने यह कहते ही जहाँगीर व नूरजहाँ को विदा किया।

(23)

गुरु हरिगोबिंद जी के बारे में जो कुछ मलका नूरजहाँ सोचती और महसूस करती थी, ठीक वही कुछ हज़रत मियां मीर जी ने बताया था। और हज़रत मियां मीर के प्रति जहाँगीर और मलका दोनों की बेहद आस्था थी। मजाल है किसी से कोई बेजा भेंट क़बूल करें। सादा जीवन पसंद करते थे, गर्मी-सर्दी, मामूली टाट पर बैठते, टाट पर सोते। जहाँगीर ने बड़ी मुश्किल से एक मृगछाला उन्हें स्वीकार करने के लिए मनाया था, यह कह कर कि नमाज़ पढ़ने के लिए काम आएगी। एक बार जहाँगीर का मन राज-पाट से उचाट हो गया था और वह सन्यास लेने के लिए तैयार हो गया था। जब मियां मीर जी को पता चला, उन्होंने उसे समझाया कि बादशाह का फ़र्ज़ राज करना होता है। इस फ़र्ज़ से कोताही अल्लाह की नज़रों में गुनाह है। जब जहाँगीर ने दिन रात शराब पीना शुरू कर दिया था, मियां मीर जी के कहने पर ही उसने अपने आप पर क़ाबू पाया और कम से कम जाम लेता। जो नूरजहाँ अपने हाथ से बनाकर उसे पेश करती थी।

हज़रत मियां मीर के हुक्म पर उसने सबसे पहले ग्वालियर के क़िले में क़ैद गुरु हरिगोबिंद जी समेत सारे रजवाड़ों की रिहाई का हुक्म जारी कर दिया। मलका नूरजहाँ जानती थी कि मुग़ल दरबारी कोई न कोई विघ्न डाल

देंगे, उसने खुद एक चोगा बनवाया जिसकी 52 कलियाँ थीं। ये चोगा उसने यह कहलवाकर ग्वालियर में भेजा कि जो भी गुरु हरिगोबिंद जी के दामन उठाएगा उसे गुरु महाराज के साथ रिहा कर दिया जाएगा।

ग्वालियर में जब यह फ़रमान पहुँचा हर राजा गुरु हरिगोबिंद जी के पास आकर उनसे वचन लेने लगा कि वो उसकी रियासत में आकर चरण डालेंगे। नालागढ़ का राजा धरमचंद का गुरु महाराज के साथ विशेष लगाव था। उसने गुरु महाराज से यह वादा लिया कि वे उसकी पहाड़ी रियासत में अपना निवास स्थान बनाएंगे।

उधर मलका नूरजहाँ ने इस बात का इत्मिनान कर लिया कि गुरु हरिगोबिंद अमृतसर लौटने से पहले दिल्ली ज़रूर ठहरेंगे। शहंशाह ने उन्हें क़ैदी बनाकर उनका जो निरादर किया था उसके लिए वह खुद उनसे माफ़ी माँगना चाहती थी।

समय-समय पर वह बेयाज़ निकालकर बैठ जाती और गुरु हरिगोबिंद के मुखारविंद से सुनी गुरबाणी की पंक्तियां पढ़ने लगती। कई तो उसे याद भी हो गयीं थीं।

आपने अपने रोज़नामचे में एक जगह कुछ इस तरह लिखा है, "मैं इस दुकाने बातिल को बंद करना चाहता हूँ।" एक शाम जब शहंशाह ज़ाम पी रहा था मलका नूरजहाँ ने बात छेड़ी, "मुझे तो उनके किसी कथन में कोई ग़लत बात नज़र नहीं आती।"

"बेशक, इन पंक्तियों में तो एतराज़ वाली कोई बात नहीं, मगर सुना है कि पोथी एक बहुत भारी भरकम ग्रंथ है, हमारे कुरआन से भी बहुत बड़ा।"

"मुझे तो लगता है, कि जो कुछ इस्लाम कहता है वही बाबा नानक के पैरोकार कहते हैं। अल्लाह की वहदानियत (एकेश्वरवाद) में ईमान लाने से सारे मतभेद दूर हो जाते हैं। एक ईश्वर को मानने वाले एक ही परिवार के सदस्य होते हैं।"

"वह तो ठीक है, पर इस्लाम ही को क्यों नहीं माना जाए ? एक और नया रास्ता निकालने की क्या ज़रूरत है ? इस्लाम की राह पर चलकर इंसान मंज़िले मक़सूद (मंज़िल के लक्ष्य) पर पहुँच सकता है।"

"आपके अब्बा मोहतरम ने भी नया रास्ता निकाला था। मुझे तो बाबा नानक का रास्ता कुछ कुछ दीने इलाही जैसा लगता है। मैं ग़लत भी हो सकती हूँ।"

"बेहतर यह होगा कि जब गुरु हरिगोबिंद दिल्ली आएं, उनके साथ तफ़सील से मुलाक़ात की जाए।" यह कहते हुए जहाँगीर ने कश्मीर जाने की अपनी तज़्वीज़ का ज़िक्र करना शुरू कर दिया।

"मैं सोचती हूँ, इस बार हम गुरु हरिगोबिंद जी को भी अपने साथ कश्मीर ले चलेंगे।" नूरजहाँ ने राय दी।

"इतने बरस हमारी क़ैद में रहकर वे अपने लोगों के साथ बिताना चाहेंगे। कई ज़िम्मेदारियां उन्हें निभानी होंगी।"

"कम से कम यहाँ से पंजाब तक तो हमारे साथ चल ही सकते हैं। अच्छा साथ रहेगा।" नूरजहाँ के मन में गुरु महाराज के लिए श्रद्धा का सागर जैसे उमड़ रहा था।

"चाहे कितने भी खुले दिल के हों, इतनी जल्दी हमें माफ़ करना उनके लिए मुमकिन नहीं होगा।" जहाँगीर अपनी शंका प्रगट कर रहा था।

"यह आपके मन का चोर है, जो व्यक्ति आपके लिए दुआ मांग सकता है, वह और क्या नहीं माफ़ कर सकता ?"

"हाथ कंगन को आरसी क्या ?" अब थोड़े दिन रह गए हैं, कुछ दिनों में दिल्ली पहुँच जाएंगे। तुम भी देख लेना, हम भी देख लेंगे।

और वही बात हुई, दिल्ली पहुँचकर गुरु महाराज वहाँ रुकने के लिए बिल्कुल राज़ी नहीं थे। उन्हें वापस अमृतसर पहुँचना था। संगतें उनकी प्रतीक्षा में व्याकुल हो रही थीं।

लेकिन नूरजहाँ जैसी औरत हार मानने वाली नहीं थी। उसने गुरु महाराज को कहलवा भेजा कि एक बार उसे दर्शन दिए बिना वह दिल्ली से नहीं जा सकते। नूरजहाँ भक्तिन थी, उसकी विनती अस्वीकार करना मुमकिन नहीं था। फ़ैसला हुआ कि अगली सुबह वे शहंशाह से मुलाक़ात करने के लिए आएंगे। मलका नूरजहाँ अपने ढंग के अनुसार पर्दे के पीछे बैठकर उनके दर्शन कर सकती थी।

अगले दिन जब गुरु महाराज दरबार में आए तो परंपरानुसार उन्होंने मोतियों की एक माला शहंशाह जहाँगीर की नज़र की। पीले रंग के चमचमाते हुए मोती, जहाँगीर ने इस तरह के मोती कभी नहीं देखे थे। जब उसने ध्यान से माला को देखा तो उसमें से कुछ मोती टूट हुए दिखाई दिए।

"यह क्या, इसमें कुछ मोती कम हैं।" शहंशाह ने गुरु महाराज से पूछा।

"इसका जवाब आपका दरबारी चंदूशाह देगा", गुरु हरिगोबिंद जी ने

अर्क पूर्ण लहजे में कहा। उसने कुछ मोती हथियाये हुए फिर इस बात की पुष्टि हुई कि जब लाहौर में गुरु अर्जन देव जी को यातनाएं दी जा रही थीं, चंदू शाह ने उनकी मोतियों की माला से कुछ मोती चुरा लिए थे। पूछने पर चंदू ने इंकार किया लेकिन मोती उसके घर में रखी तिजौरी में से बरामद हो गए। अब शहंशाह के सब्र का प्याला भर चुका था, क्रोध में आकर उसने गुरु अर्जन देव जी के हत्यारे चंदू को गुरु महाराज के हवाले कर दिया। समय के रिवाज के अनुसार वे जो चाहें उसके साथ कर सकते थे।

गुरु हरिगोबिंद जी को चंदू में अब कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन भाई बिधीचंद और भाई जेठा जी जो गुरु महाराज की अर्दल में थे, उन्होंने आगे बढ़कर चंदू को अपने क़ब्ज़े में ले लिया।

यह देखकर गुरु महाराज ने शहंशाह को वे ख़त दिखाए जो चंदू शाह ने ग्वालियर के क़िले के दारोग़ा को लिखे थे। ज़हर से सना वो चोला दिखाया जो चंदू ने गुरु महाराज को ख़त्म करने के लिए ग्वालियर भिजवाया था।

शहंशाह चंदू जैसे दरबारियों की करतूतों से परिचित थे, लेकिन जब चंदू की इन हरकतों का भांडा फोड़ा गया तो गुरु महाराज की सहनशीलता और संयम के लिए उसके दिल में उनकी क़द्र और भी बढ़ गई।

अब शहंशाह ने गुरु महाराज से वायदा लिया कि जब वह लाहौर आएगा तो गुरु महाराज उसके साथ कश्मीर चलेंगे।

गुरु महाराज राज़ी हो गए। यह सुनकर मलका ने कहलवा भेजा कि उससे पहले शहंशाह और मलका नूरजहाँ गुरु महाराज के नियाज़ लेने के लिए हाज़िर होंगे। बेशक दरबार में उसने दर्शन कर लिए थे फिर भी नूरजहाँ के मन में तमन्ना थी, वह चाहती थी कि वह एकांत में बैठकर गुरु हरिगोबिंद जी के साथ वार्तालाप करे। उसकी ख़्वाहिश कब पूरी होगी ?

उस शाम मलका बड़ी मनोयोग में थी। जाड़े के दिन थे, उसने शाही हमाम में जाकर स्नान किया। उसकी कनीज़ों ने उबटन मल-मल कर बेगम को नहलाया। फिर तुर्की दोशीज़ा जैसी दो चोटियाँ बनायीं। नूरजहां के बाल इतने लम्बे थे जैसे रेशम के लच्छे हों। आँखों में काजल, होठों पर सुर्ख़ी। लाल सूर्ख़ ज़रबख़्त का ग़रारा, क़िमख़्वाब की कढ़ाई वाली मख़मली कुर्ती, नाक में नथ, माथे पर टिक्का, कानों में झूलती हुई बालियाँ गले में सात लड़ियों वाला मोतियों का हार, बाहें, गोखरूओं और चूड़ियों के साथ

झमझमाती हुयीं, पैर में चाँदी की पॉज़ेबें, सर पर रेशमी ओढ़नी। न उसके बालों को ढक रही थी न उन्हें आश्कार कर रही थी। कन्धों पर जमावार। मलका ने आज तो इत्र-फुलेल लगाया था, तौबा-तौबा। आँखें मूँद-मूँद जातीं, मलका की ख़्वाबगाह का चप्पा जैसे मदहोश कर रहा हो।

कनीज़ें सोचतीं, आज कोई जश्न होने जा रहा है जिसमें मलका को शामिल होना है। लेकिन यह क्या ? इस तरह सज धज कर मलका नूरजहाँ अपनी बेयाज़ निकालकर एक एकांत कोने में जा बैठी। वह तो बेयाज़ में से एक शब्द गा रही थी, कितनी मीठी आवाज़ कितना दर्द था उसमें जैसे कोई हाथ जोड़ माथे रगड़कर विनती कर रहा हो।

यह अरज गुफ़्तम पेसि तों दर गोस कुन करतार।
हका कबीर करीम तूँ बे अैब परवरदगार।
दुनिया मुकामे फ़ानी तहकीक दिल दानी।
ममसर मुई अज़राईल गिरफ़्तह दिल हेज नादानी॥
जन पिसर, पदर, बिरादरा कसनेस दस्तम गीर।
आख़र बेअफ़तम कस नदारद चूँ सवद तकबीर।
सभ रोज गस्तम दर हवा करदेम बदी ख़्याल।
गाहे न नेकी कार करदम ममई चिनी अहवाल।
बदबख़्त हम चु बखील गाफिल बेनज़र बेबाक।
नानक बुगोयद जन तुरा तेरे चाकरा पाख़ाक।

(राग तिलंग महला १, घर १)

(24)

इस ख़बर ने कि मुग़ल शहंशाह ने गुरु हरिगोबिंद साहब को रिहा कर दिया था, बल्कि उनके साथ 52 दूसरे राजाओं को भी क़ैद से मुक्त कर दिया था, सारे सिक्ख भाईचारे को झकझोर कर रख गई। जैसे कोई कहर की खुश्की में मुरझा रहा पेड़ बारिश की बौछार में फिर से पनप जाए, लहलहाने लग पड़े। जो लोग गुरु घर की निंदा करते नहीं थकते थे अपने को झूठे पड़ गए। ख़ास तौर पर मेहरबान को अब निश्चिय हो गया कि अब उसकी दाल नहीं गलने वाली थी। मन ही मन उसने हार स्वीकार कर ली। इस बीच जो लोग उसने अपने आस-पास फिर इकट्ठे कर लिए थे उसे छोड़ने लगे। कोई उसके पास नहीं फटकता था। कोई उसे मुँह नहीं लगाता था।

और अब वे सब लोग जो गुरु घर से विमुख हो कर बैठे थे, निंदा करते

नहीं थकते थे, उठते-बैठते हर बात में कोर-कसर निकालते रहते थे, गुरु महाराज के आगमन की तैयारियों में जुट गए। गलियों और बाज़ारों की सफ़ाई-धुलाई शुरू हो गई। हर घर को लोग सजा रहे थे। दीवारें छतें चमकाई जा रही थीं।

जैसे-जैसे ख़बर फैलती गई संगतें पंक्तियां बांधकर अमृतसर की ओर चल पड़ीं। हरिमंदिर की रौनक़ फिर पहले जैसी हो गई। फिर कीर्तन का प्रभाव चल पड़ा। सरोवर में स्नान करके श्रद्धालु अपना जन्म सफल करते।

गुरु महाराज ने दिवाली वाले दिन अमृतसर पहुँचना था, इससे बढ़कर ख़ुशी वाली क्या बात हो सकती थी। हरिमंदिर को, परिक्रमा को आस-पास के घरों और महलों को रंग-बिरंगी झंडियों से सजाया गया। सारे शहर में स्वागत द्वार बनाए गए। जिन राहों में से गुरु महाराज ने गुज़रना था वहाँ दरियां और खेस चादरें और ग़लीचे बिछाए गए। गुरसिक्खों की टोलियां कीर्तनियों के जत्थे, ढोलकियां, छैने लिए गुरु महाराज के स्वागत के लिए दो-दो चार-चार मंज़िलें आगे जाकर प्रतीक्षा करने लगे। लाहौर से दूनी चंद की बेटी शक्ति भी गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आई थी, उसके साथ उसका जवान बेटा इंदर भी था और जवान बेटी माला भी थी। लड़की हुबहू शक्ति की तरह थी जैसे जवानी में शक्ति हुआ करती थी और बेटा इंदर सुशील, सुघड़ गुरु घर का श्रद्धालु था। बिल्कुल अपने नाना की तरह।

गुरु महाराज के आने की ख़बर सुनकर गोइन्दवाल से सारा परिवार आया। नसरीन, शैली, नसीम, सुमन और वीरां। इधर लाहौर से शक्ति का परिवार। सुंदरी और अमन के घर में बेहद रौनक़ थी।

उधर अमृतसर शहर की गहमा गहमी का अंदाज़ भी नहीं हो सकता था। जिस दिन गुरु महाराज का आगमन हुआ, लोग गा-गाकर, नाच-नाचकर न हारते थे, न गाते थे। गली, मुहल्लों, बाज़ारों व मण्डियों में भीड़ का यह हाल था कि हाथ से हाथ भिड़ रहा था। सारा शहर रंग-बिरंगे झण्डियों, फूलों, पत्तियों से सजा हुआ था। हरिमंदिर में श्रद्धालु, शहद की मक्खियों की तरह टूट रहे थे। तिल धरने की कहीं जगह नहीं थी।

अंधेरा होते ही हर फसील, हर मुण्डेर, खिड़की और झरोखे में दीये जगमगा उठे। दीए और मोमबत्तियां फिर आतिशबाज़ी जैसे आकाश में होली खेली जा रही हो। ढोल बज रहे थे। तूतियां चीख़ रही थीं। हरिमंदिर के कलशों, घेरों और मुण्डेरों पर जुगनू की तरह झिलमिला कर आँखों को सरूर

(मस्ती) बख़्श रही थीं। आँखें मुंद-मुंद जातीं, खुल-खुल जातीं।

हरिमंदिर के दर्शनों के लिए आए, अमृतसर, लाहौर और गोइन्दवाल के तीनों परिवार रौशनी की जगमगाहट में एक दूसरे से अलग हो गए। भीड़ का भी तो कोई अंत नहीं था। कोई किसी को पुकारता तो भी कैसे ?

वैसे सरोवर के किनारे जगमग-जग-मग करती ख़ुशियों भरी रात में बहुत बूढ़ी हो गयीं तेजी और नसरीन बैठ कर अपने नैनों में जीवन के अपने सारे सफ़र को जैसे समेटे हुयीं थीं और फिर दोनों के मुँह से एक साथ यह बात निकली-इस तरह की ख़ुशियों भरी रात में सत्गुरु के द्वार पर हमारी आँखें मुंद जाएं और बेशक वे कभी न खुलें।

(25)

लोग कहते हैं शहंशाह जहाँगीर ने एक जाम के बदले में अपनी सल्तनत की बागडोर मलका नूरजहाँ के हाथ में पकड़ा दी है।

नूरजहाँ ने जाम बनाकर जहाँगीर को पेश किया और शहंशाह उसके अकथनीय हुस्न को देखता ही रह गया। पिछले कुछ दिनों से मलका सचमुच पहले से भी ज़्यादा हसीन और जवान लगने लगी थी। जैसे 16-17 बरस क़ी दोशीज़ा हो। सजने की शौक़ीन, या सजती सँवरती रहती या अपनी बेयाज़ लेकर बैठ जाती। खुद भी शेर कहती थी। जब कोई शेर अच्छा लगता तो उसको याद हो जाता, वो उसको अपनी क़लम से बेयाज़ पर उतार लेती। नए-नए फ़ैशन ईजाद करती, नित्य नए ढंग की पोशाकें पहनतीं। एक बार नई पोशाक पहनकर दोबारा पहनने के लिए उसमें कोई न कोई तब्दीली ज़रूर करती। उसके चलाए फ़ैशन की चारों तरफ़ चर्चा रहती। कलाकार भी कमाल की थी, जब मन करता रंग और तुलिका लेकर बैठ जाती और सारा दिन चित्र बनाती रहती। चाहे दिल्ली हो चाहे आगरा हो, चाहे लाहौर हो, उसके बनाए चित्र महलों को हर जगह रौनक़ बख़्शते थे।

पिछले कुछ दिनों से वह चित्रशाला में बंद होकर वह कोई चित्र बना रही थी। जैसे-जैसे उसका चित्र पूरा हो रहा था, उसे एक नशा सा चढ़ने लगा। नए-नए रंग भर रही थी, और-और उसे सजा-सँवार रही थी। खाने-पीने की कोई होश नहीं। उधर दिन निकलता इधर मलका अपनी चित्रशाला में जाकर बंद हो जाती। पूरा-पूरा दिन कनीज़ें बाहर अर्दल में इंतज़ार करती रहतीं। शहंशाह बार-बार पूछताछ करता रहता। बेकार ! मलका को आजकल फ़ुर्सत नहीं थी।

एक हफ़्ता, दो हफ़्ते, तीन हफ़्ते बीत गए ऐसे तो उसने कभी नहीं किया था। आख़िर ऐसा कौन सा चित्र था जिस पर वह इतना वक़्त और इतनी मेहनत दरकार थी ? न खाने की सुध न पीने का होश, उसका चेहरा कबूतरी जैसा निकल आया था जैसा शरीर में ख़ून का एक क़तरा भी न हो। उस शाम जब उनकी मुलाक़ात हुई तो शहंशाह से जैसे मलका पहचानी न जा रही हो। "ये तुझे क्या हो गया है ? मेरी बादशाह बेगम कहाँ है, जिसके हुस्न की चर्चा घर-घर और गली-गली में होती है।" शहंशाह ने परेशान होकर पूछा। कुछ दिन पहले ही तो जहाँगीर ने नूरजहाँ को बादशाह बेगम का ख़िताब दिया था।

"मैं एक हसीन चित्र बना रही हूँ।" मलका ने जहाँगीर को उसका जाम बनाकर पेश किया।

ऐसा लगता है कि तुमने अपना सारा हुस्न निचोड़ कर उस चित्र में मिला दिया है।

"जब कोई कलाकार किसी कलाकृति का निर्माण करता है तो ऐसे ही करना पड़ता है।"

"यह तो कोई बात न हुई।"

"मुसव्विर को अपना आप ढाल कर अपनी तस्वीर में डालना होता है।"

"आख़िर यह शाहकार है क्या—मा-बदौलत भी तो देखना चाहेंगे।"

"अभी नहीं, अभी दुल्हन तैयार नहीं हुई। अभी उसे उबटन मले जाएंगे फिर उसे ग़ुसुल दिया जाएगा फिर उसे सजाकर सँवारकर उसकी नक़ाबकुशाई होगी।"

एक हफ़्ता और गुज़र गया। मलका को खाने-पीने तैयार होने की कोई फ़ुर्सत नहीं थी। खाना तो उसका पहले से ही छूटा हुआ था, चित्रशाला में ही किसी चीज़ को मुँह मार लेती नहीं तो एक वहशत में रंगों को घोलती रहती, तस्वीर को पूरा करती रहती।

अब मलका के चेहरे पर एक खुशी आ गई थी आँखों में एक रौनक़, जैसे खुशी से अठखेलियां कर रही हो, चित्रशाला में, चित्रशाला के बाहर आती-जाती वह कोई बोल गुन-गुनाती जाती जैसे पक्षी बहार में चमकते रहते हैं—

मन रे क्यों छूटही बिनु प्यार ॥

....

खंभ विकांदड़े लहाँ घिना सावीतोल ॥

....

जिस्स प्यारे सियु नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ ॥

आख़िर मलिका का यह चित्र सम्पूर्ण हो गया। तेज़-तेज़ क़दमों से वह चित्रशाला में से आयी और तैयार होकर दरबार की ओर जा रहे शहंशाह की बाहों में ढेरी हो गई। ख़ुश, बहुत ख़ुश। जहाँगीर ने मलका का चेहरा अपनी दोनों हथेलियों में ले लिया और उसकी आँखों में देखा। नूरजहाँ के नैनों में तो जैसे कोई जन्नत उतर आई हो। फिर उसके ओंठ बादशाह के ओंठों पर थे। एक लता की तरह मलका शहंशाह के लंबे शरीर के गिर्द लिपट रही थी, कसकर लिपटती जा रही थी।

फिर दो आँसू उसके पलकों में छलकने लगे, ख़ुशी के आँसू, मर्सरत के आँसू, फिर एक आवेश में, एक मस्ती में अपने शौहर की बाँह में बाँह डालकर उसे अपनी चित्रशाला में ले गई।

ख़ुदाया। यह कैसी तस्वीर थी। सामने की पूरी दीवार को उसने रंगों से ढँक दिया था। इतना बड़ा चित्र तो उसने कभी नहीं बनाया था। एक नज़र देख कर जहाँगीर की आँखें जैसे उसमें गड़ कर रह गई हों। सुरूर की एक कंपकंपी उसके अंग-अंग में फैल रही थी। ख़ुशी से शहंशाह बहुत देर तक मूक खड़ा रहा। उसकी आँखों में जैसे एक नूर झड़ रहा था। उसके ओंठों पर जैसे शहद घुल रहा था। उसे लगता जैसे वह फूल की तरह हल्का हो गया हो। अगले ही क्षण वह हवा में तैरने लगेगा। चित्र क्या था ? एक रौशनी थी, एक सकून था, एक इबादत थी, ख़ुशी का आवेग था।

और फिर शहंशाह को हज़रत मियां मीर के वह बोल याद आने लगे—जब मैं एकांत में नूरे इलाही को याद करता हूँ तो मुझे अक्सर हरिगोबिंद उस दरगाह में विराजमान दिखाई देते हैं।

जैसे उसकी ज़बान को ताला लग गया हो, उसका जी चाहता कि वह हज़रत मियां मीर के बोल मुँह से बोले ताकि कलाकार नूरजहाँ की कलाकृति की प्रशंसा कर सके।

एक बार, दो बार, तीसरी और चौथी बार कोशिश करने पर जहाँगीर के मुँह से यह शब्द निकले—मुझे अक्सर हरिगोबिंद उस दरगाह में विराजमान दिखाई देते हैं।

यह सुनकर मलका शहंशाह के कंधे से लिपट गई। कुछ देर बाद कलाकार के आँसुओं से जहाँगीर का कंधा भीग गया। कलाकृति की पहचान

कलाकार के लिए सबसे बड़ी कीमत होती है, इससे बड़ा ईनाम और कोई नहीं।

नूरजहाँ के इस चित्र की चर्चा बहुत दिनों तक ख़ासी-आम में होती रही। जन्नत की एक झलक जहाँ अल्लाह के हुज़ूर में उसके महबूब बैठे हुए थे। इनमें सिक्खों के छठे गुरु हरिगोबिंद जी भी शामिल थे। एक नूर। जैसे कोई खिला हुआ गुलाब हो, जैसे चाँद धरती पर आ उतरा हो। जो भी देखता यही कहता जैसे कोई फ़रिश्ता हो। सच का, सुन्दरता का साक्षात नेकी का।

अब शहंशाह जहाँगीर को इस बात का यक़ीन हो गय था कि मलका नूरजहाँ पूरी तरह से गुरु हरिगोबिंद जी की भक्तिन हो चुकी थी। उसे यह अच्छा भी लगता, अच्छा न भी लगता। यह भी कोई बात हुई कोई मुसलमान किसी काफ़िर पर इस तरह ईमान ले आए।

मलका नूरजहाँ चाहती थी कि हज़रत मियां मीर जी के दिए गए मश्विरे के मुताबिक़ पंजाब का अमन क़ानून गुरु हरिगोबिंद जी पर छोड़ दिया जाए। जहाँगीर की समझ में यह बात नहीं आती थी। उसके सामने और कई मसले थे। मेवाड़ में महाराणा प्रताप का बेटा अमर सिंह मुग़ल शहंशाह की आज्ञा मानने से इंकार कर रहा था। दक्षिण में मलिक अंबर क़ाबू में नहीं आ रहा था। इन बातों को देखते हुए दरबार में नूरजहाँ की बनाई हुई मण्डली ने शहंशाह को इस बात पर आख़िर राज़ी कर लिया कि गुरु हरिगोबिंद जी को सात सौ (700) घुड़सवार, 1000 प्यादा फ़ौज और 7 तोपों की सरदारी देकर अपने साथ मिला लिया जाए ताकि पंजाब से निश्चिंत होकर मुग़ल दरबार मिवाड़ और दक्षिण की तरफ बढ़ सके। शहंशाह ने कहा, "मैं आपके फ़ैसले को मानने से तैयार हूँ, लेकिन गुरु हरिगोबिंद मानने वाला नहीं। वह अपने आप को 'पादशाह' कहलवाता है। उसका दिमाग़ बहुत ऊँचा है।"

"लेकिन इस तरह के शूरवीर के साथ दोस्ती करने में तो कोई हर्ज नहीं।" यह मलका नूरजहाँ का आख़री फ़ैसला था और उन दिनों राज-पाट की बागडोर मलका के हाथ में थी। जहाँगीर पूरी तरह से नूरजहाँ की मुट्ठी में था।

जहाँगीर को 'सच्चा पादशाह' की चोट बहुत गहरी लगी मालूम होती थी। आगरे के घसियारे ने जैसे उसके शहंशाहनियत के गुमान को तोड़ दिया हो।

एकांत में वह सोचने लगता, "अगर वह 'सच्चा पादशाह' है तो मैं क्या

हूँ।" ख़ास तौर पर शाम के वक़्त वह जाम पी रहा होता तो उसे बार-बार इस तरह के ख़याल घेर लेते।

उस शाम फिर वह नूरजहाँ से उलझ रहा था।

"सवाल मेरा नहीं, सवाल शहंशाह जहाँगीर का नहीं, सवाल इसलाम का है", वह कहने लगा।

"वो कैसे ?" नूरजहाँ ने मुस्कुराते हुए पूछा। वह अपने शौहर की कमज़ोरी से वाक़िफ़ थी।

"हम इस मुल्क पर राज करने ही नहीं आए, हमें यहाँ इस्लाम का झण्डा भी गाड़ना है।"

"वो तो गड़ चुका है।" नूरजहाँ ने इत्मिनान से कहा।

"तो फिर इस बाबा नानक के नए धर्म की क्या ज़रूरत है ? लोगों को क्यों गुमराह किया जाए ?"

"बाबा नानक ने मुसलमान को अच्छा मुसलमान और हिन्दू को अच्छा हिन्दू होने के लिए कहा है।"

"तो इस तीसरे धर्म की क्या ज़रूरत है ?"

"ताकि मुसलमान को अच्छा मुसलमान बनाया जाए।"

"मैं इस दुकाने-वातिल (झूठ की दुकान) को खत्म करके रहूँगा। वह अनपढ़ लोगों को अपने पीछे लगाए फिरता है। उसे इसलाम की महानता का ईल्म नहीं।"

"आप को उसका बोला कल्मा याद है।" यह कहते हुए मलका नूरजहाँ ने सामने अल्मारी में से अपनी बेयाज़ निकालकर उसमें से यह तुक पढ़ी :

मुस्सल्मान मोम दिल होवै।
अंतर की मल्ल दिल ते धोवै।

जहाँगीर ने सुना तो सोच में पड़ गया, सचमुच उसके मन पर तो मनों भारी मैल जमी हुई थी।

लेकिन जिस तरह मलका गुरु हरिगोबिंद की दीवानी हो रही थी, वह तो हुकूमत के उस वैरी के लिए कुछ भी कर सकती थी। एक जाम और पीने के बाद फिर जैसे उसका पारा चढ़ गया। जहाँगीर ज़हर भरे स्वर में नूरजहाँ से कहने लगा, "तुम्हें पता है, सिक्खों के इस गुरु की तीन बीवियाँ हैं ?"

नूरजहाँ जैसी रौशन दिमाग़ मलका को पता था कि उसका मर्द उसे यह क्यों बता रहा था। पूरे भरोसे से नूरजहाँ ने जवाब दिया, "चार तो नहीं।"

शहंशाह उसके मुँह की ओर ताकता रह गया। उस रात जहाँगीर की आँख खुल गई, मलका नूरजहाँ ख़्वाबगाह में पलंग पर बैठी नींद में फ़ारसी का यह शेर गुन-गुना रही थी :

बामन आमे ज़शे ऊ उलफ़ते मौज अस्तो किनार।
दम बदम बामन व हर लहजा गुरेज़ां अज़ मन।

(मुझसे उसका प्यार लहर के किनारे जैसा है। दम बदम मेरे साथ भी है और हर क्षण मुझे छोड़कर जा भी रहा है)।

अगली सुबह नाश्ते पर बैठे जहाँगीर ने यही शेअर नूरजहाँ को सुनाया।

"यह शेअर किसका है, नूरजहाँ पूछने लगी, पहचाना-पहचाना लगता है, पर याद नहीं आ रहा, किसका है यह शेअर ?"

(26)

मांझे के चंबे नाम के गाँव में सुलखनी नाम की एक औरत रहती थी, किसी दुकानदार की पत्नी। बेचारा उसका मर्द कौड़ी-कौड़ी बचाता रहता, लेन-देन में मिट्टी के साथ मिट्टी होता रहता। इसी तरह उनकी बहुत सी उम्र बीत गई थी फिर अचानक उन्हें याद आया, उनका आँगन तो सूना था, उनका घर हुजरे की तरह ख़ाली था, उसमें कोई बच्चा नहीं खेलता था। किसी बालक की सुहानी किलकारी उसमें सुनाई नहीं देती थी और ज़िन्दगी की दोपहर ढलनी शुरू हो गई थी।

"अब क्या बनेगा ?"

सुलखनी के अंदर की मां हाथ-पैर मारने लगी। हकीमों के, वैद्यों के यहाँ दौड़ने लगी, जहाँ भी कोई किसी सयाने का पता बताता पागलों की तरह उधर चल पड़ती। कड़वी मीठी दवाइयाँ खाती रहती लेकिन कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। अपना इलाज करवाकर हार गई तो अपने मर्द का दवा-दारू कराने लगी। कोई लाभ नहीं हुआ। आस की डोरी हाथ में आने का नाम नहीं ले रही थी, सुलखनी लाख उपाय कर बैठी थी।

उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वे अच्छा भला खाते-पीते थे, उनका घर सुन्दर और साफ़ था। उसका पति तंदरूस्त न सही साधारण मर्दों जैसा मर्द था। शिखर जवानी के दिन बेशक उन्होंने धन बटोरने में गँवा दिए थे, अब भी बेशक लेन-देन में उनके हाथ मैले रहते थे, लेकिन गुरु महाराज की शिक्षा-दीक्षा, वे आमदनी का दसवां हिस्सा पूरा निकालते थे। नित्य नेम से कभी नहीं चुकते थे। सब यही कहते, उनके भाग्य में औलाद नहीं लिखी

थी।

शरफ़ां दायी बड़ी डींगें हाकती थी—मैं तो सूखे कीकर में से कोंपलें उगा लेती हूँ—सारे उपाय कर बैठी, सारे पापड़ बेल बैठी, कभी मालिशें करती, कभी बाहें और टांगें दबाती, कहती बस छह महीने और फिर और छह माही के वायदे करती, लेकिन सुलखनी की कोख को हरा नहीं होना था, न हरी हुई। आख़िर शरफ़ां दायी ने भी हार मान ली। दूर-दूर के वैद्य और हकीम पहले से ही निराश हो चुके थे। उनकी कोई भी जड़ी बूटी कारगर नहीं होती थी।

हार कर सुलखनी ने टोने टोटके शुरू कर दिए। पड़ोस में उसे कभी किसी श्मशान में जाने के लिए कहतीं, कभी किसी मज़ार पर जाने के लिए कहतीं। सुलखनी ने कई पीर मनाए। कई देवी-देवते रिझाए। कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। उसने व्रत रखे, भण्डारे लगाए, माता की भेंटें गायीं, नैना देवी की यात्रा की। बेकार।

हार कर सुलखनी जो कुछ नहीं करना चाहती थी वो भी उसने किया। सात क्वारीं कंजकों के बाल कुतरे। सात घरों की चारपाइयों की अदवाइनें कुतरीं। सात घरों के बाहर फटी हुई चटाइयां टाँगीं। गाँव के कुएं की परिक्रमा करके उसकी मुण्डेर पर सतनाजा घुमाया। जाड़ों की ठण्डी रात में बाज़ार के चौराहे पर बैठ कर ठण्डे पानी से नहाती। श्मशानों में जाकर जवानों की चिता पर चावल पकाकर उसने खाए। जो कोई कुछ बताता वही करती। उसकी झोली ज्यों के त्यों ख़ाली थी।

आख़िर हार कर सुलखनी ने सत् गुरु की शरण में जाने की बात सोची। सुनते थे वह तो करन, करावनहार थे। उनके दर से कोई ख़ाली नहीं लौटता था। उनकी कृपा दृष्टि से नीच, ऊँचे हो जाते थे, सूखे हरे हो जाते थे।

लेकिन सुलखनी की सभी उम्मीदों पर पानी फिर गया जब उसने सुना कि गुरु महाराज शहंशाह से मिलने दिल्ली जा रहे हैं। कोई बात नहीं। वहाँ जाकर बैठ थोड़े ही जाएंगें। महीने दो महीने में लौट आएंगे तो वह उनके सामने हाज़िर होगी। गुरु की श्रद्धालु औलाद के लिए तरसती फिरे, यह भी कोई बात हुई। एक के बाद दूसरी मुसीबत आ गई। जब सुलखनी को ख़बर मिली कि गुरु महाराज को मुग़ल बादशाह ने क़ैद करके ग्वालियर के क़िले में बंद कर दिया था। क्षण भर के लिए सुलखनी की सभी आशाओं पर जैसे पानी फिर गया।

पर नहीं, सुलखनी दोनों समय धर्मशाला में हाज़िर होती। वह और उसका मर्द। दोनों समय वे नित नेम (नित्य नियम) करते। आठों पहर गुरसिक्खों की सेवा में हाज़िर रहते। लेकिन अभी तक उनके यहाँ औलाद नहीं थी। सुलखनी हाथ जोड़े रहती, माथे रगड़ती रहती उसे पूरा विश्वास था कि उसकी मन की मुराद सिर्फ़ गुरु महाराज की कृपया से ही होगी। और कोई तरीक़ा सफ़ल नहीं होने वाला था।

गुरु घर में उसकी श्रद्धा देखकर कभी-कभी कोई पड़ोसी उसे सुनाकर कहता, "जो गुरु अपने आप को मुग़ल शासकों की क़ैद से नहीं छुड़ा सकता वह अपने सिक्खों के बंधन कैसे काटेगा ?" कोई कहता, "जिसके पिता को उन्होंने कष्ट दे-देकर ख़त्म कर दिया और बेटा देखता रह गया और कुछ भी न कर सका, उस पर आस रखना बेकार है।"

सुलखनी तू बाँझ ही रहेगी। कभी कोई उसे ताने देता, "क्यों खज्जल ख़्वार होती है, मृगतृष्णा के पीछे भटक रही है, कोई कहता, बीवी तुझे श्राप लगा है। श्रापग्रस्त औरतों के पैर भारी नहीं होते। सुलखनी पर किसी बात का असर नहीं पड़ता। एक बार उसने अपने गुरु महाराज की ओट पकड़ी, फिर उसका मन नहीं डोला।

अगर कोई याद दिलाता कि गुरु महाराज ग्वालियर के क़िले में क़ैद हैं तो वह कहती उन्हें क़ैद से छूटना पड़ेगा, मेरी अरदास सुनने के लिए। उन्हें अपने सिक्ख के सिर पर हाथ रखना होगा। सुनते हैं वे बिन ओटों की ओट हैं, निराश्रितों के आश्रय, निपत्तों की पथ हैं। मेरा गुरु मेरी बात नहीं टालेगा।

फिर वही बात हुई। ख़बर आई, मुग़ल शहंशाह ने गुरु महाराज को रिहा कर दिया था। सुलखनी महसूस करती कि वह जीत गई है। दिन-रात गुरु की महिमा बखानती, उनके आगे हाथ जोड़ती, वह सोचती कि गुरु महाराज को मेरी विनती सुनने के लिए क़ैद से रिहा होना ही था।

सुलखनी का पति उसकी आस्था पर हैरान था। लोग उसकी ओर देखकर हँसते रहते, पर उसे पगली समझकर भूल जाते।

आठों पहर उसके सिमरन और आस्था को देखकर लोग उसे चिढ़ाते, "तेरे गुरु महाराज तो अमृतसर आ गए हैं, उनके पास जाकर तू अपनी रेख में मेख क्यों नहीं मखालेती। सुलखनी अनसुनी कर देती, सब हैरान थे। सचमुच यह औरत दीवानी है। लोग सोचते बाँझ औरतों में इस तरह का पागलपन आ जाता है।

उसका पति भी कई बार उसे कह चुका था, "अब गुरु महाराज अमृतसर लौट आए हैं, अगर तू सोचती है कि उनकी आशीष कारगर होगी तो उनके यहाँ हो आते हैं, अमृतसर कौन सा दूर है। दर्शन भी हो जाएंगे और अमृत सरोवर का स्नान कर आएंगे।"

"यदि वे मेरे गुरु महाराज हैं तो उन्हें आना होगा, अपना कंधा लगाकर मेरी बेड़ी को पार लगाना होगा।" अब सुलखनी की आस्था और ऊँचे शिखर पर पहुँच गई थी।

यह कहते हुए सुलखनी के आँखों में आत्म विश्वास, उसके चेहरे पर श्रद्धा की आभा झलकती रहती। अगर वह मेरे गुरु महाराज हैं तो उन्हें हमारे पास आना होगा। सुलखनी अपने आप को सुनाकर कहती और वह मदहोश होकर जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो जैसे उसे किसी के आने की पाती आई हो। फिर वह सब सुनकर हैरान रह गए, सचमुच गुरु हरिगोबिंद जी उधर आ रहे थे। वे 'चंब' नाम के गाँव में पास से गुज़रने वाले थे। सुलखनी के पैर जैसे धरती पर नहीं टिकते थे, पड़ोसी भी अपने को हारे-हारे महसूस करते। सुलखनी के गुरु प्यार से उन्हें ईर्ष्या होता।

जिस दिन गुरु महाराज ने उनके गाँव के पास से गुज़रना था, गाँव वाले ढोलकिएं, छैने लिए गाते-बजाते कई कोस का सफ़र करके वहाँ जाने के लिए तैयार हो पड़े। सुलखनी का पति भी उनके साथ जा रहा था, लेकिन सुलखनी अपने घर की दहलीज़ छोड़ने के लिए राज़ी न हुई। "अगर वे मेरे गुरु महाराज हैं तो उन्हें यहाँ आना होगा। मेरे आँगन को रौनक़ बख़्शने के लिए उन्हें इसकी वीरानगी देखनी होगी।" सुलखनी टस से मस नहीं हो रही थी।

उसका पति बार-बार उसको समझाता, "तू पगली न बन। वे सामने की सड़क से चले जाएंगे और तुम यहीं टंगी रह जाओगी।"

सुलखनी कोई बात न सुनती, अपनी आस्था पर क़ायम रह कर उसने अपने घर की दहलीज़ नहीं छोड़ी। सारा गाँव गुरु महाराज की अगवानी के लिए आगे चल पड़ा। उनके साथ सुलखनी का पति भी था। ख़ाली गाँव भायँ-भायँ कर रहा था। सुलखनी अपने घर के बाहर खड़ी अपने इष्ट की प्रतीक्षा में राहों पर आँखें बिछायी हुई थी। सुबह से दोपहर हो गई और फिर शाम हो गई, अन्धेरा होने लगा था। सुलखनी ज्यों की त्यों अपने इरादे पर पक्की खड़ी थी। उसने देखा, सामने क्षितिज पर गुरु महाराज आ रहे थे।

नीले घोड़े पर सवार। उनके पीछे ढोलकी बजाते, छैने खड़खाते, सतगुरु की जय-जयकार करते गाँव के लोग थे।

वे आ रहे थे, उसके 'सच्चे पादशाह' उसकी बिगड़ी सँवारने वाले, घोड़े पर सवार। वे जिनकी शीश पर कलगी सुशोभित थी। वे जिन्होंने दो तलवारें बाँधी हुई थीं। एक मीरी की एक पीरी की। देग, तेग़ के मालिक अब गाँव के बाहर पहुँच चुके थे। सुलखनी एक टक अपने गुरु परमेश्वर को निहार रही थी, उसने देखा, गुरु महाराज के घोड़े की लगाम सुलखनी के घर की ओर मुड़ गई थी।

वे आ रहे थे, उसके पीर, पैग़म्बर, औलिया, उसके अवतार, उसके महेश। सुलखनी की पलकों में आँसुओं की बदली सी छा गई। उसे अब कुछ नहीं दिखाई दे रहा, न सुनाई दे रहा था।

अगले क्षण घोड़े का शहसवार सुलखनी के सामने खड़ा था। सुलखनी के हाथ जुड़े हुए थे, सिर झुका हुआ था। उसके दिल की बातें बूझने वाला, सुनने वाला उसके सामने साक्षात् आकर खड़ा था।

"सुलखनिये, तेरे भाग्य में औलाद नहीं लिखी।" (सर्वज्ञ) जानीजान गुरु महाराज फ़रमा रहे थे। लिखने वाले भी आप हैं वहाँ भी और यहाँ भी। वहाँ नहीं लिखी तो अब लिख दीजिये, मेरे प्रभु ! सुलखनी ने पास पड़ी स्लेट उठाकर गुरु महाराज को पकड़ा दी। ताकि उस पर वे उसके भाग्य उकेर दें।

सुलखनी की आस्था देखकर गुरु महाराज ने स्लेट उसके हाथ से पकड़ ली। वे स्लेट पर 1 का हिंदसा (अक्षर) लिख रहे थे कि किसी कारण से घोड़ा बिदक गया, और 1 का हिंदसा 7 में बदल गया। सुलखनी के घर सात बेटे ज़न्मे, बाँझ सुलखनी सात पुत्रों की माता हो गई।

(27)

माझे के गुरसिक्खों को निहाल करके गुरु महाराज ने दोआबे का दौरा किया। सुलखनी जैसी श्रद्धालुओं की मनोकामनाएं पूरी करते। दोआबे में उन्होंने जालंधर के नज़दीक करतारपुर नाम के क़स्बे में अपना ठिकाना बनाया। दूर-दूर से संगतों की भीड़ें आने लगीं। इन दौरों में गुरु हरिगोबिंद पंजाबी नौजवानों को अपनी सेना में भरती कर रहे थे। इतने साल उनकी अनुपस्थिति में जो ताना-बाना शिथिल पड़ गया था, उसे फिर से मज़बूत बनाना था। हथियार इकट्ठे करने थे। घोड़े जुटाने थे। तगड़े-तंदरुस्त

नौजवानों को अपने साथ लाना था ताकि उनका सही प्रशिक्षण हो सके।

जब गुरु महाराज करतारपुर में टिके हुए थे, उस बीच कई पठान योद्धे उन्हें मिलने आए। उनके दीदार करते ही उनके बाहुबल, बहादुरी और शक्ल का दीवाना हो जाता। उनके साथ रहने के लिए लालायित हो जाता। करतारपुर के निकट बड़े पीरगाँव में इस्माइल ख़ान नाम का एक पठान सरदार कई पठानों को गुरु महाराज की शरण में ले आया। इनमें से 26 नौजवानों को गुरु महाराज ने अपनी सेना में भर्ती कर लिया।

इस दौरे की सबसे बड़ी उपलब्धि पयंदा ख़ान था। पयंदा ख़ान से गुरु महाराज की भेंट अमृतसर में हुई थी। उम्र में छोटा होने के कारण उसे फ़ौज में तो भर्ती नहीं किया जा सकता था पर छोटे-मोटे कामों के लिए उसे नौकर रख लिया गया था। इनमें पालतू चीते के जोड़े की देखभाल भी थी। चीते उसके साथ हीले हुए थे। पर गुरु महाराज के दिल्ली और फिर ग्वालियर जाने के बाद, माता दमोदरी जी ने चीतों को आज़ादी देकर जंगल में छुड़वा दिया था। क्या पता गुरु महाराज कब लौटेंगे और चीते इतने बड़े हो गए थे। पयंदा ख़ान के अंदर का नौजवान और कोई ख़ास ज़िम्मेदारी नहीं निभा सकता था, काम की तलाश में करतारपुर के पास बड़े पिण्ड में ख़ान का नौकर बन गया। अमृतसर में अमन और सुंदरी ने दो-चार, दस दिनों तक उसकी प्रतीक्षा की, इधर-उधर उसे तलाश करने की भी कोशिश की, फिर उन्होंने सोचा, लाहौर लौट गया होगा। इतना नटखट, इतना खिलंदड़ा था कि वह एक खूंटें से बँधकर नहीं रह सकता था।

एक ही नज़र में गुरु महाराज ने पयंदा ख़ान को पहचान लिया। वह तो उनका बहुत लाडला था। तब बच्चा सा होता था। कच्ची उम्र का बालक था। पर अब कितना सजीला जवान निकला था। कमाल का जरनैल बनेगा। उसे पहली बार देखकर यही तो गुरु महाराज ने सोचा था।

पयंदा ख़ान में असाधारण संभावनाएं थीं। हट्टा-कट्टा लगता था जैसे उसका हर अंग बंद-बंद किसी ने गढ़ कर बनाया हो। उसका पोटा-पोटा इस्पात का बना था। खुले-चौड़े कंधे, ऊँचा-लंबा क़द। गालों में से फूटती हुई लाली जैसे चूती जा रही हो।

इस्माइल ख़ान उसके बारे में गुरु महाराज को बता रहा था, "एक रुपया पकड़ कर एक अंगूठे से दोहरा कर देता है।"

"ज़रा देखें तो सही।" गुरु महाराज के पीछे बैठे भाई बिधिचंद ने कहा।

इस्माइल ख़ान ने जेब से एक रुपया निकालकर पयंदा ख़ान को दिया। रुपये को दायें हाथ के अँगूठे और बीच की अंगुली में पकड़ कर उसने इस तरह दबाया जिस तरह आलूचे को पिचका रहा हो, चाँदी का रूपया दोहरा हो गया। उसके चेहरे पर एक शिकन भी न आई। यह देखकर सब अश-अश हो उठे।

अब इस्माइल ख़ान बता रहा था, "हमारे गाँव में किसी ने गाय या भैंस को नथ डालनी हो, अकेला पयंदा ख़ान चारों टांगे बाँधकर जानवर को गिरा लेता है। गर्दन पर टाँग रख कर एक हाथ से थूथनी पकड़ता है दूसरे हाथ से नकेल डाल देता है। मजाल है कि जानवर हिल जाए। चूनागंज की पक्की दीवार को एक धक्के से चकनाचूर कर देता है। एक दिन हमारे गाँव में रस्साकशी हुई। एक तरफ़ गाँव के सारे लोग और दूसरी तरफ़ अकेला पयंदा ख़ान। इसने हम सब को हरा दिया। तेज़ दौड़ते हुए घोड़े को लात मार कर सवार समेत औंधा कर देता है।"

"और नहीं तो यह तमाशा तो देखा जा सकता है।" अब भाई जेठा बोले।

"घोड़ा भाई जेठा दौड़ा कर लाएगा।" भाई बिधिचंद ने राय दी।

"मैं तैयार हूँ।" गुरु महाराज के देखते-देखते भाई जेठा कूद कर घोड़े घर जा बैठे और उसे दूर ले जाकर सरपट दौड़ाते हुए ले आए। जब घोड़ा पयंदा ख़ान के पास आया तो उसके हाथ के स्पर्श से घोड़ा व घुड़सवार दस क़दम दूर जाकर औंधे गिर पड़े। बस इतनी ग़नीमत हुई कि न भाई जेठे को न घोड़े को कोई चोट आयी।

अब इस्माइल ख़ान पयंदा ख़ान के निशाने की, तीरांदाज़ी की, गतके के पैतरों की बड़ाई करने लगा। उसका और इम्तहान लेना ज़रूरी न समझकर गुरु महाराज ने उसे अपनी सेना में भर्ती करके बाक़ी सैनिकों की सिखलाई के लिए नियुक्त कर दिया और पयंदा ख़ान से वादा किया कि बाक़ी शस्त्र विधा उसे वह खुद सिखाएंगें।

पयंदा ख़ान सचमुच एक बेमिसाल सूरमा था। चारों तरफ़ उसकी धूमें मच गयीं। गुरु महाराज का लाडला। वह उसकी ख़ुराक का विशेष ध्यान रखते। पयंदा ख़ान भी जैसे उन पर जान देता हो। आठों पहर उनके आगे पीछे रहता। समय गुज़रने के साथ पयंदा ख़ान की क़द्र और भी बढ़ती जा रही थी। उसकी वर्दी सबसे न्यारी थी। उसकी तंख्वाह सबसे ज़्यादा थी। उसका रूत्बा सेनापति के बराबर था। जो घोड़ा उसे पसंद आता उसके

हवाले कर दिया जाता। जो बाज़ उसे अच्छा लगता उसके लिए हाज़िर कर दिया जाता। जिस तलवार पर उसकी नज़र होती, उसे कोई इंकार नहीं करता।

पयंदा ख़ान के रहने के लिए अलग हवेली बनाई गई, जैसे शीशमहल हो। ढेर सी ज़मीन भी घर के साथ जोड़ी गई। उसके खाने पीने की सुविधा के लिए दो भैंसे और एक गाय रख दी गयीं।

कई बार गुरु महाराज को यह कहते हुए सुना गया—पयंदा ख़ान मेरे बेटे जैसा है। सचमुच पयंदा ख़ान इस सारे आदर और प्यार का हक़दार था। उसके जैसा सूरमा मुग़ल फ़ौज में भी कोई नहीं था। वह बाहुबल में, हथियारों के प्रयोग में, युद्ध की कुटिल नीति में निपुण था। इन बातों में उसका और कोई सानी (समकरन) नहीं था।

और सब गुण थे, बस एक अवगुण उसमें था, हर चौथे दिन घोड़े पर ज़िन कसके बड़े पीरगाँव की ओर चला जाता। गुरु महाराज को पता चला, वहाँ किसी सैयद औरत के साथ उसकी आशनाई थी। अगर ऐसा था तो इसमें छिपाने वाली बात कौन सी थी ? गुरु महाराज ने खुद बीच में पड़कर इसकी शादी करवायी। बड़ी शान से पयंदा ख़ान का निकाह हुआ। ढेर सी सौग़ातें दी गयीं। पयंदा ख़ान का घर बस गया, वह बहुत खुश था। कुछ लोग कहते पयंदा ख़ान की पत्नी बहुत कट्टर महिला थी। नमाज़ रोज़े की पाबंद। पयंदा ख़ान को अपने पीछे लगाए रखती। उस साल रमज़ान के महीने में पयंदा ख़ान ने पूरे के पूरे रोज़े रखे थे।

इसमें हर्ज भी क्या था ? गुरु महाराज तो हमेशा कहते थे, मुसलमान को अच्छा मुसलमान होना चाहिए, हिन्दू को अच्छा हिन्दू। गुरसिक्खों की अपने गुरु के प्रति श्रद्धा में फ़र्क़ नहीं आना चाहिए। कई बरस बीत गए। पयंदा ख़ान के रुत्बे में आदर सत्कार में कोई फ़र्क़ नहीं आया। अगर उससे कोई नीची-ऊँची बात हो जाती, गुरु महाराज का कोई निकटवर्ती उसके खिलाफ़ शिकायत करता, गुरु महाराज सुनी-अनसुनी कर देते।

इस तरह पयंदा ख़ान में एक अजीब तरह की अकड़ आ गई थी। कई बार ऐसा भी होता कि सारे सरदार दरबार में हाज़िर होते। पयंदा ख़ान नदारद रहता। गुरु महाराज की हिदायत थी कि सब महकमों के अधिकारी अपनी निर्धारित वर्दी में आएं, पयंदा ख़ान साधारण शहरी की पोशाक में आ घुसता।

पयंदा ख़ान की बहादुरी का लिहाज़ करके गुरु महाराज अनदेखी कर

देते।

यह देख कर पयंदा ख़ान का दिमाग़ और भी ख़राब हो गया।

जब भी उसे मौका मिलता गुरु महाराज को सलाह देता, "मुग़ल लश्कर के साथ हमें दो-दो हाथ करने चाहिए। आप हमें कुछ करके दिखाने का कुछ ` — तो दीजिए। आपकी सेना का एक-एक सूरमा मुग़ल फ़ौज के सैंकड़ों, फ़ौजियो . बराबर होगा।"

गुरु महाराज उसे समझाते, "हमारी सेना धर्म की रक्षा के लिए है, किसी ‾ आक्रमण करने के लिए नहीं।"

. ागर लड़ना होगा तो अन्याय के विरुद्ध लूट खसूट के विरुद्ध लड़ेंगे। हमारे . ए हिन्दू, मुसलमान बराबर हैं। हमें अपने सीधे सच्चे रास्ते पर चलते जाना है। यह रास्ता है। नाम जपने का, किरत करने का और बाँट कर खाने का। लड़ाई में यह सब नहीं हो सकता। तुझे मालूम है कि शहंशाह जहाँगीर और मलका नूरजहाँ हमारे दर्शनों के लिए आ रहे हैं ? उन्होंने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है। हमने उसे पकड़ लिया है। जब तक निभेगी हम इसे निभाएंगे। हमें अब शहंशाह और मलका की ख़ातिर के लिए तैयारियां करनी होंगी।

"इसका यह मतलब है कि हमें दुश्मन से लोहा लेने का मौक़ा नहीं मिलेगा ?" पयंदा ख़ान के स्वर में मायूसी थी। गुरु महाराज ने फ़रमाया, "पयंदा ख़ान मैंने बेशक तलवार उठाई है लेकिन मैंने भरसक अपने पिता गुरु देव का रास्ता भी नहीं छोड़ा।" यह कैसे हो सकता है ? पयंदा ख़ान की समझ में नहीं आ रहा था।

"यह हो सकता है। वक़्त आने पर यह बात तेरी समझ में आ जाएगी।"

"तो फिर मेरा होना बेकार है, मैं किस काम का हूँ ? मैं इन पुट्ठों का क्या करूँ, जिन्हें मैंने दिन रात कसरतें कर-करके ढाला है ? इस तलवार का क्या करूँ जो दुश्मन का ख़ून पीने के लिए प्यासी हैं ? अपने तरकश का क्या करूँ जिसका हरेक तीर किसी निशाने का अभिलाषी है। मेरे भीतर एक योद्धा का लहू उबल-उबल कर हर अंग-प्रत्यंग को जलाता रहता है। मुझे दीवारें और छतें जैसे ललकार रही हैं। मैंने तो एक सूरमे का साथ तलाश किया था और अगर मुझे....................."

"बस-बस पयंदा ख़ान।" गुरु महाराज ने पयंदा ख़ान को रोका। "सूरमा वह होता है जो आस्तिक का दम भरे, जो केवल अमन को बहाल करने के

लिए तलवार उठाता है।" ऐसा लगता कि यह सब कुछ पयंदा ख़ान की समझ से बाहर था। वह अनमने मन से गुरु महाराज के सामने खड़ा रहता।

(28)

"साजन देसि विदेसीअड़े सनेहड़े देंदी।"

मलका नूरजहाँ ने अपनी बेयाज़ खोली तो इस तुक पर उसकी नज़र जा पड़ी। पिछले कई दिनों से एक अजीब तरह का वहम उस पर हावी था। वह सम्पूर्ण रूप से उसकी जकड़ में थी। जब उसका मन उतावला और परेशान होता, उसे हर चीज़ और की और महसूस होने लगती, ऐसे में वह बेयाज़ खोलकर पन्ने की पहली पंक्ति पढ़ती, उसे लगता जैसे वह पंक्ति उसके अन्तरतम को चित्रित कर रही है। उस के विचार उस तुक में प्रतिबिम्बित हो रही है। उसके मन में आए सवाल का जवाब जैसे उसको मिल गया था।

बेयाज़ में लिखी इस तुक को पढ़कर मलका और उदास हो गई। एक मीठा-मीठा दर्द उसे महसूस होने लगा। रूआँसी-रूआँसी आँखें चेहरे पर किसी याद की परछाईं गुप-चुप। खोयी-खोयी, उखड़ी-उखड़ी, छूई-मुई सी हो गई थी।

नूरजहाँ जैसी ह ाना की यह मनोदसा छिपाए नहीं छिपती। महलों में लौटकर जहाँगीर ने पहला सवाल मलका से किया, "आपकी तबियत तो ठीक है ?" नूरजहाँ के पास कोई जवाब नहीं था।

जब शहंशाह ने और ज़िद की, उसके आँसू छलक आए। शहंशाह ने मामले की नज़ाकत को पहचानते हुए बात का और पीछा नहीं किया। फ़ैसला हुआ कि मलका का दिल बहलाने के लिए वे पंजाब होते हुए कश्मीर चलेंगे। जहाँगीर ने सोचा राजधानी में रहकर मलका का मन भर गया था।

यह प्रस्ताव सुनकर नूरजहाँ पर जैसे जादू का असर हुआ, वह अचानक खिल उठी, शौक़ से शहंशाह के लिए उसका जाम तैयार करने लगी। महल में फिर आम दिनों जैसी गहमा-गहमी का समां बँध गया।

रात को देर तक शहंशाह जहाँगीर जाम पर जाम पीता गया। हर रात वह मल्लिका से ना पीने का वादा करता, हर अगली शाम वह वादे को तोड़ देता।

बिना किसी ना-नुकुर के मल्लिका ने शहंशाह को पाँचवा जाम पेश किया था। जाम को पकड़ते हुए जहाँगीर कहने लगा, "लाहौर के रास्ते में

हम अमृतसर रूकेंगे, बेगम के गुरु से मिलने चलेंगे।"

"क्यों ?" आप तो उनके धर्म को 'दुकाने-बातिल' कहते हैं। मल्लिका नूरजहाँ ने अपने शौहर से छेड़ख़ानी की।

"वह तो शायद अब भी मैं कहता हूँ। मैं एक मुसलमान शहंशाह हूँ लेकिन मुझे वह आदमी दिलचस्प लगता है।"

"सिर्फ़ दिलचस्प ?"

"ख़ूबसूरत भी, उसे देखकर मेरे मन में कई सवाल उठते रहे हैं, इस बार मैं उसके साथ खुलकर बात करना चाहूँगा।"

"मैं उसकी बेगम से मिलूँगी।"

"एक नहीं-तीन हैं तीन।" जहाँगीर ने नूरजहाँ को छेड़ते हुए कहा।

"कोई बात नहीं। तीन ही सही, जितना ज़्यादा गुड़ उतना ज़्यादा मीठा, मुझे उनसे मिलने का चाव है। मुझे उस से माफ़ी भी माँगनी है।"

उस रात अपनी ख़्वाबगाह में सोने से पहले मल्लिका नूरजहाँ पर मालूम नहीं कौन सी सनक सवार हुई, वह तेज़ कदमों से अलमारी में से एक बेयाज़ निकाल कर लाई, एक पन्ना खोला तो इस श्लोक पर नज़र पड़ी :

डिठी हथ ढंडोलि हिकस बाझ न कोइ।
आओ सजन तू मुखि लगु मेरा तनु मन ठण्डा होइ।

और नूरजहाँ अपनी बेयाज़ को सीने से लगाकर गहरी नींद सो गई।

आजकल अकसर यह श्लोक मल्लिका का होंठों पर थिरकता रहता था। दिन-रात यही श्लोक और कुछ नहीं। लेकिन मजाल है कि उसने इसके बोल मुँह से निकाले हों, जैसे कोई पाक राज़ हो, वह इसे अपने सीने में छिपाये रखती।

और उस दिन उसकी साँस ऊपर की ऊपर व नीचे की नीचे रह गई। शाम को पहला जाम पीने के बाद ही शहंशाह जहाँगीर एक हिलोर में आकर गाने लगा :

"आउ सजन तू मुखि लगु मेरा, तनु मन ठण्डा होइ।"

उसके शौहर ने यह बोल कहाँ से सुने थे। वह बार-बार अपने से सवाल करती। उसने तो कभी यह श्लोक कभी किसी को नहीं सुनाया था। बेशक कई दिनों से यह रहता उसके होंठों पर ही। उसके शौहर के पास यह बोल कैसे पहुँच गए थे।

जहाँगीर जब कोई बदतमीज़ी करके आता था तो नूरजहाँ के अंदर की

औरत को पता चल जाता था। जब भी नूरजहाँ के साथ उसने ज़्यादती की थी फ़ौरन उसका दिल डूबने लगता था। जब वह महलों में लौटता तो अपने मर्द में उसे एक तरह की बू आती थी।

तभी अमृतसर में दाख़िल करने से पहले नूरजहाँ ने अपने आप को तैयार किया। जैसे कोई सिपाही जंग में जाता है। उसने अपने आस-पास इस्मत, सति, पाकीज़गी और पतिभक्ति के क़िले की दीवारें सख़्त कर लीं।

लेकिन यह किस तरह का स्वागत उन दोनों का हो रहा था ? इस तरह का स्वागत तो शहंशाह जहाँगीर का कहीं नहीं हुआ था। उनके शहर में दाख़िल होने से एक कोस पहले जनता सड़क की दोनों तरफ़ खड़ी शहंशाह के जुलूस का स्वागत कर रही थी। रंग-बिरंगे कपड़े, खिले हुए चेहरे, दीवार जैसे ऊँचे क़द के किसान और शेरनियों जैसी औरतें, गेहुँआ रंग, छलकता हुआ जोबन, नज़रों ही नज़रों से जादू करती हुयीं।

और फिर शहंशाह शहर में दाख़िल हुआ। जगह-जगह पर स्वागत द्वार। सारी की सारी सड़क जहाँ से शाही मेहमान को गुज़रना था, शीशे की तरह साफ़ की गयीं थीं। चाहे कोई खाने का गिरा हुआ कौर उठाकर खाले। लोग छतों और झरोकों में बैठे, शहंशाह और मल्लिका नूरजहाँ पर पुष्प वर्षा कर रहे थे। 'शहंशाह जहाँगीर ज़िन्दाबाद, मल्लिका नूरजहाँ ज़िन्दाबाद'। के नारे आकाश को चीर रहे थे। हरिमंदर साहब के नज़दीक पहुँच कर शहंशाह के जुलूस के लिए ज़मीन के लिए दरियाँ और क़ालीन बिछे थे, चारों तरफ़ गुलाब, अर्क़ और खुश्बूओं की सुगंध थी। अनगिनत रंग-बिरंगी झण्डियाँ रास्ते की दोनों ओर लगी थीं।

हरिमंदर साहब के बाहर ड्योढ़ी पर भाई बुड्ढा जी और भाई गुरदास जी ने शहंशाह और मल्लिका का स्वागत किया। फूलों के हारों से शाही दंपत्ति को लाद दिया गया। हरिमंदर साहब के सरोवर को देखकर शाही दंपत्ति एक सुरूर में आ गए। भीतर हो रहे कीर्तन को सुनकर हरिमंदर साहब की छवि देखकर उनके मन शांत हो गए शीश झुक गए, हाथ जुड़ गए। यहाँ तो सचमुच जन्नत का नज़ारा देखने में आ रहा था। थोड़ी देर बैठ कर उन्होंने कीर्तन सुना और अपना जन्म सफ़ल किया।

इधर गुरु महाराज ने शहर के दुकानदारों को हुक्म दिया था कि शहंशाह का हमला जो सौग़ातें भी ख़रीदे, जो खाना चाहे उसकी क़ीमत उनसे न ली जाए। यह सारा ख़र्च गुरु महाराज ख़ुद देंगे।

शहर भर में एक रौनक़ थी जैसे कोई मेला लगा हो। अमृतसर के लोग और बाहर से आए मेहमान हँस रहे थे, खेल रहे थे और खा रहे थे।

शहंशाह कई सवाल अपने मन में लेकर आया था। जब एकांत में गुरु महाराज के साथ उसे बैठने का मौक़ा मिला तो उसे कोई सवाल भी याद नहीं आ रहा था। जैसे गुरु महाराज से मिलकर उसके सारे संशय दूर हो गए थे। आख़िर मल्लिका ने एक सवाल किया, "आप अपनी जवानी के शिखर पर हैं। फिर इतने सुंदर, इतने तंदरूस्त आपको मिलने हर उम्र की औरतें आती हैं। वे सब आपको प्यार न करने लगती हों यह मैं नहीं मान सकती। आप अपने आप पर कैसे क़ाबू रखते हैं। इस उम्र में यह हुस्न, इस जवानी, इस पदवी पर रहकर आप अपने को बचाकर रखते हो इसे कैसे यकीन किया जा सकता है।"

गुरु महाराज यह सुनकर मुस्कुराने लगे। इस सवाल का जवाब में उन्होंने एक घटना का बयान कर दिया। एक बादशाह एक फ़कीर के पास गया। बहुत देर उसकी संगत में बैठा रहा। मार्फ़त की बातें सुनता रहा। कहता, मेरा भक्ति में मन रहा। ऐशो-इशरत में डूबा रहता हूँ। विदाई के समय महात्मा ने उसे बताया कि ठीक आठ दिनों बाद उसकी मौत हो जाएगी। इन आठ दिनों में वह जी भर कर ऐशो-इशरत कर ले। जी भरकर खा ले, जी भर कर शराब पी ले। जी भरके स्त्री का भोग कर ले। यह सुनकर बादशाह सारी ऐशो-इशरत खाना-पीना, नाच-गाना, स्त्री-भोग भूल गए। मौत की छाया में उसे न दिन में आराम आता न रात को चैन पड़ता। गुरु महाराज ने समझाया। बात यह है कि इंसान को मौत की याद नहीं भूलनी चाहिए। जिसे मौत याद रहती है, उसे अल्लाह का डर रहता है जो अल्लाह से डरते हैं वो अल्लाह से प्यार करते हैं। उन्हें दुनियावी कमज़ोरियाँ और लालच परेशान नहीं करते।

इन वचनों को सुन कर नूरजहाँ को तसल्ली हो गई। उसके सवाल का जवाब उसे मिल गया। फिर वह दामोदरी जी के यहाँ हाज़िर हुई। यह देखने के लिए वह कैसी हस्ती थी जिसे इस तरह के महापुरुष का साथ प्राप्त था। गुरु महाराज की दीवानी वह अपने महबूब के बारे में और-और जानना चाहती थी। और नहीं तो उसकी बातें ही करना चाहती थी। ख़ास तौर पर उसके साथ, जिसे उनकी सेज का साथ प्राप्त था।

माता दमोदरी जी की नम्रता और प्रेमा भक्ति को देखकर मल्लिका

हैरान रह गई। इतनी सुघड़, इतनी सुशील, इतनी मृदु भाषी, अंदर-बाहर से धुली हुई, जैसे कोई सुराही हो। उनके लिए आकाश में ईश्वर और धरती पर पति परमेश्वर थे। यही उनकी कमाई थी।

आख़िर मल्लिका से न रहा गया। उसने दमोदरी जी से पूछा, "इतनी देर आपके शौहर ग्वालियर में क़ैद रहे, आपको कैसा लगता था ?"

"जब मैं उनके पास नहीं थी, तब भी मैं उनके पास होती थी। पल-पल, छिन-छिन उनकी याद में बसी रहती थी।"

"इस तरह एक औरत ही सोचती है कि मर्द भी सोचते हैं ?" मल्लिका नूरजहाँ ने पूछा।

"इसका जवाब आप उन्हीं से पूछिएगा।" और दमोदरी जी हँसने लगीं। नूरजहाँ ने भी हँसते-हँसते दमोदरी जी से विदा ली।

(29)

यह बात हँसने वाली भी थी और नहीं भी।

नारी के मन को पहचानना बड़ा मुश्किल होता है। नूरजहाँ के लिए जैसे यह एक चुनौती थी। वह जानना चाहती थी, जैसे दमोदरी जी अपने पतिदेव के प्रति समर्पित थीं। क्या गुरु महाराज भी अपनी पत्नी के प्रति उतने ही समर्पित थे ? मर्द जाति के बारे में उसका अनुभव खट्टा-मीठा था। यह जानना ज़रूरी था। इसलिए वह एकांत में गुरु महाराज के साथ मुलाक़ात चाहती थी। यह कैसे संभव हो सकता था।

हो सकता था। मल्लिका नूरजहाँ ने जहाँगीर को राज़ी कर लिया कि कश्मीर के दौरे में गुरु महाराज को भी साथ चलने के लिए तैयार किया जाए। जहाँगीर को कोई एतराज़ नहीं था। बल्कि वह ख़ुद भी यही चाहता था। ज्यों-ज्यों गुरु महाराज के नज़दीक आ रहा था, उसकी दिलचस्पी और बढ़ रही थी कि उन्हें और भी जाने। सचमुच गुरु हरिगोबिंद एक अनोखी श़खियसत थे।

अमृतसर से लाहौर जाने से पहले शहंशाह और मल्लिका ने गुरु महाराज के सामने प्रस्ताव रखा कि वे भी कश्मीर की सैर के लिए उनके साथ चलें। मल्लिका कश्मीर के नज़ारों का ज़िक्र करने लगी। कश्मीर की झीलें, कश्मीर के पहाड़, कश्मीर के सुहाने जंगल, फूल, पेड़ और सबसे अधिक ख़ूबसूरत कश्मीर के लोग, मर्द, औरतें।

गुरु महाराज ने क्षण भर के लिए कुछ सोचा। क्षण भर के लिए उनके

नयन मुँद गए, उनके मुखड़े पर एक मुस्कान खेल गई, फिर उन्होंने सर हिलाकर अपनी स्वीकृति दे दी। गुरु महाराज के क्षण भर के लिए आँखें मूँदने पर शहंशाह और मल्लिका दोनों ने पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया था।

गुरु महाराज ने बताया, "श्रीनगर में डल झील के किनारे एक बस्ती में गुरु घर की एक श्रद्धालु है—भागभरी। उसका कई दिनों से तक़ाज़ा है कि उसे दर्शन हों। बेचारी बहुत बूढ़ी हो गई है। फिर उसके आँखों की रौशनी भी जाती रही है। इन हालात में वह ख़ुद तो अमृतसर नहीं आ सकती, हमें बार-बार याद कर रही है।"

"तो फिर आपको ज़रूर चलना चाहिए।" मल्लिका नूरजहाँ ने आग्रह किया।

"आपको उसकी चिट्ठी आई है ?" शहंशाह ने पूछा।

"चिट्ठी तो कोई नहीं आई।" गुरु महाराज ने जवाब दिया। शहंशाह और मल्लिका नूरजहाँ यह सुनकर ख़ामोश हो गए।

चूँकि शहंशाह का तक़ाज़ा था, गुरु महाराज ने इंकार नहीं किया। लेकिन घर में कोई भी राज़ी नहीं था। मुग़ल पर इतबार नहीं किया जा सकता था। गुरु महाराज का कहना था कि शहंशाह ने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है उसे न पकड़ना ठीक न होगा।

इस फ़ैसले पर नूरजहाँ ख़ुश थी, बहुत ख़ुश। उसे गुरु महाराज में एक चुम्बक जैसी शक्ति महसूस होती थी। जब से उसकी मुलाक़ात गुरु महाराज से हुई थी, उसका मन करता था, वह और, और उनके निकट आए, और-और उनको जाने। इस तरह के मौक़े उसे कश्मीर की सैर के दौरान मिल सकते थे।

जहाँगीर और मल्लिका तो रावलपिण्डी के रास्ते कश्मीर गए, गुरु महाराज ने सियालकोट के रास्ते से जाने का फ़ैसला किया। शहंशाह कुछ दिन पहले श्रीनगर पहुँच गया था। गुरु महाराज के पहुँचने पर उनका आदर-सत्कार किया गया।

वहाँ पहुँचने के थोड़ी देर बाद गुरु महाराज माई भागभरी से मिलने के लिए चल पड़े। शहंशाह ने कहा, "आज ही तो आप आए हैं, इतनी जल्दी क्या है ?"

"नहीं, वह बेचारी कब से राह देख रही है, और देर करना ठीक नहीं होगा।" यह कहते हुए गुरु महाराज उठ खड़े हुए।

यह देखकर शहंशाह भी भेस बदलकर उनके पीछे चल पड़ा। उसने तो अमृतसर में ही यह फ़ैसला कर लिया था कि श्रीनगर पहुँच कर वह ख़ुद छान-बीन करेगा कि भागभरी नाम की कश्मीरन के बारे में गुरु महाराज ने जो बताया था, सच है कि नहीं। और शहंशाह देखकर हैरान हो गया, सचमुच भागभरी की आँखों की रौशनी जाती रही थी। गुरु महाराज का नाम सुनकर उसके चाव की हद ही नहीं थी। बार-बार अपनी पलकों को मल रही थी जैसे उनमें रौशनी आ रही हो। बार-बार गुरु महाराज के चरण छू रही थी। उसकी अरदास सुनी गई थी। गुरुं महाराज ने कितने साल प्रतीक्षा करवाई थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने इष्ट के ख़ातिर क्या करे, कैसे करे। यह देखकर गुरु महाराज ने कहा, "माई जो चोग़ा तुमने हमारे लिए बनाया है उसे लाओ।"

भागभरी ने वर्षों की कड़ी मेहनत से रेशम कातकर, बुनकर अपने हाथों से उस चोग़े को सिया था। उसने अपनी कोठरी में खड़े-खड़े वह चोग़ा गुरु महाराज को अपने हाथों से पहनाया।

अपने ठिकाने के लिए लौट रहे शहंशाह को अब जैसे तसल्ली हो गई। वह भागभरी और गुरु महाराज की इस मुलाक़ात की कहानी को मल्लिका को सुनाता रहा। हज़ारों कोस दूर कोई किसी के मन की बात बूझ ले, यह कैसे बूझ ले, यह कैसे मुमकिन है। शहंशाह की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। न कोई चिट्ठी न पत्री, कोई किसी का बनाया हुआ चोग़ा पहनने के लिए आ जाए कि किसी ने किसी को याद किया था ? गुरु महाराज का तंबू हमेशा की तरह शहंशाह के तंबूओं के नज़दीक गाड़ा जाता था। उस शाम मल्लिका नूरजहाँ अपनी एक हमराज़ कनीज़ के साथ गुरु महाराज को बिना सूचना दिए मिलने आ गई। पहाड़ी के दामन में, जहाँ आजकल निशात बाग़ है, गुरु महाराज का तंबू था, सामने चमचमाती डल झील थी, जिस पर कश्मीरी शिकारे बत्तख़ों की तरह तैर रहे थे, ठण्डी, मीठी हवा चल रही थी। चारों तरफ़ भीनी-भीनी ख़ुशबू फैली थी। चारों तरफ़ पेड़ रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए थे। पेड़ फलों से लदे थे। पक्षी चहचहा रहे थे। दूर कोई कश्मीरी दोशीज़ा यह बोल गा रही थी :

बहार आ गई है,
फूल खिल गए हैं
बुलबुल पुकार रही है,

तुम कहाँ हो ?

नूरजहाँ की पोशाक दमोदरी जी की पोशाक जैसी थी—सलवार, कमीज़ ऊपर से ढाके की मलमल का महीन दोपट्टा। दमोदरी जैसी बालों की गुंथी हुई मेढ़ियाँ। मोटी भारी चोटी, अख़रोट के छिलके से रंगे होंठ, आँखों में सुरमा। ऊँची-लंबी जैसे सुशील पँजाबिन हो। बस रंग गोरा था, जैसे उपलों के सेंक पर कढ़ा पाँच कल्पान का भैंस का दूध होता है। गोरा-गोरा गुलाबी आभा वाला। मल्लिका के आने से तंबू में एक खुशबू महकने लगी।

गुरु महाराज को अभी-अभी कुछ श्रद्धालु मिल कर गए थे।

"आपको मिलने बहुत लोग आते हैं, देखती हूँ क़तार लगी रहती है।" मल्लिका ने बात चलाई। पिछले दो-तीन दिन से मैं मौक़े की तलाश में थी। उसकी कनीज़ तंबू के बाहर-दरवाज़े पर बैठ गई थी।

"यह लोग किसी दूर गाँव से दर्शनों के लिए आए थे। सामने पड़े मटके में शहद लाए थे। इनके गाँव के शहद में से आलूचों की खुशबू आती है। रास्ते में ये कटटू शाह नाम के एक फ़कीर की दरगाह पर ठहरे थे। यह सुनकर कि अपने गुरु के लिए वे खुशबूदार शहद ले जा रहे हैं, कटटू शाह ने बार-बार कहा मुझे शहद तो चखाओ। यह लोग नहीं माने। यही कहते, अपने गुरु के लिए जो शहद हम लाए हैं उसे हम झूठा नहीं करेंगे। यहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, शहद में तो कीड़े पड़ गए हैं। मैंने उन्हें समझाया, जो शहद एक रब का फ़कीर नहीं चख सकता, उसमें कीड़े ही पड़ते हैं।" बेचारे अपना सा मुँह लेकर चले गए।

यह सुनकर मल्लिका नूरजहाँ की आँखें खुल गयीं। इस तरह के विचार रखने वाले धर्म को 'दुकाने बातिल' कहना, उसे अपने शौहर पर तरस आने लगा।

"मैं आपकी सेवा में हाज़िर हुई हूँ, मुझे..........." और फिर बात जैसे नूरजहाँ के गले में अटक गई। क्षण भर के लिए गुरु महाराज ने प्रतीक्षा की, फिर मल्लिका की मजबूरी समझते हुए गुरु महाराज ने नूरजहाँ को, गुरु महाराज जी के ये श्लोक सुनाए :

> सूहब ता सोहागनी जा मनि लेहि सनु नाउ ॥
> सति गुरु अपना मनाइ लै रूपु चड़ी ता अगला दूजा नहि थाऊ ॥
> ऐसा सिगारु बणाइ तू मैला कदे न हो वइ,
> अहि निसि लागै भाऊ ॥
> नानक सुहागणि का किया चिंहनू है अंदरि

सचु मुखु ऊजला खसमै माहि समाइ ॥

(श्लोक महला ३, वार सूही म. ३)

यह सुनकर मल्लिका नूरजहाँ के भीतर जैसे ठण्डक पड़ गई हो। और वह इजाज़त लेकन अपने तंबू में चली गई। शहंशाह का दौरे से लौटने का वक़्त हो गया था। लेकिन जाने से पहले नूरजहाँ ने अगले दिन फिर मुलाक़ात की इच्छा की।

(30)

आश्विन व कार्तिक के दिन। कश्मीर का मौसम अत्यंत सुहाना था। जैसे कुदरत अँगड़ाई ले रही हो। चिनार के पेड़ जैसे नहा धोकर, हरे लबादे पहने, मस्त-मदहोश, ठण्डी मीठी हवा में झूम-झूम उठते, कभी शांत, निश्चिल, सरगोशियाँ करने लगते। सड़क की दोनों तरफ़ खड़े जैसे किसी की आमद का एलान कर रहे हों। 'बा-अदब, बा-मुलाहिज़ा, होशियार।' चारों तरफ़ हरियाली के ग़लीचे बिछे थे। क़दम-क़दम पर फूल चेहरे उठाकर मर्सरतें बाँटते। इन रंग और खुशबूओं से वातावरण में एक जादू का एहसास होता।

दूर पहाड़ों पर जहाँ तक नज़र जाती बर्फ़ें, पिघल-पिघल कर पागल हो रही थीं। नदी नाले अफ़रे-अफ़रे थे। झेलम जैसे सोया-सोया जैसे अपने लंबे सफ़र के लिए कमर कसने में मगन हो। रंग-बिरंगे शिकारे और डोंगे फूल पत्तियों की तरह झेलम के सीने पर तैर रही थीं। शांत पानी पर फ़िसलती कश्तिएं खामोशी का एक नग़्मा छेड़ रही थीं। सेब और बग्गू गोशे, नाशपातियाँ, आलू बुख़ारे का ढेर लगा था। पेड़ों के नीचे टूटकर सड़ रहे थे। पक्षी चोंच मार-मार कर उनका सत्यानाश कर रहे थे। कश्मीरिनें गुच्छियों, खुमानियों, लाल मिर्चों और शलजमों के हार पिरो-पिरो कर सूखने के लिए डालतीं।

बेफ़िक्र कश्मीरी, कांगड़ियों के बग़ैर सारी रात सूफ़ियाने कलाम गाते। दिन में लोक-गीतों का लुत्फ़ लेते। कहीं सारंगी, कहीं अलगोज़ा, कहीं संतूर, कहीं बांसुरी नग़्मों की धुनें आपस में मिलती और बिखरती रहतीं। बत्तखें, हंस, मुर्ग़ाबियाँ, झीलों के पानी में तैरती रहतीं। पंखों से पंख, गर्दन से गर्दन मिलाकर अठखेलियाँ करने लगतीं।

कबूतर गुटर गूँ करते, एकांत स्थानों में छुप कर बैठते। कभी उड़ानें भरकर कतारों में दूर निकल जाते, फिर लौटकर अपनी जगह पर आ जाते। हाजी ज़ियारतें करते, पंडित मंदिरों, शिवालयों में घण्टे बजाते, पूजा करते, कोशिश करके छड़ी के साथ अमरनाथ की यात्रा पर निकल जाते।

त्यौहार मनाए जाते, मेले लगते। शहनाईयों की मधुर धुन पर निकाह होते। शादियाँ होतीं। ढोल और तूतियों की आवाज़ें दायें-बायें से सुनाई देतीं। अन्धेरी रातें सन्देशें देतीं। चाँदनी रातें प्रेमियों को मिलाती। कुछ ऐसा वातावरण था जब शहंशाह जहाँगीर मल्लिका नूरजहाँ कश्मीर की सैर के लिए आए थे। गुरु महाराज का साथ, नूरजहाँ जैसे सिहर रही थी जैसे किसी ने उस पर टोना कर दिया हो। उस दिन मल्लिका ने चाँदी के रंग का रेशमी अंगरक्खा पहन रखा था। गर्दन से लेकर ऐडियों से भी नीचे घिसटता हुआ, जिसे दो कनीज़ें सम्हाल रही थीं। कमर तक लहराते हुए खुले बाल, ऊपर जालीदार दुपट्टा। नख शिख सम्हाल कर श्रृंगार के आइने के सामने खड़ी ऐसी लगती जैसे अभी-अभी आसमान से उतरी कोई परी हो।

उसकी हमराज़ कनीज़ महजबीं उसके चेहरे की ओर देखती रह गई। जब सज कर मल्लिका नूरजहाँ ने एलान किया, "मैं मेहमाने खुसूसी के ख़ेमे की ओर जाना चाहूँगी।"

आज मल्लिका अपने शौहर का मुक़दमा लेकर आई थी। जहाँगीर शराब बहुत पीता था उसने अपनी सेहत से संन्यास ले लिया था। "आप उसे रोक सकती हैं।" गुरु महाराज ने परामर्श दिया।

"हर सुबह वह वायदा करते हैं, हर शाम उसे तोड़ देते हैं।"

"वह बीवी क्या हुई जिसके साथ के वायदे को उसका शौहर बार-बार तोड़ता रहे। बेशक वह शहंशाह ही क्यों न हो।" गुरु महाराज ने फ़रमाया।

"इस हद तक मैं अपनी हार मानती हूँ" एक पत्नी की अपने पति के प्रति वफ़ादारी, इस बात की साक्षी है कि पति उसकी बात का सत्कार करेगा। एक दूसरे में भरोसा और ईश्वर में विश्वास हो तो फिर पति-पत्नी एक ज्योति दो मूर्तियाँ रह जाते हैं।

क्षण भर के लिए मल्लिका नूरजहाँ सोच में डूब गई हो। वह अपने मन को टटोल रही हो। यह देखकर गुरु महाराज ने सवाल किया—"यह बताइये, क्या आप ख़ुद मदिरा पीती हैं ?" नूरजहाँ का चेहरा लाल सूर्ख़ हो गया। यह तो वह नहीं कह सकती कि वह शराब नहीं पीती थी।

"चाहे आप एकाध ही जाम लेती हों, जब तक आप खुद इससे परहेज़ नहीं करेंगी, किसी दूसरे को कैसे शिक्षा दे सकती हैं। यही तो कारण है कि आपके साथ किए वायदे को आपके शौहर भूल जाते हैं।"

नूरजहाँ की आँखें खुल गयीं। और एक भेंट के लिए विनती करके वह

लौट गई।

अगले दिन जब मल्लिका ने पुछवाया तो पता लगा, गुरु महाराज माई भागभरी के घर गए थे। उसका आख़िरी समय आ गया था। और उसकी अंतिम साँस उनके सामने निकली थी। अब वे उसके दाह-संस्कार में, शामिल हो रहे थे।

मल्लिका नूरजहाँ को अपने कानों पर विश्वास नहीं आया। एक वह थी जो उनके स्पर्श के लिए तड़प रही थी; एक वह थी जिसकी आत्मा को वे ख़ुद जन्नत के दरवाज़े तक पहुँचा रहे थे।

अपने ख़ेमे में लौटी तो मल्लिका बेयाज़ लेकर बैठ गई। सारी शाम उसे बाँचती रही।

और फिर गुरु महाराज पंजाब लौटने के लिए तैयार हो गए। लगता था कि इतना लंबा सफ़र तय करके वे सिर्फ़ माई भागभरी का चोग़ा स्वीकार करने और अंतिम समय में उसे आशीष देने के लिए आए थे।

(31)

हज़रत मियां मीर : (नत्था को) नत्था मियां, बाहर जाकर देखो, बीबी की पालकी अभी तक क्यों नहीं आई ?

कौला : दिन रात की भटकन, दिन रात की यंत्रणाएं। दिन रात का बिरह। मेरा तो उस घर में दम घुट कर रह जाएगा।

हज़रत मियां मीर : बीबी, हर काम के लिए वक़्त नियत होता है। जब वह घड़ी आती है, तो सारा इंतज़ार ख़त्म हो जाता है। मेरे दादा हुज़ूर, क़ाज़ी, कलंदर फ़ारूक़ी, मेरे वालिद बुजुर्गवार से कहा करते थे—साईं दित्ता, जब वक़्त आता है, तभी दुआ सुनी जाती है। उससे पहले दरवाज़े बंद रहते हैं, चाहे कोई कितनी फ़रयादें करे। यह तो मुरशीद की मेहरबानी है कि कब वह मेहर के दरवाज़े खोलता है।

कौला : माफ़ हुज़ूर, मैं बेकार में ही ज़ज़बाती हो गई। थोड़ी देर के लिए एक बहाव में बहक गई। आज के सुहाने, ख़ुशी वाले दिन मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।

हज़रत मियां मीर : तेरे वालिद क़ाज़ी रुस्तम ख़ान में ताअस्सुब है, दिल का बुरा नहीं।

कौला : हज़ूर को किसी में कभी कोई ऐब दिखाई नहीं देता, पर

मेरे अब्बा जैसा ख़ारबाज़ और तंग नज़र। इस जहान में कोई नहीं होगा।

हज़रत मियां मीर : क्यों, उसने अब कौन सा नया चाँद चढ़ाया है।

कौला : कुछ न पूछिए, वहाँ तो रोज़ नया शोशा छोड़ा जाता है। कई लोग यह भूल जाते हैं कि आगे जाकर जवाब भी देना होगा।

हज़रत मियां मीर : मैंने तुझे कभी बताया नहीं। गुरु अर्जन देव जी की शहादत की पूरी ज़िम्मेवारी काज़ी रूस्तम खान की है। काज़ी रूस्तम ख़ान और लाहौर के उसके ज़िम्मेवार हैं।

कौला : हजूर मुझसे कौन सी बात छुपी है ?

हज़रत मियां मीर : मुझे शहंशाह जहाँगीर ने खुद ही बताया है। बेचारा बार-बार हाथ मलता था। कहने लगा, मुझे कश्मीर जाने की जल्दी थी। मैं यह मामला शहर के काज़ी के हवाले कर गया था। दो लाख का जुर्माना मैंने ज़रूर लगवाया था। मैंने यह थोड़ी ही कहा था कि अगर जुर्माना अदा न करें तो उन्हें इस तरह की तकलीफ़ें दी जाएं कि उनकी जान ही जाती रहे।

कौला : साहब श्री अर्जुन देव जी को अज़ीयतें देने का फ़ैसला अब्बा जी ने दिया। फ़ैसला मेरे घर में हुआ। मैं वह रात कभी नहीं भूलती। अब भी जब मैं उस काली-बहरी रात के बारे में सोचती हूँ तो मेरे कानों में जैसे उल्लूओं की चीख़ें सुनाई देती हैं, उजाड़-बियाबानों में जैसे गीदड़ और चिलचिलाती धूप में जब कव्वे की आँख निकलती है, तब किसी चील का पड़ोसी गिद्ध को आवाज़ें लगाना। उस रात मेरी आँख नहीं लगी। बार-बार मेरे सीने में बेचैनी उठती। मैं अपना सर बार-बार कमरे की खिड़की के सलाँख़ों पर पटकने लगती, माथे पर निशान पड़ गए।

नत्था : (आते हुए) बीबी, तेरी पालकी तो अभी तक नहीं आई, मैं राह देख-देख कर लौट आया हूँ।

हज़रत मियां मीर : यह क्या हुआ ? ऊपर से अन्धेरा पड़ने लगा है। लड़की

को मुज़ंग पहुँचना है। लम्बा सफ़र है, मैं खुद देखता हूँ। नहीं तो किसी को क़ाज़ीपाड़े भेजना होगा। (हज़रत बाहर जाते हैं)

कौला : अच्छा हो, आज घर वाले पालकी भेजना भूल जाएँ।

नत्था : जब लौ लग जाए तो फिर कुछ और अच्छा नहीं लगता। लड़की तू भागों वाली है। शहर के क़ाज़ी के घर जन्मी और शहर के औलिया की शरण में जिसे जगह मिल गई।

कौला : शहर के क़ाज़ी की तंग नज़री और ताअस्सुब के तंदूर में भुनते रहना, शहर के क़ाज़ी के कपट और फ़रेब में अपने को मैला-मैला महसूस करना और अपने पीर-दस्तगीर के आस्ताने पर आकर लाड़-प्यार, सच और इंसाफ़ के चश्मे में तैरने लगना।

हज़रत मियां मीर : लगता है बाहर पाल्की आ गई है। घुंघरूओं की आवाज़ तो सुनाई दी है।

नत्था : देखता हूँ (जाता है)।

हज़रत मियां मीर : बेटी तुझे इस तरह जज़्बाती नहीं होना चाहिए। मैं क़ाज़ी रूस्तम ख़ान की सब कमज़ोरियों को जानता हूँ लेकिन बाप तो फिर बाप ही होता है।

कौला : इस तरह के आदमी को बाप कहकर, बाप के नाम को जैसे कलंकित करना हो (जैसे भड़क उठती है)

हज़रत मियां मीर : क़ाज़ी रूस्तम ख़ान से मैं वाकिफ़ हूँ। उसकी कमज़ोरियों को हर आदमी जानता है। शहंशाह भी।

कौला : और सब कुछ मैं समझ सकती हूँ पर गुरु घर के साथ उसका वैर मेरी समझ में कभी नहीं आया।

हज़रत मियां मीर : यह उसकी ज़मीर है। जो कुछ लाहौर के क़ाज़ियों ने मंसूबा बनाकर गुरु अर्जन देव जी की शहादत के वक़्त किया, उसके लिए उन्हें सदियों तक सज़ा भोगनी पड़ेगी।

कौला : हो गया सो हो गया। किसी दरवेश के साथ इस तरह मुक़ाबला करना, मुझे तो समझ में नहीं आता। शहंशाह

ने उनके जाँनशीन के साथ दोस्ती कर ली। वे तो जगह-जगह पर मिलकर शिकार खेल रहे हैं। एक दिन सुना था कि बादशाह हुज़ूर पर शेर हमला करने वाला था तो सारे सिपाहियों के हाथ-पैर ठण्डे पड़ गए थे कि गुरु हरिगोबिंद जी ने आगे बढ़कर शेर के दो टुकड़े कर दिए।

हज़रत मियां मीर : गुरु हरिगोबिंद के चेहरे का जलाल देखा नहीं जाता। उन जैसा ख़ूबसूरत इंसान मैंने तो ज़िन्दगी में अभी तक नहीं देखा।

कौला : एक बार आपके ही डेरे पर मैंने उनका दीदार किया था। आज तक उस सुन्दर चेहरे को मैं भुला न सकी। अकेली बैठी, घण्टों तक मैं उस मनमोहनी सूरत को आँखों में बसाकर मैं अपनी श्रद्धा के फूल उनके चरणों में भेंट करती रहती हूँ—मन ही मन में। हमारे घर की चारदीवारी में उनका नाम तक लेना पाप है।

हज़रत मियां मीर : और तो और उस दिन कश्मीर से लौटकर गुरु हरिगोबिंद हमारे यहाँ तशरीफ़ लाए। उनकी आमद की ख़बर सुनकर मैं हुजरे से बाहर उनके स्वागत के लिए आँगन में गया, आगे बढ़कर उनके घोड़े की लगाम पकड़ी और उन्हें सहारा देकर घोड़े से नीचे उतारा। ऐसे ही फिर कुछ देर हमारे यहाँ रौनक़-अफ़रोज़ होकर वे जब तशरीफ़ ले जाने लगे तो फिर मैंने आगे बढ़के उनके घोड़े की लगाम पकड़ ली।

कौला : मैंने अपनी आँखों से देखा था। थोड़ी देर पहले ही तो मेरी पालकी आई थी। मैं कितनी क़िस्मत वाली हूँ। मुझे उस महबूब इलाही का दीदार हो गया।

हज़रत मियां मीर : और तुझे पता है; तेरे अब्बा ने क्या किया ?

कौला : वह जो करें सो ही थोड़ा है।

हज़रत मियां मीर : उसने शहंशाह से शिकायत की कि इतना बुज़ूर्ग दरवेश होकर भी मैंने एक जवान काफ़िर के घोड़े की लगाम पकड़ी थी। अगले दिन शहज़ादा ख़ुसरू बादशाह की

तरफ़ से यह शिकायत लेकर मेरे पास आया। जैसे मुझसे जवाब तलबी की जा रही हो। मैंने शहंशाह को कहलवा भेजा, रब्बुलआलमीन, रब्बुलमुस्लमिन नहीं। उस तक पहुँचने के एक से ज़्यादा रास्ते हो सकते हैं। जो कोई भी लोगों को उसके रास्ते पर डालता है, उसका एहतराम करना ज़रूरी है। उस पर अल्लाह का नूर है। जब मैं अल्लाह के दरबार में जाता हूँ वहाँ मसनदे आला पर गुरु हरिगोबिंद जैसी मूरत को देखता हूँ।

कौला : आज सुबह मुझ पर कितना बरसे तौबा-तौबा। बस वो ख़ुदा ही जानता है। मैं अकेली बैठी गा रही थी—
फूटो आण्डा भरम का, मनहि भयो परगास
कटी, बेड़ी पगह तै, गुरु कीनी बंद खलास।

हज़रत मियां मीर : इसमें एतराज़ वाली कौन सी बात है।

कौला : यह कि यह काफ़िर की बाणी है। गुस्से में लाल-पीले होकर मुझे लाख-लाख लानतें सुनाते रहे। मैं कान लपेटकर पालकी में बैठी और इधर चली आई। बस एक बार मैंने उनका चेहरा देखा—मेरी आँखें जैसे कह रही हों, बदनसीब आदमी काफ़िर तू है, जो अभी तक ख़ुदा-परस्त औलिया को पहचान नहीं सका।

हज़रत मियां मीर : कई लोग देख-सुन कर आँखों पर पट्टी बाँध लेते हैं। आज सारा पंजाब बाबा नानक को पीर मानता है।

कौला : असल में मेरे अब्बा को आजकल एक और बात से कोफ़्त हो रही है।

हज़रत मियां मीर : अब नई क्या मुसीबत आई है।

कौला : साजन नाम के एक सिक्ख ने, काबुल से एक लाख रुपए का घोड़ा ख़रीद कर गुरु हरिगोबिंद जी को भेंट करने के लिए भेजा है। अटक और सिंध दरिया पार करते हुए उस घोड़े पर मुग़ल दरबार के किसी अहलकार की नज़र जा पड़ी। इतना सुन्दर घोड़ा, उसे वह जहाँगीर बादशाह के लिए हथियाना चाहता था। साजन अपने

परों पर पानी नहीं पड़ने दे रहा था। अपने गुरु को भेंट करने के लिए ख़रीदे घोड़े को वह किसी और के हवाले कैसे कर सकता था ? चाहे वह शहंशाह ही हो। दरबार के अहलकार ने घोड़े के बारे में गुप्त सूचना लाहौर भेज दी। जब घोड़ा लाहौर पहुँचा, उसे ज़बरदस्ती क़ब्ज़े में ले लिया गया। घोड़े को शहंशाह के सामने पेश किया गया। जहाँगीर घोड़े को देखकर बहुत खुश हुए लेकिन घोड़ा बादशाह को अपनी पीठ पर बिठाने को राज़ी नहीं था। जब भी कोशिश करते, घोड़ा बिदक जाता। फिर घोड़े ने खाना-पीना छोड़ दिया। बादशाह हुज़ूर ने मेरे अब्बा को बुलाकर पूछा—उनकी राय थी कि घोड़े को एक लाख बार कलमा पढ़ कर सुनाया जाए तो वो अपना मन बदल लेगा। शहंशाह ने सुना तो घोड़े को मेरे अब्बा के हवाले करते हुए कहा, "आप ही एक लाख बार कलमा पढ़कर अपने पास रख लीजिए और इसकी सवारी कर लीजिए। संयोगवश उन दिनों गुरु जी भी लाहौर में ठहरे हुए थे। मेरे अब्बा घोड़े की लगाम थाम जब उसे अपने घर ला रहे थे तो घोड़ा गुरु साहब के ठिकाने पर आकर रुक गया। बार-बार हिनहिनाने लगता। सड़क पर घोड़े को हिनहिनाता सुनकर गुरु साहब बाहर आ गए। इतने दिनों से भूखा-प्यासा घोड़ा मानों हड्डियों की मूठ रह गया था। 'यह तो नहीं बचेगा' गुरु साहब घोड़े को देखकर कहने लगे। मेरे अब्बा ने यह सुना तो दस हज़ार रुपए में घोड़े को गुरु साहब के हाथों बेच दिया। फ़ैसला हुआ कि यह रक़म दीवाली पर चुकाई जाएगी। कुछ दिन लाहौर रहकर गुरु जी अमृतसर चले गए। अब मेरा अब्बा उतावला होने लगा कहीं उसकी रक़म ही न डूब जाए। लगातार सन्देश पर सन्देश गुरु जी के पास जाने लगे। तकाज़े होने लगे। उठते-बैठते गुरु जी की बुराइयाँ करता रहता है। आज सुबह जब हमारी तक़रार हुई, लाल-पीले होकर कहने

लगे—तू काफ़िर के गुण गाती रहती है।

हज़रत मियां मीर : तभी तुझे लेने अभी तक कोई नहीं आया। मैं भी सोच रहा था कि क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के अहलकारों को क्या हो गया है कि अभी तक तुझे लेने नहीं आए।

कौला : आजकल आठों पहर मैं तो बस यही सिमरती रहती हूँ:
फूटो आण्डा भरमु का, मनहि भयो परगास
काटि बेड़ी पगह तै, गुरु कीनी बंद खलास॥

हज़रत मियां मीर : (कौला की आँखों में देखकर) बलिहारी जाऊँ बेटी, तू तो मार्फ़त की मंज़िल पर कहीं से कहीं पहुँच गई है। (बाहर एक पालकी आकर रुकती है जिसमें से कौला की अम्मी निकलकर तेज़ क़दमों से हुजरे के भीतर आती है)

अम्मी : (हाथ मलते हुए) हज़ूर ! बस अब आपका ही आसरा है। इस मासूम बच्ची को बचा लीजिए। इसके सर पर अपने रहम का हाथ रख दीजिए। बड़ा ज़ुल्म होने वाला है मैं तो कहीं की नहीं रहूँगी।

हज़रत मियां मीर : कोई बात भी करें बीबी

अम्मी : कोई करने वाली बात हो तो करूँ। मेरी बेटी के क़ाज़ी बाप ने फ़तवा सुनाया है कि उसकी बेटी, मेरी कोख से जायी, मेरी जान का टुकड़ा काफ़िर है। और उसे कल सुबह होने से पहले सूली पर लटका दिया जाए।

हज़रत मियां मीर : नहीं ! यह कुफ़्र है।

अम्मी : जल्लाद किसी वक़्त भी यहाँ पहुँच जाएंगे। पीर जी, मैं आपके क़दम चूमती हूँ। किसी तरह मेरी बेटी की जान बख़्शवा दीजिए।

कौला : मुझे जान बख़्शवाने की ज़रूरत नहीं। इस तरह के जालिम बाप के हाथों से मेरी जान जाए तो इंसान को और क्या चाहिए। लाख बाहिश्तों के दरवाज़े मेरे लिए खुल जाएंगें।

हज़रत मियां मीर : पगली नहीं बन। यह वही क़ाज़ी हैं जिन्होंने गुरु अर्जन जैसे अल्लाह के शैदाई को शहीद किया था ?

कौला : (दीवानों की तरह हँसती हुई) इससे ज़्यादा ख़ुश क़िस्मती

क्या हो सकती है कि अल्लाह के नाम पर अल्लाह के प्यारों की अक़ीदत के लिए किसी को अपने प्राण देने पड़े (और ऊँचा हँसते हुए) क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के जल्लादों आओ मेरा सर हाज़िर है। मैं बाबा नानक की शैदाई हूँ। मैं बाबा नानक को हिन्दू का गुरु और मुसलमान का पीर मानती हूँ। मैंने पाँचवे गुरु नानक, प्यारे गुरु अर्जन देव जी की शहीदी पर लाख-लाख आँसू बहाए हैं। अपने अब्बा क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के घर में मैंने गुरु अर्जन देव की बाणी का पाठ बार-बार किया है। (दीवानों की तरह गाने लगती है)

फूटो आण्डा भरमु का, मनहि भयो परगास
काटि बेड़ी पगह तै, गुर कीनी भय खलास।
(ऐसे गाती-गाती बाहर निकल जाती है)

हज़रत मियां मीर : लगता है लड़की का दिमाग़ हिल गया है।

अम्मी : हज़ूर जो भी करना है, अभी ही करना होगा। जल्लाद किसी वक़्त भी यहाँ पहुँच सकते हैं। वे तो इसे तलाश रहे होंगे।

हज़रत मियां मीर : मेरी राय है, इसे गुरु हरिगोबिंद साहब के पास भेजना होगा। अब इसे सिर्फ़ वहीं पनाह मिल सकती है।

अम्मी : क्या मतलब ?

हज़रत मियां मीर : सचमुच यह बच्ची क़िस्मत वाली है जो हालात की रौ में बहकर गुरु हरिगोबिंद के क़दमों में जा रही है। जिस हरिमंदर की नींव का पत्थर एक मुसलमान ने रखा था उसी मंदिर में एक मुसलमान बच्ची को पनाह मिलेगी। (बाहर से कौला की आवाज़ आ रही है) फूटो आण्डा भरमु का...................

अम्मी : तो जो भी करना है अभी कीजिए। और वक़्त नहीं है।

नत्था : (बाहर से आते हुए) हज़ूर ख़बर आई है कि क़ाज़ी साहब के भेजे सिपाही बीबी की तलाश में इधर आ रहे हैं।

हज़रत मियां मीर : दो घोड़े फ़ौरन तैयार किए जाएँ। नत्था मियां तुझे बीबी

के साथ जाना होगा। लड़की को गुरु हरिगोबिंद तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी तेरी है। रास्ते में अगर कोई पूछे तो कह देना। यह सब कुछ वज़ीर ख़ान के फ़रमान के अनुसार किया जा रहा है।

नत्था : जो हुक्म हुज़ूर (जाता है)

हज़रत मियां मीर : गुरु हरिगोबिंद की संगत में दोनों जहान संवर जाएंगें। ज़रूरत पड़ी तो हमारी बच्ची के लिए अलग महल बनाया जा सकता है।

अम्मी : हज़ूर का लाख-लाख शुक्र।

कौला : (बाहर दीवानों की तरह गा रही है)
फूटो आण्डा भरमु का...........परगास
काटी बेड़ी पगह तै गुर कीनी खलास ॥

(32)

अमृतसर में पवित्र सरोवर के पास एक एकांत घर का आँगन जहाँ हरिमंदर में हो रहे कीर्तन की आवाज़ सुनाई देती रहती है। आँगन की एक तरफ़ फूलों की क्यारियाँ हैं जिनमे कौला पानी दे रही है। दूसरी तरफ़ एक चबूतरा है जिस पर चटाई बिछाकर बाबा नत्था तस्बीह फेर रहा है। हरिमंदर में गाए जा रहे शब्द की मधुर धुन सुनाई दे रही है।

जैसा सतिगुर सुनींदा तैसो ही मैं डीठु।

कौला : सामने पाक सरोवर का कलकल करता मोतियों जैसा जल। इस तरफ़ खिले हुए गुलाब, गुलदाऊदी, नरगिस और गेंदे। उधर नत्था बाबा तस्बीह पकड़े मुसल्ले पर बैठे अल्लाह के ध्यान में मगन। और हरिमंदर में सत् गुरु द्वारा दीक्षित ढाढ़ियों का मधुर कीर्तन—
जैसा सतिगुर सुनींदा तैसो ही मैं डीठु।
विछाड़िआ मेले प्रभू हरि, दरगहि का बसीठु।

नत्था : हज़रत मुझे प्यार में आकर नाथा पुकारते हैं। पर ऐसा लगता है जब से मैं अमृतसर आया हूँ मुझे जीना और होना पहले से बहुत अच्छा लगने लगा है। अंग-अंग अलसाया, पलकों में एक ख़ुमारी, जी करता है आठों पहर ऊँगलियाँ तस्बीह पर फिरती रहें होंठ थिरकते रहें। मेरी जीभ पर जैसे शहद घुलता जा

रहा हो।

कौला : बिल्कुल ऐसा ही तो मुझे महसूस होता रहता है। जब मेरी पालकी इस शहर में आई तो मैं एक लाश थी। एक बार गुरु महाराज के दर्शन करके मैं और की और हो गई हूँ। अल्लाह का नाम लेना, किसी प्यारे को याद करना जैसा लगता है। होंठों पर महबूब का नाम तो अंदर से खोखला अहंकार मिटता जाता है।

हर नामो मंत्र द्रिड़ाइदा कटे हऊमैं रोगु।

(कीर्तन की धुन)

नत्था : ....यह मिलाप उनका होता है, जिनकी किस्मत अच्छी होती है। बीबी तू कर्मों वाली भाग्यशालिनी है, जिसके बहाने मैं भी पार हो जाऊँगा। इस तरह के संयोग तो ऊपर से मिलाए जाते हैं

नानक सति गुर तिन्हा मिलाइआ
जिन धुरो पइआ संजोगु। (रामकली की वार महला ५)
(कीर्तन की धुन)

कौला : कभी-कभी मैं सोचती हूँ, मेरे अब्बा ने मुझे इस तरह से दुत्कारा है नहीं तो मैं तड़पते-तड़पते लाहौर में ही सारी उम्र बिता देती। यह तो ऐसा हुआ जैसे किसी को कोई खाई में धक्का दे और वह औंधा होकर किसी की झोली में जा गिरे। हाय ! मेरे अब्बा ने पहले से ही क्यों नहीं फ़तवा दिया था। बहुत सी उम्र बेकार बीत गई।

नत्था : जब किसी की नींद खुले वहीं सवेरा समझना चाहिए।

कौला : इतने बरस बीत गए। मैंने तो कभी घर से बाहर पैर नहीं निकाला था। या अपने आँगन में या फिर पीर जी के डेरे पर।

नत्था : हम तो देख-देख कर हैरान होते थे, पीर जी तुझ पर कितने मेहरबान थे। वे तो औरत ज़ात को भरसक अपने नज़दीक नहीं आने देते।

कौला : दाराशिकोह की बहन नादिरा बेगम बेचारी शर्म के मारी मर ही गई। हज़रत को वज़ू करवा रही थी। मियां जी उसकी ओर देख कर कहने लगे, "लड़की अब तू बड़ी हो गई है, इस

तरह तू लोगों के सामने न आया कर।" नादिरा इतना शर्मिंदा हुई, उसने अपने अल्लाह के आगे हाथ जोड़े उसे इस जहान से उठा लिया जाए और उसी रात उसकी मौत हो गई।

नत्था : औरतों में बस नूरजहाँ और जहाँआरा बेगम को उन्होंने अपना मुरीद बनाया।

कौला : जहाँआरा को भी इसलिए क्योंकि वह पहले से हज़रत चिश्ती जी की शिष्या थी।

नत्था : वक़्त की ज़रूरत यह है कि हिन्दू और मुसलमान के बीच की दरार को मिटाया जाए। दोनों में भाईचारे की भावना का प्रचार किया जाए।

कौला : यही हज़रत चिश्ती ने किया, यही चिंता हज़रत मियां मीर को दिन-रात लगी रहती है।

नत्था : अल्लाह एक है उसको पाने के एक से अधिक रास्ते हो सकते हैं।

कौला : रब्बुल आलमीन है, रब्बुल मुसलमीन नहीं।

नत्था : बलख़ के शाह के साथ जो बीती वो घटना मैं अभी तक नहीं भूला।

कौला : वो जो अपने साथ रथ, घोड़े और ढेर सा शाही साज़ो-सामान लाया था ? लाहौर में उसकी कितनी चर्चा हुई थी।

नत्था : हज़ूर ने उससे मिलने से इंकार कर दिया। अगले दिन वो सब को छोड़-छाड़ कर सिर्फ़ एक दोशाले में लिपट कर उनके दर्शन के लिए हाज़िर हुआ। मियां जी ने फिर भी कोई ध्यान नहीं दिया। तीसरे दिन जब वो दोशाला भी उतार कर आया तो हज़ूर ने उसे शहर में भिक्षा माँगने के लिए भेज दिया। शाम को जब वह लौटा, एक प्याले में उसने हिन्दूओं से मिली तथा दूसरे में मुसलमानों से मिली भिक्षा इकट्‌ठी की। हज़रत प्रति दिन बलख़ के शाह को भिक्षा माँगने के लिए भेजते। शाम को वह हिन्दू भिक्षा का प्याला अलग और मुसलमान भिक्षा का प्याला अलग भरकर लाता। कई दिन बीत गए। फिर एक दिन शाह जब शहर से लौटा, उसके हाथ में एक ही प्याला था। उसी में हिन्दू और मुसलमान भिक्षा इकट्‌ठी की हुई थी।

उसने लोगों से यह पूछना छोड़ दिया था कि कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान है। हज़रत ने देखा तो खुश होकर उसकी पीठ थपथपाई--अब तू अल्लाह को पा सकेगा। पहले तुझमें शाही बू थी। वो गई तो तू अहंकार का दोशाला ओढ़कर आया। जब तूने उसे उतारा, तब तेरे अंदर हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव बना हुआ था। अब जब तूने यह भेद ख़त्म कर दिया है तो तू परवान हुआ है। अब तू सही अर्थों में शाह कहलवाने का हक़दार बना है। बादशाह की नज़र में सारी प्रजा बराबर होती है। अल्लाह की बनाई दुनिया में उसे अपने और पराए का भेद दिखायी नहीं दिया।

कौला : धन्य हैं हमारे हज़रत। सरहिंद में उन्हें जो घुटनों की दर्द रहती थी, वह वहाँ के हवा-पानी के कारण नहीं थी। एक दिन वह मुझे बता रहे थे, सरहिंद के पीर पूर्वाग्रह से इतने ग्रस्त थे कि हज़रत का वहाँ दम घुटने लगा। जब भी उन्हें बहाना मिला वह लाहौर लौट आए।

नत्था : उन्हीं दिनों में ही तो उनकी मुलाक़ात गुरु अर्जन देव जी के साथ हुई। वह अपने पिता गुरु रामदास की आज्ञानुसार अमृतसर से लाहौर एक शादी में सेहारीमल के यहाँ आए हुए थे। एक मुलाक़ात के बाद वे रोज़ मिलने लगे। घण्टों तक बैठे विचारों का आदान-प्रदान करते रहते। गुरु अर्जन देव हज़रत को 'गहर गंभीर' और 'पीरों का पीर' कहा करते थे। उनका यह विश्वास था कि पाक दिल और अल्लाह की पहचान वाला उस ज़माने में हज़रत मियां मीर से बड़ा और कोई बड़ा दरवेश नहीं।

कौला : हज़रत ने उस दस्तार को भी बड़े आदर से सम्हाल कर रक्खी है जो गुरु अर्जन देव जी ने अपने गद्दी-नशीन (आसीन) होने के समय भेजी थी।

नत्था : उन दिनों में दोनों अक्सर एक दूसरे के यहाँ आते-जाते रहते थे। एक बार सुखमनी साहब में 'ब्राह्म ज्ञानी' वाली आठवीं अष्टपदी पर कई दिनों तक चर्चा होती रही। लोग इन दिनों महापुरुषों का आपसी मेल मिलाप देख-देख कर हैरान होते

रहते।

कौला : और फिर गुरु अर्जन देव जी का हज़रत को हरिमंदर की नींव का पत्थर रखने के लिए निमंत्रित करना भाईचारे की भावना की एक अद्वितीय मिसाल है।

नत्था : हज़रत कहा करते हैं, "इंसान के अंदर तीन ताक़तें हैं—नफ़्स (संयम) दिल और रूह। नफ़्स शरीयत से क़ाबू में आता है। दिल ज़ब्त में रहता है तरीक़े से। रूह प्रफुल्लित होती है हक़ीक़त से।"

कौला : ठीक यही बात कल गुरु हरिगोबिंद जी महाराज मुझे समझाते रहे थे।

नत्था : मुझ से पूछ रहे थे—कौला बीबी इतनी दुबली क्यों लग रही है ? मैंने कहा—शायद आजकल रमज़ान की वजहकर कमज़ोरी महसूस करती होगी और घरवाले भी तो याद आते होंगे।

कौला : मुझे अम्मी की बहुत याद आती है।

नत्था : तभी तो तुझे अपने दिल पर क़ाबू पाने के बारे में कह रहे थे।

कौला : लाहौर से लाए मैं जो गहने, हीरे और जवाहरात भेंट किए तो उन्होंने किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाया। मैंने कहा—आपने मुझे रहने के लिए अलग से घर दिया है, मैं इसकी क़ीमत चुकानी चाहती हूँ।

नत्था : वो तो पूरी पोटली तेरे हवाले कर देते, अगर मुझे तत्काल एक युक्ति न सूझती। मैंने कहा—हज़ूर एक और सरोवर बनाने की बात सोच रहे हैं। यह नया सरोवर इस रक़्म से बनाया जाए। कहने लगे—इसका नाम कौलसर होगा।

कौला : धन्य गुरु हरिगोबिंद।

नत्था : बेटी, कमल ही की तरह तू क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के घर में रही। चारों तरफ़ कीचड़, और मजाल है कि तूने एक छींट भी अपने ऊपर पड़ने दी हो।

कौला : अब जब कौलसर की खुदाई शुरू होगी, मेरा मन भी लगा रहेगा। कौलसर की खुदाई की ज़िम्मेवारी महाराज ने मुझे दी है।

नत्था : तो फिर अपने हज़रत की दरगाह में लाहौर लौट जाऊँगा।

कौला : आपके बग़ैर उनका मन थोड़े ही लगता होगा। आपको कितना मान देते हैं।

नत्था : पर सबसे ज़्यादा तुझे देते हैं। तेरी ज़रूरत के सामने उन्होंने अपनी हर सुविधा को भूला दिया। मुझे तेरे साथ यहाँ आने का हुक्म दे दिया। वैसे वे क्षण भर के लिए मुझ से जुदा नहीं हुए।

कौला : उन्हें तो एक दिन मैं तो यह कहते हुए भी सुना था—मेरी हड्डियों को बेचना मत शुरू कर देना। मेरी मज़ार पर दुकान मत लगा देना। मुझे नत्था बाबा के साथ दफ़नाना। गुमनामी में।

नत्था : यह तो हज़रत का आशीष है, मेहरबानी है।

कौला : ताकि इस जहान का ख़िदमतगार अगले जहान में भी उनके साथ रहें।

नत्था : उन्हें ख़िदमतगारों की कोई कमी है ? जहाँगीर जैसे बादशाह ग़ुलामों की तरह हाथ जोड़कर उनके दर पर हाज़िर रहते हैं।

कौला : बादशाह जहाँगीर उनके डेरे पर कई बार उनकी क़दमबोसी के लिए हाज़िर हुआ है।

नत्था : क्या जहाँगीर क्या नूरजहाँ आते ही हज़रत के हुजरे में बिछी टाट की बोरियों पर बैठ कर चले जाते थे। एक बार जहाँगीर ने हज़ूर को कुछ भेंट करने की बड़ी कोशिश की। हज़रत राज़ी नहीं हुए। आख़िर बादशाह ने उन्हें एक मृगछाला उन्हें पेश कर अपने मन को तसल्ली दी। कहने लगा—हज़रत आप इस पर नमाज़ पढ़ा कीजिए।

कौला : एक जहाँगीर ? उनकी दरगाह पर बड़े-बड़े फ़क़ीर और औलिया दर्शनों के लिए तरसते रहते हैं।

नत्था : उनमें हाजी मुस्तफ़ा सरहिंदी हैं, मुल्ला शाहबदख़ शानी हैं, ख़्वाजा बिहारी हैं, हाजी नियामत अली हैं, मुल्ला मुहम्मद सियालकोटी हैं, मुल्ला रूही इब्राहिम हैं, शेख़ अबुअलकराम हैं और मुहम्मद सैयद कश्मीरी हैं। और कितने और भी।

कौला : फिर भी, हज़ूर लाहौर के मौलाना सैयद अल्लाह और मौलाना

नियामतउल्लाह को बेहद आदर देते रहे हैं, क्योंकि शुरू-शुरू में हुज़ूर ने उन्हीं से तालीम पाई थी। उन दोनों में से अगर कोई डेरे पर आता था, हज़ूर अपनी मसनद से उठकर उनका स्वागत करते थे। मजाल है अपने किसी उस्ताद के सामने मसनद पर बैठ जाएं।

नत्था : और दूसरी तरफ़ राजा-महाराजा हाथ जोड़कर उनकी दरगाह में दर्शनों के लिए तरसते रहते हैं।

कौला : नत्था बाबा सुनीये (हरिमंदर में गाए जा रहे एक अत्यंत मीठे शबद की धुन सुनाई देने लगती है जिसे सुनते-सुनते नत्था और कौला तल्लीन हो जाते हैं।)

रामदास सरोवर नाते
सभि उतरे पाप कमाते।
निर्मल होये करि इसनाना
गुरि पूरे कीने दाना। 1।
सभि कुशल खेम परभ धारे
सही सलामति सब थोक उबारे
गुर का शबद वीचारे। रहाऊ।
साध संग मल लाथी
पार ब्राह्म भयो साथी
नानक नाम ध्याया
आदि पुरख प्रभ पाइआ।

[सोरठि म. ५ घर ३ दुपदे]

(ऐसा लगता है जैसे हवा के बदले हुए रूख (दिशा) के साथ तैरता हुआ शबद उनके आँगन में आ गया हो। शबद सुनकर कौला और नत्था उन्माद में आकर आँखें खोलते हैं। उन्हें सामने सरोवर के किनारे टहलता हुआ कौला का अब्बा रुस्तम ख़ान दिखाई देता है रुस्तम ख़ान किसी गुरसिक्ख से बहुत ज़ोर-ज़ोर की बहस करता हुआ उन्हीं की ओर आता दिखता है।)

नत्था : यह तो रुस्तम ख़ान है तेरा अब्बा।

कौला : आवाज़ तो उसी की है, चाल भी वही है।

नत्था : इधर ही आ रहा है।

कौला : उसके साथ गुरु घर का कोई सेवादार है।

नत्था : गुस्से से लाल-पीला हो रहा है।

कौला : मेरे अब्बा की अकड़ अभी तक नहीं गई।

नत्था : मैं सोचता हूँ, तू कमरे के भीतर चली जा। कोई झगड़ा ही न कर बैठे।

कौला : हाँ, ऐसे आदमियों का कोई एतबार नहीं होता (उठ कर कमरे के भीतर चली जाती है)

नत्था : तू दरवाज़ा बंद कर लेना। अगर चाहे तो भीतर से कुण्डी (चिटकनी) भी लगा लेना। बुड्ढा सठिया गया है। कैसे नीला-पीला हो रहा है।

(रुस्तम ख़ान बाहर से ऊँचा-ऊँचा बोलता हुआ आँगन में आता है उसके साथ एक सेवादार है)

रुस्तम ख़ान : अस्सलाम अलैकुम।

नत्था : वालैकुम सलाम।

रुस्तम ख़ान : मुझे तो अभी-अभी पता चला है कि तू भी उसे छोड़ आया है।

सेवादार : बातों-बातों में मैंने इन्हें बताया कि हज़रत मियां मीर के एक मुरीद आजकल मेरे यहाँ ठहरे हुए हैं।

रुस्तम ख़ान : उसे अब हज़रत कौन कहता है। वह तो ग़लत रास्ते पर पड़ा हुआ है।

नत्था : (हैरान होकर) क्या मतलब ?

रुस्तम ख़ान : वह तो पगला गया है वह काफ़िर है।

नत्था : (गुस्से से चिल्लाता है) मलऊन शख़्स तेरी ज़बान में कीड़े पड़ें।

(नत्था इतनी ज़ोर से चिल्लाता है कि रुस्तम ख़ान स्तब्ध होकर रह जाता है। उसकी ज़बान सचमुच लड़खड़ाने लगती है)

रुस्तम ख़ान : वो.............वो है..............का...........फ़िर.............र.........र है। का..........फ़िरों................से ऊ.............स का भाई............... चा.......रा है।

नत्था : हज़रत के ख़िलाफ़ तू अगर एक शब्द भी और बोला तो मैं

तेरी ज़बान बाहर खींच लूँगा।

रुस्तम ख़ान : (अचानक महसूस करता है कि उसकी ज़बान को लक़वा मार गया है) मैं............म...........(उसके मुँह से बात नहीं निकल रही यह जानकर उसके प्राण सूख जाते हैं)

नत्था : हज़रत मियां मीर महबूबे इलाही हैं, वे तो औलिया हैं। घट-घट की ख़बर रखने वाले।

रुस्तम ख़ान : (फिर बोलने की कोशिश करता है) म......म.........मैं............ (उसकी ज़बान को जैसे ताला लग गया हो वह जैसे बोल नहीं पा रहा हो)

नत्था : हज़रत की शान के ख़िलाफ़ जो होंठ हिलते हैं वे झुलस कर रह जाते हैं।

रुस्तम ख़ान : (अपने होठों को हाथ लगाकर देखता है और उँगलियों को हाथ हटाकर देख लेता है जैसे उसके होंठ जल रहे हों) म. ....म........मेरे............ह.....होंठ........स.......सड़............ड़

सेवादार : इन्हें तो लेने के देने पड़ गए हैं, क़ाज़ी साहब लाहौर से अपने दस हज़ार रुपयों का तक़ाज़ा करने आए हैं। गुरु महाराज ने जो घोड़ा इनसे ख़रीदा था उसकी क़ीमत दीवाली पर चुकाने का वादा किया था। अब बीमार घोड़ा गुरु जी के पास आकर भला चंगा हो गया है, महाराज उसकी सवारी करते हैं, शिकार करने जाते हैं। क़ाज़ी साहब अपनी रक़म के लिए उतावले हो गए हैं।

नत्था : गुरु महाराज ने क्या कहा ?

सेवादार : उन्होंने क़ाज़ी जी को भरोसा दिलाया है कि अपने वायदे के मुताबिक़ वे दीवाली पर पूरी रक़म दूध से धोकर इन्हें चुका देंगे। लेकिन यह मानते ही नहीं।

नत्था : यह उतावले क्यों हो रहे हैं ?

(इतने में परेशान क़ाज़ी अपनी जकड़ी हुई ज़बान को जैसे खोलने की कोशिश कर रहा है।)

सेवादार : कहते हैं, इनकी इकलौती बेटी कहीं भाग गई है।

नत्था : इनकी बेटी तो बड़ी पाक दामन लड़की है।

रुस्तम ख़ान : (क्रोध में आकर) क........क.........का......फ़..........र...........।

नत्था : ....उस जैसी नेक-सीरत सुशील लड़की किसी भाग्यशाली के घर ही पैदा होती है।

रुस्तम ख़ान : (तमतमाकर) क अ फ र।

नत्था : उस जैसी फ़रिश्ता सीरत लड़की को काफ़िर कहने वाला कोई बदक़िस्मत बाप ही होगा।

सेवादार : इन्हें शक है कि हज़रत मियाँ मीर ने लड़की को कहीं छिपा रक्खा है।

नत्था : कोई अभागा ही होता है जो किसी फ़क़ीर पर इस तरह की तोहमत (आरोप) लगाता है।

सेवादार : ये तो कहते हैं कि इनकी बेटी हो सकता है किसी सिक्ख के साथ भाग गई होगी।

नत्था : इस तरह की लड़की पर इल्ज़ाम लगाने वाले को अल्लाह की लानत होती है।

रुस्तम ख़ान : (इतनी देर से क्रोध में उबलते हुए जैसे एकदम उसकी जकड़ी हुई ज़बान फिर खुल गई हो)
वह काफ़िर है। उसे सूली पर लटकाया जाएगा। लाहौर के क़ाज़ी रुस्तम ख़ान ने यह फतवा दिया है। साथ में तेरे मियां मीर को खानदान समेत कोल्हू में पिसवाया जाएगा। मुझे ख़बर मिली है कि लड़की ग़ायब होने से पहले उसके तकीये पर देखी गई थी।

नत्था : तेरी ज़बान फिर चलने लगी है, यह ख़ुराफ़ात बकने के लिए? क़ाज़ी रुस्तम ख़ान तू दोज़ख़ी है।

रुस्तम ख़ान : यह दौर इस्लाम का है। ख़ुद गुरु नानक ने कहा है :
कथा परवान कते पुराण
पोथी पंडित रहे पुराण।
नानक नाउ भया रहमानु।
कर करता तूँ इक्को जाण।

(रामकली म. १)

सेवादार : मैं अभी हाज़िर होता हूँ (जाता है)

रुस्तम ख़ान : मैं तेरे हज़रत मियां मीर का गला दबोच कर रख दूँगा। उसने काज़ी रुस्तम ख़ान के बाहुबल को पहचाना ही नहीं।

नत्था : (कानों में ऊँगलियाँ देते हुए) कुफ़्र है, यह कुफ़्र है।
मैं अपने कानों को बंद कर रहा हूँ।

रुस्तम ख़ान : आँखें बंद करने से कोई मौत को रोक नहीं सका। हमें मियां मीर और गुरु की दोस्ती का पूरा पता है। मियां मीर ने ही तो बीच में पड़कर हरिगोबिंद को ग्वालियर के क़िले से छुड़ाया था। वर्ना वह अभी तक क़िले की दीवारों के पीछे सड़ता रहता। हमें तेरे मियां मीर और यहाँ के गुरु की मिली भगत की पूरी जानकारी है। मुझे शहंशाह ने भरोसा दिलाया है कि ज़रूरत पड़ने पर वह फ़ौज भेजकर इस शहर को तहस-नहस कर देगा।

नत्था : तो फिर शहंशाह ने गुरु हरिगोबिंद साहब की अज़मत को जाना ही नहीं।

रुस्तम ख़ान : मैंने तेरे हरिगोबिंद की सारी बातें देखी हैं। मैंने शहंशाह की ओर से एक ही धमकी दी तो रक़म देने के लिए तैयार हो गया। बोला आप एक दिन रुक जाएं। कल मैं आपको लाहौर के साहूकार के नाम हुण्डी दे दूँगा।

नत्था : भले लोग ऐसे ही तो अपना वचन पूरा करते हैं।

रुस्तम ख़ान : भले मानस नहीं। यह डण्डे का डर है। तेरे मेज़बान को मैंने ज्यों ही आँखें दिखायीं उसे होश आ गई। लाहौर पहुँचकर अब मैं तेरे हज़रत को सीधा करूँगा। मुझे यक़ीन है कि इन दोनों ने मिलकर मेरी बेटी को छिपा दिया है।

कौला : (कमरे का दरवाज़ा खोलकर एक देवी की तरह शांत और गंभीर भाव से बाहर आती है) जनाब की बेटी को किसी ने नहीं छुपाया वह अपनी बेटी की शरण में ख़ुद आई है। यह मेरा अपना घर है जिसके आँगन में आप इतनी देर से ख़ुराफ़ात बोल रहे हैं। सुन-सुन कर मेरे कान भी पक गए हैं। मैं तो हैरान हूँ, यह बोल बोलने वाली आपकी ज़बान जल क्यों जाती।

रुस्तम ख़ान : बदकार लड़की। (अपनी तलवार म्यान से निकाल लेता है) मैं तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

कौला : अब्बा हज़ूर, मेरा सर हाज़िर है। आप जैसे जल्लाद के हाथों

मरकर मैं सीधी जन्नत में जाऊँगी (कौला की निडरता भरी चुनौती से क़ाज़ी की तलवार हाथ में उठी हुई रह जाती है)

नत्था : क्यों रुस्तम ख़ान, आपकी तलवार क्यों नहीं चलती ?

कौला : मैं इंतज़ार कर रही हूँ। मेरे ख़ून से हाथ रंग कर शायद तअस्सुब और फ़िरक़ापरस्ती के अंधेरे में मेरे अब्बा की आँखें खुल जाएं।

नत्था : क़ाज़ी साहब इस लड़की के चेहरे पर आपको अल्लाह का नूर नहीं दिखाई देता ?

कौला : यह नूर मेरे गुरु ने मुझे बख़्शा है।

रुस्तम ख़ान : बेहूदा लड़की (क्रोध में दाँत पीसकर तलवार को फिर म्यान में रख देता है।)

नत्था : आप चुप्प क्यों हो गए।

कौला : बोलते क्यों नहीं ?

नत्था : चेहरे से क्या यह भगोड़ी लगती है ?

कौला : मैं अपने ठिकाने पर पहुँच गई हूँ। मुझे अपनी मंज़िल दिख गई है। मुझ जैसी सुभागी लड़की होगी।

रुस्तम ख़ान : (फूट-फूटकर रोने लगता है) मुझे माफ़ कर दे बेटी। इस उम्र में मेरी मिट्टी पलीद न कर। मेरी सफ़ेद दाढ़ी का ख़्याल रख। मैं तेरे सामने हाथ ज़ोड़ता हूँ। मेरे जैसा बदक़िस्मत बाप कोई होगा ?

कौला : ताकि आप मुझे गर्म तवे पर बिठाकर मेरे शरीर पर गर्म रेत उडेंल सकें। मुझे उबलती देग़ में नहलाकर मेरे भूने हुए शरीर को रावी दरिया में बहा सकें। जैसे शांति और अंहिसा के सबसे पहले प्रतीक गुरु अर्जन के साथ आपने किया।

रुस्तंम ख़ान : गुरु अर्जन देव की शहीदी के लिए बादशाह ज़िम्मेदार है, जिसके साथ आजकल गुरु हरिगोबिंद ने दोस्ती कर रखी है।

नत्था : बेचारा शहंशाह तो उन दिनों कश्मीर में था। उसने तो सिर्फ़ जुर्माने की मंज़ूरी दी थी।

कौला : महाराज की जान लेने का फ़तवा लाहौर के क़ाज़ियों का था, जिसमें रुस्तम ख़ान शामिल था।

रुस्तम ख़ान : यह कुफ़्र है।

कौला : मुझसे कुछ छिपा है ? गुरु अर्जन देव जी को तकलीफ़ें देने का फ़ैसला, हमारे घर की बैठक में हुआ था। मछली की तरह तड़पती हुई साथ के कमरे में खड़ी मैं सब कुछ सुन रही थी। इस सारे मंसूबे की ज़िम्मेदारी आपके सर है।

रुस्तम ख़ान : (झुंझलाकर) बेशक, मैं ज़िम्मेवारी लेने के लिए तैयार हूँ। गुरु अर्जन देव पर तो देश-द्रोह का इल्ज़ाम है। उन्होंने शहंशाह जहाँगीर के ख़िलाफ़ शहज़ादा ख़ुसरू को भड़काया था। उसके साथ मिलकर बादशाह के ख़िलाफ़ साज़िश की थी। इस कसूर की सज़ा मौत है।

नत्था : और अब आप इस मासूम बच्ची को भी वही सज़ा देना चाहते हैं।

रुस्तम ख़ान : (गुस्से में) नत्थू ख़ान इसके साथ तुझे भी दबोचा जाएगा। तू मेरी बेटी को भगाकर यहाँ लाया है। सरकार की बाँहें लंबी होती हैं। मुझे तो पहले से यह शक था कि इस कमज़ात को ग़ायब करने में मियां मीर का हाथ है।

सेवादार : (तेज़ी से आते हुए) हज़ूर क़ाज़ी साहब, आपकी घोड़ी खूँटा तोड़ कर भाग गई है।

नत्था : रुस्तम ख़ान तू जाकर अपनी घोड़ी को क़ाबू में ला।

कौला : यह न हो, बेटी की तलाश में आप अपनी सवारी भी गवाँ बैठें।

नत्था : और तुझे पैदल ही लाहौर लौटना पड़े।

रुस्तम ख़ान : लड़की, मैं आख़िरी बार पूछता हूँ तू मेरे साथ चलेगी या नहीं?

कौला : आप चाहते हैं इस स्वर्ग से निकलकर मैं आप के घर की दोज़ख़ में फिर अपने आप को झोंक दूँ ?

नत्था : उस घर में जहाँ हज़रत मियां मीर जैसे अल्लाह के महबूब के लिए ऐसे बोल बोले जाएं जो आपने हमारे सामने बोले हैं कोई क़दम भी रख सकता है ?

कौला : जो अपशब्द आपने गुरु साहब के बारे में बोले हैं उन्हें सुनकर मुझे तो सारा आँगन मैला-मैला लग रहा है।

रुस्तम ख़ान : (फिर नरम पड़ते हुए) तेरी माँ का बुरा हाल हो गया है। दिन-रात रोती रहती है। जिनकी इकलौती बेटी भाग जाए, उन माँ-बाप का क्या हश्र होता है।

नत्था : बुरा, बहुत बुरा।

कौला : पर इसकी ज़िम्मेदारी क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के सर पर है।

रुस्तम ख़ान : बेटी मैं तेरे सामने हाथ जोड़ता हूँ मुझे माफ़ कर दे। इस तरह मेरी मिट्टी ख़राब न कर।

नत्था : मिट्टी तो रुस्तम ख़ान तेरी ख़राब हो चुकी है। तुझे कहीं भी पनाह नहीं मिलने वाली।

रुस्तम ख़ान : लड़की, मैं पूछता हूँ तू मेरे साथ चलेगी या नहीं ?

कौला : नहीं। नहीं। नहीं।

नत्था : कौला तू भीतर जाकर आराम कर। रमज़ान के दिन हैं इस तरह के आदमी को मुँह लगाकर तू अपना रोज़ा क्यों ख़राब करती है।

रुस्तम ख़ान : मेरी बेटी का नाम कौला कैसे हो गया।

नत्था : यह तो हमेशा कमल के फूल जैसी थी। कमल के फूल की तरह आपके घर में रही। कमल के फूल तरह अब यहाँ रह रही है।

कौला : सुनो, सुनो इस इलाही बाणी को सुनो—
(हरिमंदर से शब्द की धुन सुनाई देती है)
डिट्ठे सभे थाव नहीं कोई तुध जेहिआ
बंधउ पूरखि बिधातै ता तू सोहिया
वसदि सघन अपार अनूप रामदासपुर।
हरिआ नानक कसमल जाहि नाइये रामदाससर।
(कुछ देर तक सब मंत्रमुग्ध हुए शब्द गायन सुनते रहते हैं)

नत्था : क़ाज़ी रुस्तम ख़ान तूने अमृतसर की महिमा सुनी है ?

कौला : इस तरह के स्वर्ग में से कोई जाना चाहेगा ?

रुस्तम ख़ान : इसका यह मतलब है कि तू काफ़िर हो गई है।

नत्था : यह फ़तवा तो आप इसे पहले ही दे चुके हैं।

सेवादार : (लौटते हुए) हज़ूर क़ाज़ी साहब आपकी घोड़ी को गुरु के सिक्ख पकड़ लाए हैं। (दालान से बाहर चला जाता है)

नत्था : मेरी मानिये तो अपनी घोड़ी भी खोने से पहले आप कान लपेट कर लाहौर चले जाईये। रास्ते में मियां जी के डेरे पर जाइयेगा और अपनी भूलें माफ़ करवालीजिएगा।

रुस्तम ख़ान : मैं अपनी बेटी को अपने साथ ले जाऊँगा।

कौला : अगर मैं जाने के लिए तैयार ना हूँ ?

रुस्तम ख़ान : तो मैं ज़बरदस्ती ले जाऊँगा।

सेवादार : (आते हुए) हज़ूर क़ाज़ी साहब, सतगुर महाराज जो घट-घट की बात जानते हैं, दो जहाँ के वाली, सच्चे पादशाह श्री गुरु हरिगोबिंद जी का फ़रमान है कि क़ाज़ी रुस्तम ख़ान के लिए दस हज़ार रुपए की हुण्डी तैयार है। वे मीरी-पीरी के मालिक से अपनी हुण्डी वसूल कर लें।

रुस्तम ख़ान : हुण्डी तो मैं तभी लूँगा जब मैं अपनी बेटी को वापस ले जा सकूँगा। मैं इस शहर की ईंट से ईंट बजा दूँगा। मुझे तो शहंशाह ने वादा किया है कि अगर गुरु तेरी रक़म अदा नहीं करता तो मुग़ल फ़ौज अमृतसर शहर पर चढ़ाई करके आपके मीरी-पीरी के मालिक, आपके सच्चे पादशाह को क़ैद कर लेगी। पहली बार तो मियां मीर ने उसको छुड़वाया था, अब तो उसकी भी सरकारी दरबार में सुनवाई नहीं होती। (नाराज़ होता हुआ बाहर निकल जाता है। कुछ देर तक आँगन में ख़ामोशी छा जाती है।)

कौला : (कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद) अब्बा तो सतगुरु के महलों की ओर नहीं जा रहे।

नत्था : यह तो सामने अपनी घोड़ी की ओर जा रहा है।

कौला : ताकि जिस रास्ते से आया था, उसी रास्ते से लौट जाए।

नत्था : कुछ लोग कितने अभागे होते हैं।

कौला : अमृत की वर्षा हो रही हो और वह अनभिगे रह जाते हैं। (हरिमंदर से शब्द कीर्तन की आवाज़ उभर रही है)
डिठ्ठे सभे थाव........

(33)

जहाँगीर बादशाह का दीवानख़ाना। शहंशाह अपनी बेगम नूरजहाँ के साथ जलवा अफ़रोज़ हैं। अभी और कोई दरबारी दिखाई नहीं दे रहा।

जहाँगीर : मल्लिका, अगर जान की अमानत पाऊँ तो................

नूरजहाँ : शहंशाह की हर दरख़्वास्त मलका नूरजहाँ सुन सकती है, सिवाय एक और जाम के।

जहाँगीर : कहाँ दिन में बीस जाम और कहाँ अब झुंगे में तीन जाम। बस एक जाम और बेगम।

नूरजहाँ : आलमपनाह भूल रहे हैं कि शहंशाह की सेहतयाबी की ख़ुशी में बधाई देने के लिए वज़ीर ख़ान हाज़िर हो रहे हैं। उनके बाद मुलाक़ात के लिए क़ाज़ी रुस्तम ख़ान की अर्ज़ी भेजी गई है और फिर पीर दस्तगीर हज़रत मियां मीर महबूबे-इलाही तशरीफ़ ला रहे हैं। उन्हें लाने के लिए पालकी भेजी जा चुकी है। आपने पीर जी से वादा किया था कि आप तीन जाम से ज़्यादा शराब कभी नहीं पीएंगें।

जहाँगीर : आज की बात और है, ख़ाकसार को एक जाम और अता फ़रमाया जाए। यह क़ाज़ी रुस्तम ख़ान मेरा सर ज़रूर खाएगा। यह आदमी पगला गया है।' जब भी आता है कोई नई मुसीबत खड़ी कर देता है।

नूरजहाँ : हज़ूर ने उसे लाहौर शहर के सबसे बड़े क़ाज़ी का रूत्बा जो बख़्शा हुआ है।

जहाँगीर : शायद यह जहाँगीर सबसे बड़ी ग़ल्ती हुई है।

नूरजहाँ : इन लाहौर के क़ाज़ियों ने गुरु अर्जन देव जी के साथ जो कुछ किया, अदले जहाँगिरी के मुँह पर कालिख मल दी। आने वाली नस्लें जब यह पढ़ेगीं कि शहंशाह जहाँगीर के राज में एक ख़ुदापरस्त दरवेश को इतनी तकलीफ़ें पहुँचाकर शहीद कर दिया गया, तो कोई यह मानेगा कि जहाँगीर ने कभी इंसाफ़ किया था।

जहाँगीर : बेगम बार-बार मुझे इस बात की याद न दिलाया करो। मैं सोचता हूँ यह हमारे दौर की सबसे ज़्यादा ख़तरनाक घटना है। इसकी याद करते ही, मेरा सर शर्म से झुक जाता है। मेरे पीर हज़रत मियां मीर के हम दम, उनके सबसे प्यारे दोस्त का अगर यह हाल हो सकता है तो बाक़ी प्रजा के साथ क्या होगी। अदले जहाँगिरी एक ढोंग है बेगम। इंसाफ़ की यह ज़ंज़ीर जो तुमने मेरे महल के बाहर लटकाई हुई है, यह फ़रेब है मेरी

रिआया के साथ, मेरी ज़मीर के साथ, मेरे अल्लाह के साथ। (उदास हो जाता है)

नूरजहाँ : आजकल जहाँपनाह की आँखों में बात-बात पर आँसू आ जाते हैं, लाइये मैं आपको एक जाम.............

जहाँगीर : (एक दम खिल उठता है) ज़िन्दाबाद बेगम !

नूरजहाँ : (ताली बजाते हुए) मरियम, हज़ूर के लिए एक जाम।

जहाँगीर : तुम्हारी यह मरियम कितना सुन्दर गाती है !

नूरजहाँ : हज़ूर ने इसका गाना कब सुना है ?

जहाँगीर : कल मैं पाई बाग़ में टहल रहा था। इश्क़ पेचे की एक बेल की ओट में बैठी फ़व्वारे के फ़ुहारों को देखती अपने आप गाती जा रही थी। मैं काफ़ी देर तक इसके बोलों को सुनता रहा।

मरियम : (जाम बनाकर लाती है) बाँदी हुज़ूर की सेहत का जाम पेश करती है।

नूरजहाँ : मरियम आलम पनाह फ़रमाते हैं तू गाना बहुत अच्छा गाती है।

मरियम : हज़ूर की ज़र्रानवाज़ी है (शरमाकर कोर्निश बजा लाती है)

जहाँगीर : हाँ तो मरियम कल वाला भजन सुनाओ।
(मरियम हिचकिचा रही है)।

नूरजहाँ : हाँ-हाँ मरियम जब तक ज़िल्ले हलाही का जाम नहीं ख़त्म होता मैं भी सुनूँ तुम कितना प्यारा गाती हो। हज़ूर से दाद लेना ख़ाला जी का घर नहीं।

मरियम : (गला साफ़ करके धुन को गुनगुनाती है, फिर गाना शुरू करती है)

अव्वल अल्लाह नूर उपाया,
क़ुदरत दे सब बंदे
एक नूर ते सभ जग उपजा
कौन भले—कौन मंदे।
लोका भरम न भूलो कोई
खालक़ ख़लक़, ख़लक़ में ख़ालक़

(मरियम एक उन्माद में गाती है और शहंशाह जहाँगीर बीच-बीच में दाद देते हैं)

जहाँगीर : एक नूर ते सब जग, उपजा...........
(जहाँगीर शब्द के यह बोल दोहराता है उसकी आँखों में छल-छल आँसू उमड़ आते हैं।)

नूरजहाँ : तख़्लिया मरियम ! (मरियम फ़र्शी आदाब करके जाती है)

जहाँगीर : माफ़ करना बेगम, इस लड़की के बोल जैसे मेरे सीने में चुभ कर रह गए हैं।

नूरजहाँ : मुझे तो पता ही नहीं था कि यह इतना प्यारा गाती है।

जहाँगीर : कल यह कोई और भजन गा रही थी।

नूरजहाँ : इसका असली नाम मीरा है। जहाँपनाह को शायद इस बात का इल्म नहीं कि यह हिन्दू लड़की है। जब से यह मेरी मज़ूरे नज़र हुई है, इसने अपना नाम मरियम रख लिया है। मैंने कई बार इससे कहा। 'मीरा' नाम कितना प्यारा है। 'मीरा' और 'मरियम' में कोई फ़र्क़ है।

जहाँगीर : जहाँगीर यह फ़र्क़ नहीं मिटा सका। हज़रत मियां मीर को जिस महापुरूष ने अपनी हरमंदिर की बुनियाद रखने के लिए निमंत्रित किया उस रब के महबूब को मेरे राज में अकथनीय कष्ट दे-देकर ख़त्म कर दिया गया। मेरी समझ में नहीं आता मैं किस मुँह से अल्लाह के हुज़ूर में पेश होऊँगा। क़यामत के दिन मैं नहीं जानता मेरा क्या हश्र होगा। (उदास-उदास नज़रों से छत की ओर देखने लगता है)

नूरजहाँ : आजकल यह आपको क्या हो जाता है ? बात-बात पर रूआँसे हो जाते हैं। हर वक़्त उदास-उदास। कोई वक़्त था कि जाम का एक घूँट और आपके चेहरे पर रौनक़ खेलने लगती थी।

जहाँगीर : बेगम, कभी-कभी मेरा मन करता है, मैं इस सारे राज-पाट को छोड़-छाड़कर दरवेश हो जाऊँ। पिछली

बार जब मैं हज़रत के तकिये पर हाज़िर हुआ मेरा वहाँ से उठने का मन ही नहीं करता था वह तो तुम्हारे बार-बार इशारा करने पर मैं उनकी दरगाह से उठा।

नूरजहाँ : हज़रत को हमारा यह शाही-ठाठ बाट अच्छा नहीं लगता।

जहाँगीर : तभी तो इसे मैं छोड़ना चाहता हूँ।

नूरजहाँ : आपने हज़रत से भी बात की है ? उनकी मर्ज़ी भी पूछी है।

जहाँगीर : बस इसीलिए तो मैंने आज उन्हें बुलाया है या मुझे अपना मुरीद बना लें या मुझे किसी पहुँचे हुए फ़कीर के दामन से बाँध दे। यह ठाठ-बाट, शान-शौकत सब मुझे व्यर्थ लगने लगा है।

नूरजहाँ : और सल्तनत की बागडोर ?

जहाँगीर : वह तो मलका नूरजहाँ ने अब भी सम्भाली हुई है, आगे भी सम्भाले रखेगी। लोग पहले ही कहते हैं, कि मैंने एक जाम के लिए अपनी सल्तनत मल्लिका नूरजहाँ को सौंप दी है।

नूरजहाँ : मेरा ख़्याल है कि वज़ीर ख़ान तशरीफ़ ले आए हैं। उनकी मुलाक़ात का वक़्त हो गया है।

जहाँगीर : हाँ, उन्हें भेज दो।

(मल्लिका नूरजहाँ बाहर जाती है। जहाँगीर एक बार फिर गुनगुनाता है : एक नूर ते सभ जग उपजा।)

वज़ीर ख़ान : (हाज़िर होता है) शहंशाह को ख़ादिम का लाख-लाख सलाम क़बूल हो। ख़ाकसार कोर्निश बजा लाता है।

जहाँगीर : आओ वज़ीर ख़ान। मैं तो इंतज़ार ही कर रहा था। आज माबदौलत की तबीयत कुछ नासाज़ है।

वज़ीर ख़ान : चश्मे बद्दूर ! हज़ूर के दुश्मनों को क्या तकलीफ़ है ? बंदा हाज़िर है। हकीम साहब को बुलाया जाए।

जहाँगीर : नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं। बेगम की एक कनीज़ ने माबदौलत को आज एक भजन सुनाया है। मेरी तो जैसे आँखें खुल गई हैं, 'एक नूर ते सभ जग उपजा,

कौन भले, कौन मंदे।'
(शहंशाह शब्द के बोल गुनगुनाता है।)

वज़ीर ख़ान : वाह ! वाह ! यह तो कबीर का शब्द है।
'अव्वल अल्ला नूर उपाया'।
बड़ा पहुँचा हुआ फ़क़ीर था। इन लोगों का ज़वाब नहीं।

जहाँगीर : इस बारे में फिर बात करेंगे। पहले सरकारी कार्यवाही ख़त्म कर लें।

वज़ीर ख़ान : जैसे हज़ूर की मर्ज़ी।

जहाँगीर : थोड़ी देर में क़ाज़ी रूस्तम ख़ान मुलाक़ात के लिए आ रहा है। इसे अब क्या मुसीबत आई हुई है ?

वज़ीर ख़ान : लाहौर के क़ाज़ियों की पहली करतूत से हज़ूर वाक़िफ़ ही हैं। रूस्तम ख़ान उनका सरग़ना है। उसकी नई करतूत से ज़िल्ले इलाही शायद वाक़िफ़ नहीं। जो घोड़ा हज़ूर ने उसे कलमा सुनाकर सिधाने के लिए दिया था, उसी दिन अपने घर पहुँचने से पहले वह घोड़ा क़ाज़ी साहब ने गुरु हरिगोविंद को दस हज़ार रूपये में बेच दिया। घोड़ा गुरु के सिक्खों ने पेशावर से गुरु के लिए भेजा था। अपने मालिक के पास पहुँचकर घोड़ा स्वस्थ हो गया। उसने चारा खाना भी शुरू कर दिया और गुरु हरिगोविंद साहब को सवारी भी ख़ूब अच्छी कराने लगा। यह देखकर क़ाज़ी रुस्तम ख़ान को बड़ी ख़ार आई। गुरु महाराज से फ़ैसला यह हुआ था कि दस हज़ार की रक़म दीवाली पर अदा की जाएगी पर क़ाज़ी साहब इस से पहले ही तक़ाज़ा करने लगे हैं। कुछ दिन पहले वे अमृतसर गए थे।

जहाँगीर : यह सारा क़िस्सा मुझे पता है। मैंने ही गुरु हरिगोविंद जी को संदेशा भेजा था कि क़ाज़ी की रक़म दे दी जाए।

वज़ीर ख़ान : हज़ूर के हुक्म के मुताबिक़ गुरु हरिगोविंद रक़म चुकाने के लिए तैयार हो गए, पर मुझे यह खुफ़िया ख़बर

मिली है, कि क़ाज़ी रुस्तम ख़ान हुण्डी लिए बग़ैर अमृतसर से लौट आए हैं।

जहाँगीर : यह किस तरह के क़ाज़ी हमारे राज में हैं। अदले जहाँगिरी का इतना शोर है। यह लोग कैसा इंसाफ़ करते होंगे।

वज़ीर ख़ान : ज़िल्ले इलाही, अगर जान की अमानत पाऊँ तो अर्ज़ करूँ, कहानी यहीं नहीं ख़त्म होती। इस क़ाज़ी रुस्तम ख़ान की एक जवान बेटी है।

जहाँगीर : बड़ी ख़ुदा परस्त। हज़रत मियांमीर के ख़ास मुरीदों में से है।

वज़ीर ख़ान : जी, जी हज़ूर वही। इस लड़की को अल्ला की लौ लगी हुई है। उसने शादी भी नहीं की। तस्बीह फेरती रहती है या हज़रत के आसताने में सज्दे में पड़ी रहती है। रुस्तम ख़ान को यह सब पसंद नहीं था। दिन-रात बेचारी लड़की को परेशान करने लगा। फिर उसके काफ़िर होने का फ़तवा दे दिया। हज़रत मियां मीर ने यह सुनकर लड़की को गुरु हरिगोविंद जी की पनाह में अमृतसर भिजवा दिया। क़ाज़ी रुस्तम ख़ान तो अपनी बेटी को सूली पर चढ़ाना चाहता था।

जहाँगीर : ख़ुदा का ख़ौफ़ नहीं। सारे ऐब इसी एक ऐब से पैदा होते हैं।

वज़ीर ख़ान : मेरा ख़्याल है, क़ाज़ी रुस्तम ख़ान तशरीफ़ ले आए हैं।

जहाँगीर : तो फिर उसे बुला लो। इस मुसीबत से पहले निपट लें। हज़रत को भी आना है। उनके लिए पालकी भेजी जा चुकी है।

वज़ीर ख़ान : इस आदमी को ज़्यादा मुँह नहीं लगाना चाहिए। जो आदमी बेटी पर जुल्म ढा सकता है प्रजा के साथ उसका व्यवहार कैसा होगा? लड़की इस के घर से भागकर अमृतसर में जा छिपी है। मैं उसे अंदर भेजता हूँ। (जाता है)

जहाँगीर : 'एक नूर ते सभ जग उपजा।'

(शब्द के बोल गुनगुनाता है।)

रूस्तम ख़ान : (आते हुए) ज़िल्ले इलाही को ख़ादिम का लाख-लाख सलाम। हज़ूर का इक़बाल बना रहे।

जहाँगीर : सलाम। सलाम क़ाज़ी साहब। सुनाइये कैसे तशरीफ़ लाए ?

रुस्तम ख़ान : (अपना साफ़ा उतार कर शहंशाह के क़दमों में फेंकता है) जहाँपनाह हज़ूर के ख़ादिम की नाक कट गई है। मेरी आबरु तो तिनके के बराबर भी नहीं रही। मेरे मुँह पर कालिख पोत दी गई है। मेरी पूछ न घर में है न बाहर। मैं तो किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहा। न दिन में चैन न रात को आराम।

जहाँगीर : क्यों। अमृतसर के आसामी ने तेरी रक़म अदा नहीं की।

रूस्तम ख़ान : रक़म देना तो पीछे रहा, इस गुरु ने तो मेरा जीना हराम कर दिया है। मेरे घर में कोहराम मचा हुआ है। मेरी बीवी ने रो-रोकर अपनी आँखें फोड़ ली हैं। बहुत दिनों से हमारे चूल्हे में आग नहीं जलाई गई। गली-नुक्कड़ों से निकलते लागे लाहौर शहर के क़ाज़ी पर थू-थू करते हैं। हर मोड़ पर मुझ पर उँगलियाँ उठाई जाती हैं, जितनी मुँह उतनी बातें।

जहाँगीर : क़ाज़ी रूस्तम ख़ान तेरी भूमिका ही ख़त्म नहीं हो रही, कुछ बात तो कर।

रूस्तम ख़ान : ज़िल्ले इलाही, करने वाली बात तो कोई रही ही नहीं। आपके राज में क़हर बरस रहा है। इस्लाम ख़तरे में है। जिस मुग़ल हुकूमत को, जिस इस्लामी शहंशाहियत को आपके पुरखों ने अपने लहू से सींचा, बनाया, उस हुकूमत के पुरज़े उड़ रहे हैं। मुझे सामने आसमान पर काली घटाएं दिख रही हैं। यह तख़्त, यह ताज बस डोलने वाला है।

जहाँगीर : रूस्तम ख़ान, तू बात आगे क्यों नहीं बढ़ाता ? कौन सी क़यामत आने वाली है। कुछ माबदौलत को भी तो पता

चले।

रूस्तम ख़ान : हज़ूर, आपने सूफ़ियों, संतों, गुरुओं और पीरों को बहुत मुँह लगा रक्खा है। शहंशाह जहाँगीर कहीं-किसी दखेश के तकिये पर जलवा अफ़रोज़ है कभी किसी काफ़िर के साथ मिलकर शिकार खेलता है। ज़िल्ले इलाही क्या यह सच नहीं कि आगरे में एक घसियारे ने हज़ूर को एक टका भेंट करके कहा था-'सच्चे पादशाह मेरा लोक-परलोक सँवार दीजिए।' यह सुनकर हज़ूर ने उसे सामने गुरु हरिगोविंद के तम्बू के सामने भेज दिया। 'सच्चा पादशाह उस तम्बू भें ठहरा हुआ है।' हज़ूर ने उसे कहा।

जहाँगीर : इसमें बुरी बात क्या है ? जो 'सच्चा पादशाह' है, वही 'सच्चा पादशाह' है। मैं सच्चा पादशाह नहीं बन सकता।

रूस्तम ख़ान : हज़ूर अगर मेरी जान बख़्शें तो मैं कहूँगा यह कुफ्र है।

जहाँगीर : (ख़फ़ा होकर) माबदौलत बहुत देर से तेरे पाखण्ड सुन चुके हैं। तू मतलब की बात कर। हमें और भी काम है। साफ़ा उतारकर मेरे क़दमों में फेंकना मुझे बेहूदगी लगी है। रुस्तम ख़ान कभी कोई दरबारी भी ऐसे करता है।

रूस्तम ख़ान : (दहाड़ मारकर रोता है) जहाँपनाह, मेरे साथ बड़ा सितम हुआ है। मेरी इकलौती बेटी को गुरु हरिगोविंद के सिक्ख भगाकर अमृतसर ले गए हैं। एक तरफ़ वे घोड़े की रक़म अदा नहीं कर रहे, दूसरी तरफ़ उन्होंने मेरी बेटी को सिक्ख भी बना लिया है। मैं तो लुट गया।

जहाँगीर : क़ाज़ी साहब ! पहले यह फ़रमाइये जो घोड़ा आपको माबदौलत ने दिया था, वह किस मक़सद दे दिया गया था।

रूस्तम ख़ान : ताकि कल्मा पढ़कर उसे सधाया जाए।

जहाँगीर : और आपने उसे रास्ते में ही बेच दिया।

रूस्तम ख़ान : घोड़ा गुरु के डेरे से आगे क़दम उठाने को तैयार नहीं था। गली में खड़ा होकर हिनहिनाने लगा। हिनहिनाता जाए जैसा फ़रियाद कर रहा हो।

जहाँगीर : फिर आपने अमानत में ख़यानत कर दी। सधाने के लिए मिले घोड़े को बेच दिया।

रूस्तम ख़ान : इसमें बुराई क्या है ? एक लाख का घोड़ा मैंने दस हज़ार में बेचा। मेरा तो गुरु पर अहसान है।

जहाँगीर : फ़ैसला यह हुआ था कि घोड़े का मोल दीवाली पर चुकाया जाएगा और आपने पहले ही तक़ाज़ा शुरू कर दिया।

रूस्तम ख़ान : इसलिए कि घोड़ा अब भला चंगा हो गया है। गुरु हरिगोविंद रोज़ाना उस पर सवारी करते हैं, शिकार पर जाते हैं।

जहाँगीर : यह भी सुना है कि गुरु आपको हुण्डी दे रहे थे लेकिन आप उसे लिए बग़ैर लाहौर के लिए चल पड़े।

रूस्तम ख़ान : इसलिए कि उन्होंने मेरी बेटी को घर बिठा लिया है। यह जानकर मेरे पैरों तले ज़मीन खिसक गई। इस तरह की चोरी, इस तरह की सीनाज़ोरी कभी किसी ने नहीं सुनी होगी।

जहाँगीर : सुना है कि आपने अपनी बेटी को परेशान करके खुद घर से भगाया था। लड़की अमृतसर में राज़ी-खुशी अपना जीवन बिता रही है।

रूस्तम ख़ान : झूठ है। लड़की को लाहौर से भगाया गया। शाम को वह मियां मीर के डेरे से लौट रही थी कि रास्ते में उसे उठा लिया गया। हो न हो मियां मीर का भी इसमें हाथ है।

जहाँगीर : क़ाज़ी रूस्तम ख़ान कोई तो सच्ची बात कर। तेरी पूरी कहानी झूठ का पुलिंदा है, और कुछ नहीं।

रूस्तम ख़ान : दुहाई है दुहाई हज़ूर, कभी यह भी किसी ने सुना है कि शहर का क़ाज़ी कभी झूठ बोले।

जहाँगीर : झूठ ही नहीं बोलता, कुफ़्र तौलता है। रूस्तम ख़ान अपना साफ़ा उठाकर मेरी आँखों के सामने से ओझल हो जा। तुझ जैसा झूठा आदमी मैंने कोई नहीं देखा। मैं तो हैरान हूँ तू किस तरह का इंसाफ़ करता होगा।

वज़ीर ख़ान ! बाहर देखो हज़रत की पालकी का वक़्त हो गया है।

(रूस्तम ख़ान अपमानित होकर बाहर जाता है। हाथ में साफ़ा पकड़े, हक्का-बक्का उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे।)

वज़ीर ख़ान : हज़ूर की पालकी आ गई है। वे मल्लिका मुअज़्ज़मा के साथ गुफ़्तगू कर रहे हैं। मैं जाकर उन्हें बताता हूँ कि ज़िल्ले इलाही फ़ारिग़ हैं। (जाता है)

जहाँगीर : रूस्तम ख़ान जैसों को कबीर का यह शब्द सुनाना चाहिए-'एक नूर ते सभ जग उपजा।' कितना कुफ़्र है, कितना फ़रेब है इस दुनिया में। मेरा तो जी इस जहान से उचाट हो गया है।

(हज़रत मियां मीर मालिका नूरजहाँ और वज़ीर ख़ान के साथ आते हैं। जहाँगीर उठकर उन्हें आदर देता है।)

हज़रत मियां मीर : वालेकुम सलाम। जीते रहो, अल्लाह मेहर करे। भाग लगाए। दिन-दुगना रात चौगुना इक़बाल बढ़े।

जहाँगीर : हज़ूर अब तो इस दुनिया से यह दिल भर गया, अब तो खाकसार को आप अपने डेरे पर ही कोई ठिकाना दीजिए।

नूरजहाँ : मैं हज़रत से अर्ज़ कर रही थी कि आजकल ज़िल्ले इलाही पर एक अजीब उदासी का आलम छाया रहता है।

वज़ीर ख़ान : कोई बात नहीं जहाँपनाह, रूस्तम ख़ान जैसे गुमराह लोगों से दुनिया भरी पड़ी है। इस पर अपना मन ख़राब कर लेना बेकार है।

नूरजहाँ : नहीं यह आज की बात नहीं, ज़िल्ले इलाही कई दिनों से उदास-उदास रहते हैं, बस एक ही रट कि मैं अब संन्यास ले लूँगा।

हज़रत मियां मीर : बिल्कुल ग़लत बात है, एक बादशाह का फ़र्ज़ लोगों की भलाई है, अगर बादशाह इंसाफ़ पसंद है तो फ़कीर भी

अल्लाह का नाम ले सकते हैं नहीं तो चारों तरफ़ अराजकता फैल सकती है। इंसाफ़ पसंद राजा के राज में प्रजा ख़ुशहाल रहती है, लोग अपने-अपने कामों में लगे रहते हैं, हर आदमी खुशियाँ लुटाता है। अल्लाह देख-देख कर ख़ुश होता है।

जहाँगीर : हज़ूर सब कुछ ठीक फरमाते हैं। ख़ाकसार को तो अब किसी ऐसे मर्दे कामिल की तलाश है जिसकी उँगली पकड़ कर बंदा का पार उतारा हो जाए।

हज़रत मियां मीर : इस तरह का कोई मर्दे कामिल मिल जाए तो बंदे को और क्या चाहिए।

जहाँगीर : हज़ूर कोई इस तरह का है ?

हज़रत मियां मीर : कोई ऐसा दरवेश जो, अपनी कमाई का हिस्सा आपके साथ बांट ले ?

नूरजहाँ : जी हज़ूर। जो अपनी नाव में हम जैसे पत्थरों को भी ढोकर पर ले जाए।

जहाँगीर : कोई पारस जिसको छूकर लोहा सोना बन जाता है, मुर्दे जी उठते हैं।

(हज़रत मियां मीर सोच में पड़ जाते हैं।)

नूरजहाँ : हज़ूर लगता है आप सोच में पड़ गए हैं।

हज़रत मियां मीर : मैं इधर उधर निगाह उठाकर देख रहा हूँ।

जहाँगीर : आप को आस-पास कोई नज़र नहीं आता ?

हज़रत मियां मीर : एक था, ज़रूर एक था। पर उससे तेरे क़ाज़ियों ने जलते तवे पर बिठाकर भून डाला। एक था, ज़रूर एक था जो 'तेरा भाणा मीठा लागे।' गाता हुआ इस दुनिया से चला गया।

वज़ीर ख़ान : धन गुरु अर्जन देव महाराज ! इन क़ाज़ियों को इतना भी ख़्याल नहीं आया कि उस दरवेश ने अपनी हरिमंदर की बुनियाद का पत्थर एक मुसलमान पीर से रखवाया था !

हज़रत मियां मीर : उसका बदला क़ाज़ी रुस्तम ख़ान को मिल चुका है। उसकी बेटी सब कुछ छोड़-छाड़ कर अमृतसर गुरु

	हरिगोविंद की पनाह में जा बैठी है।
वज़ीर ख़ान :	अगर लड़की वहाँ न जाती तो उसे सूली पर चढ़ा दिया जाता। उसके बाप ने तो उसके बारे में काफ़िर होने का फ़तवा दे दिया था।
जहाँगीर :	और वह अभी यहाँ से लाख पाखण्ड करके गया है।
हज़र मियां मीर :	रूस्तम ख़ान महाचण्डाल है। पता नहीं उसे शहर का क़ाज़ी किसने बना दिया है।
जहाँगीर :	हज़ूर उसे छोड़िये। आज मलिका की एक कनीज़ ने कबीर का एक शब्द सुनाया है। मेरी तो आँखें खुल गई हैं, 'अव्वल अल्ला नूर उपाया, कुदरत दे सभ बंदे......।'
हज़रत मियां मीर :	एक नूर ते सभ जग उपज्या कौन भले कौन मंदे।
वज़ीर ख़ान :	'ख़ालक़ ख़लक़, ख़लक़ में ख़ालक़.........
हज़रत मियां मीर :	कबीर की क्या बात है। उसकी नज़र में कोई हिन्दू नहीं कोई मुसलमान नहीं था। उसकी नज़र में कोई द्वेत का भाव नहीं था।
वज़ीर ख़ान :	बाबा नानक ने भी कहा था ना मैं हिन्दू हूँ, न मैं मुसलमान हूँ।
हज़रत मियां मीर :	वो तो इंसान थे।
नूरजहाँ :	मुझे तो हरिगोविंद में भी एक इलाही नूर दिखायी देता है। उनके मुखड़े की तरफ़ देखा नहीं जाता। आँखें चौंधिया कर रह जाती हैं। जितनी बार मैंने उनके दर्शन किए हैं मुझे ऐसा महसूस होता रहा है जैसे किसी के बदन से चप्पा-चप्पा मैल उतर रही हो।
हज़रत मियां मीर :	फिर भी तेरे मर्द ने उस महान आत्मा को ग्वालियर के किले में क़ैद किया। मैं पूछता हूँ यह कहाँ का इंसाफ़ है। अदले जहाँगीरी की हर जगह चर्चा होती है। यह धोखा है, यह अपने आप को फ़रेब देना है। अगर मैं ख़ुद दिल्ली न जाता, वहाँ के सारे सूफ़ियों और दरवेशों को इकट्ठा करके शहंशाह जहाँगीर के आगे दुहाई न देता तो क्या पता अल्लाह का महबूब अभी

तक ग्वालियर के क़िले में क़ैद काटता रहता।

वज़ीर ख़ान : ज़िल्ले इलाही को बाद में पता चल गया वह सब साज़िश थी। कुछ दरबारियों की जो उन दिनों हज़ूर के मुँह लगे हुए थे।

हज़रत मियां मीर : (क्रोध में आकर) यही तो मैं कहता हूँ। इंसाफ़ कहाँ है? शहंशाह जहाँगीर एक फ़क़ीर पर दो लाख रूपये का जुर्माना करके ख़ुद अपनी बेगम के साथ कश्मीर की सैर करने के लिए चला जाता है और उसके पीछे काज़ी साज़िश करके किसी अल्लाह के प्यारे को तकलीफ़े देकर जान से मार देते हैं। किसी ने कुछ पूछ-पड़ताल की है ? लाहौर का क़ाज़ी रूस्तम ख़ान अभी तक अपनी बदतमीज़ियों से बाज़ नहीं आ रहा। सरकार और दरबार में इंसाफ़ की ज़बानी बातें होती हैं, इंसाफ़ की पक्की बुनियादें नहीं क़ायम की जातीं। किसी फ़क़ीर के लिए भेजे गए घोड़े को हथिया लेना कैसा इंसाफ़ है ? और फिर उसी घोड़े को उसी दरवेश के पास दस हज़ार में बेच देना।

'एक नूर ते सभ जग उपज्या।'

यह बोल हमारे कलेजे को हिला देते हैं। लेकिन हमने सारे जग को क्या एक नज़र से देखा है ? हिन्दू और मुसलमान में भेद-भाव करने से हम छुटकारा पा सके हैं ? सब झूठी बातें हैं। आदमी सारी दुनिया को धोखा दे सकता है पर अपने अल्लाह को फ़रेब नहीं दे सकता।

(हज़रत मियां मीर जाने के लिए उठ खड़े होते हैं।)

जहाँगीर : क़िब्ला आप उठ खड़े हैं ?

नूरजहाँ : हज़ूर जाने के लिए तैयार हो गए हैं।

हज़रत मियां मीर : हाँ, मैं अब जाऊँगा।

जहाँगीर : हमारे लिए क्या हुक्म है ? जहाँगीर वह सब कुछ करने के लिए तैयार है जो हज़रत फ़रमाएंगे।

नूरजहाँ : जो कुछ भी हज़ूर हुक्म करेंगे वही कुछ होगा।

जहाँगीर : हज़रत आप फ़रमाईए तो सही।

हज़रत मियां मीर : आप वादा करते हैं कि जो कुछ मैं कहूँगा आप मानेंगे?

जहाँगीर-नूरजहाँ : हमारी मजाल है कि हज़ूर की बात टाल जाएँ।

हज़रत मियां मीर : तो फिर आप वादा करें कि आगे से कभी मुझे पालकी भेज कर नहीं बुलाएंगे।

जहाँगीर-नूरजहाँ : हज़ूर !! (जहाँगीर और नूरजहाँ फटी-फटी आँखों से हज़रत मियां मीर की ओर देखते रह जाते हैं।)

(34)

कमाल कहाँ ग़ायब हो गया था ?

वीरां की शादी के चौथे फेरे को देखकर कमाल के मन में इतनी बेचैनी उठी कि वह दुनिया छोड़-छाड़ कर जिधर रुख़ हुआ उधर ही चल पड़ा। घूमता-घूमता, उस रास्ते पर पहुँच गया जिस पर कभी बाबा नानक निकले थे। जब पीलीभीत में नानक मत्ते के गुरु स्थान पर पहुँचा, सामने गोरखपंथी अलमस्त से बहस कर रहे थे। गुरु नानक वहाँ चार दिन रहे थे। वह नानक मत्ता कैसे हो गया ? वह गोरख मत्ता था जहाँ गोरखनाथ ने कई बरस तक तपस्या की थी। वहाँ काफी समय से गोरखपंथी बैठे हुए थे। कान में मुँद्रा (योगियों के कान में पहनी जाने वाली मुद्रा) हाथ में डण्डा, कँधे पर थैला। अलमस्त रीठे के उस पेड़ का ज़िक्र करता जिसके रीठे बाबा नानक के आने से मीठे हो गए थे। अलमस्त उन्हें पीपल का वह पेड़ दिखाता जिसके हर पत्ते पर बाबा नानक के हाथ का चित्र बना हुआ था। गोरखपंथी, यह सब कुछ सुनने के लिए तैयार नहीं थे। एक ही ज़िद कि वह गोरख मत्ता था। इतने बरस से गोरख मत्ता नाम से जाना जाता था, अब नानक मत्ता कैसे हो गया ? गोरख पंथी मरने-मारने को तैयार थे। अलमस्त भी हार मानने वाला नहीं था। ना ही कमाल। उन्होंने अपने साथ गुरु बाबा जी के और गुर सिक्ख भी मिला लिए थे।

फिर एक दिन जब वे लोग रात को सो रहे थे गोरख पंथी मिल कर आए और उन्होंने रातों-रात पीपल को जड़ से काट दिया। अगली सवेर जब अलमस्त ने उनकी करतूत देखी तो पीपल के पास चबूतरा बनाकर बैठ गया। उसने गोरख पंथियों को बताया, गुरु नानक की गद्दी पर छठे गुरु हरिगोविंद विराजमान हैं, वे खुद यहाँ आएँगे और पीपल को फिर हरा-भरा कर देंगे।

'अगर पीपल की कोपलें फिर फूट पड़ीं तो हम इस स्थान पर से अपना

दावा छोड़ देंगे।' गोरखपंथी इस बात पर राज़ी हो गए।

अलमस्त दिन-रात चबूतरे पर बैठा गुरु हरिगोविंद जी का ध्यान धरके विनतियाँ करता रहता। दिन-रात हाथ जोड़ता, अरदासें करता। कमाल उसकी सेवा में हाज़िर रहता।

दिन-रात, हफ़्ते, महीने बीतने लगे गोरखपंथी अलमस्त पर हँसते। नानक मत्ते पर क़ब्ज़ा करने की धमकियाँ देते रहते और फिर एक दिन अलमस्त की अरदास सुनी गई। गुरु हरिगोविंद अपने साथ कई घुड़सवार और गुर सिक्ख लेकर नानक मत्ते आ निकले। गुरु महाराज के घोड़े की हिनहिनाहट सुन कर अलमस्त ने आँखें खोलीं। सामने गुरु हरिगोविंद जी थे। दर्शन क़रके वह खिल उठा।

आस-पास जमा गोरखपंथी सोचते, शायद किसी राजा की सवारी उतरी है। उन्हें अपने सर छुपाने की कोई जगह नहीं दिख रही थी। गुरु महाराज के साथ सुमन भी था। एक नज़र कमाल को देखकर उसने उसे सीने से लगा लिया। गुरु महाराज के चरण पड़े, पेड़ पर केसर का छींटा मारा गया और इतने दिनों से सोया हुआ पीपल फिर जाग उठा। धरती में पहले एक कोंपल फूँटी; अगले दिन दूसरी, फिर उसके पत्ते निकलने लगे। पेड़ बढ़ने लगा। हर पत्ते पर बाबा नानक का पंजा अंकित होता।

अब गोरखपंथियों की मजाल नहीं थी कि अलमस्त की तरफ़ आँख उठाकर भी देख जाएँ।

गुरु महाराज लौट गए। सुमन भी उनके साथ चला गया। लाख मिन्नतों के बाद भी कमाल उसके साथ नहीं गया। नानक मत्ते में उसकी ज़रूरत थी। वह इस ज़रूरत को पूरा करने का प्रण कर चुका था। अलमस्त कहता-'यह तो मेरा उत्तराधिकारी होगा, मेरा वारिस है।'

(35)

गुरु महाराज बड़े लंबे दौरे के बाद अमृतसर पहुँचे थे। गढ़शंकर, बकाला, बटाला, ननकाना साहब आदि के गुरसिक्खों को इतने दिन निहाल करते रहे थे।

अमृतसर पहुँचे तो अनेक श्रद्धालु उनके इंतज़ार में बेताब हो रहे थे। कई स्थानों पर मसंद आए बैठे थे। उनकी तिजौरियाँ गुरसिक्खों की चढ़ाई भेंटों से भरी हुई थीं।

और ज़रूरी ज़िम्मेदारियाँ निपटाकर मसंदों की बारी आई, ताकि वे

अपने-अपने इलाक़े की भेंटें पेश कर सकें। मसंद गुरु प्यारों का नाम लेकर भेंटे चढ़ा रहे थे। साथ-साथ अरदासें हो रही थीं। गुरु महाराज के ख़ुशियों की वर्षा। फिर किसी मसंद ने एक कौड़ी भेंट की। दस साल के किसी अनाथ बच्चे ने वह कौड़ी गुरु महाराज को भेंट करने के लिए दी थी। अरदासिया एक कौड़ी के लिए अरदास करने में हिचकिचा रहा था। गुरु महाराज ने ख़ुद उस दस साल के बच्चे के लिए प्रार्थना की, उसे अपनी आशीष दी। यही नहीं कितनी देर तक नयन मूँदे समाधी में बैठे रहे।

जब दीवान ख़त्म हुआ तो पास खड़े गुर सिक्ख गुरु महाराज से पूछने लगे-"सच्चे पादशा, सैकड़ों और हज़ारों रूपए भेंट करने वालों के लिए तो अरदासिया अरदास करता रहा और एक कौड़ी भेंट भेजने वाले बेनाम बच्चे के लिए आपने ख़ुद अरदास की ?"

गुरु महाराज ने फ़रमाया, "गुर सिक्ख अपनी हैसियत के मुताबिक़ भेंट करता है। गुरु उसकी ज़रूरत के मुताबिक़ उसे आशीष देता है।"

सचमुच उस अनाथ बच्चे की ज़रूरत गुरु महाराज ही पूरी कर सकते थे।

उसकी कहानी अत्यंत विचित्र थी। गुरु महाराज की आशीष की ज़रूरत उससे ज़्यादा किसी विरले को ही होती है।

गुरमुख नाम का एक गुरसिक्ख था। उसकी पत्नी भी गुरु घर की श्रद्धालु थी। ईश्वर ने उन्हें सब कुछ दिया था पर उनके यहाँ एक औलाद ही नहीं थी। यही तृष्णा कि किसी तरह उन्हें एक संतान हो जाए। दोनों समय पति-पत्नी धर्मशाला में हाज़िर होते। आने-जाने वाले की सेवा करते। आख़िर गुरु प्यारों ने मिलकर अरदास की और उनकी अरदास सुनी गई। गुरमुख के घर में एक बालक ने जन्म लिया। बड़ी मिन्नतों के बाद पैदा हुए बच्चे की बड़ी ख़ातिरें होतीं, लाड़-प्यार होते। नासमझ माँ-बाप की यह ग़लती थी कि उन्होंने न अपने बच्चे की लिखाई-पढ़ाई पर ध्यान दिया और ना ही उसे किसी और काम में डाला। ईश्वर का संयोग बच्चा दस बरस का हुआ तो बारी-बारी से माता-पिता दोनों मर गए।

बिना इल्म, बिना सोचे-समझे, माँ-बाप जो भी जायदाद छोड़ गए थे उसने कुछ दिनों में ही लुटा दिया। कुछ अपनी नालायक़ी के कारण कुछ अड़ोसी-पड़ोसियों की मेहरबानी के कारण। कुछ दिनों बाद यह नौबत आ गई कि बेचारे अनाथ बच्चे के पल्ले पेट भरने के लिए कुछ भी नहीं रहा।

उस दिन बस एक कौड़ी उसके पास रह गई थी जिसे मुट्ठी में लेकर वह बाज़ार कुछ खाने के लिए निकला। उसे बड़ी भूख लगी हुई थी। लेकिन कोई भी उसे एक कौड़ी के बदले खाने को कुछ भी नहीं दे रहा था।

भूख से निढ़ाल अनाथ बच्चा सड़क के किनारे बैठा था कि वहाँ से गुरसिक्खों का एक जत्था गुज़रा। यह जानकर कि वे गुरु महाराज के दर्शनों के लिए अमृतसर जा रहे थे, उस बालक ने अपनी मुट्ठी की एकलौती कौड़ी उन्हें देते हुए कहा, "इसे गुरु महाराज को भेंट कर देना। मैं अनाथ हूँ, मेरे पास देने के लिए बस यही है।"

गुरसिक्ख उस बालक की कौड़ी लेकर अमृतसर पहुँचे। और कौड़ी गुरु महाराज को भेंट कर दी।

उधर गुरमुख का बेटा भूखा-प्यासा सड़क के किनारे बैठा था कि उधर से एक पठान सिपाही गुज़रा। मुग़लों का राज, बजाय इसके कि अनाथ बच्चे की मदद करता, पठान ने अपनी गठरी उठाने के लिए बच्चे के सर पर रख दी और उसे अपने साथ ले चला। थोड़ी दूर जाकर एक पुराने कुएँ के पास पेड़ के नीचे बैठकर सिपाही सुसताने लगा। वह अपनी रोटी एक कपड़े में बाँधकर लाया था। खाना खाने से पहले वह हाथ मुँह धोने के लिए सामने कुएँ पर गया। कुएँ के जबूतरे पर उसने पैर रखा ही था कि धड़ाम से वह कुएँ में जा गिरा। चबूतरे का सारा मलबा उस पर इस तरह गिरा कि सिपाही नीचे दब कर रह गया।

कपड़े में लिपटी पठान की रोटी ज्यों की त्यों पड़ी थी और साथ में उसकी भारी गठरी भी वहीं पड़ी थी। गुरमुख के बेटे ने पहले तो रोटी खाकर अपना पेट भरा फिर गठरी खोलकर देखने लगा कि इसमें क्या था। इतनी दूर से गठरी उठाकर लाने में बच्ची की गर्दन ही रह गई थी।

गठरी खोली तो देखता है कि उसमें ढेर से गहने, कपड़े, मोती और एक हज़ार अशर्फ़ियाँ थीं।

यह देख कर गुरमुख के बेटे को गुरु महाराज की याद आई। यह सब कुछ वह गुरु महाराज को भेंट कर देगा। उनकी ही तो कृपा हुई थी। गठरी उठाकर वह अमृतसर के लिए चल पड़ा, जिस रास्ते पर गुर सिक्खों का जत्था गया था। रास्ते में ही रात हो गई। सड़क के किनारे एक घर था, उसने सोचा, वहीं रात काट लेगा।

घर में घुसते ही उसने घर की मालकिन को एक अशरफ़ी दी ताकि

वह उसके लिए खाना भी तैया.र करे और उसे बिस्तर भी दे।

औरत का घरवाला बाहर गया हुआ था। घर में वह अकेली थी। बदमाश औरत, उसने अंदाज़ा लगाया, जो मुसाफ़िर एक रात रहने के लिए एक अशरफ़ी दे सकता है वह ज़रूर कोई मालदार होगा। खाना पकाते हुए उसने रोटी में धतुरा मिला दिया। उसने सोचा, खाना खाकर मुसाफ़िर धुत जाएगा तो सारा माल लूट लेगी।

लेकिन यह क्या ? खाना खाने बैठे गुरमुख के बेटे ने गुरु महाराज का ध्यान किया और एकाध कौर मुँह में डालकर उठ खड़ा हुआ। शाम ही को तो उसने पठान का ढेर सा खाना खाया था। परांठे और कबाब।

औरत भी हारने वाली नहीं थी। ड्योढ़ी में बिस्तर बिछाकर उसने मेहमान को सुला दिया और खुद अपने किसी आशिक़ के घर चल पड़ी। जाकर सारा क़िस्सा उसे सुनाया। मुसाफ़िर की गठरी, गहने और अशर्फ़ियों से भरी हुई थी। अगर उसका महबूब रात को मुसाफ़िर की हत्या कर दे तो दोनों उसका माल बाँट लेंगे। औरत का हमराज़ इसके लिए राज़ी हो गया।

अब औरत यह सारी योजना बना रही थी, पीछे से उसका मर्द घर लौट आया। क्या देखता है कि ड्योढ़ी में कोई मेहमान सोया है। यह तो अतिथि सत्कार के विपरीत था। उसने मेहमान को उठाकर अंदर कमरे में लिटाया और ख़ुद ड्योढ़ी में पड़ गया। उसने आधी रात के वक़्त अपनी पत्नी को परेशान करना मुनासिब नहीं समझा। उसने सोचा बेचारी चौबारे में सोई पड़ी होगी।

औरत अपने आशिक़ के घर से लौटी और चौबारे में जाकर अपनी सेज पर सो गई।

थोड़ी देर बाद उसकी योजना के मुताबिक़ उसका चाहने वाला छुरा लेकर आया और उसने ड्योढ़ी में सोए आदमी की हत्या कर दी।

सुबह जब औरत सोकर उठी, ड्योढ़ी में अपने पति की लाश को देखकर उस पर औधीं गिर पड़ी। यह क्या हो गया था ? गुरमुख के बेटे की जब आँख खुली वह अपनी गठरी सम्हाल कर वहाँ से निकल आया। औरत अपने पति की लाश पर बेहोश पड़ी थी।

गुरमुख का बेटा उस गठरी को ज्यों का त्यों उठाए, गुरु महाराज के पास अमृतसर पहुँचा। दीवान लगा हुआ था। वह गुरु महाराज के पास हाज़िर हुआ और उसने गठरी के सारे ज़ेवर और अशर्फ़ियाँ सतगुरु के सामने

ढेर कर दीं।

गुरु महाराज ने खुश होकर फ़रमाया-तेरी एक कौड़ी की भेंट पहुँच गई थी। यह सब उस कौड़ी के कारण हुआ है जिसे तूने उस दिन पूरी आस्था से हमें भेजा था।

यह देखकर पास जमा हुए गुर सिक्ख़ जो एक कौड़ी की भेंट पर अरदास करने से संकोच कर रहे थे, अपने को छोटा-छोटा महसूस कर रहे थे। इतने में एक गुरसिक्ख परिवार आया। उन्होंने एक इराक़ी घोड़ा और अत्यंत सुन्दर रेशमी जोड़ा गुरु महाराज को पेश किया। इतने क़ीमती घोड़े और इतने सुन्दर जोड़े को भेंट करते समय वे मन ही मन फूले नहीं समा रहे थे। उनका ख़्याल था, कि इतनी बेशक़ीमती भेंट पाकर गुरु महाराज अत्यंत प्रसन्न होंगे। उनके लिए विशेष अरदास होगी, उन्हें विशेष आदर दिया जाएगा। लेकिन उनकी हैरानी की हद न रही कि गुरु महाराज ने फ़ौरन पैंदा ख़ान को बुला भेजा और उस बेशक़ीमती सौग़ातों को उसे बख़्श दिया। बाहर से आए रईस गुर सिक्ख देखते रह गए।

"हमने सोचा हज़ूर इस इराक़ी घोड़े की ख़ुद सवारी करके हमें कृतार्थ करेंगे, इसकी कीमती पोशाक को पहनकर हमें ख़ुशियाँ बख़्शेंगे।" भेंट कर रहे गुरसिक्ख ने अर्ज़ की।

गुरु का सिक्ख इस घोड़े की सवारी करेगा, गुरु का प्यारा यह पोशाक पहनेगा इससे बढ़कर ख़ुशी गुरु के लिए क्या हो सकती है। गुरु महाराज ने पैसे के बल पर गुरु की ख़ुशी प्राप्त करने की इच्छा करने वाले अपने श्रद्धालुओं को सही रास्ता दिखाया।

पैंदा ख़ान कृतज्ञ भाव से गुरु महाराज के सामने ढेरी हो गया। बार-बार हाथ जोड़ता, बार-बार आभार मानता। कृतज्ञता ज्ञापित करता।

(36)

उसका नाम धरम था। पास खड़े उसके बेटे का नाम साधू था। बेटा गुरु महाराज का वरदान था। उनकी संतान नहीं होती थी, पति-पत्नी ने गुरु महाराज के आगे हाथ जोड़े थे और उनकी मनोकामना पूरी हुई थी। बेटा तो मिल गया, पर ग़रीबी का अभिशाप उनसे पूर्वत चिपका था। फटे-पुराने कपड़े, बाप बेटा बेहाल एक कोने में खड़े हुए थे कि गुरु महाराज की नज़र उन पर जा पड़ी। बेशक उनके कपड़े मैले थे, पर नौजवान लड़के के चेहरे पर एक प्रतिभा थी, उसकी अदा में एक उजलापन था। उसे देखकर गुरु

महाराज को अचानक याद आया, कल रात घर में उनकी सपुत्री वीरो के रिश्ते की बात चली थी। इस लड़के में क्या बुराई है। गुरु महाराज ने अपने आप से कहा और बाप-बेटे को अपने पास बुलाकर बिठा लिया।

'हम माल्ला गाँव के हैं। यह मेरा बेटा हज़ूर की देन है, आपके यहाँ हाज़िर होकर हमने हाथ जोड़े थे।' श्रद्धालु अपने बारे में बता रहा था।

गुरु महाराज ने नौजवान लड़के की ओर एक नजर फिर देखा। जैसे शराफ़त की मूर्ति हो। उसकी निश्छल आँखों में सच्चाई की रौशनी थी। आत्म-सम्मान से भरपूर भँवें।

"हमारी एक बेटी है, वीरो नाम है उसका। अपनी बेटी का रिश्ता हम आपके बेटे के साथ करना चाहते हैं।" गुरु महाराज ने एक ससुर की हलीमी से कहा।

गुर सिक्ख ने सुना तो उसके पसीने छूट गए। "हज़ूर आप यह क्या फ़रमा रहे हैं, हम कहाँ और आप कहाँ। एक चींटी का हाथी के साथ एक बूँद का समुद्र के साथ एक चिड़िया का बाज़ के साथ क्या जोड़ है?" धरम हाथ जोड़ कर गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ा था।

"इस तरह के रिश्ते ऊपर की दरगाह में बनाए जाते हैं।" गुरु महाराज ने कहा और सेवक को आदेश दिया महलों में से शगुन लेकर आए ताकि रिश्ता पक्का किया जा सके।

इतने में लाहौर से खबर आई कि कश्मीर से लौटते वक्त रास्ते में शहंशाह जहाँगीर अल्लाह को प्यारा हो गया था। यह जानकर गुरु महाराज ने शगुन के साथ शादी की तारीख़ का भी फ़ैसले कर दिया।

जहाँगीर की मौत के बाद उसका बेटा शाहजहाँ तख़्त पर बैठ गया था। और जानी-जान गुरु महाराज को यह अहसास था कि आने वाला वक़्त कड़े इम्तहान का होगा। पृथ्वी चंद के बेटे मेहरबान और चँदू के बेटे करमचंद ने शाहजहाँ के कान पहले से ही गुरु महाराज के विरुद्ध भरे हुए थे।

वीरो की शादी ऐसी ज़िम्मेदारी थी जिसे टाला नहीं जा सकता था, उसे पूरा करने की तैयारियाँ शुरु हो गयीं। हलवाई बैठा दिए गए जिन्होंने मिठाइयाँ बनानी शुरु कर दीं। घरवालों की मर्ज़ी थी, परिवार में पहली शादी है। इस और नज़दीक के सभी रिश्तेदारों को बुलाया जाए, बेटी की शादी पूरे धूम-धाम से हो। गुरु महाराज इस के हक़ में नहीं थी। उन्होंने सादा सरल रिश्ता चुना था, वह चाहते थे, साद मुरादी शादी करके लड़की को ससु[illegible]

जाए। क्षितिज पर उमड़ रही काली घटाएँ उन्हें सुनाई दे रही थीं। शादी की तैयारियाँ पूरे ज़ोरों पर थीं कहीं दर्ज़ी बैठे थे, कहीं हलवाई और कहीं ठठेरे, कि एक शाम अन्धेरा पड़ने पर पश्चिम से श्रद्धालुओं का एक जत्था गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आया। गुरसिक्खों को भोजन कराना था। लँगर तो कभी का मस्त (खत्म, समाप्त) हो चुका था। यही कहा जाता है। लाँगरी बर्तन समेट कर चटाइयाँ तहाकर जा चुके थे। गुरु महाराज को इस बात का इल्म था कि वीरो की शादी के लिए तैयार की गई मिठाई से एक कोठरी भरी हुई थी। उन्होंने फ़रमाया कि सेवक वो मिठाई गुरसिक्खों के जत्थे को खिला दी जाए। पर माता जी इसके लिए तैयार नहीं हुयीं। लड़की की शादी के लिए तैयार मिठाई इस तरह यात्रियों को खिलाकर वह बदशगुन नहीं करेंगी। वह मिठाई तो बारातियों के लिए थी।

गुरु महाराज ने जब यह सुना तो उनके मुखारविंद से निकला, "अगर मेरे गुरु सिक्ख यह मिठाई नहीं खा सकते तो बारात भी नहीं खाएगी।" यह क्या वह कह बैठे थे। चारों तरफ़ खड़े श्रद्धालु सकते में आ गए। हर कोई शशोपंज में था।

इतने में कोई गुरसिक्ख बेटी की शादी के लिए पाँच मन मिठाई भेंट करने के लिए लेकर आया। गुरु महाराज ने उस मिठाई को बाहर से आए जत्थों में बाँटने का संदेश दिया और समस्या का ऐसे समाधान हो गया।

समाधान हुआ भी नहीं था। बात यूँ हुई, अगले दिन लाहौर का सूबेदार शिकार के लिए निकला। अमृतसर के साथ लगे हुये जँगल में आ घुसा। इस जँगल में गुरु महाराज की फ़ौज के अहलकार शिकार कर रहे थे। सूबेदार बहुत देर तक भटकता रहा उसक हाथ कुछ भी नहीं लगा। थक कर जब लौटने लगा, उसे आकाश में एक मुर्ग़ाबी दिखाई दी। उसने अपना बाज़ छोड़ दिया। बाज़ शिकार को छपट कर मालिक के पास लाने की बजाय वह शिकार के साथ खेलने लगा। कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी दायें, कभी बायें। सूबेदार कितनी देर तक यह तमाश देखता रहा। जब बाज़ लौटने का नाम ही नहीं ले रहा था वह उकताकर लाहौर लौट गया और अपने अहलकारों को कह गया कि बाज़ को पकड़कर उस के पीछे ले आएँ।

इतने में शिकारी गुरसिक्खों की उस बाज़ और शिकार पर नज़र जा पड़ी। उन्होंने फ़ौरन अपना बाज़ छोड़ा जो पहले हमले में ही सूबेदार के बाज़ और मुर्ग़ाबी को नोचकर शिकारियों में पास ले आया। सूबेदार का बाज़ ईरान

के बादशाह की भेजी सौगात थी। बड़ा नाम था उस बाज़ का। सफ़ेद रंग का वो बाज़ लासानी था। कुछ देर बाद सूबेदार के अहलकार अपना बाज़ लेने के लिए गुरसिक्खों के पास आए। आते ही धमकाने लगे। आप होते कौन हैं सूबेदार का बाज़ पकड़ने वाले। आप जानते नहीं यह बाज़ सूबेदार को कितना प्यारा है। उसे पता चला तो वह आप लोगों के पूरे ख़ानदान को कोल्हू में पिसवा देगा।

यह सुनकर गुर सिक्ख भी तैश में आ गए। "अगर यह बात है जो हम बाज़ नहीं लौटाएंगे। बाज़ ख़ुद उड़कर हमारे इलाक़े में आया है। हम इसे पकड़ने नहीं गए।" वे कह रहे थे।

"यह आपका इलाक़ा कैसे हुआ?" मुग़ल फौज़ी जलाल में आ गए। आप नहीं जानते कि शहंजहाँ सारे हिन्दुस्तान का मालिक है। उसे अगर पता लगा तो आपके अमृतसर की ईंट से ईंट बजा देगा।

"अगर यह बात है तो बाज़ तभी मिलेगा जब कोई ईंट से ईंट खड़खाने आएगा।" गुरसिक्ख अड़ गए।

यह देखकर मुग़ल अहलकार हाथापायी पर उतर आए। इस झड़प में उनकी ख़ूब पिटाई हुई। लहू-लूहान बुरी हालत में वे लाहौर लौटे और सूबेदार के पास सारे मामले की शिकायत की। उनका बाज़ अभी भी गुरसिक्खों के क़ब्ज़े में था। अहलकारों की बात सुनकर उसने अपने फ़ौजदार मुख़लिस ख़ाँ को हुक्म दिया कि शाम तक वह गुरु महाराज को क़ैदी बनाकर उसके आगे पेश करे और अमृतसर शहर पर पूरी तरह कब्ज़ा किया जाए।

मुख़लिस ख़ाँ सात हज़ारी था। इसके अलावा उसे जो मदद दरकार थी। उसे मुहय्या कर दी गई। इधर जब लाहौर के गुरसिक्खों को अमृतसर पर फ़ौजी हमले की सूचना मिली, उन्होंने एक तेज़ घुड़सवार गुरु महाराज के पास भेजा ताकि उन्हें वक़्त पर सूचना मिल सके। गुरु महाराज से कौन सी बात भूली थी, उन्होंने तैयारियाँ शुरु कर दीं। पहला काम वीरो की शादी के लिए जमा किया गया सारा दहेज और अपने परिवार वालों को महलों से निकालकर रामसर भेज दिया। गुरु महाराज ने अपने सिक्खों को समझाया कि जहाँ तक सँभव हो लड़ाई शहर से बाहर लड़ी जाए। इसलिए उन्होंने लोहगढ़ के क़िले में मोर्चे बना लिए। क़िले में एक पुराना पेड़ था जिसके सूखे तने को तोप में तब्दील करके हमलावरों पर पत्थर बरसाए जाने

लगे।

सिक्खों के हौसले बड़े बुलंद थे। वे तो कहते थे—हम लाहौर पर हमला करके सूबेदार को क़ैदी बनाकर गुरु महाराज के सामने पेश करेंगे।

इधर लड़ाई शुरु हुई, उधर रामसर पहुँचकर परिवार ने जब देखा कि वीरो पीछे महलों में ही रह गई थी उनके होश उड़ गए। शादी का उबटन लगाए सबसे ऊपर के चौबारे में अपने कमरे में बैठी थी। इतने में मुग़ल फ़ौजी शहर में आ घुसे थे। गुरु महाराज ने अपने दो विश्वास-पात्रों भाई सिंघा और भाई बाबख को अपनी माला देकर लड़की को महलों में से निकालकर लाने के लिए भेजा। वीरो अपने घर का दरवाज़ा खोलने को तैयार नहीं थी। गुर सिक्खों ने गुरु महाराज की माला दिखायी तो वह उनके साथ चलने को राज़ी हुई।

गुरु महाराज ने लोहगढ़ के क़िले में एकत्रित सूरमों को सम्बोधित करते हुए कहा—"जो लड़ाई हम लड़ने जा रहे हैं वह एक बाज़ को हथियाने के लिए नहीं; यह एक लंबी जंग की शुरूआत है। अपने देश के आत्मसम्मान, अपनी परम्परा व धर्म के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए एक चुनौती है जिसे किसी न किसी दिन, किसी न किसी योल्दे को तो स्वीकार करना ही था। छह सौ बरसों की हेठी, छह सौ बरसों के सितम, छह सौ बरसों की बेहुरमती के बाद पहली बार यह मान हमारे हिस्से में आया है कि हम हमलावर से लोहा लें। छह सौ बरस से हमारी इस पवित्र धरती को पराए पैरों के नीचे लताड़ा जा रहा है। छह सौ बरसों से हमारे मंदिरों को मिसमार किया जा रहा है। छह सौ बरसों से हमारी बहन-बेटियों की अस्मत धूल में मिल रही है।"

"हमें लड़ना है अपने जन्मसिद्ध अधिकारों के लिए, आज़ादी के लिए, न्याय के लिए सांझीवाद के लिए, हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच के अलगावों को दूर करने के लिए। हमें मस्जिद उतनी ही प्यारी है जितना को मंदिर। शेख़ हमारे उतना ही नज़दीक है जितना कोई ब्राहमण। हमने किसी मस्जिद को गिराकर मंदिर नहीं खड़ा करना, ना ही किसी मंदिर पर किसी मस्जिद का निमार्ण होने देना है। हमें दिलों को जोड़ना है। धर्मों की, क़ौमों की, मुल्कों की, जातियों और संप्रदायों की दूरियों को ख़त्म करना है।"

"हमारी इस जंग में पैंदा ख़ान भी उसी तरह लड़ेगा जैसे बिधी चंद।"

"हमने यह जंग तब नहीं शुरु की जब हमारे पिता गुरु देव को असहनीय

यातनाएँ देकर शहीदी का जाम पिलाया गया। हमने यह जंग तब नहीं शुरु की जब कपटी और पथ भ्रष्ट लोगों के कहने से हमें ग्वालियर के क़िले में बंदी बनाया गया। अब वह घड़ी, वह क्षण आ गया है, जब हम को गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जन के बताए राह पर चलता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए यह रास्ता प्रशस्त करना है। एक शाहराह जिस पर सच के दीवानें निधड़क चल सकेंगे। अपनी-अपनी मंज़िल को पा सकेंगे।"

"शहीदों का लहू किसी क़ौम, किसी देश की बुनियादों को पक्का करता है। हमें गुरु नानक, गुरु अर्जन की आशीष प्राप्त है, जीत हमारी होगी।"

गुरु महाराज यह बोल ही रहे थे कि मुग़ल तोपचियों का पहला गोला लोहगढ़ पर आ गिरा। फिर सूरमे जंग में जूझ पड़े। हर कोई अपने-अपने मोर्चे पर पहुँच गया और गोले का जवाब गोले से, तीर का जवाब तीर से और तलवार का जवाब तलवार से देने लगा।

लोहगढ़ में तैनात गुरसिक्खों की टुकड़ी बड़ी बहादुरी से लड़ी, लेकिन मुग़ल फौज की तोपों, बंदूकों और अपार संख्या को न झेल सकी, एक-एक सूरमा लड़ते हुए जूझते हुए, गुरु का नाम पुकारते हुए जान पर खेल गया। मुख़लिस ख़ान ने पहले हल्ले में ही लोहगढ़ पर कब्ज़ा करके गुरु महाराज के महलों पर धावा बोल दिया ताकि उन्हें बंदी बना लिया जाए। पर गुरु महाराज परिवार समेत पहले ही वहाँ से निकल चुक थे।

मुग़ल सिपाहियों को गुरु महल में मिठाइयों से भरा हुआ एक कमरा मिला और उन्होंने वीरो की शादी के लिए तैयार की मिठाई को पेट भर कर खाया। और फिर वहीं सो गए। जैसे युद्ध ख़त्म हो गया हो।

शहर पर मुग़लों का क़ब्ज़ा होता देखकर गुरु महाराज ने अपने परिवार और बाक़ी शहरियों को जो लड़ाई में शामिल नहीं थे पाँच कोस दूर झबाल नाम के गाँव में भेज दिया। और कहलवाया कि वे वहाँ आराम करें। अगले दिन वीरो की शादी निश्चित की गई थी। गुरु महाराज शाम तक झबाल पहुँच जाएँगे और लड़की के फेरों में शामिल होंगे।

कई गुरसिक्खों की राय थी कि दरबार साहिब को पनाह बनाकर लड़ा जाए, पर गुरु महाराज राज़ी नहीं हुए। वे हरिमंदर की पवित्रता और अदब-सत्कार को बनाए रखना चाहते थे।

उधर मिठाई खाकर आराम कर रहे मुग़ल यह सोच बैठे थे कि गुरु

महाराज या तो जंग में शहीद हो गए हैं या भाग गये हैं। इतने में सिक्ख सूरमों में उन पर हमला कर दिया। गोलियों की वर्षा होने लगी। तीर छूट रहे थे। तलवारों से तलवारें टकरा रही थीं जैसे बाघ का झुण्ड भेड़-बकरियों के झुण्ड पर आ टूटे, गुरु महाराज के सिक्ख इस तरह मुग़ल फौज़ पर जा टूटे; गर्दनें अलग हो रहीं थीं। जगह-जगह पर मुग़ल औंधे पड़े थे। लहू की नदियाँ बह निकलीं। मुग़ल सिपाहियों को सिर छुपाने की जगह नहीं मिल रही थी।

मुग़ल फ़ौज को ऐसे हारता हुआ देखकर मुख़लिस खाँ ने सिपाहियों को ललकारा—"मुसलमानों, आप को शर्म आनी चाहिए आप मुग़ल फ़ौज का नाम बदनाम कर रहे हैं? ऐसे बनियों से मात खा रह हैं। अल्लाह का नाम लेकर गुरु को जाकर काट डालो या पकड़ कर मेरे हवाले करो। जो ऐसा करेगा उन्हें इनाम और इकराम मिलेंगे।"

उधर भाई भानू जिसे गुरु महाराज ने जंग की कमान सौंपी थी अपने सिपाहियों को चुनौती दे रहा था—"यह आम लड़ाइयों जैसी लड़ाई नहीं। यह धर्मयुद्ध है। अगर शहीद हो गए तो मुक्ति मिल जाएगी, अगर जीत गए तो गुरु महाराज की खुशियाँ। हम मारेंगे या मरेंगे। पर क़दम पीछे नहीं धरेंगें।"

अपने सरदार का हौसला देखकर सिक्ख सिपाही एक बार फिर मुग़ल फ़ौज पर टूट पड़े। चारों तरफ़ मार-काट शुरु हो गई। इस तरह की खलबली मची कि शम्स ख़ान मैदान छोड़कर भागने की सोचने लगा। यह देखकर मुख़लिस खाँ ने अनवर खाँ को उसकी मदद के लिए भेजा। मुग़ल सिपाहियों ने जान तोड़ कर लड़ा। उनका पलड़ा फिर भारी देखकर भाई भानू ख़ुद आगे बढ़ा। इधर सिक्ख सिपाहियों ने गोली की वर्षा शुरु कर दी। शम्स ख़ान का घोड़ा बेक़ाबू हाकर औंधा जा गिरा। अब भाई भानू भी अपने घोड़े से उतर आया। फिर उसने दुश्मन को ललकारा। अगले क्षण शम्स ख़ान का सर उसके धड़ से अलग गिर पड़ा था। अपने सरदार को गिरता देखकर मुग़ल सिपाहियों ने भाई भानू को चारों तरफ़ से घेर कर उस पर हमला कर दिया। भाई भानू एक सूरमे की तरह तलवार और ढ़ाल से मुक़ाबला करता रहा अंत में एक के बाद एक दो गोलियाँ उसकी छाती को चीरती हुई निकल गयीं। और वह गुरु महाराल को याद करता हुआ शहीद हो गया।

शम्य ख़ान के बाद मुग़ल फ़ौज की कमान सैयाद मुहम्मद अली ने सम्हाली। इधर भाई भानू की शहीदी के बाद भाई सिंघा ने सिक्ख फ़ौजों की अगुवाई करनी शुरु की। भाई तोता, निहालू, तिलोका, अनंता, निवला

मुग़लों को पछाड़ रहे थे। बार-बार यही नारा लगा रहे थे कि ऐसा मौक़ा फिर हाथ नहीं आएगा। तीरों, बन्दूक़ों से दुश्मन को भूनते जा रहे थे।

अपने सिपाहियों को आस-पास गिरते देखकर, मुहम्मद अली आगे बढ़ा और उसने भाई सिंघा को उसके घोड़े समेत अपनी गोली से ज़ख़्मी कर दिया। क्षण भर के बाद भाई सिंघा फिर होश में आ गया और अपनी कमान सम्हाल कर उसने ऐसा तीर छोड़ा जो मुहम्मद अली की छाती में जा लगा। मुहम्मद अली पर यह घातक हमला भाई सिंघा का आख़िरी कारनामा था। दुश्मन को ढ़ेर होता देखकर उसने भी उसने भी अपने प्राण महाराज के चरणों में न्योछावर कर दी।

अब गुरु महाराल ने पैंदा ख़ान को जंग में भेजा। पैंदा ख़ान एक बाज़ की तरह लड़ाई के मैदान में उतरा। मुग़ल सिपाहियों के झुण्ड तबाह होने लग पड़े। कोई कहीं लुढ़क रहा था काई कहीं लहू-लुहान पड़ा था। कहीं किसी की बाँह नहीं थी, कहीं किसी की टाँग कटी हुई थी। सर भूने दानों की तरह मिटि्टयों में सने इधर-उधर लुढ़क रहे थे।

सवाल मुग़ल प्रतिष्ठा का था। एक तरफ़ शहंशाह की इतनी भारी फ़ौज थी, दूसरी तरफ़ एक संप्रदाय के मुट्ठी भर श्रद्धालु थे। बार-बार मुग़ल सिपाहियों को याद करवाया जाता थी और बार-बार वे अपने तोपों, तीरों, बन्दूकों और तलवारों का कमाल दिखाते थे। पर गुरसिक्खों की बहादुरी के सामने उनकी कुछ नहीं चल रही थी।

पैंदा ख़ान और बिधी चँद मुग़ल फ़ौज की धज्जियाँ उड़ा रहे थे। उनकी मदद के लिए भाई सिंघा का बेटा जतिमल, भाई नंदा, भाई पिरागा, भीम और भीखण थे। घोड़ों पर चढ़कर वह दुश्मनों को गाजर-मूली की तरह काट रहे थे। अब मुग़लों ने घबराकर चौतरफ़ा हमले शुरु किए और अपने ही सिपाहियों का नुक़सान करने लगे। उधर सिक्खों में जेता, तोता, किशन दास, गुलाल, गुपाल, निहाला, दियाला, तख़तू, महता, पैड़ा, तिलोक, जतिमल समेत अनेक सूरमे शहीद हो गए।

अब बाक़ी सिक्खों की टुकड़ी ने अली बेग, बहादुर खाँ, सैयद दीदार अली, मेहर अली, इस्माइल ख़ाँ को घेर लिया और सब घुड़सवारों को उनके घोड़ों समेत ढ़ेर करना शुरु कर दिया। इधर गुरु महाराज खुद तलवार पकड़े जंग में उतर आए। यह देखकर मुख़लिस ख़ाँ ने उन्हें याद करवाया—"आप कब तक मुग़ल फ़ौजों के साथ टक्कर लेंगे? जिस शहंशह का सिक्का बलख़

बुख़ारे तक चलता है उसका मुक़ाबला आप कब तक करेंगे। सारा हिन्दुस्तान शाहजहाँ का सिक्का मानता है। राजा महाराजा उसका पानी भरते हैं। मेरी मानिए तो आप अपनी गुरुवाई क़ायम रखें, अपने शहर में अमन-अमान से रहें। आपके पास पहले ही कई गाँव हैं जिनका आपको काई लगान नहीं देना पड़ता। अब भी वक़्त है आप शहँशाह का सिक्का मान लें।"

गुरु महाराज ने यह सुनकर मुख़लिस ख़ाँ को फटकारा—"मुग़ल शहँशाह में सब का डर नहीं। हमारा ईमान एक ईश्वर पर है। अगर आप लोंगो ने ऐसा ही ज़ुल्म जारी रखा तो मुग़ल ख़ानदान का नाम-निशान नहीं बाक़ी रहेगा। आप सात हज़ार का लश्कर लेकर आए थे—आस-पास देखकर बताएँ अब आपके कितने फ़ौजी बाक़ी हैं?"

यह सुनकर मुख़लिस ख़ान ने सोचा अब और कोई चारा नहीं था, लड़ाई जारी रखनी होगी। हार कर वह लौटा तो सूबेदार को कौन सा मुँह दिखाएगा।

और लड़ाई फिर शुरु हो गई। बिधी चंद, पैंदा ख़ान और जतिमल फिर दुश्मनों की तबाही करने लगे। बिधी चंद के एक तीर ने सुल्तान बेग को बींध दिया। पैंदा ख़ान ने दीदार अली को गिराया। अब मुख़लिस ख़ाँ अकेला रह गया था। लाचार होकर वह ख़ुद आगे बढ़ा। उसे आता देख कर गुरु महाराज भी खुद आगे बढ़े। मुख़लिस ने कहा, "आइये, हम आपस में लड़कर फ़ैसला कर लें।" यह सुनकर गुरु महाराज ने अपने साथियों को एक तरफ़ हो जाने के लिए कहा। गुरु महाराज के छोड़े पहले तीर ने ही मुख़लिस ख़ान के घोड़े की छाती को बींध दिया और वह ढेर हो गया। मुख़लिस को बिना घोड़े के देखकर गुरु महाराज ने भी अपना घोड़ा छोड़ दिया।

अब गुरु महाराज ने मुख़लिस ख़ान को वार करने के लिए कहा। मुख़लिस ख़ान का पहला वार गुरु महाराज ने रोका, उसके दूसरे वार को अपनी ढ़ाल पर ले लिया। अब गुरु महाराज की बारी थी, "तू वार कर चुका है।" गुरु महाराज ने कहा और फिर ऐसी चोट की कि मुख़लिस ख़ान के धड़ के दो टुकड़े हो गए।

यह देखकर मुग़ल फ़ौज के बचे-खुचे सिपाही भी मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए।

नौ घण्टे की इस लड़ाई के बाद गुरु महाराज ने अपने शहीद साथियों

के दाह-संस्कार का प्रबंध किया और फिर अपने कथन-अनुसार शाम झबाल पहुँचकर वीरो की शादी में शामिल हुए।

(37)

सात हज़ार लड़ाकू सिपाहियों की फ़ौज का सात सौ गुरु सिक्खों की टुकड़ी से इस तरह हारना मुख़लिस ख़ान समेत अनेक फ़ौजी जरनैलों की जान गवाँ देना मुग़ल फ़ौज की बड़ी भारी हेठी थी, पर शाही दरबार में वज़ीर ख़ान शहंशाह को कुछ इस तरह समझा रहा था। जहाँपनाह मैं ने पहले भी कहा था, हमें सिक्खों के साथ टक्कर नहीं लेनी चाहिए। यह लोग खुदा परस्त हैं। हमारी तरह एक ख़ुदा में विश्वास रखते हैं। इनका मक़सद हुकूमत करना कदापि नहीं।

"गुरु हरिगोविंद बाबा नानक की गद्दी के छठे जाँनशीन हैं। बाबा नानक ने मुग़लों की सात पीढ़ियों को इस मुल्क की बादशाहत बख़्शी है। उनका यह अहसान हमें भूलना नहीं चाहिए। उन्होंने यह भी पेशीनगोई की थी कि हज़ूर के परदादा बादशाह हुमायूँ को हार कर बाहर जाना पड़ेगा। पर फिर उनकी हुकूमत क़ायम होगी। यह सब कुछ इतिहास का वाक़या है, इसकी तस्दीक़ की कोई ज़रूरत नहीं। बाबा नानक सुलहकुल फ़कीर थे। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों क़ौमों को नज़्दीक लाने में मददगार हुए। उन्होंने हिन्दुओं को अच्छा हिन्दू और मुसलमानों को अच्छा मुसलमान बनने के लिए कहा।

हमारी फ़ौज की हार हुई है क्योंकि इंसाफ़ सिक्ख गुरु के हक़ में था। खुदा परस्त लोगों के एक फ़िरक़े को इस तरह दबाना सरकार को शोभा नहीं देता। अगर उनकी मंशा हमारे साथ तकरार करने की होती तो हमारे किसी इलाक़े पर कब्ज़ा करते। हमारे किसी क़िले को हथियाते, हमारा कोई ख़ज़ाना लूटते। कहते हैं हरिगोविंद दिन भर जंग में जूझते रहे, शाम को अपनी बेटी की शादी में शामिल हुए। यह अमीरी है या फ़क़ीरी ?

"ताकि फिर इस तरह की झड़प न हो, सुना है अब गुरु हरिगोविंद लाहौर से दूर करतारपुर जाने की सोच रहे हैं। व्यास नदी के किनारे नया शहर बसाएगें। शायद चले भी गए हों।"

"और हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गुरु घर के श्रद्धालुओं में कई अहलेदीन भी हैं। कल हमारे साथ हुई जंग में पयंदा ख़ान नाम का एक फ़ौजदार हमारी फ़ौज के दाँत खट्टे करता रहा।

"इस्लाम और बाबा नानक की तालीम में कुछ ज़्यादा फ़र्क़ नहीं। अगर हमने यह फ़ैसला कर लिया है कि हमें इस मुल्क में रहना है, हिन्दुस्तान को अपना घर बनाना है तो हमारे हक़ में यही है कि हम यहाँ के लोगों के साथ बनाकर रखें। मेरे ख़याल में सिक्ख संगत औरों की बजाय हमारे ज़्यादा नज़दीक हैं और अहमियत रखती है। ख़ास तौर पर पंजाब में अगर अमन-अमान क़ायम रखना है तो हमें इनके साथ दोस्ती करनी होगी।

"हज़ूर हज़रत मियां मीर को एक ख़ुदापरस्त बुज़ूर्ग मानते हैं। उनके आस्ताने पर जाने का ज़िल्ले इलाही को फ़ख़्र है। सिक्खों के काबे के नींव का पत्थर हज़रत मियां मीर जी के मुबारक हाथों से रखवाया गया है। कभी किसी ने यह सुना है कि एक मज़हब के सबसे पवित्र स्थान का संगे बुनियाद किसी और मज़हब का बुज़ूर्ग रक्खे? हज़रत मियां मीर जी की गुरु हरिगोविंद के साथ दोस्ती की कहानियाँ लाहौर में हर ज़बान पर हैं। गुरु अर्जन देव द्वारा संपादित ग्रंथ में बाबा फ़रीद का कलाम शामिल है।

"इस से कोई इंकार नहीं कर सकता कि हज़ूर के वालिद मुहतरिम का, गुरु हरिगोविंद के पिता गुरु अर्जुन देव को इस तरह की तकलीफ़ें पहुँचाकर जामे शहादत पिलाने का कोई इरादा नहीं था। उन्होंने तो बस दो लाख रुपए का जुर्माना किया था, यह तो रुस्तम ख़ान जैसे तंग नज़र अहलकारों की करतूत है कि एक ख़ुदापरस्त दरवेश को जान से हाथ धोने पड़े और तो और क़ाज़ी रुस्तम ख़ान की अपनी बेटी उसका घर छोड़कर अमृतसर में गुरु हरिगोविंद की पनाह में जा बैठी है..........."

और कितनी देर तक, वज़ीर ख़ान यही सब शहंशाह शाहजहाँ को समझाता रहा।

जब वज़ीर ख़ान शाहजहाँ से मुख़ातिब था, क़ाज़ी रुस्तम ख़ान की बेटी कौलां गुरु महाराज को याद कर रही थी।

और जब कोई गुर सिक्ख गुरु को याद करता है तो उसकी मनोकामना अवश्य पूरी होती आई है। गुरु हरिगोविंद जी दस दूसरे काम छोड़कर कौलां के पास चल पड़े।

कई दिनों से बीमार कौलां जैसे बेहोशी की हालत में हो। अपने-आप बोल रही थी :

मुण्डेर पर कौव्वा आ बैठा है, बोलता क्यों नहीं? पर किसी को आना हो तो बोले? बेचारा कौव्वा।

काग़ा करंग ढ़ण्ढ़ोलिया सगला खाया मासु।

ऐ दुइ नैना मति छूहऊ पिर देखन की आस।

उड़ गया। दूर, बहुत दूर लंबी उड़ान पर चला गया। अब तो मुण्डेर पर आकर नहीं बैठेगा............इस मुण्डेर ही को तो गिराने आए थे लश्कर लेकर। मैंने कहा मेरे दस्तगीर का बाल भी नहीं बांका होगा। सारी ज़िंदगी मैंने रोज़े रखे हैं सारी ज़िंदगी मैंने नमाज़ें पढ़ी हैं। मेरे रोज़े, मेरी नमाज़ें। मेरे पीर हज़रत मियां मीर। मेरे गुरु, मेरे पनाहगीर।

वीरा हौले-हौले आ

तेरे घोड़ों को घास

तेज़ क्यों नहीं आते? आ रहे हैं। घोड़े पर चढ़ कर आ रहे हैं। घोड़े थक गए हैं। कैसे लड़े होंगे? कैसे हिन-हिनाए होंगे?

यह घोड़ा मेरे शहंशाह का है। यह घोड़ा मेरे महबूब का है। वह अरबी घोड़ा किसका है मेरा कमली वाला कहाँ है? यह बंसी कौन बजा रहा है? गोपियों के झुण्ड किसे तलाश रहे हैं? बाबा नानक ने कहा-जिस तरफ़ अल्ला नहीं उस तरफ़ मेरे पैर कर दो। हँसने वाली तो बात है।

..........हँस[illegible]न बात पर मेरे आँसू फूट आए हैं। यह भी कोई बात हुई। जैसे क़तार स. बिछड़ी हुई कोई कूँज हो। दरअसल बात बाज़ ही की थी। बाज़ सफ़ेद हो या चितकबरा हो खोपड़ियों का ढेर लग गया। ख़ून का दरिया बहने लगा।

..........मैं कहती हूँ, मैं शमशीर क्यों नहीं उग सकती? मैं क्यों अरबी घोड़े की सवारी नहीं कर सकती? थू, तू तो मस्जिद में क़दम नहीं रख सकती। और तेरे नाम का कौलसर।..........मैं ग़ुसल कर चुकी हूँ। मैंने पाक-साफ़ कपड़े पहने हैं। अब कोई आ सकता है। मैं तैयार हूँ। अब कहार आ सकते हैं, डोली लेकर।

............दुल्हन तैयार है। हाथों पर मेंहदी। पैरों में मेंहदी। आँखों में काजल। यह मेरे बाल किसने सँवारे हैं। इतनी भारी चोटी; बनाने वाली की ऊँगलियाँ भी थक गई होंगी।

............कोई आ रहा है। सड़कें साफ़ करो। गलियों को क्यों नहीं बुहारा गया। किवाड़ खुली रहनी चाहिए। घोड़े कहाँ बँधेंगे? मेरा आँगन में, मौलसिरी, ख़ुश्बूओं के पास। जहाँ नग़्मे सुनाई देते हैं। पक्षी चहकते हैं। कबूतर कल्लोले करते हैं। गुटरगूँ, गुटरगूँ।

.....खंभ विकांदडे जेलहाँ
घिना सावि तोल
.....भरता कहे सुमानिए
ऐह सींगार बणाए री...।
.....मन मोती जे गहणा होवै
.....ताती वाऊ न लग्गइ पर ब्राह्म सरणाई।
चौगिर्द हमारे रामकार दुखु लगै न भाई।
सतिगुर पूरा भेंटया जिनी बणत बणाई।
राम नाम औखधू दिया एका लिव लाई। रहाऊ।
राखि लिए तिनि रक्खन हारि सब बेयाधि मिताई।
कहू नानक किरण भई परभ भये सहाई।.....

और फिर गुरु महाराज कौलां के पास पहुँच गए। कौलां का पीला ज़र्द चेहरा गुरु महाराज के दर्शन करके एकदम खिल गया। बेहोशी में अपने आप बोलती हुई अचानक सावधान हो गई।

"आ आ गए? मैं जन्नत से कहती थी वे आएंगे। और इसे इतबार नहीं आता था।"

"अब क्या हाल है कौलां बीबी का?" गुरु महाराज ने जन्नत (उसकी नौकरानी) से पूछा-

"नीम बेहोशी में बहुत देर से अपने आप बोल रही थीं। अब फिर वही हालत हो गई है। आपने अपने मुबारक क़दम भीतर रखे तो एकदम जैसे इनकी जान में जान आ गई। अब फिर चेहरा खिल उठा है।"

गुरु महाराज ने आगे बढ़कर कौलां के हाथ को अपने हाथों में लिया।

गुरु महाराज के कर-कमलों के स्पर्श से जैसे बुझ रहे दिए में फिर रौशनी की लौ भभक उठी। कौलां ने गुरु महाराज के मुख को निहारा फिर बोलने लगी।

"उस दिन आपने वीरो को उठाकर डोली में बिठाया था और वीरो छल-छल आँसू रोई थी। कितना सुन्दर दूल्हा आपने वीरो के लिए तलाश किया। कहार मेरी पालकी भी ले आए हैं, अब आप मुझे भी उठाकर पालकी में बिठा दीजिए। मैं तो रोई भी नहीं। रब्ब राखा।"

'रब्ब राखा ! कौलां बीबी,' गुरु महाराज ने कहा और जैसे किसी बत्ती को मद्धिम किर दिया जाए कौलां का चेहरा बुझना शुरु हो गया। उसका

हाथ गुरु महाराज के हाथों में था। वह बिट-बिट गुरु महाराज के मुखड़े की ओर देख रही थी। उसकी ज्योति मद्धिम पड़ती जा रही थी। मद्धिम और मद्धिम, फिर बिल्कुल बुझ गई। गुरु महाराज ने आगे जाकर उसकी पलकों को करकमलों से बंद कर उसे चादर से ढंक दिया और बहुत देर तक उसके सिरहाने समाधि लगाए बैठे रहे।

शीश महल में सोहिले (शोक-गीत) का पाठ शुरु हो गया। रात भी कितनी बीत गई थी। कीर्तन सोहिले पाठ की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

जय घर कीर्ति आक्खिए करते का होई बीचरो ॥
तितू घरि गावहू सोहिला सिम रहू सिरजन हारो ॥
तुम गावहू मेरे नीर भहू का सोहिला ॥
हऊ वारि जितु सोहिले सदा सुखु होइ ॥ रहाऊ ॥
नित्-नित् जीएड़े समालियानि देक्खे गा देवण हार ॥
तेरे दाणे क़ीमति न पवै तिस दाते कवण सुमारु ॥
सम्बति साहा लिक्खा मिल करि पावहू तेलु ॥
देहू सजण आसीसडिंया जीवू होवै साहिब सीऊ मेलु ॥
घरि-ग्नि इहो पाहूचा सदड़े नित् पवन्नि ॥
सदणहार. सिमरीऐ नानक से दिह अवन्नि ॥

(राग गौड़ी दीपकी महला १)

(38)

वीराँ वाली सुमन का ख़त पढ़ रही थी जो गुरु महाराज के साथ करतारपुर गया था....

"....करतारपुर आए हमें आज तीसरा महीना हो रहा। यहाँ सब राज़ी ख़ुशी हैं। गुरु महाराज की मेहर है। हर कोई चढ़ती कलाओं में है। हमने जो सोचा था कि गुरु महाराज करतारपुर इसलिए जा रहे हैं कि वे मुग़लों की रोज़ की खटपट से गुरेज़ करना चाहते हैं, इसमें सच्चाई भी है और नहीं भी।

लगता है अमृतसर में गुरु महाराज को अनेक उन सूरमाओं की याद आती है जो उनकी आँखों के सामने शहीद हुए थे। चप्पे-चप्पे पर उनकी समाधियाँ बनी हुई हैं। एक उभरते भाईचारे में यह सुभद अनुभव नहीं। बेशक लड़ाई में जीत हमारी हुई है पर इसकी हमें बहुत महँगी क़ीमत अदा करनी पड़ी है। इस जीत का सेहरा पूरी तरह गुरु महाराज की अगुवाई के सर है। कई बार जब ऐसा प्रतीत होता कि वह हार रहे हैं, पीछे हट रहे हैं, असल

में वे वैरी को चकमा देकर उस पर पहले से भी तेज़ वार करने की तैयारी करते। यह बात तो मैंने एक से ज़्यादा बार अपनी आँखों से देखी है।

अब यहाँ करतारपुर में और-और सूरमे गुरु महाराज की सेना में भर्ती हो रहे हैं। रोज़ हथियार भेंट किए जाते हैं। बढ़िया से बढ़िया घोड़े मँगवाए जा रहे हैं। दूर और नज़दीक से आने वाले श्रद्धालु धन-दौलत की जगह आजकल हथियार और घोड़ों की भेंट देते हैं।

करतारपुर का मौसम बड़ा सुहाना है। वैसे भी सावन-भादों के दिन हैं, व्यास नदी के पास होने के कारण यहाँ के जंगल बड़े रमणिक हैं। शिकार की कमी नहीं। गुरु महाराज रोज़ शिकार के लिए जाते हैं।

नए सिपाहियों की भर्ती का अगर यही हाल रहा तो और कुछ दिनों में पहले की तरह संत-सिपाहियों की सेना बन जाएगी। दोआबे के नौजवान देखने में बड़े सजीले लगते हैं। माँझे के नौजवानों से कहीं ज़्यादा इनमें सिक्खी-सिद्क़ है, क़ुरबानी का जज़्बा है।

इस तरह की रोज़ाना भर्ती देखकर सबसे ज़्यादा शूल पैंदा ख़ान के पेट में चुभ रहे हैं। जैसे उसकी पूछ कम हो रही हो। शेख़ी ख़ोर है। इससे कौन कमाल का सौतेला भाई कहेगा? दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। कमाल सच्चा मोती है और यह मुलम्मे का खोता पैसा।

आजकल उठते-बैठते यही कहता फिरता है कि गुरु महाराज बेकार ही पैसे बर्बाद कर रहे हैं। मुग़ल फ़ौज के दाँत खट्टे करने के लिए मैं अकेला ही काफ़ी हूँ। भले मानस, बेशक तू दीवार को धक्का देकर गिरा सकता है। दो भैसों को बायें-दायें उठाकर गिरा सकता है लेकिन आदमी को इतना गुमान भी तो नहीं करना चाहिए।

गुरु महाराज ने इससे कुछ ज़्यादा ही मुँह लगा लिया था। इसकी शादी करवाई। इसे अपने परिवार में उठने-बैठने की इजाज़त दी। फिर दरबार में हर रोज़ हाज़िर होने से भी माफ़ कर दिया। यह भी कह दिया-जब तेरी ज़रूरत पड़ेगी बुला भेजेंगे। तू वैसे ही चक्कर लगाने का यत्न-कष्ट न किया कर। कोई बात भी हुई!

और इस आदमी ने सभी से कहना शुरू कर दिया है कि मुग़ल फ़ौज को अकेला मैंने ही हराया है। एक-एक का नाम लेकर बाक़ी सूरमाओं की बुराई करता है, और तो और गुरु महाराज के फ़ैसलों की नुक्ताचीनी करने लगा है। आजकल शिकार पर गुरु महाराज पयंदा ख़ान को अपने साथ नहीं

ले जाते। आस-पास के आदमख़ोर, खूँखार जानवरों का गुरु महाराज से सफ़ाया कर दिया है। ना ही कोई डाकू और लूटेरे रहने दिए हैं। मुसाफ़िर दो-आबे में बे-खटके आते-जाते हैं, न कोई चोर न कोई उचक्का बचा है। चारों तरफ़ गुरु महाराज की महिमा होती रहती है।

हाँ, एक बात तो बतानी तुझे भूल ही गया हूँ। गुरु महाराज ने करतारपुर के नज़दीक ब्यास के किनारे एक नया शहर बसाने का फ़ैसला किया है। कई तज्वीज़ें थीं पर आख़िर नदी के दायें किनारे पर रोहिला नाम के गाँव के पास ख़ाली पड़ी ज़मीन पर कुछ निर्माण करने का फ़ैसला लिया गया है। बेहद ख़ूबसूरत जगह है। सामने ठाण्ठे मारता दरिया के कारण यहाँ गर्मी भी ज़्यादा नहीं पड़ती। कुछ दिनों बाद गुरु महाराज व हम लोग वहाँ चले जाएँगे। रोहिल्ला पठानों का गाँव है और यह लोग गुरु महाराज के बड़े शैदाई हैं।

मैं सोचता हूँ, स्थान के चुनाव का एक कारण यह भी है कि गुरु महाराज मुसलमान श्रद्धालुओं को कभी नहीं भूलते। उन्हें अपने साथ रखते हैं। बेशक आजकल गुरु महाराज के कुछ निकटवर्ती सिक्ख उनके इस बर्ताव पर किन्तु भी करने लगे हैं। सुना है भाई गुरुदास जी भी इस बात से खुश नहीं हैं।

लेकिन सबसे बढ़िया ख़बर जिसके लिए मैं ख़त लिख रहा हूँ वह यह है कि पयंदा ख़ान का पत्ता कट चुका है। गुरु महाराज उसे नए बसाए जा रहे शहर में अपने साथ नहीं ले जा रहे। कोई मानेगा नहीं पर सच्चाई है। गुरु महाराज उसे औक़ात दिखाना चाहते हैं। अपने आप को बड़ा पाटे ख़ान समझने लगा था। किसी को ख़ातिर में ही नहीं लाता था। चाहे कोई बिधि चंद हो या कोई और हो।

जब पैंदा ख़ान को इस फ़ैसले का पता चला तो भागा हुआ गुरु महाराज के पास आया। मैं खुद उस वक़्त वहाँ मौजूद था। गुरु महाराज ने कहा, "मैं कोई दूर थोड़े ही जा रहा हूँ बारिश के दिन ब्यास के किनारे गुज़ारूँगा तेरी नई-नई शादी हुई है, यही मुनासिब है कि तू दुल्हन के पास रहे। और फिर पीछे भी तो कोई ज़िम्मेवार आदमी रहना चाहिए।"

यह सुनकर पैंदा ख़ान बोला, "हज़ूर मुग़लों का कोई ठिकाना नहीं, यह लोग बड़े ख़ारबाज़ होते हैं। मैंने तो सुना है कि हमारे दुश्मन शहंशाह के कान

भर रहे हैं। फिर जालंधर का सूबेदार भी बड़ा बद्दिमाग़ है। मेरा हज़ूर के पास रहना ज़रूरी है। पता नहीं किस वक़्त ये लोग कोई शोशा छोड़ दें।" गुरु महाराज सुनते रहे पर टस से मस नहीं हुए। बस उन्होंने यही कहा, "तुम पीछे रहकर इन सारी बातों का ख़्याल रखना।"

पैंदा ख़ान अपना सा मुँह लेकर लौट गया। यहाँ आजकल हर कोई यही चर्चा कर रहा है। मैं तो देख-देख कर हैरान होता रहता हूँ कि इस आदमी ने कितने लोगों को नाराज़ किया हुआ है। बाहुबल का ज़ोर तो सांड में भी होता है, हाथी में भी होता है, आदमी में आदमीयत होनी बहुत ज़रूरी है।

यह ख़त मैं बाबा गुरदत्ता जी के हाथ भेज रहा हूँ। उन्हें गुरु महाराज ने हिदायत की है कि वे बाक़ी परिवार के पास गोंईदवाल में रहें। मुझे तो यह सारे आसार किसी और झड़प के लगते हैं। जिस तरह का वक़्त आजकल है कुछ भी हो सकता है। मुग़लों की जो करारी हार हुई है, वे बदला लेकर रहेंगे।

हम एक बार नई जगह से हो भी आए हैं, कल फिर जा रहे हैं........

यही कहानियाँ। नौजवान वीरां वाली को इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसने ख़त को फाड़ कर फेंक दिया और फिर अपनी हरकत पर परेशान होने लगी। घर वाले क्या कहेंगे।

ख़त पढ़कर वीरां वाली का ख़ून खौलने लगा। एक शब्द भी उसने वीरां के हुस्न की तारीफ़ में नहीं लिखा था। एक शब्द में यह भी नहीं कहा था कि वीरां उसे याद आती है। लगता था जैसे उसका लौटने का कोई इरादा ही न हो। गुरु महाराज का पिछलग्गू! जाने से पहले कैसे वादे कर रहा था। एक या दो हफ़्तों में मैं लौट आऊँगा। अब चार महीने होने लगे हैं......चार नहीं तो तीन ही सही, तीन महीने अपने बच्चे की माँ से बिछड़े क्या कम होते हैं? कमबख़्त ने ये भी नहीं पूछा था कि तेरा हाल क्या है? तेरी उल्टीयाँ बंद हुईं हैं या नहीं। किस हालत में मुझे छोड़ कर गया था?

इधर ये कमबख़्त पेट अभी से बढ़ना शुरू हो गया है। इस को कहते हैं पैर भारी होना। हर अंग सूजा-सूजा रहता है। यह उम्र होती है सजने की। यह उम्र होती है खाने-पीने की। यह उम्र होती है रात-रात भर जागने की। और इधर अन्धेरा होती ही घर में चिराग़ गुल हो जाते हैं। अन्धेरा, अन्धेरा,

अन्धेरा।

मैंने शादी की थी, यह सोचकर कि कट्टर धार्मिक बाप से जान छूटे भी। मुझे यह नहीं पता था कि मेरी किस्मत में गुरु घर का एक और दीवा लिखा है।

और इस तरह का गुरु भी कोई नहीं सुना होगा। कहीं शिकार खेला जा रहा है। बेचारे मासूम, बेजुबानों की जान ली जा रही है। कहीं लड़ाई लड़ी जा रही है। पिछली जंग में कितने लोग मारे जा चुके। झगड़ा क्या था एक बाज़ के पीछे हज़ारों जानें कुरबान हो गयीं। मुग़ल मरे थे या सिक्ख, ख़ून तो इंसानों का ही बहा है। जंग जीतकर किसी ने अपना राज भी क़ायम नहीं किया। अमृतसर जैसा पहले था, वैसा अब भी है। बल्कि इधर-उधर टूट-फूट हुई है।

मैं सोचती हूँ अगर गुरु महाराज की बेटी जिसकी शादी हो रही थी मुग़लों के हाथ आ जाती तो क्या नाक रह जाती। सारा परिवार निकल गया और जिस लड़की के पीछे इतना झंझट पड़ा था, उसे पीछे छोड़ गए। कोई बात भी हुई।

बेचारे भाई गुरदास सच्चे हैं मैं तो उनकी इस वार से पूरी तरह सहमत हूँ :

> धरमसाल कर बहिदा, इक्कतथाँ ना टिके टिकाया।
> पादशा घर आवदे, गड़ चड़िया पादशा चड़ाया।
> उम्मत मह न पावदि, नट्ठा फिरे न डरे डाराया ॥
> मंज बहि संतोख दा, कुत्ते रक्ख शिकार खिलाया ॥
> बाणी कर, सुण गाँवदा, कत्थै न सुणै गण्ड सुणाया ॥
> सेवक पास न रक्खीअन, दोखी दुष्ट आगुमोहलाया ॥
> सच्च ना लुके लुकाया, चरण कवल सिक्ख लुभाया ॥
> अजर जरै न आप जणाया ॥

मेरी तो मति ही मारी गई। इससे तो कमाल अच्छा था। भाई गुरदास जी का दीवाना। आदमी पहचाना जाता है अपनी संगत से। कहते हैं, थोड़ा लाद सवेरा आ।

और वीरां वाली के मन में न जाने क्या तरंग उठी वह काग़ज़ क़लम उठाकर कमाल को ख़त लिखने बैठ गई। घर वाले सोचते रहे शायद सुमन को ख़त लिख रही है। पूरी शाम वह कमाल को ख़त लिखती रही।

अगले दिन कुछ यात्री नानक मत्ते से होकर पुरी जा रहे थे। वीरां वाली ने सोचा, वह अपना ख़त उनके हाथ भिजवा देगी।

(39)

मध्यम क़द, बढ़ी हुई तोंद, गर्दन नदारद। सिर जैसे कन्धों पर हंडिया रक्खी हो। सिर पर खिचड़ी हो रहे बाल, कानों में सोनी की बालियाँ। चौड़ा मुँह, मोटे ओंठ, चुँधियाई आँखें, खुला गला। ढीला पाजामा, घिसी हुई रेशमी फ़तूही। बेंत की छड़ी पकड़े ऐसी तेज़ चाल से चल रहा था, जैसे कोई गोल पत्थर लुढ़कता आ रहा हो। गुरु महाराज के आस-पास बैठे श्रद्धालुओं ने बताया, "यह गाँव का साहूकार है-भगवानदास। बड़ा बदमिज़ाज है, गुमानी और घमण्डी। किसी को नाक तले नहीं लाता। हर बात में टाँगें अड़ाता है। क़र्ज़ बाद में देता है, मुक़दमा पहले दायर करता है। रोज़ कचहरियों के चक्कर काटता रहता है। बेचारी की घोड़ी भी थक चुकी है।

इतने में साहूकार पहुँच गया था। न दुआ, न सलाम। गुरु महाराज के सामने आकर खड़ा हो गया।

"आजकल आप बारिश के दिनों में किधर बाहर निकल आए हैं? गुरु महाराज से मुख़ातिब हुआ न दुआ न सलाम।"

"आओ शाह जी बैठो। हम शिकार करते-करते इधर आ निकले।"

"सुना है, आप बाबा नानक की गद्दी पर बैठे हैं। यह शिकार करना आपको क्या शोभा देता है?" साहूकार बदतमीज़ी कर रहा था।

"मन बहलाने का एक ढंग है।" गुरु महाराज उसे टालने की कोशिश कर रहे थे। अच्छा मन बहलावा है। बेचारे बेज़बान जीव, जन्तुओं की जान लेना। यह भी कोई बात हुई। साहूकार और गुस्ताख़ हो गया था।

"साहूकार, तू इंसानों का ख़ून चूसता है तब तुझे तकलीफ़ नहीं होती?" गुरु महाराज के सामने बैठे एक गुरसिक्ख ने साहूकार का मुँह बंद करने की कोशिश की।

साहूकार से कोई जवाब नहीं बन पड़ा। बात का रुख मोड़ने के लिए कहने लगा, "मैं तो मश्विरा देने आया था कि गुरु नानक की गद्दी पर वीराजमान किसी को हुकूमत के खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठाना चाहिए। आख़िर बाबा नानक ख़ुद मुग़लों को हुकूमत बख़्श गए हैं।

"बेशक, लेकिन इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं कि मुग़लों की ज़्यादतियों को बर्दाश्त किया जाए।"

"हाकिम हमेशा ज़्यादतियाँ करते आए हैं।"

"और प्रजा अपने अधिकारों के लिए लड़ती आई है।"

"सुना है आपने तो शहंशाह से याराना गांठा हुआ है।"

"दोस्ती अपनी जगह पर है, उसूल अपनी जगह पर।"

"क्या यह सच है कि आप यहाँ नया शहर बसाने की सोच रहे हैं?" साहूकार भगवानदास अब मतलब की बात पर आ रहा था।

गुरु महाराज को उसके आने का कारण मालूम था।

"हाँ, इस ख़ाली पड़े इलाक़े को हम गाँव वालों ने गुरु महाराज की भेंट कर दिया है। एक ग्रामीण साहूकार को बता रहा था।

"आप कौन होते हैं, इस तरह ज़मीन देने वाले, इसमें बहुत सी ज़मीन मेरे पास गिरवी रक्खी हुई है।" साहूकार की आवाज़ ऊँची हो गई।

"उस ज़मीन को क़र्ज़ चुकाकर छुड़ाया जा सकता है।" एक और ग्रामीण बोला।

"मैं अपने गाँव के नज़दीक एक बाग़ी का ठिकाना नहीं बनने दूँगा।" साहूकार क्रोध में उबल रहा था।

"यह फ़ैसला हमें करना है जो ज़मीन के मालिक हैं।" कई ग्रामीण एक साथ बोले।

बात बिगड़ती देख कर गुरु महाराज ने मोटी तोंद वाले मग़रूर साहूकार को समझाने की कोशिश की कि यह स्थान अत्यंत रमणिक है। एक तरफ़ दरिया बह रहा जिसके किनारे इतनी बड़ी खुली जगह। थोड़ी दूरी पर सामने करतारपुर है। अगर वहाँ एक शहर बनाया जाए तो व्यापार का केन्द्र बन सकता है। फिर आस-पास पठान बसते हैं। हिन्दू और मुसलमान मिल कर रहेंगे। सबसे बड़ी बात यह है कि इस स्थान पर शहर बसाने के लिए गुर सिक्ख अरदास कर चुके हैं। एक बार अरदास हो गई, अब उस फ़ैसले से क़दम पीछे नहीं हटाया जा सकता।

साहूकार की समझ में बात नहीं आ रही थी। एक ही ज़िद कि मैं यहाँ शहर नहीं बसाने दूँगा। आख़िर उसने धमकी दी, "जालन्धर के सूबेदार अब्दुल्ला ख़ान से मेरा याराना है मैं जाकर उससे शिकायत करूँगा।"

यह सुनकर विधी चंद को ग़ुस्सा आ गया। "साहूकार तुझे शिकायत करने के क़ाबिल रहने दिया जाएगा तभी तो करेगा।" उसने तलवार म्यान से निकाल ली।

मामला बिगड़ता देख कर, गुरु महाराज ने विधी चंद को समझाया और साहूकार से कहा, "आप जो चाहें करें, गुर सिक्ख अरदास कर चुके हैं। शहर तो इसी जगह बसेगा।"

भगवानदास खीजता, कुढ़ता उठ खड़ा हुआ। लौटते वक़्त गुरु घर के लिए अपशब्द बोल रहा था। सरकारी दरबार में अपने असर-रसूख़ की धमकियाँ दे रहा था।

गुरु महाराज ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अरदास हो चुकी थी। शहर बसाने की तैयारी शुरू हो गई। यह ख़बर सुनकर आस-पास के हिन्दू और मुसलमान गुरु महाराज के सामने हाज़िर हुए और इस नेक काम में हाथ बंटाने के लिए ख़ुद को पेश करने लगे।

साहूकार और उसके चाटूकारों ने कई बदतमीज़ियाँ की। गुरु महाराज के वैरियों को अपने साथ मिलाया, सूबेदार से शिकायत की कि मुग़ल हूकूमत के विरुद्ध एक हिन्दू अड्डा क़ायम किया जा रहा है। पर शहर के निर्माण का काम पहले की तरह जारी रहा।

पहले चहारदीवारी की चिनाई हुई। ताकि बाहर से कोई हमला न कर सके, फिर दिन-रात शहर के निर्माण का काम गुरु महाराज की देख-रेख में होने लगा।

गुरु महाराज का कहना था कि वह पँजाबियों का सांझा शहर होगा। सिर्फ़ हिन्दुओं गुरुसिक्खों का नहीं। जहाँ उन्होंने शहर में धर्मसाल और मंदिर के लिए अलग जगह रक्खी वहाँ मस्जिद के लिए भी स्थान निश्चित किया गया।

लेकिन उनके वैरी जालन्धर के सूबेदार का कान भर रहे थे। फ़िरक़ापरस्त मुसलमान तत्वों को भड़का रहे थे कि मुस्लिम हकूमत के ख़िलाफ़ साज़िश होने जा रही थी।

जैसे गुरु नानक देव जी ने करतारपुर बसाया था, गुरु अंगद देव जी ने खण्डूर साहिब का निर्माण किया, गुरु अमरदास जी ने गोईंदवाल का निर्माण अपने ज़िम्मे लिया और गुरु रामदास जी ने अमृतसर की एक-एक ईंट अपने सामने लगवाई, गुरु अर्जन देव जी ने तरनतारन शहर को आबाद किया। वैसे ही गुरु हरिगोविंद जी ने हरिगोविंदपुर साहिब के लिए स्थान चुना, शहर की रूप रेखा निर्धारित की हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों को इक्ट्ठे मिल-जुलकर कर रहने की प्रेरणा दी।

एक बार गुरु महाराज ने हाथों में कुदाल पकड़कर ज़मीन खोदी, फिर गुरु के सिक्ख सत् गुरु का नाम लेकर जुट गए। इससे पहले कि भगवानदास साहूकार या उसका बेटा रतनचंद या गुरु महाराज के वैरी पृथीचंद का बेटा करमचंद कोई उपेद्रव मचाते, शहर प्रतिदिन फलने-फूलने लगा। कुछ साल बाद हरिगोविंदपुर एक बसता-रौनक़ वाला शहर था। यहाँ हिन्दू सिक्ख और मुसलमान घी-खिचड़ी होकर रहते थे।

ज्यों-ज्यों शहर बनता जाता, ज्यों-ज्यों लोग वहाँ आकर बसते, साहूकार भगवान दास के पेट में शूल उठते इससे पहले कि शहर बनके तैयार होता, साहूकार खीजता-कुढ़ता हुआ ख़तम हो गया। उसका बेटा बदला लेने की तरकीबें सोचता रहता साज़िशें करता रहता, पर अभी तक उसे कोई कामयाबी नहीं मिली थी। बार-बार सूबेदार से जाकर कहता कि इस शहर में मुसलमानों को नहीं बसने दिया जा रहा। उधर हरिगोविंदपुर दोआबे और मांझे के संगम पर बसा था। दोनों इलाक़े के नौजवान गुरु महाराज की फ़ौज में भर्ती होने लगे। चूँकि इस शहर के इर्द-गिर्द पठानों की घनी बसती थी, पठान नौजवान भी गुरु महाराज की फ़ौज में भर्ती होकर फ़ख़्र महसूस करते थे। असली बात यह थी कि गुरु महाराज की छवि ऐसी थी, कि इस तरह के सुन्दर सूरमे का दर्शन करके हर नौजवान उनके निकट आने का इच्छुक हो जाता। उनके साथ कोई न कोई साँझ बनाने के सपने लेने लगता। उन जैसा कोई घुड़ सवार नहीं था। उन जैसा तीरन्दाज़ कोई नहीं था। उन जैसा शस्त्रधारी नहीं था। उन जैसी तेग़ कोई नहीं चला सकता था उनके शिकार की सूझ-बूझ को शहंशाह जहाँगीर भी स्वीकार कर चुका था।

उधर हरिगोविंदपुर जब तैयार हो गया तो गुरु घर के निंदकों के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। जगह-जगह बाग़-बगिचे, कुएँ और तालाब, शहर में धर्मसाल के साथ एक मस्जिद का भी निर्माण किया गया था। यह मस्जिद पंजाब के सबसे मशहूर कारिगर की बनाई हुई थी। या शहर के मुसलमान निवासियों के लिए पाँचों वक़्त बाँग (अज़ान) दी जाती थी। हरिगोविंदपुर में हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान ख़ुशी से साथ-साथ रहते थे। वक़्त बीतने के साथ यह शहर घोड़ों की मशहूर मण्डी गिना जाने लगा या बन गया।

(40)

सुमन ने वीराँवाली को लिखे गए अपने पत्र में जिस आशंका का उल्लेख किया था वह सच साबित हो रही थी। श्री हरिगोविंदपुर शहर बसाने

के साथ, गुरु महाराज ने अपना एक और वैरी पैदा कर लिया था। गाँव के चौधरी का बेटा रतनचंद अपनी बाप की मौत का बदला लेना चाहता था। उसका बाप गुरसिक्खों से तकरार करता हुआ कुढ़-कुढ़ कर जान गवाँ बैठा था। उधर चंदू का बेटा करमचंद पहले ही ख़फ़ा था। दोनों मिलकर जालन्धर के सूबेदार के पास गए। गुरु हरिगोविंद जी को एक नया शहर बसाने, एक नया क़िला बनाने नहीं देना चाहिए। अगर जालन्धर का सूबेदार इसे रोकने में सफ़ल होता है तो शहंशाह की खुशी का पात्र बनेगा। सिक्ख गुरु ने हाल ही में मुग़ल फ़ौज को अमृतसर की लड़ाई में मात दी थी। सरकार को इस हार का बदला लेना है। बहुत से सिक्ख फ़ौजी पिछड़ी झड़प में मारे गए थे। अब नई लड़ाई में गुरु हरिगोविंद को हराना मुश्किल नहीं होगा और जो नए सिपाही गुरु महाराज जो भर्ती कर रहे हैं उनमें कोई नाई है, कोई धोबी है, कोई भडभूँजा है और कोई रोज़गार है, कोई मोची है और कोई तेली।

यह तो गोली का पहला धमाका सुनकर भाग खड़े होंगे।

जालन्धर के सूबेदार अब्दुल्लाह ख़ान को यह बात जंच गई। वह नहीं चाहता था कि जालन्धर के नज़दीक कोई क़िला बनाया जाए और फिर हर रोज़ की खिच-खिच शुरू हो जाए। असली में गुरु महाराज का श्री हरिगोविंदपुर में क़िला बनाने का कोई इरादा नहीं था पर रतनचंद और करमचंद ने सूबेदार के जैसे कान-भरे, वह जैसे उनके कान भर रहा हो। सूबेदार अब्दुल्लाह ख़ान को यक़ीन दिलाया गया कि मामूली से स्थानीय झड़प होगी, कुछ घण्टों में मामला निबट जाएगा। इसलिए उसने शहंशाह को इसकी सूचना भी नहीं दी, न ही लड़ाई की इजाज़त ली।

इधर गुरु महाराज ने भी बेकार में इसका ढिंढोरा नहीं पीटा। अमृतसर में भाई गुरदास जी जैसे लोग पहले ही परेशान रहते थे और गोइंदवाल में गुरु महाराज का अपना परिवार दूर-दराज़ के स्थान पर रह रहा था। उन लोगों तक ख़बर पहुँचते-पहुँचते ही पहुँचती।

सूबेदार अब्दुल्ला ख़ान ने इस लड़ाई में दस हज़ार सिपाही झोंकने का फ़ैसला किया। इन्हें पाँच टुकड़ियों में बाँटा गया। एक हज़ार सिपाहियों की टुकड़ी बैरम ख़ान की कमान में तैनात की गई। इतनी ही बड़ी एक और टुकड़ी मोहम्मद ख़ान को सौंपी गई। बलवण्ड ख़ान, अलीबख़्श और ईमाम बख़्श को भी इतनी ही गिनती की टुकड़ियों की ज़िम्मेदारी बख़्शी गई। अपने दो बेटों नबी बख़्श और करीम बख़्श को सूबेदार ने दो-दो हज़ार की दो

टुकड़ियाँ सौंपी और एक हज़ार घुड़सवार अपनी निजी सुरक्षा के लिए अलग रखे।

इधर गुरु महाराज ने अपनी सेना को आठ टुकड़ियों में बाँटा। उनके पास चार हज़ार से भी कम फ़ौज थी। उन्होंने भाई जहू को दो हज़ार सिपाही देकर शीर्ष स्थान दिया। भाई पीरागा को जिन्होंने अमृतसर की लड़ाई में नाम पैदा किया था, पाँच सौ सिपाहियों की अगुवाई करने के लिए कहा। भाई मथरा और भाई जगननाथ को चार-चार सौ और भाई कल्याण, भाई शकतू और भाई परस राम को सौ-सौ सिपाहियों की सरदारी बख़्शी गई। भाई जतीमल और भाई मोलक को भाई बिधी चंद की सहायता करने के लिए कहा गया।

लड़ाई से पहले जालंधर के सूबेदार अब्दुल्ला ख़ान ने एक बार गुरु महाराज को कहलवाया कि अगर वे प्रस्ताव मान लें तो लड़ाई से बचा जा सकता है। इसके जवाब में गुरु महाराज ने उसे फिर याद दिलाया कि गुरु घर कभी किसी पर पहले आक्रमण नहीं करता पर अगर उन पर हमला किया गया तो वे इसका मुक़ाबला ज़रूर करेंगे। इसके साथ ही गुरु महाराज ने अपनी फ़ौज को हिदायत की कि जो लड़ाई वे लड़ने जा रहे हैं, वह धर्मयुद्ध है ना कि किसी इलाक़े या किसी की हकुमत छीनने के लिए दुनियावी जंग। हर सिक्ख को अपनी जान हथेली पर रखकर अपने इष्ट के लिए लड़ना होगा। लड़ाई में इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि जो भाग रहे हों या हार मान लें। हथियार छोड़ दें; उन्हें कोई नुक़सान नहीं पहुँचना चाहिये। इस लड़ाई में दोनों पक्ष तोपों और बँदूक़ों, तीरों और तलवारों से लैस थे। उस ज़माने में इससे बेहतर हथियार किसी फ़ौज के पास नहीं होते थे। गुरु महाराज के पास पिस्तौल भी थे।

पहली झड़प जहू और मोहम्मद ख़ान में हुई। पहले उनके घोड़े औंधे गिरे फिर घुड़सवार भी ज़ख़्मी होकर गिर पड़े और हमेशा-हमेशा के लिए सो गए।

अब मुग़लों की ओर से बैरम ख़ान मैदान में उतरा। उसका मुक़ाबला भाई मथरा को करना था। भाई मथरा ने अपने जवानों को सम्बोधित करते हुए कहा, "भाइयों एक दिन हर किसी को मरना है। कई पीढ़ियाँ मर गई हैं; कई पीढ़ियाँ बेकार में मरेंगी। आज हमारे हिस्से में सार्थक मौत आई है। हम अपने गुरु महाराज के लिए जान देने जा रहे हैं। हमारा जन्म सफ़ल

होगा। धन्न है वह मौत जो गुरु की आज्ञा में आए। ऐसे शहीदों के लिए स्वर्ग के दरवाज़े खुल जाते हैं। अगर हम अपने वैरी को हराने में कामयाब हुए तो हमारे दोनों जन्म सफ़ल हो जाएंगे। इसलिए मेर शेरो टूट पड़ो।" सरदार के मुँह से यह शब्द निकले ही थे कि सिपाही बैरम ख़ान के सैनिकों पर टूट पड़े। घमासान लड़ाई हुई। बहुत देर तक मार काट होती रही। लड़ते-लड़ते मथरा और बैरम ख़ान एक दूसरे के इतने पास आ गए कि उन्हें अपने घोड़े छोड़ कर तलवारों से लड़ना पड़ा। इस तरह की झड़प में सिक्ख कभी नहीं हारे थे। अगले क्षण भाई मथरा ने बैरम ख़ान का सर धड़ से अलग कर दिया।

बैरम ख़ान के बाद बलवण्ड ख़ान को भेजा गया। उसकी मदद के लिए अली बख़्श था। गुरु महाराज ने अब कल्यान को थपकी देकर आगे किया। कल्यान ने पहले ही वार में बंदूक का ऐसा निशाना लगाया कि गोली बलवण्ड की छाती से पार हो गइ। यह देख कर, अलीबख़्श ने कल्यान को घेर लिया। सैंकड़ों मुग़ल सिपाही कल्यान पर टूट पड़े। कल्यान एक सूरमे की तरह आख़िरी सांस तक लड़ता रहा, वैरियों को एक-एक करके गिराता रहा। आख़िर जब उसके प्राण निकले तो उसके होंठों पर वाहे गुरु का नाम था।

अब अली बख़्श के सैनिकों का भाई नानों के साथ मुक़ाबला था। उसकी मदद के लिए गुरु महाराज ने दो सौ सिपाही और तैनात किए। अब भाई नानों के पास तीन सौ जवान थे। अली बख़्श ने तीर से भाई नानों पर हमला किया पर उसका निशाना चूक गया। यह देख कर भाई नानों ने अपनी बंदूक की गोली से अली बख़्श को धाराशाही कर दिया। अली बख़्श को गिरते देखकर, ईमाम बख़्श ने उसका स्थान लिया। अब शहीदी का जाम पीने की बारी नानों की थी। नानों को गिरता देखकर उसके सिपाही पीछे हटने लगे।

यह देखकर गुरु महाराज ने सिक्ख सूरमों को ललकारा। भाई नानों का स्थान लेने वाला कोई है ? यह सुनकर भाई पिरागा आगे बढ़ा। भाई जगन, भाई किशन और दूसरे सरदार उसकी मदद के लिए आए। जगन और उसके साथियों के शहीद होने पर बिधीचंद ने भाई परागा की मदद के लिए इजाज़त चाही। अब सिख सेना ऐसे धड़ल्ले से लड़ी कि मुग़ल फ़ौज में खलबल मच गई। यह देखकर अब्दुल्ला ख़ान लाठी लेकर आगे बढ़ा और सिपाहियों को बरग़लाकर आगे भेजने लगा। उसने करमचंद और रतनचंद को भी जंग में कूदने के लिए कहा, "आपने मेरे हज़ारों सिपाही मरवा दिए

हैं और ख़ुद तमाशा देख रहे हो ?" अब्दुल्ला ख़ान ने उन्हें ललकारा यही नहीं उसने अपने बेटे नबीबख़्श को भी लड़ाई में झोंक दिया।

यह सुनकर गुरु महाराज एक तरह से ख़ुश हुए। उन्होंने सोचा, अब वक़्त आ गया है कि वे ख़ुद संग्राम में उतरें। गुरु महाराज के तीरों की बौछार, उनके घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर सैनिक सहम-सहम जाते। गुरु महाराज को मैदाने जंग में देखकर चंदू के बेटे ने उन पर हमला करने की सोची, इतने में बिधीचंद ने अपने तीर से उसके घोड़े को बींधकर सवार को क़ाबू कर दिया। करमचंद की मुश्कें बाँधकर गुरु महाराज के आगे पेश किया गया। उसकी दयनीय हालत देखकर गुरु महाराज को तरस आया। उन्होंने उसे रिहा कर दिया।

करमचंद लौट कर मुग़ल सेना में चला गया और उन्हें कहने लगा, "मैं भेस बदलकर वैरी की फौज का भेद लेने गया था। वे लोग अपने हौसले हार बैठे हैं। उनके पास अब कोई लड़ाकू सिपाही नहीं बचे हमें उन पर हमला करके गुरु को क़ाबू में कर लेना चाहिए।" फिर एक तरफ़ से नबी बख़्श और दूसरी तरफ़ से उसका बाप आगे बढ़ा। अपने अब्बा सूबेदार को जंग में उतरा देखकर उसका दूसरा बेटा करम-बख़्श भी लड़ाई में शामिल हो गया। नबी बख़्श ने परस राम पर हमला करके उसे ज़ख़्मी कर दिया। यह देखकर भाई सकतू उसकी मदद के लिए आया। इतने में परस राम फिर सावधान हो गया, उसने आगे बढ़कर नबी बख़्श का सर धड़ से अलग कर दिया। अब मुग़ल सिपाही परस राम और सकतू पर टूट पड़े और दोनों को शहीद कर दिया। अपने बेटे नबी बख़्श की लाश देखकर अब्दुल्ला ख़ान ख़ून के आँसू रो रहा था। उसके दूसरे बेटे करीम बख़्श ने यह कह कर अपने अब्बा को हौसला दिलाया कि वह सिक्ख गुरु का सर उन्हें पेश करके अपने भाई का बदला लेगा।

करीम बख़्श को आगे बढ़ता देखकर गुरु महाराज ने बिधीचंद से कहा कि वह उसे सम्हाले। उधर रतनचंद और करमचंद भी करीम बख़्श की मदद के लिए आ पहुँचे थे। अब मुग़लों का पलड़ा इतना भारी हो गया कि सिक्ख सिपाहियों के हौसले पस्त मालूम होने लगे। यह देखकर बिधी चंद ने करीम बख़्श से जूझना शुरू कर दिया। करीम बख़्श ने बिधीचंद पर करारा वार किया, पर बिधीचंद ने अपने आप को बचा लिया। अब बिधीचंद करीमबख़्श पर टूट पड़ा। उसकी तलवार के दो टुकड़े हो गए। बिधीचंद ने पलटकर

दूसरी तलवार पकड़ी और इस बार ऐसा वार किया कि करीमबख़्श को अपने भाई के पास भिजवा दिया।

यह देखकर करमचंद और रतन मैदान छोड़कर भाग गए। जब सूबेदार को अपने दूसरे बेटे की मौत की ख़बर मिली तो वह अपनी छाती पीट कर विलाप करने लगा। उसके पाँच नामी जरनैल और दो बेटे इस जंग में काम आ चुके थे। उसने सोचा, जिस गुरु की सेना को शहंशाह की फ़ौज नहीं हरा सकी, उससे वह कैसे जीत सकेगा? यह लड़ाई मोल लेकर उसने अपनी ज़िंदगी की सबसे बड़ी हिमाक़त की थी। अब तो ना वह शहंशाह को मुँह दिखाने योग्य था, न किसी और को। अब्दुल्ला ख़ान ने रतनचंद और करमचंद को एक बार फिर शर्मिंदा करके लड़ने के लिए आगे किया और फ़ैसला किया कि वह तो या गुरु साहब को ख़त्म करेगा या ख़ुद ख़त्म हो जाएगा। आख़िर में मुग़लों की पूरी फ़ौज इक्ट्ठी होकर सिक्ख सेना पर टूट पड़ी। घमासान लड़ाई हुई। तीर सनसना रहे थे, गोलियाँ चल रही थीं, तलवारें खनखना रही थीं, घोड़े हिनहिना रहे थे। ज़ख्मी हुए सैनिक कराह रहे थे। फ़ौजियों की चीख़ें आसमान को फ़ाड़ रही थीं। अब्दुल्ला ख़ान जैसे पागल हो गया हो, आगे-पीछे, दायें-बायें चारों तरफ़ वार कर रहा था। वह नहीं जानता था कि वह अपने आदमियों को भून रहा था या अपने वैरियों को।

गुरु महाराज ने अपने तीर से रतनचंद के घोड़े को ज़ख़्मी कर दिया। यह देख कर करमचंद आगे बढ़ा और उसने अपनी कमान पर चिल्ला चढ़ाकर ऐसा तीर छोड़ा कि गुरु महाराज का काबुली घोड़ा औंधा जा गिरा। गुरु महाराज ने अपने तीर से करमचंद के घोड़े को ज़ख्मी किया। रतनचंद और करमचंद को अब बिना घोड़ों के लड़ना था। गुरु महाराज ने करमचंद पर तलवार से हमला करके उसे ज़ख़्मी किया। रतनचंद उसकी मदद के लिए बढ़ा यह देखकर गुरु महाराज ने अपनी पिस्तौल से उसे वहीं ढ़ेर कर दिया।

इतने में अब्दुल्ला ख़ान गुरु महाराज पर टूट पड़ा। गुरु महाराज ने उसके अनेक वार अपनी ढ़ाल पर रोके और फिर ऐसा तेज़ वार किया कि अब्दुल्ला ख़ान का सर धड़ से अलग होकर खरबूज़े की तरह लुढ़कने लगा।

इतने में करमचंद होश में आ गया था। वह अचानक गुरु महाराज पर टूट पड़ा। पहले ही वार से उसकी तलवार के दो टुकड़े हो गए। यह देखकर

गुरु महाराज ने भी अपनी तलवार म्यान में बंद करते हुए उसके साथ हाथा-पाई शुरू कर दी। कुछ देर के बाद गुरु महाराज ने दोनों हाथों से उसे उठाकर ज़मीन पर ऐसे पटका कि उसकी खोपड़ी फट गई।

यह देखकर मुग़ल फ़ौज मैदान छोड़कर भाग गई। गुरु महाराज की फिर जीत हुई। मुग़ल फ़ौज को एक और शर्मनाक हार का सामना करना पड़ा। झूठ की सच के सामने जुल्म की इंसाफ़ के विरूद्ध एक और हार थी। अकारण लड़ाई मोल लेकर अब्दुल्ला ख़ान ने अपनी, अपने दो बेटों की और पाँच सिपहसालारों की जान गँवाई और साथ ही हज़ारों मुग़ल और सिक्ख सिपाही मारे गए।

इतनी भारी लड़ाई लड़ी गई। इतनी बड़ी लड़ाई जीती गई पर पयंदा ख़ान जैसे मुँह देखता रह गया। उसकी सारी शेखियाँ धरी की धरी रह गयीं। गुरु महाराज ने उसे साबित कर दिखाया कि बेशक वह बहादुर सिपाही था पर कोई लड़ाई उसके बग़ैर भी लड़ी और जीती जा सकती थी। गुरु घर में अहंकार, घमण्ड और शेख़ीख़ोरी का कोई स्थान नहीं था।

(41)

करतारपुर की लड़ाई से निवृत्त होकर गुरु हरिगोविंद जी ने सबसे पहले श्री हरिगोविंदपुर में मुसलमान बाशिन्दों के लिए बनी मस्जिद को और चौड़ा किया। उनकी हिदायत थी कि मस्जिद शहर की धर्मसाल और शहर की मंदिर जितनी ही खुली होनी चाहिए। इस तरह जैसे गुरु महाराज ने साम्प्रदायक विचारधारा के हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों के मुँह पर जैसे एक तमाचा मार दिया। उनकी नज़र में मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों में कोई फ़र्क़ नहीं था।

आस-पास के पठानों को जब पता चला, वे गुरु महाराज के और शैदाई हो गए।

करतारपुर की लड़ाई में गुरु महाराज का प्यारा काबुली घोड़ा काम आ गया था। यह सुनकर सुभागा नाम का एक गुरसिक्ख पश्चिमी पंजाब से पाँच घोड़े लेकर गुरु महाराज के सामने हाज़िर हुआ। इनमें से सबसे सुन्दर घोड़ा उन्होंने अपने लिए रखा। एक अपने बेटे गुर दत्ता को दिया, तीसरा भाई बिधीचंद को दिया और चौथा पयंदा ख़ान को भिजवाया। पाँचवा घोड़ा उन्होंने फ़ालतू रख छोड़ा ताकि अकस्मत ज़रूरत के मौक़े पर काम में लाया जा सकता था।

गुरु महाराज का पयंदा ख़ान को घोड़ा भेजने का मतलब था कि उसे एकदम भुलाग्गा नहीं गया था। बस वे उसे सबक़ सिखाना चाहते थे। वह सबक़ सीखता है या नहीं यह उसकी क़िस्मत पर निर्भर था।

कुछ दिन बाद गुरसिक्खों के साथ बैठे गुरु महाराज गुरबाणी के पाठ की महिमा सुना रहे थे। "पाठ करना अच्छा है, पर समझ-समझ कर विचार के साथ पाठ करना और भी अच्छा है। इससे भी अधिक अच्छा है, गुरबाणी के पाठ पर अमल करना।" गुरु महाराज ने फ़रमाया।

"पाठ तो हम सब करते हैं।" सामने बैठे सुभागा ने कहा, जो कल गुरु महाराज के लिए पाँच घोड़े लाया था। बेशक, पर समझ-समझ कर, विचार करके पाठ करने की महिमा और ही है। गुरु महाराज ने फिर अपने कथन को दुहराया।

"अपनी-अपनी सूझ के मुताबिक़ शायद हम यहीं करते हैं।" एक और सिक्ख बोला।

गुरु महाराज ने एक और ज़रूरत बताई। "ज़रूरत ये है कि पाठ के समय पूरा ध्यान ईश्वर से जुड़ा रहे।" फिर पूछा, "क्या हम में से कोई यह दावा कर सकता है कि पाठ करते समय उसकी लीव लगातार अकालपुरख से जुड़ी रहती है।"

संगत में एक ख़ामोशी छा गई। सभी सिक्ख अपने-अपने मन को टटोलने लगे।

"कोई नहीं ?" कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद गुरु महाराज जैसे निराश होकर बोले, "जैसे जंग में सूरमे का एकमात्र निशाना दुश्मन हो हराना होता है, ऐसे ही पाठ कर रहे गुर सिक्ख का मूल मनोरथ ईश्वर को पाना होता है। कोई ऐसा ईश्वर भक्त है तो अपना हाथ खड़ा करे।" संगत में फिर एक ख़ामोशी छाई दिखाई दी।

"यही मेरी आशंका थी। पिछले कुछ दिन से मुझे लग रहा था, मुझे सूरमे तो अनेक दिखाई देते हैं पर संत कोई विरला नज़र आता है, अगर कोई है तो सामने आए।"

क्षण भर की ख़ामोशी के बाद, पीछे जोड़ों में बैठा गोपाल नाम का एक सिक्ख हाथ जोड़कर गुरु महाराज के सामने पेश हुआ। "जानीजान सत्‌गुरु अगर आपकी कृपा हो तो दास इस इम्तहान के लिए हाज़िर है।"

गुरु महाराज का मुखड़ा गुलाब की तरह खिल गया। आख़िर कोई तो

है। हज़ारों में एक तो है। गुरु महाराज ने उसे पंच स्नान करने के लिए कहा। फिर उसे सामने अलग रखी चौकी पर बिठाकर जपजी साहब का पाठ करने के लिए फ़रमाया। गोपाल, गुरु महाराज के सामने सर झुकाकर जपजी साहब का पाठ करने लगा :

"१ੴ सतिनाम, करता पुरख, निरभऊ, निरवैर, अकाल मूरति, अजूनी, सैभं, गुर प्रसादि। जपु। आदि सचु, जुगादि सचु, हैभी सचु, नानक होसि भी सचु।"

इसी तरह गुरु चरणों में ध्यान लगाए, ईश्वर से लीव लगाए, गोपाल पाठ कर रहा था :

किव सच्चियारा होय्यिए, किव कूड़े तुटे पालि ॥
हुकमि रजाई चलणा नानक लिक्खया नालि ॥

आँखें मूँदकर, ईश्वर पर ध्यान लगाकर गोपाल ने गाया।

करमि आवै कपड़ा नदरि मोखु द्वार ॥

और फिर :

सुणिए सिध पीर सुरि नाथ ॥
सुणिए धरति धवल आकास ॥

और फिर :

मने दी गति कहि न जाई ॥
जेकौ कहै पिछे पछुताई ॥

और फिर :

असंख्य जप असंख्य भावु ॥
असंख्य पूजा असंख्य तपताऊ ॥
असंख्य गरंथ मुखि वेद पाठ ॥

सामने विराजमान पाठ श्रवण कर रहे, गुरु महाराज के मुख पर एक ख़ुशी झलकने लगी। शांत, गंभीर लगता था जैसे वह समाधि में जा रहे हों। फिर गोपाल ने गाया :

भरीयै मति पापा के संगि ॥
ओहु थोपे नावै के रंग ॥

और फिर :

पाताला पाताल लक्ख अगासा अगास

और फिर :

बंद खलासि भाण्णे होइ

....

जिस नो बक्से सिफ़ति सालाह

नानक पातिशाही-पातशाह ॥

एक तमन्ना एक हसरत थी, एक चाव था गोपाल की आवाज़ में जब वह इन तुकों का उच्चारण कर रहा था :

सो......दरू केहा ?

सो घर, केहा

जितु बहि सरब समाले ?

गोपाल की आवाज़ में एक तड़प थी, उसकी आँखें जैसे छलक-छलक रही हों, अत्यंत हलीमी में उसने पुकारा।

सेइ तुध नो गावहि

जो तुधु भावनि

रते तेरे भगत रेसाले।

होरि केते गावनि

सोमै चिति न आवनि.........

यह कहते हुए गोपाल के आँसू झर रहे थे। जैसे कोई बच्चा किसी सवाल को ना समझ कर, अध्यापक के सामने फूट पड़ता है। गोपाल की आवाज़ फिर ख़ुशी भर गई और फिर उसके मुँह से यह बोल निकले :

मनि जिते जगुजीतु.........

और फिर

आदेसू तिसै आदेसु आदि अनिलु अनादि अनाहित ॥

आदेसू तिसै आदेसु आदि अनिलु अनादि अनाहित ॥

आदेसू तिसै आदेसु आदि अनिलु अनादि अनाहित ॥

आदेसू तिसै आदेसु आदि अनिलु अनादि अनाहित ॥

बार-बार हाथ जोड़कर, बार-बार शीश निवाकर, बार-बार प्रार्थना करते हुए जैसे कोई हवा में तैरने लग पड़े। गोपाल और ऊँचा उड़ रहा मालूम होता था :

धरम खण्ड का ऐहो धरमु ॥

ते फिर होरु ऊच्चा :

ज्ञान खण्ड महि ज्ञानु परचण्डु ॥

उससे भी और ऊँचा :

करम खण्ड की बाणी जोरू
तित्थै होरु न कोई।.....
तित्थै-तित्थै सीतो सता महिमं माहि
ताको रूप न कथने जाहि
नाओहि मरहि न ठागे जाहि
जिनकै राम वसै मन माहि

अब गोपाल ने गाया :

सच खण्ड वसै निरंकारु।

उसे सुन रहे गुरु महाराज का मुख आभा से चमकने लगा जैसे उनके अंदर से एक नूर फूट रहा हो। जिसकी उन्हें तलाश थी वह व्यक्ति उनको मिल गया था। वह जो निरंकार से साँस-साँस जुड़ा हुआ था और पास बैठे एक गुर सिक्ख से उन्होंने कान में कहा कि पाँच पैसे और एक नारियल ले आए।

गुरु महाराज गोपाल को गुरु नानक की गद्दी बख़्शने के लिए तैयार हो गए। जिसकी लीव इतनी गहरी लगी हुई थी। उसे इससे कम कोई पुरस्कार देना शोभा नहीं देता था। गुरु महाराज अपने स्थान से उठ कर गोपाल को प्रणाम करने का सोच ही रहे थे कि उधर गोपाल अपनी मंज़िल पर पहुँच कर ईश्वर से अपना ध्यान हटाकर सोचने लगा-"गुरु महाराज मुझे क्या नाम देने जा रहे हैं ? काश। वे मुझे वह पाँचवां घोड़ा बख़्श दें जो उन्होंने फ़ालतू अपने अस्तबल में बँधवा रक्खा है।"

जानीजान गुरु महाराज ने गोपाल के मन की बात बूझ ली। गुर सिक्ख के लाए हुए पाँच पैसे और नारियल को एक तरफ़ रखते हुए, उन्होंने गोपाल की ओर फिर देखा।

एक निराशा थी, गुरु महाराज की दृष्टि में।

(42)

बाबा बुड्ढा जी का अंतिम समय आ गया है। भाई गुरदास जी गुरु महाराज को बता रहे थे। उनके चेहरे से ऐसा लगता था जैसे धरती उनके पैरों के नीचे धंस रही हो। एक महाकवि का अंत हो रहा था। कोई सरस्वती जैसे सूख रही हो।

गुरु महाराज ने सुना तो वे उसी क्षण बाबा बुड्ढा जी की ओर चल पड़े।

बाबा बुड्ढा जी लेटे हुए थे। "अच्छा हुआ आप आ गए।" गुरु महाराज को देखकर उन्होंने कहा-"मेरा समय आ गया है। यह चोला छोड़ना होगा।"

"आपको कैसा लग रहा है?" भाई गुरदास जी ने पूछा।

किसी से बिछुड़ने का ग़म किसी को मिलने की ख़ुशी। बाबा बुड्ढा जी ने समझाया।

"आप चले गए तो हमारा क्या बनेगा ? आपकी हस्ती एक बरगद की छाँव जैसी थी।"

"गुरु घर की सेवा करने का मुझे अवसर मिला, मुझ जैसा सौभाग्यशाली और कौन होगा ? अब यह सेवा मुझ से छूट जाएगी, यही मुझे रंज है, यह चोला छोड़कर तो मैं एक नेमत से वंचित हो जाऊँगा।" "आप हमारे अंग-संग रहेंगे। आपका हाथ सिक्ख संगत पर हमेशा-हमेशा रहेगा।" गुरु महाराज कह रहे थे। उनकी आवाज़ भावुकता में द्रवीभूत थी।

"बेशक मैं आपके चरणों में रहूँगा यही एक सिक्ख का स्वर्ग है।"

पर चूँकि यह नयन नहीं रहेंगे, हज़ूर के दर्शन नहीं कर सकूँगा। यह हाथ नहीं होंगे इसलिए आपके चरणों का स्पर्श संभव नहीं होगा। यह मुँह नहीं होगा, इसलिए कुछ अर्ज़ नहीं कर सकूँगा। यह कान अग्नि के भेंट हो जाएंगे, इसलिए गुरु महाराज के वचन सुनने का मुझे सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा, जैसे अब है। साध-संगत में शामिल होऊँगा पर प्रसाद नहीं चख सकूँगा, बस इतना अंतर होगा।"

"आपके बिना.........." भाई गुरदास कुछ कहना चाह रहे थे पर उनकी आवाज़ रुक गई।

अब मेरा वक़्त हो गया है।

"हमारे लिए कोई हुक्म ?" गुरु महाराज ने पूछा। "एक ही विनती है। आप अपने मुखारविन्द से जपजी का पाठ करके मेरे कानों में डाल दीजिए। मेरा तोशा (यात्रा के लिए बनाया गुड़ का पकवान) होगा।" भाई बुड्ढा जी ने कहा।

गुरु महाराज ने सुना और पाँच स्नान करके बाबा बुड्ढा जी के सामने चौकड़ी मारकर उन्होंने जपजी साहब का पाठ शुरू कर दिया :

ੴ सतिनाम करता पुरख........।

गुरु महाराज ने पाठ शुरु किया तो बाबा बुड्ढा जी के नैन मुँद गए। हाथ जुड़ गए। सांस शांत, लगातार आ रही थी। कुछ दुख नहीं, कोई रोग

नहीं, बस यह अहसास कि अंतिम क्षण आ गया है।

जपजी का पाठ सुनते हुए सामने बैठे गुरदास जी की आँखों के सामने जैसे सिक्ख इतिहास का जुलूस जा रहा हो।

जंगल में भाई बुड्‌ढा जी गाएं चरा रहे हैं। उन्हें गुरु बाबा नानक जी का दीदार होता है। दूध का कटोरा उनके सामने रखकर विनती करते हैं-"गुरु महाराज आपका दर्शन किया है। मेरा जन्म-मरण काटिये जी।"

गुरु महाराज पूछते हैं, "तू तो अभी बालक है। तुझे यह बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई ?"

बाबा बुड्‌ढा जी कहते हैं, "जी हमारे गाँव में मुग़ल आकर उतरे थे। उन्होंने कच्ची, पक्की फ़सलें काट लीं और डडरिएं*, तो मेरे मन में आया कि इन अत्याचारियों का हाथ अगर किसी ने नहीं रोका तो यम का हाथ कौन पकड़ेगा।"

यह सुनकर बाबा जी ने कहा, "तू बालक नहीं, तेरी तो बुड्‌ढों जैसी मति है। तू तो बुड्‌ढा है। एकाग्र होकर वाहेगुरु का नाम ध्याएगा तो तेरा कल्याण होगा। एकाग्र मन से जपा नाम कल्याण करता है, ऊर्जा भी बढ़ती है।"

और फिर गुरु नानक देव जी ने यह वर दिया कि मैं कभी तुझसे ओझल नहीं होऊँगा। जहाँ मैं होऊँगा तू मुझे पहचान लेगा।

फिर एक और चित्र उभरा। गुरु अंगद देव जी करतारपुर छोड़कर माई विराइ के घर में जा टिके हैं और माइ को मना कर दिया कि वह किसी को न बताए कि गुरु महाराज उसके यहाँ हैं। भाई बुड्‌ढा जी पाँच और सिक्खों के साथ माइ के यहाँ आते हैं। माइ चुप्प, बताती नहीं। बाबा बुड्‌ढा जी बलवण्ड से कहते हैं, "रबाब बजाकर शब्द शुरू करो। बाबा नानक का शब्द सुनकर अपने आप बाहर आ जाएंगे।" और ऐसा ही हुआ।

तीसरा दृश्य। भाई बुड्‌ढा जी राय बलवण्ड से कहते हैं, "शब्द सुनने की तमन्ना है, शब्द सुनाओ।" बलवण्ड जवाब देता है, "भाई बुड्‌ढा ! वक़्त पर चौकी पढ़ूँगा। तब सुन लेना। किस-किस के आगे शब्द पढ़ूँ।"

भाई बुड्‌ढा जी ख़ामोश हो जाते हैं। उनकी एकाग्रता भंग हो जाती है। जब गुरु अंगद जी को पता चलता है तो वे चौकी के समय बलवण्ड को शब्द पढ़ने से रोक देते हैं। बलवण्ड के पूछने पर गुरु महाराज फ़रमाते हैं, "जब हम बुड्‌ढा जी में सुनते, तब तूने नहीं सुनाया। अब वक़्त नहीं।"

बलवण्ड को होश आ जाती है। माफ़ी माँगता है। बाबा बुड्‌ढा जी माफ़

करने के लिए गुरु महाराज से सिफ़ारिश करते हैं।

चौथा दृश्य। गुरु अर्जन देव जी माता गंगा जी से फ़रमाते हैं, "अगर औलाद चाहती हों आप तो मेरे सिक्खों के पास जाएं।" भाई बुड्ढा पुरातन सेवक हैं, उनकी सेवा कीजिए। वह जो वर देगा सो होगा। और फिर जब माता गंगा जी से अरदास लेकर भाई बुड्ढा जी के पास हाज़िर होती हैं तो वे आशीष देते हैं, "तुमरे गरहि परगटेगा जोधा। जाके बल गुन किनहूँ न सोधा।"

छठा दृश्य। गुरु अर्जन देव जी जब ग्रंथ साहिब का सम्पादन कर चुकते हैं तो बड़े आदर से पोथी को बाबा बुड्ढा जी के सिर पर रखते हैं। ख़ुद पीछे खड़े होकर चवर डुलाते हैं। दरबार साहिब पहुँचकर भाई बुड्ढा जी ग्रंथ साहिब को सिंहासन पर टिकाते हैं। अब गुरु अर्जन देव उन्हें वाक्य लेने के लिए कहते हैं। भाई बुड्ढा जी वाक्य लेते हैं :

सोरठि महला ५
विच करता पुरखु खलवा।
वाल न विंगा हुवा।

इतने में जपजी साहब का पाठ सम्पन्न हो गया था, गुरु महाराज ने आख़िरी तुक का पाठ किया :

"जिनि नामु ध्याया गए मसकति घालि ॥
नानक ते मुख उजले केती छुट्टी नालि ॥"
'केती छुट्टी नाल'
और भाई बुड्ढा जी की ज्योति ज्योति में समा गई।

भाई बुड्ढा जी की औलाद थी, पर उनका संस्कार गुरु हरिगोविंद जी ने ख़ुद किया। कहते हैं जब उनके मृतक शरीर को चिता पर रखा गया तो गुरु हरिगोविंद जी की पलकों में से आदर और प्यार के दो आँसू छलक आए।

(43)

गुरु महाराज अमृतसर आए हुए थे। उनके नौ साल के बेटे बाबा अटल के बारे में अजीब तरह की ख़बरें सुनने में आ रही थीं। उन्हें सुनकर गुरु महाराज अनसुना कर देते। लेकिन बातें ही कुछ ऐसी थीं, जिनके बारे में लोगों में कई-कई दिन चर्चा होती रहती :

"हाय री मैंने ख़ुद देखा वह आम चूस रहा था।"

"आजकल जाड़े में ?"

"मैंने पूछा पुत्र यह आम तूने कहाँ से लिया ?"

"फिर ?"

"कहने लगा, बाबा अटल ने दिया है। पीपल पर चढ़कर नीचे अपने संगी-साथियों के लिए आम फेंकने लगे। हम सब ने खाने शुरू कर दिए।"

"बाबा अटल और हमारा बेटा जयमल गुल्ली डण्डा खेल रहे थे।"

"कहाँ ?"

"बाहर हमारी गली में।"

"और फिर ?"

"बाबा अटल ने इतनी ज़ोर से गिल्ली उछाली कि वह हमारे बेटे जयमल की गाल पर जा लगी। तड़-तड़ ख़ून बहने लगा। बच्चा चीख़ा और भीतर आँगन में रोटियाँ उतारती हुई मेरी बीवी भागी हुई बाहर गई। इतने में बाबा अटल ने जयमल की गाल पर हाथ फेरा। न कोई ज़ख्म था न कोई लहू। उसकी माँ देखकर हक्की-बक्की रह गई।"

"लहू कहाँ गया ?"

"धरती लथ-पथ हुई पड़ी थी। गाल पर न ज़ख़्म था न ज़ख़्म का निशान।"

"मैंने अपनी आँखों से देखा, बाबा अटल की आँखों पर पट्टी बँधी थी और वे किताब में से फर-फर पढ़ रहे थे।"

"पहले से सबक़ याद किया होगा तूने तख़्ती पर इबारत लिखकर पढ़वाई थी।"

"वो भी मैंने किया था। मैंने सिलेट पर गुणा का एक सवाल लिखा, उन्होंने सिलेट लेकर चार अंकों की गुणा की और फ़ौरन हल निकाल कर रख दिया।"

मैंने कहा, "बाबा बारिश पड़नी कब रुकेगी, एक हफ़्ते से झड़ी लगी हुई है।"

"क्यों ताई तू ऊब गई है ?" वे पूछने लगे।

कोई ऊबे नहीं तो क्या ? हर चीज़ निचुड़ रही है, मैंने शिकायत की।

"तो तो फिर रोक देते हैं, बारिश का क्या है, फिर कभी बरस लेगी।" अटल बाबा ने हँसते-खेलते कहा और मेरी आँखों को विश्वास न हुआ उसके बाद आसमान से एक बूँद भी न गिरी जैसे किसी ने बादलों को बाँधकर रक्ख

दिया।

"हमारे बेटे का बुख़ार नहीं उतर रहा था। सात दिनों से चारपाई पर पड़ा था। बाबा अटल हमारे यहाँ आ निकले।"

"चाची चंदन कहाँ है।" वे पूछने लगे।

"बाबा तेरा दोस्त तो बीमार पड़ा है। आज हफ़्ता होने लगा है।"

"ऐसे मस्ती करता है, इसे कोई ताप-वाप नहीं।"

"गुरु की सौगंध, मैंने बच्चे को हाथ लगाया, वह ठण्डा सर्द था। जैसे ताप उसके नज़दीक से न होकर निकला।"

"पिता जी कहाँ हैं ?" बाबा अटल ने माता नानकी जी से पूछा।

"शिकार पर गए हैं।" माता जी ने बताया।

"शिकार तो आजकल है नहीं क्यों अपनी टाँगें थकाते हैं।"

सचमुच जब शाम को गुरु महाराज लौटे उनके हाथ ख़ाली थे एक घुघ्घी तक उनके हाथ नहीं लगी थी। माताजी ने गुरु महाराज को बाबा अटल से हुए अपने वार्तालाप के बारे में बताया। गुरु महाराज सोच में पड़ गए। तो फिर जो कहानियाँ लोग उन्हें बाबा अटल के बारे में सुनाया करते हैं, वे ठीक हैं। उन्होंने बाबा अटल को बुला भेजा और समझाया-यूँ क्यों अपनी पूँजी को लुटाए जाते हो ?

"गुरु घर का ख़ज़ाना अथाह है।" कहकर वे हँसने लगे।

गुरु महाराज को उनके भोलेपन पर बड़ा लाड़ आया।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे। बाबा अटल गुरमुख नाम के एक गुर सिक्ख के एकलौते बेटे मोहन के साथ खेल रहे थे। कोई आठ साल की उम्र, मोहन हमेशा बाबा अटल का साथी बनता था। उस दिन वे ज़मीन में छेद करके कंचे खेल रहे थे। जो हारता उसे पूरे मैदान का चक्कर लगाना पड़ता था। रब की मर्ज़ी बाबा अटल एक के बाद एक कर तीन बार हार गए। मोहन को पालिया दे-देकर उनका बुरा हाल हो रहा था।

अगली खेल बाबा अटल जीते ही थे कि शाम पड़ गई और मोहन की माँ उसे बुलाने आ गई। देर तो सचमुच हो गई थी और मोहन की माँ भी उसे लेने आ गई थी। मोहन अगले दिन पारी देने का वादा करके चला गया।

अगले दिन बाबा अटल खेल के मैदान में मोहन की राह देखते रहे लेकिन वह नहीं आया। ना ही उसने कोई सन्देशा भेजा था। आख़िर राह देखते-देखते जब बाबा अटल थकने लगे तो वे मोहन के घर उसकी पूछताछ

करने के लिए गए। क्या देखते हैं, वहाँ तो आँगन में रोना-धोना मचा है। माँ-बाप का इकलौता बेटा मोहन मर गया था। रात नींद में वह पेशाब करने के लिए उठा तो किसी ज़हरीले साँप ने उसे काट लिया था। इससे पहले कि कोई मदारी आता, कोई दवा-दारू होती ज़हर बच्चे के शरीर में फैल गय। और उसकी जान जाती रही।

बच्चे को मरे साढ़े चार घण्टे हो गए थे। बाबा अटल जी ने सुना तो कहने लगे, "यह कैसे हो सकता है, उसने मुझे बारी देनी है। वह नहीं मरा। आगे बढ़कर उन्होंने मोहन को ठोकर मारते हुए पुकारा। मोहन मेरे साथ यह चाल मत चलना। उठकर मुझे बारी दे जैसे तूने कल वायदा किया था।

बाबा अटल जी का यह कहना था कि मोहन आँखें मलता हुआ उठ खड़ा हुआ, जैसे कोई पक्की नींद से उठा हो। घर में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। चारों तरफ़ वाह-वाह होने लगी। सब लोग बाबा अटल जी की जय-जयकार कर रहे थे।

यह ख़बर भी गुरु महाराज के पास पहुँची। सुनकर उन्हें बेहद चिंता हुई। उन्होंने बाबा अटल को बुलवा भेजा।

गुरु महाराज सोचते ऐसे मुर्दे को जीवित कर देना क़ुदरत के नियम में दख़ल देना है। यह ठीक नहीं। ऐसे तो हम मुर्दों को जीवित करने लगे तो किसको जीवित करेंगे किसको नहीं। मरना-जीना क़ुदरत का नियम है। आदम-हव्वा से चलता आ रहा है। मौत एक ऐसी चीज़ है जिसका फ़ैसला ईश्वर ने अपने हाथ में रक्खा है। यह भेद किसी को नहीं मालूम। जो बाबा अटल ने किया है भारी ग़ल्ती है। यह तो जैसे रब से होड़ लेने लगा हो। और जब बाबा अटल उनके सामने आए गुरु महाराज के चेहरे से ही उन्होंने अनुमान लगा लिया कि वे कितने नाराज़ हैं। बिना उन्हें अपनी नाराज़गी प्रगट करने का मौक़ा दिए, बाबा अटल जी ने कहा, "मैंने एक को ज़िंदा किया है, एक को मारकर क़ुदरत का हिसाब बराबर कर देता हूँ।" और वे गुरु पिता जी के चरणों में माथा टेक कर जिधर से आए थे, बाहर निकल गए।

किसी ने उनकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। बाबा अटल जी, गुरु महल से निकलकर सीधे श्री हरिमंदर साहब गए। उन्होंने चार बार हरिमंदर की परिक्रमा की। फिर कौलसर के किनारे जाकर पाँच स्नान करके जप जी साहब का पाठ करना शुरू कर दिया। एक टक हरिमंदर साहब की ओर देखते जा रहे थे और पाठ करते जा रहे थे।

जिनी नामु ध्याया
गये मस्कति घालि
नानक ते मुख उजले
केती छुटी नालि।

यह शब्द उनके ओठों से निकले और साथ ही उनके श्वास शरीर को छोड़ गये।

(44)

भाई गुरदास गुरु घर से ख़ून के रिश्ते से भी जुड़े हुए थे, पर इससे भी ज़्यादा वे निष्ठावान गुरसिख थे। गुरु ग्रंथ साहिब के संपादन में उनकी देन अद्वितीय थी। गुरु अर्जन देव जी ने उनकी बाणी को ग्रंथ में शामिल करने की फ़रमाइश भी कि परद उनकी विनम्रता, उन्होंने इस आदर से वंचित रहना ही मुनासिब समझा। इस प्राप्ति के लिए उस समय के बड़े-बड़े कवि और औलिया तरसते थे। फिर भी गुरु पंथ में भाई गुर दास जी की बाणी का वही दर्जा माना जाने लगा, जो गुर बाणी को प्राप्त है।

भाई गुरदास जी ने बहुत सी बाणी रची। उनकी वारों की विशेष रूप से चर्चा होती है। अनेक विषयों के अतिरिक्त उन्होंने बाबा गुरु नानक देव जी के जन्म से लेकर अपने समय तक सिक्ख पंथ के इतिहास को अंकित किया है।

उन्होंने भारत की आध्यात्मिक परंपरा को भी अपनी क़लम से रेखांकित किया है और अपने समय के सामाजिक ढाँचे पर भी करारी चोटें की हैं।

गुरु घर में उनकी श्रद्धा बेजोड़ थी। पर एक कवि होने के नाते उन्होंने अपने विचारों को इस तरह खुले ढंग से पेश किया है कि कुछ ग़लतफ़हमियाँ भी पैदा होती रही हैं। उनकी 26वीं वार के इस टुकड़े पर कितनी देर तक चर्चाएं होती रहीं।

धरम साल कर बहिदा, इक्कत थाँ न टिके टिकाया
पातशाह घर आवदे, गढ़ चडिया, पातशाह चड़ाया।

यह मामला मुश्किल से ठण्डा पड़ा कि उन्होंने अपनी 35वीं पौड़ी में एक और शायराना आज़ादी से काम लिया। यही नहीं एक बार जब गुरु महाराज के दरबार में बैठे निकटवर्ती सिक्खी की मुश्किलों का ज़िक्र कर रहे थे, भाई गुरदास जी ने अपनी यह पौड़ी पढ़कर सुनाई :

झे मा होवै यारनि क्यों पुत पतारे।

गाई माणक निगलिया पेट पाड़ न मारे।
जे पिर बहु घर हण्डना सतरक्खै नारे,
अमर चलावै चम दे चाकर बेचारे।
जे मद पिता बामणी लोइ लुज्जण सारे
जे गुर सारां वरत दा सिक्ख सिदक़ न हारे।

गुरु महाराज ने सुना तो मन ही मन फ़ैसला किया कि वे भाई गुर दास का इम्तिहान लेंगे। उन्हें ज़िंदगी की कड़वी वास्तविकताओं से वाक़िफ़ परिचित कराएंगे। क़लम उठाकर कविता लिखनी और बात है, जीवन की कड़वी सच्चाईयों से जूझना बिल्कुल दूसरी बात है। थोड़े ही दिन गुज़रे थे, गुरु महाराज को ख़बर मिली कि काबुल में दो घोड़ों की बहुत चर्चा थी। हर घोड़े की क़ीमत पचास-पचास हज़ार रूपए बताई जाती थी। घोड़ों के डिलडौल, रंग-रूप, चाल-ढाल की महिमा सुनकर गुरु महाराज ने उन्हें अपने लिए ख़रीदने का फ़ैसला किया और भाई गुरदास जी को रक़म देकर कुछ सिक्खों के साथ काबुल भेजा ताकि क़ीमत चुकाकर वे घोड़े ख़रीद लाएं।

भाई गुरदास जी खुरजी रूपयों से भरके काबुल जा पहुँचे। वे घोड़े तो तारीफ़ से भी ज़्यादा सुंदर थे। भाई गुरदास जी ने सौदा तय कर लिया। घोड़ों के मालिक को अपने तम्बू के बाहर बिठाकर अंदर गए ताकि खुरजी में से रक़म निकालकर अफ़ग़ान व्यापारी के हवाले करें।

भाई गुरदास जी ने तम्बू के भीतर जाकर खुरजी खोली तो देखा कि खुरजी में चाँदी के रूपयों की जगह पत्थर के टुकड़े थे। उनके प्राण सूख गए। यह कैसे हो गया ? अमृतसर से चलने के वक़्त उन्होंने खुद खुरजी में रूपए भरे थे और खुरजी जिस घोड़े पर लादी गई थी भाई गुरदास खुद उसी से गए थे। वह लुट-पुट गए थे। बरबाद हो गए थे। गुरु महाराज को क्या मुँह देखाएंगे ? और सबसे बड़ी बात, बाहर बैठे व्यापारी से क्या कहेंगे। घोड़े तो उन्होंने अमृतसर के लिए रवाना भी कर दिए थे और कोई चारा न देखकर भाई गुरदास जी अपने तम्बू के पिछवाड़े से निकलकर काबुल से भाग आए।

तम्बू के बाहर बैठा अफ़ग़ान व्यापारी इंतज़ार कर-कर थक गया। फिर उसने भाई गुरदास के साथियों की मदद से भीतर जाकर देखा भाई गुरदास जी कहीं भी नहीं थे। खुरजी ज्यों के त्यों खुली पड़ी थी रूपयों से भरी हुई। भाई गुरदास जी के साथियों ने रूपए गिनकर अफ़ग़ान व्यापारी के हवाले किए।

कुछ दिन और राह देखकर गुरसिक्ख वापस अमृतसर आ गए। गुरु महाराज को उन्होंने बाक़ी रक़म भी पेश की और भाई गुरदास जी के अचानक ग़ायब हो जाने की घटना भी बताई। गुरु महाराज सुनकर ख़ामोश रहे।

उधर भाई गुरदास काबुल से निकलकर किसी न किसी तरह वाराणासी पहुँचे और वहीं रहने लगे। सारे रास्ते छिपते रहे कि किसी को पता न चले। वाराणासी विद्वानों और अध्यात्मवादियों का शहर था। भाई गुरदास जी की बुद्धिजीवियों से दोस्ती हो गई। गुणियों, ज्ञानियों के यहाँ उनका आना-जाना मिलना-जुलना होने लगा। गोष्ठियाँ होतीं। जिनमें उनकी विद्वता की धाक जम गई। अकसर वार्तालाप में वे गुर-सिक्खी का दृष्टिकोण पेश करते, सुनने वालों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता। यह देखकर उनमें सिक्खी भाव, सिक्खी रहन-सहन, सिक्ख परंपरा और भी प्रबल होती जाती। भाई गुरदास को अपना दृष्टिकोण पेश करने में बड़ा आनंद आता। अकसर उनका टकराव वाराणासी के संस्कृत के विद्वान पंडितों के साथ होता जो आम लोगों की बोलियों को कोई अहमियत नहीं देते थे। भाई गुरदाज जो बेशक खुद संस्कृत के पंडित थे, लेकिन जनता की प्रचलित बोलियों के इस्तेमाल पर ज़ोर देते थे। वे कविता भी लोगों की बोली में करते थे। वे कहते थे कि अगर किसी को आम जनता तक पहुँचना है तो यह बहुत ज़रूरी है कि उन्हीं की बोली में उपदेश दिया जाए जैसे सिक्ख गुरु महाराज कर रहे थे। विद्वानों की बोली होने के कारण संस्कृत उन्हीं तक सीमित होकर रह जाती। धीरे-धीरे भाई गुरदास जी की ख्याति वाराणासी के राजा तक भी पहुँच गई। अनेक गोष्ठियाँ दरबार में हुयीं और राजा भाई गुरदास जी का बड़ा प्रशंसक हो गया। गुर सिक्खी के आशयों को जिस तरह भाई गुरदास जी पेश करते थे, सुन सुनकर राजा के मन में गुरु महाराज के दर्शनों की उमंग पैदा हुई। वह बार-बार भाई गुरदास जी से आग्रह करतता कि वे गुरु महाराज से उसका सम्पर्क करा दें। भाई गुरदास जी की मजबूरी यह थी कि वह खुद गुरु महाराज से छिपकर वहाँ आ बैठे थे। राजा की मदद करते तो कैसे ?

एक तरफ़ तो छिपे हुए थे उधर इतने दिन गुरु महाराज से बिछुड़े, गुर सिक्खों से अलग हुए भाई गुरदास जी को सबकी याद सताने लगी। उनका मन बहुत उदास रहता। दिन-रात उन्हें सति-गुरु की जुदाई परेशान करने लगी। अनेक कवित्तव आदि में उन्होंने अपने मन की दशा को अभिव्यक्त

करने की कोशिश की। लेकिन गुरु महाराज तक इन रचनाओं को पहुँचाने का कोई ढंग उन्हें नज़र नहीं आता था। जानीजान इतने दिनों से भाई गुरदास के क्लेष को महसूस कर रहे थे। आख़िर उनके मन में दया आई तो उन्होंने भाई जेठा और कुछ सिक्खों को वाराणासी भेजा ताकि भाई गुरदास को अमृतसर वापिस ले आएं।

पर यह करने का ढंग भी गुरु महाराज का निराला था। उन्होंने वाराणासी के राजा को ख़त में लिखा कि भाई गुरदास उनका अहलकार है, गुरु घर से एक लाख से ज़्यादा रूपया लेकर घोड़े ख़रीदने काबुल गया था और लौटकर अमृतसर नहीं आया। काबुल से ही फ़रार हो गया। इसलिए उसे क़ैद करके अमृतसर भेजा जाए ताकि उसे दण्ड दिया जा सके। वाराणासी का राजा जो भाई गुरदास जी का प्रशंसक था, यह जानकर अत्यंत परेशान हुआ। लेकिन इसके अलावा कोई चारा भी नहीं था कि जो कहा जाए वही किया जाए। वह तो गुरु महाराज का सन्देश पाकर कृतज्ञता महसूस कर रहा था कि उन्होंने उसे याद किया था।

कहते हैं, भाई जेठा और अमृतसर से गए और दूसरे गुरु सिक्खों ने भाई गुरदास के हाथ पीठ पीछे बाँधकर उन्हें गुरु महाराज के सामने पेश किया।

गुरु महाराज ने भाई गुरु दास जी को देखा तो उनका बंधन खोलने के लिए कहा फिर बड़े आदर से उन्हें गले लगाया फिर चौकी पर बैठने के लिए कहा।

भाई गुरदास कुछ शर्मिंदा, कुछ हैरान, यह सब कुछ देखकर गुरु महाराज के मुख की तरफ़ बिट-बिट देख रहे थे कि इतने में गुरु महाराज ने उनकी अपनी 35वीं वार में से 23वीं पोड़ी की यह तुक सुनाई :

राजा फिरै फ़कीर होइ सुण्ण दुख मिटाय।
सांगै अंदर साबता जिस गुरु सहाय।

(45)

गुरु हरिगोविंद दो लड़ाइयाँ मुग़ल लश्कर से लड़ चुके थे। दोनों में उनकी जीत हुई थी। पर किस क़ीमत पर ? सैकड़ों सिक्ख सूरमे शहीद हो गए थे। मुख़लिस ख़ान के साथ हुई जंग में गुरु की नगरी अमृतसर भी ज़ख्मी हुई थी। गुरु के महलों पर मुग़ल फ़ौजों का क़ब्ज़ा रहा था। हरिमंदर की परिक्रमा में मलेच्छों के घोड़े हिन-हिनाते रहे थे।

गुरु महाराज हरिमंदर की पवित्रता को बनाए रखना चाहते थे। भरसक

वे अपनी सेना का नुक़सान नहीं होने देना चाहते थे। मुग़ल फ़ौज से झड़पें तब तक नहीं रूक सकती थीं, जब तक मुग़ल न्याय और खादारी का रास्ता नहीं अपनाते थे। इस समस्या पर ध्यान देकर वे दो नतीजों पर पहुँचे। पहला यह कि अपने परिवार को कोई सुरक्षित स्थान ढूँढकर वहाँ भेज दिया जाए। हो सकता है इसके लिए उन्हें कोई नया शहर बसाना पड़े। दूसरा यह कि अगली लड़ाई उन्हें वहाँ से लड़नी चाहिए जहाँ मुग़ल फ़ौज की पहुँच इतनी आसान न हो।

इतने में गुरु महाराज को याद आया कि ग्वालियर के क़िले में कहिलूर का राजा उनके साथ क़ैद था। जब गुरु महाराज के साथ उसकी रिहाई हुई तो उसने इनसे वचन लिया था कि गुरु महाराज उसकी रियासत में अपना एक स्थान स्थापित करेंगे। यह ख़्याल आते ही उन्होंने अपने साहबज़ादे बाबा गुरदत्ता को कहिलूर रवाना किया।

कहिलूर के पहाड़ की चोटी पर भी बाबा गुरदत्ता जी की प्रतीक्षा हो रही थी। इस इंतज़ाम की उन्हें कहिलूर पहुँचकर जानकारी हुई। कहिलूर के काले पहाड़ पर बुड्ढन शाह नाम के एक पीर का तकिया था। बड़ी करनी वाला फ़क़ीर था। कहते हैं उसने दो बकरियाँ पाल रखी थीं जिन्हें एक सधाया हुआ पालतू चीता जंगल में चराने ले जाया करता था।

एक दिन घूमते हुए बाबा नानक और मर्दाना बुड्ढन शाह के यहाँ आ निकले। बुड्ढन शाह को जब गुरु नानक की अज़मत का पता लगा तो वह बहुत खुश हुआ। उसने मेहमानों की यथा शक्ति सेवा की। इतने में जंगल से उसके चीतों और बकरियों के लौटने का समय हो गया। बुड्ढन शाह ने मेहमानों को चीते से सावधान रहने के लिए कहा। खूँख़ार जानवर था, क्या पता कोई ख़राबी कर बैठे।

गुरु महाराज को इस तरह की कोई आशंका नहीं थी। वही बात हुई। जब चीता बकरियाँ लेकर बुड्ढन शाह के आसताने पर लौटा, बाबा नानक के मस्तक का तेज देखकर पहले वह उनकी क़दम बोसी करने आया, फिर बुड्ढन शाह की थपथपी लेने गया। आम-तौर पर जंगल से लौटकर चीता सीधा बुड्ढन शाह के चरण छूने के लिए जाया करता था।

चीते की यह हरकत देख कर बुड्ढन शाह को बाबा नानक की महानता का और अंदाज़ा हुआ और वह रात को देर तक बाबा जी के साथ मार्फ़त की बातें करता रहा।

बुड्ढन शाह बाबा नानक से पूछ रहा था-"आदमी अपने 'अहम' और अहंकार से कैसे छुटकारा पा सकता है?" गुरु नानक देव जी ने फरमाया, "जब आदमी को ताज़ा भोजन खाने को मिले, वह बासी भोजन नहीं खाता। जब इलाही सुख प्राप्त होता है, दुनियावी सुख छूट जाते हैं। सांसारिक लालसा छोड़ने पर, ईश्वरीय आनन्द प्राप्त होता है। जब सच का स्वाद आना शुरू होता है, झूठ का साथ अच्छा नहीं लगता। उधर जोड़ने के लिए इधर तोड़ने की ज़रूरत होती है। जब ईश्वर से लौ जुड़ जाती है, सांसारिक स्वाद फीके फीके लगते हैं। ज़रूरत है, ईश्वर के साथ इंसान के बीच भेद का मिटना।"

"पर यह अभेदता अल्लाह के साथ कैसे मयस्सर होती है?" बुड्ढन शाह की समस्या थी।

गुरु महाराज ने कहा, इसके लिए गुरु की मेहर होनी चाहिए। ईश्वर की कृपा दृष्टि तो दरवाज़े खुल जाते हैं, नहीं तो किवाड़ बंद पड़े रह जाते हैं। अल्लाह का फज़ल होना ज़रूरी है और यह गुरु के द्वारा प्राप्त होती है।

यह सुनकर पीर बुड्ढन शाह गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ा। गुरु महाराज ने उसकी पीठ थपथपाई।

बुड्ढन शाह ने उठकर बकरियों का दूध दुहा और कटोरा भरकर बाबा नानक के सामने ला रखा। गुरु नानक जी ने आधा कटोरा पिया और बाकी आधा यह कह कर छोड़ दिया, "जब मैं छठे जामे में होऊँगा, मेरा एक सिख आपके यहाँ आकर बाकी का दूध पीयेगा।"

पीर बुड्ढन शाह परेशान था, इतने बरस तक दूध कैसे रह सकता था। पर उसकी हैरानी की हद न रही, जब कटोरे का दूध न खट्टा न ख़राब हुआ।

पीर बुड्ढन शाह बहुत बूढ़ा हो गया था। सौ बरस से भी ऊपर उमर। हर रोज़ उसे बाबा नानक के गुर सिख का इन्तज़ार रहता। वह सुनता रहता था कि गुरु नानक के बाद उनकी गद्दी पर गुरु अंगद जी बैठे, फिर गुरु अमरदास, उनके बाद गुरु रामदास, फिर गुरु अर्जन और अब गुरु हरिगोविन्द जी उसे सुशोभित कर रहे हैं।

दिन रात बुड्ढन शाह हाथ जोड़ता, अर्ज़ोइयाँ (प्रार्थनाएँ) करता, उसका वक्त नज़दीक आ रहा था। उसी दिन गुरदित्ता जी उसके तकिये पर आ निकले। पीर बुड्ढन शाह ने इतने बरस सम्हाल कर रखा हुआ दूध का कटोरा उन्हें पेश किया और आँखें मूंद लीं।

पीर बुड्ढन शाह का आस्ताना बाबा गुरदित्ता जी के बसाये शहर कीरतपुर का केन्द्र बिन्दु बन गया।

बाबा गुरदित्ता को कीरतपुर भेज कर गुरु महाराज का दूसरा अहम फ़ैसला था कि ऐसा ठिकाना तलाश किया जाये, जहाँ मुग़ल फ़ौजें न पहुँच सकें। इसका अहसास उनके मन में हर रोज़ पक्का होता जा रहा था कि मुग़ल हकूमत के साथ उनकी झड़प अवश्य होगी। गुरु महाराज ने फ़ैसला किया कि वे मालवे के बियाबान को अपना ठिकाना बनायेंगे। उनका पीछा करती हुई मुग़ल सेना अगर वहाँ आयेगी तो पानी न मिलने के कारण प्यास से तड़प तड़प कर मर जायेगी। इस तरह का स्थान नथाना था जहाँ मीलों तक सिवाय एक तालाब के कहीं पानी की बूंद तक नहीं थी। गुरु महाराज ने वहाँ लहरा और मेहराज नाम के दो गाँव बसाने का फ़ैसला किया और अपनी फौज को इस तरह तैनात किया कि हमले के दौरान नथाना के तालाब तक दुश्मन की पहुँच न हो सके। राय जोध नाम का उनका एक प्रशंसक इस सारी योजना में उनकी सहायता कर रहा था। जहाँ तक फौजी योजना का सवाल था, सब कुछ ठीक मालूम हो रहा था, पर इसका अर्थ था, गुरु की नगरी अमृतसर को सदा के लिए छोड़ना। यह हृदय विदारक निर्णय गुरु महाराज को करना था।

और उन्हें इस बात का अहसास था कि एक बार अमृतसर छोड़ कर जाने के बाद वे फिर उस स्थान पर क़दम नहीं रख सकेंगे। उनका अमृतसर आने का मतलब था, मुग़लों को हमला करने का मौक़ा देना और वे हरिमन्दर की पवित्रता, हरिमन्दर की मर्यादा को बनाये रखना चाहते थे।

अमृतसर से विदा होना पड़ेगा।

यह सोच कर गुरु महाराज का दिल मसोस जाता। बहुत दिनों तक वे इस फ़ैसले को टालते रहे, पर असलियत अत्यन्त कठोर थी, कड़वी थी। अमृतसर उन्हें छोड़ना होगा।

अमृतसर उन्हें छोड़ना होगा। वह शहर जो उनके पूजनीय दादा गुरु रामदास ने बसाया था। वह हरिमन्दर जो सिख सम्प्रदाय का काबा बन गया था, जिसमें गुरु अर्जन देव जी ने ग्रंथ साहब का प्रकाश किया था। वह सरोवर जिसमें स्नान करके सारे पाप उतर जाते थे। वह अकाल तख़्त जिस पर बैठ कर वे ख़ुद दीन दुनिया के फ़ैसले देते थे। वे महल जिनमें खेल कर वे बड़े हुए थे। लोहगढ़ का किला, जिसके चप्पे चप्पे से सिख सूरमाओं की

यादें पिरोई हुई हैं। वह कौलसर जो एक महान सुपुत्री की स्मृति का चिन्ह था। वह परिक्रमा जिसमें दिन रात गुर सिख ईश्वर का नाम जपते थे और मन की कामनाएँ पाते थे।

अब उस अमृतसर में दोबारा कदम रखना उन्हें नसीब नहीं होगा।

गुरु महाराज हरिमन्दर में ग्रंथ साहब के हज़ूर में अरदास कर चुके थे। हरिमन्दर की चार बार परिक्रमा भी हो चुकी थी।

एक गुर सिख ने पूछा, "सतिगुरु हरिमन्दर की देखभाल कौन करेगा?"

"मेरे सिक्ख!" गुरु जी ने जवाब दिया।

गुरु महाराज के श्वसुर हरीचन्द ने कहा, "आप चले गये तो यह शहर उजाड़ हो जायेगा।"

"कदापि नहीं !" गुरु महाराज ने फ़रमाया।

इस शहर की भलाई के लिए मैं शहर को छोड़ रहा हूँ। इसकी आबादी बढ़ेगी। शहर और और फैलेगा, फूलेगा। गुरसिख दूर दूर से यहाँ दर्शनों के लिए आया करेंगे। इस शहर की बुनियादें पक्की रखी गई हैं। यहाँ से नाम-कीर्तन का सुखद अनुभव प्राप्त करने के लिए संगतें सदा सदा उमड़ कर यहाँ आती रहें.।

और फिर गुरु महाराज अपने साथ एक हज़ार सैनिक लिए अमृतसर से दूर जाने के लिए चल पड़े। आगें बाजा फिर निशान साहब, उसके पीछे ग्रंथ साहब की सवारी, उसके पीछे चँवर डुलाते हुए गुरसिख थे। गलियों में खड़े हर सिख का गला रूँध गया था। सड़क पर इन्तज़ार कर रहे हर श्रद्धालु की आँखों में आँसू थे। लोग हाथ जोड़ कर सीस नवा रहे थे। फूलों की वर्षा हो रही थी। इस बीच कहीं कहीं दुख और क्लेश से भयभीत किसी शोकाकुल गुरसिख की चीख़ निकल जाती थी।

घरों के दरवाज़े बन्द, बाज़ार बन्द, लोग उन राहों पर टूटकर जमा हो गये थे जहाँ से गुरु महाराज ने गुज़रना था। अपने महबूब का वे अंतिम बार दर्शन कर रहे थे। यह देखकर गुरु महाराज ने अपने साथियों के साथ इस शब्द का उच्चारण कर दिया :

गुर सति गुर का जो सिक्ख अखाए
सु भलके उठि हरि नामु ध्यावै।
उद्दमु करे भलके पर भाती
स्नान करे अमृतसरि नावै।

उपदेसि गुरु हरि-हरि हरि जपु जापे
सभ किल विख पाप दोख लहि जावै
फिरि चडे दिवसु गुर बाणी गावै
बहदंया उठदंया हरि नामु ध्यावै
जो सासि गिरासि ध्याये
मेरा हरि-हरि सो गुरु सिक्खु गुरु मनि भावै।
जिस नो दयालु होवै मेरा सुआमी
तिसु गुर सिक्ख गुरु उपदेसु सुणावै
जन-नानकु धूड़ि मंगे तिसु गुरि सिक्ख की
जो आपि जपै अवरा नामु जपावै।

(गउड़ी वार-म. ४)

(46)

उन दिनों गुरु महाराज माझे के गाँव भाईरुपा में आ टिके थे। सुमन पहले की तरह उनके साथ था। जब से फ़ौज में भर्ती हुआ था, मजाल है कि उसने कभी छुट्टी ली हो। करतारपुर से गुरु महाराज अमृतसर आए, उनके साथ चल पड़ा। जितने दिन अमृतसर में रहा, वीरां वाली अपने बेटे के साथ मायके में जाकर रही। आजकल फिर अपने घर गोइंदवाल में आ गई थी।

सुमन तो जैसे गुरु महाराज का दीवाना था। उनके घोड़ों की देखभाल उसके ज़िम्मे थी। उनकी ख़ातिर जो इतनी करता था। उसके नीचे साइस और दूसरे कसेरे.........काम करते थे जिन पर गुरु महाराज के अस्तबल के रख-रखाव की ज़िम्मेदारी थी। सुमन का काम ही ऐसा था कि उसे छुट्टी लेने का मन ही नहीं करता था। उसके घर बेटा हुआ उसने छुट्टी नहीं ली। उसकी दादी नसरीन अल्लाह को प्यारी हुई उसने छुट्टी नहीं ली। उसकी पत्नी की दादी तेजी का देहांत उन्हीं दिनों में हुआ जब सुमन गुरु महाराज के साथ अमृतसर आया हुआ था इसलिए वह दाह-संस्कार में शामिल हो गया नहीं तो शायद वहाँ भी न जाता।

सुमन का बेटा धरम अब दौड़ता फिरता था। बाप परदेस से बस आने वालों लोगों के हाथ ख़त भेजता रहता था। आज भी उसका ख़त आया था। इतना मोटा लिफ़ाफ़ा। वीरां वाली ने लिफ़ाफ़े पर पता देखा तो सुमन की लिखावट देखकर दूर रख दिया। फुर्सत होगी तो पढ़ेगी। पिछल बार

अमृतसर आया था तो उसे एक और बच्ची की आस लगा गया था। इन दिनों वीरां वाली का पेट फूलकर कुप्पा हो गया था। आठों पहर मन मचलाता रहता था। खाना-पीना कुछ नहीं भाता था।

आख़िर घर के झंझटों से छुट्टी पाकर उसने लिफ़ाफ़ा खोला और ख़त पढ़ने लगी। वही कहानियाँ गुरु महाराज के घोड़ों की। यह आदमी था या कोई अस्तबलचा वीरां वाली ने नाक चढ़ाकर कहा।

वीरां वाली सुमन का ख़त पढ़ रही थी : शायद मैंने तुम्हें बताया था कि हमारी सेना में बिधीचंद नाम का एक सूरमा है। गुरु महाराज का शैदाई। बिधीचंद पहले डाकू था। अदाली नाम के एक दरवेज़ थे, उसका मिलाप हो गया। उसने बिधीचंद को महाराज की शरण में लगाया। मुग़लों के साथ हुई पिछली दो झड़पों में बिधीचंद के कारनामें यहाँ हर किसी की ज़बान हैं। तलवार पकड़ कर जिधर निकल जाता है गाजर मूलियों की तरह दुश्मनों के सिर क़लम करता जाता है।

इधर उसने एक नया कारनामा किया है जिसकी चर्चा चारों तरफ़ हो रही है। उसकी सूझ, दिलेरी, गुरु घर के लिए उसकी श्रद्धा बेजोड़ है।

कुछ दिन हुए काबुल से बख़्तमल और तारा चंद दोनों गुर सिख गुरु महाराज से मिलने आए। वे गुरु महाराज के लिए 'दिलबाग़' और 'गुलबाग़', नाम के दो घोड़े लाए थे। कहते हैं यह घोड़े लासानी हैं। नदी पर करते व ़ा, सवारी का कोई अंग गिला नहीं होने देते। दौड़ते हैं तो लगता है जैसे उड़ रहे हों। उनके पैर धरती पर कभी नहीं दिखायी देते। इस तरह का माल छुपाए नहीं छिपता। जिधर से गुज़रते पूरे रास्ते में इनकी कहानियाँ चल पड़तीं। तभी जब घोड़े लेकर गुर सिक्ख लाहौर पहुँचे मुग़ल अहलकारों ने उसे ज़ब्त करके शहंशाह के हवाले कर दिया। बेचारे बख़्तमल और ताराचंद ताकते रह गए। शाहजहाँ इन दिनों लाहौर आया हुआ था।

इस तरह की अंधेरगर्दी किसी ने सुनी थी? न दाद न फ़रयाद। कहते थे इतने सुन्दर घोड़े सिर्फ़ शहंशाह के अस्तबल में ही शोभा देते हैं।

"गुरु महाराज ने सुना तो सोच में पड़ गए। इतने में बिधीचंद को ख़बर मिली। उसने गुरु महाराज से आज्ञा चाही कि किसी न किसी तरह घोड़ों को छुड़ाकर वह उस खूँटे पर ला बाँधेगा जिसके लिए वे काबुल से चले थे।"

"यह कैसे मुमकिन था? सुनने में आया था कि दोनों घोड़े शहंशाह ने अपनी सवारी के लिए रख लिए थे। घोड़े क़िले के भीतर थे जहाँ आठों पहर

पहरा रहता था। शहंशाह शाहजहाँ ने 'दिलबाग़' और 'गुलबाग़' के लिए सोने की काठियाँ बनवाईं थीं जिन्हें मोतियों और हीरों से सजाया गया था। बिधीचंद कहता था, गुरु महाराज की बस आज्ञा होनी चाहिए बाक़ी काम मैं खुद कर लूँगा और हम सब ने कह-कहलवाकर उसे आज्ञा दिलवा दी।"

"लाहौर पहुँचकर बिधीचंद जीवन नाम के एक लोहार के घर गया जीवन उसे पहले से जानता था उसने जीवन को एक खुरपा बनाने के लिए कहा। अगली सुबह खुरपा लेकर बिधीचंद रावी नदी के किनारे गया और ताज़ा हरा नरम घास खोदने लगा। जब घास चोखा हो गया, वह गट्ठर सिर पर उठाकर शहर की घास मण्डी में गया। सब उसका घास देखकर अश-अश करने लगे। पर बिधीचंद अपनी घास के गट्ठर को एक रुपए से कम में बेचने को तैयार नहीं था। घास की गट्ठरी के लिए उसे एक रुपया भला कौन देता आख़िर घूमता-घूमाता वह शाही क़िले के आलमी दरवाज़ा के सामने से गुज़रा। देखा कि शाही अस्तबल का मुखिया सोधां ख़ान क़िले से बाहर आ रहा था। यही तो बिधीचंद चाहता था। सोधां ख़ान ने बिधीचंद के सिर पर घास का गट्ठर देखा तो उसके क़दम वहीं रुक गए। बिधीचंद ने झुककर उसकी बंदगी की। इस तरह का नरम और साफ़ घास उसने कभी नहीं देखा जैसे सरसों के साग की नयी गंदलें बँधी हों। ऐसा घास देखकर तो इंसान का मन खुद उसे चखने को करता है। सोधां ख़ान ने घास का सौदा कर लिया और बिधीचंद से पूछा, "भाई तेरा नाम क्या है, शक्ल से तू बहुत शरीफ़ आदमी मालूम होता है।"

"मुझे कसेरा कहते हैं हुज़ूर", बिधीचंद ने कहा।

"अगर इस तरह का घास तुम ला सको तो बेशक हर रोज़ शहंशाह के ख़ासुलख़ास घोड़ों दिलबाग़ और गुलबाग़ के लिए दे जाया करो", सोधां ख़ान ने कहा।

कुछ दिन बाद सोधां ख़ान ने बिधीचंद को उन्हीं घोड़ों की सेवा-टहल के लिए रख लिया। बिधीचंद तन-मन से घोड़ों की सेवा करता। दोनों घोड़े सिर्फ़ हिल-मिल ही नहीं गए, बल्कि बिधीचंद के दीवाने हो गए। बिधीचंद उनकी मालिश करता, अपने हाथ से उनकी घास, दाना और चारा अपने हाथ से छाँट और बीनकर उन्हें खिलाता। सब देख-देख कर हैरान होते। बिधीचंद कहता, "यह आम घोड़ों जैसे घोड़े थोड़े ही हैं, यह तो सच्चे पादशाह के घोड़े हैं।" लोग समझते कि शहंशाह के चहेते घोड़े होने के कारण कसेरा उनकी

खातिरें करते। न थकता था न हारता था।

आजकल जब बिधीचंद घास खोदने जाता, तो घास के गट्ठर में एक भारी-भरकम पत्थर छुपाकर ले आता। आधीरात के वक़्त क़िले की दीवार से पत्थर को दरिया में फेंकता। रावी उन दिनों क़िले से सटकर बहती थी। बिधीचंद रोज़ ऐसा ही करता लोग समझते थे यह किसी मछली का शोर है या क़िले की दीवार का बाहरी पत्थर पानी में गिरा है।

"बिधीचंद ने सुन रखा था कि 'दिलबाग़' और 'गुलबाग़' की काठिएं सवा-सवा लाख रूपए की थीं। उन्हें बंद कमरे में ताले के भीतर रखा जाता था। इस कमरे की चाबी एक ख़ास अहलकार के पास रहती थी। जब शहंशाह को सवारी करनी होती, काठी को निकालकर कस दिया जाता। काठी पर क़ब्ज़ा करना एक और समस्या थी जिसे बिधीचंद उर्फ़ कसेरे को सुलझाना था।"

"चूँकि क़िले के अस्तबल के अहलकार बिधीचंद से अब घुल-मिल गए थे, एक शाम उसने सबकी दावत की। सब को ख़ूब शराब पिलाई फिर देर रात गए यार लोग जाम के बाद जाम चढ़ाते रहे। आख़िर सब औंधे हो गए।"

बिधीचंद ने मौक़ा पाकर काठी वाले कमरे की चाबियाँ अहलकार की कमर से खोल लीं और कमरे में से काठी निकालकर 'दिलबाग़' पर कस दी। घोड़े बिधीचंद के साथ हिले हुए थे। किसी वक़्त अपने इलाक़े का मशहूर डाकू बिधीचंद घोड़े की सवारी में माहिर था।

दिलबाग़ पर काठी कस कर बिधीचंद उस पर सवार हो गया। अगले क्षण क़िले की दीवार पर पहुँचकर उसने घोड़े की ऐड़ लगाई और नदी में उतार दिया। पानी में शोर हुआ। इस तरह हर रोज़ शोर हुआ करता था।

बिधीचंद दिलबाग़ को सरपट दौड़ाता हुआ भाईरूपा ले आया जहाँ गुरु महाराज आजकल ठहरे हुए हैं।

दिलबाग़ को तो बिधीचंद निकालकर ले आया है अब एक और समस्या आ खड़ी है। गुलबाग़ से बिछड़कर दिलबाग़ के आँसू लगातार गिरते रहते हैं। इसका इलास एक ही है कि गुलबाग को भी निकालकर ले आया जाए और तुम मानो चाहे ना मानो वीरां, बिधीचंद कहता है, वह गुलबाग़ को भी गुरु महाराज के खूँटे से बाँध देगा।

इस तरह के दीवाने हमारे गुरु महाराज के भगत हैं। सुमन का ख़त अभी ख़त्म नहीं हुआ था कि वीरां वाली के मुँह का स्वाद कड़वा ज़हर हो

गया। उसे और आगे नहीं पढ़ा गया।

वह इस तरह की हरकत को बड़ाई समझता है। वीरां वाली अपने आप से कहने लगी, "मैं इसे डाका कहती हूँ। डाका नहीं तो और क्या है? यह चोरी है। डाका है। इख़लाक़ी जुर्म है। मैं कहती हूँ, किस तरह के लोग हमारे गुरु महाराज के गिर्द इकट्ठे होते जा रहे हैं। सुमन भी इसी तरह का हो जाएगा चोर-उचक्कों के साथ रहकर।" इस तरह बुड़बुड़ाती हुई वीरां वाली फिर कमाल को ख़त लिखने बैठ गई। जब-जब सुमन की ओर से निराशा होती वह कमाल की ओर भागती, उसकी याद उसे सताने लगती। वह भी ऐसा था कि मजाल है टस से मस हो जाए। नानक मत्ते से हिलने का नाम ही नहीं लेता था।

(47)

बेशक बिधीचंद गुलबाग़ को भी लाकर गुरु महाराज के खूँटे से बाँधने का इक़रार कर रहा था क्या यह नैतिकता थी? गुरु महाराज और उनके निकटवर्ती गुरसिक्खों के सामने क्षण भर के लिए एक नैतिक प्रश्न उभर कर सामने आ खड़ा हुआ। बेशक मुग़ल साम्राज्य की यह सीनाज़ोरी थी कि गुरु महाराज के लिए भेजे गए घोड़ों को छीनकर शहंशाह के अस्तबल में बाँध दिया गया था, लेकिन जिस तरह दिलबाग़ को बिधीचंद लाहौर के क़िले में से निकालकर लाया था वो भी तो चोरी थी। चोरी न सही कम से कम कानून को अपने हाथ में लेना कहा जा सकता है।

बिधीचंद इस तरह की बहस बहुत देर से सुन रहा था आख़िर वह बोला, बेशक मैं चोर था, डाकू था, पर अब मैं गुरु महाराज का नवाज़ा हुआ गुरसिक्ख हूँ। मैं अपने इष्ट का घोड़ा लाहौर के क़िले में से निकालकर लाऊँगा। इस बात का एलान करके कि मैं अपने गुरु महाराज के घोड़े को ले जा रहा हूँ, शहंशाह को सुनाकर शहंशाह के अहलकारों को बताकर।

बिधीचंद के यह शब्द सुनकर सबकी ज़बान बंद हो गई और वह अपने घोड़े पर सवार लाहौर के लिए उड़न छू हो गया। दिलबाग़ की आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। उसने खाना-पीना छोड़ दिया था। अगर दो-चार दिनों में उसके साथी से उसे नहीं मिलाया जाता तो दिलबाग़ हाथ से जाता रहेगा। इस बात का हर किसी को यक़ीन था। दोनों घोड़े इकट्ठे आए थे, इकट्ठे रहे। अब उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

बिधीचंद जब लाहौर पहुँचा उसका भेस बदला हुआ था। उसे सुनकर

रत्ती भर हैरानी नहीं हुई कि शहर में चारों तरफ़ दिलबाग़ के चुराए जाने की चर्चा हो रही थी। उसे जिस ढंग से चुराया गया था अभी तक किसी के हाथ कोई सूत्र भी नहीं लगा था। ढ़िढोंरची शहर में एलान कर रहे थे, "शहंशाह के घोड़ों को तलाश करने में जो भी मदद देगा उसे मुँह-माँगा इनाम दिया जाएगा।"

शहंशाह दिलबाग़ के इस तरह चुराए जाने पर सख़्त नाराज़ था। सोधां ख़ान को बर्ख़ास्त कर दिया गया था। शहंशाह एक तूफ़ान खड़ा कर देगा। एक आतंक था सारे शहर में। लाहौर में घुसते ही बिधीचंद भाई बोहड़ के घर गया और उसकी मदद से उसने एक नजूमी का भेस बना लिया। नजूमियों वाला चोग़ा, हाथ में वैसी ही माला, माथे पर तिलक, कानों में मुंदरें, ऐसा लगता जैसे कोई पहुँचा हुआ साईं हो। उसकी कमर में कमरबंध, सर पर भारी पग्गड़, बड़ी-बड़ी मूंछें, उसका हुलिया और का और हो गया था।

बिधीचंद इस भेस में एक चबूतरे पर जा बैठा। उसका अनोखा भेस देख कर लोग उसके आस-पास इकट्ठे होने लगे। पूछने पर बताता, "मैं नजूमी हूँ पाताल तक की ख़बर रखता हूँ, दिल की जानता हूँ। मन की बूझता हूँ। चोर-उचक्कों की खोज-ख़बर निकालने में माहिर हूँ।" यह कहते हुए वह अपनी गुदड़ी में से एक आईना निकालकर अपनी दाढ़ी सँवारता, मूछों को और ऐंठता।

इतने में शाही अस्तबल का एक अहलकार उधर आ निकला इस तरह के नजूमी की ही तो उन्हें तलाश थी। पूछने पर बिधीचंद ने बताया, "मेरा गणक है, जंगल में मेरा ठिकाना रहता है। आम लोगों में मैं खोजी गणक नाम से जाना जाता हूँ।"

मुग़ल अहलकार ने जाकर शहंशाह को ख़बर की और शाहजहाँ ने फ़ौरन उसे बुला भेजा। बिधीचंद ने बताया, मैं घोड़े का पता ग्रहों और सितारों की जानकारी की मदद से लगाऊँगा। मुझे पहले वह जगह बताई जाए जहाँ से घोड़े को चुराया गया था। मैं आपको चोर का नाम बताऊँगा और यह भी बताऊँगा कि घोड़ा अब कहाँ है, घोड़े को हासिल करना आपकी अपनी ज़िम्मेदारी होगी।

शहंशाह ने सुनकर कहा कि इस जानकारी के लिए तुझे चार लाख रुपए ईनाम दिया जाएगा। फिर बिधीचंद को उस स्थान पर ले जाया गया जहाँ से दिलबाग़ को चुराया गया था। सामने गुलबाग़ अपने साथी के वियोग

में उदास खड़ा था। बिधीचंद ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा तो गुलबाग़ एकदम चौंक उठा। शहंशाह और उसके अहलकारों ने सोचा, नजूमी में सचमुच कोई इलाही शक्ति है। वह मन ही मन खुश हो रहे थे कि थोड़ी ही देर में चोर का पता चल जाएगा और गुलबाग़ का पता भी चल जाएगा। पिछले कुछ दिनों से उसने खाना-पीना कम कर दिया था और आठों पहर उदास खड़ा रहता था।

"चुराए गए घोड़े पर काठी थी?" बिधीचंद ने पूछा।

"काठी उस पर डाली गई थी।" अहलकारों ने बताया।

"तो फिर उसके साथी पर भी वैसी ही काठी डाली जाए ताकि मुझे घोड़े को खोज लाने में मदद मिले।" बिधीचंद के मुँह से यह फ़रमाइश निकलते ही गुलबाग़ की रूपहली काठी उस पर कस दी गई। उसकी लगाम चढ़ा दी गई।

"इस घोड़े की मदद से रात के ठीक उसी वक़्त जब दूसरा घोड़ा चुराया गया था, मैं अपनी खोज मुकम्मल कर लूँगा।" बिधीचंद ने शहंशाह से कहा।

"अब मैं चाहूँगा कि क़िले के सारे दरवाज़े बंद कर दिए जाएं। लोग अपने-अपने घरों में सो जाएं चारों तरफ़। पूरी ख़ामोशी हो ताकि नजूम लगाने में कोई विघ्न न पड़े।"

नजूमी के कहे अनुसार शहंशाह ने फ़ौरन वही सब कुछ करने के हुक्म सादर जारी कर दिए। शहंशाह समेत सब लोग अपने-अपने ठिकाने पर चले गए। नजूमी ध्यान जमाए चोर की ख़बर लगाने के लिए समाधी में बैठा था। ठन-ठन माला फेर रहा था। सामने गुलबाग़ खड़ा था। कसी हुई काठी, चढ़ा हुआ लगाम।

ठीक आधी रात को जब सब सो चुके थे, बिधीचंद ने अहलकारों के घरों के किवाड़ बाहर से बंद कर दिए। शहंशाह ख़ुद सुमन बुर्ज में रहता था। उसकी किवाड़ पर भी बाहर से ताला लगा दिया गया।

और फिर गुलबाग़ की काठी पर बैठ कर वह पुकारा—सुनो-सुनो शहंशाह शाहजहाँ, मैं आप को सम्बोधित हूँ। मेरा नाम बिधीचंद है। मैं गुरु हरिगोविंद जी का सिक्ख हूँ। आप के अब्बा ने गुरु महाराज के लिए भेजा गया एक घोड़ा पहले ही ज़बरदस्ती हथिया लिया था। जिसके लिए वो घोड़ा लाया गया था, आख़िर वो वहीं पहुँच गया। अब यह दो घोड़े दिलबाग़ और गुलबाग़ भी गुरु महाराज के लिए ले जाए जा रहे थे कि इन्हें ज़बरदस्ती

छीनकर आपको पेश कर दिया गया। यह अन्याय है। अन्धेरगर्दी है।

मैं बिधीचंद आपका पहला घोड़ा भी यहाँ से खोलकर ले गया था उस घोड़े को मैं हरिगोविंद जी के खूँटे से बाँध आया हूँ जिनके लिए वह लाया गया था। आप जानना चाहते थे कि वह कहाँ हैं सो मैं अपने वचन के मुताबिक़ आपको सूचित करता हूँ कि गुरु महाराज मांझे के इलाक़े में रुपा नाम के एक गाँव में हैं।

क्योंकि दिलबाग़ अपने साथी गुलबाग़ से बिछड़कर दिन-रात आँखों से आँसू बहाने लगा था, उसने खाना-पीना छोड़ दिया था। हमें उस पर तरस आया। उस बेज़ुबान को हम मरने देना नहीं चाहते थे। इसलिए मैं गुलबाग़ को लेने आया हूँ ताकि दोनों घोड़े अपने असली मालिक के पास रहें। अब मैं इसे ले जा रहा हूँ।

इतने में शहंशाह जाग पड़ा था और अपने अहलकारों को पुकार रहा था। खुद शहंशाह और उसके सारे अहलकार अपने-अपने घरों में बंद और बेबस थे।

अब बिधीचंद फिर बोल रहा था, "इस तरह पुकारने शोर मचाने का कोई फ़ायदा नहीं मैंने सारे किवाड़ बाहर से बंद करके ताले लगा दिए हैं और चाबियाँ मेरी मुट्ठी में हैं।"

ज़िल्लेइलाही आपने मुझे वचन दिया था कि आप चोर की खोज और उस जगह की शिनाख़्त के लिए जहाँ पहला घोड़ा है। चार लाख रुपए का वचन किया था। इस रक़म को इन दोनों घोड़ों की क़ीमत समझिए जिन्हें मैं आज से ले जा रहा हूँ।

अब मैं आप से विदा लेता हूँ। इन बंद तालों की चाबियाँ मैं रावी में फेंक रहा हूँ। आप अपने ग़ोताख़ोरों से कहिएगा वे आप को ढूँढ लाएंगे।

यह कहते हुए बिधीचंद ने चाबियों के गुच्छे को रावी दरिया में फेंक दिया और गुलबाग़ को ऐड़ लगाकर दरिया में कूद पड़ा।

फिर वह सबको देखते-देखते आँखों से ओझल हो गया। इस बीच गुरु महाराज भाई रूपा को छोड़कर अपने बसाए गाँव कांघड़ में जा टिके थे। इस गाँव में यह घोड़े गुरु महाराज को बक़ायदा भेंट किए गए। दिलबाग़ का नाम बदलकर 'जानभाई' और गुलबाग़ का नाम 'सुहेला' रखा गया।

(48)

कौन सी हुकूमत इस तरह की चुनौती को अनदेखी कर सकती है ?

शाहजहाँ ने फ़ौरन हमला कर के गुरु हरिगोविंद जी को घोड़ों समेत शहंशाह के सामने पेश करने का हुक्म दिया। उधर गुरु महाराज यह जानते हुए कि लड़ाई होकर रहेगी रायजोध के साथ नथाना के बयाबान के पास चले गए जिसमें एक ही तालाब था। उनके पास चार हज़ार सैनिक थे; तीन हज़ार गुरु महाराज की कमान के नीचे और एक हज़ार रायजोध की कमान में। अपनी सेना को उन्होंने इस तरह तैनात किया कि मुग़ल फ़ौज की पानी तक भी पहुँच न हो। इस इलाक़े में लहरा और महराज नाम के दो गाँव गुरु महाराज ने पहले ही बसाए हुए थे। गाँव क्या थे, एक तरह से सिक्खों की छावनियाँ थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, जवानों की ज़रूरत के लिए जंगल से ढेरों इंधन इकट्ठा कर लिया गया था।

वक़्त के दस्तूर के मुताबिक़ शाहजहाँ ने एक शमशीर और एक पान का बीड़ा रखकर अपने फ़ौजी जरनैलों को पुकारा-कौन इस आने वाली लड़ाई की कमान सम्हालने के लिए तैयार है? लल्ला बेग नाम के मुग़ल साम्राज्य के सिपहसालार ने पान का बीड़ा उठाकर मुँह में डाल लिया और शमशीर उठाकर ज़िम्मेवारी अपने सर पर ली। उसके साथ उसका भाई क़मर बेग, उसके दो बेटे क़ासिम बेग और शम्स बेग और उसका भतीजा काबली बेग भी शामिल हो गए। शहंशाह ने सबको पेशगी ईनाम और ख़िल्लतें बख़्शीं और हुक्म दिया कि बिना कोई वक़्त गवाएँ वे गुरु महाराज का सर कुचलने के लिए रवाना हो जाएँ।

कुछ दिन बाद दस हज़ार की मुग़ल फ़ौज भाई रूपा पहुँची। उन्हें पता लगा कि गुरु महाराज को तो वहाँ से आगे जंगल की ओर निकल गए थे।

इतने में रायजोध की पत्नी ने एक नई ईजाद की। परात में कुछ मोतियों को रख कर वह देखती तो मोतियों की हरकत से मुग़ल सेना की हलचलों का पता चल जाता साथ ही साथ वह गुरु महाराज की फ़ौज को सावधान करती रहती।

इधर लल्ला बेग ने हसन ख़ान नाम के एक जासूस को सिक्ख सेना की जासूसी के लिए भेजा। गुरु महाराज के सिपाहियों ने बातों बातों में उसे पहचान लिया और उसकी पिटाई करने लगे। गुरु महाराज को पता लगा तो उन्होंने फ़ौजियों को ऐसा करने से मना कर दिया और हसन ख़ान को अपनी सेना में लौट जाने की आज्ञा दे दी। यह देखकर हसन ख़ान ने कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मुग़ल फ़ौज के सारे भेद गुरु महाराज को बता दिए। उधर जब

हसन ख़ान अपनी फ़ौज में लौटा तो उसने संत-सिपाही सिक्खों की इतनी तारीफ़ की कि बेग ने उसे नौकरी से बर्ख़ास्त कर दिया। हसन ख़ान गुरु महाराज के पास फ़रियाद लेकर आया। राय जोध इसके लिए राज़ी नहीं था कि हसन ख़ान को पनाह दी जाए। कोई फ़ौज अपने दुश्मन के जासूस को पनाह नहीं देती। लेकिन गुरु महाराज रायजोध से सहमत नहीं थे।

"जो भी शरण में आए उसे आश्रय देना ज़रूरी होता है।" उन्होंने कहा।

इतने में रायजोध की पत्नी ने सूचना दी कि मुग़ल फ़ौज धावा बोलने आ गई है। गुरु महाराज ने बिधीचंद और भाई जेठा को सावधान रहने के लिए हुक्म दिया।

मुग़ल फ़ौज में हर तरह के सैनिक थे-पठान, बलोच, युसूफ़ज़ई, दाऊदज़ई, गिलज़ई, रूहेले आदि। लल्ला बेग ने लड़ाई शुरू करने से पहले अपनी फ़ौज को मुख़ातिब करके कहा, हम यहाँ इतनी दूर बेकार ही ख़्वार होने के लिए आ गए हैं। सिक्ख गुरु के पास फ़ौज नाम की कोई चीज़ नहीं। हम में से कोई भी आगे बढ़कर बाग़ी गुरु को पकड़कर ला सकता है। यह सुनकर लल्ला बेग का भाई क़मर बेग आगे बढ़ा और कहने लगा यह शरफ़ मुझे बख़्शा जाए। लल्ला बेग ने सात हज़ार फ़ौजी क़मर बेग की कमान में देकर उसे जंग में झोंक दिया।

हसन ख़ां जिस से मुग़लों का जासूस होने के बावजूद गुरु महाराज ने इस लड़ाई में अपने अंग-संग रक्खा था, गुरु महाराज को क़मर बेग के बारे में जानकारी दे रहा था। बड़ा लड़ाका है, तलवार का धनी। इसने कभी हार नहीं देखी। मुग़लों ने रात के वक़्त हमला किया। क़मर बेग के सिपाही मशालें लिए आगे बढ़ रहे थे कि गुरु महाराज ने राय जोध को एक हज़ार जाँबाज़ जवान देकर मुक़ाबला करने के लिए भेजा। रायजोध ने सेना को हुक्म दिया कि वह दुश्मन पर दूर से ही गोलियों की बौछार कर दें। उन्हें अपनी नज़दीक न फटकने दें। बन्दूक़ों के पहले हल्ले में ही मशालों वाले फ़ौजी औंधे हो गए। काली बहरी रात में मुग़ल फ़ौज में हड़बड़ी मच गई। इधर रायजोध की गोलियाँ साँस नहीं लेने देती थीं। अन्धेरे में मुग़ल सिपाही आपस में ही एक दूसरे को काटने लगे। उन्हें लगता जैसे पीछे आ रहे फ़ौजी उन पर तीर चला रहे हैं गोलियाँ बरसा रहे हैं। बहुत देर नहीं बीती थी कि मुग़ल सैनिक चारों-तरफ़ लड़ाई के मैदान में या ठण्डे हो चुके थे या दम तोड़ रहे थे। यह देखकर क़मर बेग़ ख़ुद आगे आया, इधर से रायजोध आगे बढ़ा। रब की मर्ज़ी

कि पहले हमले में ही रायजोध ने अपने नेज़े से क़मर बेग की छाती को बेध दिया। वह नीचे धरती पर गिर पड़ा। यह देखकर बचे-खुचे मुग़ल फ़ौजी तीतर-बितर हो गए।

जाड़े के दिन, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मुग़ल फ़ौजी सर्दी में ठिठुर रहे थे। इस तरह की कोई आशंका सिक्ख सैनिकों को नहीं थी। उनके पास जंगल की मनों लकड़ी इकट्ठी की हुई थी। क़मर बेग की मौत के बाद लल्ला बेग ख़ुद जंग में उतरना चाहता था। पर क़मर बेग के बेटे शम्स बेग ने उसे रोका। दूसरा हमला शम्स बेग की कमान में शुरू हुआ। इधर से गुरु महाराज ने बिधीचंद को पंद्रह सौ सिपाही देकर उसके मुक़ाबले के लिए भेजा। हसन ख़ाँ गुरु महाराज के अंग-संग रहकर उन्हें शम्स बेग के बारे में जानकारी दे रहा था। शम्स बेग की अगुवाई में मुग़ल फ़ौज बहुत बहादुरी से लड़ी। दोनों तरफ़ से तीर बरसाए गए। गोलियाँ चलीं। पर सिक्ख सिपाहियों के सामने मुग़ल टिक नहीं सके। आख़िर में बिधीचंद और शम्स बेग का आपस में मुक़ाबला हुआ, बहादुर सूरमा था, पर बिधीचंद के मुक़ाबले में वह ज़्यादा देर नहीं ठहर सका। हथियार छोड़कर दोनों सूरमे हाथापाई पर आ गए। बिधीचंद ने अपने लोहे के दस्ताने वाले हाथ में बैरी को ऐसा मुक्का जमाया कि शम्स बेग धरती पर औंधा जा गिरा। अब बिधीचंद ने उसकी एक टाँग पर पैर रखा और दूसरी टाँग खींचकर शम्स बेग को दो-फाड़ कर दिया।

यह देखकर लल्ला बेग लाल-पीला हो रहा था कि शम्स बेग का छोटा भाई क़ासिम बेग अपने बाप और भाई का बदला लेने के लिए ज़िद् करने लगा। हसन ख़ान ने गुरु महाराज को बताया कि क़ासिम बेग दिल्ली की फ़ौज का सबसे ख़ौफ़नाक जंगजू सिपाही था। उसे हराना मुश्किल होगा। गुरु महाराज ने भाई जेठा को पाँच सौ जवान देकर आगे किया। फिर गोलियाँ बरसने लगीं, तीरों की बौछार होने लगी। दोनों ओर से घायल हुए सैनिकों की हा-हाकार मचने लगी। भाई जेठा बड़ी उम्र का था क़ासिम बेग की चढ़ती जवानी जैसे उबल रही हो लेकिन जिस लगन, जिस मनोयोग से सिक्ख सिपाही जंग में जूझते थे उनका मुक़ाबला करना असंभव हो जाता था। आख़िर इस झड़प में भी भाई जेठा और क़ासिम बेग का आपस में मुक़ाबला हुआ। एक दाव, दूसरा दाव और भाई जेठा ने क़ासिम बेग को उठाकर इतनी ज़ोर से नीचे पटका कि उसका सर फट गया। देखते-देखते क़ासिम बेग ने अपने प्राण त्याग दिए।

यह देखकर लल्ला बेग लाल-पीला हुआ ख़ुद आगे बढ़ा। बची-खुची सारी मुग़ल सेना उसके साथ थी। हसन ख़ान गुरु महाराज को सलाह दे रहा था कि अब किसी सबसे बहादुर को जंग में भेजना चाहिए। गुरु महाराज ने भाई जेठा जी को इशारा किया। बहादुरी में, श्रद्धा में और कुरबानी में भाई जेठा का कोई सानी नहीं था। एक बब्बर शेर की तरह भाई जेठा जंग के मैदान में गरज रहा था। एक खंभे की तरह स्थिर था। लल्ला बेग ने पहले अपने नेज़े के साथ जेठा पर वार किया। जेठा इस वार से बच गया। अब लल्ला बेग तलवार पकड़े आगे बढ़ा। उसका पहला वार जेठा ने अपनी बाँह पर लिया। लल्ला बेग के दूसरे वार पर जेठा धरती पर औंधा जा पड़ा और वाहे गुरु का नाम जपते हुए उसने प्राण त्याग दिए।

लल्ला बेग तीन हज़ार सिपाहियों के साथ आगे बढ़ा। अब गुरु महाराज से जत्ती मल में इजाज़त चाही कि उसे मौक़ा दिया जाए। आज्ञा मिलते ही जत्तीमल ने मुग़ल फ़ौज पर तीर बरसाने शुरू कर दिए। इस तरह के तीर उधर से भी छोड़े जा रहे थे। इतने में एक तीर जत्तीमल की छाती में आ लगा और वह बेहोश होकर नीचे आ गिरा। यह देखकर गुरु महाराज ख़ुद आगे आए उन्होंने लल्ला बेग को मुक़ाबले के लिए ललकारा पर वह ख़ुद सामने नहीं हुआ। दूर से ही तीर छोड़ता रहा। फिर गुरु महाराज का एक तीर उसके घोड़े की छाती में जा लगा और घोड़ा गिर पड़ा। गुरु महाराज की बहादुरी, उन्होंने झट अपना घोड़ा छोड़ दिया और लल्ला बेग से जूझने लगे। लल्ला बेग ने एक के बाद एक कई वार किए पर गुरु महाराज ने हर वार से ख़ुद को बचाया। आख़िर मौक़ा पाकर उन्होंने इतनी ज़ोर का आक्रमण किया कि लल्ला बेग का सर उसके धड़ से अलग होकर धरती पर जा गिरा।

अब लल्ला बेग की बहन का बेटा काबली बेग अकेला मुग़ल फ़ौजदार बचा था। यह देखकर कि बारी-बारी से सारे सिपहसालार ख़तम हो चुके थे एक तूफ़ान की तरह जंग में कूदा। हसन ख़ान ने गुरु महाराज को बताया यह आदमी सर पर कफ़न बाँधकर आया है और अपनी फ़ौज को इस्लामी नारे से उकसा रहा है इससे हमारी फ़ौज को नुक़सान हो सकता है।

काबली बेग का मुक़ाबला रायजोध, बिधीचंद और जत्तीमल (जो अब फिर लड़ने के लिए तैयार हो गया था) ने किया। मुग़ल फ़ौज की इज़्ज़त का सवाल था। काबली बेग लड़ाई के मैदान में क्या आया एक तूफ़ान मच उठा।

दोनों पक्ष एक दूसरे पर तीर बरसा रहे थे। दोनों तरफ़ से लगातार गोलियाँ बरस रहीं थीं। सूरमों ने सर-धड़ की बाज़ी लगाई हुई थी। सैंकड़ों की गिनती में सैनिक मर रहे थे ज़ख़्मी हो रहे थे। मुग़लों का पलड़ा अब भारी लग रहा था। यह देखकर गुरु महाराज फिर अपने बहादुर सूरमों की सहायता के लिए मैदान में उतरे। दुश्मन के तीर इधर उधर बरस रहे थे। एक तीर आकर गुरु महाराज के प्यारे घोड़े गुलबाग को लगा और उसने दम तोड़ दिया। इसके बदले में अगले क्षण गुरु महाराज ने काबली बेग के घोड़े को मार गिराया। अब काबली बेग और गुरु महाराज आमने-सामने थे। ऐसा लगता था जैसे गुरु महाराज लड़ाई की झिक-झिक से ऊब गए हों। उन्होंने आगे बढ़कर ऐसा वार किया कि काबली बेग का धड़ उसके सर से अलग हो गया। यह देखकर मुग़ल फ़ौज मैदान छोड़ कर भाग पड़ी। गुरु महाराज के हाथों यह उनकी तीसरी हार थी। इस जंग में बारह सौ सिक्ख सैनिक शहीद हुए।

गरु महाराज ने सारी जानकारी के लिए हसन ख़ां का शुक्रिया किया और उसे मशविरा दिया कि वह बाक़ी बची-खुची मुग़ल फ़ौज के साथ अपने बाल-बच्चों के पास लाहौर लौट जाए।

(49)

एक और लड़ाई लड़ी गई। एक और लड़ाई जीती गई। पर पैंदा खान मुँह देखता रह गया। उसे न बुलाया गया, न लड़ने के लिए कहा गया। तो भी ऐसा लगता था, जैसे गुरु महाराज उसकी पहले जैसी ही क़द्र करते थे। नथाना की लड़ाई से कुछ दिन बाद करतारपुर में चित्रसेन नाम के एक गुरसिख एक घोड़ा, एक बाज़ और एक सुन्दर कपड़ों का जोड़ा सतगुरु को पेश किया। गुरु महाराज ने यह सौग़ातें पैंदा ख़ान को बख़्श दीं। सिर्फ़ बाज़ अपने बेटे बाबा गुरदित्ता जी के लिए रख लिया। पैंदा ख़ान को उपहार देते हुए गुरु महाराज ने हिदायत की कि वे उस सुन्दर जोड़े को पहन कर दरबार में हाज़िर हुआ करें। उस घोड़े की सवारी ख़ुद किया करें। नये जोड़े में पैंदा ख़ान की शान देखी नहीं जाती थी। घोड़े पर बैठते ही वह सबसे पहले अपनी ससुराल के गांव गया, ताकि अपने रिश्तेदारों को यक़ीन दिला सके कि वह पहले की तरह गुरु महाराज का चहेता है। वे पहले की तरह उसकी ख़ातिर करते हैं।

बेशक पैंदा ख़ान उनका लाड़ला था, उसे उन्होंने एक तरह से ख़ुद पाला था। उसकी तरबियत की थी। वह इतना सुन्दर जवान निकला था।

गुरु महाराज ने उसकी शादी करवाई थी। फिर पैंदा ख़ान की बेटी का उस्मान ख़ान के साथ निकाह बग़ैरह।

लेकिन जो हेकड़ी और अहंकार उसमें आ गया था, जिसे वह गुरसिखों के सामने दिखाने लग पड़ा था, वह बात गुरु महाराज को मंज़ूर नहीं थी। गुरु घर में अजनबी-सी लगती थी। वे पैंदा ख़ान को एक आदर्श सूरमा बनाना चाहते थे। उसके बेजोड़ बाहुबल की तरह वे उसका आचरण और व्यवहार भी बेमिसाल देखना चाहते थे। पीछे गांव में पैंदा ख़ान के दामाद ने एक दिन वह जोड़ा पहन लिया जो गुरु महाराज ने दिया था। वह उस जोड़े को उतारने का नाम ही नहीं लेता था। उसने तो गुरु महाराज के घोड़े पर भी कब्ज़ा कर लिया था। बिगड़ा हुआ नौजवान किसी के कहने में नहीं आ रहा था। पैंदा ख़ान उसे बार बार समझाता, पर उसको जैसे समझ ही नहीं आती थी। यही ज़िद कि इतना सुन्दर जोड़ा, इतना प्यारा घोड़ा मैं नहीं लौटाऊँगा। पैंदा ख़ान ने उसे यह भी बताया कि वह घोड़ा और जोड़ा गुरु महाराज ने उनका अहलकार होने के नाते उसे दिया है और ख़ास तौर पर हिदायत की है कि वह उस घोड़े पर चढ़ कर और वह जोड़ा पहन कर गुरु दरबार में पेश हुआ करे। लेकिन उस्मान ख़ान टस से मस नहीं हो रहा था और पैंदाख़ान की बीवी भी दामाद का पक्ष ले रही थी।

"आख़िर इस उमर में इतना सुन्दर जोड़ा पहन कर आपने किसे दिखाना है।" वह बार बार कहती।

"लड़का इतनी बार कह रहा है तो उसकी ज़िद पूरी कर दीजिए।"

यह सुनकर पैंदाख़ान अपनी बीवी पर नाराज़ हुआ। उसने उस्मान ख़ान को भी डांटा। लेकिन मामला संभलने की बजाय और बिगड़ गया। उस्मान ख़ान धमकी देने लगा, वह अपनी बीवी को तलाक़ देकर ख़ुद कहीं निकल जायेगा। जिसका ससुर अपने दामाद के लिए इतना नहीं कर सकता, उसे तो चुल्लू भर पानी में डूब कर मर जाना चाहिए।

पैंदा ख़ान अजीब दुविधा में फंस गया था। लड़का तो अब फ़कीर बनने या ख़ुदकशी करने की धमकियाँ दे रहा था।

आख़िर पैंदा ख़ान ने हार कर उस्मान ख़ान की फरमाइश मान ली।

रब्ब का करिश्मा, गुरु महाराज ने जो बाज़ गुरदित्ता जी को दिया था, पहली बार ही जब उसे शिकार के लिए छोड़ा गया तो वह उड़ता हुआ वडामीर गांव में उस्मान ख़ान के आसपास चक्कर काटने लगा। उसने वही

जोड़ा पहना था और उसी घोड़े पर बैठा था जिन्हें बाज़ पहचानता था।

इतने सुन्दर बाज़ को अपने क़ब्जे में आया देखकर उस्मान ख़ान का दिमाग़ और भी चढ़ गया। यह जानते हुए भी कि बाज़ को गुरु महाराज ने अपने बेटे को बख़्शा था, उसने बाज़ पर क़ब्ज़ा कर लिया था और बाज़ को बाबा गुरदित्ता को लौटाने का नाम ही नहीं लेता था। मन ही मन उस्मान ख़ान ने यह भी सोचना शुरू कर दिया था कि वह बाज़ को सूबेदार को पेश करके, बदले में जागीर लेगा। पैंदा ख़ान को जब उसके इस इरादे का पता चला तो उसने अपने दामाद को लानतें डालीं। इस तरह की हिमाक़त भला वह सोच कैसे सकता था। गुरु महाराज ने उनके लिए इतना कुछ किया था। कोई इतना भी नाशुक्रा हो सकता है?

अब उस्मान ख़ान का दिमाग़ और भी चढ़ गया। अब हम कब तक एक काफ़िर से बँधे रहेंगे? वह कहने लगा, "बाज़ को सूबेदार के यहाँ पेश करके हम ससुर-दामाद दोनों मुग़लों की नौकरी कर लेंगे। आख़िर इस्लाम का भी हम पर कोई हक़ है। जिस तरह यह गुरु बार-बार मुग़ल फ़ौज को हरा रहा है, यह तो किसी दिन मुग़लों को खदेड़ कर मुल्क पर क़ब्ज़ा कर लेगा।"

पैंदा ख़ान ने अपने कानों में ऊँगलियाँ दे लीं। यह कुफ़्र था। उसके जी में आया कि वह कपड़े फाड़ कर कहीं निकल जाए, वह सख़्त परेशान था।

मुसीबत और भी बढ़ गई, जब उसने देखा, उसकी बीवी और उसकी बेटी भी उस्मान ख़ान का साथ दे रहीं थीं। वे भी उसी तरह सोचती थीं जैसे उस्मान ख़ान सोचता था।

घर में क्लेश मच गया। पैंदा ख़ान की भूख प्यास जाती रही। आठो पहर चारपाई पर लेटा रहता। गुरु महाराज के यहाँ भी हाज़िर नहीं हो रहा था। जाता भी तो किस मुँह से जाता।

उधर बैसाखी के मेले के दिन सब ख़ुशियाँ मना रहे थे। गुरु महाराज़ के सामने हाज़िर होकर उनकी आशीष ले रहे थे। पैंदा ख़ान आज कितने दिनों से दिखाई ही नहीं दिया था। आख़िर कार गुरु महाराज ने उसे बुलावा भेजा। उसने अपनी बुरी हालत बना रक्खी थी। पैंदा ख़ान मैले कुचैले कपड़ों में हाज़िर हुआ। "तूने अपना यह क्या हाल बना रक्खा है?" आख़िर बैसाखी का त्योहार था, उसे सभी अहलकारों की तरह वर्दी में आना चाहिए था।

"कोई बात नहीं हज़ूर, आपने याद किया तो मैं जैसे बैठा था उसी तरह चला आया।" पैंदा ख़ान अपनी मजबूरी बताकर माफ़ी माँगने की बजाय झूठ

बोलने लगा।

"सुना है बाबा गरु दत्ता का बाज़ जोड़े और घोड़े वाले के पास पहुँच गया है।" गुरु महाराज ने उसे और कुरेदा।

"नहीं हज़ूर मैंने तो वह बाज़ देखा तक नहीं।" पैंदा ख़ान एक मौक़ा और गवॉं बैठा। अपने क़सूर मानकर माफ़ी मॉंगने की बजाय वह फिर झूठ बोल रहा था।

गुरु महाराज को अत्यंत निराशा हुई। "पैंदा ख़ान सोच ले, अगर बाज़ तेरे घर में है तो बाबा गुरु दत्ता की अमानत उसे लौटा दे। उन्होंने पैंदा ख़ान को एक मौक़ा और दिया।"

"मुझे हज़ूर की क़सम।" पैंदा ख़ान कहने लगा, "मुझे बाज़ के बारे में कुछ पता नहीं।"

यह सुनकर गुरु महाराज ने बिधीचंद को इशारा किया। वे जाकर पैंदा ख़ान के घर से बाज़ बरामद कर लाए। पैंदा ख़ान अपनी सफ़ाइयॉं पेश करता जा रहा था। एक झूठ को छुपाने के लिए उसे दस और झूठ बोलते पड़ रहे थे।

"यह भी सुना है कि जो जोड़ा हमने तुझे पहनने के लिए दिया था, उसे तुने अपने दामाद को बख़्श दिया है।" गुरु महाराज ने उससे पूछा।

"नहीं हज़ूर, जोड़ा मेरे पास है, आपकी दी हुई सौग़ात किसी और को देने का सवाल कैसे उठता है?"

"और वह घोड़ा?" गुरु महाराज उसे मौक़े पर मौक़ा दे रहे थे, ताकि वह अपना क़सूर क़बूल कर ले।

"वह भी मेरे खूँटे के साथ बँधा हुआ है।" पैंदा ख़ान बोला।

"तू उस पर सवार होकर नहीं आया।" गुरु महाराज ने पूछा।

"वह तो मैंने अर्ज़ की है ने जनाब।" पैंदा ख़ान बौखला सा गया था। "मैं ने अर्ज़ की है न, हज़ूर का पैग़ाम पाकर मैं जल्दी में जैसे था वैसे ही चल पड़ा।"

"सोच ले कहीं तू झूठ तो नहीं बोल रहा।" गुरु महाराज ने उसे आख़िरी मौक़ा दिया।

"हज़ूर जानी-जान हैं, आपके सामने को झूठ कैसे बोल सकता है।" पैंदा ख़ान की मलीत बुद्धि, वह इस आख़िरी मौक़े को भी गवॉं बैठा था। इतने में बिधिचँद दरबार में हाज़िर हुआ। वह घोड़ा, जोड़ा और बाज़ तीनों चीज़ों को

उस्मान ख़ान के यहाँ से बरामद करके ले आया था। पैंदा ख़ान ने देखा तो उसे लगा कि धरती फट जाए और उसे समा ले। अब भी माफ़ी माँगने की बजाय, वह उट-पटांग बकने लगा।

"आपने इस तरह मुझे अपमानित किया है। यह षड्यंत्र है मुझे बदनाम करने की। मैंने कोई चीज़ अपने दामाद को नहीं दी। इतने बरस मैंने आपकी नौकरी की है। मेरी तनख़्वाह मुझे मिलती चाहिए मैं जाकर सूबेदार से इसकी शिकायत करूँगा।" गुरु महाराज ने सुन कर हुक्म दिया कि इससे पेशतर कि वह कोई और बद्‌तमीज़ी करे उसे दरबार से निकाल दिया जाए।

गुरु महाराज का आदेश पाते ही कुछ सिक्ख पैंदा ख़ान को पकड़कर बाहर ले गए। अपने बाहुबल की पकड़ में वह अभी भी बके जा रहा था।

उसकी बातें सुनकर गुर सिक्खों के साथ उसकी हाथा-पाई हो गई। मार-पीट हो गई। पैंदा ख़ान तो अपने आप को पहलवानों में गिनता था। वह तो सोचता था कि उसकी तरफ़ को आँख उठाकर नहीं देख सकता। काला-पीला बदन लिए वह अपने घर जा घुसा।

मामला और बिगड़ गया।

(50)

सबसे पहले पैंदा ख़ान ने यह एलान किया कि लूट का माल लुटेरे के पास रहने दिया जाएगा। पाँच सौ जवानों का दल इकट्ठा कर लिया।

उसका दामाद उस्मान ख़ान उसका नायब था। उस्मान ख़ान बार-बार उसे याद कराता कि उसे पहले से ही उसकी बात मान लेनी चाहिए अब उसे सूबेदार से मिलकर सिक्ख गुरु से मिलना होगा। उन्होंने वड्डा मीर और बस्सी के ग्राम्यवासियों को भी अपने साथ मिला लिया। उनकी पंचायतों ने सूबेदार को शिकायत भेजी कि सिक्ख गुरु और उसके अनुयायी अपना राज क़ायम करने की सोच रहे हैं। सरकार को वक़्त पर इनका सर कुचलना होगा।

दोनों गाँव की दरख़्वास्त लेकर पैंदा ख़ान और उसका दामाद उस्मान ख़ान लाहौर पहुँच गए। शाहजहाँ भीं उन दिनों लाहौर में ही था। शहंशाह के साथ उनकी मुलाक़ात भला कैसे हो? इंतज़ार करते-करते वह हार गए। आख़िर किसी वसीले से उन्हें कामयाबी मिली।

शाहजहाँ साम्प्रदायिक ज़हनियत का बादशाह था। उसे यह बताया गया था कि सिक्ख मुसलमानों को अपना मुरीद बना रहा था और ग़लत रास्ते

पर डाल रहा था। तीन झड़पों में पहले ही मुग़ल फ़ौज की टुकड़ियाँ सिक्ख गुरु से मात खा चुकी थीं। मुख़्लिस ख़ां, अब्दुल्ला ख़ान और लाल बेग जैसे फ़ौजदार अपनी जानें गवाँ चुके थे। अब जब पैंदा ख़ान जैसा योद्धा उनके साथ आ मिला था उसे इसका फ़ायदा उठाना था। सिक्ख गुरु के बाक़ी सरदार तो डाकू और लुटेरे थे। उसके सिपाही ऐरे-ग़ैरे शहरी थे। लंगर की रोटियाँ खाते थे और कच्छे पहनते थे। पैंदा ख़ान जैसे सूरमे का वे क्या मुक़ाबला करेंगे? और गुरु के पास अभी तक शहंशाह का बाज़ और दो घोड़े थे जिन्हें उसने ज़बरदस्ती हथियाया हुआ था उन्हें भी बरामद करना है।

आख़िर शहंशाह ने गुरु महाराज के ख़िलाफ़ फ़ौज भेजने का मन बना लिया। मरहूम मुख़्लिस ख़ान के भाई काले ख़ान को जो पेशावर का सूबेदार था कमान सौंपी गई। उसके नीचे पच्चास हज़ार फ़ौज को लड़ना था। मरहूम अब्दुल्ला ख़ां का एक दोस्त अनवर ख़ान अपने यार का बदला लेने के लिए दो हज़ार सिपाही लेकर उनके साथ शामिल हो गया। कुतुब ख़ान पैंदा ख़ान और उस्मान ख़ान को उनकी मदद करनी थी।

शहंशाह ने सबको ख़िल्लतें और ईनाम देकर भेजा और हुक्म दिया कि एकाध दिन में वे बाग़ी गुरु को ज़िन्दा या मुर्दा शाहजहाँ के सामने पेश करें।

काले ख़ान ब्यासा नदी को पार करके जब जालंधर पहुँचा, गुरु महाराज के भक्तों ने पहले ही उन्हें हमले की सूचना दे दी। उस समय गुरु महाराज के पास केवल अठारह सौ सिपाही थे, जिन्हें करतारपुर के उनके श्रद्धालुओं ने जुटाया था। गुरु महाराज ने बिधीचंद को तैयार रहने के लिए कहा और ख़ुद जंग की तैयारी में लग गए।

मुग़ल फ़ौज ने उसी रात धावा बोल दिया। गुरु महाराज ने जत्तीमल, अमीरचंद, मेहरचंद और भाई लक्खू को पाँच सौ सिपाही देकर आगे बढ़ने के लिए कहा। बाबा गुरु दत्ता भी जंग में कूदना चाहते थे लेकिन गुरु महाराज ने उन्हें शहर की रखवाली करने के लिए कहा। उधर काले खाँ ने एलान किया कि लूट का माल लूटने वाले के पास रहने दिया जाएगा। यह सुनकर बीस हज़ार सिपाही सिक्ख फ़ौज पर टूट पड़े। दोनों तरफ़ से आतिशबाज़ी की तरह गोलियाँ चलने लगीं। दोनों तरफ़ से तीरों की बौछार हो रही थीं तेग़ें खन-खना रही थीं। घोड़े हिन-हिना रहे थे। हाथी इधर-उधर चिंघाड़ते घबराए फिर रहे थे, महावत मरे पड़े थे, सवार ज़ख़्मी होकर दम तोड़ रहे थे। फ़ौजें आमने-सामने हुई ही थीं कि पहले हमले में मुग़ल फ़ौज

के बारह हज़ार सिपाही मौत के घाट उतार दिए गए।

कुतुब ख़ान काले ख़ान से कहने लगा, "रात में हमला करके हमने बड़ी ग़लती की है। हमारे सिपाही थके और अधसोए थे। सिक्ख सेना ने तो हमारे पर-ख़चे उधाड़ दिए। जिधर-जिधर नज़र जाती है लाशें ही लाशें नज़र आती हैं। इस तरह तो हमें पहले तीन लड़ाइयों की तरह हार का मुँह देखना पड़ेगा। हम तो कहीं मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहेंगे। यह देख कर पैंदा ख़ान और उसका दामाद उस्मान ख़ान मशालें लेकर आगे बढ़े। उधर बिधीचंद, रायजोध, भाई लक्खू और जत्तीमल उन्हें घेरे हुए थे। थोड़ी देर में बिधीचंद ने निशाना जमाकर पहला ही तीर छोड़ा जो अनवर ख़ान के माथे में जा धंसा। यह देखकर मुग़ल फ़ौज पीछे भागने लगी। गुरु महाराज ने हुक्म दिया कि भागते हुए फ़ौजियों पर हमला करना कायरता है। सिक्ख सैनिक अपने-अपने ठिकाने से आगे नहीं बढ़े। गुरु महाराज का कहना था कि गुरसिक्ख तभी लड़ता है जब उस पर हमला किया जाए।

उधर अन्धेरे में जत्तीमल और कुतुब ख़ान की भिडंत हुई। बहुत धूल उड़ी, लेकिन हार-जीत का फ़ैसला नहीं हो सका। अगली सुबह पैंदा ख़ान और उस्मान ख़ान जंग में फिर उतरे इधर से गुरु महाराज के साहब ज़ादे त्यागमल और बाबा गुर दत्ता मुक़ाबला कर रहे थे, दुश्मनों की धज्जियाँ उड़ा रहे थे। यह देखकर कि मुग़ल सिपाही एक-एक करके ढ़ेरी हो रहे थे, उस्मान ख़ान बार-बार बाबा गुरदित्ता पर तीर बरसा रहा था। लेकिन बाबा गुरदित्ता उसके हर हमले से अपने आपको बड़ी होशियारी से बचा रहे थे। कुतुब ख़ान ने आख़िर तोप में बारूद भरकर सिक्ख सेना पर निशाना दाग़ा। यह वार भी बेकार गया। यह सारा नज़ारा गुरु परिवार महलों की छत पर खड़ा हो कर देख रहा था।

अब कुतुब ख़ान आगे बढ़ा उसे रोकने के लिए भाई लक्खू सामने आया। कुतुब ख़ान ने दूर से ही भाई लक्खू पर एक तीर छोड़ा जो भाई लक्खू के कान के पास से निकल गया। अब भाई लक्खू की बारी थी। उसने अपना तीर छोड़ा, जो निशाने पर लगा और कुतुब ख़ान औंधा जा पड़ा। यह देख कर मुग़ल सिपाहियों ने भाई लक्खू को घेर लिया और काफ़ी देर तक घमासान होता रहा। तलवारों के वार पर वार हो रहे थे पर भाई लक्खू क़ाबू में नहीं आ रहा था आख़िर भाई लक्खू का घोड़ा ज़ख्मी हो गया तो भी उसने मुक़ाबला जारी रखा। क़रीब पौना घण्टा इस तरह लड़ाई होती रही। पठान

हैरान थे, वे मरते जा रहे थे, ज़ख़्मी होकर औंधे गिर रहे थे और इधर एक अकेला सिक्ख उनके हाथ नहीं आ रहा था। इतने में कुतुब ख़ान होश में आ गया। आँखें खोलते ही उसने अपनी कमान को सम्हाला और दूर से ऐसा तीर छोड़ा जिसने भाई लक्खू को बींध कर रख दिया। भाई लक्खू धरती पर गिरा ही था कि कुतुब ख़ान ने आगे बढ़ कर तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिए। भाई लक्खू को शहीद हुआ देखकर मुग़ल फ़ौज के हौसले फिर बुलंद हो गए। अब काले ख़ान ने पैंदा ख़ान को ललकारा-"पैंदा ख़ान, हमने तेरे कहने में आकर यह लड़ाई मोल ली और अपने हज़ारों साथी मरवा लिए हैं। मैं तो देख-देख कर हैरान हो रहा हूँ कि तू किसी न किसी बहाने ख़ुद पीछे हो जाता है और जो कोई तेरे हाथ आता है उसी को आगे कर देता है।"

सचमुच पैंदा ख़ान के लिए गुरु महाराज के ख़िलाफ़ तलवार उठाना मुश्किल था। बेशक आवेश में वह उनसे इतना दूर हो गया था, इतनी खाई उसने अपने और उनके बीच बना ली थी पर जो मेहरबानियाँ गुरु घर की ओर से उस पर होती रहीं थीं उन्हें वह कैसे भूल सकता था एक अजीब तरह की उथल-पुथल उसके मन में हो रही थी। पैंदा ख़ान का जी करता कि तलवार फेंक कर अपने घोड़े को युद्ध के मैदान से भगाकर दूर किसी वीरान जंगल में निकल जाए। वहाँ जहाँ कोई उसे जानता हो या पहचानता हो। "इससे तो मर जाना अच्छा है।" बार-बार उसके अंदर से आवाज़ आती, "तुझ जैसा भी कोई ज़लील आदमी होगा जिसने अपने मुर्शिद के आगे सिर उठाया है। उसकी अंर्तात्मा उसे कचोट रही थी। गुरु महाराज का एक-एक अहसान उसे याद आ रहा था। कैसे उन्होंने पढ़ाया-लिखाया, सिखाया था। कोई बढ़िया चीज़ उन्हें भेंट की जाती, वह पैंदा ख़ान को दे दी जाती। गुरसिक्ख उनके मुँह की तरफ़ देखते रह जाते। कभी अगर इन्होंने हिन्दू-मुसलमान में भेद-भाव किया हो। उसे यह क्या हो गया है? वह उनसे इतना दूर क्यों निकल आया था? इससे तो मरना अच्छा है। इससे तो कोई मर जाए। इससे तो मर जाना ही बेहतर है। बार-बार उसकी हर साँस के साथ यह बोल निकल रहे थे।

इतने में काले ख़ान ने पैंदा ख़ान को पुकारा, "पैंदा ख़ान अगर तेरा घोड़ा मैदाने जंग की ओर रुख नहीं करता तो तू मुँह काला करके मैदानें जंग से निकल जा।"

जैसा किसी को नींद में से उठा दिया जाए पैंदा ख़ान हड़बड़ा कर आगे

बढ़ा। काले ख़ान, कुतुब ख़ान और उसमान ख़ान उसकी मदद के लिए पीछे थे। पैंदा ख़ान ने देखा उसके सामने मुक़ाबले में गुरु महाराज ख़ुद थे। इतने में बिधीचंद और काले ख़ान में झड़प शुरु हो गई उधर बाबा गुरु दत्ता ने उस्मान ख़ान को ललकारा। पैंदा ख़ान तलवार चमकाकर गुरु महाराज की तरफ़ बढ़ा और बकने लगा-"आपने जो मेरी हेठी की है, उसका बदला लेने का आज मुझे मौक़ा मिला है अगर अब भी आप अपनी ग़ल्ती मान लें तो मैं आपको शहंशाह से माफ़ी दिलवा सकता हूँ।"

"पैंदा ख़ान! जब तूने तलवार उठा ही ली है तो आज देख लेते हैं तू कितने पानी में है। बेकार बातें करने का वक़्त नहीं। मैं तुझे मौक़ा देता हूँ पहले बेशक तू वार कर ले।" गुरु महाराज पूरे हौसले से उससे मुख़ातिब हुए।

यह सुनकर पैंदा ख़ान क्रोध में गुरु महाराज की ओर बढ़ा और उसने उनकी पिण्डली पर वार किया। तलवार की धार रकाब पर लगी पर गुरु महाराज ने अपने आप को बचा लिया। पैंदा ख़ान का अगला वार उन्होंने अपनी ढ़ाल पर लिया। लगता था जैसे गुरु महाराज उसे तलवार चलाने के ढंग सिखा रहे हों। अब पैंदा ख़ान ने आगे बढ़कर गुरु महाराज के घोड़े की लगाम पकड़ ली ताकि उन्हें खदेड़ कर काले ख़ान के हवाले कर सके। यह देखकर गुरु महाराज ने एक ऐसी ठोकर मारी कि वह चार क़दम दूर जा गिरा। पैंदा ख़ान गुरु महाराज को ललकार तो बैठा था, पर उनसे आँख मिलाने की उसमें हिम्मत नहीं थी। गुरु महाराज ने एक बार फिर उसे ग़लती सुधारने का मौक़ा दिया ताकि उसे माफ़ किया जाए। लगता था कि उसका काल नज़दीक आ चुका था।

माफ़ी माँगने की बजाय पैंदा ख़ान ने गुरु महाराज पर एक और किया जो इतनी ज़ोर का था कि उसकी तलवार उसके अपने हाथ से छूट गई। पैंदा ख़ान बिना तलवार के आगे बढ़कर उनके घोड़े को क़ाबू करने की कोशिश में था कि गुरु महाराज ने अपने खण्डे से उसे घायल कर दिया। पैंदा ख़ान बुरी तरह ज़ख़्मी होकर धरती पर औंधा जा गिरा था। गुरु महाराज ने उसे कहा-"पैंदा ख़ान तू मुसलमान है अब कल्मा पढ़ ले तेरा आख़िरी वक़्त आ गया है।"

पैंदा ख़ान धड़कते हुए दिल से गुरु महाराज के आगे अपने हाथ जोड़ने की कोशिश में था कि उसके प्राण निकल गए।

पैंदा ख़ान को ऐसा बेहोश देखकर गुरु महाराज की आँखों में आँसू फूट गए। वह आगे बढ़े और उन्होंने अपनी ढ़ाल को उसके चेहरे पर रख दिया ताकि सूरज की किरणों से उसे छाया मिल सके।

गुरु महाराज ने सोचा अब वह और नहीं लड़ेंगे अब और उनका लड़ने के लिए मन नहीं कर रहा था। वे चाहते थे कि वे लड़ाई के मैदान से कहीं दूर निकल जाएं। उन्हें बार-बार क्यों लड़ना पड़ रहा था? क्यों पैंदा ख़ान जैसे लोग सच की राह से भटक जाते हैं? क्यों भलाई का बदला लोग बुराई से देते हैं। पैंदा ख़ान को उन्होंने अपने बच्चों की तरह पाला था। उसके कितने लाड़ होते रहे। उसकी कितनी ख़ातिरें होती रहती थीं और वह कितना सजीला जवान निकला था! कितना बहादुर! कितना ज़ोरावर? उसका निशाना कभी नहीं चूकता था। उसकी शमशीर जिधर चलती क़तारों की क़तारों को काटती जाती। उस जैसा घुड़ सवार कोई नहीं था। उस जैसी नेज़ाबाज़ी कोई नहीं कर सकता था। तंदरुस्त, ऊँचा-लम्बा इस्पात में ढला जिस्म जहाँ खड़ा हो जाता उसे कोई हिला नहीं सकता था। मज़बूत खड़ी दीवार को धक्का देकर गिराते हुए उन्होंने उसे देखा था। आसमान से बातें करते हुए पेड़ को गिराना उसका खेल था। साँड़ चाहे कितना ही बेक़ाबू क्यों न हो पैंदा ख़ान अकेला उसे नथ ड़ाल देता था। शेरों से जूझना जैसा उसका खेल हो। बाज़ उसकी आँख का इशारा समझते थे।

और अब वह कैसे धरती पर पड़ा था। मिट्‌टी से मिट्‌टी हो रहा था, लहू के छप्पड़ में सना। जैसे कोई फूल टहनी से गिरकर नीचे आ गिरे। मेरे जैसे पुण्ठे किसी के नहीं हैं। मेरे जैसा क़द किसी का नहीं है। मेरे जैसा चौड़ा सीना किसी और का नहीं है। मैं चलता हूँ तो धरती हिलने लगती है। मुग़ल मेरा नाम सुनकर काँपते हैं सिक्ख फ़ौज का मैं सरदार हूँ। मेरे बिना कोई युद्ध नहीं जीती जा सकती। इतना अहंकार! इतनी अकड़! और अब कैसे पड़ा है! हाथ जुड़े हुए। औंधा लेटा, जैसे नाक रगड़ रहा हो। आँख से आँख नहीं मिला रहा था।

बदी बेशक एक सच्चाई है। एक कड़वी सच्चाई। कब तक इसके साथ लड़ना होगा। कब तक इससे जूझना होगा।

कलयुग रथु अग्नि का कूड़ु अगे रथवाहू।

जूठ का और कितनी देर तक बोल-बाला रहेगा? सच के लिए, न्याय के लिए किस-किस को शीश देना पड़ेगा। हज़ारों सिक्ख शहीद हो गए थे

कितने योद्धे अपनी जान पर खेल गए थे। वे किस-किस का नाम गिनायें।

जीना कितना मुश्किल है और मरना कितना आसान होता है। क्या नाम जपना आसान है? क्या भाणा मानना आसान है। क्या अपने आप को रब की रज़ा के हवाले पर देना सहज है? जलते तवे पर बैठ जाना। खौलती रेत को अपने शरीर पर डलवा लेना! उबलती देग़ में डुबकी लगाना! अपने ध्यान को ईश्वर के चरणों में लगाए रखना। जब गुरु महाराज इस तरह ख़्यालों में डूबे थे, उधर उस्मान ख़ान और बाबा गुरु दत्ता जूझ रहे थे। एक दूसरे पर तीर बरसा रहे थे। फिर बाबा गुर दत्ता ने एक तीर छोड़ा जो उस्मान ख़ान की कनपटी पर जा लगा। उस्मान ख़ान ने एक हृदयवेदक चीख़ मारी और औंधा जा गिरा। बाबा गुरु दत्ता और उस्मान बचपन से खेल-खेल कर बड़े हुए थे। अपने दोस्त को अपने हाथों से मरा हुआ देख कर बाबा गुरु दत्ता ने विलाप करना शुरू कर दिया। बार-बार उसे उठाने की कोशिश करते पर वह तो मर चुका था। गुरु महाराज ने उन्हें उठाया, समझाया, "कभी मर चुका फिर से जीवित हो सकता है?" यह सुन कर बाबा गुरदित्ता जी ने अपने हथियार फेंक दिए और जंग के मैदान से बाहर निकल गए। जिस लड़ाई में एक दोस्त मारा जा सकता था, उससे वह कोई वास्ता नहीं रखेंगे। गुरु महाराज बाबा गुरदित्ता की ओर बिट-बिट देख रहे थे। उन्होंने बाबा गुरदित्ता को नहीं रोका।

जब गुरु महाराज बाबा गुरदित्ता को समझा रहे थे तो काले ख़ान ने मौक़ा पाकर गुरु महाराज पर तीर बरसाने शुरू कर दिए। काले ख़ान का एक तीर उनकी भवों को ज़ख़्मी करता हुआ निकल गया। लहू के क़तरे बह रहे थे कि गुरु महाराज ने कमान चढ़ाकर एक तीर छोड़ा जो काले ख़ान के घोड़े को लगा और वह वहीं का वहीं ढेरी हो गया। अब गुरु महाराज ने भी अपना घोड़ा छोड़ दिया और तलवारों से दोनों जूझने लगे। एक दूसरे के वार वे अपनी ढालों पर ले रहे थे। बहुत देर तक लड़ाई जारी रही। फिर इस झिक-झिक से जैसे ऊब कर गुरु महाराज ने अपने खण्डे से काले ख़ान पर ऐसा वार किया कि उसका सिर उसके धड़ से अलग हो गया। यह देखकर क़ासिम ख़ान आगे आया, गुरु महाराज के पहले वार से वह ढ़ेरी हो गया। अब मुग़ल फ़ौज मैदान छोड़ कर भाग गई।

यह उनकी चौथी हार थी। गुरु हरिगोविंद जी की मुग़लों के ख़िलाफ़ यह चौथी जीत थी। जीत पर किस क़ीमत पर?

(51)

भाई बिद्धीचंद, जत्तीमल और गुरु प्यारों के साथ गुरु महाराज को एक और शानदार जीत के लिए बधाईयाँ दे रहे थे। गुरु महाराज ख़ामोशी से उनकी बातें सुन रहे थे। ज़बान से कुछ नहीं बोल रहे थे उनकी नज़रों के सामने बार-बार लड़ाई का घिनौना दृश्य घूम रहा था। चारों तरफ़ लहू का कीचड़ जिसमें पैर धसते जा रहे थे। लाशों पर लाशों के अंबार लगे पड़े थे; सारे मैदान में जैसे तिल रखने की भी जगह न बची हो। कोई चले तो कहाँ? कोई बाहर निकले तो कैसे।

घोड़ों पर आदमी पड़े थे; आदमियों पर घोड़े। हिन्दुओं की बाहें मुसलमानों के गलेबानों से उलझी हुई थीं। मुसलमानों की टाँगें हिन्दुओं के सीनों पर फैली हुई थीं। सिर अलग धड़ अलग। किसी की दायीं बाँह नहीं थी। किसी की बायीं बाँह नहीं थी। किसी की पसलियाँ छिदी हुयीं, कमर कटी हुई। कुछ मुँह के बल औंधे पड़े थे, जैसे सज्दा कर रहे हों। कोई चित्त पड़े थे जैसे सुस्ता रहे हों। कइयों के दाँत निकले हुए थे। कइयों की आँखों की पुतलियाँ फटी हुई थीं।

इनमें से ऐसे भी थे जिनकी रेख अभी-अभी निकली थी। चढ़ती जवानी, लाखों अरमान सीनों में छिपे हुए। इनमें बहादुर सूरमे थे जिन्होंने मूँछों को ऐंठ रखा था। गालों पर गालें चढ़ी हुयीं। इनमें मंझे हुए सूरमे थे, जीत के तमग़े गले में, कन्धों पर झिलमिला रहे थे। इनमें वे थे जिनके सोहाग घर में राह देख रहे थे। जिनके बच्चे राह देख रहे थे। जिनके लिए ईनामों और इकरामों के इक़रार हुए थे, ख़िलवतें जिनकी राह देख रही थीं।

और वे थे जिनके होंठों पर जैसे गुरु महाराज का नाम उकेरा हुआ हो। वे थे जिनकी नज़रों में सत गुरु का मुखड़ा अंकित हो। वे थे जिनके हाथ अरदास में जुड़े थे। वे थे जो बाँहें उठाए अपने अपने इष्ट पर निछावर कर रहे हों कोई मुँह काबे की ओर थे कोई हरि मंदर की ओर।

इस तरह के चित्र रात भर गुरु महाराज की आँखों के सामने तैरते रहे। उन्हें क्षण भर भी नींद नहीं आई।

अगली सुबह गुलबाग पर ज़ीन कसकर कीरतपुर के लिए चल पड़े। बुड्ढन शाह की आख़िरी घड़ी आ गई थी। गुरु महाराज की प्रतीक्षा में उसकी सांस अटकी हुई थी। बिधीचंद को आदेश देकर कि वे बाक़ी परिवार को अपने साथ संभालकर उनके पीछे आ जाए गुरु महाराज पखवाड़े के

रास्ते सतलुज के किनारे पहुँचे थे कि गुलबाग भी साथ छोड़ गया। रास्ते में उसने किसी तालाब का गंदा पानी पी लिया था। पहले नथना की लड़ाई में दिलबाग़ गुज़र गया था, अब गुलबाग भी चला गया।

सब साथ छोड़ रहे थे। भाई भानू जो शम्स ख़ान का सिर काट कर ख़ुद कुरबान हुआ था, जिसने दो गोलियाँ अपनी छाती में ठण्डी की थीं। भाई सिंघाँ जिसने मरते-मरते मोहम्मद अली की छाती को तीर से बींध दिया था और फिर भाई तोता तिलोका, अनंता और निहाला जैसे बहादुर सूरमे जो मुग़ल फ़ौजों को पछाड़कर ख़ुद शहीद हुए। मोहन और गोपाल जो लोहगढ़ में ज़ख़्मी होकर केवल गुरु महाराज के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे थे, फिर गुरु को प्यारे हो गए।

और फिर करतारपुर की पहली लड़ाई में भाई कल्यान जो बलवण्ड ख़ान को ख़त्म करके ख़ुद ढ़ेरी हो गया। आख़िरी सांस तक उसके होंठों पर 'सतनाम श्री वाहे गुरु' था। भाई नानो जिसने अपने खण्डे के साथ ईमाम बख़्श की बायीं बाँह काटी थी पर अगले क्षण ईमाम बख़्श के ही वार की ताब न झेलता हुआ शहीद हो गया था। भाई जगन और भाई पीरागा ने जैसे मौत को ललकारा था, कोई विरला ही इसका मान कर सकता है। फिर नबी बख़्श की मौत के बाद मुग़लों का क़हर में आकर परस और शकतू का वध करना। कैसे गुरु महाराज को याद करते हुए उन्होंने प्राण त्यागे थे।

इसके बाद नथना की जंग के सूरमे एक-एक कर के गुरु महाराज की नज़रों के सामने से गुज़रने लगे। भाई जेठा जो लाल बेग के साथ तलवार पर तलवार चलाता हुआ निर्वाण को प्राप्त कर गया। उसकी शमशीर में से कैसी चिंगारियाँ फूटती थीं, जब वह वार करता था और फिर भाई सिंघां का बेटा जत्ती मल, किस तरह तीरों की वर्षा कर रहा था, जब लाल बेग का घोड़ा एक बाण उसकी छाती में आ लगा तो उसने आँखें मूँद ली। इस जंग में गुरु महाराज की सेना के बारह सौ जवान शहीद हुए या ज़ख़्मी।

और फिर अभी-अभी ख़तम हुई करतारपुर की जंग, जिसमें सात सौ गुरु प्यारे जान पर खेल गए थे जिनमें उनका लाडला भाई लक्खू था, कुतुब ख़ाँ के साथ जूझता हुआ आख़िरी नींद में सोया। आँखें मूँदने से पहले पौन घण्टे तक मुग़ल फ़ौजों को अपनी शमशीर से भेदता रहा और फिर पैंदा ख़ान.....।

पैंदा ख़ान का ख़्याल आते ही गुरु महाराज की आँखें आँसुओं से

डबडबाने लगीं। पैंदा ख़ान धार्मिक सह-अस्तित्व, क़ौमी एकता का एक प्रतीक था।

उन्होंने फ़ैसला किया जीवन के बाक़ी दिन वे कीरतपुर के एकांत में गुज़ारेंगे। लहू का और खेल वे नहीं खेलेंगे। बदी के साथ् जंग लंबी है। पीरथी चंद के बाद धीरमल, शाहजहाँ के बाद कोई और, फिर कोई और, यह लड़ाई पुश्त दर पुश्त लड़ी जानी थी, जब तक गुरु नानक के नाम लेवा रहेंगे। जो सात सौ गुरु प्यारे करतारपुर की इस दूसरी लड़ाई में जान पर खेल गए थे, उनमें वीराँ वाली का शौहर सुमन भी था। गुरु महाराज के अस्तबल की देख-रेख करता था। किसी तलवार की ज़द में आ गया।

वीराँ वाली जो कभी उसका ख़त पाकर चिढ़ जाया करती थी, अब उसके ख़तों के लिए भी मोहताज हो गई थी। सात सौ और घर जिनके चिराग़ बुझे थे, उनमें बाबा नानक की शैदाई नसरीन का भी घर था। अनेक बच्चे, जो यतीम हो गए थे, उनमें वीरां वाली का बेटा धरम भी था, उसकी बाहों में खेलती बेटी भागां भी थी, भागभरी।

जब सुमन के इस तरह गुज़र जाने की ख़बर आई, एक क़हर जैसे आ गिरा हो। अमन और सुंदरी की इकलौती बेटी विधवा हो गई थी। शैली और नसीम के लिए जैसा एक बम फटा हो, उनका इकलौता बेटा उनसे छीन लिया गया था। दोनों घरों में अंधेरा छा गया। मिलकर एक दूसरे के पास बैठते और छल-छल आँसू रोते। सुमन के बच्चे छोटे थे। उनका पालन करना होगा। उधर वीराँवाली ने जिस क्षण सुमन की मौत की ख़बर सुनी, चुपचाप फटी-फटी आँखों से आगे-पीछे देखती रह गई। उसके मुँह से एक बोल नहीं निकला उसकी आँखों से एक आँसू नहीं फूटा।

घर वाले उसे बुलाने की लाख कोशिशें करते उससे सुमन की बातें करते। उसका बेटा उसके पास लाकर उसे लाड़ करते। उसकी बेटी को उसकी गोद में देते। वीराँ वाली पत्थर बनी देखती रहती, मुँह से कुछ न बोलती। दस बार कहने पर दोनों वक़्त रोटी का एक-एक टुकड़ा खा लेती, नहीं तो भूखी पड़ी रहती। उसकी छातियों का दूध सूख गया था और बच्ची चिल्लाने लगती। किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

सुमन के क्रियारस्म पर दोस्त-रिश्तेदार आए। कमाल को भी ख़बर मिल गई थी। वह भी आ निकला। सारी रस्में ख़त्म होने के बाद कमाल वहाँ पहुँचा

था।

एक नज़र कमाल को देखकर वीराँ वाली को जैसे एक रौशनी की किरण दिखाई दी हो। उसकी जान् में जैसे जान आ गई। उसके दिल का रंग बदल गया। जैसे किसी डूब रहे को तिनके का सहारा मिल जाए।

नहीं, कमाल तिनका नहीं था; वह तो एक शहतीर था। वीराँ वाली ने उसे कसकर बाँहों में ले लिया।

कुछ दिन रुक कर कमाल जाने की इजाज़त चाहने लगा। उसे जाने का कोई नाम न लेने देता। शैली का हाथ बटाएगा। घर में रौनक़ रहेगी और वीराँ वाली के बच्चे उसके साथ हिल मिल गए थे। कुछ दिन ही तो हुए थे, कमाल चाचा को आए हुए और जैसे वे जन्म जन्मांतरों से उसे पहचानते हों।

कमाल जब भी जाने की बात करता। घर में कोई न कोई उसकी गठरी छिपा देता। नानक मत्थे में उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। उसने भाई गुरदास जी के यहाँ भी अफ़सोस करने जाना था। वे भी नहीं रहे थे। लेकिन उसकी कोई दलील नहीं सुनी जा रही थी।

हफ़्ते, पखवाड़े, महीने गुज़र रहे थे पर कमाल को हिलने नहीं दिया जा रहा था। वह सावन भादों में आया था और अब कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। उसे नानक मत्ते लौटना था। उसकी ग़ैर-हाज़िरी में दस कमियाँ महसूस हुई होंगीं।

जाड़ा भी गुज़र गया। इन दिनों में मौसम खुल रहा था। वातावरण में एक निखार था। नई कोंपलें फूट रही थीं, नए पत्ते निकल रहे थे, रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे। वे दिन जब कबूतर गुटर-गुँ करते, हर छज्जे, हर ममटी को घेरे रखते हैं। चोंचों में चोंचें, पंखों से पंख मिलाए, अठखेलियाँ करते रहते हैं। अलसाए-अलसाए जैसे मदहोश पड़े हों। चिड़ियाँ जैसे नए घोंसले बनाती हैं। नए साथियों के साथ तिनके इकट्ठे करतीं, सारी-सारी सुबह गुज़ार देती हैं। कोई कहीं ओट ढूँढती है, कोई कहीं कोना ढूँढती है।

इस तरह की एक दोपहर थी जब कमाल लौटा, वीराँ वाली घर में अकेली थी। ड्योढ़ी की कुण्डी खोलकर उसने कुण्डी फिर बंद कर दी। आम तौर पर जब कोई घर में होता तो कुण्डी लगाने की ज़रूरत नहीं होती थी। कुण्डी लगाकर वीराँ वाली कमाल के कँधे पर ढेरी हो गई। यह कैसे मुमकिन था? बिट-बिट आँखों से उसकी तरफ़ देख रहा कमाल जैसे कह रहा हो, "मुमकिन है।" वीरों फूट-फूट कर रो रही थी। "मैंने हमेशा तुझे प्यार किया है। मेरा पहला प्यार तू था कमाल, क्या तू इससे इंकार कर सकता है? मैं

जब गुड़िया खेलती थी, हमेशा तेरी दुल्हन बनती थी। मैं लाख बार सपनों में तेरे साथ शादी कर चुकी हूँ।

"फिर जब हम बड़े हुए, तेरे पास बैठना मुझे अच्छा लगता था। तुझे अच्छा लगता था। मैं हर चीज़ तुझ से बाँट कर खाती थी। तू हर चीज़ में मेरा हिस्सा रखता था। जब तू बाहर जाता मेरे लिए कुछ न कुछ ज़रूर लाता, चाहे बेर हों। ज़मीन से उठाकर ही क्यों न चुने गए हों। मैं सदा तेरी राह देखती, तेरा इंतज़ार मुझे हमेशा स्वाद देता था।"

और फिर हम बड़े हुए तो एक दूसरे को छू कर हमें कुछ-कुछ होने लगता था। तुझे भी, मुझे भी। इन बातों की तस्वीर हमारी आँखों में रहती। हमारे होंठों पर लिखा रहता। हमारा बंद बंद बोलने के लिए कसमसा रहा होता।

"और फिर सुमन आ गया।"

"अब वह चला गया है जैसे आया था...........

"लेकिन लोग क्या कहेंगे, गुरु महाराज........" वीरां वाली बोल रही थी कि कमाल ने उसे टोक कर कुछ कहना चाहा।

"गुरु महाराज ने मुझसे मेरे बच्चों का बाप छीन लिया है, उन्हें इन दो नन्हे चिरोटों को पालने वाला देना होगा। मैं लेकर रहूँगी।" जैसे कोई भड़की हुई शेरनी हो, वीराँ वाली बोल रही थी कि बाहर ड्योढ़ी का दरवाज़ा खट-खटाया गया। घर वाले लौट आए थे।

इसके बाद जो ख़ामोशी घर में छाई हुई थी लगता था घर वालों ने वीराँ वाली के बोल 'गुरु महाराज ने मुझसे मेरे बच्चों का पिता छीन लिया है उन्हें इन दो चिरोटों को पालने वाला देना होगा' सुन लिए थे।

कुछ देर बाद इस बात का अहसास वीराँ वाली और कमाल दोनों को हो गया। कमाल तो जैसे उसकी आदत थी, शाम को किसी बहाने से बाहर गया और लौटकर नहीं आया। उसकी गठरी ज्यों के त्यों सामने बैठक में पड़ी थी।

शाम हो गई, रात पड़ गई। सब खा-पी कर सोने की तैयारी में थे लेकिन वीराँ वाली कमाल की राह देख रही थी। उसने खाना भी नहीं खाया था। जैसे उसके कान ड्योढ़ी के किवाड़ पर लगे थे। वीराँ वाली बेचैन आँगन में टहल रही थी।

घर में एक तनाव का वातावरण था। बैठक में बैठे नसीम और शैली उसे

देख रहे थे। जैसे उसकी छाती कोई धौंकनी हो, सांस फूलती जा रही थी। उसके पैर धरती पर नहीं लग रहे थे।

"चार दिन नहीं हुए हमारे बेटे को गए।" नसीम के भीतर की माँ से रहा न गया और उसने मन का ग़ुब्बार निकाला।

"अगर इसे खेह की खानी है तो अबेर क्या, सवेर क्या?" शैली ने अपने भीतर के दुख का बयान किया।

"मैं सोचती हूँ इसे हम मायके भेज देते हैं।"

"हाँ, इसने जो करतूत करनी है वहीं करे।"

"हम से नहीं देखा जाएगा।"

और फिर नसीम और शैली ने ऐसा ही किया। कमाल तो घर नहीं लौटा। एक दिन, दो-दिन उसकी राह देखकर वीराँ वाली ख़ुद ही अमृतसर जाने की बात कहने लगी, सास-ससुर सुनते ही राज़ी हो गए।

अमृतसर में अमन और सुंदरी उसे इस बात का नाम न लेने देते। क्या मजाल है एक विधवा की कि वह फिर शादी करने की बात सोचे। अमन एक जूती उतारता दूसरी पहनता। घर में कोहराम मचा रहता।

गुरु अमरदास जी ने सती के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई थी।

आप का मतलब है कोई सती न हो, पर वैसे उम्र भर जलती-भुनती रहे।

"हम किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहेंगे।" अमन कूद-कूद पड़ता।

चूँकि वह कमाल के साथ बसाना चाहती थी अब हर किसी ने कमाल में, उसकी माँ में नुख़्स निकालना शुरु कर दिया। उठते-बैठते बुराइयाँ होने लग पड़ीं।

"मैंने सुमन से पहले कमाल को प्यार किया है।" एक दिन बहस के दौरान वीराँ वाली के मुँह से निकल गया।

अमन ने सुना तो क्रोध में अँधा होकर उसने वीराँ वाली पर हाथ उठा लिया। उसके गालों पर तमाँचे जड़ दिए।

सातवाँ खण्ड
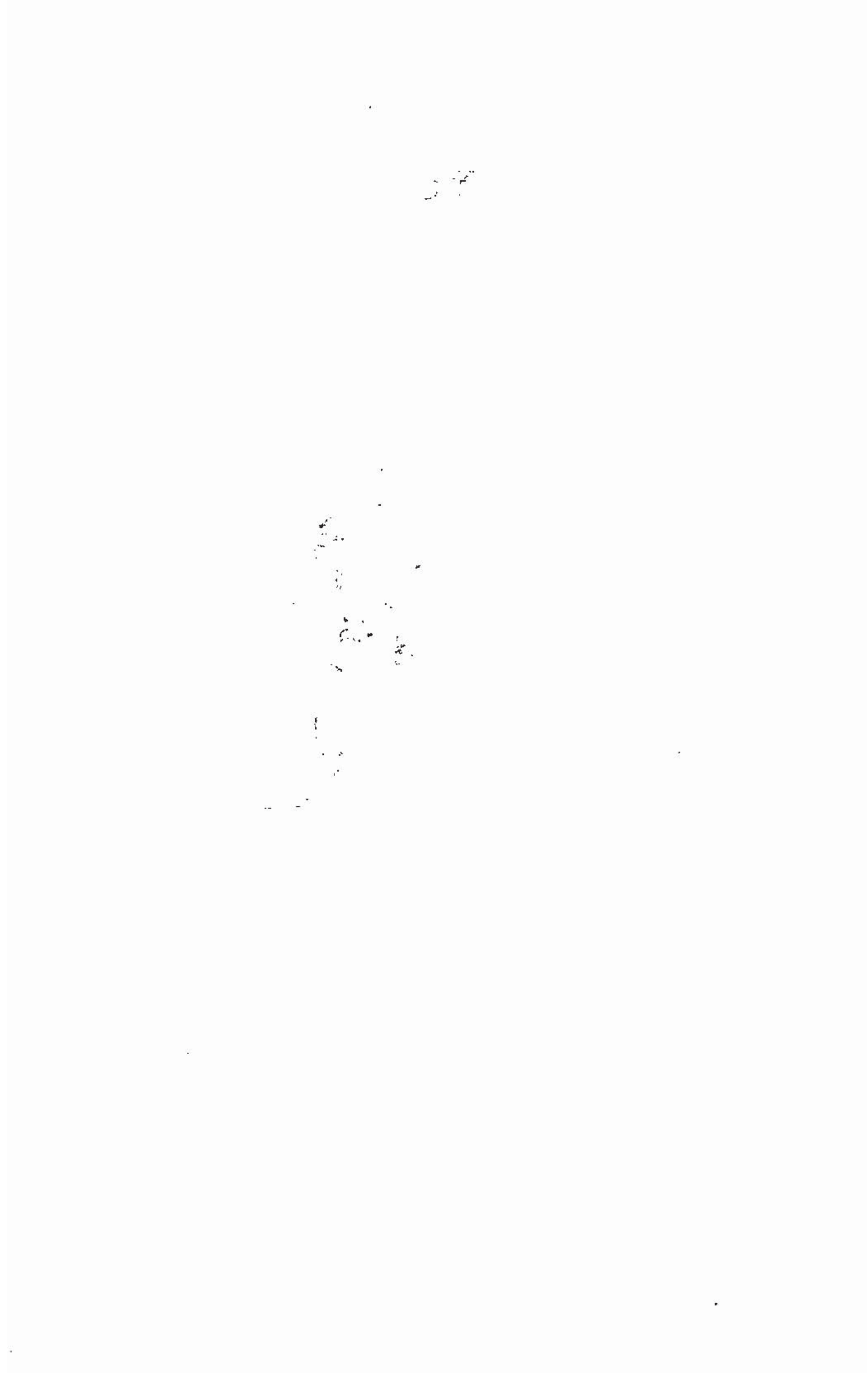
(1)

कीरतपुर एक स्वप्निल शहर था। इतना सुहाना, इतना एकांत, इतना रमणीक, पहाड़ की तलहटी पर दो नदियों के बीच, चारों तरफ़ घने जँगलों से घिरा हुआ। मुग़ल साम्राज्य के उपद्रवों से दूर हिमालय की स्वच्छ, अघूत बर्फीली चोटियों के पास, हरियाली की सुगंधियों में लिपटा, जैसे जन्नत का टुकड़ा हो। कीरतपुर की सुनहरी सुबह, कीरतपुर की मख़मूर दोपहर, कीरतपुर की सोई-सोई शाम, कीरतपुर की रातें जैसे माँ की भरकती हुई गोद में कोई बच्चा अठखेलियाँ कर रहा हो।

बाब गुरदित्ता जी का बसाया शहर कीरतपुर को बैर के साथ अभी वास्ता नहीं पड़ा था। कीरतपुर के बाज़ारों में दुकानदारों को कम तौलने और ज़्यादा लूटने का हुनर अभी नहीं आया था। कीरतपुर के शहरी अभी अहंकार से भेद-भाव से दूर थे।

कीरतपुर में हरि कीर्तन की ध्वनि गूँजती रहती। वहाँ साधु जुड़ते, संत आते, ज्ञानी मिलकर बैठते। पलकें मूँदते ही कीरतपुर में ईश्वर से लव जुड़ जाती।

कोई ऊँच नहीं, नीच नहीं, कोई वैर नहीं, विरोध नहीं। कोई अजनबी नहीं, पराया नहीं। गुरु हरिगोविंद जी को शहर में आए दस से भी ज़्यादा साल बीत चुके थे। मुग़लों ने जैसे शुक्र किया हो। सुख की सांस ली हो। उन्हें अपनी मन-मानियाँ करने की फ़ुर्सत मिली। गुरु महाराज ने भी जैसे मन से भुला दिया। ईश्वर भक्ति और समाज सेवा में उनके दिन बीत रहे थे। इतने में एक के बाद एक अनेक रिश्तेदार और श्रद्धालु गुरपुरी सिधारने लगे।

सबसे पहले गुरु महाराज के सबसे बड़े साहबज़ादे बाब गुरदित्ता चले गए। बात यूँ हुई, एक दिन जंगल में वे शिकार कर रहे थे कि उनकी टोली के एक शिकारी से एक गाय की हत्या हो गई। गाँव वालों ने शिकारी गुरु सिक्ख को पकड़ लिया। कहने लगे हमारी गाय को फिर से ज़िंदा करो नहीं तो हम शिकारी को नहीं छोड़ेंगे। बाबा गुरदित्ता जी के लिए बड़ी मुश्किल आ खड़ी हुई। अगर गाय को फिर ज़िंदा करते हैं तो गुरु पिता के क्रोध के

भागी होंगे, बाबा अटल की घटना उन्हें याद थी और अगर ऐसा नहीं करते तो गाँव वाले उनके साथी को क़ैदी बना लेने की धमकी दे रहे थे। आख़िर जब कोई दलील नहीं चली तो बाबा गुरदित्ता जी ने गाय को फिर से जीवित कर दिया। गुरु महाराज ने सोचा तो उन्हें याद कराया कि ईश्वर के नियमों में दख़ल देने का किसी को हक़ नहीं। अगर ऐसा होता तो बाबा नानक ही क्यों स्वर्ग सिधारते मौत की क़ीमत मौत के साथ ही चुकाई जा सकती है। यह सुनकर बाबा गुरदित्ता जी चुप-चाप बड्ढन शाह के तकिये पर गए और उन्होंने वहाँ प्राण त्याग दिए।

कुछ दिनों के बाद माता मरवाही जी चल बसीं।

फिर ख़बर आई कि गुरु अमरदास जी का परपोता मनोहर दास नहीं रहा।

फिर जत्तीमल का देहांत हो गया। जत्तीमल ने गुरु महाराज का तीन लड़ाइयों में साथ दिया था। बड़ा बहादुर सूरमा था। गुरु महाराज से और यह सब देखा नहीं जा रहा था। एक दिन उन्होंने मसंदों को बुलाकर हिदायत की कि चैत्र की पहली को सब सिक्ख इकट्ठे हों। गुरु महाराज ने धीरमल को भी बुलवा भेजा।

जब गुर सिक्ख इकट्ठे हो गए गुरु महाराज ने हाथ जोड़कर अकालपुरख के आगे अरदास की। जो काम वे करने जा रहे थे निर्विघ्न समाप्त हो।

अरदास ख़त्म हुई तो उन्होंने बाबा हरिराय जी को बाँह से पकड़कर गुरु नानक की गद्दी पर विराजमान कर दिया। अब बाबा बुड्ढा जी के सुपुत्र भाई भाणा जी ने उन्हें तिलक लगाया और फूलों की एक माला उनके गले में डाली। गुरु हरिगोविंद जी ने एक नारियल और पाँच पैसे गुरु हरिराय जी को भेंट करके उनकी चार-बार परिक्रमा की और फिर उनके सामने शीश नवाया।

इस तरह गुरु हरिराय जी सिक्खों के सातवें गुरु स्थापित हो गए।

चारों तरफ़ गुरु हरिराय जी की जय-जयकार होने लगी। शादियाने बजने लगे। भट्टों ने उनकी स्तुति में वारें गानीं शुरू कर दीं। सब एक दूसरे को बधाइयाँ दे रहे थे। आस-पास लोग ख़ुशियों से गले मिल रहे थे। किरतपुर शहर की गहमा-गहमी की ही कोई सीमा नहीं थी। कहीं गतका खेला जा रहा था आर कहीं नेज़ा बाज़ी हो रही थी। कहीं लड़कियाँ रंग बिरंगे कपड़े पहने नाच रही थीं और कहीं शहर की औरतें मिलकर

मलहार गा रही थीं। कहीं मुर्गों के मुक़ाबले कहीं बकरियों के रेवड़ (झुण्ड) तमाशबीनों का मनोरंजन कर रहे थे। लोग गलियों की साफ़-सफ़ाई कर रहे थे। दुकानों को सजा रहे थे। हलवाइयों को मिठाईयां बना-बनाकर फुर्सत नहीं मिलती थी।

रात पड़ी तो सारे शहर में दीप माला की गई और फिर आतिशबाज़ी होने लगी। आसमान रंग-बिरंगी रौशनियों से हुमक-हुमक उठता।

हर किसी की ज़बान पर, 'धन (धन्य) गुरु हरिराय,' 'धन गुरु हरि राय,' था।

चारों तरफ़ गुलाल और अर्क़ का छिड़काव किया गया। सारा दिन सारी रात लंगर चलता रहा। ग़रीब-ग़ुरबें में सौग़ातें बाँटी गयीं। गुरु हरिराय जी के सिर से वार कर श्रद्धालु पैसों की वर्षा करते रहे।

यह सब कुछ देख कर धीरमल कीरतपुर से ऐसे चल पड़ा जैसे किसी जलते हुए गाँव में से जोगी निकलता है।

बुड़बुड़ा (बुद-बुदा) रहा था, "चाहे लाख तिलक लगा लें, ग्रंथ साहिब की बीड़ तो मेरे क़ब्ज़े में है। करतारपुर का शहर तो मेरी जागीर है, जिसके पास ग्रंथ है, वह गुरु है। मैं तो पिछले दस बरसों से अपनी गुरु सेवा चला रहा हूँ।"

(2)

अभी सिख जगत में गुरु हरिराय जी के गुरु गद्दी को सम्हालने के जश्न मनाए जा रहे थे कि एक सुबह मुग़ल शहंशाह शाहजहाँ का एक अहलकार बादशाह का ख़त लेकर कीरतपुर पहुँचा।

अब मुग़लों को कौन सा जुनून सवार हुआ है? आस-पास के गुर सिक्ख सोचने लगे। गुरु हरिराय जी को सूचना दी गई। जब वे अपने नित्नेम से फ़ारिग़ हुए, मुग़ल मेहमान को मुलाक़ात के लिए बुलाया गया।

बात यह थी। शाहजहाँ के चार बेटे थे : दारा शिकोह, शुजा मोहम्मद, औरंगज़ेब और मुराद बख़्श। दारा शिकोह शाहजहाँ का चहेता था। वैसे भी इल्मदोस्त और ख़ुदा परस्त इंसान था। हज़रत मियां मीर जैसे दरवेशों के आस्तानों पर अकसर हाज़री भरता और उनकी संगत से फ़ैज़याब होता। सबसे बड़ा साहबज़ादा होने के नाते वैसे भी वह गद्दी का वारिस था। शाहजहाँ ने इस हक़ीक़त पर कभी पर्दा नहीं डाला था।

दारा शिकोह बेशक सबसे बड़ा बेटा था, गद्दी का हक़्दार था, पर

शाहजहाँ का तीसरा बेटा औरंगज़ेब बड़ा चालाक और ईष्यालु था। उसकी नज़र तख़्त पर थी। कहते हैं, इस बात से चिढ़कर कि अब्बा शहंशाह दारा शिकोह को क्यों इतना लाड़ करते हैं, क्यों उसकी इतनी ख़ातिरें होती हैं, औरंगज़ेब ने छल से अपने बड़े भाई दारा शिकोह के खाने में शेर की मूछें रगड़ कर मिला दीं। फ़लस्वरूप दारा शिकोह सख़्त बीमार पड़ गया। उसके पेट में काँटे चुभते, पेचीश परेशान करने लगी। शहज़ादा न कुछ खाता, न पीता, सूख कर तिनका हो गया था। तबीब और वैध अपना सिर खपा चुके थे, उसकी बीमारी में कोई फ़र्क़ न पड़ा, बल्कि उसकी हालत दिन ब दिन बिगड़ती ही जा रही थी।

आख़िर इस बात की पुष्टि हो गई कि मरीज़ के पेट में शेर की मूँछ के बाल थे। जिन्हें गलाना होगा ताकि वे आँतों में से निकल जाएँ। यह अमल (काम) एक जड़ी-बूटी से हो सकता था जिसकी तलाश होनी शुरू हो गई। बूटी कहीं से मिल नहीं रही थी। आख़िर पूछते-पुछवाते पता लगा कि वो बूटी सिक्खों के सातवें गुरु श्री हरि राय जी के शफ़ाख़ाने में थी और वे आजकल कीरतपुर में विराजमान थे।

शहंशाह की ग़ैरत का तक़ाज़ा, वह सिक्ख गुरु से इस तरह की माँग करे तो कैसे उनके पिता से चार झड़पों में उसकी फ़ौज हार चुकी थी, उसके दादा गुरु अर्जन को शहंशाह के पिता जहाँगीर के राज में, नाक़ाबिलें बरदाश्त कष्ट देकर शहीद किया गया था। वैसे भी इस्लाम की महानता का दंभ भरने वाला मुग़ल सम्राट किसी और धर्म के प्रमुख की ओर हाथ फैलाए तो कैसे?

पर उधर वली अहद के सेहत का सवाल था। ज़िंदगी और मौत का मामला। आख़िर शहंशाह के कुछ दरबारियों ने अपनी मूँछ को नीचा करके शाहजहाँ को मश्विरा दिया कि गुरु हरिराय जी को ख़त लिखकर बूटी की फ़रमाईश करने में कोई हर्ज नहीं।

चूँकि शहंशाह की ओर से कुछ इस तरह का ख़त लिखा गया-आपके बुज़ूर्ग बाबा नानक के हमारे मुग़ल ख़ानदान पर कई अहसान हैं। बताया जाता है कि एक तरह से हिन्दुस्तान की बादशाहत उन्होंने ही बख़्शी थी। ऐसे ही गुरु अंगद देव जी ने मेरे परदादा शहंशाह हुमायूँ के कठिन समय में रहनुमाई की। मेरे दादा महाबली अकबर के गुरु घर से गहरे संबंध थे, लेना-देना था, सलाह-मश्विरा होता था। माँ बदौलत को यह अफ़सोस है कि उस तरह के अनौपचारिक रिश्ते मेरे वालिद शहंशाह जहाँगीर के समय नहीं

क़ायम रहे, बल्कि मेरे और हरिगोविंद के बीच यह रिश्ते और बिगड़ गए इसका मुझे सख़्त अफ़सोस है। इन रिश्तों को अब मैं सही करना चाहता हूँ। इस वक़्त मसूला दरपेश यह है कि वली अहद दाराशिकोह जो एक नेक सुशील ख़ुदापरस्त जवान है, एक असाध्य बीमारी का शिकार होकर कब से पलंग पर लेटा है। जिस दवा से उसका इलाज हो सकता है सुनने में आया है यह ख़त पाते ही वह जड़ी-बूटी दरबार के अहलकार के हाथ हमें भिजवा दी जाएँ तो आपको बहुत-बहुत मेहरबानी होगी। दरख़ास्त है कि जड़ी-बूटी के साथ वली अहद की सेहत के लिए आपकी दुआ भी शामिल हो।

शहंशाह शाहजहाँ का ख़त पढ़ कर कुछ गुर सिक्खों के ज़ख़्म जैसे फिर से ताज़ा हो गए। वे हरगिज़ तैयार नहीं थे कि जिस मुग़ल सम्राट ने हाल ही में इतने सिक्खों की हत्याएं करवायीं थीं उनकी मदद की जाए। वे तो बल्कि इस मौक़े की तलाश में थे कि साम्राजी फ़ौज के साथ फिर झड़प ली जाए।

गुरु महाराज इस तरह की दलीलें सुनते रहें। आख़िर उन्होंने अपने निकटवर्ती गुरु सिक्खों को समझाया, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुग़लों ने हमारे भाईचारे पर अनेक अत्याचार किए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि बदी के साथ हमारी लड़ाई जारी है और जारी रहेगी पर यह वक़्त बदला लेने का नहीं। यह वक़्त उदारता दिखाने का है। एक हाथ फूल को तोड़ता है, दूसरा हाथ वही फूल अपने महबूब को पेश करता है। फूल दोनों हाथों को एक सी ख़ुश्बू देता है। संदल के वृक्ष को काटकर उसकी ख़ुश्बू काटने वाले को सरशार करती है। बुराई के बदले में अगर गुरु घर भलाई नहीं करेगा तो कौन करेगा। गुर सिक्ख अपने दर पर आए किसी सवाली को ख़ाली हाथ नहीं लौटाता।

यह सुनकर गुरु प्यारों के सर झुक गए। उन्होंने अपने एतराज़ वापस ले लिए।

गुरु महाराज ने वह बूटी भी भेजी, साथ एक मोती भी भेजा और कहलवाया, उसे पीस कर वली अहद को खिलाया जाए। बीमार भला-चंगा हो जाएगा और ऐसा ही हुआ। शहज़ादे को दवाई पिलाई गई आज और कल और। वह भला-चंगा हो गया। चलने-फिरने लगा।

शहंशाह गुरु घर का बड़ा कृतज्ञ था और जितने दिन और तख़्त पर बैठा रहा उसने गुरु घर के साथ अपने रिश्ते ख़ुशगवार बनाए रखे।

शहज़ादा दाराशिकोह की सेहतयाबी की ख़बर कीरतपुर पहुँची, गुरु महाराज के निकटवर्ती सिक्खों के मुँह जैसे फिर सूज गए। मुग़लवली अहद जिसे कल तख़्त पर बैठकर फिर सिक्खों पर जुल्म ढ़ाने थे गुरु महाराज के अनुयायियों को परेशान करना था, मंदिर तोड़ने थे, मस्जिदें खड़ी करनी थीं, उसे अपनी दवाई से, अपने आशीर्वाद से एक दुसाध्य बीमारी से बचाना उनकी नज़रों में अच्छी सियासत नहीं थी। गुरु महाराज उनके क्लेश को जानते थे। ख़ासतौर पर इसलिए वे लोग ख़फ़ा थे क्योंकि उनमें से हरेक का कोई न कोई सगा-संबंधी या दोस्त मुग़लों की लड़ाइयों में शहीद हो चुका था। अभी ज़ख़्म ताज़ा था। फिर जैसे गुरु अर्जन देव को यातनाएँ पहुँचाई गयीं। एक ग़ैरतमंद भाईचारा कैसे यह भूल सकता था?

गुरु महाराज एक शाम गुरु प्यारों के साथ बैठे हुए उन्हें समझाने लगे:

दाराशिकोह आम मुसलमानों जैसा मुसलमान नहीं, न ही बाक़ी शहज़ादों जैसा वह शहज़ादा है। उसकी संगत बड़े फ़क़ीरों के साथ रहती है, इनमें हज़रत मियाँ मीर हैं। मुल्ला शाह और मोहम्मद जैसे बड़े सूफ़ियों की उस पर कृपा दृष्टि हुई है। वह दिल से हिन्दू और मुसलमानों के बीच की राय को पाटना चाहता है। संस्कृत का प्रकाण्ड पंडित है। उसने वेदों और उपनिषदों का अध्ययन किया है। आजकल गीता का फ़ारसी में अनुवाद कर रहा है। बहुत देर तक वह वाराणसी में रहा है। यही नहीं, फ़ारसी का शायर है। कुछ शेरों में उसने इस तरह का बयान दिया है :

"जिस शहर में कोई मुल्ला रहता हो, कोई दानीश्वर नज़र नहीं आएगा।

बादशाहत आसान है। फ़क़ीरी मुश्किल है। क़तरा मोती क्यों बने, अगर वो समंदर बन सकता है?

जो हाथ सोने से जूठे होते हैं, उनमें से बू आती है; उस आत्मा का क्या हाल होगा जो सोने से अपवित्र हो गई है?"

इस तरह के उद्‌गार! कई बार तो ऐसा लगता है जैसे गुर बाणी में से वह तो उच्चार कर रहे हों।

गुरु सिक्खों ने जब यह सुना उनकी तसल्ली हो गई। गुरु महाराज में उनकी आस्था और बढ़ गई।

(3)

गुरु हरिराय जी चौदह बरस के थे जब वह गुर गद्‌दी पर विराजमान हुए। सुंदर, सुशील स्वच्छ आचार विचार-बाबा गुरदित्ता जी के न रहने पर

हर समय गुरु महाराज उन्हें अपने साथ रखते थे। उनकी तरबियत का विशेष ध्यान रखा जाता।

गुरु हरिराय जी संगीत के रसिया थे। संस्कृत, फ़ारसी के विद्वान थे। कवियों, संगीतकारों की संगत में ख़ुश रहते थे। अत्यंत कोमल रुचियों के मालिक। किसी को दुखी देख कर उनको दुख होता। कीरतपुर के रमणीक और शांत वातावरण का इसमें विशेष दख़ल था।

फूलों और फलों के बाग़ीचे तैयार करते, उनकी देख-रेख का ध्यान रखते। सुंदर काया, सजने के शौक़ीन हर तरह की ललित कलाओं में ख़ास दिलचस्पी रखते। घुड़सवारी उनका प्रिय मनोरंजन था। घुड़सवारी और शिकार। नज़दीक और दूर बैठे अपने गुरसिक्खों की मनोकामनाएँ पूरी करते थे। उनके दर पर आया कोई ख़ाली नहीं गया था। चाहे कोई दोस्त हो चाहे दुश्मन। अत्यंत कोमल चित, उन्होंने कभी किसी के दिल को नहीं दुखाया था।

एक बार घोड़े पर सवार कहीं से आ रहे थे कि उनकी नज़र गुरु हरिगोविंद जी पर जा पड़ी। बाग़ीचे में बैठे वह बहार के मौसम में गुर सिक्खों के साथ प्रकृति के गुणों की महिमा का बखान कर रहे थे। गुरु महाराज की एक झलक पाकर वे जल्दी-जल्दी घोड़े से उतर कर उन्हें आदर देने के लिए झुक रहे थे कि हवा के एक तेज़ झोंके से उनके खुले घेरे वाले चोग़े का एक छोर फूलों की एक झाड़ी से जाकर अटक गया। तेज़ी से चोग़े के पल्लू को ठीक करने लगे, कई फूल टूट कर धरती पर जा गिरे। यह देखकर उनका दिल इतना दुखा कि उनकी आँखों में से आँसू फूट आए। जब गुरु महाराज को पता चला, उन्होंने हरिराय जी को समझाया, "बेशक खुले घेरे वाला चोग़ा पहनो पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी और चीज़ को नुक़सान न पहुँचे।"

दादा गुरु के इस फ़रमान को वे कभी नहीं भूले। घुड़सवारी करते, शिकार को जाते पर जहाँ तक मुमकिन होता जंगली जानवरों की जान लिए बिना उन्हें पकड़ कर ले आता और अपने बनाए चिड़िया घर में उन्हें आने-जाने वालों के मनोरंजन के लिए रखते। उनके रख-रखाव के लिए कई ख़ास प्रबंध किए जाते।

वैसे गुरु पिता गुरु हरिगोविंद जी के आदेश के मुताबिक़ बाइस सौ घुड़सवारों की सेना वह अपनी सेना के लिए रक्खे हुए थे। उनकी बक़ायदा

क़वायद होती, सिक्का बारूद से उन्हें तैयार बर तैयार रखा जाता।

एक दिन शिकार करते हुए गुरु महाराज ने एक घायल साँप देखा। बड़े क्लेष में किसी न किसी तरह रेंग कर उसके रास्ते में आ पहुँचा था। गुरु महाराज साँप को देखकर घोड़े से उतर आए। उन्होंने अपने हाथों से साँप की मिट्टी झाड़ी। उनके कर कमलों के स्पर्श से साँप की जान जो इतनी देर से शायद अटकी हुई थी, निकल गई वह बेहोश हो गया।

उनके साथ आने वालों गुरु सिक्खों ने पूछा, "सच्चे पादशाह हुज़ूर की इस साँप पर इतनी कृपया कैसे हुई।" यह सुनकर गुरु महाराज ने बताया, "यह साँप बेचारा पिछले जन्म में एक प्रकाण्ड पंडित था। इससे अपनी विद्वता से बड़ा मान था। वेदों के ग़लत-सलत अर्थ निकालता और श्रोताओं को ग़लत रास्ते पर डालता रहता था। गुरबाणी का मज़ाक उड़ाता और कहता था-यह तो उपभाषा में लिखी गई है, उपभाषा में कोई विद्वता पूर्ण बात नहीं कही जा सकती। बाबा नानक ने जिस भाषा में अपने आप को प्रगट किया, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु अर्जन देव जी ने जिस बोली को अपनाया उस बोली को उपभाषा कहकर यह आदमी उसकी खिल्ली उड़ाया करता था। इसी के कारण उसे इस जन्म में यह काया मिली तथा अपनी बेहूदगियों के लिए वह इस तरह से क्लेष भोग रहा था। हमने इसे इस संताप से मुक्ति दिलाई है। इसकी साँस निकली तो इसने साँप की काया से छुटकारा पाया है।

इसी तरह एक बार शिकार के लिए निकले गुरु महाराज को जंगल में एक काला हिरण दिखाई दिया। उन्होंने अपना घोड़ा हिरण के पीछे दौड़ाया और दूर, बहुत दूर निकल गए। पीछे रह गए उनके साथी परेशान होने लगे। आख़िर गुरु महाराज लौटे उन्होंने सुन्दर हिरण को ज़िंदा पकड़ लिया था। बड़ा प्यारा हिरण था, लौटकर उन्होंने उसे अपने चिड़िया घर में भर्ती कर दिया।

एक ग़रीब से गुर सिक्ख औरत गुरु महाराज के दर्शनों की अभिलाषी थी। गाँव में रहने वाली, विधवा औरत को भला कौन गुरु महाराज के पास ले जाए रोज़ इन सोचों में रहती, रोज़ प्रतीक्षा करती। आख़िर एक दिन उसने दिल कड़ा करके चार पैसे कमाए और गुरु महाराज के लिए घी-शक्कर डालकर 'मन्न' पकाए। उसका जी करता था कि गुरु महाराज उसके पकाए मन्न खाए।

और फिर उस रास्ते में जहाँ से वह शिकार के लिए निकला करते थे

जाकर वह खड़ी हो गई। अकेली खड़ी धूप निकल आई, दोपहर होने लगी, राहगीर उस पर हँसते। बेशक गुरु महाराज कभी कभार उस रास्ते से गुज़रते थे, पर उस दिन भी वह उस रास्ते से गुज़रें ज़रूरी नहीं था। शिकार पर गए किसी को यह पता थोड़े ही होता है, शिकार किधर निकल जाएगा और उसके पीछे शिकारी को किधर जाना होगा। लेकिन बेचारी उस अनाम वृद्धा का विश्वास, वह कहती थी मैंने इतने चाव से उनके लिए मन्न बनाए हैं, गुरु महाराज को इधर से निकलना ही होगा। फिर कुछ राहगीर उसे समझाते वे तो पादशाह हैं तेरे मन्न कैसे खाएंगे? तू बेकार में ही सड़क के किनारे परेशान हो रही है।

पर बुढ़िया की आस्था, वह न डोली, न वह हारी। दोपहर ढ़लने लगी थी। बुढ़िया ने चिलचिलाती धूप भी झेल ली थी और फिर उसकी मुराद पूरी हो गई। सामने गुरु महाराज अपने घोड़े पर सवार होकर आ रहे थे उनके पीछे कई और शिकारी थे। बुढ़िया के पास पहुँचे तो उसने आगे बढ़कर उनके घोड़े की लगाम पकड़ ली। हाथ जोड़कर विनती की वे उसके पकाए मन्न को चखें। गुरु महाराज यह सुनकर घोड़े से उतर आए और ज्यों के त्यों खड़े होकर उन्होंने इस बुढ़िया के मन्न खाए। एक भी, दूसरा भी। ग़रीब बुढ़िया को जैसे स्वर्ग मिल गया हो।

यह सोचकर कि शिकार करते वक़्त गुरु महाराज को शायद भूख लग जाती थी, तभी तो उन्होंने मन्न खाए थे। गुरु सेवकों ने अगले दिन शिकार को निकलते वक़्त कुछ मिठाई और फल अपने साथ रख लिए ताकि कभी गुरु महाराज को ज़रूरत महसूस हो तो उन्हें पेश कर सकें। सारा दिन शिकार करते रहे, गुरु महाराज ने किसी चीज़ की माँग नहीं की।

ऐसे ही अगले दिन, फिर अगले दिन गुरु सेवक हर रोज़ अपने लिए गुरु महाराज के आहार के लिए कुछ न कुछ ज़रूर लाते थे, शाम को ज्यों का त्यों उसे वापस ले जाते।

फिर एक दिन उन्होंने गुरु महाराज से पूछा, "हज़ूर उस दिन आपने उस ग़रीब बुढ़िया के हाथ से लेकर मन्न खा लिया था। हम लोग अब रोज़ाना आपके आहार के लिए कुछ न कुछ लाते हैं आपने कभी इच्छा व्यक्त नहीं की? वैसे आप हाथ धोए बग़ैर किसी चीज़ को मुँह नहीं लगाते, उस दिन आप ने घोड़े से उतरते ही बुढ़िया के हाथ से मन्न लेकर खा लिए।"

गुरु महाराज ने फ़रमाया, "वे मन्न मैंने इसलिए नहीं खाए कि मुझे भूख

लगा था बल्कि इसलिए कि वे इस श्रद्धा से पकाए गए इस श्रद्धा से पेश किए गए जिसके लिए फ़रिश्ते भी तरसते हैं, ईश्वर भी राह देखता है।"

इसी तरह भाई गोडा नाम का एक गुर सिक्ख था। गुरु महाराज में बेहद श्रद्धा रखता था। धर्म, कर्म नित्य नियम का पक्का। गुरु महाराज उसे पसंद थे।

भाई गोण्डा हमेशा यही कहता, हज़ूर मुझे कोई सेवा बख़्सिए। मैं अपना जन्म सफ़ल करना चाहता हूँ। गुरु महाराज ने उसे काबुल जाने के लिए कहा। काबुल में धरमशाला क़ायम करके गुरसिक्खों की अगुवाई की आवश्यकता थी। पराया देश, पर भाई गोडा आदेश लेकर काबुल के लिए चल पड़ा। उसने यह परवाह भी नहीं की कि काबुल के अफ़ग़ान उसे परेशान भी कर सकते हैं।

भाई गोण्डा ने काबुल में धरमसाल बनाई। गुरसिक्ख धरमसाल में नित्य नेम से इकट्ठे होते। लंगर चलता रहता। आए-गए की सेवा होती। गोण्डा बाक़ी मसंदों की तरह धरमसाल का ख़र्च निकालकर बाक़ी भेंट की रक़म गुरु महाराज को भेंट करता।

लेकिन गुरु महाराज से इतने दूर कभी कभी भाई गोण्डा गुरु महाराज के दर्शनों के लिए तड़प उठता। एक दिन जपजी का पाठ करते हुए भाई गोण्डा की लौ गुरुचरणों से जुड़ गई। उसने सतगुरु के चरण पकड़ लिए। अपना सर उन पर टिका दिया। पाठ करता जा रहा था और गुरु चरणों को पकड़ा हुआ था।

उधर गुरु महाराज कितनी देर से एक ही आसन्न पर बैठे हुए थे, उनके भोजन का समय हो गया था। उनसे एक बार विनती की गई, उन्होंने उसे अनसुना कर दिया, दूसरी बार विनती की गई फिर तीसरी बार पर वे बिना हिले-डुले उसी आसन्न में बैठे थे। बिना कुछ बोले, उधर परोसा भोजन ठण्डा हो गया था।

आख़िर कितनी देर प्रतीक्षा करने के बाद उनकी समाधी खुली। परिवार के बाक़ी लोग इंतज़ार कर रहे थे। गुरु महाराज कह रहे थे, "आप सबको इंतज़ार करना पड़ा। भाई गोण्डा ने चरण पकड़ रखे थे जब वह चरण न छोड़ता मैं कैसे हिलता? उसका पाठ ख़त्म हुआ तो उसने हमारी छुट्टी की। गुर सिक्ख होना जितना आसान है, गुरु होना उतना ही मुश्किल।"

फिर जब गोण्डा को गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आने का अवसर

मिला, गुरसिक्खों ने भाई गोण्डा से इस घटना का ज़िक्र किया। उस[illegible] [illegible]स [illegible]। पुष्टि ही नहीं की, अपने गुरु महाराज की कृपा-दृष्टि पर विभोर हो उठा।

(4)

उस रात जब अमन ने क्रोध में अपनी दो बच्चों की माँ विवाहिता बेटी को तमाँचा जड़ा, वीराँवाली की आँख नहीं लग रही थी। फिर उसने अपने आप से पूछा—क्या वह कमाल के लिए हर किसी को नाराज़ कर सकती है—सास-ससुर को, माँ-बाप को?

'हाँ', उसके भीतर से आवाज़ आई, इसलिए क्योंकि कमाल ही ऐसा व्यक्ति था जो उसके बच्चों को उनके पिता की तरह ही प्यार दे सकता था।

लेकिन कमाल तो नानक मत्ते चला गया था। ज्यों का त्यों निकल गया था। उसने न किसी से बात की थी; न किसी से मिला था, न किसी से इजाज़त ली थी। जैसे वह सारे झमेले में पड़ना न चाहता हो।

वीराँ वाली ने सोचा उसके माता-पिता उसके क्लेष को समझेंगे। उनके साथ उनकी हमदर्दी होगी। लेकिन उसे मायके में भी निराशा हुई। शैली और नसीम की मजबूरी वह समझ सकती थी। उनका जवान जहान बेटा चला गया था और भी तो जवान-जहान बेटे गुज़र गए थे। गुरु महाराज के रास्ते पर चलकर अपना जन्म सफ़ल कर गए थे।

यही तो लोग कहते थे, "गुरु महाराज के रास्ते पर चलकर अपना जन्म सफल कर गया था।" यह सोचकर वीरां वाली की नस-नस में ज़हर जैसे घुल जाता था। उसके तन-मन में आग लग जाती थी।

उसने लोगों के मुँह से यह बात सुनी थी। लेकिन शैली और नसीम को यह कहते सुना था, न ही अमन और सुंदरी को। जिन माँ-बाप का बेटा जाता रहा था। जिनकी बेटी विधवा हो गई थी, वे इस तरह की बात नहीं सोचती थीं। ख़ुद अमन ने भी इस तरह का कोई बोल बोलकर अपने आप को कोई तसल्ली नहीं बनाई थी। गुरु महाराज का इतना शैदाई था। शैदाई तो सारे ही थे। सब अपने आपको भाग्यशाली समझते थे। जब गुरु महाराज इस संसार में सुशोभित थे, चाहे गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जन देव, गुरु हरिगोविंद या अब गुरु हरिराय जी।

फिर भी जो यह उथल-पुथल हुई थी, जो मार-काट हुई थी, जो जानी-नुक़सान हुआ था—लोग स्तब्ध से रह गए थे। हज़ारों लोग मारे गए थे। हज़ारों घर बरबार हुए थे। हज़ारों आँगन सुने हो गए थे। चाहे मुग़ल मरे,

चाहे गुर सिक्ख, मरे तो इंसान ही थे। इस धरती के वासी। ईश्वर की कायनात।

मुग़ल फ़ौजों की चार बार हार हुई है, वीराँ वाली सोचती, उसने यह कभी नहीं सुना था, उस माँ के मुँह से जिसका बेटा लड़ाई में काम आया था या उस बीवी से जिसका सोहाग लुट गया था या उस बेटे से जो यतीम हो गया था।

जब अमृतसर पर मुख़्लिस ख़ान का हमला हुआ तो कितनी परेशानी उठानी पड़ी थी। सारा शहर ख़ाली किया गया था। उन दिनों सुंदरी अमृतसर में ही थी। मुग़ल फ़ौजों ने गुरु महलों पर क़ब्ज़ा किया। दरबार साहिब में मुग़ल उत्पात मचाते रहे। जो शहरी पीछे रह गए थे, दाँत भींचकर अपने-अपने घरों में छीपे रहे। भूखे प्यासे, डर से प्राण सूखे हुए। बेशक गुरु महाराज के सिक्खों ने उन्हें खदेड़ कर बाहर किया। लेकिन जितने दिन हतमलावर शहर में रहे उन्होंने क्या-क्या अपराध नहीं किए। कैसी गोलियाँ चलती थीं, तीर सनसनाते थे, कैसे ज़ख़्मियों का हाहाकार तोपों के गोलों में कभी गुम हो जाता, कभी उबरकर काटने लगता। एक भी कुँवारी लड़की नहीं बची थी। फ़ौजों के हाथ में जो भी आई उसका सत्त-भंग किया गया। मलेच्छों ने दो-दो चार-चार बच्चों की माओं के साथ भी मुँह काला किया। लोहगढ़ के आस-पास, हरिमंदर के आस-पास की गलियाँ मुर्दों से पड़ी थीं। कुछ दिल धड़क रहे थे, कुछ पानी माँग रहे थे पर उनकी फ़रियाद सुनने वाला कोई नहीं था।

और फिर जब मुख़्लिस ख़ान और उसकी सेना की हार हुई, कितने दिन लगे थे, मुर्दों को ठिकाने लगाने में। इनमें गुर सिक्ख भी थे, हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। जले-गिरे हुए घरों की मरम्मत। बम-बारी से लोहगढ़ का बुरा हाल हो गया था। लगता था शहर जैसे झुलस गया हो।

खेत लड़ाई का मैदान बन गए थे। किसानों की फ़सलें बरबाद हो गई थीं। उनकी क्यारियाँ और मेडें नज़र नहीं आते।

वह रात कितनी भयानक थी। काली-बहरी रात, एक ख़ामोशी, सन्नाटा और फिर जैसे प्रलय आ गई हो। गोलियाँ चलतीं, बम फटते। घोड़ों की टापें। चीख़ों और फ़रयादों की आकुल ध्वनियाँ।

फिर वीराँ वाली को गुरु महाराज की सुपुत्री वीरों का ख़्याल आता और उसका दिल बैठ जाता। उसे लगता जैसे उसके प्राण सुख गए हों। अगर

बीवी वीरो बैरियों के हाथ आ जाती तो सारी सिक्ख संगत किसी को मुँह देखाने के लायक़ नहीं रहती। किस तरह की अफ़रा-तफ़री होगी कि शादी वाले घर में माहियों पर बैठी दुल्हन को भूलकर लोग गुरु महल को छोड़कर भाग गए। शादी के लिए तैयार किए-गए कपड़े, ज़ेवर, मिठाईयाँ सब कुछ ज्यों का त्यों धरा रह गया और मुग़ल फ़ौजी रात भर गुलछर्रे उड़ाते रहे। मिठाइयाँ खाते और कुफ़्र तौलते। उन छतों के नीचे जहाँ हर समय ईश्वर का नाम सुनाई देता था, शराब में बदमस्त फ़ौजी उत्पात मचाते रहे। जीत बड़ी शानदार होती है पर जीत के लिए लड़ना पड़ता है, मरना पड़ता है। अमरभंग होता है। हँसी उड़ जाती है। प्यार भरे बोलों के लिए तड़पना पड़ता है। लड़ाई के दिनों में कभी किसी ने पक्षियों को चहकते सुना है? आकाश पर अबाबीलों को उड़ते देखा है। मुर्गे बाँगें देना बंद कर देते हैं। कलियाँ खिलती नहीं, फूल अपनी पत्तियों को समेट लेते हैं। हवा में से सेंक आता है। बारूद की बू नाक को झुलसाती रहती है। मुर्दों की सड़ाँध सौ बीमारियों को जन्म देती है।

मैं पूछती हूँ इतने सूरमे गँवाकर, इतने सिपाही मरवाकर हमने हासिल क्या किया है? मुग़ल साम्राज्य ज्यों का त्यों क़ायम है। इतनी घमासान लड़ाई यहाँ होती है; दिल्ली व आगरे तक चाहे ख़बर न पहुँचती हो। नए-नए महल बनाए जा रहे हैं, नए-नए मक़बरें बनाए जा रहे हैं, नए-नए बाग़ों का निर्माण हो रहा है। पहले की तरह महफ़िलें जमती हैं, पहले की तरह शराब उड़ती है, उसी तरह नग़मे गूँजते हैं, उसी तरह नाच की झनकारें उबरती हैं। महलों के हरमों में नित्य नई भर्ती होती है, कभी कोई राजपूतानी है, कभी कोई बंगालन, कभी कोई सिंघन।

इतने लोग मरे, इतने घर वीरान हुए, इतने बच्चे यतीम हुए, इतने सोहाग लुटे कि गुरु महाराज खुद सोचने लगे आख़िर यह सब कुछ किसके लिए? गुरु महाराज जीतकर अपने आपको हारे हुए महसूस करने लगे। उनसे और ख़ून-ख़राबा नहीं देखा जाएगा। उनसे और तीर बरसाने की, तलवार चलाने की खेल नहीं खेली जाएगी।

उन्होंने जैसे शुक्र किया हो, इधर करतारपुर की दूसरी जंग ख़त्म हुई, मुग़ल फ़ौजों को मैदान छोड़कर दौड़ते उन्होंने देखा और ख़ुद घोड़े पर बैठ कर किरतपुर के लिए चल दिए। उन्होंने बाक़ी परिवार की भी प्रतीक्षा नहीं की। बिधीचंद को सब कुछ सौंपकर आप चल पड़े। सतलुज के किनारे पहुँचे

तो उनका लाडला गुलबाग़ भी साथ छोड़ गया।

मैं सोचती हूँ, कैसा लगा होगा गुरु महाराज को गुलबाग की आख़िरी साँस लेते हुए देखकर। उसे पाने के लिए कितने झमेले पड़े थे। कितना संघर्ष करना पड़ा था।

एक गुलबाग़ इन लड़ाइयों में हमने क्या-क्या नहीं गँवाया?

मैं तो सोचती हूँ, भाई बुड्ढा जी इसी दुख में कलपते हुए गए। गुरु महाराज के लिए जीवित थे। उनके दर्शन, और वे अपना जीवन सफ़ल समझते थे। जब गुरु महाराज ही गुरु की नगरी को छोड़कर ही चल पड़े वे किस लिए और साँस लेते। गुरु बाबा नानक की निशानी, गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आख़िरी विनती की और फिर आँखें मूँद लीं।

भाई गुरदास जी गए, जिन्होंने गुरु महाराज की करनी पर प्रश्न किया था, फिर अपने आप को बख़्श नहीं सके। गुरु महाराज ने उन्हें बख़्श दिया, पर एक कलाकार का कोमल हृदय अपने आप को माफ़ नहीं कर सका।

इससे बढ़कर सिक्ख संगत के लिए क्या क़हर ढह सकता था कि जिस नगरी को गुरु रामदास जी ने बसाया, जिस हरिमंदिर का गुरु अर्जन देव जी ने निर्माण किया। जहाँ पोथी को स्थापित किया गया उस शहर, उस हरिमंदर को गुरु महाराज छोड़कर चले गए। किसी को नहीं पता वे कब लौटेंगे हरिमंदर अब मसंदों के अधिकार में रहेगा जैसे दूसरे धर्मसाल और गुरुद्वारे रहते हैं।

और सुना है धीरमल ने ग्रंथ साहिब को भी गुरु महाराज से छीन लिया है। आधी-पछहद्दी पोथी जो बिधीचंद ने नक़ल करवाई थी, उसी की प्रति लेकर गुरु महाराज कीरतपुर चले गए हैं।

क्या यह अनर्थ नहीं कि जब बाबा गुरदित्ता जी ईश्वर को प्यारे हुए उनके अंतिम संस्कार के समय पूरी पोथी का पाठ भी नहीं हो सका? यही नहीं, धीरमल करतारपुर में अपनी गुरुवाई जमाए बैठा है कहता है गुरुवाई मेरा अधिकार है। गुरुवाई ही सम्हाले नहीं बैठा, धीरमल मुग़लों के साथ साज़-बाज़ भी कर रहा है। जालंधर के सूबेदार के साथ उसका पत्र-व्यवहार हो रहा है। पता नहीं कौन-सा नया चाँद चढ़ाएगा?........

इस तरह सोचती अपने आप से बातें करती वीराँ वाली की आँख लग गई। जैसे बैठी थी, सिरहाने पर सर रखकर सो गई। पता नहीं कितनी देर सोई रही।

"बेटी, तू भी उसी राह चल पड़ी जिस रास्ते पर तेरी नानी चली थी।" दूध जैसी सफ़ेद दाढ़ी एक बुज़ूर्ग ने वीराँ वाली को कँधे से पकड़ कर झिंझोड़ दिया।

"आप कौन हैं?" वीराँ वाली हड़बड़ाकर बोली।

"मैं तेरा नाना हूँ।"

"मेरा नाना?"

"हाँ, मैं भाई मूला हूँ, तूने मेरी बाबत सुन रखा होगा।"

"आप को कौन नहीं जानता?"

"जो बात जानने योग्य है वह किसी को नहीं पता।"

"भला क्या?"

"जिस साँप ने मुझे काटा, उसने कहा था, तेरी बीबी ही नहीं विधवा होगी, तेरी बेटी की बेटी को भी विधवा होना होगा? आख़िर क्यों?"

"अँधेर साईं का, किसी को बाबा नानक बुलाने आएँ और कोई बीवी अपने पति को भूँसे वाली कोठरी में छुपा दे। वह जिसके साथ के लिए फ़रिश्ते तरसते हैं, उससे कोई औरत अपने पति को वंचित रखे।"

"यह अन्याय है। हर औरत को हक़ होता है अपने पति का साथ बनाए रखे।"

"यह साथ कभी टूटते भी हैं।"

"पर इस तरह नहीं, जैसे मेरी नानी का साथ छूटा, इस तरह नहीं जैसे मेरा साथ छूटा।"

"तेरी नानी गुरु बाबे से विमुख हुई, इसलिए उसका यह हाल हुआ।"

"मैं तो विमुख नहीं हुई, मेरा सोहाग क्यों लूटा गया है।"

"इसका जवाब तू अपने आप से पूछ सकती है।"

"अगर मैं पहले विमुख नहीं हुई तो अब होऊँगी। आप किधर चल पड़े। कान खोल कर सुन लीजिए—मैं गुरुघर से विमुख होऊँगी। मैं गुरु घर से विमुख होऊँगी।"

इस तरह बुड़बड़ाती वीराँ वाली ने साथ के कमरे में सोए अमन और सुंदरी को जगा दिया। जल्दी-जल्दी वह उसके कमरे में आए। पागलों की तरह बिखरे हुए बाल अपने आप बोल रही थी, "जिस गुरु ने मेरे बच्चों का पिता मुझसे छीना है। मैं उस से विमुख होऊँगी। जिस गुरु ने मेरे बच्चों का पिता मुझसे छीना है मैं उससे विमुख होऊँगा।

आज पहली बार अमन और सुंदरी को महसूस हुआ, वीराँ वाली ठीक तड़पती थी। कुदरत ने उसके साथ अन्याय किया था। गुरु घर की इतनी सेवा करके उन्हें क्या हासिल हुआ था? पति-पत्नी दोनों अपने मन को टटोलने लगे।

(5)

भाई भगतू अस्सी के आस-पास था। सफ़ेद दाढ़ी, आँखों ज्योति बूझी-बूझी। चेहरा झुर्रियों से भरा हुआ जैसे चिड़ियों का झुण्ड अभी-अभी दाने चुग कर गया हो। ऊँचा सुनना, पोपले मुँह में से धीरे बोलना, सुनने वाले के पल्ले पड़े या ना पड़े। हाथ काँपने की बीमारी, उनका दायाँ हाथ अपने आप ही काँपने लग पड़ता, फिर ख़ुद ही काँपना बंद कर देता।

हाथ काँपते थे तो क्या, भाई भगतू घोड़ी पर ज़रूर चढ़ता था। बरसों पुरानी घोड़ी उसका साथ निभा रही थी। पत्नी कई बरस हुए साथ छोड़ चुकी थीं। दो बच्चों की माँ तीसरे बच्चे को जन्मने के समय बच्चे समेत वह भी चल बसीं। भाई भगतू ने धोबी के धुले सफ़ेद दूधिया कपड़े पहने थे। गले में रेशमी दोपटटा ज़रूर लेता था। लठठे की सलवार पर कुरता जैसे कोई चौधरी हो। चौधरी तो था सारी बिरादरी का लोग उसका नाम लेकर सफ़र शुरु किया करते थे। गुरु महाराज का नवाज़ा हुआ। उसके दर से कोई ख़ाली नहीं जाता था। आठों पहर सदावर्त लगा रहता।

घोड़ी पर बैठा गुरु महाराज के दर्शनों के लिए जाते हुए, बार-बार भाई भगतू को आज याद आ रहा था, 'भगतू, अब तेरी बारात कब चढ़नी है?' पहले भी एक बार उन्होंने पूछा था, 'क्यों भाई भगतू अब तेरा जलूस कब निकलेगा।' शायद गुरु महाराज चाहते हों, भाई भगतू एक और शादी कर ले। उसकी पत्नी को मरे भी तो कितने बरस बीत चुके थे।

और फिर भाई भगतू सोच में डूब गया। घोड़ी अपने आप दुलकी चाल से चलती जा रही थी। तभी कुछ देर बाद उसकी नज़र सामने बाजरे के खेत में चिड़ियाँ उड़ाती हुई एक लड़की पर जा पड़ी।

सोलह-सत्रह बरस की उम्र, उसका यौवन छलक-छलक पड़ता था। साँवली सलोने मालवे की लड़की जैसे दारु की कोई बंद बोतल हो। हँसते हुए नयन। महीन गुँथी गेड़ियाँ। चौड़ी चोटी उसके दोपटटे के भीतर भी नहीं समाती। अछोह कुवाँरी जैसे हाथ लगाए मैली होती हो।

'ऐ! लड़की तेरा नाम क्या है?' भाई भगतू ने घोड़ी रोक कर उससे

पूछा।

'मेरा नाम सुहागनी है।' लड़की ने जवाब दिया।

'मेरे साथ शादी करेगी?' भाई भगतू के मुँह से यह सुनकर बाजरे के खेत में खड़ी लड़की उसकी तरफ़ देखती रह गई। जवाब देती भी तो क्या? यह कोई विचार करने वाली बात थोड़ी थी।

भाई भगतू लड़की की ख़ामोशी को उसकी रज़ा-मँदी समझकर घोड़े से नीचे उतर आया। फिर उसने हाथ की छड़ी को बाजरे की बाली के गिर्द चार बार घुमाया और घोड़ी पर चढ़ कर अपने रास्ते पर चल दिया।

भाई भगतू जब गुरु महाराज के पास पहुँचा, उन्होंने फिर पूछा, क्यों भाई भगतू तेरी बरात कब चढ़ेगी? भाई भगतू ने जवाब में गुरु महाराज को रास्ते में हुई घटना के बारे में बताया।

गुरु हरि राय जी सुनकर हँसने लगे। वे तो भाई भगतू से मज़ाक (ठठा) किया करते थे। वे तो उस से यह पूछते थे कि उसने अगले जहान पर चढ़ाई कब करनी है। इतनी ज़्यादा उसकी उम्र हो गई थी। जो भी खाना-पीना था, खा-पी चुका था। उसके दोनों बेटे जवान हो गए थे। अपने-अपने काम करते थे। यह क्या अनर्थ भाई भगतू रास्ते में कर आया था।

बैराड़ कबीले का यह वही भगतू था जिसने गुरु अर्जन देव जी की अमृत सरोवर की खुदाई के समय बेहद सहायता की थी। सरोवर तैयार हुआ तो गुरु महाराज ने अपने खेतों की देख-भाल भाई भगतू के सुर्पूद कर दी। गुरु महाराज के हाज़िर होने से पहले ख़ुद किसान ही तो था। एक बार ऐसा हुआ कि फ़सल की कताइ के दिनों में मज़दूरों ने गुरु महाराज से शिकायत की कि भगतू उन्हें खाने के लिए बिना चुपड़ी हुई रोटियाँ देता था। भगतू सुनकर ख़ामोश हो गया। उस शाम संगतिया नाम के एक व्यापारी से जो घी की एक मशक् ख़रीद ली। और मज़दूरों में घी बाँट दिया। भगतू ने संगतिया से कहा कि वह अपनी रक़म कल आकर वसूल कर ले। संगतिया जब घर पहुँचा तो देखा कि उसकी मशक् पहले की तरह घी से भरी हुई है। फिर वह भगतू से किस बात के पैसे ले? संगतिया भागा हुआ आया और उसने भाई भगतू के चरण पकड़ लिया। यह तो करामात थी। भाई भगतू ने उस से कहा, यह सब गुरु महाराज की कृपा थी, वह तो बस एक चरण सेवक था।

यह सुनकर संगतिया गुरु महाराज के पास हाज़िर हो गया। गुरु महाराज कृपालु हुए और संगतिया का नाम फेरु रख दिया और कहा उसके

घर में हमेशा सदावर्त बटता रहेगा, जहाँ थके-हारे मुसाफ़िर आराम किया करेंगं भोजन किया करेंगे।

उधर सुहागनी जब घर लौटी उसने सारी घटना अपने माता-पिता को सुनाई। बाजरे के खेत में उसे चिड़िया उड़ाते देख कर कैसे कोई सनकी बुडढ़ा उससे शादी करके चला गया। घर वाले परेशान हुए; इसलिए कि लड़की यह ना कहे, 'मेरी तो शादी हो चुकी है अब मैं किसी और के साथ फेरे नहीं लूँगी।' घर वाले बड़े तँग आए। उन्होंने उस मुसाफ़िर बुडढ़े की खोज की तो पता लगा वह तो भाई भगतू था जिसके दो-दो बेटे थे—गोरा और जीवन। और इस बीच भाई भगतू तो मर भी गया थी। खेत वाली घटना के बाद थोड़ी देर ही वह जिया। उधर बाजरे की कटाइ हुई इधर भाई भगतू चले गए। उन्हें पेचिश हुई थी। अड़ोसी-पड़ोसी उसे कहते, भाई भगतू तू महाराज का अनन्य सेवक है, तू तो दूसरे के दुख दूर करता है, तुझे कोई कुछ नहीं कहेगा। पर भाई भगतू का अंत आ गया था। उसका संस्कार गुरु महाराज ने अपने हाथ से किया। गुर सिक्ख उन्हें मना करते रहे, कह रहे थे कि भाई भगतू के दो बेटे हैं, यह उनका कर्त्तव्य है।' लेकिन गुरु महाराज नहीं माने उन्होंने अपने हाथ से भाई भगतू की चिता को आग दी।

वक़्त पाकर भाई भगतू का बड़ा बेटा गोरा भटिण्डे का राजा बना। यह जानकर सुहागनी के माँ बाप उसक पास गए ताकि वह उनकी विधवा बेटी गुज़र-बसर का कोई प्रबंध करे।

गोरा ने लड़की को बुला भेजा और उसे माँ जैसा आदर दिया। अपने महलों में रहने के लिए उसे स्थान दे दिया।

कुछ समय बाद ही गोरा के एक नज़दीकी रिश्तेदार जस्सा की पत्नी मर गई। जस्सा की मरज़ी थी कि वह गोरा की विधवा माँ सुहागनी पर चादर डाल ले। गोरा ने सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने मन ही मन फ़ैसला किया कि माँ के निरादर का वह बदला लेगा। उन्हीं दिनों में गुरु महाराज नथाना का दौरा कर रहे थे। गोरा और जस्सा उनके साथ थे। एक दिन गुरु हरिराय जी शिकार को निकले। गोरा को मौक़ा मिला। जब गुरु महाराज शिकार के पीछे दूर कहीं इधर-उधर हुए। गोरा ने जस्सा का वध कर दिया। उसकी मजाल कैसे हुई थी, वह उसकी विधवा माँ के साथ शादी करने की सोचे।

गुरु महाराज को जब गोरा की इस करतूत का पता चला तो वे बड़े

नाराज़ हुए। उन्होंने गोरा को मुँह लगाना बँद कर दिया।

अपने गुरु के बग़ैर गोरा का समय कैसे बीते? जिधर गुरु महाराज जाते गोरा उनका पीछा करता लेकिन गुरु महाराज उसके अपराध को क्षमा नहीं कर रहे थे। जब गुरु महाराज नथाना का दौरा ख़त्म करके कीरतपुर लौटे, गोरा उनके पीछे-पीछे कीरतपुर आ गया। कीरतपुर से बाहर काई एक मील की दूरी पर तम्बू लगाकर रहने लगा। गुरु महाराज ने अभी-भी उसे माफ़ नहीं किया था।

फिर गुरु महाराज मालवे के दौरे के लिए निकले। गोरा भी उनके पीछे चल निकला। जब सतलुज के किनारे पहुँचा, उसकी टक्कर मुग़ल फ़ौज की एक टुकड़ी से हो गई। वे लोग लाहौर से दिल्ली जा रहे थे। जब मुग़ल फ़ौज के सरदार को पता लगा कि गोरा गुरु हरिराय का अंगरक्षक है, उसे याद आया कि उसके दादा मुख़्लिस ख़ान का वध गुरु हरिराय जी के दादा गुरु हरिगाविंद जी ने किया था। यह सोचकर उसका ख़ून खौलने लगा। पर गुरु महाराज की सवारी तो गुज़र चुकी थी। इतने में गुरु महाराज के महल पीछे आ रहे दिखाई दिए। मुग़ल फ़ौजी उन पर टूट पड़े। गोरा ने शुक्र किया जैसे उसे मोक़ा मिल गया हो, उसने मुग़ल हमलावरों का डटकर मुक़ाबला किया। यह जानते हुए कि गुरु हरि राय जी को उनके गुरु दादा हरिगोविंद लड़ाई लड़ने से मना कर गए थे। गोरा अपने साथियों की सहायता से ऐसे जूझा कि मुग़ल फ़ौजी जान छुड़ाकर मैदान छोड़ गए।

गुरु हरि राय जी को जब पता चला तो उन्होंने गोरा का बुला भेजा। गोरा ने सुना तो ज्यों का त्यों गुरु महाराज के दर्शन के लिए भाग पड़ा। उसके हाथ अभी तक लहू से लथ पथ थे। जिस बहादुरी से गोरा ने गुरु महलों की रक्षा की थी, गुरु महाराज ने प्रसन्न होकर गोरा का अपराध क्षमा कर दिया।

(6)

जब से वीरॉ वाली विधवा हुई थी, अमन के घर हमेशा झगड़ा मचा रहता था। आज फिर वही हो रहा था।

अमन भाई भगतू की विवाहिता सुहागनी की बात छेड़ बैठा, यह साबित करने के लिए कि उस जैसी कुऑरी विधवा ने, जिसने सुहाग का कोई सुख नहीं देखा था, अपनी सारी आयु किसी मर्द की ओर देखे बग़ैर गुज़ारने की रज़ामंदी दे दी। यही नहीं जब जस्सा नाम के किसी मर्द ने जिसकी बीवी

गुज़र गई थी, उससे शादी करने का सोचा तो उसके सौतेले बेटे ने जस्सा का गला काट दिया।

वीरॉं वाली ने सुना तो वह एक शेरनी की तरह अमन पर टूट पड़ी।

यह आपके मर्दों के समाज का न्याय है कि कोई बेहद बूढ़ा किसी जगत जहान लड़की से शादी कर सकता है क्योंकि वह अपने इलाक़े का मुखिया है?

'उसे गुरु महाराज का आदेश था।' अमन ने भाई भगतू की वकालत की।

'गुरु महाराज ने हरगिज़-हरगिज़ यह नहीं कहा था उन्होंने तो........' वीरॉं वाली गुस्से से आग बगूला हो रही थी।

'बेशक उन्होंने यह नहीं कहा था, 'पर भाई भगतू ने ऐसा सोच लिया था।' अमन ने टोकते हुए वीरॉं को बताया।

'यही तो मुसीबत है आप मर्दों की, गुरु महाराज कुछ कहते हैं, आप अपने मतलब के अर्थ निकाल लेते हैं, कितना अन्याय है, मरने के किनारे खड़ा कोई बुड्ढा सोलह-सत्रह बरस की एक कुऑंरी लड़की के साथ बाजरे के पौधे के गिर्द अपनी छड़ी को चार फेरे दिलाकर शादी कर लेता है।'

'अगर यह बात थी तो सुहागनी इस शादी को स्वीकार न करती। उसे किसी ने मजबूर नहीं किया था। ना ही कोई तीसरा आदमी इसका गवाह था।'

'कैसे स्वीकार न करती? औरत ज़ाद के भीतर आपके समाज ने संस्कार ही कुछ इस तरह के भरे हैं। शुरु से ही सावित्री सुकन्या बनने का आदर्श उसके सामने रखा जाता है।'

'गुरु महाराज जी की अगर इच्छा होती तो सुहागनी की फिर से शादी करवा देते उन्हें उसी दिन पता लग गया था कि भाई भगतू को ग़लत फ़हमी हो गई थी। उन्होंने इतने बरस तक गोरा को मुँह नहीं लगाया क्योंकि उसने जस्सा का वध किया था। जस्सा जो सुहागनी पर चादर डालता चाहता था।'

'फिर उन्होंने गोरा का माफ़ भी तो कर दिया।'

'यही तो हमारा रोना है, आप मर्दों के समाज में औरत को कभी इंसाफ़ नहीं मिला।'

'गुरु बाब नानक ने कहा है—सो क्यों मंदा आखीयै, जिति जम्मे राजान।'

'गुरु महाराज कुछ कहते हैं, हम उनका कुछ अर्थ निकाल लेते हैं। किसी ने औरत ज़ाद को ज़हर से भरा पौधा कहा था, तभी गुरु महाराज को उसकी ताड़ना करनी पड़ी।'

बेशक, पर यह नहीं कभी सुना, किसी विधवा ने फिर शादी रचा ली हो।'

'आपका मतलब है, इन चार लड़ाइयों में जो आँगन सूने हुए हैं, वह सदा-सदा के लिए सूने रहेंगे।

'हाँ।'

'आपका मतलब है कि जिन औरतों के सुहाग लुटे हैं, वे उसी तरह उपलों की आग पर रखी हाण्डिया की तरह खौलती रहेंगी।

'हाँ।'

'आपका मतलब है कि वे बच्चे जो यतीम हो गए हैं, उसी तरह बे-सहारा रहेंगे?'

'और किया भी क्या जा सकता है?'

'अगर आपके समाज का यह इंसाफ़ है तो फिर मेरे बच्चे दर-दर की ठोंकरें नहीं खाएंगे। मेरा जिधर जी चाहेगा उधर निकल जाऊँगी।'

'आख़िर तू जाएगी कहाँ? सुंदरी के भीतर की माँ बोली। इतने देर से ख़ामोश रहकर वह अपने बेटी के क्लेष को भोग रही थी।

'मैं नानक मत्ते जाऊँगी।'

'कमाल के पीछे जिसने इतने दिनों से तेरी बात नहीं पूछी?'

'मैं उसे जानती हूँ, वह मेरी बाँह ज़रूर पकड़ लेगा। इंकार नहीं करेगा।

कुछ दिन बाद वीराँ वाली ने अपनी ज़िद पूरी कर ली। वह अपने दोनों बच्चों को लेकर नानक मत्ते के लिए चल पड़ी।

अपने भाईचारे को इस तरह चुनौती देकर वीराँ वाली का अपनी मन-मर्ज़ी कर लेता निंदा का कारण बना। बड़ी तोहमतें लगायी गयीं, बड़ी बदमज़गी देखने में आई। अमन और सुंदरी, शैली और नसीम पहले अमृतसर फिर गोईदवाल बैठकर कुढते रहने। दुखी हृदय एक दूसरे से छिप-छिप कर रोते थे। ना खाते ना पीते। दिनों दिन कमज़ोर होते जा रहे थे। इस उम्र में आकर इनका यह हश्र, उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। अमन सोचता, सारी उम्र वह गुरु घर का श्रद्धालु रहा था। सारी उम्र उसने गुरु घर की सेवा की थी। फिर भी उसे यह क्लेश क्यों भोगना पड़ रहा था? शैली और नसीम

को लगता था जैसे उनके साथ धोखा हुआ हो। इस्पात की पकी ज़ंजीर में कोई कड़ी कमज़ोर रह गई थी और सब कुछ ठह गया था।

ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चलने का आदी अमन कहता था, 'गुरु महाराज को मुल्क के हुक्मरान के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिए था।'

'लेकिन क्यों? शैली और नसीम उसके साथ सहमत नहीं थे। वे कहते अन्याय और ज़ुल्म में ख़िलाफ़ अगर गुरु महाराज तलवार ने उठाते तो किसकी मजाल था?'

'नतीजा आपने देख ही लिया है।' सुँदरी याद कराती।

'नतीजे में क्या बुराई है। शैली अपनी राय पर क़ायम था। हमें यह नहीं भूलता चाहिए कि मुग़ल साम्राज्य से जो चारों लड़ाईयाँ लड़ी गयीं। सिक्ख सेना ने मुग़लों को हराया है। हार भी ऐसी करारी कि अब मुग़ल फ़ौजों इधर मुँह नहीं करती।'

'अगर ऐसा करना ठीक होता तो गुरु हरि गोबिंद अपने पोते को यह मश्विरा न देते कि वे मुग़लों से और कोई लड़ाई मोल न लें।' अमन का दुखी दिल बोल रहा था।

'इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि फिर कभी हिंसा के ख़िलाफ़ हम आवाज़ नहीं उठाएंगे।' शैली अपने व्यवहारिक अनुभव के आधार पर कह रहा था। 'मुझे तो लगता है यह कशमकश यह संघर्ष लंबा चलेगा।'

'मैं तेरे साथ सहमत नहीं।' अमन सर मार रहा था। अगर ऐसा नहीं होता तो गुरु महाराज शिवालिक की पहाड़ियों में किरतपुर न जा बैठते।'

'हर सूरमे को, हर सिपाही को दो झड़पों के बीच साँस लेने का समय दरकार होता है।' शैली बोला।

'जो कुछ भी है, हम तो कहीं के नहीं रहे।'

यूँ तो गुरु अर्जन देव जी को भी अपना शीश कटाना पड़ा। हमें यह नहीं भूलता चाहिए, गुरु हरि गोविंद पहले हिन्दुस्तानी हैं, जिन्होंने छह सौ बरसों से राज करते आए विदेसी हमलावरों के दाँत खट्टा किए हैं। छह सौ बरसों के बाद अपने देश वासियों को सर उठाकर चलते का हुनर सिखाया है।

'तिनका-तिनका जोड़ का हमने घोंसला बनाया था, हमारा घर बर्बाद हो गया है।' अमन फूट पड़ा। उसकी आँखों में से छल-छल आँसू बहने लगे। उसे इस तरह बेहाल देख कर क्या शैली, क्या नसीम, क्या सुंदरी, घर के बाक़ी प्राणी भी उसके साथ शामिल हो गए। कोई भी अपने आँसू नहीं रोक

पा रहा था। कोई धीरज बधाएं तो किसको।

शैली बेशक अपने आप को साहसी दिखाता था पर भीतर से वह भी खोखला हो चुका था। जिसका इकलौता बेटा यूँ चला जाए उसका जो भी हाल हो वही थोड़ा।

दिन-रात, बिलखते, दिन-रात तड़पते, अमन, शैली और सुंदरी एक-एक करक ख़त्म हो गए। न उन्होंने कभी वीरॉं वाली को याद किया, न वीरॉं वाली ने उनकी कभी खोज-ख़बर ली। बस एक नसीम बची थी, उसके क्लेश के दिन अभी न कटे हों।

(7)

उन दिनों गुरु हरिराय जी करतारपुर के दौरे पर आए हुए थे। अपने दादा गुरु हरिगोविंद जी के आदेश अनुसार वे कीरतपुर बेशक निवास रखते थे, पर गुर सिक्खों की मनोकामनाएँ पूरी करने के लिए अक्सर दौरे भी करते थे, ताकि सिख संगतों को ख़ास तौर पर किरतपुर जैसे कठिन रास्ते पर न आना पड़े। जहॉं-जहॉं उन्हें याद किया जाता वह पहुँचते की कष्ट उठाते।

करतारपुर में धीरमल बैठा हुआ था। भरसक शहर से हिलने का नाम नहीं लेता था। ग्रंथ साहब की मूल प्रति पर उसने क़ब्ज़ा जमाया हुआ था। सबसे कहता फिरता था, गुरु वह है जिसके क़ब्ज़े में पोथी है। गुरु सिक्ख सुनते और गुरु महाराज से कहते, वे ज़बरदस्ती ग्रंथ साहिब की मूल प्रति को धीरमल से छीन कर ले आएंगे। पर गुरु हरि राय जी ऐसा करने की उन्हें आज्ञा नहीं देते थे। उनकी तबीयत में ठहराव था, एक सकून था, भरसक वह किसी का दिल नहीं दुखाते थे। जो उनके पास आए सो राज़ी होकर जाए। इस तरह का उनका स्वभाव था।

गुरु महाराज इस बात से परिचित थे कि धीरमल मुग़लों से साठगांठ करता रहता था। यह भी जानते थे कि जो कुछ वह जालंधर के सूबेदार से कहता फिरता था। गुरु घर के आशयों के अनुकूल नहीं था, फिर भी वे उसकी करतूतों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे। क्योंकि धीरमल बुलाने पर किरतपुर आने से कतराता रहता था, गुरु महाराज ख़ुद करतारपुर आए हुए थे। माता नटट्ी जी धीरमल के पास रहती थीं, उनके भी दर्शन हो जाएंगे।

धीरमल को गुरु हरिराय जी से ज़्यादा ख़ौफ़ इसलिए आता था क्योंकि उनके दर्शन करके उनका आर्शीवाद लेकर सिक्ख संगत जिसे उसने अपने पीछे लगाया हुआ था, उसकी अवज्ञा करने लगेगी। उसका भॉंडा फूट

जाएगा। लोगों को सच्चे-झूठे वादे वह नहीं दे सकेगा।

पर ऐसा लगता था, वही कुछ होने जा रहा था जिसका धीरमल को ख़तरा था गुरु हरिराय जी की करतारपुर की यह यात्रा उसका भाण्डा फोड़ने वाली थी।

बात यूँ हुई, करतारपुर के एक ब्राह्मण ने मन्नत मानी कि उसके घर अगर लज्ने ने जन्म लिया तो वह गुरु घर के लिए दशांश भेंट किया करेगा। ब्राह्मण के घर बेटा जन्मा, तो उसने अपने प्रण के अनुसार आय का दशांश देना शुरू कर दिया। इसके बावजूद कुछ बरस जीवित रहकर, बच्चे का देहांत हो गया। मन्नतों से मिली हुई औलाद! गुरु महाराज के आगे हाथ जोड़ कर माथा रगड़ कर उसका आंगन भरा था कि अचानक यह क़हर आ गिरा।

रब्ब की होनी। गुरु महाराज उन दिनों करतारपुर आए हुए थे। ब्राह्मण ने यह सुना तो उसकी जान में जान आई। वह अपने मरे हुए बेटे की लाश उठाकर गुंरु हरिराय जी के सामने हाज़िर हुआ। बार-बार कहता, मेरे बेटे को ज़िंदा कर दीजिए।

गुरु महाराज उसे समझाते आस-पास के गुर सिक्ख उसे समझाते। कभी मरा हुआ भी कोई जीवित हुआ है? जीना मरना ईश्वर ने अपने हाथ में रक्खा है। न कोई किसी को पैदा कर सकता है, न कोई किसी मरे हुए को ज़िंदा कर सकता है।

'पर यह बेटा तो गुरु घर की देन है।' ब्राह्मण फ़रियाद करता। मैंने अरदास की थी। मैंने धरमसाल में हाज़िर होकर हाथ जोड़े थे। और हुज़ूर आपने मेरी सुन ली थी। मैं अपनी मन्नत के मुताबिक हर महीने दशांश निकालता रहा हूँ फिर यह ज़ुल्म क्यों?'

गुरु महाराज ने बेहाल हो रहे ब्राह्मण को समझाया उसे ईश्वर का शुक्र करता चाहिए था कि उसका बच्चा इतनी छोटी उम्र में चला गया था। अगर पाल पोस कर, बड़ा होकर, शादी करके, बच्चे पैदा करके वह इस तरह चला जाता तो बुढ़ाके में उसे कितना क्लेष होता?

पर ब्राह्मण की समझा में कुछ नहीं आ रहा था कि एक ही ज़िद कि उसका बच्चा गुरु महाराज की देन था। उसे कोई नहीं मार सकता था। गुरु महाराज ने ब्राह्मण को बाब अटल की घटना याद कराई। बाबा गुरु दत्ता जी के बारे बताया और फिर उसे समझाया कि उसे ईश्वर के भाणे (रज़ा, मर्ज़ी) को शिरोधार्य करना चाहिये। ऐया बावेला नहीं मचाना चाहिए।

ब्राह्मण गुरु महाराज की दहलीज़ पकड़कर बैठ गया। यही ज़िद कि या मेरे बच्चे को ज़िंदा करो या मैं यहीं बैठा-बैठा प्राण त्याग दूँगा।

बड़ी मुश्किल आ पड़ी। ब्राह्मण कुछ सुन नहीं रहा था। कोई दलील उसको व्याप नहीं रही थी।

कुछ देर के बाद गुरु महाराज के कुछ गुर सिक्ख उनके सामने हाज़िर होकर कहने लगे—सच्चे पादशा आप यह जानते ही हैं कि करतारपुर और आस-पास दो-आब में धीरमल ने कैसा वातावरण बनाया हुआ है। अगर इस बूढ़े ब्राह्मण की मनोकामना पूरी नहीं होती तो धीरमल हम लोगों पर फबतियाँ कसा करेगा। हमें कहीं खड़े नहीं होने देगा।

लेकिन कभी मुर्दा भी ज़िंदा हुआ है। गुरु महाराज ने उनसे पूछा।

'हुआ है हुज़ूर, अगर सत गुरु की कृपा-दृष्टि हो जाए तो क्या नहीं हो सकता?' गुरु महाराज के सिक्खों की श्रद्धा अपने ईष्ट में असीम थी।

गुरु हरि राय जी एक अजीब उलझन में फंस गए थे। बाबा नानक ने करामात बंद की हुई थी। कम से कम—दो घटनाएँ उन्हें याद थीं जब मुर्दे को ज़िंदा करके लोग गुरु महाराज के क्रोध के भागी बने थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उनके गुरु सिक्ख उन्हें ग़लत काम करने के लिए क्यों मजबूर कर रहे थे और फिर वही बात हुई। उन्हें सूचना मिली, धीरमल गली-गली में ताने देता फिरता था हर किसी से कहता फिरता था कि अगर गुरुवाई के हक़दार होते जो अभी तक बच्चे को ज़िंदा न कर देते। जो गुरु बच्चा दे सकता है, उसे ज़िंदा कैसे नहीं कर सकता।

यह सुनकर गुरु सिक्ख और ज़ोर देने लगे। ब्राह्मण के बच्चे को जीवित कर दिया जाए। और अब ब्राह्मण का भी बुरा हाल हो रहा था वह ख़ुद कुछ घड़ियों का मेहमान था।

गुरु सिक्खों को बार-बार विनती करते देखकर गुरु महाराज ने कहा, 'बेशक बच्चा फिर से जी सकता है पर इसके लिए किसी को मरना होगा। क्या आप में से कोई बच्चे को ज़िंदा करने के लिए अपनी जान देने को तैयार है?'

गुर सिक्खों ने सुना तो चारों तरफ़ ख़ामोशी छा गई। सब बग़लें झाँकने लगे।

'काई है जो जान देकर बच्चे को ज़िंदा करे।' गुरु महाराज ने फिर पूछा।

इस बार गुरु महाराज को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। भगतू का छोटा बेटा जीवन जो गुरु सिक्खों में शामिल था आगे बढ़ कर कहने लगा, 'सच्चे पादशाह मैं हाज़िर हूँ।'

गुरु महाराज सुन कर गद्-गद् हो गए। गुरु प्यारे इसी तरह के ही होने चाहिए। ऐसा ही कुरबानी का पुतला भगतू था। बिल्कुल वैसा ही उसका बेटा निकला।

अगले दिन जीवन ने प्राण त्याग दिए और ब्राह्मण के बेटे ने फिर आँखें खोल दीं।

जीवन को मरा देख कर उसके घर वालों ने दहाड़ मारकर विलाप करना शुरु कर दिया। शूरवीर जवान। अभी तो कुछ महीने पहले उसकी शादी हुई थी। यह बड़ा क़हर था। सारा परिवार गुरु महाराज के पास हाज़िर होकर फ़रियाद करने लगा।

गुरु महाराज ने उन्हें समझाया, 'हम नहीं कहते थे कि ईश्वर के कामों में दख़ल नहीं देनी चाहिए। पर जीवन के सगे-सम्बंधी हाथ जोड़ रहे थे, माथे रगड़ रहे थे, मिन्नतें कर रहे थे।

गुरु महाराज ने उन्हें धीरज बँधाया। जीवत की पत्नी के गर्भ में एक बच्चा था। जो बड़ा होकर संतदास के नाम से जाता जाएगा और बड़ा नाम पैदा करेगा।

यह सुनकर वे लोग शांत हुए और अपने-अपने घरों को लौटे।

(8)

कई बार ऐसा भी होता गुर सिक्ख आपस में बैठे, बैठकर सोचते, बेशक गुरु महाराज शिवालिक की पहाड़ियों में आप बैठे हैं। बेशक उनके दादा गुरु ने उन्होंने हिदायत की है कि वे भरसक हुकूमत के साथ लड़ाई झगड़ों में न उलझें। इतनी झड़पों के बाद सिक्ख संप्रदाय को साँस लेने की ज़रूरत थी। फिर सुरजीत होने का अवसर दरकार था, पर मुग़लों की फ़ौज को हमला करने या और कोई उपद्रव करने से काई कैसे रोक सकता था। फिर उनके सारे जरनैल मारे गए थे। कोई भी नहीं बचा था; जो-जो जंग में उतरा, अपनी आबरु अपनी जान गवाँकर गया। इतने बड़े साम्राज्य का आत्मसम्मान, वे बदला ज़रूर लेंगे।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। कई बरस बीत गए। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि गुरु हरिगोविंद से लड़ी गई हर जंग में मुग़लों का पक्ष कमज़ोर

रहा और वज़ीर ख़ान जैसे सलाहकार भी मुग़ल दरबार में थे जो यथा संभव सही सलाह देते थे। इससे भी बड़ा कारण यह था कि शहंशाह शाहजहाँ इस दौरान कई घरेलू और जज़्वाती उलझनों में फंसा हुआ था।

1631 ई. में जब शहंशाह दक्षिण की एक मुहिम पर था, उसकी महबूबा बेगम मुमताज़ महल अल्लाह को प्यारी हो गई थी। आसिफ़ ख़ान की बेटी मुमताज़ का मायके का नाम अरजमंद था।

1612 ई. में उसकी शाहजहाँ से शादी हुई। 19 बरसों के विवाहित जीवन में उसने मुग़ल सम्राट के लिए चौदह बच्चे जन्मे। आख़िरी बच्चे को जन्म देकर उसने आँखें मूँद ली। कहते है मरने से पहले उसने शाहजहाँ से फ़रमाईश की कि शहंशह उसकी याद में ऐसा मक़बरा बनवाए जिसके मुक़ाबले का दुनिया में कोई दूसरा मक़बरा न हो।

और शाहजहाँ ने मुमताज़ की याद में ताजमहल खड़ा किया जिसका मुक़ाबला आज तक संसार में कोई मक़बरा नहीं कर सका। इसके निर्माण में बीस हज़ार कारीगरों ने 1631 ई. से लेकर 1653 ई. तक 22 बरस लगाए। कहते हैं ताजमहल के लिए संगमरमर को हीरों की तरह तराश गया। और कुरआने पाक की आयतों को मनकों की तरह उसमें जड़ा गया। दुनिया भर के अनमोल हीरे और मोती क़ालीत और पर्दे इस मक़बरे का सिंगार बने। इसके लिए संगमरमर सैकड़ों मील दूर राजपूताने से मँगाया गया। चाहर दीवारी के लिए लाल पत्थर फ़तेहपुर सीकरी से आया। क़ीमती हीरे तिब्बत से, नीलम श्रीलंका से, जवाहरात रूस से, पन्ने ईरान से, मोती नील दरिया के किनारे से आए। जौहरियों ने चाँदी के दरवाज़े बनाए, दीवारों पर सोने का पलस्तर किया।

दस हज़ार हीरों, पन्नों, मोतियों और जवाहरात की छत्री क़बर पर चढ़ाई गई। दो सौ पच्चास फूट ऊँचे पत्थर पहुँचाने के लिए, ढाई मिल लंबी ढलान बनाई गई। कारीगर समरक़ंद, कंधार, बग़दाद और कुसतुनतुनिया से आए। उन्होंने पत्थरों पर ऐसे फूल तराशे जो कभी नहीं मुरझाए, कातिबों ने संगमरमर में कुरआने पाक की ऐसी आयतें उकेरीं जो वक़्त के साथ और भी अर्थपूर्ण होती जा रही हैं। यह सब कुछ एक औरत के लिए, शहंशाह शाहजहाँ के बच्चों की माँ के लिए किया गया।

जब कोई शहंशाह इस तरह पत्थरों में नग़मे साकार कर रहा हो, दूर पंजाब में हुई किसी बदमज़गी को नज़रअंदाज़ कर जाना कोई अनहोनी

नहीं।

एक और कारण भी था। शाहजहाँ के चार बेटे थे। दाराशिकोह सब से बड़ा, उसका सबसे प्यारा बेटा था। उसे वह हमेशा अपने पास रखता। दूसरे बेटे शुजा मोहम्मद को उसने बंगाल का सूबेदार तैनात किया था। तीसरा बेटा औरंगज़ेब दकन का गवर्नर था और चौथे बेटे मुराद बख़्श के हिस्से में गुजरात आया था। चाहे दाराशिकोह सबसे बड़ा और शाहजहाँ का सबसे चहेता बेटा था, उसके बाक़ी बेटे भी तख़्त पर बैठने की आस पाल रहे थे। कोई किसी का विश्वास नहीं करता था। क्या शुजा, क्या औरंगज़ेब और क्या मुराद ज़्यादा से ज़्यादा हथियार समेटते रहते। ज़्यादा से ज़्यादा फ़ौज इकट्ठी करते रहते, एक दूसरे के खिलाफ़ साज़िशें करना उनका काम था।

जब शाहजहाँ की बीमारी और बढ़ गई, राज-काज का सारा काम दाराशिकोह ने सम्हाल लिया। उसे कई ख़िताब और सम्मान दिए गए। उसके बैठने के लिए सोने की कुर्सी बनवाई गई। पर मस्तमौला फ़कीराना रूचियों का मालिक दाराशिकोह अपनी धुन में मगन रहता। नतीजा यह निकला कि अपने भाइयों की कुटिल नीतियों को समझ न सका। उसके सारे भाई बाग़ी हो गए। अपने-अपने सूबों में उन्होंने अपनी-अपनी हुकूमत क़ायम कर ली। सबसे पहले शाहशुजा ने फ़ौज लेकर दिल्ली की ओर बढ़ना शुरू किया। दाराशिकोह ने उसका मुक़ाबला करने के लिए राजा जयसिंह को भेजा। बनारस के पास बहादुरपुर में घमासान लड़ाई हुई और राजा जयसिंह ने शुजा को वापस बंगाल की तरफ़ खदेड़ दिया।

इसी तरह दाराशिकोह ने राजा जसवंत सिंह को औरंगज़ेब के ख़िलाफ़ दकन की तरफ़ भेजा। औरंगज़ेब और मुराद ने मिलकर राजा जसवंत सिंह को करारी हार दी। यह देखकर दाराशिकोह ख़ुद फ़ौज लेकर औरंगज़ेब का मुक़ाबला करने के लिए गया। चंबल के नज़दीक फिर लड़ाई हुई जिसमें दाराशिकोह की फिर हार हुई और वह भागता हुआ दिल्ली के लाल क़िले में आकर छिप गया।

औरंगज़ेब पहले आगरे की तरफ़ बढ़ा जहाँ उसने अपने बीमार बाप शाहजहाँ को बंदी बनाया। इस दौरान औरंगज़ेब ने अपने भाई मुरादबख़्श को भी अपनी हिरासत में ले लिया चाहे उसने पिछली दो लड़ाइयों में उसकी मदद की थी। अब वह दिल्ली की ओर बढ़ा।

यह देखकर दाराशिकोह के हाथ जो धन दौलत आई उसे लेकर अपने

कुछ नज़दीकी मुसाहिबों के साथ पंजाब की ओर निकल गया। औरंगज़ेब ने एलान जारी किया कि दाराशिकोह को जो भी पनाह देगा, उसे औरंगज़ेब के कोप का भागी बनना पड़ेगा। इस तरह बिना किसी दोस्त या मददगार के जब दाराशिकोह छिपता फिर रहा था, उसने गुरु हरि राय जी के साथ सम्पर्क क़ायम करने की कोशिश की। गुरु महाराज ने उसकी दुसाध्य बीमारी के समय कीरतपुर से जड़ी-बूटी भेज कर उसे तंदरूस्त किया था। फिर दाराशिकोह हज़रत मियां मीर का मुरीद था। गुरु महाराज उसकी मदद करना अपना फ़र्ज़ समझते थे।

गुरु महाराज उन दिनों कीरतपुर में नहीं थे। दाराशिकोह से उनकी मुलाक़ात व्यास नदी के किनारे हुई। दाराशिकोह ने गुरु महाराज को यक़ीन दिलाया कि वह सिर्फ़ अपने पिता शाहजहाँ के कहने पर तख़्त संभालने के लिए राज़ी हुआ था। उसे शासक बनने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह तो चाहता था, उसे अमन-चैन से कहीं टिकने दिया जाए, जहाँ वह बंदगी कर सके।

इसमें कोई शक नहीं था कि दाराशिकोह औरंगज़ेब की तरह कट्टरपंथी नहीं था। वह चाहता था, अगर मुग़लों को हिन्दुस्तान पर लंबे अर्से के लिए शासन करना है तो उन्हें हिन्दू प्रजा का दिल जीतना होगा और आस-पास हालत यह थी कि हिन्दू राजा मुग़लों के सामने ग़ुलामों की तरह हाथ बाँधे खड़े दिखाई देते थे, जिनकी बहू बेटियाँ शासकों के हरमों की ज़ीनत बनती थीं। हिन्दू व्यापारी अपने घरों को घने पेड़ों के पीछे छुपाकर रखते थे ताकि मुग़लों और पठानों की ईर्ष्या भरी नज़रों से बची रहें। दारा कई बरस वाराणसी रहकर हिन्दू ग्रंथों का अध्ययन कर चुका था। अकबर की तरह वह समानता का इच्छुक था। वह कट्टरपंथियों का विरोध करता था। वह कहता था, ईश्वर सब जगह मौजूद है, उसे किसी नाम से याद किया जा सकता है। वह इस्लाम को हिन्दू-धर्म की आध्यात्मिक परंपराओं के मुताबिक़ ढालना चाहता था। उसकी अँगूठी में, 'प्रभु' लिखा हुआ था। सूफ़ियों की तरह वह अपने और अल्लाह में फ़र्क नहीं समझता था। औरंगज़ेब का एक दरबारी मोहम्मद नाज़िम लिखता है-"दारा हमेशा ब्राह्मणों, योगियों और संन्यासियों की संगत में रहता है और इन बेकार लोगों को आलम का सच्चा स्वामी मानता है, वह इनकी किताबों को अल्लाह की देन समझता है और उनका अनुवाद करता है। इस तरह वह अपना ज़्यादा समय हम कुफ़्र में बिताता है।"

एक कलाकार की रुचियों वाला, ख़ुदापरस्त, सुशील दारा 17वीं सदी के मुग़ल दौर में शासन का अधिकारी बेशक था पर वह इसके क़ाबिल हरगिज़ नहीं था। इस ज़माने में ज़बरदस्त की ही चलती थी, दारा जैसे इंसाफ़ पसंद, समानता के हामी सूफ़ी की हार निश्चित थी।

आख़िर लाहौर, मुल्तान, भक्खड़ की तरफ़ छिपता हुआ दारा अपने पठान साथी, जीवन के विश्वासघात के कारण गुजरात में पकड़ा गया। इस हालत में दारा ने अपने भाई औरंगज़ेब को ख़त लिखा–

"मेरे भाई और शहंशाह तुझे और तेरी औलाद को यह राज मुबारक हो। मुझे कोई दुनियावी ख़्वाहिश नहीं। मैं सिर्फ़ एक नुक्कड़ चाहता हूँ जहाँ मैं बंदगी करूँ और तेरे लिए दुआ माँग सकूँ। मेरे लिए एक नौकरानी काफ़ी है जो दोनों वक़्त खाना पका सके।" औरंगज़ेब ने इस ख़त की रत्ती भर परवाह नहीं की। उसी ख़त पर अरबी में यह लिखकर कि तूने राज-पाट संभालने की कोशिश की थी। इस तरह राजद्रोह कमाया है। ख़त वापस कर दिया।

बहादुर ख़ान और मलिक जीवन जिन्होंने दारा शिकोह और उसके बेटे सिपाहशिकोह को पकड़ा था तो उसे नज़रबेग के हवाले कर दिया। उन्हें दिल्ली के नज़दीक ख़ासपुर में कै़दी बनाकर रखा गया। दो-दिन बाद औरंगज़ेब ने नज़र बेग को बुला भेजा और हुक्म दिया कि बाप-बेटे को दिल्ली शहर में कै़दियों की तरह घुमाया जाए ताकि लोगों को पता चले कि क्या होने वाला है।

औरंगज़ेब के फ़रमान के मुताबिक़ मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़ों में दाराशिकोह और सिपाहशिकोह को एक फटीचर हाथी पर बिठाकर पूरे दिल्ली शहर में घुमाया गया। उनके साथ नंगी तलवार लिए कुबड़ा नज़र बेग था। लोग अपने महबूब शहज़ादे की यह हालत देख कर रोते और नज़रबेग को लाख-लाख लानतें भेजते। पर सरकारी गारद किसी को उस मरियल हाथी के नज़दीक फटकने नहीं दे रही थी। जब जुलूस लाल कि़ले के पास पहुँचा तो एक फ़क़ीर ने पुकार कर कहा, "दारा तू हमेशा मुझे कुछ न कुछ ख़ैरात देता था, पर आज मैं जानता हूँ तेरे पास मुझे देने के लिए कुछ भी नहीं है।" सर झुकाए दारा के कानों में जब यह आवाज़ पड़ी तो उसने अपना मैला दोशाला उतारकर फ़क़ीर की ओर फेंका। पीछे आते हुए बहादुर ख़ान ने फ़ौरन आगे बढ़कर दारा के फेके हुए फटे-पुराने दोशाले पर क़ब्ज़ा कर लिया। "एक कै़दी को कोई हक़ नहीं कि वह किसी को ख़ैरात दे।" उसने

किसी को ख़फ़ा होते हुए कहा। यह देखकर फ़क़ीर ने मलिक जीवन को लाख-लाख लानतें दी।

क़हरों की गर्मी पड़ रही थी फिर भी जुलूस को क़िले के सामने दो घण्टे के लिए रोका गया। औरंगज़ेब चाहता था कि क़ैदियों को घसीट कर उसके सामने पेश किया जाए। लेकिन मुमताज़ महल के भाई के मश्विरे पर औरंगज़ेब ने हुक्म वापस ले लिया और उन्हें फिर ख़ासपुर भेज दिया गया। इसकी बजाय कि औरों को सबक़ मिले, लोगों में शहंशाह का आतंक फैले, दाराशिकोह और सिपाहशिकोह के 29 अगस्त वाले जुलूस का उल्टा असर हुआ। अगले दिन लोग बाहर सड़कों पर निकल आए और हुकूमत के ख़िलाफ़ नारे लगाने पड़े। मलिक जीवन को ख़ास तौर पर फटकारा जा रहा था; लोगों में आम शहरी भी थे, फ़क़ीर भी थे, किसान थे, मज़दूर थे, दुकानदार भी थे, दाराशिकोह के दोस्त भी थे और नाचने-गाने वाली तवायफ़ें भी थीं। मलिक जीवन जिसे बख़्तियार ख़ान का रूत्बा दिया गया था और एक हज़ारी बनाया गया था। लोगों के क्रोध का शिकार बना हुआ था। लोग उसके ऊपर पत्थर, धूल, कीचड़ और जिसके हाथ में जो आया फेंक रहे थे। औरतें छाती-पीटतीं और उसके लिए बददुआ करतीं। नौजवान नारे लगाते। हिजड़े गालियाँ बक रहे थे। ख़फ़ी ख़ान का कहना है कि गड़बड़ इतनी बढ़ गई थी कि लगता था कि बग़ावत होकर रहेगी। इतने में दिल्ली की पुलिस का हाकिम मौक़े पर पहुँचा और वह किसी तरह मलिक जीवन को बचाकर ले गया।

यह सुनकर औरंगज़ेब ने दाराशिकोह और उसके बेटे के फ़ौरन क़त्ल का हुक्म दे दिया।

इस डर से कहीं खाने में उन्हें ज़हर न दे दिया जाए, दारा और सिपाहशिकोह अपने लिए दाल पका रहे थे जब क़ातिल वहाँ पहुँचे। "क्या आप हमें क़त्ल करने आए हैं ?" दाराशिकोह ने उनसे पूछा। क़ातिल दायें-बायें बग़लें झाँकने लगे। "इसका तो हमें पता नहीं।" हमें यह हुक्म दिया गया है कि बाप बेटे को अलग कर दिया जाए। उनमें से एक ने कहा और नज़र आगे बढ़कर सिपाहशिकोह को दाराशिकोह से अलग करने लगा। बेटा अपने अब्बा से चिपक गया। रोने लगा। दाराशिकोह ने यह देखर क़ातिलों के आगे हाथ जोड़े, "मेरे भाई को जाकर मेरी तरफ़ से कहो कि अपने भतीजे को मेरे पास ही रहने दे।"

क़ातिल नहीं माने और सिपाहशिकोह को ज़बरदस्ती घसीटने पर उतर आए। दारा ने अपने तकिये के नीचे रखा एक चाकू निकाला और एक क़ातिल की पसली में खोंप दिया। चाकू बाहर नहीं निकल सका। यह देखकर बाक़ी क़ातिल बाप-बेटे पर टूट पड़े और दोनों के सिर धड़ से अलग कर दिए।

अगले दिन दारा के सिर का जुलूस निकाला गया पर इससे पहले कि उसका कटा हुआ सिर औरंगज़ेब के सामने पेश किया जाए उसने उसके माथे से लहू पोंछकर तसल्ली कर ली कि वह दारा का ही सिर था। उसके माथे पर एक चोट का निशान था जो औरंगज़ेब ने उसकी निशानी रखा हुआ था।

अब औरंगज़ेब ने दारा के कटे सिर को एक सन्दूक़ में रखकर आगरे के क़िले में यह हिदायत देकर भेजा कि जब शहंशाह खाना खाने लगे तो पुलाव के बर्तन में सिर रखकर औरंगज़ेब की ओर से पेश किया जाए।

औरंगज़ेब टोकरी भेज कर बहुत ख़ुश हुआ। उसके बेटे ने अपने बाप को भुलाया नहीं था पर जब टोकरी का ढक्कन उठाया गया तो वली अहिद दारा का कटा हुआ सिर देखकर शाहजहाँ फ़र्श पर औंधा गिरा और उसके कई दाँत टूट गए। जहाँआरा और बाक़ी बेगमों ने रोना पीटना शुरू कर दिया।

औरंगज़ेब के हुक्म के मुताबिक़ दारा के सिर को अगले दिन उसकी माँ मुमताज़ के मक़बरे में दफ़नाने के लिए भेज दिया।

इस तरह औरंगज़ेब निश्चिंत होकर दिल्ली के तख़्त पर बैठा था।

(9)

गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जन, गुरु हरिगोविंद और अब गुरु हरिराय। गुर सिक्ख सोचते थे कि वे कितने भाग्यशाली हैं कि उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी गुरु महाराज की निज अगुवाई मिल रही थी। जब भी कोई मुश्किल आती वे गुरुओं के सामने अरदास कर सकते थे, विनती कर सकते थे और कभी नहीं हुआ कि उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई हों।

फिर भी संसार दुखों का घर है। चारों तरफ़ इतना वैर-विरोध है। इतनी लूट-खसोट है, इतना अन्याय है। नित् गुरु महाराज की शिक्षा-दीक्षा के बावजूद लोगों में इतना काम, इतना क्रोध, इतना लोभ, इतना अहंकार था

ऐसा क्यों?

दैनिक जीवन में आम लोग झूठ बोलते थे। ग़लत बयानियाँ करते थे। व्यापारी सामान में मिलावट करते थे, कम तौलते थे। कहते कुछ, करते कुछ थे।

गोरा गुरु महाराज का नवाज़ा हुआ गुरु सिक्ख था। फिर भी उसने जस्सा की हत्या कर दी। यह जानते हुए कि गुरु महाराज को कभी भी यह मंजूर नहीं हुआ। फिर भी उसने पाश्चाताप किया, गुरु महाराज से क्षमा-याचना की। कृपासागर गुरु महाराज ने खुश होकर उन्हें माफ़ कर दिया।

पर सवाल यह था कि गुरु सिक्ख सत् गुरुओं के बताए रास्ते से बार-बार भटक क्यों जाते थे ? क्यों बार-बार उन्हें भूलें बख़्शवानी पड़ती थीं ? विनतियाँ करनी पड़ती थीं।

गुरु महाराज ने बाक़ी धर्मों की तरह कोई लंबी पाबंदियाँ नहीं रखी थीं, बस यही कहा था-नाम जपो, कृत्य करो और बाँट कर खाओ। फिर भी भाईचारे में इतनी बुराई क्यों थी। पृथीचंद और धीरमल जैसे लोग गुरु परिवार में क्यों पैदा हो जाते थे। पैंदा ख़ान जैसे लोग क्यों अपने हाथ आए स्वर्ग को छोड़कर क्यों नरक के भागी बन जाते थे। आख़िर क्यों ? जो सीधा-सच्चा रास्ता गुरुओं ने बताया था—मिल कर बैठने का, एक दूसरे को प्यार करने का। वैर-विरोध त्यागने का, लोग उस रास्ते पर क्यों नहीं चलते थे। मुग़लों में अकबर जैसे भी शहंशाह थे और जहाँगीर जैसे भी। क्यों दाराशिकोह जैसे खुदापरस्त का यह हश्र हुआ था और क्यों कट्टरपंथी फ़िरक़ापरस्त मनोवृत्ति के शहंशाह ने तख़्त सम्हाल लिया था। दाराशिकोह गुरु हरिराय के पास खुद चलकर आया था फिर भी उसकी हार हुई थी। फिर सारे गुर सिक्ख मिलकर उस दिन गुरु हरिराय जी के यहाँ हाज़िर हुए और अपनी शंकाओं का निवारण करते रहे। फिर सारा दिन वार्तालाप होता रहा। आख़िर सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या का ज़िक्र आया। गुरबाणी का पाठ जीव के कल्याण के लिए ज़रूरी है। गुरबाणी का पाठ प्राणी को सत्गुरु के बताए रास्ते पर डालता है। गुरबाणी के पाठ की महिमा इतनी है कि गुरु हरिगोविंद एक बार गोपाल नाम के एक गुरु सिक्ख को केवल जप सी का समझकर पाठ करने पर गुरुवाई बख़्शने के लिए तैयार हो गए थे।

गुरु महाराज कहते थे, गुरु बाबा नानक ने अपनी बाणी आम लोगों की भाषा में उच्चारी, इसलिए कि गुरु सिक्ख उसे ग्रहण कर सकें। गुरु अंगद

देव जी ने गुरमुखी लिपि को सरल से सरल रूप में प्रचलित किया ताकि लोग इसका इस्तेमाल कर सकें।

अब सवाल यह है कि हम में से कितने हैं जो नित्नेम से गुरबाणी का पाठ करते हैं ? कितने हैं जो समझकर पाठ करते हैं ताकि जो कुछ गुरबाणी में कहा गया है उस पर कोई अमल कर सके ?

यह सुनकर हाज़िर गुर सिक्खों में सब मन को टटोलने लगे। पाठ तो वे ज़रूर करते थे जो पढ़ नहीं सकते थे वे धरमसाल में हाज़िर होकर नित् नेम से पाठ सुनते थे। पर जहाँ तक गुरबाणी को समझने का सवाल था, कोई बिरले ही यह दावा कर सकते थे कि वे गुरबाणी की हर तुक का समझकर उच्चारण करते थे, ताकि ज़रूरत पड़ने पर उस पर अमल कर सकें।

जब मौजूद गुरसिक्खों में से कोई भी इस बात का दावा न कर सका कि वे समझ कर पाठ करते हैं तो उनमें से एक गुरु महाराज से पूछने लगा—"सच्चे पातशाह आप अपने सेवकों की कमजोरियों से अच्छी तरह से परिचित हैं, यह बताइए कि अगर गुरबाणी के पाठ को समझ कर न पढ़ा जाए तो इसका कोई महत्त्व है या नहीं ?"

इतने में गुरु महाराज को दूसरे सज्जन मिलने के लिए आ गए। उन्होंने गुरसिक्खों की इस समस्या को फिलहाल जैसे टाल दिया था।

अगले दिन जब गुरु महाराज शिकार के लिए निकले तो वही गुरसिक्ख उनके साथ थे। जंगल जाते समय रास्ते में उन्होंने एक ढेर पर एक टूटी हुई मट्टी की हंडिया देखी। उसके कई टुकड़े हुए पड़े थे। गुरु महाराज आगे निकल गए जैसे उन्होंने ढेर पर पड़ी हंडिया की ओर ध्यान ही न दिया हो।

शिकार करके जब वे लौटे तो दोपहर हो गई थी, चिलचिलाती धूप पड़ रही थी। गुरु महाराज उस ढेर के पास रुक गए जहाँ उस दिन सुबह उन्होंने मट्टी की टूटी हुई हंडिया देखी थी। लगता था उस हंडिया में मक्खन रखा जाता था और धूप की गर्मी से इधर-उधर जमा हुआ मक्खन पिघलकर बह रहा था।

गुरु महाराज ने गुरसिक्खों को उनकी समस्या की याद दिलाई और फरमाया, "हंडिया में मक्खन रखा जाता था, जब हंडिया टूटी तो कुछ न कुछ मक्खन जो इससे चिपका रह गया था अब सूरज की गर्मी से मट्टी के पके हुए टुकड़ों से पिघलने लगा।"

कल गुरसिक्खों ने जो अहम सवाल गुरु महाराज से पूछा था उसका

उन्हें जवाब मिल गया।

गुरबाणी समझ कर पढ़ी जानी चाहिए। पर बिना पूरी समझ के नितनेम से पढ़ी गई वाणी का महत्त्व भी कुछ न कुछ होता है। जो गुरसिक्ख श्रद्धा से गुरबाणी पढ़ते हैं चाहे वे पूरा अर्थ न भी समझते हों गुरबाणी के संगीत के रस का आनन्द तो उठा लेते हैं। गुरबाणी के बोल उनके ओठों पर चिरकने लगती है संगीत की धुनें उनके कानों में गूंजनें लगती हैं। इस तरह से गुरबाणी के साथ यह संपर्क व्यर्थ नहीं जाता।

इसमें रत्ती भर शक़ नहीं कि वाणी समझ कर पढ़ी जानी चाहिए। समझ कर पढ़ी जाने वाली वाणी का महत्त्व अमूल्य होता है। बिना समझे पढ़ी गई वाणी गुरु के नाशवान् शरीर को दुलारना है, समझ कर पढ़ी गुरबाणी गुरु महाराज की आत्मा से प्यार करना है। सबसे अधिक महत्त्व पढ़ी, सुनी, समझी वाणी पर आचरण करना है। गुरु बाबा नानक ने फरमाया है-सच्चों उरें सबके ऊपर सच्च् आचार्।

वाणी का प्रभाव ग्रहण करके उसकी शिक्षा को अपने जीवन में ढालना बेहद जरूरी है। हमारे आस-पास जो कुरीतियाँ, लूट-खसोट, अन्याय, जो बुराई दिखाई देती है उसका कारण हमारे जीवन में वाणी के भाव का अभाव है। कई लोग समुद्र में रहकर भी प्यासे रहते हैं। सीरी चंद, दातू, धीरमल और सबका मुखिया पृथियां, इनकी आत्मा में गुरबाणी की चोट नहीं लगी थी, गुरु महाराज का संपर्क बेशक हासिल था, तभी तो उनकी झोलियां खाली रहीं। बाबा गुरु नानक ने कहा है :

कर्मी, आवय्, कपड़ा, नदरी, मोखु, द्वारू।

"गुरु की कृपा चाहिए। अगर मेहर नहीं तो इन्सान वंचित रह जाता है।"

मेहर तभी होती है अगर कोई उसके हुक्म में चलें। गुरु नानक जी ने फरमाया है :

किव् सचियारा होईए किव् कूड़े तूटै पालि ?
हुकमि रज़ाई चलणा नानक लिखिया नालि।

गुरु महाराज के ये बोल सुनकर गुरु सिक्खों की सारी शंकाएं दूर हो गईं।

(10)

तेजी और नसरीन के जो दो परिवार गुरु घर से इसलिए निराश हो गए थे कि एक का जवान बेटा और दूसरे का जवान दामाद् करतारपुर की

दूसरी लड़ाई में शहीद हो गए थे, उनके मन जैसे सूने हो गए थे सिर्फ नसीम बची थी वो भी जैसे कुछ दिनों की मेहमान हो उसने कब से चारपाई पकड़ रखी थी जैसे हड्डियों की ठठरी हो गई हो। एक उम्र का तकाज़ा, दूसरे जवान-जहान् बेटे की दुखद मौत, तीसरे बहू रानी का बच्चों को लेकर घर से निकल जाना, कोई सितम् रह गया था जो उस पर न गिरा हो?

बेसहारा, लाचार, नसीम जब अपनी जिन्दगी पर नज़र फेरती तो सोचती, उसने भी तो अपने माता-पिता के साथ कुछ कम नहीं किया था। वो भी तो इसी तरह बसते-रसते घर में से निकल आयी थी जो हालत आज उसकी थी, वही हालत उसके माता-पिता की हुई होगी उस घर में कितने उसके लाड़ होते थे और उसकी ये करतूत!

फिर वो सोचती, वीरां ने जो कुछ किया था वो भी शायद इतना गलत नहीं था। हर इन्सान को अपनी जिन्दगी अपनी मर्जी के मुताबिक ढालने का हक होता है। ये हक औरत को ज्यादा मिलना चाहिए मर्दों का एकाधिकार खत्म होना चाहिए।

कभी नसीम सोचती अब उसका कोई भी नहीं रहा था, गुरु घर में उसकी आस्था भी जैसे खत्म हो गई हों, वह अपने माता-पिता के पास लाहौर लौट जायेगी। लाहौर से निकले उसे एक जमाना बीत गया था। उसे यह भी नहीं मालूम था कि कौन जीता है कौन मर चुका है। उसका छोटा भाई तो होगा। सफेद बालों वाली अपनी बूढ़ी बहन को अपने दरवाजे पर आया देखकर वह अपने किवाड़ तो नहीं बन्द कर लेगा।

शक्ति जब भी अमृतसर आती, गोइन्दवाल का चक्कर लगाती, उसके अब्बा, अम्मा की बातें करते जैसे उसकी जुबान नहीं थकती थी। अब तो शक्ति भी नहीं रही थी। उसका बेटा चमन होगा कमबख्त कहा करती थी अमन को नहीं पा सकी, मैंने अपने बेटे इन्दर का लाड़ का नाम चमन रख लिया है। उसे आवाज देती हूँ तो अपनी पहली मुहब्बत की याद आ जाती है और मुझे अपना आप अच्छा-अच्छा लगने लगता है। क्षणभर के लिए मैं भूल जाती हूँ कि मैंने अनाज के व्यापारी के साथ शादी की है जिसकी तोंद रोज बढ़ती रहती है। जितनी तोंद बढ़ती है उतनी ही उसकी जुबान मैली होती जाती है। मजाल है गाली बके बगैर कोई बात कर सके।

फिर नसीम सोचती कि अगर उसे अपने माता-पिता की कभी याद नहीं आयी थी। "शैली जैसे शौहर को पाकर याद आती भी कैसे ?" उन्होंने भी

तो कभी उसे तलाश करने की कोशिश नहीं की थी। फिर भी मायका घर एक स्वर्ग होता है। नसीम सोचती वो लाहौर अपने अब्बा, अम्मा के घर चली जायेगी। उसका छोटा भाई उसे नहीं दुत्कारेगा इतनी बड़ी हवेली थी किसी कोने में रहकर अपनी जिन्दगी के बाकी चार दिन गुजार लेगी। अब उसकी जरूरतें भी क्या रह गई थीं।

पर सवाल यह है कि गुरु घर के प्रति उसकी आस्था का क्या होगा जो शैली और उसकी सास नसरीन के कारण गुरु नानक के प्रति उसके भीतर बस चुकी थी ?

"प्रगट भयी सगले जुग अंतर गुरु नानक की वडियाई।"

और नसीम की आँखों में से झर-झर आँसू बह रहे थे।

"भारी करी तपस्या वड्डे भाग हरि शिव बण आयी।"

बाबा नानक को वो कैसे छोड़ सकेगी और नसीम बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी। "नहीं। नहीं ।। नहीं ।।।"

फिर नसीम सोचती शैली से मिलने से पहले वो कहाँ मुसलमान थी और गोइन्दवाल आने के बाद वो कौन सी सिक्ख बनी थी ? वो तो शैली की दिवानी थी। ओफ् हो शैली नहीं रहा था। जो तोहफा सुमन की शक्ल में उसे दे गया था, वो भी नहीं रहा था। यह आँगन, ये दीवारें और छतें उसे ब़ाँध कर नहीं रख सकते थे। जब से अमन गया था, सुन्दरी गई थी, उसके सिर का साई शैली नहीं रहा था ये शहर उसे काटने को दौड़ता था। लोग पराए-पराए लगने लगे थे, उनकी बोली अलग-अलग लगने लगी थी। रहन-सहन और ही तरह का लगने लगा था। नसीम की आँखों में से टप-टप आँसू बह रहे थे। बेशक अमन और सुन्दरी का उन्होंने दाह-संस्कार किया था। लकड़ियों का ढेर नीचे रखकर और लकड़ियों का ढेर ऊपर रखकर उन्होंने आग लगा दी थी। सुन्दरी को तो अमन ने खुद आग लगायी थी। मेरा मन किया आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लूँ। शैली को तो मैने दफनाया था। जब उसकी कब्र में सब मिट्टी डाल रहे थे, मुझसे देखा नहीं गया और मैंने आँखें बन्द कर ली थीं। हाय पता नहीं मेरे सुमन का क्या हस्र हुआ होगा ? सुनते हैं सात सौ सिक्ख उस लड़ाई में शहीद हुए थे। मुगल चाहे कई हजार मारे गये। हमें इससे क्या ? वे ज्यादा थे, ज्यादा काटे गये। सात सौ लाशों को किसने पहचाना होगा ? किसने संभाला होगा ? चाहे कुत्तों ने खाया हो, चाहे गिद्धों ने नोचा हो। गुरु महाराज तो अगले दिन कीरतपुर चले गए थे।

पीछे बेचारा बिधीचन्द रह गया था। किस-किस को उसने जलाया होगा, किस-किस को उसने दफनाया होगा ?

हाय, कहीं मैं वहाँ होती। मैं अपने लाडले का लहू अपने आँसुओं से धोती। अपने नाखूनों से मैं उसकी कब्र खोदती। लाख बार उसकी कब्र पर फातिहा पढ़ती। हर शाम दिया जलाने जाती। चूने से पूती हुई कब्र पर लिखवाती-यहाँ मेरा सुमन सोया पड़ा है। एक चमेली का फूल। जब वो पैदा हुआ, मुझे उसमें से चमेली के फूल की खुशबू आयी थी। तभी तो मैंने उसका नाम सुमन रखा था। मेरा फूल जिसे मसल दिया गया।

"बीबी ! तुम फिर अपने आप से बातें कर रही हो ?" हकीम साहब नसीम को देखने आये थे। "तुम्हारी नौकरानी कहाँ गई है ?"

"सलाम अलैकुम हकीम साहब ! आप मुझे इतना ठीक कर दीजिए कि मैं लाहौर जा सकूँ।" नसीम ने हाथ जोड़कर कहा।

"वालेकुम बेटी, पर लाहौर जाकर तुमने क्या करना है ?"

"दातागंज बख्श पर मैंने मन्नत पूरी करनी है।" नसीम की जुबान लड़खड़ा रही थी। झूठ बोलने की उसे आदत नहीं थी।

"जो अल्ला को मंजूर है। सफ़ा तो उसके हाथ में है, इन्सान तो बस कोशिश कर सकता है।" हकीम साहब पूड़िया में से दवाई निकालकर नसीम को खिला रहे थे, "सुना है गुरु हरिराय जी को शहंशाह औरंगजेब ने दिल्ली बुलवा भेजा है।" हकीम साहब बोले।

नसीम ने इस खबर में कोई दिलचस्पी नहीं ली वो इस तरह की बातों में दखल देने की आदी नहीं थी।

हकीम साहब गये। दवाई की खुराक से जैसे नसीम में कुछ शक्ति आयी। वो फिर अपने विचारों के प्रवाह में बहने लगी।

"मेरा अब यहाँ क्या रह गया है ? मैं लाहौर चली जाऊँगी अपने भाई कलीम के हाथ जोड़ूँगी। दोनों ने एक ही माँ का दूध पिया है। मुझे इन्कार नहीं करेगा। मुझे तो अब बस अपने अब्बा-अम्मा के साथ कब्र में एक गज़ जगह चाहिए और मेरी जरूरत भी क्या है ? पहले शक्ति के घर जाऊँगी। शक्ति का बेटा चमन तो मुझे हर वक्त मौसी-मौसी कहता है उसका मुँह भी नहीं थकता।"

"मैं लाहौर के पीछे क्यूँ पड़ गई हूँ ? वो शहर जिसे मैं छोड़कर एक बार निकल आयी किस मुँह से उस घर में जाऊँगी पता नहीं कलीम की बीबी

कैसी होगी। मुझे मुँह ही न लगाए। मैं नानक मत्ते जाऊँगी। अगर हार माननी है तो अपनी बहू से हार मानूँगी। पोते-पोती वाली तो होंगीं। मेरे धर्म की शक्ल पर सुमन की छाप है। बेटी भांगा तो माँ पर गई है। तीखे नैन नक्श। चार दिन और जो मेरी जिन्दगी है पोते पोती के साथ खेलकर गुजार लूँगी। लाहौर वालों से माफी माँगने की बजाय मैं अपनी बहू वीरां को खुद माफ़ कर दूँगी। उसमें कोई पराया तो ढूढ़ा नहीं। कमाल इस घर में बच्चों की तरह खेलकर बड़ा हुआ है। मेरे सुमन जैसा और कमाल मेरी मुगलानी का जाया है। उसका एहसान मैं कभी नहीं भूल सकती।"

"नहीं-नहीं-नहीं, मैं इन सब बातें से कोई वास्ता नहीं रखूँगी जो जुल्म मेरे साथ हुआ है, उसे भूलने का एक ही तरीका है, मैं यहाँ से निकल जाऊँ। यहाँ रहूँ या नानक मत्ते जाऊँ, सुमन की याद मुझे हर घड़ी, हर पल सताती रहेगी। जिस भाईचारे ने मेरा बेटा मुझसे छीना है, मैं उससे कोई वास्ता नहीं रखूँगी। चूल्हे में जाएं ये घर, ये खेत। अमन अपने साथ क्या ले गया है ? सुन्दरी कौन सी गठरी बाँध कर ले गई है ?"

"मैं चली जाऊँगी मेरी टाँगों में जरा सी शक्ति आयी तो मैं कान लपेटकर यहाँ से निकल जाऊँगी। जिस गुरु ने बेटा दिया था उसने बेटा वापिस ले लिया। पोते-पोती को लेकर बहूरानी निकल गई। मेरी उंगली पकड़कर सुमन ने इस घर में अपने छोटे-छोटे पैर डाले थे। कहाँ है मेरा बहादुर सरदार बेटा ? मैं सुमन के बिना नहीं जी सकती मुझे मेरा बेटा लौटा दो। हे बाबा नानक मेरा बच्चा मुझे लौटा दो मैं और कुछ नहीं माँगती। किसी को जिन्दा करने की कीमत देने के लिए अगर किसी को मरना पड़ता है तो मैं मरने के लिए तैयार हूँ, एक नजर अपने लाल को देखकर मैं आँखें मूँद लूँगी।"

"कोई नहीं सुनता। बाबा जी, आपने हमें भुला दिया है। करतारपुर से खडूर, वहाँ से गोइन्दवाल, गुरु महाराज गोइन्दवाल छोड़कर अमृतसर चले गये, हमारा आधा परिवार वहाँ जा बसा। अब कीरतपुर, कोई कहाँ-कहाँ जाए ? इस उम्र में कोई कहाँ-कहाँ जाए और ले जाने वाले चले गए। एक-एक करके सारे चले गए। मैं पूछती हूँ मैंने ही क्या गुनाह किया था? शायद मैं सबसे छोटी थी क्यों ? मेरा सुमन सबसे छोटा था उसकी बारी कैसे आ गई ? कहते हैं छोटी टहनियों को आग पहले लगती है।"

"बीबी ले बावुकी साहब का प्रसाद।" नसीम की नौकरानी माथा टेक कर लौट आयी थी, "मैंने तेरे लिए आज फिर अरदास् करवायी है। अब तू

तंदरूस्त हो जायेगी।"

"झूठ है, झूठ है। मैं अपने आपको और फरेब नहीं दूँगी। सब अरदासे झूठ है। मैं हाथ जोड़-जोड़ कर थक गई हूँ।" नसीम फटी-फटी नजरों से अपनी नौकरानी की ओर देखकर क्रोध से बोल रही थी। नौकरानी ने प्रसाद देने के लिए हाथ आगे बढ़ाया था, वो ज्यों का त्यों आगे बढ़ा हुआ था।

"बीबी ?" नौकरानी अनमनी आवाज में बोली जैसे वो एक सवालिया निशान बन गई हो।

"मैंने आपकी बावुली को देख लिया है। बावुली साहब !!! झूठ है। फरेब है ये सब कुछ।" नसीम एक पागल की तरह दहाड़ रही थी।

"बीबी !" नौकरानी के जैसे प्राण सूख गए हों। ये वो क्या सुन रही थी उसने अपने कानों में ऊंगलियाँ दे लीं।

नसीम अब फूट-फूट कर रोने लगी। बिलख-बिलख कर रो रही थी जो मुँह में आता बोलती जा रही थी।

"मैंने बावुली साहब की हर सीढ़ी पर बैठ कर सैंकड़ों बार विरद किया है, हजारों स्नान किए होंगे। मैंने लाखों बार माथा रगड़ा है। मेरे माथे पर चट्टाक पड़ गए हैं। मैंने कब-कब नहीं हाथ जोड़े। अमृतसर के हरिमंदिर की परिक्रमा में बैठकर मैं लगातार घंटों तक गुरबाणी सुनती रहती थी। एक नशे-नशे में मदहोश। शैली उतावला पड़ने लगता, मैंने एक बार उसे मना नहीं किया। अमृतसर से वो गुरु महाराज के साथ नथाना और फिर करतारपुर चला गया, मैंने उसे नहीं रोका मेरा इकलौता लाल। कोई माँ और क्या कर सकती है ? फिर भी मेरा बच्चा मुझसे छीन लिया गया। क्यूँ ? मेरा बेटा कोई मुझे ला दे। मुझे मेरा सुमन चाहिए। कोई मेरा बेटा मुझे लौटा दे।"

"बीबी ऐसे रो-रो कर हाथ जोड़ने का कोई लाभ नहीं। जो चला गया वो लौटकर कैसे आ सकता है ?" नसीम की नौकरानी उसे समझा रही थी।

"क्यूँ नहीं आ सकता। मुझे मेरा बेटा चाहिए। मैं सारे दरवाज़े छोड़कर इस दर पर आयी हूँ।" पता नहीं नसीम में कहाँ से बहस करने की इतनी शक्ति आ गई थी, पलंग पर लेटी हुई वो उठकर बैठ गई थी।

और फिर अचानक छत की ओर देखकर वो फिर छल-छल आँसू रोने लग पड़ी। फिर हाथ जोड़ रही थी, फिर जोदड़ी कर रही थी, "हे बाबा नानक, तूँ हिन्दू का गुरु और मुसलमान का पीर है, मुझसे तेरा दर नहीं छोड़ा जायेगा। इस शहर को छोड़कर कोई कैसे जा सकता है जिसे गुरु अमरदास

जी ने भाग लगाये। कोई अमृतसर को कैसे भूल सकता है। वो तो मेरा काबा है मैंने जब भी हाथ जोड़कर हरिमंदर की दहलीज पर माथा टेका मेरे मन की मुराद पूरी हुई है। अमृतसर के सरोवर में स्नान करके मुझे ठंड पड़ती रही है-

रामदास सरोवर नाते।
सभ उतरे पाप कमाते।
निर्मल होइ करि इसनाना।
गुर पूरे कीने दाना।"
(सोरठि महला 5)

इस शबद का उच्चारण करने से नसीम के अंदर जैसे एक ठहराव आ गया हो। उसके चेहरे पर एक सकून झलकने लगा। एक शान्तिमय उसकी आँखें मूँद गईं। हाथ जुड़ गये। फिर धीरे-धीरे उसके ओंठों में से ये बोल निकल रहे थे :

नानक नाम् धिआइआ।
आदिपुरख प्रभ् पाइआ।
(सोरठि महला 5)

जैसे वो आधी बेहोशी की हालत में चली गई। उसका सर तकिए पर लुढ़क गया। नसीम के चेहरे पर अब एक खुशी दिखाई दे रही थी :

इतने में उनके आँगन में कमाल आ घुसा।

"आप कौन हैं ?" कुछ दिन पहले आयी नौकरानी ने जो कमाल को नहीं जानती थी, कहा।

"इनका बेटा हूँ।" कमाल के मुँह से ये बोल सुनकर नौकरानी चीख मारकर आँगन में से भाग गई।

कमाल हैरान होकर इधर-उधर देख रहा था। फिर उसे एहसास हुआ, शायद नसीम की तबीयत ठीक नहीं थी, उसके सिरहाने मेज पर कितनी ही दवाइयाँ रखी थीं।

पलंग पर बैठकर उसने नसीम के हाथों को पकड़कर सहलाना शुरू ही किया था कि आधी बेहोशी की हालत में नसीम बोली, "तूँ आ गया, मेरा लाल।" नसीम के मुँह से ये बोल सुनकर कमाल की आँखें छलक आयीं।

(11)

कोहिनूर से जड़े हुए तख्त-ए-ताउस पर दाराशिकोह बैठा है। हूरें और

परियां आस-पास नाच रही हैं। फरिश्ते तख्त के आस-पास हाथ जोड़े खड़े हैं। चारों तरफ इत्र और फूलेल का छिड़काव हो रहा है। दाराशिकोह के चेहरे पर जैसे रब्बीनूर बस रहा था। दूर फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपड़ों में औरंगजेब कूड़े की टोकरी सर पर उठाये जा रहा था क्षण भर के लिए यह नजारा देखने के लिए खड़ा हो गया है। इतने में एक उड़नखटोला दरबार में आकर उतरता है जिसमें से सिक्ख गुरु हरिराय जी निकलते हैं। चारों तरफ गुरु महाराज की जय-जयकार हो रही है। शहनाइयाँ बजनी शुरू हो जाती हैं। अहलकार 'बा-अदब, बा-मुलाहिजा होशियार', 'बा-अदब, बा-मुलाहिजा होशियार' के बार-बार नारें लगाकर गुरु महाराज की आमद का एलान कर रहे हैं। शहंशाह दाराशिकोह तख्त से नीचे उतरकर गुरु महाराज के स्वागत के लिए आगे बढ़ता है कि पीछे से आ रहा कोई दरबारी कूड़े की टोकरी सर पर उठाये औरंगजेब को खड़ा देखकर उसे जोर की एक लात मारता है। औरंगजेब कूड़े समेत औधा जा गिरता है। उसका मुँह सिर मैले से लथपथ हो जाता है।

ठोकर खाकर गिरने से औरंगजेब की आँख खुल जाती है। वो पसीने से तर हो रहा है। कितना भयानक सपना था ! औरंगजेब अपने शाही महल में पलंग पर बैठा परेशान हो रहा है। फिर उसे याद आता है, कल ही तो उसे सिक्ख गुरु हरिराय साहब का शाही हुक्म के जबाब में ख़त मिला था। इसमें उन्होंने दाराशिकोह को एक खुदा परस्त इन्सान बताते हुए कहा था, "बेशक हमने उसे आशीर्वाद दिया था पर दिल्ली से भी खास तख्त के लिए अगर शहंशाह औरंगजेब को विश्वास न हो तो वो रात सपने में इसकी तस्दीक कर सकता है।"

बात यूँ हुई अपने पिता शाहजहाँ को आगरे के किले में कैद करके, बली अहद दाराशिकोह और उसके बेटे सिपाहशिकोह को कत्ल करके, एक भाई शुजा मोहम्मद को भगा कर और एक भाई मुराद बख्श को कैदी बनाकर औरंगजेब जब दिल्ली के तख्त पर बेखटके जम चुका था, उसने उन लोगों से बदला लेना शुरू किया जिन्होंने दाराशिकोह की मदद की थी या औरंगजेब के तख्त हासिल करने में रोड़े अटकाये थे।

इनमें से सिक्ख गुरु हरिराय जी भी थे। सिक्ख भाईचारे से वैसे भी उसका खुदा-वास्ते का वैर था। वो कट्टर फिरकापरस्त था, उसने ये फ़ैसला किया हुआ था कि वह हिन्दुस्तान को दारूल इस्लाम बनाकर रहेगा। गुरु

बाबा नानक के सिक्खों की सारे देश में चर्चा थी। इससे पहले कि ये नया धर्म और लोकप्रिय हो जाए, वो इसे मसल देना चाहता था। मथुरा, वाराणसी आदि शहरों में हिन्दू मंदिरों को तोड़ना उसका मनोरंजन था। कहीं-कहीं इनकी जगह मस्जिदें बनाकर, वो अपने जमीर को शान्त करता था।

गुरु हरिराय जी का खत पाकर फिर रात के उस सपने के बाद औरंगजेब कुछ बेफिक्र हो गया। उसका अगला ख़त सद्भावना से भरपूर था। उसने कुछ ऐसा लिखा—"बाबा नानक एक महान फकीर थे। उनका मुगल खानदान से दोस्ती का रिश्ता था। मेरे बुजुर्ग शहंशाह अकबर से भी आपके घर के रिश्ते बड़े खुशगवार थे। आपने इन रिश्तों को भूलकर दाराशिकोह का साथ दिया। मैं उसकी हस्ती खत्म करके दिल्ली के तख्त पर ज़लवा अफ़रोज हूँ। जो कुछ पहले हो चुका, सो हो चुका, हमें गड़े मुर्दों को उखाड़ने की जरूरत नहीं मैं आपके दीदार करना चाहता हूँ। आप यह ख़त पाकर दिल्ली तशरीफ़ ले आइये।"

दरअसल सपना देखने के बाद औरंगजेब को ये विश्वास हो गया था कि सिक्ख गुरु करामाती पीर है। उनसे मिलकर कोई करामात देनी चाहिए।

सिक्ख गुरु साहिबान करामात के बिल्कुल विरुद्ध थे। गुरु महाराज ने औरंगजेब का ये दूसरा ख़त अपने निकटवर्ती गुरसिक्खों के सामने रख दिया और उनकी राय पूछी।

बहुत देर तक बहस होती रही आम धारणा थी कि औरंगजेब की बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए। जो शासक अपने पिता को कैद कर सकता है, अपने बड़े भाई को कत्ल कर सकता है वो जो भी करे सो थोड़ा है और अभी सिक्खों ने हाल ही में मुगलों को चार बार हराया है। औरंगजेब जैसा खारबाज सम्राट, ये कैसे भूल सकता है ? औरंगजेब आस-पास के हिन्दू मंदिरों को गिरा-गिराकर मस्जिदें बनवा रहा था, सिक्ख भाईचारा जरूर उसकी आँख की किरकिरी होगा। पहले गुरु अर्जुन देव जी जहाँगीर की बातों में आकर लाहौर चले गए फिर लौटे नहीं। अगर गुरु महाराज दिल्ली जायेंगे तो पता नहीं फ़िरकापरस्त ज़हनियत वाला शहंशाह क्या कर बैठे।

जब यह विवाद हो रही थी, गुरु हरिराय जी के बड़े साहबजादे रामराय बाहर से आकर, इस वार्तालाप में शामिल हो गए। उनकी राय इन सबसे उलट थी। वे कहने लगे, "औरंगजेब का पहला ख़त बेशक निरंकुशता का सूचक था। तब मैं सोचता था कि हमें दिल्ली नहीं जाना चाहिए। पर शहंशाह

के इस दूसरे ख़त में सद्भावना की झलक है। मुगल शासक ने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है, इसका तिरस्कार करना हमारे लिए वाजिब नहीं होगा। हमें दिल्ली जाकर देखना चाहिए कि औरंगजेब कितने पानी में है मिलने में कोई हर्ज नहीं, कहावत है, 'मुल्ला पुत्तर नहीं देगा, लेकिन सलवार तो नहीं उतार लेगा।"

एक गुरु महाराज का बड़ा बेटा फिर जिस तरह उसने अपना तर्क पेश किया, गुरु महाराज के निकटवर्ती गुरसिक्ख कहने लगे—"अगर ये बात तो साहबजादा रामराय जी गुरु महाराज की बजाय दिल्ली चले जायें। गुरु महाराज किसी के मोहताज नहीं, इन्हें हम नहीं जाने देंगे।"

रामराय जैसे इसी बात की प्रतीक्षा कर रहा था कहने लगा, "अगर सबकी ये राय है तो मैं तैयार हूँ, दिल्ली जाने में कोई हर्ज नहीं कोई बिल्ली तो नहीं छिक मार जायेगी।"

फ़ैसला यह हुआ कि साहबजादा रामराय जब भी मुनासिब समझे दिल्ली जाकर औरंगजेब से मिल ले।

जानी-सर्वज्ञ गुरु महाराज जानते थे कि औरंगजेब को करामातें देखने का चस्का है। उन्होंने साफ शब्दों में रामराय को मना कर दिया कि वो कोई करामात नहीं दिखायेगा और ग्रंथ साहब में दर्ज वाणी का पूरा सत्कार करेगा। उन्हें याद था कि [illegible]हाँगीर पोथी में कुछ तब्दीलियाँ करने के लिए कह रहा था पर गुरु अर्जन देव राजी नहीं हुए थे। उन्होंने अपना शीश दे दिया था। पर ग्रन्थ साहब की वाणी में किसी तब्दीली के लिए राजी नहीं हुए। गुरबाणी की एक मात्रा भी आगे पीछे नहीं हो सकती।

चलने से पहले जब रामराय गुरु महाराज से विदा लेने आये, गुरु महाराज ने फिर उन्हें याद करवाया, कोई करामात नहीं दिखानी और न ही गुरबाणी की बेअदबी होने देनी है।

इसके उलट दिल्ली पहुँचकर रामराय शहंशाह औरंगजेब के दरबार का ठाट देखकर लगता है गुरु महाराज की फरमाई सारी बातें भूल गये। उन्होंने धड़ा-धड़ करामातें करके अपने आप को बड़ा दिखाना शुरू कर दिया। औरंगजेब पर भी करामातों का बड़ा रौब पड़ा। उसने रामराय की हर तरह खातिर करनी शुरू कर दी। उसका इरादा इस तरह सिक्ख पंथ को खरीदने का था। रामराय को शाही खितलतों से नवाजा गया। हर दावत में वह शामिल होता। हर तरह के इकरारें उसके साथ होने लगे।

फिर एक दिन मौका पाकर औरंगजेब ने रामराय से पूछा, "क्या यह सच है कि पोथी में यह तुक आती है : मिट्टी मुस्लमान की पेड़े पई कुम्हिहार।"

रामराय जी ने क्षण भर के लिए सोचा और फिर शहंशाह की खुशामद करते हुए कहने लगा, "ऐसा लगता है नकल करने वाले ने गल्ती की है। असल में गुरबाणी ऐसा कहती है :

मिट्टी बेईमान की पेड़े पई कुम्हिहार।"

शहंशाह ने ये सुना तो उसकी तसल्ली हो गई इसमें तो एतराज करने वाली कोई बात नहीं थी।

रामराय खुशियों से दिल्ली दरबार में मौजें कर रहा था कि दिल्ली के गुर सिक्खों ने कीरतपुर में गुरु महाराज को रामराय की करतूत की सूचना दी। अपने पिता गुरु का आदेश ही उन्होंने अनसुना नहीं किया था, सारी संगति की नाक काट दी थी। दिल्ली की सिक्ख संगति बेहद खफ़ा थी।

गुरु महाराज ने सुनकर फरमाया, "रामराय का अब हमारे साथ कोई वास्ता नहीं। वो कीरतपुर लौट कर नहीं आ सकता।"

रामराय को पता लगा तो बड़ा परेशान हुआ उसने करतारपुर में अपने ताऊ धीरमल की सिफारिश करवाई और कई मिन्नतें की पर गुरु हरिराय जी ने गुरबाणी की बेअदबी के लिए उसे माफ नहीं किया।

गुरु हरिराय जी के लिए गुरबाणी का इतना महत्त्व था कि एक बार वो एकान्त में बैठे आराम कर रहे थे कि कोई सिक्ख गुरबाणी का पाठ करता हुआ उनके पास से गुजरा। गुरु महाराज के कानों में गुरबाणी की धुन पड़ी तो वे उठकर सीधे बैठ गए। गुरबाणी का आदर सम्मान जरूरी है, वे हमेशा अपने गुरसिक्खों से कहा करते थे।

(12)

कमाल ने जब गोइन्दवाल शैली की हवेली में क़दम रखा नसीम जोदड़िया करके, हाथ जोड़-जोड़ कर बेहोशी की हालत में थी। उसके पलंग पर बैठा कमाल उसके हाथ बाहों को सहला रहा था। आधी बेहोशी की हालत में नसीम उसे पहले की तरह सुमन समझ कर प्रलाप कर रही थी :

"मेरे बेटे तूँ आ गया ? मुझे पता था तूँ आयेगा, मैंने गुरु बाबा नानक के आगे हाथ जोड़े थे ऐसा कभी नहीं हुआ मैंने अर्ज की हो और मेरी सुनवाई ना हुई हो। पीरों का पीर है बाबा नानक मैं भी कहती थी, मुझे मिले बगैर

मेरा बेटा कैसे चला गया तूँ आ गया, मुझे बाबा से कुछ और नहीं माँगना। मुझे सब कुछ मिल गया।"

"मेरी यह कम अक्ल वाली नौकरानी कहती थी—बी-बी इस तरह रो-रोकर हाथ जोड़ने का कोई लाभ नहीं, जो चला गया, वो कैसे लौट कर आ सकता है? मैंने कहा क्यूँ नहीं आ सकता और तूँ आ गया। अब मुझे कुछ और नहीं चाहिए, कुछ भी नहीं।"

नसीम फिर बेहोशी की हालत में चली गई इतने में नौकरानी गल्ली मुहल्लों वालों को इक्टठा कर ले आयी थी। वे सब कमाल को जानते थे। इस आँगन में खेलकर वो बड़ा हुआ था।

नसीम की बीमारी की बातें होती रहीं। शैली, अमन और सुन्दरी की मौत पर वे अफसोस करते रहे। यह सोचकर कि नसीम की आँख लग गई है वे सामने बैठक में जा बैठे थे।

"बड़ा दुःख पाया है बेचारी ने।" पड़ोसी कमाल को बता रहे थे, "आज कितने महीने हो गए हैं इसे चारपाई पर लेटे हकीम और वैद्य कोशिशें करके हार चुके हैं। पहले घर वाला गया। शैली बाहर नहीं बोलता था पर भीतर ही भीतर उसे बेटे का बिछोड़ा घुन की तरह खाता जा रहा था। फिर तो जैसे काल इस परिवार के पीछे ही पड़ गया। अमन गया, उसे शैली का साथ बड़ा प्यारा था। शैली को द[illegible]कर हम लोग लौटे तो सब अमन को देखकर कहते—इसका जोड़ीदार चला गया है, ये नहीं अब बचेगा और वही बात हुई। चार महीने बाद वो भी चला गया। मियाँ, बीबी यहाँ गोइन्दवाल ही आए हुए थे। सुन्दरी तो पहले ही रो-रोकर जैसे ध्वाखीं गई हो। पति नहीं रहा तो उसने खाना-पीना छोड़ दिया। अपनी बेटी की याद उसे सबसे ज्यादा सालती थी बिचारी के साथ बड़ा जुल्म हुआ। जो हाल उसका हुआ, रब करे किसी बैरी का भी न हो।"

"अमन का परिवार अपना घर बन्द करके यहाँ नसीम बीबी के साथ के लिए आ बैठा था। वे गए तो इस बेचारी ने चारपाई पकड़ ली। आज कितने महीनों से यह पलंग पर पड़ी है। कहाँ-कहाँ के हकीम और वैद्य नहीं आए [illegible] जा रही है। अब तो कुछ घड़ियों और पलों के मेले वाली बात है।"

और फिर सिक्ख पंथ की बातें शुरू हो गईं। रामराय की हरकतों के बारे में सरगोशियाँ होने लगीं। जितने मुँह उतनी बातें।

"कहते हैं रामराय अकड़ा फिरता है कहता है बेशक मुझे पारखती दे दी गई है। मेरे पास लाखों रूपए हैं। शहंशाह औरंगजेब से मेरी दोस्ती है। मैं जब भी चाहूँगा गुरआई छिन लूँगा। औरंगजेब ने खुद भी तो भाइयों से लड़-भिड़कर तख्त छीना। सुना है दिल्ली में उसने कई मूर्ख सिक्ख अपने पीछे लगा लिए हैं। पहले जब दिल्ली आया था तो गुरु पिता की कृपा से औरंगजेब को उसने कई करिश्में करके दिखाये थे पर अब तो उसका जुकाम ही नहीं उसका पीछा छोड़ रहा है। जहाँ बैठता है, सुड़-सुड़ करता रहता है।"

"ये सुनकर के गुरु महाराज करतारपुर गये थे, दिल्ली से तेजी में वहाँ पहुँचा। कहते हैं गुरु महाराज ने उसे कभी मुँह नहीं लगाया।"

"गुरु घर में गद्दी के लिए हमेशा कोई न कोई झगड़ा पड़ा रहता है। लोग यह नहीं समझ सकते कि गुर गद्दी पर बाबा नानक को विराजमान होना होता है, वही गद्दी पर बैठता है जिसमें गुरु बाबा नानक का प्रकाश हो।"

कुछ झमेला बीबीं भानी जी ने भी डाला था, यह वर माँगर कि गुरुवाई सोठिं वंश में ही रहे। गुरु अमरदास जी ने तब भी शंका प्रकट की थी। पर वे वचन दे बैठे थे। गुरुवाई एक खुला प्रवाह है इसे समेटा नहीं जा सकता न ही ये किसी तंग रास्ते पर चल सकती है।

"बीबी भानी वर मांग तो बैठीं और वर पाकर भी उन्होंने इसे कैसे भोगा ? उनके बेटे को जलते हुए तवे पर बैठकर इसकी कीमत देनी पड़ी।"

"पता नहीं अब क्या होने वाला है रामराय की तो छुट्टी कर दी गई है। छोटे साहबजादे हरिकृष्ण तो मुश्किल से पाँच वर्ष के होंगे।"

"गुरु महाराज ने उन्हें गुर गद्दी देने का फ़ैसला कर लिया है।" कमाल ने बताया, "मैं कीरतपुर ही जा रहा हूँ गुर गद्दी के समारोह के लिए।"

"लो हमें इसकी खबर ही नहीं।"

"गुरु महाराज ने देश भर से कुछ चुने हुए मसन्दों और गुर सिक्खों को बुला भेजा है।"

"ये भी अच्छा है गुरु महाराज अपने सामने उसे गद्दी पर बिठा रहे हैं ताकि राम राय जैसा कोई गड़बड़ न कर सके।"

कहते हैं रामराय ने शहंशाह औरंगजेब से शिकायत की है कि उसे गद्दी से वंचित रखा जा रहा है। शहंशाह ने सुनकर कहा—क्या फर्क पड़ता है? अगर तूँ गद्दी पर नहीं बैठेगा तो तेरा भाई ही तो बैठेगा। कमाल ने उन्हें बताया, "ये सुनकर रामराय अपना सा मुँह लेकर रह गया।" इतने में

नौकरानी ने आकर बताया, "बी-बी जी ने आँखें खोल दी हैं।"

अड़ोसी-पड़ोसी यह सुनकर अपने-अपने घर चल पड़े और कमाल नसीम के कमरे में गया।

कमाल को देखकर नसीम के चेहरे पर एक अकथनीय खुशी दिखाई दी। वो लपककर उठी और उसे अपनी छाती से लगा लिया।

"तूँ आ गया मेरा पुत्र। मुझे पता था कि एक दिन तूँ जरूर आयेगा। नसीम ने कहा और कमाल के माथे पर एक चुंबन दिया।"

बार-बार वो कमाल के मुँह की तरफ देखती। बार-बार उसके हाथों को पकड़कर अपने ओठों से लगाती। कितनी आकुलता, कितनी बेचैनी, जैसे कोई बिछुड़ी हुई कुंज हो। नसीम को लाड करते हुए उसका मन नहीं भर रहा था। लगता था जैसे उसे सात बहिश्तें मिल गई हों। उसे और कुछ नहीं चाहिए था। जिन्दगी से उसके सारे गिले खत्म हो गए थे।

कमाल को दुलारती हुई नसीम जैसे पागल हो रही थी, फिर उसने पूछा, "मेरी बहू रानी वीरां कहाँ है वो क्यूँ नहीं दिखाई दे रही शायद कहीं गायब हो गई है।"

"यही तो मैं आपसे पूछने वाला था।" कमाल ने हैरान होकर कहा।

"क्या मतलब ? वीरां तेरे पास क्या नानकमत्ते नहीं पहुँची ?" नसीम ने पूछा, उसकी आँखें जैसे फट रही हों।

"नहीं तो।" कमाल उससे भी ज्यादा चकित होकर बोला।

नसीम ने सुना तो एक गहरा साँस लेकर वो ज्यूँ की त्यूँ अपने सिरहानें पर गिर पड़ी। वो उसकी आखिरी साँस थी।

आठवाँ खण्ड

(1)

मोटी-मोटी काली स्याह आँखें, भरा-भरा गोरा गोल-मटोल शरीर। पके हुए अंबरी सेब जैसे गाल, जैसे ढहक रहे हों। थोढ़ी पर हल्का सा गड्ढा। सुच्चे मोतियों की तरह चमकते हुए दाँत। घुँघराले रेशमी बाल। एक हँसी से खिले हुए बच्चे का चेहरा लेकिन उनके आँखों की तीक्ष्णता, जिस तरफ एक नज़र देखते, लगता प्रकाश की एक लौ धँसती जा रही हो। कम बोलते, ज्यादा सुनते। मुखड़ा खोलते तो जैसे फूल झड़ रहे हों, सुगंधियाँ फैल जातीं। खाने में संकोच, सोने में संकोच बचपन में ही उन्होंने बहुत सी गुरबाणी मुज़बानी याद की हुई थी और इतनी सुन्दर आवाज ! अक्सर किसी की लंबी चौड़ी कहानी सुनकर गुरवाणी में से किसी तुक का उच्चारण करते और सुनने वाले के कलेजे में ठंडक पड़ जाती। सब उन्हें बाला प्रीतम नाम से याद करते थे।

माता किशन कौर जी हैरान होती, उनके शरीर पर पहना कपड़ा कभी मैला नहीं होता था। रेशमी वस्त्रों में रेशमी कुर्ता-पायजामा, रेशमी बटनों वाली वास्कट के ऊपर मुसद्दी का पटका, ऐसा लगता जैसे कोई आसमान से उतरा फरिश्ता हों। मुखड़े पर एक मासुमियत, जिस पर से लाख चतुराइयाँ कुर्बान की जा सकती थीं।

गुरु हरिकिशन जब गुर गद्दी पर विराजमान हुए उनकी आयु सिर्फ पाँच वर्ष और तीन महीने की थी। लेकिन समस्याएं उनकी प्रतीक्षा में ज्यूँ की त्यूँ थी जैसी किसी भी पहले गुरु महाराज के सामने पेश आती थी।

एक तरफ रामराय दिल्ली में शहंशाह का समर्थक, गुर गद्दी गवाकर कूद-कूद कर पड़ता था। उसने अपनी अलग सिक्खी सेवकी बनाई हुई थी लोगों से झूठे सच्चे वादा करता रहता। अपने इक्ट्ठे किए धन और सरकारी रसूज के कारण किसी को कुछ नहीं समझता था। यही कहता था, मैं किसी दिन भी कीरतपुर जाकर गुरगद्दी को संभाल लूँगा, पर सवाल यह है कि दिल्ली छोड़कर कोई बारह घाट बाहर कीरतपुर जाये ही क्यूँ ? उसका शाही ठाट, कई भोले-भाले सिक्ख सेवकों को भरमा लेता। दिल्ली आस-पास

के मशन्दों की मजाल नहीं थी कि वो उसकी बात टाल जाये। भेंट-दान इकट्ठा करके डर के मारे रामराय को पहुँचा देते।

करतारपुर में धीरमल ने धर्मसाल पर भी कब्जा कर रखा था और पोथी की मूल प्रति को भी उसने दबोच रखा था। गुरु हरिराय जी चाहते तो सिक्खों का जत्था भेजकर पोथी मँगवा लेते पर अमन और भाईचारे के अलंमबरदार, उन्होंने कभी इस तरफ ध्यान नहीं दिया था। जब कोई उन्हें याद दिलाता वे सुनी-अनसुनी कर देते और धीरमल कहता-फिरता गुरु वो है जिसके पास गुरबाणी है। पोथी परमेश्वर का स्थान रखती है और पोथी का मालिक धीरमल है। करतारपुर से हिलने का नाम नहीं लेता था। जितनी बार आए, गुरु हरिराय जी ही करतारपुर आये। माता नट्टी जी को भी अपने पास बाँध कर रखा हुआ था। दाबे के मसंद उसका पानी भरते थे। मजाल है इक्ट्ठा किया गया दसबन्ध कोई उसे भेजने से कोताही कर जाये। दिन रात गुरु महाराज की निन्दा करना, उसने अपना पेशा बना रखा था।

और उधर मुगल शहंशाह ने मन ही मन फ़ैसला किया हुआ था कि सिक्ख संप्रदाय को जड़ से काटना है। उसे इस बात का एहसास था कि पंजाब में नानकपंथियों का बड़ा जोर है। पंजाब को इस्लाम में शामिल करने का एक ही तरीका था कि सिक्ख गुरु को या कल्मा पढ़ाया जाये या उसे खत्म किया जाये। वो किसी भी बात के लिए तैयार था। मंदिरों को सैंकड़ों की गिनती में गिरा रहा था। मस्जिदें बनवा रहा था। उसने तो जन्नत में अपना स्थान सुरक्षित करना था।

मुगल साम्राज्य की सेना के साथ गुरु हरगोविन्द जी के नेतृत्व में सिक्ख संगतों की चार झड़पें हुई थीं। चारों लड़ाइयों में मुगलों को मुँह की खानी पड़ी थी। सिक्ख सूरमें हर बार मुगल फौजदारों का सफाया करने में सफल हुए थे। यह ख़ार भी मुगल सेना के सर पर चढ़ी हुई थी उन्हें अपना बदला लेना था। उनकी आबरू का तकाजा था गैरत का सवाल था।

औरंगजेब ने रामराय को यह कहकर खामोश कर दिया था कि आखिर तेरा भाई ही तो गद्दी पर बैठा है, क्या फर्क पड़ता है बड़ा भाई गद्दी पर बैठे या छोटा। वो अपनी करतूत का औचित्य तलाश कर रहा था, पर इससे भी अधिक अर्थ-पूर्ण एक मकसद इस क़थन में छिपा हुआ था। वो सोचता था, कोई कमसिन गुरगद्दी पर बैठेगा तो उसे हटाना या खरीद लेना मुश्किल नहीं होगा। इसी मकसद से पहला काम उसने यह किया कि गुरु हरिकिशन

जी को दिल्ली आमंत्रित किया। सिक्ख भाईचारे के स्वाभिमान से कुछ-कुछ परिचित औरंगजेब ने गुरु महाराज को तलब नहीं किया, बल्कि उन्हें दिल्ली आने का निमंत्रण भेजा।

इस मनोरथ के लिए शहंशाह ने मिर्ज़ा जयसिंह की मदद ली। राजा जयसिंह उसका दरबारी था और गुरु घर का श्रद्धालू भी था।

यह सुनकर रामराय खुशी से बगले बजाने लगा। उसने सोचा, अगर गुरु हरिकिशन इन्कार करते हैं तो औरंगजेब उन्हें फौज भेजकर जबरदस्ती मंगवा लेगा। अगर वे खुद ही औरंगजेब से मिलने के लिए राजी हो जाते हैं तो अपने गुरु-पिता के आदेश का उल्लंघन करेंगे तब सिक्ख संगत उसे माफ नहीं करेगी।

उधर दिल्ली की सिक्ख संगत यह जानकर खुश हो रही थी कि शहंशाह ने गुरु हरिकिशन जी को निमंत्रण भेजा है ताकि वे औरंगजेब के मेहमान होकर दिल्ली आए। वे सोचते थे, इस तरह वे भी गुरु महाराज के दर्शन कर लेंगे। कीरतपुर इतनी दूर था, फिर एक तरफ होने के कारण, कई गुर सिक्ख चाहते हुए भी यात्रा नहीं कर सके थे।

गुरु महाराज को जब राजा जयसिंह का निमंत्रण मिला, वे कहने लगे कि उन्हें दिल्ली की सिक्ख संगत और राजा जयसिंह के लिए दिल्ली आने में कोई एतराज नहीं था, पर वे औरंगजेब के साथ कदापि मुलाकात नहीं करेंगे। राजा जयसिंह गुरु महाराज के तर्क से वाकिफ़ था। उसने कहलवा भेजा कि गुरु महाराज उसके निजी मेहमान होंगे। राजा जयसिंह के यहाँ ही ठहरेंगे। जहाँ तक औरंगजेब से मुलाकात का सवाल था, वह अपनी कुटिल नीति द्वारा इसे संभाल लेगा।

यह सुनकर गुरु महाराज दिल्ली जाने के लिए राजी हो गए।

(2)

नसीम के क़फ़न दफ़न से निपट कर कमाल की जिन्दगी का अब एक ही मनोरथ था, वीरांवाली को तलाश करना। लगता था जैसे धरती फट गई हो और वो उसके भीतर समां गई हो। उसकी कोई ख़ोज ख़बर नहीं मिल रही थी। वो शहर-शहर, गाँव-गाँव भटक रहा था।

उन दिनों कमाल दिल्ली में था वो सोचता था नानकमत्ते के लिए निकली वीरां वाली शायद रास्ते में दिल्ली टिक गई हो। दिल्ली आकर कमाल कुछ दिन यहाँ रुक गया। दिल्ली की गहमा-गहमी का कोई जबाब

नहीं था।

खासतौर पर लाल किले के आस-पास बड़ी रौनक होती थी सामनें चाँदनी चौक के बाजार में से यमुना से निकाली गई नहर बहती थी। दुकानें ईरान, उजबेकिस्तान, अफगानिस्तान, कश्मीर और कहाँ-कहाँ से आये सामान से अँटी रहती थीं। कहीं मदारी अपना मजमा जमाये हुए हैं। कहीं सपेरे भाँति-भाँति के साँप दिखा रहे हैं। बीन पर नाच रहे साँप और मन-मन भारी साँप सपेरों के गिर्द लिपटे हुए हैं। कहीं हाथ देखने वाले बैठे हैं। कहीं ज्योतिषी ज्योतिष लगाकर बेचारे भोले-भाले शहरियों को सब्जबाग दिखा रहे होते। बांझ औरतों को बेटों के, कवारों को शादी के सपने दिखा रहे होते। नंग-धड़ंग बच्चे कहीं नाच गाकर भीख माँग रहे होते। कहीं नशेड़ियों की चंडाल चौकड़ी जमी है और कहीं भाँग घोटी जा रही है। कहीं पहलवानों के अखाड़े हैं। कहीं भड़भूजे बैठे हैं, कहीं सब्जीवाले, कहीं फल वाले आवाजें लगा रहे हैं। कहीं हाथी है, कहीं घोड़े हैं कहीं ऊँट खड़े हैं। कहीं खरबूजों के ढेर लगे हैं, कहीं तरबूजों के ढेर। कहीं ककड़ियाँ और खीरे बिक रहे हैं।

और फिर अंधेरा पड़ने पर गाने-बजाने नाचने की महफ़िलें। रंग-बिरंगे नजारें, तरह-तरह की- खुशबूएं।

एक बाज़ार सुनारों का था जहाँ सोने और चाँदी के गहने बनाए जा रहे थे। एक बाज़ार दर्जियों का था हर तरह के कपड़े सिए जा रहे दिखाई देते थे। एक बाज़ार तरखानों का था जहाँ हर नाप, हर तरह की जूतियों के लिए पेशगी रकमें दी जा रही थीं। एक जगह बाजे वाले बैठकर अपने साज़ ठीक कर रहे थे। ढोलकी बज़ा-बज़ा कर कान फाड़ देते और फिर तूतनियाँ और शहनाइयाँ अपने मधुर स्वरों में श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर लेतीं।

किले के भीतर जहाँगीर के जमाने से हाथियों की लड़ाइयाँ, इन्सानों और जानवरों की कुश्तियाँ और इस तरह के मनोरंजन देखने में आते थे। ज़ामा मस्जिद के पास कबूतरों की मंडी लगती थी। कहीं मुर्गो को, कहीं दुबों को आपस में लड़ाया जाता और आस-पास सैंकड़ों लोग खड़े होकर नज़ारा देखते थे।

सबसे सुन्दर नजारा मीना बाज़ार का होता था।. ये बाजार नवरोंज के दिन लगता था जहाँ शहजादियाँ दुकानें लगातीं, मोती-हीरे और छोटी-मोटी कीमती चीजें बेचतीं। कहते हैं इस बाज़ार में ही तो मुमताज की शाहजहाँ से मुलाकात हुई थी। दो चोटियों वाली गोरी चिट्टी लड़की, मोटी-मोटी

आँखें, नूरजहाँ के पीछे खड़ी थीं कि शहज़ादा खुर्रम की उस पर नज़र आ पड़ी।

गुरु महाराज के दिल्ली आने का सुनकर सिक्ख संगतों में उत्साह ठाटें मारने लगा। दूर-दूर से गुरसिक्ख शहर की तरफ गोल बाँध कर चल पड़े। कमाल दिल्ली में इसलिए रुका था कि अगर बीरा यहाँ कहीं नज़दीक हुई तो वह दिल्ली जरूर गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आयेगी। गुरु महाराज की स्वागत की तैयारियों में कमाल बढ़-चढ़ के हिस्सा ले रहा था। मज़नू के टीलें से लेकर मिर्ज़ा जयसिंह के महल तक सड़क को साफ किया जा रहा था। स्थान-स्थान पर स्वागत द्वार बनाये जा रहे थे। लोग अपने-अपने घरों से बाहर दरियाँ और कालीन बिछाने का सोच रहे थे। जहाँ-जहाँ से गुरु महाराज की सवारी गुजरनी थी उन गलियों, उन बाज़ारों में इत्र और फुलेल का छिड़काव किया जाने वाला था, गलियों के लोगों को फूलों की पीटारियाँ लेकर हारों के लिए तैयार रहने के लिए कहा जा रहा था।

उधर गुरु महाराज कीरतपुर से निकले तो सिक्ख संतें उनका पीछा ही नहीं छोड़ रही थीं। जिस गाँव, जिस शहर में से उन्होंने गुजरना होता, नये-नये श्रद्धालु उनकी प्रतीक्षा कर रहे होते और उनमें से ज्यादातर उनके साथ हो लेते थे। बढ़ता-बढ़ता ये ज़त्था एक अटूट क़ाफ़िला बन गया। जहाँ तक नज़र काम करती ठाटे मारता हुआ जनता का समुद्र दिखाई देता। अंबाले के पास पहुँचकर गुरु महाराज ने रेत की एक लकीर खींची और फरमाया, इससे आगे वही श्रद्धालु बढ़ेंगे जिनका मैं नाम लूँगा और गुरु महाराज केवल थोड़े से अंगरक्षकों और कुछ अपने निजी सेवकों के साथ आगे बढ़े।

अंबाले के साथ ही पंजोखरा नाम के गाँव में गुरु महाराज को एक ब्राह्मण विद्वान मिलने आया। वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता, उसे अपने ब्रह्मज्ञान और शास्त्र विद्या पर बड़ा अभिमान था। गुरु महाराज का नाम श्री हरिकिशन सुनकर कहने लगा—"जिसने गीता का उच्चारण किया था, वो तो केवल कृष्ण था और ये सात साल का बालक उससे भी लंबा हरिकृष्ण बना फिरता है, मैं इससे वार्तालाप करके इसे बताना चाहूँगा कि शास्त्र का ज्ञान क्या चीज़ है।"

अहंकार का मारा जब ब्राह्मण गुरु महाराज के पास आया, उन्होंने कहा, "सारा ज्ञान केवल पुस्तकों में ही नहीं होता इससे बाहर भी होता है

और कुछ ज्ञान ईश्वर की देन होता है।" अहंकार ब्राह्मण को ये बात समझ में नहीं आयी। गुरु महाराज ने ये देखकर अपने पास खड़े सेवक से कहा, "बाहर सड़क से किसी साधारण आदमी को बुलाकर हमारे सामने लाओ।" कुछ देर बाद छज्जू नाम का एक माशकी हाजिर हुआ। गुरु महाराज ने छज्जू की ओर एक नज़र देखके ब्राह्मण से कहा कि वो छज्जू के साथ जिस विषय पर चाहे बहस कर सकता है।

ज्यूँ-ज्यूँ ब्राह्मण अपनी पंडिताई के गुमान में छज्जू से वार्तालाप करता, उसे एहसास हुआ, जैसे वो तो अन्ज़ान हो, छज्जू तो वहाँ ब्रह्मज्ञानी हो। वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता। आखिर हार कर उसने हथियार फेंक दिए और गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ा।

गुरु हरिकिशन जी के दिल्ली आने का सुनकर सबसे अधिक चाव कमाल को चढ़ा था। वो सोचता था यह अवसर ईश्वर ने उसे दिया था। जिस दिन गुरु महाराज ने दिल्ली में चरण डाले, कमाल मज़नूँ के टीलें की धर्मशाला में हाज़िर था, और फिर जैसे वो गुरु महाराज के निजी सेवकों के साथ बँधकर रह गया। उनमें से कइयों को वह पहले से जानता था।

एक खुशी थी कि वह गुरु महाराज की सेवा कर सकेगा। दूसरे ये निश्चय था कि अगर वीरांवाली यहीं कहीं है तो उनकी मुलाकात हो जायेगी।

(3)

उन दिनों दिल्ली में माता का कोप था। चारों तरफ जैसे आग लगी हो। मक्खियों, मच्छरों की तरह लोग मर रहे थे। घर-घर में चट्टाइयाँ बिछी थीं रोने-धोने के मृत्यु-शोक गीत सुनाई देते थे।

क्या बच्चे क्या जवान एक दिन आदमी को ताप चढ़ता, ताप बढ़ जाता फिर शरीर पर जगह-जगह पर दानें निकल आते। दानें फुन्सियाँ बन जाते। लाल सुर्ख हो जाते। उनमें मवाद भर जाता। ताप और बढ़ जाता। सर को चढ़ जाता। मरीज प्रलाप करने लगता। फिर ठंडा हो जाता।

गुरु महाराज शहर में थे यह जानकर राजा जयसिंह के मेहमान खाने पर दिल्ली के लोगों की भीड़ टूट पड़ी।

गुरु महाराज हर किसी को आशीर्वाद देते थे। चाहे कोई सिक्ख हो, हिन्दु, मुस्लमान या और कोई। जो भी आता, खुश होकर जाता। पर चेचक की हवा तो एक आँधी की तरह फैलती जा रही थी।

इतने में औरंगजेब का छोटा बेटा गुरु महाराज के पास हाज़िर हुआ

और कहने लगा कि शहंशाह उनका दीदार करना चाहेंगे। गुरु महाराज ने जबाब में कहा कि सिक्ख पंथ का एक नुमाइन्दा दिल्ली दरबार में पहले ही बैठा है। अगर कोई मामला तय करना हो, उससे बात की जा सकती है। दो आदमियों का दखल देना वे मुनासिब नहीं समझते थे। हाँ गुरु महाराज ने औरंगजेब को गुरु बाबा नानक का एक शब्द लिखकर भेजा :

किआ खाधै किआ पैधे होए
जा मनि नही सच्चा सोइ ॥
किआ मेवा किआ हयो गुड़ मिठा
किआ मैढा किआ मासू ॥
किआ कपड़, किआ सेज़ सुखाली
किजहि भोग विलास ॥
किआ लसकर, किआ नेब खवासी
आवै महली वासु ॥
नानक सचे नाम बिनु
सभै टोल विनास ॥

औरंगजेब ने सुना तो राजा जयसिंह से कहने लगा मुझे और तो उनमें कोई दिलचस्पी नहीं, मैं तो सिर्फ ये देखना चाहता हूँ कि गुरु हरिकिशन कोई करामात कर सकते हैं या नहीं। अगर करामात नहीं कर सकते तो मैं उनके साथ एक आम शहरी की तरह व्यवहार करूँगा और अगर वे कोई करामाती पीर हो तो उनका पूरा सत्कार होना चाहिए।

राजा जयसिंह ने घर जाकर अपने महल में बात की। फ़ैसला ये हुआ कि जयसिंह की पत्नी एक बांदी का भेष बनाकर बाकी परिवार के साथ गुरु महाराज के दर्शनों को जायेगी, ताकि ये देखा जा सके कि गुरु महाराज रानी को पहचान सकते हैं या नहीं। उस शाम राजा जयसिंह के महल में यही नाटक खेला गया। गुरु महाराज के दर्शनों के लिए परिवार जब हाज़िर हुआ, तो नौकरानियों की टोली में जयसिंह की पत्नी को बैठा देखकर गुरु महाराज ने कहा, "आप वहाँ क्यूँ बैठी हैं आगे आ जाइए।"

ये देखकर आस-पास के सभी लोग चकित हो गए।

लेकिन गुरु महाराज को जयसिंह का इस तरह का नाटक रचाना बिल्कुल पसन्द नहीं आया था और उन्होंने फ़ैसला किया कि वे अब और मिर्जा जयसिंह के यहाँ नहीं ठहरेंगे।

गुरु महाराज भाई कल्याना की धर्मशाल में जा टिके। वे बेशक राजा मिर्जा जयसिंह के निमंत्रण पर दिल्ली आये थे, पर पिछले कुछ दिनों के अनुभव से उन्होंने महसूस किया कि जयसिंह के महल में रहकर मुगल दरबारी जोड़-तोड़ से बचना असंभव होता जा रहा था। हर रोज दरबार का कोई न कोई संदेश आ जाता और जयसिंह का अपनी पत्नी को बांधी के भेष में उनके दर्शनों के लिए भेजना एक तरह से गुरु महाराज का इम्तहान लेना था जो उन्हें मंजूर नहीं था। इसका यह भी अर्थ निकाला जा सकता था कि उसकी गुरु घर में श्रद्धा में कहीं कोई कभी अभाव कसर बाकी थी।

सबसे बड़ा कारण यह था कि दिल्ली शहर और उसके आस-पास चेचक का कोप दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था और लोगों की भीड़ें गुरु महाराज के यहाँ आती थीं और वहाँ से 'डिट्ठै-सभ-दुख-जायै' का एहसास लेकर लौटते थे। संगतों को अपने इष्ट के दर्शनों से रोका नहीं जा सकता था। ख़ासतौर पर उन हालात में जब और कोई दवा दारू नहीं थी। मिर्ज़ा जयसिंह के महलों में लाख बंदिशें थीं, सैंकड़ों पहरे थे।

उधर गुरु महाराज का भेजा पैगाम, गुरु बाबा नानक का शब्द पाकर औरंगजेब की एक रग, जो एक खुदापरस्त थी, जैसे संतुष्ट हो गई उसके मन का भटकाव कुछ कम हो गया था। ये वही औरंगजेब था जिसने अपने अन्तकाल के समय इतिहास के लिए यह बयान छोड़ना था-मैं संसार में खाली हाथ आया था। पर पापों की गठरी लिए लौट रहा हूँ। मैं नहीं जानता मेरे गुनाहों की मुझे क्या सज़ा मिलेगी। अल्लाह का रहम ही मेरी मदद कर सकता है।

सारा-सारा दिन, सुबह से शाम तक चेचक के मरीजों के दुखड़े सुनना, उन्हें धीरज बँधाना, ईश्वर की मर्जी को मानने सलाह देना, गुरु महाराज आजकल खुद थके-थके लग रहे थे। आखिर ये सारा बोझ उठाने की उम्र भी क्या थी ?

उधर चेचक की आँधी का ये हाल था जैसे आग की लपटें भड़क रही थीं चारों तरफ़ बच्चों-बूढ़ों को भूनती जा रही थीं। शहंशाह अभी-अभी कश्मीर से लौटा था, वो दिल्ली छोड़ नहीं सकता था, लेकिन दरबारी किसी न किसी बहाने दौरों पर निकले रहते थे या अपने-अपने महलों में घुसकर बैठे रहते थे। गलियाँ मुर्दों से अटी रहती थीं। लाशों को न दफनाने का, न जलाने का कोई माकूल इन्तजाम था। शहर में से सड़ रहे मुर्दों की बदबू आने लगी।

गुरु महाराज की आज्ञा पाकर कमाल जैसे गुरसिक्ख मैदान में कूद पड़े और दिन-रात लोगों की सेवा में जुटे रहते थे।

गुरु महाराज जानते थे कि चेचक बड़ी निर्दयी बीमारी है। किसी को माफ़ नहीं करती। मरीजों की आँखों की पुतलियों पर, गले में और तो और अंतड़ियों में दाने निकल आते थे। दानें अंगारों की तरह सुलगने लगते, मरीज न बैठ सकता न लेट सकता, न खा सकता न पी सकता और इस तरह पीड़ा में तड़प-तड़प कर बिलख-बिलख कर प्राण त्याग देता।

चारों तरफ हाहाकर मची हुई थी। कहीं कुत्ते लाशों को खा रहे थे कहीं गिद्ध उन्हें नोंच रहे थे।

गुरु महाराज की अगुवाई में उनके श्रद्धालुओं ने अपने आपको टोलियों में बाँट लिया था और अपने-अपने इलाके में सेवा में जुट गए थे। दान में जो धन गुरु महाराज को भेंट किया जाता था उसे लोक भलाई के लिए सेवादारों में बाँट दिया जाता था।

इन्हीं दिनों में ही गुरु हरिकिशन जी के दादा तेगबहादुर जी पश्चिम के दौरे से लौटते हुए यह सुनकर कि गुरु महाराज दिल्ली विराजमान है उनसे मिलने आये। दिल्ली में चेचक की आँधी फैली थी इसलिए गुरु हरिकिशन जी ने उन्हें मशविरा दिया कि वे फौरन दिल्ली छोड़ जाए। दिल्ली की महामारी एक आग़ थी जिसकी लपेट में सब आ रहे थे। गुरु महाराज ने तेगबहादुर जी से पूछा, "आप यहाँ से किधर जायेंगे ?"

'बकाले' उन्होंने जबाब दिया। जहाँ उनके पिता हरिगोविन्द जी ने उन्हें माता नानकी जी के साथ जाकर टिकने की हिदायत की थी।

तेगबहादुर जी ने दिल्ली से फौरन चल देना इसलिए भी मान लिया क्योंकि गुरु महाराज तो सारा-सारा दिन मरीजों और दुखियों की सेवा में लगाते थे। न उन्हें खाने की सुध थी, न आराम करने की फ़ुरसत थी। उनके दर्शन तक कर सकना दुर्लभ था।

दिल्ली के हर मुहल्ले में दवाखाने खुल गए। हर दवाखाने के साथ गुरसिक्ख सेवक मरीजों की सेवा के लिए हाज़िर रहते थे पर फिर भी पूरी नहीं पड़ रही थी। घर-घर में विलाप सुनाई देता। घर-घर में चटाइयाँ बिछी हुई थीं।

कमाल के जिम्में निजामुद्दीन का इलाका था। एक दिन मरीजों की खबर लेता हुआ वह दरग़ाह की ओर जा निकला देखा कि दरग़ाह के

पिछवाड़े एक गड्ढे के बाहर कुएं में से कोई औरत पानी का डोल खींचते हुए पसीने से तर हो रही थी यह तो मुस्लमान नहीं हो सकती। हज़रत की मुरीद जरूर होगी, अगर मुस्लमान होते तो किसी किस्म का पर्दा जरूर किया होता। कम से कम चादर ही की होती। कमाल बेखटके आगे बढ़ा न जाने क्यों अचानक उसका दिल धड़कने लगा था टांगों में सहसा एक थकान महसूस होने लगी थी जैसे कि मंजिल के नजदीक पहुँच कर लगने लगता है। उसकी साँस जैसे फूल गई हो ये उसे क्या हो रहा था ? उसके अंग-अंग में एक बेचैनी सी जैसे चक्कर काट रही हो। दो क़दम और आगे बढ़ा तो उसकी ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गई, वो तो वीरां वाली थी जैसे हड्डियों की मूठ हो। काला चेहरा, आँखों के गिर्द गड्ढे बने हुए थे।

वीरांवाली ने कमाल को देखा तो उसका डोल हाथ से छुट गया पानी का भरा डोल फिर कुएं में जा गिरा।

कमाल हैरान था उसकी तलाश कहाँ और किन हालात में खत्म हुई थी।

(4)

दिल्ली शहर में गुरु हरिकिशन जी की चर्चा और और बढ़ रही थी। दरबारी हैरान थे; ये कभी किसी ने नहीं सुना था कि शहंशाह किसी को मिलना चाहे और वे परों पर पानी न पड़ने दे। ना खुद दरबार में आ रहे थे, न औरंगजेब जैसे सम्राट को मिलने के लिए राजी हो रहे थे। शहंशाह ने दावत नामा भेजकर गुरु हरिकिशन जी को दिल्ली बुलाया था। इधर वे थे, राजधानी आ तो गए, पर बादशाह को दीदार देने के लिए राजी नहीं हो रहे थे।

एक वक्त ऐसा आया, जब यह भी सोचा गया कि औरंगजेब भेष बदलकर गुरु महाराज के दर्शन कर ले। पर जो हश्र राजा जयसिंह की पटरानी का हुआ था, वो सोचकर ये तज़बीज़ रद्द कर दी गई। रानी नौकरानियों, बांदियों में मैले कुचैले कपड़े पहने बैठी थी कि गुरु महाराज ने उस ऐवान में घुसते ही हाथ में पकड़ी छड़ी उसके सर पर रखते हुए फरमाया, "बीबी, 'आप इस हालत में यहाँ क्यूँ बैठी हैं, बाकी रानियों के साथ आगे आकर बैठ जाइए।" बेचारी इतनी शर्मिन्दा हुई कि धरती फट जाये और वे उसमें समा जाए जैसे उस पर सौ घड़े पानी आ गिरा हो। भीगी बिल्ली

की तरह अपनी जगह से उठी और गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ी। और फिर जब औरंगजेब ने अपने साहबज़ादे को गुरु महाराज के पास भेजा, उन्होंने बाबा नानक का एक शबद लिखकर शहंशाह को भेजा, जिसमें उसकी ताड़ना की गई थी। औरंगजेब ने पढ़ा और सोच में पड़ गया। स्तब्ध होकर उसने गुरु महाराज का पीछा छोड़ दिया। इस तरह का आत्मसम्मान, इतनी बेनियाजी किसी ने न कभी सुनी थी, न देखी थी। इस उम्र में जिसे परवाह नहीं और जो किसी का मोहताज नहीं, वो एक साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। शाही दरबार के अमीर और विदेशी मेहमान, गुरु हरिकिशन जी के दर्शनों के लिए उत्सुक रहने लगे।

फिर जब महामारी का प्रकोप बढ़ा श्रद्धालुओं की भीड़ें गुरु हरिकिशन जी के दर्शनों के लिए बढ़ने लगीं। सब यही समझते कि गुरु महाराज ही इस ईश्वरीय आपदा से छुटकारा दिला सकते हैं। सरकारी दवाखाना हार चुके थे, हकीमों वैधों की कोई पेश नहीं जाती, मंदिर मस्जिदें खाली हो रहीं थीं। टोने-टोटके, मन्नतें बेअसर हो रही थीं। इधर गुरु महाराज के स्थान पर श्रद्धालुओं ने पानी का एक चहबच्चा बना दिया था। बाहर चौबीस घंटे लगातार लंगर चलता था। जो भी आता चहबच्चें में से अमृतजल अपने ओठों से छुआता, उसे मौत के डर से छुटकारा मिल जाता। गरीब, गुर्बे के लिए दवा दारू, खाने-पीने का भरपूर प्रबन्ध था।

चारों तरफ गुरु महाराज की चर्चा थी कुछ कहते, उनके दर्शनों से ठंडक पड़ जाती। कुछ कहते उनके मुखर बिन्दु से गुरबाणी का एक वाक़ सुनकर आदमी भला चंगा हो जाता है। हर आदमी किसी न किसी करामाती चमत्कार की कहानी सुनाते। इनमें हिन्दू, मुस्लमान, गरीब, अमीर, शहरी और ग्रामीण भी थे।

इतने इतनों के बाद भी महामारी का कोंप ज्यूँ का त्यूँ बना हुआ था। गाँव के गाँव उजड़ते जा रहे थे मुहल्ले के मुहल्ले सुनसान होते जा रहे थे कई परिवारों का तो जैसे बीज नष्ट हो गया था।

गुरु हरिकिशन जी सोचते, ईश्वर ने उन्हें अकारण दिल्ली में नहीं भेजा था। यहाँ उनके लिए एक बड़ी भारी जिम्मेदारी प्रतीक्षा कर रही थी। सब परेशान थे। उस दिन गुरु घर के प्रेमी, गुरु महाराज के निकटवर्ती सिक्ख जिनमें भाई दयाला थे, भाई दरग़ाह मल्ल थे, दीवान सतिराम थे, भाई गुरबख्श, मनी भाई थे पंजाबा नाम का मसन्द था, सब गुरु महाराज के सामने

स्तब्ध हुए बैठे थे किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। इतने जतनों के बाद भी बीमारी पीछा नहीं छोड़ रही थी। जंगल की आग की तरह और-और फैलती जा रही थी और-और तबाही मचा रही थी एक को जलाकर आते, सामने और तीन लाशें धरी होतीं। एक को दफ़नाकर आते, पाँच मय्यतें और इन्तजार कर रही होतीं।

अपने सिक्खों को असमंजस में देखकर गुरु महाराज कुछ देर के लिए आँखें मूँदकर समाधि में चले गए।

कुछ देर बाद जब उनके नैन खुले उनमें एक अकथनीय शांति थी। उनकी पलकों में से एक विचित्र ज्योति फूट रही थी लगता था जैसे कोई रास्ता उन्हें मिल गया था। महामारी का कोई इलाज उन्हें सूझ गया था। उनके मुखड़े पर एक शकून था।

फिर अत्यन्त शान्त भाव से फरमाया, "यहाँ से कूच करना होगा, हमारा डेरा अब शहर से दो कोस दूर यमुना के किनारे बुड्ढे के स्थान पर होगा।"

भाई गुरबख्श और मनी भाई जो गुरु महाराज के ज्यादा नजदीक थे चौक पड़े। "पर हजूर पिछले कुछ दिनों से आपकी तबीयत ढीली है", भाई गुरबख्श ने कहा।

"आपकी सेहत ठीक हो जाए तो आप जो कहेंगे हम वैसा ही करेंगे।" मनी भाई बोले।

"यमुना किनारे खुले घास के मैदान पर ही इस महामारी का इलाज होगा।" गुरु महाराज ने अर्थपूर्ण लहजे में कहा और फौरन उठ खड़े हुए, जैसे बुड्ढे के स्थान पर जाने के लिए तैयार हो गए।

गुरसिक्ख एक दूसरे के मुँह की तरफ़ ताकने लगे जो इरादा उनके मुखड़े पर झलक रहा था उससे हर किसी ने अनुमान लगा लिया कि उनके इष्ट ने कोई महत्त्वपूर्ण फ़ैसला कर लिया है। इन हालात में सवाल पूछने की किसी में हिम्मत नहीं थी।

माता जी ने सुना तो उन्हें समझाने लगी, "बेटा जी आप पिछले एक दो दिन से थके-थके लग रहे हैं, एकाध दिन और रुककर शहर से बाहर चले जायेंगे। यहाँ दस सहूलते हैं। बाज़ार नजदीक है। दवाख़ाना हमारे पीछे है।"

इस महामारी का इलाज अब न दवा-दारू में है और न दवाखाने में है। गुरु महाराज ने अर्थपूर्ण शब्दों में ये बोल उचारे उनका चेहरा रब्बी ज़लाल से जगमगा रहा था। देखकर माता जी की आँखें चौंधिया गईं।

किसी की क्या मज़ाल थी कि गुरु महाराज के आदेश को अनसुना करे। उसी क्षण यमुना के किनारे बुड्ढे के स्थान पर जाने की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

गुरु महाराज पालकी में बैठे। माता जी पास में एक दूसरी पालकी में थीं। आगे-पीछे घुड़सवार अंगरक्षक थे। हमेशा की तरह उनके श्रद्धालू ढोलकियों और छैनों के साथ शब्दों का गायन कर रहे थे; अंधरों से पहले गुरु महाराज का जुलूस यमुना किनारे पहुँच गया। पहले से गए गुरु प्यारों ने तंबू पहले से गाड़ रखे थे जैसे एक बस्ती बस गई हो।

बहती हुई यमुना का किनारा, घास का खुला मैदान जहाँ तक नज़र जाती हरी घास और ठाटें मारती हुई नदी के सिवा कुछ भी नज़र नहीं आता। यहाँ पहुँचकर माताजी ने निकटवर्ती गुर-सिक्खों को बुला भेजा, उन्होंने राय दी होता वही है जो उनकी रज़ा है। पर मेरी मर्ज़ी ये है कि अब हम शहर से बाहर आ ही गये हैं तो इस सुन्दर स्थान पर गुरु महाराज को आराम करना चाहिए। चेचक के मरीजों को उनके नजदीक नहीं फटकने देना चाहिए। ये बुरी छूत की बीमारी है। कुछ दिनों से वो मुझे पहले ही बीमार लगते हैं। कमजोरी की हालत में ये बीमारी फौरन आदमी पर झपट पड़ती है। अभी-अभी मैंने उनकी कलाई को छूकर देखा तो मुझे लगा कि उन्हें बुखार है।

और फ़ैसला हुआ कि जहाँ तक मुमकिन हो गुरु महाराज की कोई और मुलाकात न रखी जाए और न ही किसी मरीज को उनके दर्शनों के लिए उनके नजदीक आने दिया जाये चाहे कोई कुछ भी कहे। जरूरतमन्द तो मिन्नतें करते ही रहते हैं।

(5)

वीरांवाली अपने बारे में बताने के लिए तैयार नहीं थी आखिर इतना अरसा वो कहाँ रही थी ? दिल्ली कैसे पहुँची थी ? हज़रत निज़ामुद्दीन की बस्ती में कबसे आयी थी ? उसे देखकर तो लगता था कि वहाँ आए उसे ज्यादा दिन नहीं हुए थे। कमाल ने एक दो बात छेड़ी पर वीरां हर बार टाल गई कमाल ने भी ज्यादा जोर देना मुनासिब नहीं समझा। वो किस मुँह से ये सवाल पूछता ? वो खुद भी तो तीन कपड़ों में अपनी गठरी तक गोइन्दवाल के घर में छोड़कर निकल गया था। ख़ास तौर पर जिन हालात में उसने वीरां का साथ छोड़ा था उस हरकत को माफ करना आसान नहीं था।

वीरां के दोनों बच्चे कितने सुन्दर निकल आये थे लगता था कि वो उन्हीं के लिए जी रही है। मज़ाल है उन्हें आँखों से ओझल होने दे। उजले कपड़े, कायदे से संवारे बाल, फूलों की तरह खिले मुखड़े बहन भाई क्या थे जैसे हंसों का जोड़ा हो। जहाँ उठते बैठते वही स्थान सुन्दर लगने लगती।

बेशक वीरां को कुरेदने का उसे कोई हक नहीं था; हक था भी, नहीं भी था।

आख़िर उसने वीरांवाली को बताया कि जब वो अमृतसर से निकल आयी थी कैसे उसके मायके और ससुराल में सब खत्म हो गए थे। एक-एक करके हर प्राणी चल दिए। पत्थर की मूर्ति बनी वीरां कमाल के चेहरे की ओर बीट-बीट देखती सब कुछ सुन रही थी। वो हिल-डुल तक नहीं रही थी उसका पिता अमन भी नहीं रहा। उसकी माँ सुन्दरी भी चली गई उसका ससुर शैली अल्लाह को प्यारा हो गया था। वीरांवाली जैसे कोई सपना देख रही हो। उसकी आँखों के सामने घटनाओं का एक जुलूस गुजर रहा था। वो रिश्ते जिन्हें वह तोड़ चुकी थी वे गाठें जिन्हें वो खोलकर आयी थी।

फिर जब कमाल ने उसे बताया कि नसीम के कफ़न दफ़न से फुर्सत पाकर उसने गोइन्दवाल वाले घर को ताला मारा और वीरांवाली की तलाश में निकल पड़ा था और इतने दिन वो कैसे शहरों-शहर, गाँव-गाँव भटकता रहा था सुनकर वीरां के धीरज का जैसे बाँध टूट गया हो वो जार-जार आँसू रोने लगी। बच्चे बाहर गली में खेल रहे थे। वीरां के आँसू थमने में ही नहीं आ रहे थे। कमाल के कंधों से लगकर खून के आँसू बहा रही थी। कमाल उसे बार-बार समझाने की कोशिश कर रहा था कि जो हुआ उसे भुलाकर उन्हें नए सिरे से अपना जीवन शुरू करना होगा। अमृतसर और गोइन्दवाल दोनों घरों के आँगन उजड़ चुके थे। खाली हुजरों की तरह कमरों पर ताले लगे हुए थे अब उनका अतीत में झांकना व्यर्थ था लेकिन जाड़े की झड़ी की तरह वीरांवाली के आँसू रुकने में ही नहीं आ रहे थे।

शाम गहरी हो गई अंधेरा पड़ने लगा था, बाहर गली में खेलते हुए बच्चे लौट रहे थे। तब वीरां ने अपने आपको कमाल की बाहों से अलग किया। उसकी पलकों में आँसुओं का प्रवाह रुका और जैसे अचानक किसी पुरानी याद के आने से उसके ओठों पर एक मुस्कान लहरा उठी।

"क्या है ? तुझे क्या याद आया है ?" कमाल ने वीरां की मानसिक हालत पहचानते हुए उससे पूछा।

"पता नहीं तुझे याद है कि नहीं बचपन में घर-घर का खेल खेलते हुए एक बार मैं बिल्कुल इसी तरह बहुत देर तक तेरी बाहों में लिपटी रही थी।" वीरां की आँखों में जैसे कोई सपना आकर लटक गया हो।

और फिर बच्चे कमरे के भीतर आ गए कुछ देर की खामोशी के बाद गहमा-गहमी होने लगी।

सारी शाम गली-मुहल्लों के बच्चों के साथ खेल-खेलकर थके हारे बच्चे कुछ देर रौनक लगाकर सामने चारपाई पर सो गए।

आधी रात का वक्त था। वीरां को लगा जैसे दोनों बच्चे कराह रहे हों। वो घबरा कर उठी और उसने बच्चों की चारपाई के पास जाकर देखा। बहन-भाई दोनों को जैसे ताप चढ़ा हो। उनके शरीर गर्म हो रहे थे।

बदकिस्मती के थपेड़े खाकर पीस चुकी वीरां की सारी रात आँख नहीं लगी। बार-बार सोचती, अकारण बहन-भाई को ताप क्यूँ चढ़ गया था। मन ही मन उसे शहर में फैली बीमारी का खतरा खा रहा था।

सुबह हुई तो कमाल अपने काम निपटाकर उसके यहाँ आया। बच्चों का बुखार तो बढ़ रहा था, उसने उनकी पलकें उठाकर पुतलियाँ देखीं। इधर-उधर टटोला और फिर अचानक उसका चेहरा उतर गया।

लगता है "बहन-भाई को यही मनहूस बीमारी आ चिपकी है जिसने शहर में हड़कंप मचाया है," कमाल ने डरते-डरते वीरां से कहा। वो जानता था कि वीरां के भीतर की माँ का सुनकर बुरा हाल होगा।

वही बात हुई वीरां ने सुना तो उसके हाथ पैर फूल गए ज़हाँ खड़ी थी, वहीं धरती पर बैठ गई और ज़मीन पर हाथ फेर-फेर कर फरियादें करने लगी—"हे ईश्वर मुझ पर और कोई जुल्म न ढाना मैं पहले ही टूट चुकी हूँ। कौन सा सितम है जो मुझ पर नहीं ढह चुका। और मुझे न अजमाइये। मेरी और परीक्षा न लीजिए।

कमाल ने उसे हौसला दिलाया आखिर वो तो कई दिन से इस तरह के मरीजों से जूझ रहा था। उसे तो इस रोग के दवा दारू और सब लक्षणों से वाकफियत थी। पर वो यह भी जानता था कि ये कमबख्त बीमारी जिसको दबोचती है तो उससे बचाव करना मुश्किल है। खास तौर पर तो बच्चों को तो वो कुछ ही क्षणों में भस्म करके रख देती है।

कमाल की नज़र में इस बीमारी का एक ही इलाज था, गुरु हरिकिशन जी की कृपा—जिस डिट्ठै सभि दुखि जाई।

पर वो दरवाजा भी गुरसिक्खों की सलाह से माता जी ने बिल्कुल बन्द करवा दिया था। कल रात ही गुरु महाराज के डेरे पर जाकर वो इस फ़ैसले से परिचित हो चुका था। गुरु महाराज अब किसी बीमार को दर्शन नहीं दे रहे थे। आशीष देने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। गुरु महाराज के वश में होता तो वे किसी को इन्कार न करते पर माता जी और दूसरे गुर सिक्ख उन तक किसी को पहुँचने ही नहीं देते। जब से वो हुमायूँ के मकबरे के पास यमुना किनारे आए थे ये फ़ैसला कि कोई मरीज उनके नजदीक नहीं जा सकेगा, पूरी तरह लागू किया जा रहा था।

बेशक माता जी और भाई गुरबख़्श आदि को मनाना मुश्किल था पर कमाल को अपने असर रसूख पर पूरा भरोसा था।

फिर कमाल बाहर से एक इक्का भाड़े पर ले आया। वो बच्चों को गुरु महाराज के पास ले जाना चाहता था। वीरांवाली ने सुना तो एक जूती उतारती और दूसरी पहनती वो तो गुरु घर का नाम लेने को तैयार नहीं थी। "मैंने आपके गुरु को देख लिया है मेरे खाविन्द को मरवाकर खुद शिवालिक की पहाड़ियों में जा बैठे हैं।" इस तरह का कुफ्र तोल रही थी। कमाल जिसने इस औरत को सारी उम्र दिल ही दिल में मुहब्बत की थी, खामोश हो गया। एक अकथनीय हैरत से उसकी ओर देख रहा था, पर कह कुछ नहीं रहा था।

"कभी किसी ने सुना है ईश्वर का नाम लेने वाले तीर और तलवार उठाये शिकार खेलने जाते रहें। मासूम पंछियों को कत्ल किया जा रहा है। बेक़सूर खरगोशों और हिरनों की खालें उतारी जा रही हैं।" वीरांवाली ज़हर उगल रही थी, "इतने बड़े साम्राज्य से बेकार टक्कर लेना।" मैं पूछती हूँ, "मुगल हाकिमों से चार लड़ाइयाँ लड़कर हमने क्या हासिल किया था ? हजारों घर बरबाद हुए हैं लाखों बच्चे यतीम हुए हैं। मेरे जैसी अनगिनत औरतें सुहाग गवाकर गली-गली खाक छान रही हैं। किसी ने इनकी खबर ली है? और अब मुगलों ने जब आँखें दिखाईं तो उनकी चापलूसी की जा रही है। कोई शहंशाह का दरबारी बनकर बैठा है। कोई गुरगद्दी पर बैठा औरंगजेब का पानी भर रहा है।" इस तरह के अपशब्द सुनकर सहसा कमाल के ओंठ फड़के पर उसके मुँह से कुछ नहीं निकला।

फिर और वे थकने लगी। पाँच बरस के गिल्ली डंडा खेलते हुए बच्चे को पकड़कर गुरगद्दी पर बैठा दिया गया है। इस तरह की अंधेर गर्दी किसी

ने नहीं देखी होगी। पूरी सिक्ख संगत की आँखों में धूल झोंकी जा रही है। गुरुवाई न छुई, तमाशा हो गया तभी तो सारे भाईचारे का ये हाल हो गया है। आज गुरु के सिक्ख दर-दर ठोकरें खा रहे हैं। कितने दिन हो गए हैं दिल्ली में आए हमारे 'सच्चे पादशाह को' और शहंशाह ने उन्हें मुलाकात का मौका तक नहीं दिया। कोई वक्त था, अकबर जैसा सम्राट गुरु के यहाँ खुद हाजिर हुआ था नंगे पैर चलकर गया था। लंगर में कहारों और धोबियों के साथ बैठकर उसने भोजन किया था। सुना है पहले उन्होंने मिर्जा जय सिंह के यहाँ डेरा लगाया और जब वो ख़ातिरें करके हार गया तो धर्मशाला में जा बैठे।

"ये झूठ है।" आखिर कमाल से रहा नहीं गया वह दाँत पीसकर बोला।

"मैं पूछती हूँ, आपके सात साल के बालाप्रीतम घर कब बसायेंगे ?" वीरां वाली जैसे अपने दाँतों की उल्ली उतार रही हो, जैसे अपने मन की भड़ास निकाल रही हो। उनके पिता गुरुदेव ने तो सात बहनों के साथ फेरे ले लिए थे कोई राजा अपनी सात बेटियाँ लेकर आया था सातों बेटियाँ उसने गुरु महाराज को पेश कीं और गुरु हरिराय जी ने सातों से ही शादी कर ली। तौबा-तौबा औरतें न हुईं, भेड़ बकरियां हुईं।

"बस-बस वीरां", कमाल ने अब अपने कानों में अंगुलियाँ दे लीं। मैं तेरे आगे हाथ जोड़ता हूँ और कुफ़्र न तौल। तेरे तीरों जैसे दो बच्चे बुखार में तप रहे हैं, लाचारी में कमाल की आँखें भर आयी थीं। जिस औरत को उसने सारी उम्र चाहा था वो उससे कितनी दूर निकल गई थी।

"बाहर इक्के वाला उतावला पड़ रहा होगा, मैं इन्हें किसी हकीम या वैद्य को तो दिखा लाऊँ।" कमाल कह रहा था।

सचमुच बच्चों का बुखार बढ़ गया था। उनके चेहरे दहक रहे थे। बिना कुछ और कहे कमाल ने बड़े बच्चे को कंधे पर उठा लिया, वीरां वाली ने बेटी को गोद में ले लिया और वे बाहर इक्के में जा बैठी। हकीम के दवाखाने में जो-जो दवाइयाँ बताई गईं, बाजार से खरीदकर वो वापस आये। दवाइयाँ पिलाई गईं, कुछ खिलाई गईं पर बुखार में रत्ती भर फरक नहीं पड़ा बल्कि मासूम जानों को बेहोशी चढ़ रही थी। कभी कुछ जतन करते थे, कभी कुछ उपाय हो रहा था। सारा दिन कमाल और वीरां के पैरा जमीन पर लगे रहे। उनसे कुछ खाया पिया भी नहीं गया।

शाम पड़ रही थी कि दोनों बच्चों ने पहले कराहना शुरू किया फिर

प्रलाप करने लगे। पता नहीं क्या उल जलूल बोल रहे थे। ये तो चेचक थी। अब उनके हाथों पैरों के तलबे लाल होने लगे। कमाल ने देखा तो उसके हाथ पैर पड़ गए। वीरांवाली बच्चों के बीच बैठकर कभी एक को सहलाती, कभी दूसरे को पुचकारती। जैसे उन पर गमी छायी हो, ऐसा लगता जैसे लट-लट जलते दो दिए बुझ रहे हों। दोनों विवश थे न कमाल को कुछ सूझ रहा था न वीरां वाली की समझ में कुछ आ रहा था।

इतने में बच्चों ने चीखना शुरू कर दिया। वीरां वाली ने सोचा शायद वो डर गए हैं। कभी एक को छाती से लगाती, कभी दूसरे के साथ लेट जाती। कमाल परेशानी में कमरे में इधर से उधर टहल रहा था।

"ले चले, ले चले।" कमाल ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। शायद बेटे ने कोई सपना देखा था। वो कह रहा था।

"मैं नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी, मैं नहीं जाऊँगी।" अब छोटी रो-रोकर फरियाद कर रही थी वीरांवाली बच्ची को छाती से लगाकर पुचकार रही थी पर बच्चे थे कि छल-छल आँसू रोते हुए चीखते जा रहे थे। कभी एक दूसरे से चिपक जाते, कभी माँ के गले में बाहें डाल देते। बार-बार यही कह रहे थे, "हमें ले जा रहे हैं, क्यूँ ले जा रहे हैं ?"

बेवश कमाल बच्चों का क्लेश देखकर आखिर गिड़गिड़ाकर वीरांवाली से कहने लगा, "वीरां मैं हाथ जोड़ता हूँ मुझे बच्चों को गुरु महाराज के पास ले जाने दो, ये भले चंगे हो जायेंगे। उनकी कृपा-दृष्टि हो तो मुर्दे जी पड़ते हैं।"

"नहीं, नहीं, नहीं" वीरांवाली अपनी ज़िद पर क़ायम थी। मैं तेरे गुरु महाराज को देख चुकी हूँ मुझे उनसे कुछ नहीं लेना।"

पर बच्चे तो हाथ से जा रहे थे उनकी हथेलियों और पैरों पर छाले निकल आये थे। थोड़ी देर में ये छाले सारे शरीर पर फैल जायेंगे।

कभी कोई दवाई देते कभी कोई। कोई फर्क नहीं पड़ रहा था।

"ये बड़ी ज़ालिम बीमारी है वीरां तूँ मेरी बात मान ले। कमाल फिर जैसे मिन्नत कर रहा हो वीरां सुनी-अनसुनी कर रही थी। उसकी पलकों में से अनायास आँसू टपक रहे थे।"

अब बच्चों ने हिलना डुलना बन्द कर दिया था उनके ओठों पर पपड़ी पड़ गई थी। लगता था उनके हाथ पैर ऐठनें लगे थे, ये देखकर वीरांवाली के भीतर की माँ कमाल की ओर देखकर गिड़गिड़ाने लगी, "ले चल जहाँ तेरी

मर्जी है ले चल। मेरे सुमन की निशानी पे बच्चे चल गए तो मैं जिन्दा नहीं रह सकूँगी।" कमाल ने सुना तो एक बच्चे को उसने उठाया दूसरे को वीरांवाली ने। शाम गहरी हो रही थी इस वक्त कोई सवारी मिले न मिले, वे घर से निकल पड़े। कमाल को यही हौसला था कि गुरु महाराज जिस नई जगह पर विराजमान थे, निजामुद्दीन से कोई दूर नहीं था।

किस्मत ने साथ दिया, वे बाहर शाहराह पहुँचे ही थे कि मथुरा से आने वाले एक इक्के ने उन्हें बैठा लिया और अगले क्षण वे गुरु महाराज के आस्ताने पर पहुँच गए।

पर माता जी और गुर सिक्खों ने मिलकर फ़ैसला किया हुआ था कि गुरु महाराज अब और किसी चेचक से रोगी को न दर्शन देंगे न आशीष। कमाल उनसे बहस कर रहा था, हाथ जोड़-जोड़ कर मिन्नतें कर रहा था आखिर वो उन्हीं में से एक था जिसने इतने वर्षों से गुरु घर की सेवा की थी। इतने में ईश्वरीय संयोग से गुरु महाराज टहलते हुए उधर आ निकले। उन्होंने कमाल का सारा तकाजा सुन लिया था, "मेरे बच्चे हैं। गुरु घर की चरण धूलि के सदके हम आए हैं।" कमाल इस तरह फरियाद कर रहा था कि गुरु महाराज को आता देखकर सब खामोश हो गए। वीरांवाली दुकर-टुकर देख रही थी हाथ जुड़े हुए। गुरु महाराज ने पहले एक बच्चे को दुलार किया, फिर दूसरे को और पाँच बार 'सतिनाम श्री वाहे गुरु' उच्चार कर कहा; 'तो जाओ ये भले चंगे हो जायेंगे। इनका दुख किसी और ने........

और फिर गुरु महाराज सहसा खामोश हो गए।

(6)

अगली सुबह वीरांवाली के बच्चे सचमुच भले-चंगे थे। बीमारी ने मोड़ा ले लिया था। पर कमाल जब यमुना के किनारे गुरु महाराज के स्थान पर पहुँचा, उसे पता चला गुरु महाराज को खुद बुखार ने आ दबोचा था। बुखार से निढाल होकर पलंग पर पड़े हुए थे। सब लोग चिन्तित थे।

मनी भाई एक तरफ बैठे लगातार सुखमनी साहब का पाठ कर रहे थे। एक के बाद दूसरा।

भाई गुरबख्श गुस्से से उछल-उछल रहे थे। उनके बार-बार कहने के बावजूद वीरां वाली के बच्चों को गुरु महाराज के तंबू के नजदीक जाने दिया गया था। माताजी गुरु महाराज के पलंग से हिलने का नाम नहीं ले रही थी। उन्होंने सुबह का न कुछ खाया था न पिया था। वे सुबह से भूखी प्यासी थी।

चारों तरफ एक त्रास छाया हुआ था। सब लोग जैसे कमाल को दोषी ठहरा रहे थे। वह झूठा-झूठा, शर्मिन्दा-शर्मिन्दा और गुनहगार महसूस कर रहा था।

जहाँ खड़ा था कमाल वहीं बैठ गया। घुटनों पर सिर फेंककर, चिन्ताओं में डूबा धरती फट जाती तो वह उसमें समा जाता। कितनी देर तक वो उसी तरह सिर झुकाए बैठा रहा। किसी ने उससे बात नहीं की। किसी ने उसे नहीं बुलाया। सुबह-दोपहर में बदल गई। फिर पता चला गुरु महाराज का बुखार बढ़ गया था। उनकी आँखें लाल हो रही थीं। उनके हाथ पैर के तालुओं में जलन महसूस होने लगी थी। सब निशानियाँ बताती थीं कि वही मनहूस बीमारी है। कमाल की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसे लगता था जैसे आस-पास के लोगों की नजरें तीरों की तरह उसके शरीर को छेद रही थीं।

पर बुख़ार तो गुरु महाराज को उससे पहले भी था। माताजी ने खुद उनकी कलाई को हाथ लगाकर देखा था पहले कुछ दिनों से उनकी तबीयत ढीली थी। थके-थके से लगते थे फिर वीरां के बच्चों को उनकी मर्जी के खिलाफ तो उनके पास कोई लेकर नहीं गया था। जब वे लोग इस बारे में बहस कर रहे थे, गुरु महाराज खुद पाठ करते हुए उधर आ निकले थे और उन्होंने पहले एक बच्चे को फिर दूसरे बच्चे को पुचकारा था, आशीषें दी थी। और तो और बालाप्रीतम जी ने फरमाया था, "कितने सुन्दर बच्चे हैं जैसे दो कलियाँ मुरझा रही हों।" और फिर वीरां वाली की ओर इस तरह देखा था जैसे कह रहे हों, "इस तरह के बच्चों की माँ होना कोई औरत भी इन पर मान कर सकती है। इस तरह के कोमल बच्चों पर आँच नहीं आनी चाहिए।"

इस तरह की सोचों में डूबा कमाल धीमी चाल से वीरांवाली के ठिकाने की ओर जा रहा था। रास्ते में उसने बच्चों के लिए फ़ल, दूध और दूसरी चीजें लेनी थी। उसकी वहाँ प्रतीक्षा हो रही होगी।

सामान लेकर जब वह लौटा, घर में बच्चे जाग उठे थे। वीरांवाली का चेहरा खिल गया था। सारे फिक्र, सारी चिन्ताएं दूर हो गई थीं, स्नान करके, बाल बनाकर रसोई में बैठी खाना बना रही थी।

इससे पहले कि कमाल कुछ बोलता, वीरांवाली एक ही साँस में खुश होकर उसे बता रही थी कि बच्चों का बुख़ार उतर गया था। जैसे कभी ताप चढ़ा ही न हो। गुरु महाराज ने तो जैसे जादू कर दिया हो। यह तो करामात

है। जैसा उन्होंने फ़रमाया था, बच्चों की आधी व्याधि दूर हो गई है, हाय मैं निकम्मी। कैसे गुरु घर के बारे में ऊल जलूल बकती रहती थी। मुझ जैसी भी कोई अभागिन होगी ? मैं तो गुरु महाराज के पास जाकर उनके चरणों में गिर पड़ूँगी वे आश्रयहीनों के आश्रय, असहायों के आश्रय हैं जैसे मौत के मुँह से छिनकर उन्होंने मेरे बच्चे मुझे लौटा दिए हों। दो लाशें ही तो लेकर हम उनके पास लेकर गए थे अब देखो बहन भाई कैसे एक दूसरे के पास-पास लेटे खेल रहे हैं!.........वीरांवाली एक साँस में बोलती जा रही थी।

कमाल सोचता था कि वीरांवाली रुके तो वह उसे बताये, गुरु महाराज ...के बच्चों को जीवन-दान देकर खुद चारपाई पर पड़ गए थे।

"मैं तो बार-बार कानों को हाथ लगाती हूँ। सोच-सोचकर अपने आप को कोसती हूँ मैंने कौन सा अपराध नहीं किया, कैसे-कैसे दोष नहीं लगाए ? क्या-क्या बकवास नहीं की ? मेरी इस जीभ को कीड़े पड़ें। वे तो जानी-जान हैं, उन्होंने मुझे माफ कर दिया। गुरु महाराज का घर मेहरों का दर है। वहाँ गया कोई खाली हाथ नहीं लौटता। टूटी बात गाँठ देते हैं मैं तो अपने बालाप्रीतम को चढ़ावा चढ़ाने के लिए प्रसाद तैयार कर रही हूँ।........"

वीरां लगातार बोलती जा रही थी। हाथ जोड़े, समूचे गुरु महाराज के आगे पूरी तरह न्यौछावर हुई, उसका अंग-अंग कृतज्ञता में विभोर हो रहा था।

"बेशक सुमन करतारपुर की मनहूस लड़ाई में शहीद हो गया। बेशक उन्होंने मेरा घरवाला ले लिया, मैं सोचती हूँ, उसके बदले उन्होंने मेरे दो बच्चे मुझे लौटा दिए हैं। हीरों जैसे दो बच्चे, मैं कौन सा घाटे में रही हूँ ? कमाल तू मान या न मान मेरा दिल कहता है अगर गुरु महाराज मेरे बच्चों को आशीष न देते तो आज इस आँगन में मातम हो रहा होता। और हाँ, सच उन्होंने बेशक मेरा महबूब मुझसे छीन लिया, मैं सोचती हूँ......मैं सोचती हूँ.. ....मैं सोचती हूँ, मेरा महबूब भी मुझे............" वीरांवाली की आवाज धीमी पड़ गई, उसकी नजरें झुक गईं, वो कमाल की बाहों में ढेरी हो गई।

उधर यमुना के किनारे एक अकथनीय खौफ़ छाया हुआ था। गुरु महाराज का ताप काबू में नहीं आ रहा था। उनकी आँखें और लाल हो गईं थीं, जैसे सुलगते हुए अंगारे हों। हथेलियाँ और तलुए जल रहे थे। हकीम होकर जाते वैद्य आ जाते। पर कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। अब तो साफ लग रहा था कि कुछ घड़ियों और पलों के बाद, किसी वक्त भी मनहूस दाने निकल आयेंगे। माताजी, आसपास के निकटवर्ती श्रद्धालु जैसे तड़प रहे हों,

पर गुरु महाराज शान्त, स्थिर आँखें मूंदे लेटे थे जैसे उनकी लीव अकाल पुरुख से लगी हो।

फिर गुरु महाराज ने नयन खोले और पहले माताजी को अपने पास बुलाकर संबोधित किया :

"चले आवहि नानका सदे उठि जाही"

"गुरु वाक़ के अनुसार हमें बुलावा आ गया है। उसकी रज़ा में हमें जाना होगा और आपको ये भाणा मीठा समझ कर मानना है।"

"ये कैसे हो सकता है ?" माता किशन कौर जी ये सुनकर तड़प उठीं, "ये कैसे मुमकिन है ? ये कोई आपके जाने की उम्र है ?"

"बुलावा जो आ गया है।"

"आप बाबा नानक की गद्दी को सुशोभित कर रहे हैं। संगतें आपके दर्शन करके निहाल होती रहती हैं।"

"गुरु बाबा नानक की गद्दी ज्यूँ की त्यूँ सजी रहेगी और फिर गुरु सिक्खों के पास पोथी है। पोथी परमेश्वर का स्थान है।"

"आप दुखियों के दुख निवारण करने वाले हैं जो भी इस दर पर आता है, स्वस्थ होकर जाता है। आप वे हैं, जिस डिट्ठै सभि दुखि जाइ। इस शहर में चेचक का रोग आग की लपट की तरह फैलता जा रहा है।"

"इसी पर तो काबू पाना है। ये सारा कोप मैंने अपने सिर पर ले लिया है और कोई तरीका नहीं है, इस आग को बुझाने का।"

"पर मेरा क्या कसूर है ? मेरे सिर का साई तीस बरस की उम्र में चला गया और मेरा लाल आठ बरस की उम्र भोगकर चलने की तैयारी में है और कोई तरीका नहीं, इस आग को बुझाने का।"

"ईश्वर का भाणा तो मानना होगा। आप गुरु माता हैं, आप को उसकी रज़ा में राज़ी रहना होगा।" "गुरु बाबा नानक आपके अंग-संग रहेंगे। आप को भांड़ा मानने की शक्ति देंगे।" ये कहते हुए गुरु महाराज ने फिर आँखें मूँद लीं ऐसा लगता था जैसे वे फिर समाधि में चले गए हों।

उनका रोग बढ़ रहा था। बुखार और तेज हो गया था। शरीर जैसे सुलग रहा हो, उनके हाथ पैरों के तलुओं पर चेचक निकल आयी थी। कुछ देर बाद जब उन्होंने फिर नैन खोले, गुरु हरिकिशन जी के पलंग के गिर्द भाई गुरबख्श, भाई मनी और दूसरे निकटवर्ती गुरु सिक्ख हाथ जोड़े गले में पल्ला डाले खड़े थे जैसे पंचायत बनाकर विनती करने आए हो।

उनके बोलने से पहले ही गुरु महाराज ने फरमाया : "ये संसार नाशवान है। हर किसी को यहाँ से जाना है। किसी को पहले, किसी को बाद में। हमारा समय आ गया है। हमें जाना होगा। जो दो दिन बाकी हैं, हमारी ये मर्जी है, ये समय कीर्तन और ईश्वर भक्ति में गुजरे।"

"पर हुज़ूर आप हमें किसके हवाले करके जा रहे हैं ?" भाई गुरबख्श जी का रोना निकल गया। बाकी सिक्ख भी छल-छल आँसू रो रहे थे, "आप जानते हैं कि रामराय कैसे गुरगद्दी को हड़पने के लिए जोर लगा रहा है औरंगजेब अपनी जगह पर बिगड़ा हुआ है।" हिन्दुस्तान के शहंशाह को एक आठ बरस के बच्चे ने मिलने से इंकार कर दिया। "सुना है कि वो उठते बैठते बड़बड़ाता रहता है। हमें चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता है।"

"गुरु सिक्खों के लिए पोथी रोशनी की मीनार है जो सिक्ख मेरी संगत की अभिलाषा रखते हैं, वे मुझे गुरवाणी के पाठ में पायेंगे।" गुरु महाराज ने ये कहते हुए हाथ जोड़ लिए, जैसे उन्हें और बोलने में कष्ट हो रहा हो। लगता था, चेचक के दाने उनके गले में भी फूट आये थे।

और फिर गुरु महाराज ने आँखें मूँद लीं। बाहर शहंशाह औरंगजेब का संदेशा फिर आया था। आलमपनाह का कहना था कि अगर गुरु महाराज उसके यहाँ नहीं आ सकते तो वो खुद दीदार करने के लिए हाज़िर होना चाहता था।

पर यहाँ हालात और के और हो गए थे। शहंशाह का भेजा दरबारी अपना सा मुँह लेकर लौट गया।

हर एक को अपनी पड़ी हुई थी। जब मिर्जा जयसिंह को खबर मिली वो रानियों समेत भागता हुआ आ गया। फिक्रमंद, "मेरी तो नाक कटकर रह जायेगी। चाहे कुछ था दिल्ली में गुरु महाराज मेरे मेहमान होकर आये थे। मैं सिक्ख संगत को क्या मुँह दिखाऊँगा ? ऐसा कभी नहीं होने दिया जायेगा। चाहे कोई कीमत देनी पड़े, गुरु महाराज को इस मनहूस बीमारी से ज़रूर बचाना है।"

मिर्जा जयसिंह कोशिश कर चुका। शाही दरबार के हकीम और वैद्य अपना पूरा जोर लगाने लगे। पर किसी की सुनवाई नहीं हुई। कोई फर्क नहीं पड़ा। गुरु महाराज की बीमारी गंभीर से गंभीर रूप धारण करती जा रही थी।

अब वे आधी बेहोशी के आलम में थे। चारों तरफ भजन-पाठ हो रहा

था माता हरिकिशन कौर जी को एक अकथनीय हौसला था उन पर गुरु बाबा की कृपा थी। वे हर किसी को ईश्वर भक्ति में लगाई हुई थी। और कोई चारा था भी नहीं।

गुरु महाराज की आधी बेहोशी हर क्षण गहरी होती जा रही थी। बेहोशी में बदलती जा रही थी। सामने तंबुओं और छोलदारियों में से 'धन निरंकार' 'सत् क़रतार' की ध्वनि ऊँची और ऊँची होती जा रही थी। आस-पास के शहरी और ग्रामीण आकर उस भीड़ में शामिल हो रहे थे। जो कोई सुनता, गुरु महाराज के दर्शनों को चल पड़ता।

(7)

कमाल सुबह का घर से निकला था। अभी तक नहीं लौटा था। बेशक आज उसने बाज़ार से कोई सौदा नहीं लाना था, न बच्चों के लिए न चौके चूल्हे के लिए लेकिन इस तरह उसका गायब हो जाना, वीरां को ऐसा लगता जैसे उसका दिल डूबता जा रहा हो।

बच्चे चारपाई छोड़कर बाहर गली में जा बैठे थे खेल नहीं रहे थे। इस मनहूस बीमारी ने उन्हें चार दिनों में निढाल कर दिया था-एक तरफ बैठे और बच्चों को खेलता देख रहे थे। वीरांवाली नहा धोकर सफेद रेशमी जोड़े में ऐसे लग रही थी जैसे नौटंकी की मेनका हो। आँखों में काज़ल ओठों पर दनदाशें की लाली, धुले हुए बाल, फूले हुए बालों को गाठ लगाकर पीछे जुड़ा बनाया था, जैसे वो कभी बनाया करती थी। उसे लगता था जैसे कमाल की नज़रें उसके साथ-साथ चल रही हों। जिधर वो जाती, सूरजमुखी के फूल की तरह उसके नैन उसके पीछे-पीछे घूमते जाते।

सुबह का गया, दोपहर हो गई, दोपहर ढल गई, अब शाम पड़ने वाली थी कमाल क्यों नहीं आया था। वीरां परेशान हो रही थी, "बे पेदी का लोटा है" फिर वो अपने आप से कहने लगी, "हमेशा से इसकी यही आदत रही है जहाँ गया वहीं का हो गया, जहाँ बैठा वहीं जम गया। भला कोई बात भी हुई !"

सामने सरकंडों के मूड़े पर बैठी जैसे साक्षात् प्रतीक्षा की मूर्ति हो कभी वह अपने आप मुस्कराने लगती कभी उसकी आँखें भर आतीं। कई बार ऐसा हुआ वीरा सोचती वो कहीं दीवानी तो नहीं हो गई थी। शायद सठिया गई थी कभी हँसने लगती कभी रोने लगती।

उसका जीवन था भी कुछ इसी तरह का। कमाल को प्यार करती थी,

शादी सुमन से करवा ली। जब सुमन नहीं रहा, कमाल की तलाश में निकली और राह में भटक गई। कितना कुछ उसने गंवाया था, माँ-बाप सास ससुर एक आदमी को पाने के लिए उसे पूरी तरह भुला बैठी थी। और नये सफ़र और पड़ाव और फिर जिसकी तलाश में वो निकली थी, एक सुबह वो कैसे उसके आँगन में आ घुसा था। जिस धर्म में वो जन्मी, जिस भाईचारे में वो परवान चढ़ी, उसने उसे कैसे तिरस्कारा था, फिर उसी में उसका कल्याण हुआ था। जिन गुरु महाराज ने उसके दोनों बच्चे उसे लौटाये थे वो उनसे कैसे विमुख हुई थी। और आज वो उन पर अपनी जान न्यौछावर कर सकती थी। कैसे उसकी तरफ खुद चलकर आये थे जिस तरह उनके निकटवर्ती श्रद्धालू लोगों को उनकी सेवा में हाज़िर होने से रोक रहे थे, कुछ भी हो सकता था। वीरां सोचती, अगर उन्हें गुरु महाराज के दर्शन न होते तो आज उसका ये आंगन सूना होता। जिसमें उल्लू बोलते, कुत्ते टाँगें उठाकर सारा स्थान अपवित्र करते फिरते, भूत और प्रेतों का अड्डा होता उसकी जिन्दगी धूप-छाँव की एक लंबी दास्तान थी।

वह भटक रही थी, डूब रही थी गुरु महाराज ने उसकी कश्ती को ढेलकर जैसे किनारे सा लगा दिया हो। बाकी का अपना जीवन वो उनकी सेवा में गुजारेगी। भाई मुले की आत्मा अब और नहीं भटकेगी उसकी नानी के संस्कारों पर उसके नाने के संस्कार हावी हो गए थे। जिस सीधी-सच्ची राह पर कमाल इतने दिनों तक चलता आया था वो राह अब वीरां ने अपना लिया था। अब वो कभी नहीं भटकेगी। उसके कदम कभी नहीं विचलित होंगे। अब उसने मंजिल पा ली थी।

वो इन सोचों में डूबी थी कि बाहर गली में किसी के कदमों की आवाज़ सुनाई दी। ये तो कमाल की पद्चाप नहीं थी, किसी और के कदम थे। वीरां एकदम सचेत हो गई। अगले क्षण उसने देखा, उसकी बच्ची को गोद में लिए उसके बेटे को ऊँगली से पकड़े आलम आ रहा था। वीरां ने देखा तो उसके प्राण खुश्क हो गए। ये अब कहाँ से आ टपका था ?

"अरे तू तो तैयार बैठी है।" आँगन में घुसते ही आलम ने उसके फरसी ग़रारे, कुर्ते, आँखों में काजल, ओठों पर सुर्खी और बालों का भारी जूड़ा देखकर कहा।

"मेरी जान, रास्ते के सारे कांटे मैंने साफ कर दिए हैं। एक-एक करके सारे रोड़े हटा दिए हैं, सारी गुत्थियाँ सुलझ गई हैं। अगर तुझे कोई एतराज़

न हो तो इसी वक्त हमारा निकाह हो सकता है।" आलम ने शराब पी हुई थी।

वीरां को काटो तो जैसे लहू की बूँद न हो, पीली जर्द होकर फटी-फटी आँखों से उसके चेहरे की ओर देख रही थी।

इस रेशमी जोड़े में तू जैसे आसमान से उतरी हूर लग रही हो। क्यों बेटा तेरी माँ कैसी लगती है।

'शाह बहराम की परी', धर्म ने कहा। वीरां सचमुच इतनी सुन्दर शायद ही कभी लगी हो। उसके प्रशंसक आलम ने कंधे से लटकाए थैले में से मोतियों के फूलों की एक वेणी निकालकर उसके जूड़े के गिर्द लपेट दी। फिर थैले में हाथ डालकर मोतियों के फूलों के गुंदे हुए गोखरू निकालकर उसकी कलाइयों में पहना दिए उसका हाथ फिर थैले में गया और इस बार उसमें गुलाब के फूलों का एक हार निकालकर वीरां के गले में डाल दिया। वीरां टुकर-टुकर उसकी तरफ देख रही थी। अभी तक मुँह से उसने एक शब्द भी नहीं निकाला था।

"और आप के लिए ?" अब आलम ने थैले में से एक खिलौना निकालकर बेटे को पकड़ाया, दूसरा बेटी को दोनों खिलौने लेकर खुशी-खुशी साथ के कमरे में चले गए।

वीरां अभी तक ख़ामोशी से आलम के मुँह की ओर देख रही थी, एक अजीब असमंजस में। कुदरत उसके साथ ये कैसा खेल-खेल रही थी ?

और फिर वो अचानक फूट-फूट कर रोने लगी। हाथ जोड़कर आलम के कदमों में गिर पड़ी। लहू के आँसू गिराकर फरियाद कर रही थी।

"मैं तुझे तेरे अल्ला पाक़ का वास्ता देती हूँ, तूँ मुझे माफ कर दे सब कुछ भूल जा। जो वादे मैंने तेरे साथ किए थे, जो वादे तूने मेरे साथ किए इतने दिन तूने फेरा नहीं डाला इस बीच वो जिसकी तलाश में मैं घर छोड़छाड़ कर निकली थी मुझे ढूँढता हुआ आ मिला है। मैंने सब कुछ वा पा लिया जिसका मैंने कभी सपना लिया था। मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ, तूँ यहाँ से चला जा। यहाँ से चला जा और मुझे हमेशा-हमेशा के लिए भुला दे। अब उसके आने का वक्त हो गया है सुबह से वह यमुना किनारे हमारे गुरु महाराज के दर्शनों के लिए गया है। दो चार दिन बाद हम पंजाब लौट जायेंगे। अपने देश में। मैं अपने घर गोइन्दवाल चली जाऊँगी। मेरा महबूब मुझे लेने आ गया है।"

"ये तू क्या ऊल जुलूल बोले जा रही है ?" आलम ने वीरां को टोका,

"तेरा दिमाग तो ठीक है ? तेरी शर्त थी कि मैं अपनी बीवी को तलाक दूँ सो मैं दे आया हूँ। ये देख काज़ी की तस्दीक। वो तो हमारे निकाह के लिए इन्तजार कर रहा है।" आलम ने अपने थैले में से एक कागज निकालकर वीरां को पकड़ाया।

मैं कुछ नहीं देखना चाहती। हे ईश्वर मेरे साथ ये क्या खेल खेला जा रहा है। वीरां तड़पकर आकाश की ओर देखने लगी। उसने आलम के दिए तलाक के कागज को नीचे फेंक दिया।

मैंने तो अपने सारे खानदान को नाराज़ करके अपनी ख़ाला की बेटी को तलाक दिया है, तेरे कहने पर। हमारे घर में पिछले तीन हफ्तों से झगड़ा मचा हुआ है। मार-कुटाई, रोना-धोना मैंने अपनी आधी जायदाद मेहर के बदले उसके नाम करवाई है और तूँ इधर और ही कहानियाँ सुना रही है। गुस्से में आलम के मुँह से झाग निकल रही थी।

"आलम मेरी जान, मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ तू मुझे माफ़ कर दे जिस तरह कभी तूने मुझ बेसहारा को सहारा दिया था, आज तू फिर वही दरियादिली दिखाकर मेरे रास्ते से हट जा। जिसे मैंने बचपन से प्यार किया है, वो मुझे आ मिला है वो जिसके मैं सपने देखती रही हूँ, जिसके लिए मैंने लाख बार अपने रब्ब के आगे माथे रगड़े हैं, आज मेरी झोली में आ पड़ा है। अब उसे गंवाकर मैं जिन्दा नहीं रह सकती। मैं तेरे कदमों में पड़ती हूँ। तू मुझे भूल जा। जो हुआ, उस पर मिट्टी डाल दे।"

"वाह, ये कोई गुड्डे गुड़िया का खेल थोड़े ही है मैं तो अपनी सारी कस्तियाँ डुबोकर तेरे पास आया हूँ और यहाँ तो तेरा दिमाग और ऊँचा चढ़ गया है।" आलम जब ये बोल रहा था, बाहर गली में खड़ा कमाल हक्का-बक्का होकर सुन रहा था।

"मैं अपने सारे कसूर मानती हूँ।" वीरां छ़ल-छल आँसू रो रही थी, "मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ मैं कोई भी कीमत भरने के लिए तैयार हूँ पर मैं अपने पहले महबूब को नहीं छोड़ सकती।"

"पर वो है कौन ?" आलम झुंझला रहा था।

"कोई भी हो। वो अपने गुरु महाराज के दर्शनों के लिए गया है। किसी वक्त भी वो आ जायेगा। मैं तुझे तेरे अल्ला का वास्ता देती हूँ तूँ अब यहाँ से निकल जा।"

"तूँ किसी सिक्ख के साथ तो नहीं मिली हुई है, जानती हो औरंगजेब

इनका क्या हाल करने वाला है ?"

"जो भी है तूँ अब यहाँ से चला जा, किसी वक्त भी वह आ जायेगा और मैं उसे मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहूँगी।"

"मुगल दरबार ने फ़ैसला किया है कि सिक्खों की जमात का बीज तक नष्ट कर दिया जाये इनके गुरु को शहंशाह ने दिल्ली ऐसे तो नहीं बुलाया। अगर वो सीधे रास्ते पर नहीं आता, उसे कैद कर लिया जायेगा।"

"जो बादशाह अपने बाप को नहीं माफ कर सकता, वह औरों के साथ जो भी करे, वह भी थोड़ा।"

"उसे या तो कलमा पढ़ना पढ़ेगा या करामात दिखाकर ये साबित करना होगा कि वह पहुँचा हुआ फक़ीर है।"

"करामात तो गुरु महाराज ने कर दिखाई है, मेरे दोनों बच्चों को चेचक ने आ दबोचा था, गुरु महाराज के आशीर्वाद से मेरे बच्चे भले चंगे हो गए हैं।"

"झूठ, फरेब; वह तो खुद चेचक का मारा हुआ चारपाई पर पड़ा है। शाही वैद और हक़ीम उसका इलाज कर रहे हैं। बिल्कुल संभव है कि अब तक वह खत्म भी हो गया हो।"

(8)

जब वीरांवाली और उसका प्रशंसक आलम, इस बहस में व्यस्त थे, कमाल उन्हीं कदमों से वापस लौटकर यमुना किनारे गुरु महाराज के स्थान पर आ गया।

सचमुच गुरु हरिकिशन पलों के मेहमान थे। चारों तरफ निराशा छायी थी। एक हृदयवेधक खामोशी छायी थी। हर आँख में जैसे आँसू लटके हों किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या होने वाला है। अगर गुरु महाराज ऐसे ही बेहोशी की हालत में बिछुड़ जाते हैं तो सिक्ख संगत का क्या होगा ? गुर गद्दी पर कौन बैठेगा ? इस मुख्य समस्या का फ़ैसला तो करना ही था। गुरसिक्ख माता जी के मुँह की ओर देख रहे थे माता जी गुरसिक्खों पर आस लगाए बैठी थी। पिछले कई घंटों से गुरु महाराज ने न आँख खोली थी न कोई आवाज निकाली थी। हक़ीम और वैद्य कहते थे उनका सारा शरीर, सारे जोड़ चेहरा माता के दानों से भरा हुआ था। इस बीमारी का ऐसा हमला न कभी उन्होंने देखा था न सुना था उनकी अंतड़ियों और गले में भी छाले उभर आये होंगे। इन छालों की बेहद जलन होती है।

अब तो छालों में मवाद भरना भी शुरू हो गया था। इस तरह के हमले से किसी का बचना मुमकिन नहीं था। अगर ऐसा होता है तो करामात होगी और कुछ नहीं। और कमाल जैसे गुरु महाराज के प्रति समर्पित गुर सिक्ख कहते, करामात भी तो होती है, करामात भी हो सकती है।

पर सवाल गुर गद्दी का था। बिना किसी को गुर गद्दी पर बैठाये, अगर गुरु महाराज चले जाते हैं तो उनके पीछे जो भी घमासान हो वही थोड़ा। रामराय जैसा कोई गुर गद्दी पर कब्जा करके बैठ जायेगा।

मन ही मन सबकी नज़र तेगबहादुर जी पर जाती कुछ दिन हुए वे गुरु हरिकिशन जी को मिलने भी दिल्ली आये थे जिस आदर से गुरु महाराज उनसे मिले थे उससे उनकी मन की अवस्था का अंदाजा लगाया जा सकता था। फिर भाई गुरबख्श और भाई मनी जैसे गुर सिक्ख ये भी जानते थे कि जब गुरु हरिगोविन्द ने अपने पोते गुरु हरिराय को गुरगद्दी सौंपी, माता नानकी जी को उन्होंने वचन दिया था कि माताजी का सुपुत्र तेग बहादुर वक्त आने पर गुरगद्दी को सुशोभित करेगा। यही नहीं गुरु तेगबहादुर जी का सुपुत्र एक महान योद्धा होगा, जो सिक्ख पंथ का दसवां गुरु कहलायेगा। पर मुश्किल ये थी, तेगबहादुर जी बाबा बकाले में बैठे थे अगर गुरु महाराज किसी को गुर गद्दी पर बिठाये बिना चले गये तो पीछे आपा-धापी मच जायेगी।

ये सोचकर सब हाथ जोड़ रहे थे, किसी तरह गुरु महाराज स्वस्थ हो जाये। अगर ईश्वर को ये मंजूर नहीं था तो कम से कम एक बार पलकें खोलकर अपना आदेश दें। गुरगद्दी का फ़ैसला कर जायें। कहते हैं, जब पैर में काँटा चुभ जाये, सिर दर्द भूल जाता है। कमाल के साथ भी ऐसा ही हुआ। यमुना के किनारे गुरु महाराज के आस्तानें पर पहुँचकर उनकी हालत की गंभीरता देखकर वह अपना निजी दुख जैसे भूल ही गया हो। यही कोशिश थी कि किसी तरह गुरु महाराज बच जाये। एकाग्रचित से अरदासें करने लगता। बार-बार वो हाथ जोड़ता। वीरांवाली का दुख जैसे वो भूल-भाल गया हो।

और फिर उनकी जैसे सुनी गई।

गुरु महाराज ने पलकें खोलीं। अपने पलंग के आस-पास हाथ जोड़कर खड़े गुरसिक्खों को देखकर उन्होंने एक नारियल और पाँच पैसे लाने के लिए कहा। जब एक थाली में नारियल और पाँच पैसे गुरु महाराज को पेश किए

गए तो उन्होंने अपनी पवित्र बाँह को पाँच बार तस्तरी के गिर्द घुमाया और फिर मुखर बिन्दु से फरमाया-'बाबा बकाले।'

गुरु तेगबहादुर जी को गुरु पन्थ का नौवां गुरु स्थापित किया गया। ये सुनकर चारों तरफ गुरु तेगबहादुर जी की जय-जयकार होने लगी।

गुरु हरिकिशन जी ने गुरु तेगबहादुर जी को गुर गद्दी बख्शकर फिर नैन मूँद लिए थे। फिर समाधि की अवस्था में चले गए थे। नारियल और पाँच पैसे लेकर सिक्ख श्रद्धालुओं का एक जत्था बाबा बकाले के लिए चल पड़ा। पीछे रह गए गुरु सिक्ख पहले की तरह एकाग्र मन से गुरवाणी का प्रवाह जारी रखे हुए थे। आधी रात के समय गुरु महाराज के स्वास धीरे-धीरे मद्धम पड़ने लगे। थोड़ी देर में फिर उनकी ज्योति ईश्वर की ज्योति से मिल गई। जैसे उनका आदेश था, किसी के गले से चीख नहीं निकली, फरियाद नहीं निकली। कोई आँख नहीं रोई आँसू पलकों में बेशक उमड़ते फिर ज्यूँ के त्यूँ लौट जाते।

बाकी की सारी रात गुरवाणी का कीर्तन होता रहा। कमाल उसमें शामिल था वो लौट कर वीरांवाली के पास नहीं गया। पूरी रात वीरांवाली ने उसकी प्रतीक्षा की। सारी रात आँखों में कटी।

अगली सुबह चंदन की लकड़ियों की चिता तैयार की गई और आठ बरस की आयु के कोमल फूलों की गठरी जैसे को उठाकर लपटों के ऊपर रख दिया। बालाप्रीतम को चिता पर लिटा दिया गया। सतनाम श्री वाहे गुरु का लगातार जाप हो रहा था कि चिता को आग दे दी गई। कोई आँख नहीं रोई, किसी गले में से विलाप नहीं सुनाई दिया। ज्यूँ-ज्यूँ आग भड़क रही थी 'सतनाम श्री वाहे गुरु' के सामूहिक स्वर में जाप ऊँचा हो रहा था। ऊँचा और ऊँचा। 'सतनाम श्री वाहे गुरु', 'सतनाम श्री वाहे गुरु', 'सतनाम श्री वाहे गुरु' आग पूरी तरह से चारों तरफ फैल चुकी थी कि एक हृदय विदारक चीख सुनाई दी, कोई औरत भागकर चिता की लपटों में कूदना चाह रही थी गुरसिक्खों ने उसे पकड़ लिया। ऐसा नहीं करने दिया।

यह औरत वीरावाली थी।

नौवाँ खण्ड

(1)

आगे पीछे जहाँ गुरु महाराज को तलाशा जा रहा था, उनके सिवा सोढ़ी ख़ानदान के जिस व्यक्ति ने भी सुना, वो बकाले में आकर गुरु बन बैठा था। घर-घर 'गुरु' थे। गुरसिक्ख परेशान होते किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

'गुरु' बनना कितना आसान था। मुश्किल तो था सिक्ख बनना और इस तरह का सिक्ख कोई उभर नहीं रहा।

गुरु हरिकृष्ण जी तीस मार्च 1664 को 'बाबे बकाले' कहकर ज्योति ज्योत समाए थे।

वक्त चलाणे सिक्खा कीति अरदास।
गरीब निवाज, संगति छड़डी किस पास ?

उस वक्त बचन किता—'बाबे बकाले'।

दिल्ली की संगत ने नारियल और पाँच पैसे जिन पर गुरु हरिकृशन जी ने हाथ घुमाया था, गुरुवाई की सामग्री के तौर पर द्वारिका दास जी के सुपुत दीवान दरग़ाह मल जी को सौंपी ताकि वे बकाला जाकर उनकी अमानत मर्यादा-पूर्वक गुरु तेग बहादुर जी के हवाले करें।

ईश्वर का संयोग भाई दरग़ाह मल को दिल्ली से बकाला पहुँचने में देर हो गई। वे कोई सवा चार महीनों बाद ग्यारह अगस्त, 1684 को बकाला पहुँचे। इस दौरान गुरु हरिकृशन जी का फरमान कि नौंवी पातशाही 'बाबा बकाले' में होगी, सिक्ख संगतों तक पहुँच चुका था और श्रद्धालु दर्शनों के लिए बकाला में आने शुरु हो गए थे। धीरमल तो पहले ही अपने आप को गुरु बनाकर करतारपुर में बैठा था; उसने सुना तो फौरन बकाला में आकर जम गया। रामराय दिल्ली में था। उसकी अपनी आशाएँ थी, उम्मीदें और सपने थे। यही नहीं आस-पास का हर सोढ़ी बीबी भानी जी द्वारा अपने पिता गुरु अमरदास जी से की फरमाइस याद करके अपने आप को गुरु बनाए बैठा था। इस तरह के 22 उम्मीदवार थे।

बकाला में इन्होंने अपने-अपने अड़डे जमाए हुए थे। हर एक ने

अपने-अपने चापलूस रखे हुए थे, जो श्रद्धालुओं को प्रेरणा देकर उनके पास लाते और ये उनकी मनोकामनाएँ पूरी करने के वादे करके अपनी भेंटें वसूल कर लेते। मुसीबत ये थी कि इस तरह के 'बाबे' बकाला शहर की गली-गली में थे। कोई किस पर आस्था लाए ? किसके दर पर सवाली हो ? पूरे का पूरा बकाला शहर मंजियों की मंडी बना हुआ था।

माता नानकी जी को ये सब देखकर, सुनकर हाथ-पैर पड़ने लगते। उनके सरताज़ गुरु हरगोबिन्द जी ने उन्हें वचन दिया था कि उनका सुपुत्र तेगबहादुर गुर-गद्दी पर विराजमान होगा, पर इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी, सब्र करना होगा। पहले उनके लाल का नाम तेगबहादुर थोड़े था, तब तो उन्हें त्यागमल कहके बुलाते। तेग बहादुर तो उनका नाम तब पड़ा, जब करतारपुर की दूसरी लड़ाई में उन्होंने बैरियों के साथ लोहा लिया और तलवार पकड़ी। जंग में उतरे थे। माता नानकी जी ने गुरु महलों को ऊँची छत से ख़ुद देखा था, किस निडरता से एक अद्वितिय सूरमें की तरह वे जूझे थे। बाबा गुरदित्ता जी भी इस जंग में लड़े थे, पर उनके बेटे तेगबहादुर की शूरवीरता की उनके पिता गुरु हरिगोबिन्द जी ने ख़ुद प्रशंसा की थी। यही नहीं, माता नानकी जी को एकान्त में कहा था, तेरे इस बेटे के घर एक ऐसा शूरमा जन्म लेगा जो अनाथों का नाथ होगा, धर्म का रक्षक होगा, और मुग़लों के इस्लामी कट्टरपन का नाश करेगा। और फिर उन्होंने एक कट्‌ार और एक रुमाला माता नानकी जी को दिया। फ़रमाया, समय आने पर तेगबहादुर को देना और कहा, आप माँ-बेटा अब बकाले चले जाओ। इतने दिन साहबज़ादे को ननिहाल में ही रहना होगा। वहाँ मेरी माता गंगा जी की समाधि है। उसकी देखभाल भी आपकी जिम्मेवारी होगी।

माता नानकी जी गुरु महाराज के आदेश के अनुसार तभी से बकाला में टिके हुए थे। उनके साथ माता गुजरी जी थीं। यहाँ तेगबहादुर जी ने घोर तपस्या की। अक्सर लोग उन्हें तपा नाम से जानते थे। कभी-कभी बस घोड़ी जोत कर शिकार को निकलते, तब आस-पास के लोग उनके दर्शन कर सकते। नहीं तो वे दिन भर, रात भर अपनी कोठरी में ध्यानमग्न रहते। जैसे कोई बिछुड़ी हुई कूँज हो। उनके चेहरे से वैराग्य टपकता रहता था। उनकी आँखे जैसे कह रही हों, ये संसार नाशवान् है। इससे दिल लगाना अपना समय व्यर्थ गँवाना है। वीरक्त ! न किसी चीज़ की लालसा, न किसी चीज़ की जरूरत। जो मिल गया, सो खा लिया; नहीं तो आठों पहर उनकी ईश्वर

से लिव जुड़ी रहती, कम बोलते, कम खाते, कम सोते।

और उधर शहर में किस तरह की छिना-झपटी होती रहती थी। सुनते थे हर कोई अपने-आप को गुरु बनाए बैठा था, जैसे दुकानें खोल रखी हों। हर कोई अपने समर्थकों से अपना ढोल पिटवा रहा था। इस तरह की आपा-धापी भी किसी ने न देखी होगी। बिचारे श्रद्धालु परेशान होते रहते। वे गुरु घर कुछ लेने के लिए आते, इधर बकाले के गुरु उनके कपड़े तक उतारने को तैयार रहते।

कोई मंत्र फूँक रहा है, कोई तावीज बनाकर दे रहा है, कोई जादू करने का वादा करता है, कोई टोना बता रहा है। कोई किसी को रेख में मेख मारने का वादा करता है, कोई किसी को जोरू देता है, कोई किसी को बेटा देता है, कोई बिछुड़ों को मिलाने का धीरज बँधाता है, कोई हथेली पर सरसों जमाने का दावा करता है।

और माता नानकी का साहबजादा किसी से मिलने के लिए राजी न होता। कोई फालतू आदमी उनके आँगन में पैर नहीं रख सकता था। समाधि टूटती तो कोई पुस्तक लेकर बैठ जाते। उनके कमरे में ढेरों ग्रंथ एकलित थे। और कितनी सुन्दर कविता लिखते थे, जैसे मोती पिरो रहे हों। उनकी वाणी में से संगीत झरता। उनके शब्दों में किसी बिछड़ी कूँज की व्यथा सुनाई देती थी। उन्होंने तो कभी गुरुवाई की बात भी नहीं की थी। कभी घर में इसकी चर्चा भी नहीं हुई थी। और इस शहर के शरीख़ दिन-रात बातें बनाते थे। कहते वो बाबा कैसे हुआ, वो तो ज्यादा से ज्यादा पाँचवें स्थान पर है :

> गुरुवाई है असाडी
> हरिकिशन जो किहा—
> 'बाबा बकाले'
> असीं आदी
> बाबे गुरदित्ते दी असी औलाद
> तेग बहादुर है पंजवीं जगा, असी बाबे आदी।

उधर दीवान दरगाह मल था कि आने का नाम नहीं ले रहा था। माता गुजरी जी अपनी जगह हैरान थीं। दिन, हफ्ते, महीने गुजर रहे थे, पता नहीं राह में कहाँ अटक गया था। कितनी भारी जिम्मेवारी उसके सिर पर थी। बेशक गुरु हरिकृशन जी का 'बाबे बकाले' कहने का मतलब गुरु तेगबहादुर से ही था और कौन हो सकता था ? पर दीवान जी को बकाले पहुँचकर

इसका फ़ैसला करना था।

कुछ दिन पहले ही तो तेगबहादुर दिल्ली में गुरु हरिकृशन जी के दर्शन करके आये थे। इतने प्यार से वे मिले थे जब बोलते इन्हें 'बाबा बकाले' कहके बुलाते बेशक उनके और बाबे भी थे। पर बकाले में तो तब और कोई नहीं था। जब उनके ज्योति जोत समाने की उन्हें ख़बर मिली, तब बकाले में कुकुरमत्तों की तरह बाबे प्रकट होने लग पड़े। गुरु हरिकृशन जी जानी जान थे। उनसे कौन सी बात भूली थी। तभी तो उन्होंने लोगों को जल्दी-जल्दी बकाला लौटने का इशारा किया था। वे जानते थे, दिल्ली में कौन सा भाणा बरतनें वाला था।

माता गुजरी और माता नानकी उठते-बैठते गुरु तेग बहादुर जी को प्रकट होने के लिए कहती, सिक्ख धर्म की बड़ी बदनामी हो रही थी। ऐसा कभी नहीं हुआ था कि घर-घर में गुरु बने बैठे हों। बाकी धर्मों के लोग मज़ाक करते थे। और बकाले के नए बने बाबे एक दूसरे से कैसे तूँ-तूँ मैं-मैं करते थे ? एक दूसरे की बुराइयाँ करते गुरु तेग बहादुर जी को भी माफ़ नहीं करते। उनका नाम भी घसीट लेते।

और गुरु महाराज ज्यों-ज्यों इस तरह की हरकतों के बारे में सुनते, अपने अंदर और-और घुसते जाते। और अपने को ओर भी छिपा-छिपा कर रखते। यथाशक्ति किसी को दर्शन न देते। अपने में मस्त रहते। उस दिन माता नानकी जी और माता गुजरी जिद करने लगी। वे सोचतीं कि गुरु महाराज का अपने आप को छिपाए रखना गुरु हरिकृशन जी की ओर से सौंपी गई जिम्मेदारी से कोताही करना था।

बेशक कोताही थी। पर गुरु तेग बहादुर जी सोचते, इन बाबों में से कौन था जो वो काम कर सकेगा जो करना नौवीं पातशाही के हिस्से में लिखा हुआ था ? वे सोचते और मुस्काने लग पड़ते। माता नानकी जी की समझ में कुछ न आता, उनके लिए एक अजीब पहेली बनी हुई थी।

फिर सुनने में आया, धीरमल करतारपुर से बकाला अकेला नहीं आया था। वह अपने साथ गुण्डे और लट्ठमार भी लेकर आया था। उनमें एक शिदाँ मसंद भी था जो हर तरह की धमकियाँ देता रहता था। उसने कई कत्ल किए थे। बंदूक उठाए गली-गली में मस्ताया हुआ घूमता रहता था। जो मुँह में आता, बकता रहता। माता नानकी जी को सुनकर उस पर हैरानी होती।

माता नानकी जी ने फ़ैसला किया कि वे और दीवान दरगाह मल की प्रतीक्षा नहीं करेंगी। इसमें तो कोई शक नहीं था कि गुरुवाई उन्हें बख्शी गई थी उनके सिरताज गुरु हरिगोबिन्द जी ने गुरुवाई के लिए अपने मुखारबिन्द से माता नानकी जी को वचन दिया था। और प्रतीक्षा या देरी करने में गुरु बाबा नानक की गद्दी का निरादर हो सकता था। संगतों को और अंधेरे में रखना वाजिब़ नहीं था।

और माता जी गुरु तेग बहादुर जी से कह रही थी, मैं अपनी बिरादरी के बहनों-भाईयों और प्रमुख गुरु सिक्खों को बुलाकर तिलक की रस्म मर्यादा-पूर्वक निभा दूँगी। और उन्होंने भाई द्वारिका दास और भाई गड़िया जी को खत डाल दिए।

इधर भाई द्वारिकादास जी पहुँचे, भाई गड़िया जी आए, कीरतपुर से बाबा सूरजमल के बच्चे दीपचंद और नन्दचंद भी पहुँच गए। बाबा बुड्ढा जी के पोते बाबा गुरदित्ता जी भी आ गए। ईश्वर का संयोग, उसी दिन दिल्ली से दीवान दरगाह मल भी दिल्ली के कुछ प्रमुख लोगों के साथ पहुँच गए।

पर शहर में धीरमल ने बाकी बाबों के साथ मिलकर एक अजीब आतंक का वातावरण बनाया हुआ था। शहर में इतना डर था कि दिल्ली की संगत शहर से बाहर ही रुक गई। इस डर से कि अगर वे गुरु तेग बहादुर जी के निवास स्थान पर सीधे जाएँगे तो धीरमल के गुण्डों के साथ टकराव हो सकता था। अजीब असमंजस था।

"सुनने में आया कि धीरमल के चाटुकारों ने मोर्चे बना लिए थे। वे तो कुछ भी कर सकते थे। गली-गली में वे घूमते, हर किसी से कहते किसी की माँ ने गुर-गद्दी पर बैठने के योग्य लड़का पैदा नहीं किया, जो धीरमल से अब गुरुवाई छीन सके। उसने बहुत सब्र कर लिया था, उससे उसका हक छीना गया तभी तो गुर-गद्दी पर कोई टिक कर नहीं बैठ सका, न गुरु हरिराय, न गुरु हरिकृशन। गुर-गद्दी उसकी होती है जिसके पास पोथी हो और पोथी पर कब्जा धीर मल का था। आस-पास के मसंद धीरमल का पानी भरते थे। किसी की मज़ाल नहीं थी, किसी और गोलक में इक्ट्ठा किया दसवंध भेज सके।"

दिल्ली से आए गुरसिक्ख सुनते तो थर-थर काँपते ये किस मुसीबत में फँस गए थे। न इधर के, न उधर के। सबसे बड़ी मुश्किल यह थी कि गुरु तेग बहादुर टस से मस नहीं हो रहे थे। सुनी-अनसुनी कर रहे थे। अपने

नित-नेम, अपनी ईश्वर भक्ति में लीन उन्हें न गुर-गद्दी का लालच था, न किसी और चीज़ का। जब भी मुख से कुछ बोलते, बस यही कहते, "गुरुवाई खंडे की धार है। इन बाबों को पता नहीं वे किस लिए इतना बावेला मचा रहे हैं। गुर-गद्दी कल कुर्बानी माँगेगी, कहरों की कुर्बानी, इनमें से कौन है जो जान पर खेलने के लिए तैयार होगा ?"

सिर धर तली गली मेरी आओ ॥

आज पूरा हफ़्ता हो गया था, दिल्ली, अमृतसर, कीरतपुर और दूसरे स्थानों से सिक्ख पतवंतों को आए। पर धीरमल और बाकी सोढ़ी बाबों ने वो तूफान मचा रखा था कि किसी का नहीं पता था, अगले पल क्या होने वाला था।

धीरमल के चाटुकार नारे लगाते हुए हडकंप मचाते हुए गलियों में घूम रहे थे। सबके पास अपने-अपने शस्त्र थे। उनमें से कई बंदूकों से लैस थे और फिर सिंहां मसंद जैसे पगलाया हुआ बुझा हो। आठों पहर दारू में मदमस्त नथुनें फुलाकर फुफकारता रहता। जैसे बहाना ढूँढ रहा हो लोगों से लड़ने का। आते-जाते से पंगा लेता। लोग उसकी लाल-लाल आँखें देखकर थर्र-थर्र काँपते।

माता नानकी जी खत डालकर बुलाए हुए गुरु प्यारों के सामने अपने को छोटा महसूस करने लगतीं।

9 अक्टूबर 1664 की सुबह सुनने में आया कि गुरु घर का अनन्य सिक्ख मक्खन शाह लुबाना भी बकाले पहुँचा था। उसके साथ उसकी घर वाली सलोजाई भी थी और दो बेटे लाल चंद और चंदू लाल भी थे। साथ में पाँच सौ अंगरक्षक थे।

मक्खनशाह बड़ा भारी व्यपारी था। उसके पास फ़ौज को रसद पहुँचाने के ठेके थे। गुरु की मेहर थी। पैसे की उसे कोई परवाह नहीं थी। जो कुछ कमाई होती, दसवंध गुरु की गोलक के लिए भेज देता।

मक्खनशाह गुरु महाराज को तलाशता हुआ बकाले पहुँचा था। बात यूँ हुई : मक्खनशाह लुबाने का माल से भरा जहाज़ पिशावर से स्वदेश आ रहा था कि सूरत बन्दरगाह के नज़दीक जहाज़ भटक गया और रेत में जा फँसा। जहाज़ को निकालने की जितनी भी कोशिश की जाती, वो और बुरी तरह से रेते में धंस रहा था। इधर से समुन्द्र में तूफान आ गया। बारिश और तूफान आज ही आने पर तुले बैठे थे। लगता था जहाज़ समुन्द्र की लहरों के थपेड़ों

से टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। जहाज़ में सवार किसी प्राणी को बचाया नहीं जा सकेगा और मक्खनशाह का पूरा परिवार उसके साथ जहाज़ में था। और कोई चारा न देखकर मक्खनशाह ने जपजी साहब का पाठ किया। पाठ समाप्त हुआ तो उसने सपरिवार गुरु महाराज के आगे अरदास की—"हे गुरु हरिकृशन जिस डिट्ठे सभ दुख जाई, हे आठवें बाबा नानक, तेरे गुरसिक्ख पर विपदा आ बनी है, आप करने कराने वाले हो, आप बिगड़ी बनाने वाले हो, आप के दास का जहाज़ डूबने वाला है, आप के बिना और किसी का आसरा नहीं। आप निराश्रयों का आश्रय हो। आप कंधा देकर इस जहाज़ को डूबने से बचा लीजिए, सदा की तरह मैं आप के चरणों में हाज़िर होकर इस माल की कमाई का गुरु गोलक के लिए दसवंध पेश करुँगा। आप निओटों की ओट हो, आप का ही आसरा है, मेरे सच्चे पातशाह, दास की बिनती कबूल करो।" मक्खनशाह लुबाणा हाथ जोड़े ये मिन्नत कर रहा था कि तूफ़ान का एक जोरदार फराटा आया और जहाज़ रेत में से निकलकर सागर के गहरे पानी में चला गया। सतगुरु की मेहर। फिर देखते-देखते तूफ़ान भी थम गया। बारिश भी रुक गई। यह तो करामात थी। मक्खनशाह ने गुरु महाराज का लाख-लाख शुक्र किया।

जब जहाज़ किनारे लगा, उसके माल को बेचकर वह दसवंध की सारी रक़म लेकर गुरु महाराज के दर्शनों के लिए चल पड़ा। उसका परिवार भी साथ था। सब रोम रोम से गुरु महाराज के शुक्र गुज़ार थे। उन्होंने ही अपने हाथ देकर जहाज़ को बचा लिया था। उस तूफ़ान में उस काली-बहरी रात में कुछ भी हो सकता था।

चलते से पहले किसी ने मक्खन शाह को बताया, गुरु महाराज उन दिनों दिल्ली की संगतों को निहाल कर रहे थे। पंजाब न जाकर मक्खन शाह दिल्ली पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसे पता चला कि श्री गुरु हरी क्रिशन जी तो ज्योती-ज्योत फ़रमा गये थे और नौवें पातशाह बकाले में थे। मक्खन शाह उन्हीं क़दमों से सपरिवार और अंगरक्षकों को लेकर बकाले के लिए चल दिया।

बटाले पहुंच कर मक्खन शाह यह देख कर हैरान रह गया कि गली गली में सोढी बाबे बैठे थे, जो अपने को गुरु बताकर लोगों से दसवंध बटोर रहे थे। उसको लेकर बाबों में खींचातानी होने लगी। हर कोई उसे अपनी ओर खींचता। सारे मनोकामनाएँ पूरी करने का दावा करते थे। हर कोई

अपने आपको गुरु गद्दी का एकमात्र वारिस बताता था।

मक्खन शाह ने शहर के बाहर एकान्त में अपना डेरा डाला। शहर में तो दोनों तरफ छीना-झपटी का आलम था। मक्खन शाह की समझ में न आता कि दसवंध की रक़म किसके हवाले करे। शहर में तो हरकोई अपने आप को बाबा बकाला बताता था। सब से ज़्यादा शोर भीरमल का था। वह पोथी का मालिक होने की वजह से जिसे भी ग्रंथ के दर्शन कराता, उससे ढेर सारी रक़म रखवा लेता। मक्खन शाह सोचता, ये तो सारे मांगने वाले भिखारी हैं, उसका गुरु तो मेहरों का दाता था। उसके घर से तो बख़्शीशें मिलतीं थीं। वह तो देता था और बकाले के ये नये नये बने बाबे मांगने के लिए हाथ फैला रहे थे।

आख़िर सोच सोच कर मक्खन शाह ने फ़ैसला किया, वह दसवंध की रक़म का कुछ हिस्सा थोड़ा थोड़ा इन सब में बॉट देगा और बाक़ी रक़म अपने पास रखेगा जब तक असली 'बाबा बकाले' का पता नहीं लगता।

यह सोच कर मक्खन शाह हर अड्डे पर जाता, और हर तथाकथित गुरु को दो अशर्फियां देता और वह सन्तुष्ट हो जाता। इस तरह मक्खन शाह ने शहर के सारे बाबे भुगता दिए। जब और को नहीं दिखाई दिया तो उसने लोगों से पूछा कि कोई और तो नहीं रह गया। उसे बताया गया कि एक सोढी तपा बचा था पर वह बहुत कम बाहर निकलता था। न लोगों को दर्शन देकर खुश होता था। बस अपने भजन-पाठ में मस्त रहता था। ये थे गुरु तेग बहादर।

मक्खन शाह गुरु महाराज के निवास स्थान पर पहुँचा। बड़ी मुश्किल से गुरु महाराज उससे मिलने के लिए राज़ी हुए। माता नानकी जी ने उन्हें फिर याद दिलाया.........'आपको प्रगट होना ही है। सिख संगतें असान और दंभ के अंधकार में भटक रही हैं। आप कब तक और उनसे प्रतीक्षा करवायेंगे। हमारे हिस्से में यह आया है कि हम झूठ और फरेब के विरुद्ध आवाज़ उठायें। हमें अपनी ज़िम्मेदारी से कोताही नहीं करनी चाहिए।'

यह सुनकर गुरु तेग बहादर जी अपने ख़ास अन्दाज़ में मुस्कराए और मक्खन शाह लुबानें को दर्शन देने के लिए राज़ी हो गये। मक्खन शाह चौबारे में बने उनके एकान्त कमरे में गया। गुरु महाराज के मुख की आभा देखकर उसके मन मे एक संगीत लहरी छिड़ गई। फिर भी इतने दिनों से ग़लत लोगों के हाथों में पड़ कर उसने अपनी आत्मा की आवाज़ को अनसुना करके, जैसा

बाक़ी बाबों के साथ किया था, उसने हाथ जोड़े, माथा टेका और फिर दो अशर्फियां गुरु महाराज को भेंट कर दीं। अपना निर्धारित फ़र्ज़ पूरा कर के मक्खन शाह उठने ही वाला था कि सत्गुरु ने उसकी ओर देखा। उनके ओठों पर वही इलाही मुस्कान थी और उन्होंने फ़रमाया, 'आप ने अरदास तो कुछ और की थी, जब आपका जहाज़ डूबने वाला था।'

मक्खन शाह ने सुना तो पसीना पसीना हो गया। चेहरे पर एक रंग आता और एक रंग जाता। विनम्रता से उसके हाथ जुड़ गये और सिर झुक गया। उसकी आंखों में से मसर्रत के आंसू फूट पड़े, जैसे किसी को मंज़िल मिल गई हो। अब वह गुरु महाराज के सामने दंडवत प्रणाम कर रहा था।

क्षण भर बाद गुरु महाराज ने उसे अपने कर कमलों से उठाया और अपने कंधे से कपड़ा हटा कर उसे दिखाया। उसमें कितनी बड़ी खरोंच बनी हुई थी। 'तेरे जहाज़ को रेते में से निकालना आसान नहीं था,' गुरु महाराज ने गद्गद् हो रहे मक्खन शाह को बताया।

फिर क्या था मक्खन शाह तो किसी हिलोर में आया हो—आकाश में तैर रहा हो। जैसे किसी ने कीचड़ में से निकाल कर, उसे धो-धाकर खड़ा कर दिया हो। चारों तरफ़ जगमग रौशनियॉ थीं। मक्खन शाह गुरु महाराज के घर की सीढ़ियॉ चढ़ कर छत पर जा खड़ा हुआ और बॉहें उठा उठा कर पुकारने लगा, "सति गुरु मिल गयो रे! सच्चा गुरु मिल गयो रे!!"

मक्खन शाह जैसे पतवंते की पुकार सुनकर सारा शहर गुरु तेग बहादर जी के घर पर इकट्ठा हो गया। जब सब जमा हो गये तो मक्खन शाह ने उन्हें आप बीती सुनाई। जो जो भी सुनता, गुरु महाराज के सामने सिर नवाता अपनी भूल बख़्शवाता।

झूठ और दंभ की गठरियां सोढी बाबे जो इतने दिनों से गुरु बने बैठे थे, लोगों को फरेब दे रहे थे, एक एक करके खिसकने लगे। अगले दिन धीरमल और उसके चाटुकारों के सिवा शहर में कोई दिखाई नहीं दे रहा था। दीवान दरगाहमल और बाहर से आये पतवंतों ने अब फ़ैसला किया कि एक खुला दीवान सजाया जाए। गुरु तेग बहादर जी को विधिवत तिलक देकर गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान किया जाए।

कुछ दिन रुक कर पूरी सजधज दीवान सजाया गया। दूर और नज़दीक की संगतें इकट्ठी हुईं। अमृतसर, कीरथपुर, लाहौर, दिल्ली से भी और श्रद्धालु आये। अमृत वेला से ढाढी जत्थे एक के बाद एक कीर्तन कर

रहे थे। उन सूरमों की वारें गायी जा रही थीं, जिन्होंने श्री गुरु हरि गोबिन्द जी के नेतृत्व में मुग़ल फौजों को बार-बार हराया था। गुरु बाबा नानक के गुण गाये गये। गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जन देव, गुरु हरिगोबिन्द, गुरु हरिराय, गुरु हरिकिशन जी की स्तुति की गई।

दिल्ली से आये दीवान दरगाहमहल ने बताया, जैसे गुरु हरिकिशन जी दिल्ली के श्रद्धालुओं महामारी से बचाने के लिए अपनी जान पर खेल गये थे। उन्होंने अत्यन्त कृपा दृष्टि से दिल्ली की संगत का क्लेश अपने सर ले लिया था और अपनी जान न्यौछावर कर दी थी। सब कहते थे, चेचक बड़ी नामुराद बीमारी है। आग की तरह आदमी से चिपक जाती है, पर गुरु हरि किशन जी ने एक न सुनी। जो भी उनके दर पर आया, उसे आर्शीवाद देते, लोगों को जीवन दान बख़्शते, और बीमारी की लपटों में वे ख़ुद आ गये। छोटी आयु में बाला प्रीतम संसार के दुख अपने सर पर ले बैठे और ज्योति जोत समा गये। जैसे सूरज की लाली शाम को मध्यम पड़ती है, फिर छिप जाती है, इसी तरह गुरु महाराज अकाल पुरुष की जोत में लीन हो गये। इससे पेश्तर कि वे अपने नयन हमेशा के लिए मूंदते, संगतों के फ़रिशद करने पर कि वे उन्हें किसके हवाले छोड़ कर जा रहे हैं, उन्होंने नारियल और पॉच पैसे मंगवाये। अपनी पवित्र बांह को फैलाकर पांच बार जैसे नारियल की परिक्रमा की और फिर 'बाबा बकाले' कहकर नैन मूंद लिए।

यह सुनते ही साध-संगत में 'बाबा बकाले' की जयजयकार होने लगी।

फिर बाबा बुड्ढा जी के पोते बाबा गुरुदित्ता जी ने दिल्ली से भेजे गये नारियल और पांच पैसे गुरु तेग बहादर जी की सेवा में भेंट किए और सोने की थाली में माता नानकी जी द्वारा तैयार किया चन्दन का तिलक गुरु महाराज के पावन मस्तक पर लगाया।

गुरु महाराज के माथे पर तिलक लगाते ही, उनकी जय जयकार से आकाश गूँजने लगा। लोग श्रद्धा में फूलों की वर्षा कर रहे थे। गुरु महाराज को फूलों के हार पहना रहे थे। दूर दूर से आये श्रद्धालु अपनी अपनी सौगातें भेंट कर रहे थे। ढेरों धन गुरु महाराज जी को पेश किया गया।

और फिर गुर-सिक्खों की फरमाइश पर गुरु महाराज ने अपनी यह रचना साध-संगत को सुनाई :

राम सिमर राम सिमर इहो तेरै काज है॥
माया को संग त्यागि प्रभुजू की सरनि लागू॥

जगत सुख मानुं मिथ्या झूठे सभ साजू है। (रहाऊ)
सुपने जिओ धनु पछानू काहे परि करत मानू॥
बारू की भीति जैसे वसुधा को राजु है॥
नानक जत कहत बात बिनसी जेहै तेरो गातु॥
छिनु करि गइयो कालु तैसे जातु आजु है॥

(राग जयजयवंती, महला ९)

गुरु महाराज जी द्वारा प्रस्तुत शबद सुनकर संगत गद्गद् हो गई।

फिर माता नानकी जी आगे आईं और उन्होंने एक रूमाल माता गुजरी जी को और एक कटार गुरु महाराज को भेंट की। उनके सरताज गुरु हरि गोबिन्द जी ने फरमाया था कि गुरु गद्दी पर बैठते समय उन्हें ये दोनों चीज़ें पेश की जायें।

गुरु महाराज की जितनी जय जयकार हो रही थी, श्रद्धालु जितना धन उन्हें भेंट कर रहे थे, उतना ही धीरमल को बुरा लग रहा था। उसके पेट में शूल चुभ रहे थे, वह और उसका साथी, शीहां मसन्द मछली की तरह तड़प रहे थे। वे बार बार उछल पड़ते, पर मक्खन शाह जैसे पतवंतों के सामने उनकी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

अगले दिन धीरमल और उसके चाटुकारों ने सुना कि बाहर से आये मेहमान अपने अपने शहर को लौट गये थे। मक्खन शाह भी चला गया था। मैदान साफ़ देखकर धीरमल ने शीहां मसन्द के साथ मिलकर सलाह की कि वे गुरु महाराज के निवास पर हमला करके सारा इकट्ठा किया धन लूट लेंगे और अगर ज़रूरी हुआ तो गुरु महाराज का काम भी तमाम कर देंगे। शीहां मसन्द बार बार दांत पीसता। उसकी बन्दूक सांपिन की तरह उसके कंधे पर बल खा रही थी।

उस दिन शाम को जब गुरु महाराज सैर करने के बाद उपनी घोड़ी पर बैठ के घर लौट रहे थे, धीरमल के चाटुकारों ने गुरु महाराज पर हमलास कर दिया। गोलियों की आवाज़ से गुरु महाराज की घोड़ी एकदम कूद कर अपने ठिकाने पर पहुँच गई। गुरु महाराज ने अभी भी इस हादसे पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। बल्कि किसी से बात किए बग़ैर, वे अपने घर की छत के एकान्त में चले गए ताकि वे इस सारी बदमज़गी को भुला सकें।

इतने में शीहां मसन्द, जो गुरु महाराज का पीछा कर रहा था, यह देखकर कि वे अपने छत पर टहल रहे थे, पड़ौस की छत पर चढ़ गया और

परछत्ती की ओट में खड़ा होकर उसने अपनी बंदूक से गुरु महाराज पर बंदूक चलाई। चूंकि गुरु महाराज टहल रहे थे, शीहां मसन्द की गोली उनक माथे के मांस को छूती हुई निकल गई। ख़ून की धार बहने लगी। शोर मच गया। माता नानकी जी ने देखा तो अपने दुपट्टे का कोना फाड़ कर उन्होंने गुरु महाराज का ख़ून पोंछा और उनके ज़ख़्म का उपचार किया। इतने में धीरमल के चाटुकार उनके घर टूट पड़े। उन्होंने सोचा गुरु महाराज ख़त्म हो गये होंगे, और वे लोग कल भेंट में मिला सारा धन और सोना-चांदी लूट लेंगे। माता नानकी जी गुरु महाराज को संभाल रही थीं तो धीरमल, शीहां मसन्द और उनके साथी घर की एक एक चीज़ लूट कर ले गये। देखते देखते उन्होंने घर का सफ़ाया कर दिया।

अड़ौसी-पड़ौसी धीरमल की इस करतूत पर उसे लानतें दे रहे थे, पर उसे मुँह लगाने की किसी में मजाल नहीं थी। उसके मुशटंडों से लोग थर थर कॉपते थे।

गुरु महाराज चुपचाप टुकर टुकर देख रहे थे और धीरमल के गुंडे गुरु महाराज का घर लूट कर ले गये। माता नानकी जी बेशक धीरमल को बुराभला कहती रहीं, पर उसने रत्ती भर परवाह नहीं की। बार बार यही कहता था, मैं गुरु हरि राय जी का बड़ा भाई हूँ, मैं तेग बहादर को गुरु नहीं बनने दूंगा। मैं अपना हक़ लेकर रहूँगा।

इतने में धीरमल की इस करतूत की ख़बर मक्खन शाह को पहुँची। वह जाने की तैयारियों में था, पर गया नहीं था। मक्खन शाह ने सुना तो अपने पॉच सौ अंगरक्षकों के साथ उसने धीरमल को आ दबोचा। सारा माल जो वह लूट कर लाये थे उनसे बरामद करवा लिया। शीनां मसन्द की मुश्कें बॉध लीं और धीमल को नंगे पैर सारे समान समेत गुरु महाराज के पास पहुँचे।

गुरु महाराज ने देखा और सब से पहले आदेश दिया कि सारा धन, सारा माल जो धीरमल लूट कर ले गया था, उसे गुरु महाराज की ओर से सौग़ात की तौर पर धीरमल को ही दे दिया जाय और शीनां मसन्द की मश्कें खोल दी जायें। धीरमल ने सुना तो उसे अपने कानों पर एतबार नहीं आ रहा था। फिर सहसा उसे इस बात का एहसास हुआ कि उसमें और गुरु तेग बहादर में यही फ़र्क था और इसी बात ने उन्हें गुरु महाराज की पदवी दिलाई थी। धीरमल ने पहली बार आज कानों को हाथ लगाये और अपना सा मुँह लेकर वह करतारपुर की ओर निकल गया।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे, गुरु महाराज ने फ़ैसला किया कि वे अमृतसर दरबार साहब के दर्शनों के लिए जायेंगे। उनके साथ कई सिख भी तैयार हो गये। चलने के वक्त तक बड़ा जत्था हो गया। रास्ते में गुरु महाराज ने देखा, कुछ सिख बड़े आदर से पालकी में रखे एक ग्रंथ का उठाकर ला रहे थ। और उनको पीछे कोई श्रद्धालु ग्रंथ का चॅवर डुला रहा था। पूछने पर गुरु महाराज को बताया गया कि यह वही पोथी थी, जिसे धीरमल मे घर से मक्खन शाह के आदमी निकलवा कर लाये थे। गुरु महाराज के आदेश के अनुसार और सब कुछ धीरमल को पहुँचा दिया था लेकिन पोथी नहीं लौटायी। इस पर उसका कोई हक़ नहीं था। वह वैसे ही इसे दबोच कर बैठा था। लोगों को धोखा देता रहता था, कहता था गुरु वही है जिसके पास पोथी है और पोथी उसने गुरु हरिगोबिन्द जी के समय से हथिया रखी थी।

गुरु तेग बहादर जी ने सुना तो फरमाया—पोथी धीरमल को वापस कर दी जाये। जिस ढंग से पोथी उससे छीनी गई थी, वह ढंग उन्हें मंज़ूर नहीं था।

गुरु महाराज के हुक्म की अवहेलता नहीं हो सकती थी। पर जत्थे में से कोई गुरसिख धीरमल को मुंह लगाने के लिए तैयार नहीं था। सब कहते—हम उस चंडाल की शकल नहीं देखना चाहते। गुरु महाराज के आदेश के अनुसार और सब तो उन्होंने धीरमल को पहुँचा दिया था, लेकिन पोथी नहीं लौटायी थी। इस पर उसका कोई हक़ नहीं था। यह देखकर गुरु महाराज ने फरमाया, 'पोथी अमुक स्थान पर रख दी जाय और धीरमल को इस बात की सूचना दे दी जाय। वह अपने आप आकर पोथी पर कब्ज़ा कर लेगा। पोथी बेशक गुरु घर में आयेगी, पर इस तरह नहीं।

जैसे गुरु महाराज ने हिदायत की थी, गुरसिखों ने वैसा ही किया। कुछ दिनों बाद धीरमल आकर पोथी को ले गया।

(2)

वीरांवाली और कमाल आजकल अमृतसर वाले घर में थे। कुछ दिनों के लिए गोईंदवाल गए थे। पर स्थायी तौर पर उन्होंने अमृतसर को ही अपना ठिकाना बनाया था।

दिल्ली से चलने से पहले वीरांवाली ने कमाल से कहा, "ना तू मुझ से पिछले दिनों के बारे में पूछेगा, न मुझे झूठ बोलना पड़ेगा।" लगता था कमाल ने इस भाव को स्वीकार कर लिया था। पर इस में कोई शक नहीं था, दिल्ली

की मुलाक़ात से पहले जैसे वह वीरांवाली की तलाश में खज्जलख़्वार होता रहा था, वैसे ही वीरांवाली भी गोईंदवाल से कमाल की तलाश में निकली थी। आजकल वे निश्चिंत होकर सुमन के बच्चों को पाल रहे थे। वीरांवाली को यक़ीन था कि उसके दोनों बच्चे हरिकिशन जी की देन थे, जैसे मौत के मुँह से छीन कर गुरु जी ने वीरांवाली की झोली में उन्हें लाकर डाल दिया था। वीरांवाली के बच्चे चेचक के आख़िरी रोगी थे, जिन्हें गुरु महाराज ने जीवन दान दिया था। और फिर वे ख़ुद पलंग पर पड़ गए, जहाँ से वे फिर उठ नहीं सके।

यह सोच सोच कर वीरांवाली के मन में गुरु-घर के प्रति अपार श्रद्धा उमड़ पड़ती। कमाल तो पहले ही गुरु-घर का दीवाना था। उसे सिर्फ़ यहीं घर चाहिए था, और कुछ नहीं।

पर गुरु महाराज तो इतने बरसों से अमृतसर में नहीं थे। गुरु की नगरी जैसे सूनी-सूनी हो।

"गुरु महाराज के बग़ैर गुरु की नगरी कैसे हुई ?" वीरां अपने भीतर के संशय को व्यक्त करती।

कमाल इस हकीकत के बारे में सोचकर खामोश हो जाता। इसका ज़िक्र ही टाल जाता।

वीरां जानती थी कि अब वह अमृतसर में अकेला था। न भाई गुरदास, न भाई बहलो। न कोई और। जब उसका मन परेशान होता तो वह बाहर निकल जाता। कुछ देर बेमतलब इधर-उधर घूमकर लौट आता।

आख़िर एक दिन बैठा अपने आप से बोलने लग पड़ा।

"वह हरिमन्दिर, जिसे रामदास जी ने अपने हाथ से बनाया था, उसमें पृथी चंद की औलाद बैठी है। वह पोथी जिसकी तैयारी में गुरु अर्जन देव जी ने कितने जतन किए, हरिमन्दिर साहिब में जिसे विधिवत स्थापित किया गया, आज करतारपुर में धीरमल के क़ब्ज़े में है। गुरु हरिकिशन जी औरंगज़ेब से मुलाकात के लिए राज़ी नहीं हुए तो रामराय उसके दरबार में करामातें दिखा रहा है। जैसे कोई मजमेबाज़ तमाशबीनों को ख़ुश करने की कोशिशें करता है।"

"कभी इस शहर में गुरु हरिगोबिन्द जी अकाल तख़्त को सुशोभित करते थे, आज तख़्त पर बैठने वाले को तलाश करने के लिए लोगों को बकाले जाना पड़ा।"

"कहते हैं 22 सोढ़ी बाबे वहाँ गुरु बनकर बैठे हुए हैं।" वीरांवाली बोली। वह कमाल के मन की पीड़ा को बांट रही थी।

"कभी मैं सोचता हूँ, मैं कीरतपुर चला जाऊँगा," कमाल अपने प्रवाह में बह रहा था, अब तो कीरतपुर में भी बचे-खुचे लोग रह गए हैं। गुरु महाराज के ठिकाने का कुछ पता नहीं।"

"नौवें गुरु साहब, गुरु हरिगोबिन्द जी के सब से छोटे साहबज़ादे हैं। सुनते हैं, यहीं अमृतसर में ही तो वे जन्मे थे। यहीं खेलकर बड़े हुए। उनकी बहन का नाम भी तो वीरो है। उनसे कितना लाड़ करती थी। यहीं उनकी पढ़ाई-लिखाई हुई। यह ज़िम्मेदारी भाई गुरदास जी को बख़्शी गई। शस्त्र-विद्या उन्हें भाई जेठा जी ने दी। वही भाई जेठा जो जहाँगीर को सपने में जाकर डराया करते थे, जब उसने गुरु हरिगोबिन्द जी को ग्वालियर में कैदी बना दिया था।"

"स्वभाव के बड़े उदार थे। कहते हैं बचपन में एक बार किसी शादी के मौके पर उन्हें कीमती पोशाक पहनाई गई। बारात निकलने से पहले गली में उन्होंने किसी ग़रीब बालक को नंगा देखकर अपने कपड़े उतार कर उसे पहना दिए। माता न[illegible]ी जी के पूछने पर कहने लगे, "वह बेचारा नंगा था, मुझे तो और कपड़े मिल जायेंगे।" बैठे समाधि में लीन हो जाते। कहते हैं एक बार इसी तरह वे लीन हो गए थे तो उनके साथ के बच्चों ने धीरे-धीरे उनके कपड़े तक उतार लिए। त्यागमल जी को पता ही नहीं लगा कि वे नंगे बैठे थे।

"हाँ, सुनते हैं बचपन में उनका नाम त्यागमल था। पर मुझे यह समझ में नहीं आया कि छठे पादशाह ने माता नानकी जी को यह क्यों कहा कि अपने साहबज़ादे को लेकर बकाले चली जाएँ ?"

"ताकि उन्हें इस ज़िम्मेदारी के लिए तैयार किया जाए, जिसके लिए उन्हें नियत किया गया था। सब से छोटे साहबज़ादे थे। गुरु पिता जी को यह चिन्ता थी कि कहीं पांच भाइयों में उनके प्रति लापरवाही न हो जाए। कहते हैं बकाला में एक ग़ार बनाकर उन्होंने घोर तपस्या की। बकाले के लोग तो उन्हें एक तपा के नाम से जानते थे।

उस दिन कोई उनके बारे में एक बड़ी दिलचस्प कहानी सुना रहा था। कोई माँ अपने बच्चे को त्यागमल जी के पास ले गई। उनका साथी था वह बच्चा। उनके साथ अक्सर खेला करता था। माँ ने शिकायत की कि उसका

बच्चा बहुत गुड़ खाता था। वे उसे समझायें कि इतना मीठा खाना अच्छा नहीं। बच्चा उनका कहना नहीं मोड़ेगा। त्यागमल जी ने सुना और उस औरत को अगले हफ़्ते आने के लिए कहा। बेचारी माँ हिदायत के अनुसार बच्चे को लेकर अगले हफ़्ते आई। साहबज़ादा त्यागमल जी ने अपने साथी बच्चे को पास बिठाकर कहा, "भाई गुड़ ज़्यादा नहीं खाना चाहिए।" यह कहकर वे ख़ामोश हो गए। अब वह औरत जा सकती थी। यह देख़कर बच्चे की माँ कहने लगी, "साहबज़ादे, अगर यही कहना था तो पिछले हफ़्ते ही कह देते। मैं कोस भर का सफ़र करके दूसरी बार आई हूँ।" त्यागमल जी ने सुना तो मुस्कराकर कहने लगे, "बीबी, पिछले हफ़्ते तक मैं ख़ुद गुड़ खाता था। अब गुड़ खाना बंद कर दिया है ताकि अपने साथी को मति दे सकूँ।" यह सुनकर बच्चे की माँ की तसल्ली हो गई। सचमुच, उस दिन से उसके बेटे ने गुड़ खाना बंद कर दिया।

"इधर पृथी चंद पाँचवां गुरु बना बैठा था। उसका बेटा मेहरबान अपने आपको छठा गुरु समझता था। और अब मेहरबान का बेटा हरिजी सातवाँ गुरु कहलवाता है। हरिमन्दिर पर क़ब्ज़ा किए बैठे हैं। कहनी कुछ, करनी कुछ और। ख़ुद भी भटके हुए हैं, गुरसिक्खों को भी ग़लत रास्ते पर डालते जाते हैं।"

"गुरु ऐसे थोड़े ही कोई बन जाता है ! बाबा नानक की जोत जब भीतर प्रवेश करती है, तभी तो कोई गुरु की पदवी ग्रहण करता है। यही तो कारण है कि जिन गुरु साहिबान ने गुरबाणी रची है, वे अपनी हर रचना के अंत में 'नानक' शब्द का प्रयोग करते हैं। गुरु तेग बहादर भी यही कर रहे हैं। उनका एक शब्द मेरे हाथ आया है। मैंने नक़ल करके उसे संभाल के रख लिया है। ला तुझे सुनाता हूँ" कमाल ने अपनी जेब में से एक परचा निकाला और गुरु तेग बहादुर के टोडी राग में इस शब्द का पाठ सुनाया :

कहो कहा अपनी अपमाई ॥
उरभन्यों कनक कामिनी के रस
नह कीरति प्रभ गाई ॥ रहाऊ ॥
जग झूठे कौ साचु जानिकै,
तास्यौ रुचि उपजाई ॥
दीन बंध सिमरियो नहीं कबहू,
होत जु संग सहाई ॥

मगन रिहऊ माया मे निस दिन, छुटी न मन की काई ॥
कहे नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई ॥
(टोडी, महला ६)

अंत में 'नानक' शब्द का प्रयोग हुआ है। शब्द सुनकर वीरां खिल उठी। "मुझे तो यह वाणी गुरु बाबा नानक जी की वाणी जैसी लगती है।"

"कहते हैं इनकी वाणी में वैराग बहुत है। शायद इसी लिए कि इतने बरस उन्हें गुरु पिता से दूर बकाला में रहना पड़ा। भाई गुरदास जी मुझे एक बार कहने लगे, "इन लोगों में बाप-बेटे का रिश्ता न रहकर गुरु और सिख (शिष्य) का रिश्ता अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है।"

"जैसे बेबे नानकी का बाबा नानक के साथ रिश्ता गुरु और सिख वाला बन गया था। सुनते हैं कि चाहे बेबे नानकी गुरु महाराज की बड़ी बहन थी।"

"हाँ, यह फ़ैसला नहीं हो सका कि बेबे नानकी को गुरु नानक में पहले रब का नूर दिखाई दिया या गांव के चौधरी राय बुलार को।"

"जो बात मुझे परेशान करती है, इक्कीस बरस बकाले जैसे दूर-दराज़ के गांव में गुफ़ा बनाकर ईश्वर भक्ति में लीन रहे गुरु तेग बहादुर ऐसे हालात में जब औरंगज़ेब जैसा कट्टरपंथी दिल्ली के तख़्त पर बैठा है, सिख संगतों की कैसे अगवाई कर सकेंगे ? उन्हें तो शायद यह भी न पता हो कि औरंगज़ेब सारे के सारे देश को दारुल इस्लाम बनाना चाहता है। कहते हैं कि किशन महाराज के शहर मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद रखा गया है। तब से एक के बाद एक मन्दिर को गिरा कर मस्जिदें बनवा रहा है।"

"यह सब कुछ ठीक है। पर यह ठीक नहीं कि गुरु तेग बहादुर इतने साल बकाले में ही अपने आप को बंद करके बैठे रहे हैं। आज से आठ बरस पहले वे माता नानकी, माता गुजरी, अपने साले किरपाल चंद आदि के साथ कुरुक्षेत्र गए थे। कई महीने वहाँ रहे, फिर बैसाखी उन्होंने हरिद्वार में मनाई और उसके बाद पंजाब लौट आए।"

"इतनी भारी ज़िम्मेदारी के लिए क्या यह तजुर्बा काफ़ी है ? गुरु नानक बार-बार देस का भ्रमण करते रहे, ताकि लोगों की नब्ज़ को पहचान सकें।"

"बेशक नहीं, पर इस पहली यात्रा के बाद गुरु तेग बहादुर अगली यात्रा में क़रीब चार बरस तक पंजाब से बाहर रहे थे। उन्हें बकाले लौटे कुछ दिन ही तो हुए थे, जब गुरु हरिकिशन जी अचानक 'बाबे बकाले' को गुर-गद्दी बख़्श कर ज्योति-ज्योत समा गए।"

"क्या मतलब ? चार बरसों की लम्बी यात्रा ?"

"हाँ, इस यात्रा के समय माता गुजरी जी उनके साथ नहीं थीं। बकाले से चलकर वे कुरुक्षेत्र, दिल्ली, मथुरा, आगरा होते हुए वाराणसी गए। वाराणसी से वे सरसाराम होते हुए गया और पटना पहुँचे। वापसी पर वे फिर वाराणसी रुके, प्रयाग में ठहरे, जहाँ उन्हें गुरु हरिराय जी के ज्योती-जोत समाने की ख़बर मिली। उन्होंने संगम पर गुरु महाराज के लिए अरदास की और फिर दिल्ली आए, जहाँ उन्होंने गुरु हरिकिशन जी के दर्शन किए और उनके इशारे पर फौरन बकाले के लिए चल पड़े।"

"गुरु हरिकिशन जी को इस बात का एहसास होगा कि उनका अपना अंत नज़दीक आ रहा था और गुर-गद्दी के अगले हक़दार को पंजाब में होना चाहिए।"

"शायद यह भी ख़तरा महसूस किया गया हो कि औरंगजेब कहीं उन्हें हिरासत में न ले ले। जगह-जगह पर तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए, वे सिक्खी का प्रचार कर रहे थे। और औरंगज़ेब ने इस्लाम के सिवाय किसी और धर्म का प्रचार मना किया हुआ है। ऐसा करने वाले को परिवार समेत पिरवा देता है।"

"इसका मतलब यह हुआ कि गुर-गद्दी का फ़ैसला दिल्ली में हुआ, जब गुरु तेग बहादुर जी गुरु हरिकिशन जी के दर्शनों के लिए गए हुए थे।"

"गुर-गद्दी का फ़ैसला तो गुरु हरिगोबिन्द ख़ुद कर गए थे। उन्होंने माता नानकी जी को यह वचन दिया था कि उनका बेटा तेग बहादुर वक्त आने पर गुर-गद्दी पर बैठेगा। पर इसके लिए उन्हें प्रतीक्षा करनी होगी।"

"अगर यह बात है तो उन्हें अब अमृतसर आकर हरिमन्दिर साहब को पवित्र करना चाहिए। अकाल तख़्त पर अपने आपको सुशोभित करना चाहिए। गुरु की नगरी की रौनक़ बढ़ानी चाहिए।"

"पर उन्हें अपने हिस्से का नया शहर भी तो बसाना है। गुरु नानक देव जी ने करतारपुर बसाया। गुरु अंगद देव जी ने खडूर साहब, गुरु अमरदास जी ने गोईंदवाल, गुरु रामदास जी ने अमृतसर, गुरु अर्जन देव जी ने तरनतारन, गुरु हरिगोबिन्द जी ने कीरतपुर। गुरु हरिराय जी और गुरु हरिकिशन जी के पास समय की कमी थीं। मैं सोचता हूँ, मौजूदा हालात को देखते हुए, गुरु तेग बहादुर ज़रूर अपना अलग शहर बसाएँगे।"

"मैं तो हाथ जोड़ती हूँ, गुरु महाराज अमृतसर को भाग लगाएँ। गुरु की

नगरी की महिमा बढ़े।"

"पर यहाँ जो लोग कब्ज़ा करके बैठे हुए हैं, उन्हें भी क्या यह मंजूर होगा ?"

"इन्हें तो धक्के मार कर बेदख़ल किया जा सकता है।"

"गुरु महाराज को बड़ी लड़ाईयाँ लड़नी हैं।"

"हाय, लड़ाई के बिना आप मर्द लोग कोई और बात भी किया करो।"

"वक्त ही ऐसे हैं।"

कमाल और वीरां कितनी देर से बातचीत में व्यस्त थे कि उनकी पडोसन दमोदरी ख़ुशी ख़ुशी से आई और कहने लगी, "सुना है गुरु तेग बहादुर आ रहे हैं। बकाले से चल भी पड़े हैं। किसी भी दिन यहाँ पहुँच जाएँगे।"

"हाय रब्बा ! आज तो चाहे मैंने कुछ और मांगा होता !" वीरां के मुँह से निकला और फिर सोचने लगी, इससे बढ़कर वह और क्या मांग सकती थी। उसके मन की मुराद पूरी हो गई थी। कमाल का यह हाल था कि एकदम उठकर खड़ा हो गया, जैसे गुरु महाराज अमृतसर पहुँच गए हों। एक सरूर में उसकी आँखें मुँद गईं।

(3)

जैसे बारिश की एक छींट पड़ने से धरती अंगड़ाई लेकर करवट बदल लेती है, कुछ•इसी तरह कमाल के साथ हुआ था। यह ख़बर कि गुरु तेग बहादुर अमृतसर आ रहे हैं, एक प्यासी झुलस रही खेत की धरती पर सुगन्धित-मीठी समीर की तरह उसे मख़मूर कर रही थी। उसे अपना आप फिर से अच्छा लगने लग पड़ा। आंगन भरा-भरा, आसपास खिलखिला।

वह सोचता, अब फिर गुरु की नगरी में बहार आ जाएगी। गलियों में गहमा-गहमी हुआ करेगी। बाज़ारों में हलचल और रौनक़ दिखाई देगी। लोग फिर अमृतसर में मन की मैल धोने आया करेंगे। फिर हरिमन्दिर में लोग भूलें बख़्शवाया करेंगे। फिर दोनों समय कीर्तन की ध्वनियाँ वातावरण में गूँजेगीं। फिर मेले लगेंगे। फिर नामदान का अटूट प्रवाह चलेगा। फिर किसी भाई गुरदास के साथ कमाल की भेंट होगी और वह अपनी आयु के बाकी दिन गुर सेवा में, साध-संगत में गुज़ार लेगा।

इतने दिन से अमृतसर आया हुआ था, पर उसे वातावरण इतना सूना-सूना लगता था, जैसे यह कोई अजनबी शहर हो। जैसे नारंगी को

निचोड़ कर किसी ने उसमें से रस निकाल लिया हो। दीवारें-छतें थीं, गलियाँ, मोहल्ले थे, उनमें जीवन की आभा नहीं थी। जैसे किसी हसीना के होठों से मुस्कान पोंछ ली गई हो—यह हाल था गुरु की नगरी का। वीरांवाली को पाकर अमृतसर के उस घर में दोबारा आकर उसने सोचा था जैसे सात बहिश्तें उसकी झोली में आ पड़ेंगी। इस तरह का कुछ भी नहीं हुआ। उसे महसूस होता जैसे कोई मुसाफ़िर सारी उमर कष्ट उठाकर अपने ठिकाने पर पहुँचे तो उसे पता लगे कि उसकी मंज़िल तो कहीं आगे चली गई थी। दर्शन करने दरबार साहब जाने पर यादों की एक बरात जैसे उसे घेर लेती। वह स्थान जहाँ वह गुरु महाराज को विराजमान देखा करता था, जहाँ कीर्तनिए बैठते थे, जिसे भाई बुड्ढा, भाई गुरदास आकर सुशोभित करते थे, उसकी आँखों के आगे तैरने लगते।

यह हाल सिर्फ़ कमाल का नहीं था। अमृतसर शहर के सभी वासियों का था। कोई इसे महसूस करके परेशान होते थे, कोई इसे दरगुज़र करने की कोशिश करते थे। अमृतसर वासियों को लगता था जैसे वे ठगे गए हों। अमृतसर एक साज़ था, जिसमें संगीत नहीं था। एक फूल था, जिसमें खुशबु नहीं थी। अमृतसर एक शिवाला था, जिसमें मूर्ति नहीं थी। गुरु महाराज के बिना गुरु की नगरी एक छलावा मालूम होती थी।

अपने नियम के अनुसार जब जब भी कमाल दरबार साहब के दर्शन करता उसे देख कर रोना आता था। वह तीर्थ स्थान जहाँ गुरु महाराज के दर्शन होते थे, जैसे किसी को स्वर्ग मिल जाए, जो अन्दर-बाहर धुला-धुला लगता था, अब पृथी चंद की औलाद के कब्ज़े में था। पहले मेहरबान और अब उसका बेटा हरिजी दरबार साहब में दनदनाता रहता था। अपनी कवीशरी करता था। अपनी तुकबंदियों को भाड़े के गवइयों से गवाता रहता था। अपने आप को सातवाँ गुरु बताता था। गुरु महाराज के भोले-भाले जरूरतमंद श्रद्धालुओं को धोखा देकर उनसे रोज़ाना भेंट वसूल कर लेता। और इस तरह के धन से अपनी तोंद फुला रहा था। यही हाल पहले उसके पिता का था। अहंकार और लालच। यही हाल अब बेटे का था। गुरु-घर की निंदा करना, गुरु महाराज के श्रद्धालुओं को लारे-लप्पे लगाकर उनसे दान वसूल करता और दूसरे मसंदों के साथ मिल कर मौज मस्ती मनाता।

अमृतसर के श्रद्धालुओं को यह शिकायत थी कि जब से गुरु हरिगोबिन्द गुरु की नगरी से गए थे, तब से अब तक किसी ने इधर फेरा नहीं डाला था।

न गुरु हरी राय ने, न गुरु हरिकिशन जी ने। आख़िर वे दिल्ली तक पधारते थे। अमृतसर में कभी नहीं आए थे, जैसे यहाँ के निवासियों को उन्होंने भुला ही दिया हो।

और इससे भी ज़्यादा दुखदायी यह बात थी कि गुरु हरिगोबिन्द जी के गुरु की नगरी ख़ाली करने से पृथी चंद की औलाद ने इस पर कब्ज़ा जमा लिया था। और जानने वाले जानते थे कि वे लोग किस करतूत के मालिक थे। वह कौन कौन सा बैर था जो उन्होंने गुरु-घर से नहीं कमाया था। और अब जब गुरु सिखों को यह ख़बर मिली कि गुरुआई ग्रहण करने के बाद गुरु तेग बहादुर दरबार साहेब के दर्शनों के लिए अमृतसर आ रहे थे, संगतों में उत्साह की एक लहर दौड़ गई। हर आदमी बड़े चाव से एक-दूसरे को यह ख़बर सुना रहा था। मन ही मन गुरु महाराज के स्वागत की तैयारियाँ कर रहा था। आँखों में सपने, मन में मुरादें, छलकती हुई श्रद्धा। गुरु महाराज के आने का दिन निकट आ रहा था और फिर श्रद्धालु देख देख कर हैरान होते, दरबार साहेब ज्यों का त्यों था। न कोई स्वागत द्वार बनाए जा रहे थे, न कोई सफ़ाईयाँ हो रही थीं। न कोई झंडियाँ, न कोई फूल। रोज़ की तरह यात्री आते, शहर के लोग नितनेम पूरा करते—इस तरह का वातावरण था।

अकाल तख़्त पहले की तरह लापरवाही का शिकार था। परिक्रमा में यात्री पहले की तरह डेरे लगा लेते थे, उसी तरह अब भी धरना मारे बैठे थे। ठंड के कारण लोगों ने जगह-जगह अलाव जला रखे थे। हरिमन्दिर साहब में पोथी नकल का कभी प्रकाश होता, कभी नहीं भी होता। मेहरबान के साहबज़ादे हरि जी की कवीशरी के प्रचार पर ज़ोर दिया जाता था।

दर्शनी डयौढ़ी के बाहर दायें हाथ कितने दिनों से कूड़े का ढ़ेर लगा हुआ था। किसी ने उसे उठाने की कोशिश नहीं की। सामने वाली गली में पिछली बारिश में एक गड्ढा बन गया था, उसे किसी ने नहीं भरा था। बायीं तरफ़ किसी की गाड़ी उलट गई थी—न उसके मालिक ने उसे उठाया था, न दरबार साहब में से उसे संभालने का कोई यत्न किया था।

और सुनने में आ रहा था, गुरु महाराज के साथ माता नानकी जी थीं, माता गुजरी जी थीं, माता गुजरी जी के भाई किरपाल चंद थे और अपने पांच सौ अंग रक्षकों के साथ मक्खनशाह भी था। फिर जब गुरु महाराज आयेंगे तो संगतों का क्या हाल होगा। लोगों की भीड़ टूट पड़ेगी।

उन सब का स्वागत। उनके लंगर का प्रबन्ध। इन दिनों में बारिश भी

हो सकती थी। सर्दी पहले से ही साँस नहीं लेने दे रही थी। आने वालों के ठहरने का इन्तज़ाम, कुछ भी तो नहीं हो रहा दिखाई देता था। लगता था जैसे एक तिनका भी न हिल रहा हो। कोई हलचल नज़र नहीं आ रही थी।

अगले दिन गुरु महाराज पहुँचने वाले थे और दरबार साहब में वीरानगी दिखाई देती थी। उस दिन कमाल और वीरांवाली दोनों ने मिलकर दर्शनी डयौढ़ी के नज़दीक पड़े कूड़े के ढ़ेर को साफ किया। इतना तो उनके बस में था। शाम को घर लौटने से पहले सामने की गली के गड्ढे को भर दिया। उल्टी हुई गाड़ी सड़क के बीचों-बीच पड़ी थी, पता नहीं किस की थी। न उसका मालिक, न कोई और उसकी चिन्ता कर रहा था।

उस रोज़ शाम के वक्त गुरु महाराज की सवारी ने पहुँचना था। कमाल ने सोचा, दरबार साहब में से कुछ प्रबन्धक श्रद्धालुओं को लेकर लोग ढोलकियों और छैनों के साथ, कम से कम एक मंजिल आगे गुरु महाराज के स्वागत के लिए जायेंगे। वह भी उनमें शामिल हो जाएगा। वीरांवाली अपने बच्चों को नहला-धुला कर नए कपड़े पहनाने, अपने दुपट्टे को रंग कर कलफ़ लगाने में व्यस्त थी। कमाल और उसके साथियों को यह देखकर हैरानी हुई कि दरबार साहब के प्रबंधकों ने स्वागत के बारे में कोई विचार नहीं किया था। कमाल अपने साथियों के साथ वैसे ही खाली हाथ गुरु महाराज के स्वागत के लिए चल पड़ा। रास्ते में जहाँ कहीं उन्हें हार दिखाई दिए तो उन्होंने हार ख़रीद लिए। फूल नज़र आए तो फूल इक्ट्ठे कर लिए। गुरु महाराज को यह लोग खाली हाथ थोड़े ही मिल सकते थे। वह जिनकी राहों पर राजा और रानियाँ आँखें बिछा रखती थीं, वे जिनके क़दमों पर लोग राज-पाट न्यौछावर कर देते थे।

कमाल और उसके साथियों के लिए इससे भी बड़ा आश्चर्य जैसे देखना बाकी था; जब गुरु महाराज की सवारी जलूस की शक्ल में दरबार साहब पहुँची, सामने दर्शनी डयौढ़ी पर ताला लगा हुआ था। यह देखकर मक्खन शाह लाल पीला होने लगा। लेकिन इतने में पृथी चंद का पोता हरि जी और उसका बेटा कमलनयन भागते हुए आए और माफियाँ मांगने लगे। उनके पास दर्शनी डयौढ़ी की चाबियाँ थीं, जो उन्होंने गुरु महाराज को पेश कर दीं। डयौढ़ी के किवाड़ खुल गए, पर भीतर हरिमन्दिर के द्वार बंद थे। जिस मसंद की ज़िम्मेदारी हरिमन्दिर की सेवा करना था, वह कहीं भी नहीं था। हरि जी और उसका बेटा कमलनयन अपने को छोटा महसूस करने लगे। हालांकि

यह सारी उन्हीं की करतूत थी, सब कुछ उनकी मिली-भगत से हो रहा था।

गुरु महाराज अपने साथ भाई संगत समेत अकाल तख़्त के पास एक पेड़ के नीचे बैठ गए। कुछ देर विश्राम करके उन्होंने अमृत सरोवर में स्नान किया। फिर पेड़ के नीचे ही दीवान सज गया। यह सुनकर कि गुरु महाराज उनके शहर में आए हैं, अमृतसर की संगतें कतारें बांध कर आ गईं। दीवान में श्रद्धालुओं के बार-बार आग्रह करने पर गुरु महाराज ने इस शब्द का पाठ सुनाया :

प्रानी कौन उपाय करै ॥
जाके भगत राम की पावै जम को त्रासु हरै ॥ रहाऊ ॥
कौनु करम बिद्या कहु कैसी धरमु कौनु फुनि करई ॥
कौन नामु गुर जाकै सिमरै भव सागर कौ तरई ॥
कल कै एक नामु किरपानिधि जाहि जपै गति पावै ॥
और धरम ताकै समि नाहनि एह बिधि वेद बतावै ॥
सुख दुख रहत सदा निरलेपी जाकौ कहत गुसाई ॥
सो तुमहि महि बसै निरंतरि नानक दरपनि न्याई ॥

(सोरठ महला ६)

गुरु महाराज शब्द का पाठ सुना रहे थे, पर मक्खन शाह का जैसे ख़ून खौल रहा हो। ज़ुलम साईं का, सिक्ख संगत का सच्चा पादशाह, गुरु बाबा नानक की गद्दी पर विराजमान, नवां गुरु बाहर पेड़ के नीचे बैठा था और सिक्ख धर्म के काबे को ताले बंद थे। पर उसकी मजबूरी यह थी कि गुरु महाराज ने उसे कोई ऐसी-वैसी हरकत करने से मना कर रखा था।

शाम हो रही थी और हरिमन्दिर का मसंद अभी भी नहीं लौटा था। गुरु महाराज उठ कर वल्ला नाम के गाँव माई हरिहाँ के घर जा टिके। गुरु महाराज दरबार साहब से चले तो मक्खन शाह अपने आप पर और काबू नहीं पा सका। उसने अपने अंग-रक्षकों को हरिमन्दिर के ताले तोड़ने को कहा। यह देखकर मसन्द जैसे धरती में से फूट निकले हों, माफियाँ माँगने लगे। मक्खन शाह ने उन्हें डांटा-फटकारा; वे इतने अभागे थे कि गुरु महाराज उनके यहाँ आए थे। इसकी बजाय कि वे उन्हें आदर देकर अपना जन्म सफल करते, उन्होंने हरिमन्दिर के किवाड़ बंद कर लिए थे। पूजा का धन खा खा कर उनकी मति भ्रष्ट हो गई थी। उन पर कोई ख़ास असर नहीं हुआ।

उधर जब वीरांवाली को पता लगा, वह शहर की औरतों को लेकर गुरु महाराज के पास हाज़िर हुई। औरतें लाख-लाख माफियाँ मांग रही थीं। मसंदों को हज़ार-हज़ार ताने सुना रही थीं, जिन्होंने अंधेर मचा रखा था। उनकी एक ही अर्ज़ थी कि गुरु महाराज दरबार साहब चलें और वहीं हमेशा-हमेशा के लिए विराजें। गुरु महाराज ने अमृतसर की औरतों की श्रद्धा देखकर कहा, "माईयां गुर रजाईयां, भगती लाईयां।"

जो विनती अमृतसर की माईयां कर रही थीं, वही बात मक्खन शाह गुरु महाराज को बार-बार कह रहा था। "मूरख गंड पवे मूहि मारि।" गुरु नानक का फ़रमान था, "इन लोगों को सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिए। दरबार साहब का कब्ज़ा इन से छीन लेना चाहिए। मुझे बस आपकी आज्ञा चाहिए।"

गुरु महाराज मक्खन शाह को गुस्से में झाग उगलता देख रहे थे। "वक्त आने पर यह भी होगा," गुरु महाराज ने कहा। पर लगता था उस समय और अहम सवालों ने उनके ध्यान को घेर रखा था।

वे लोग जो सोच कर बैठे थे कि गुरु महाराज को अमृतसर में ही रख लेंगे, उनमें कमाल भी था। इतने दिनों से हर तरह की आशाएँ लगाए बैठा था।

गुरु महाराज बल्ला गाँव में तीन दिन रहे, फिर वहाँ से चल दिए। लगता था, उन्हें और अहम समस्याओं से जूझना था।

(4)

गुरु तेग बहादुर जी की सब से गंभीर चुनौती औरंगज़ेब था।

औरंगज़ेब दिल्ली के तख़्त पर पूरी तरह जम चुका था। शहंशाह शाहजहाँ का सब से छोटा बेटा, उसने अपने अब्बा को आगरे के क़िले में क़ैद किया। अपने सब से बड़े भाई वलीअहद दारा शिकोह और उसके बेटे को क़त्ल करवाया। दूसरे भाई मुराद को क़ैदी बनाया और तीसरा भाई भागकर अपनी जान बचा सका। इस तरह उसने दिल्ली का राजपाट संभाला था।

गुरु महाराज यह भी जानते थे कि जब औरंगज़ेब की मस फूटी थीं, तभी से वह मुजद्द अहमद सरहंदी के बेटे ख़्वाजा मोहम्मद मासूम के कट्टरपंथी प्रभाव में आ गया था। तख़्त पर बैठने के बाद भी उसने ख़्वाजा मासूम और उसके बेटे मोहम्मद सैफुदीन से मेलजोल बनाए रखा।

एक सुन्नी होने के नाते वह मानता था कि शरियत की बताई राह के मुताबिक हकूमत करना उसका फ़र्ज था, और इस तरह भारत जैसे 'दारुल

हर्ब' को 'दारुल इस्लाम' बनाए। और तो और, वह शिया मुसलमानों को भी नहीं बख़्शता था। शिया मुसलमान लम्बी मूछें नहीं रख सकते थे। अगर किसी की मूंछ लम्बी होती तो उसे काट दिया जाता। तख़्त पर बैठते ही उसने अपने सिक्के से 'कलमा' हटवा दिया, यह सोच कर कि हकूमत का सिक्का ग़ैर-मुसलमानों के हाथ में भी जाएगा, वे उसकी बेअदबी भी कर सकते हैं। उसने नौरोज़ का जश्न भी बन्द करवा दिया, क्योंकि नौरोज़ पारसियों का त्यौहार समझा जाता था और पारसी आग की पूजा करते थे।

उसने यह हुक्म दिया कि नये मन्दिर नहीं बनाए जा सकते। पुराने मन्दिरों की मुरम्मत नहीं की जा सकती। फिर उसने बड़े मन्दिरों को मिस्मार करवाना शुरु कर दिया। सैंकड़ों मन्दिर तोड़ दिए गए। मन्दिरों की जगह मस्जिदें बनाई जाने लगीं। चूँकि इस्लाम में संगीत वर्जित था, उसने अपने साम्राज्य में गाना-बजाना बंद करवा दिया। जहाँ-जहाँ भी कोई साज़ दिखाई देता, उसे जलवा दिया जाता। दरबार के संगीतकारों की छुट्टी कर दी गई। एक शुक्रवार औरंगज़ेब जामा मस्ज़िद नमाज़ पढ़ने जा रहा था, उसने कुछ लोगों को एक जनाज़े के रोते-विलाप करते देखा। शहंशाह ने पूछा, यह किसका जनाज़ा है। औरंगज़ेब को बताया गया कि शोक मनाने वाले लोग गवैये हैं और उनके कंधों पर मौसी की मैयत थी। औरंगज़ेब ने सुनकर कहा, "उन्हें कहो क़ब्र ज़रा गहरी खोदें। यह कम्बख़्त फिर कभी न उठ खड़ा हो।"

हिन्दुओं को जज़िया देना पड़ता था, उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती थी। ऊँची सरकारी नौकरी के लिए हिन्दु को मुसलमान बनना पड़ता था। हिन्दू अरबी घोड़े पर नहीं चढ़ सकता था, पालकी में नहीं बैठ सकता था, हाथी की सवारी भी नहीं कर सकता था। लेकिन अपने बेटे मुअज़्ज़म की शादी राजा रूपासिंह की सुन्दर बेटी से करने में औरंगज़ेब को कोई ऐतराज़ नहीं था। वह ख़ुद जार्जिया की एक हसीना पर मोहित हो गया था। उसके बड़े भाई दारा ने इस लड़की को ग़ुलामों के किसी व्यापारी से ख़रीदा था। दारा के क़त्ल के बाद औरंगज़ेब उससे निकाह कर लिया और कुछ वक़्त बाद वह कामवख़्श की मां बनी। फिर एक समय आया जब औरंगज़ेब ने साधुओं, संतों, योगियों, सूफियों का भी पीछा करना शुरु कर दिया। या तो उन्हें हकूमत से बाहर खदेड़ दिया जाता या उन्हें क़ैदी बना दिया जाता। इस्लाम के अलावा कोई और किसी धर्म का प्रचार नहीं कर सकता था। जो भी यह जुर्म करता उसे सख़्त से सख़्त सजा दी जाती थी। वह सज़ा-ए-मौत

भी हो सकती थी। यही नहीं, उसने हिन्दुओं के मेले और त्योहार भी बंद करवा दिए। परेशान हाकर जब हिन्दू प्रजा ने प्रदर्शन करने का फ़ैसला किया, दिल्ली में बाज़ार बंद कर दिए गए। लोगों की भीड़ बाहर सड़कों पर निकल आई। लाल क़िले का घिराव किया गया। औरंगज़ेब ने किले के भीतर मस्त हाथी छुड़वा कर अनगिनत प्रदर्शनकारियों को कुचलवा दिया। भीड़ सहम गई।

औरंगज़ेब की मजबूरी यह थी कि जिस तरह वह अपने अब्बा को क़ैद करके, अपने एक भाई को क़त्ल करके और दूसरे को क़ैदी बना कर तख़्त पर बैठा था, उसे अपनी प्रतिष्ठा की बड़ी चिन्ता रहती थी। वह चाहता था किसी तरह मक्का-मदीने वालों की नज़रों में वह अपना वक़ार बना सके और जब उसका अंत आये तो जन्नत में उसका स्थान सुरक्षित हो। उसकी विचारधारा के अनुसार यह सब कुछ तभी हो सकता था अगर वह सारे के सारे हिन्दुस्तान को मुसलमान बनाले।

यह कैसे मुमकिन था?

मुमकिन क्यों नहीं था? औरंगज़ेब सोचता था, वह काफ़िरों की पाठशालाएँ और शिक्षा संस्थानों को बंद करवा देगा। वाराणसी के विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा के केशवदेव मन्दिर को ध्वस्त कर देगा। कृष्ण के मथुरा शहर का नाम बदल कर इस्लामबाद रख दिया गया। उधर वह जयपुर के सारे मन्दिर मिस्मार करवा देगा। हर हिन्दू का जनेऊ उतार कर उनके बच्चों की सुन्नतें करवा देगा। इस्लाम की तब्लीग होगी। इस्लाम के प्रचार की जिम्मेवारी हकूमत की होगी। और किसी धर्म की धर्म की चर्चा क़ानूनन बंद कर दी जायगी। और सचमुच ऐसा होने लगा। हिन्दू नौजवान सरकारी नौकरी पाने के लिए मुस्लमान होने लगे। हिन्दू व्यापारी और दस्तकार ग़ैर-मुसलमानों पर लगाये करों से बचने के लिए इस्लाम क़बूल करने लगे।

हिन्दू लुक-छिप कर पूजा-पाठ करते। भरसक मन्दिर या शिवाले की ओर रुख़ न करते।

गुरु तेग़ बहादर इन सब बातों से कैसे समझौता कर लेत? उनके कानों में यह भनक भी पड़ी कि दरबार साहब के दरवाज़े उनके लिए इस कारण बंद कर दिए गए थे, क्योंकि हरि जी और उसके बेटे कंवल नयन को इस बात का ख़तरा था कि गुरु तेग़ बहादर जी के हरिमन्दिर साहब आने की वजह से कहीं मुग़ल दरबार साहब पर क़ब्ज़ा ही न कर ले।

अमृतसर से गुरु तेग़ बहादुर कीरतपुर गए। कीरतपुर के सोढियों को भी यही ख़तरा खाए जा रहा था। जिसके पास जो कुछ था, उस पर क़ब्ज़ा जमाए बैठा था। चूँकि गुरु तेग़ बहादुर बाबा नानक की गद्दी पर बैठे थे, यह डर भी उन्हें खा रहा था कि शहर में उनकी उपस्थिति से कहीं मुग़ल नाराज़ न हो जाएँ। पूरे देश में, ख़ास तौर पर पंजाब में कुछ इस तरह का वातावरण बना हुआ था। हर व्यक्ति भयभीत था, हर चेहरे पर आंतक छाया रहता था।

और इधर गुरु तेग़ बहादुर जी का सिद्धान्त था कि 'भय काहू को देत न, न भय मानत आन।' 'निरभऊ निरवैर।' यही शिक्षा उन्हें गुरु नानक, गुरु हरि गोबिन्द जी से मिली थी।

कीरतपुर में गुरु महाराज देख देख कर हैरान होते थे कि वह शहर जहाँ वे अपने पिता गुरु हरि गोबिन्द जी के साथ इतने वर्ष ख़ुशी-ख़ुशी रहे थे, अब जैसे उनको पराया-पराया मालुम हो रहा था। हर आदमी खिंचा-खिंचा लग रहा था।

यह सब देख कर गुरु महाराज ने एक महत्त्वपूर्ण फ़ैसला करना था। बकाला में वे नहीं रह सकते थे। वहाँ के सोढी ईर्ष्या के मरीज़ थे। काल्पनिक दुश्मनियाँ बनाए बैठे थे। गुरु की नगरी अमृतसर में दरबार साहब पर पृथी चंद की औलाद ने क़ब्ज़ा जमाया हुआ था। दरबार साहब को छोड़ कर जाने के पीछे गुरु हरिगोबिन्द जी की यही मंशा थी। वे नहीं चाहते थे कि रोज़-रोज़ की खटपट लगी रहे। यही हाल तीरथपुर का था। एक आपाधापी का माहौल। गुरु बहादर जी का जैसे दम घुटने लगता हो। उनका इरादा किसी से कुछ छीनने का नहीं था। वे तो अपने बुज़ुर्गों को सत्कार देने निकले थे। गुरु बाबा नानक की गद्दी पर बैठ कर दुनिया भर की बादशाही उन्हें प्राप्त थी। उन्हें न किसी सम्पत्ति की ज़रूरत थी, न क़िसी अधिकार की। वे बार बार सोचते थे, यह लोग जो ईर्ष्या में जल-भुन रहे हैं, काश इन्हें इस बात का अन्दाज़ा होता कि गुरु बाबा नानक की गद्दी का अधिकारी होना कितनी भारी ज़िम्मेदारी है। वक्त आने पर इसकी कितनी कीमत देनी पड़ेगी।

ईश्वर का संयोग, गुरु तेग़ बहादुर जी कीरतपुर में ही थे कि उन्हें कहिलूर रियासत के राजा दीपचंद के देहान्त की सूचना मिली। उसकी विधवा रानी चम्पा ने गुरु महाराज को श्राद्ध पर आमंत्रित किया। गुरु महाराज, माता नानकी और अपने परिवार के रिश्तेदारों के साथ विलासपुर गए, जहाँ रानी ने उनका बहुत सत्कार किया। अपने महल में उन्हें ठहराया।

इस बीच गुरु महाराज ने यह इच्छा प्रगट की कि वे रानी की रियासत में एक नया शहर बसाना चाहेंगे। यह सुनकर जैसे रानी के मन की मुराद पूरी हो गई। उसने लोधीपुर, मियांपुर और शाहोद नाम के तीन गाँव गुरु महाराज को भेंट किए। गुरु महाराज ने मक्खोवाल नाम के गाँव को पसन्द किया और बतौर उसकी कीमत 500/- रुपए रानी चम्पा को दिए। यह कैसे हो सकता था कि रानी गुरु महाराज को भेंट किए गए गाँव की क़ीमत ले ? लेकिन गुरु महाराज बिना क़ीमत दिए सम्पत्ति लेने के लिए तैयार नहीं थे। आख़िर रानी चम्पा को रक़म स्वीकार करनी पड़ी। इस स्थान पर 19 जून 1665 ई. को नानकी नाम के गाँव का शिलान्यास बाबा बुड्ढानी के सुपुत्र भाई गुरदित्ता रन्धावा जी ने किया। इसी स्थान पर कुछ समय बाद आनन्दपुर साहब शहर बसाया गया।

अपना नया ठिकाना स्थापित करके गुरु महाराज बकाला होते हुए मालवे के दौरे पर निकले। शहर-शहर गाँव-गाँव जाकर गुर-सिक्खों की मनोकामनाएँ पूरी करते थे। यह उस शहर के गाँव थे, जहाँ उनके पिता गुरु हरिगोबिन्द जी ख़ुद विचरते रहे थे और उन्होंने वहाँ अपने हज़ारों श्रद्धालु बनाए हुए थे। चूँकि अमृतसर और कीरतपुर के बाद कोई ऐसा स्थान नहीं स्थापित हुआ था, जहाँ संगतें गुरु महाराज के दर्शनों के लिए हाज़िर होतीं। इसलिए यह ज़रूरी हो गया था कि गुरु महाराज ख़ुद श्रद्धालुओं की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वयं संगतों के पास पहुँचे।

जिस शहर, जिस गाँव में वे जाते, सिक्ख श्रद्धालु ढोलकियाँ और छैने लेकर उनके स्वागत के लिए पहले से पहुँचते। जितने दिन गुरु महाराज रहते, रोज़ दीवान सजते और गुरबाणी का कीर्तन होता।

यह सब शहंशाह औरंगज़ेब को कैसे गवारा हो सकता था ? फिर उसके दरबार में बैठा रामराय गुरु महाराज के ख़िलाफ़ उसके कान भरता रहता था। गुरुआई का पुराना दावेदार धीरमल तिलमिला रहा था। नरवाना और टोहाना के दरम्यान धमथान में जब गुरु महाराज शिकार कर रहे थे कि आलमख़ान नाम का एक अहलकार औरंगज़ेब का परवाना लेकर आया। उसने महाराज को, मतिदास, सतीदास को उनके दूसरे साथियों समेत गिरफ़्तार कर लिया।

क़सूर ? आप ईश्वर का नाम क्यों लेते हैं ? रब़ को अल्लाह क्यों नहीं कहते ? वाहेगुरु क्यों कहते हैं ?

(5)

गुरु तेग़ बहादुर जी को दिल्ली में क़ैदी बना लिया था, इसकी भनक कमाल के कानों में पड़ चुकी थी, लेकिन उसने फ़ैसला किया कि इसका ज़िक्र वह वीरां से नहीं करेगा। दिल्ली में जैसे गुरु हरिकिशन जी ने उसके बच्चों को नया जीवन-दान दिया था, वीरां पूरी तरह से गुरु घर पर न्यौछावर हो गई थी। पूरी तरह से समर्पित थी। मज़ाल है, दोनों वक्त दर्शनों के लिए दरबार साहब न जाए। हरिमन्दिर में माथा टेके बग़ैर वह मुँह जूठा नहीं करती थी। नित नेम से पाठ करती। नन्हें बच्चों को गुरु-मंत्र का सिमरन करने के लिए प्रेरित करती। हर रोज़ शाम को उन्हें 'सोदर' और दूसरी बाणियों का पाठ सुनाती। पाठ सुनते-सुनते बच्चों की आँख लग जाती। उसे पता था, किस दिन किस गुरु महाराज का जन्मदिन है, किस दिन कौन से गुरु महाराज ज्योति-जोत समाए थे। ऐसे हर दिन वह अमृत-वेला में उठ कर स्नान करती, उजले कपड़े पहनती, कढ़ा-प्रसाद तैयार करके दरबार साहब के लिए चल पड़ती। वहाँ पहुँचती, तो कहीं झाडू देती, कहीं बर्तन माँजती। कमाल उसकी श्रद्धा, उसकी आस्था, गुरु-घर के लिए उसके प्रेम को देख-देख कर हैरान होता रहता। गुर-सिक्ख तो वह ख़ुद भी था, लेकिन वीरांवाली जैसी गुर-घर की दीवानी हो गई थी, उसे अपनी सिक्खी-सेवकी तुच्छ प्रतीत हो रही थी।

इस डर से कि पता नहीं वह क्या कर बैठे, कमाल ने मन ही मन यह फ़ैसला किया था कि वह वीरांवाली को गुरु तेग़ बहादुर जी की गिरफ़्तारी के बारे में नहीं बताएगा। लेकिन उस दिन घर पहुँचा तो देखता ही रह गया, न चूल्हे में आग थी, न घड़े में पानी।

वीरांवाली का चेहरा पीला-ज़र्द, सुबह से उसने कुछ खाया पीया नहीं था। उपासी बैठी थी। कहने लगी, न जाने क्यों मेरा मन बैठ रहा है, एक ख़ालीपन महसूस होता है। लगता है जैसे किसी ने मेरी मुश्कें बांध रखी हों। मेरा अंग अंग जकड़ा-सा महसूस होता है। दम घुटने लगता है। सारी रात मुझे बुरे बुरे सपने आते रहते हैं। कल भी ऐसा होता रहा, परसों भी। पिछले कुछ दिनों से लगातार ऐसा हो रहा है। हर रोज़ जैसे आकाश के छोर पर काली घटायें और ज़्यादा घनी और स्याह होती जा रही हैं। बिजली चमकती है तो मेरा मन कांप कांप उठता है। बादल ऐसे गरजते हैं, जैसे झपट्टा मार कर हड़प लेंगे।

कमाल के दिल में चोर था, वह वीरांवाली से यह कहने लायक़ भी नहीं था कि यह तेरा वहम है। कहीं कोई गड़बड़ नहीं। आम दिनों जैसे हालात हैं। दुनियां का कारोबार साधारण ढंग से चल रहा है। गुरु पंथ की बागडोर नवें पादशाह श्री गुरु तेग बहादर जी के हाथ में है। हम गुरसिखों को किसी किस्म की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। करने कराने वाले वे ख़ुद हैं। उनकी मर्ज़ी के बिना तिनका तक नहीं हिलता।

कमाल हैरान था। यह नहीं कि इस बुरी ख़बर का लोगों को पता न हो, पर लगता था कि जिस किसी ने वह ख़बर सुनी उसके मुँह पर जैसे ताला लग गया हो। कोई बोल नहीं रहा था। दरबार साहब में तो पृथी चंद की औलाद का कब्ज़ा था, इसलिए उनके मन में तो जैसे ठंडक पड़ गई थी। शायद वे बग़लें बजा रहे होंगे। पर शहर में क्या गुरसिख, क्या शहर के प्रतिष्ठित लोग, जो भी यह ख़बर सुनता, चुप्पी साध लेता।

कमाल सोचता, जिस सिख संगत के गुरु महाराज को वक्त की सरकार ने जिस ढंग से हिरासत में ले लिया था, वह ऐसे ख़ामोश क्यों बैठी थी ? कोई शिकायत नहीं कर रहा था। कोई आवाज़ नहीं उठा रहा था। कहीं रोष नहीं दिखाई दे रहा था। कहीं कोई हड़ताल नहीं। कहीं कोई विरोध नहीं। कुछ भी नहीं हो रहा था। बाबा नानक, जिसने रब तक को उलाहना दिया था—ऐती मार पई कुरलाणें, तैं की दर्द न आया ?—जिसने जाबर मुग़ल को 'कुत्ते' कहा था—रतन बिगाड़ि विगोए कुत्ती, मोया सार न काई—उसकी उम्मत क्या ख़त्म हो गई थी ? ना सोढियों में से कोई बोल रहा था, ना श्रद्धालियों में से कोई चूं कर रहा था। जो भी सुनता सुन्न पड़ कर बैठ जाता।

कौन मानेगा, सिक्ख सूरमों ने कल चार लड़ाइयों में मुग़ल फ़ौज के दांत खट्टे किए थे ? कौन मानेगा, शहंशाह जहाँगीर गुरु हरिगोबिन्द जी की दोस्ती का दम भरता था ? कौन मानेगा, महाबली अकबर इस दर पर एक श्रद्धालु की तरह आया था ? कौन मानेगा, हुमायूँ ने इस घर का आशीर्वाद प्राप्त किया था ?

उधर वीरां थी। आज कितने दिनों से उसने चारपाई पकड़ी हुई थी। हकीम आते, वैद्य आते पर किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कोई बीमारी नहीं थी फिर भी वह दिन प्रति दिन क्षीण होती जा रही थी। बैठी प्रलाप करने लगती। अजीब बेतुकी बातें करने लगती। न सर न पैर :

"मुझे कैद करके रखा हुआ है। मुझे क्यों बांध रहे हो ? मेरा क्या कसूर है ? मुझे हथकड़ी क्यों लगाई गई है ? अगर कोई अपराध नहीं किया तो यह ज़ुल्म क्यों ?.............. मैं चाहूँ तो ये सारे बंधन टूट जायेंगे। मैं चाहूँ तो क़ैदख़ाने के सारे किवाड़ खुल जायेंगे। मैं चाहूँ तो आज़ाद पंछियों की तरह आकाश पर उड़ सकती हूँ।.............ये नहीं जानते कि कट्टर फिरकापरस्ती, दम्भ और झूठ के किले को मिस्मार करनेवाला आ चुका है। सामने आकाश के छोर पर उगता उजाला नहीं देख़ते ? ऐसी चकाचौंध पहले कभी हुई थी ? सच का बंजारा, तेग़ का धनी, वह जो बाज़ों से खेला करेगा............... आसपास रिमझिम बारिश हो रही थी। यह पता नहीं था, यह समीर, यह ठंडी-मीठी हवा आँधी बनने वाली है। एक तूफ़ान आयेगा, सब उथल-पुथल हो जायगा। चिड़ियाँ बाज़ों पर झपटेंगी, एक एक सवा लाख से लड़ेगा..... ....हाय मेरे बच्चे कहाँ हैं ? मेरा बेटा धरम कहाँ है ? मेरी बेटी भागां कहाँ है। मेरे गुरु महाराज की बख़्शिश।"

"क्यों बीबी, आप मुझे बुला रहे थे ?" वीरां का बेटा उसके पलंग पर आकर बैठ गया।

"तेरी बहन कहाँ है ? उसे किसने क़ैद करके रखा है ?"

"वह तो दमोदरी ताई के घर खेलने गई है।"

"तू झूठ बोलता है। उसे क़ैदी बना लिया गया है।"

यह सुनकर कमाल, जो कितनी देर से वीरां की बेतुकी बातें सुन रहा था, पड़ोस के घर से बेटी भागां को उंगली पकड़ कर घर ले आया।

"किसी की गुलामी नहीं," अपने दोनों बच्चों को पलंग पर बिठाकर समझा रही है। "किसी का डर नहीं। न किसी को डराना, न किसी से डरना। निर्भऊ, निर्वैर।...........अच्छा सुनो, मेरे बच्चो तुम मेरा कहना मानोगे ?"

"मानेंगे।" बेटा धरम कहता है।

"ज़रूर मानेंगे", बेटी भागां वादा करती है।

तो फिर सुनो। पहले वीरां अपने बेटे के कान में कहती है। बेटा सुनकर मुस्कराता है। फिर भागता हुआ बाहर निकल जाता है।

वीरां फिर बेटी के कान में कुछ कहती है। बेटी भी एक शरारत भरी हंसी हंसती है। फिर हँसते हँसते भाग जाती है।

"यह तू बच्चों से क्या नाटक करवा रही है ?" कमाल शिकायत करता है। अब तू ठीक हो जा, मैं दिल्ली जाने की सोच रहा हूँ।

"ना बाबा ना, दिल्ली वाले बड़े ज़ालिम हैं। वह तो आदमी को कै़दी बना लेते हैं।"

"तो क्या हुआ ? लोग कैद भी तो होते हैं।" कमाल लापरवाही के अंदाज़ में बोलता है।

"जा, मैंने तुझे आज़ाद किया।" अच्छी भली बातें करती हुई वीरां फिर पागलों की तरह ऊँची आवाज़ में बोलने लगती है, "तू भी क्या याद करेगा, किसी बड़े दिलवाली से वास्ता पड़ा था।"

"अगर मैं आज़ाद होना चाहूँ ? मैं तो तेरी मुहब्बत की रेशमी ज़ँजीरों में बँधा रहना चाहता हूँ", कमाल उसे प्यार भरे लहजे में कहता है जैसे वीरां को संभालने की कोशिश कर रहा हो।

क्षण भर की ख़ामोशी के बाद वीरां छल छल आँसू रोने लगती है। रो-रो कर जैसे फरियाद कर रही हो—"हिंदुस्तानियों की यही तो मुसीबत है। ग़ुलामी में ये ख़ुश रहते हैं। कै़द को आज़ादी समझते हैं। मेरे मुर्शिद ने कहा था, मैं किले से बाहर तब जाऊँगा, अगर मेरे साथ 52 कैदियों को भी रिहा किया जायेगा यह बात हुई ना और मुग़ल हार माननी पड़ी। हार न मानता तो नूरजहाँ उसे ठेंगा दिखाकर अपने देश लौट जाती।"

वीरां ऐसे बोल रही थी कि उनके पड़ोस में दायें हाथ ताई दामोदरी के घर से एक शोर सुनाई देता है। इस तरह का शोर फिर बायें हाथ भाटणों के घर से भी उठता है।

बात यूं हुई, जैसे मां ने कान में बताया था, वीरां के बेटे ने ताई दमोदरी के आंगन में गाय के बछड़े को खूंटे से खोल दिया था और वह गाय का सारा दूध पी गया था और वीरां की बेटी ने मां के समझाने के मुताबिक पड़ोसियों के आंगन पिंजरा खोल कर उनकी मैना को उड़ा दिया था। पड़ोसी बच्चों को लाख लाख गालियां सुना रहे थे।

दोनों बच्चों को पड़ोसी कानों से पकड़ कर वीरां के पास लाये। एक ने दमोदरी ताई के बछड़े को खूंटे से खोल दिया था और गाय का दूध पी गया था और दूसरे ने पिंजरे में बंद में मैना को पिंजरा खोल कर उड़ा दिया था। पड़ोसी बच्चों की शरारत पर गुस्से से लाल-पीले हो रहे थे। दमोदरी ताई गाय का दूध बेचती थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह शाम को अपने ग्राहकों को क्या जवाब देगी और भाटणों की रोज़ी तो मैना से चलती थी। वे तो मैना प्रश्नों का समाधान कराते थे।

कमाल ने दमोदरी ताई को तो यह कह कर तसल्ली दी कि शाम को वह अपनी भेंस का दूध उसे पहुँचा देगा पर भाटणों के लिए उसके पास कोई जवाब नहीं था।

यह देख कर वीरां उनसे कहने लगी, "चिंता करने की कोई बात नहीं, आपकी मैना कहीं नहीं जायेगी। घड़ी भर के लिए मुंडेर पर बैठ कर उसे आज़ाद हवा में सांस लेने दो।" वीरां यह कह ही रही थी कि भाटणों का एक बच्चा आकर अपनी मां से कहने लगा, "भाई जी, मैना को मैंने पकड़ कर दोबारा पिंजरे में बंद कर दिया है। पिंजरे का दरवाज़ा अब बंद है।"

यह सुनकर भाटणों की जान में जान आई।

जब पड़ोसी अपने अपने घर लौट गये वीरां ने कमाल की ओर अर्थपूर्ण नज़रों से देखा और दांत पीस कर कहा, "मैना को क़ैद से छुड़ाने का एक ही तरीका है—पिंजरे को तोड़ा जाय।" और फिर वीरां हँसने लगी, पागलों की तरह हँसे जा रही थी।

"आ रहा है, आ रहा है, पिंजरे को तहस नहस करने वाला", हँसती हुई वीरां पुकारने लगी, "सामने जहाँ तक मेरी नज़र काम करती है, वह आता हुआ मुझे साफ़ दिखाई दे रहा है। तेज़ तेज़ डग भरता आ रहा है। आ रहा है, आ रहा है।"

कितनी देर तक वीरां 'आ रहा है, आ रहा है', कहती रही। कमाल और उसके बच्चे बेबस बिट बिट उसके चेहरे की ओर देख रहे थे।

कोई आठ दस हफ्तों तक वीरां इस तरह के पागलपन की गिरफ़्त में रही। फिर अपने ही आप ठीक हो गई जैसे उसे कुछ हुआ ही न था।

(6)

इधर वीरां ठीक होना शुरू हुई, उधर कमाल, जो इतने दिनों तक बँधा बैठा हुआ था, गोइन्दवाल के लिए चल पड़ा। कहने लगा, उसे गोइन्दवाल में कई जिम्मेदारियां निभानी हैं। शैली ने इतने काम बिखेर रखे थे।

आज बहुत दिनों बाद वीरां के चेहरे पर रौनक दिखाई दी थी। कितने दिन बाद उसे अपने आस पास का वातावरण खिला खिला लग रहा था। अमृतसर की सरदी के दिन, आंगन की गुनगुनी धूप में बैठना उसे हमेशा अच्छा लगता था और वह भीतर अपने कमरे में आइने के सामने जल्दी में सज रही थी। अभी कमाल ने लौटना था और फिर वह गोइन्दवाल के लिए चल देगा। कहता था—"गोइंदवाल में मैंने बाउली पर जपजी चौरासी पाठ

करने हैं, तेरी बीमारी के दौरान मैंने मन्नत मानी थी और भी काम थे पर यह एक ज़रूरी फ़र्ज़ सोच रखा था।"

सच्ची बात यह थी कि गोइंदवाल सिर्फ बहाना था। कमाल दिल्ली जाना चाहता था। वहाँ वह दिल्ली की संगत को इकट्ठा करके गुरु महाराज को मुग़लों की क़ैद से छुड़ाने कोई तरीका निकालेगा। जिस दिन से उसने सुना था कि गुरु महाराज को औरंगज़ेब ने क़ैदी बना लिया है, उसे न दिन में चैन आता था न रात को। अमृतसर में उसने अपने मन की बेचैनी को कई लोगों से बांटने की कोशिश की थी, पर और कोई भी मुग़लों के ख़ौफ़ से मुँह नहीं खोलता था। लोग उससे सहमत थे कि यह ज़ुल्म था, सिक्ख संगत की हेठी थी, पर इससे अधिक कुछ करने की किसी में हिम्मत नहीं थी। लोग ज़्यादा से ज़्यादा इस बात के लिए राज़ी हो जाते कि वे अरदास करेंगे, हाथ जोड़ेंगे, बस। एक अजीब किस्म की सर्द खामोशी छायी हुई थी। लोग सोचते जिस बादशाह ने तख़्त पर बैठने के लिए अपने पिता को क़ैद कर रखा था, पहले एक भाई को क़त्ल किया, फिर दूसरे भाई का वध करवाया, उससे कौन टक्कर ले सकता था ? उधर बंगाल और आसाम तक, इधर क़ाबुल और कन्धार तक उसकी तूती बोलती थी। बस एक दक्खिन उसके क़ाबू में नहीं आया था और सुना था कि अब वह उनको भी सबक़ सिखाने पर तुला हुआ था। गुरु महाराज को क़ैदी बना कर, वह पंजाब में सरहन्द वालों की देखरेख में तबलीग की मुहिम शुरू करना चाहता था। हर इन्सान इस्लाम का अनुयायी होगा, किसी धर्म का नामो निशान नहीं रहेगा।

यह कैसे हो सकता था ? कमाल सोचता था, पहला काम तो गुरु महाराज को औरंगज़ेब की क़ैद से छुड़ाना था। अगर ज़रूरत पड़ी तो वह जेलख़ाने की दीवारों से सर पटक पटक कर जान दे देगा। भूख हड़ताल करेगा। सिक्ख संगत का यह अपमान था, जिसके गुरु को अकारण कैदी बना लिया गया था। कमाल सोचता था, वह एक एक घर में जा कर हर गुरसिक्ख को शर्मिंदा करेगा। गुरु महाराज को इस तरह क़ैद करने का मतलब सिक्ख धर्म की पहचान को ख़त्म करना था। क्या वे इसके लिये तैयार थे ? किस मुँह से धर्मसाल जाते थे ? किस मुँह से वे सुबह-शाम पाठ करते थे ? अगर वे अपने निर्दोष गुरु महाराज को क़ैदी बनाये जाने के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठा सकते थे, तो यह सब कुछ किस लिए ? धर्म का निरादर धर्म मानने वाले की मौत होती है। इससे अच्छा होता कि वे मुग़लों

के अत्याचार को चुनौती देकर मर जाते। कमाल सोचता अगर यह बग़ावत थी तो वे बग़ावत करेंगे।

अब जब वीरां स्वस्थ हो रही थी, कमाल को खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता था। मन ही मन वह ज़हर घोलता रहता था। उसने फ़ैसला किया था कि अगर मरना ही है तो वह गुरु महाराज की सेवा में अपनी जान न्यौछावर करेगा। वीरां को वह अपने इरादे से परिचित नहीं करवा रहा था, इस डर से कि वह उसे अपने बच्चों और अपने अकेलेपन का वास्ता देकर रोकेगी या ख़ुद उसके साथ जाने के लिए तैयार हो जायगी। ये दोनों बातें उसे मंज़ूर नहीं थीं।

अमृतसर से चलने से पहले कमाल दर्शनों के लिए दरबार साहब गया। हरिमन्दर में उसने अरदास की। यह वरदान मांगा कि वह अपने गुरु महाराज को मुग़ल की क़ैद से छुटकारा दिला सके या ख़ुद क़ैद होकर अपने इष्ट की सेवा में प्राण दे दे।

दरबार साहब से लौटते समय उसे बार बार वीरां का ख़्याल आ रहा था। उसके लाख अरमान थे। इस औरत ने सारी उमर उसे दिल से मोहब्बत की थी। बेशक उसने सुमन से शादी करवाई थी। उसके लिए दो बच्चे भी पैदा किए, पर कमाल के लिए उसके दिल का एक कोना हमेशा शादाब रहा था और अब जब ज़िन्दगी ने उनकी राहें फिर जोड़ दी थीं, वह इस साथ को सार्थक बनाना चाहती थी। उसके चेहरे पर एक तमन्ना होती थी, उसकी नज़रों में एक भूख दिखाई देती थी, एक ललक जो कभी कभी उसकी आवाज़ में सुनाई देती थी। दिल्ली में मुग़ल दरबार के ऊँचे अधिकारी आलम ख़ान को कमाल के लिए ठुकराना बेमतलब नहीं था। उसने वीरां की कितनी कितनी मिन्नतें नहीं की थीं, लेकिन यह टस से मस नहीं हुई थी। जितने दिन ये लोग दिल्ली में रहे, आलम ने इसका पीछा किया था। पर कमाल से हुई मुलाक़ात के बाद मजाल है कि वीरां ने उसे मुंह भी लगाया हो।

कुछ इस तरह के ख़्यालों में डूबे कमाल ने अपने आंगन में पैर रखा ही था तो उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। सामने एक रंगीन पीढ़े पर जाड़े की सुहानी धूप में बैठी वीरां धूप सेंक रही थी। कुछ दिन पहले ही बीमारी से उठी, दुबला हुआ शरीर, जैसे कोई तस्वीर हो और आज कैसी सजी थी।

उसकी मोटी मोटी काली आँखें सुरमा लगा कर और कजरारी हो गई थीं। उसके ओठों पर दन्दासे की शोख़ी को जैसे सुर्ख़ी से ढाँपने की कोशिश

की थी। आज फिर उसने अपने घुटने तक लम्बे बालों को दो चोटियों में बांध कर गूंधा था। उसकी सुराहीदार गर्दन, उसकी मेंडियाँ, उसके जोबन को लाँघती हुई उसके घुटनों की ओर बढ़ रही हों। दो बच्चों की मां इतने कष्ट सहकर भी इस उमर में एक दोशीज़ा सी लग रही थी। उसका कासनी रंग का रेशमी लहँगा, सीपियों के बटनों वाला कुरता, कलेजी रंग का काश्मीरी शॉल—कमाल को सामने आते देखकर वह उसके लिए उठकर एक क़दम आगे बढ़ी तो ऐसा लगा जैसे मलिका अपने पूरे जोबन में जल्वा अफरोज़ हो रही हो। सारा आंगन एक नशीली ख़ुशबी में महक रहा था।

एक नज़र उसे देखकर कमाल के दिल ने उसे कहा, इस औरत को छोड़कर तू कैसे जायेगा ?

पर नहीं। उसने अपना सामान सुबह से बाँध कर रखा हुआ था। अब जब उसकी सवारी आई, उसने आँखें मूंद कर वीरां को अलविदा कहा और घर से निकल आया। अच्छा ही था कि बच्चे घर में नहीं थे, अगर होते तो शायद कोई और मुश्किल बन जाती। कमाल वीरां के बच्चों पर जान देता था।

गोइन्दवाल में कमाल सिर्फ बाउली साहब पर 84 पाठ करने और वीरां को ख़त लिखने के लिए रुका कि वह दिल्ली जा रहा है। दिल्ली जाकर पता नहीं वह कब लौट सकेगा। उसका यह फ़ैसला था कि जाकर गुरु महाराज को रिहा करवा लेगा या ख़ुद क़ैद हो जायेगा। अपने साथ दिल्ली के सारे गुरसिक्खों को क़ैद होने के लिए तैयार करेगा। इस ख़त में ही उसने पहली बार वीरां को यह भेद बताया था कि गुरु महाराज को औरंगज़ेब ने क़ैद कर रखा था। यह बात इतने दिनों तक उसने वीरां से छुपा रखी थी। शहर में किसी से इस बात का ज़िक्र करने का सवाल ही नहीं पैदा हुआ; एक तो वीरां ने बीमारी में चारपाई पकड़ी हुई थी, दूसरे लोगों ने मुग़लों के डर से चुप्पी साध रखी थी।

अमन नहीं कमाल तेज़ी से दिल्ली पहुँचा। सिवाय रात के आराम के मजाल है कि वह एक दिन भी रास्ते में कहीं रुका हो। दिल्ली पहुँच कर उसे पता लगा गुरु महाराज को तो कुछ दिन पहले रिहा कर दिया गया था। औरंगज़ेब ने बेशक उन्हें क़ैदी बनाया था, पर उन्हें मिर्ज़ा जयसिंह के बेटे कवर रामसिंह के घर हिरासत में रखा गया था। मिर्ज़ा जयसिंह गुरु घर का पुराना श्रद्धालु था। दो महीने और तीन दिन की सिर तोड़ मेहनत के बाद

कंवर रामसिंह ने शहंशाह से गुरु महाराज की रिहाई का हुक्म सादर करवा लिया था। उसने शहंशाह को यह ज़मानत दी थी कि मुग़ल दरबार को फिर गुरु महाराज से कभी कोई शिकायत सुनने में नहीं आयेगी।

कमाल ने सुना तो कहने लगा, "यह कैसे मुमकिन है ?" उसके मुँह का स्वाद ख़राब हो गया। पर उसे समझाया गया। इसे कूटनीति कहते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गुरु महाराज को रिहा करवा लिया गया था।

यह ख़बर कि गुरु महाराज को क़ैद किया गया था और दो महीने तीन दिन बाद रिहा करा दिया था, यह ख़बर वीरांवाली को कमाल के अमृतसर से चलने के कुछ दिनों बाद ही मिल गई थी। बात यों हुई कि आलम ख़ान जो औरंगज़ेब का फ़रमान लेकर आया था और जिसने महाराज को हिरासत में लिया था, वीरांवाली का पुराना प्रशंसक था। गुरु महाराज को गिरफ़्तार करने के बाद जब वह उनके सम्पर्क में आया तो उनका मुरीद बन गया। हथकड़ी लगाकर उन्हें दिल्ली ले जाने की बजाय, उसने गुरु महाराज की न बेअदबी की, न किसी को करने दी। फूल की तरह संभाल कर वह उन्हें दिल्ली ले गया। वहाँ पहुँच कर उन्हें क़ैदखाने में बंद करने की बजाय कंवर रामसिंह के घर ठहराया और दरबार में अपने असर रसूख़ से शहंशाह की रज़ामन्दी भी प्राप्त कर ली।

इस दौरान वह गुरु महाराज का अनन्य भक्त बन गया। गुरु महाराज जैसी दैवी छवि उसने और किसी में नहीं देखी थी। उनके जैसी शराफ़त किसी में नहीं थी। सच क़े पुतले, आठों पहर उनकी ईश्वर से लौ लगी रहती थी। उनके मुखड़े का नूर, उनके बोलों की मिठास, एक नज़र में आलमख़ान अपनी सारी दरबारी हेकड़ी भूल गया। उसे लगता जैसे गुरु महाराज के हर बोल से उसके मन की मैल उतर रही हो। खिड़कियाँ खुल रही थीं। उसे अपना आप फूल की तरह हल्का लगने लगा। जैसे चारों तरफ़ संगीत की ध्वनियाँ उभर रही हों और खुशबूओं की लपटें फैल रही हों।

जिस दिन गुरु महाराज की रिहाई का फ़रमान वह शहंशाह से जारी करवा सका, उसे वीरांवाली की याद तड़पाने लगी। गुरु महाराज की सिख, उसने उनके लिए ही तो आलम को छोड़ा था। कहती थी, "पहले मैं गुरसिख हूँ, बाद में कुछ और।" पहली बात को तलाश करने के लिए अमृतसर चल दिया। "ले बीबी मैंने तेरी यह शर्त भी पूरी कर दी है। मैं तेरे गुरु का सिख हो गया हूँ। अब तू मुझे इन्कार नहीं कर सकती।" वीरांवाली को तलाश

करके आलमख़ान ने अपने आप को जैसे अपनी महबूबा के क़दमों में डाल दिया। इस तरह का वालिआना इश्क, वीरां उसके मुंह की ओर ताकती रह गई। यह कहाँ से टपक पड़ा था ? यह क्या कह रहा था ?

फिर वीरांवाली को अचानक ख़्याल आया, वह नितान्त अकेली थी। कमाल को गोइंदवाल गये आज तीसरा दिन था।

मुग़ल दरबार का इतना बड़ा अहलकार और फिर सिक्खी में लगी उसकी नई आस्था, आलम ख़ान दरबार साहब के पास ठहरा हुआ था। दोनों वक्त दर्शनों के लिए हाज़िर होता। हरिमन्दर की परिक्रमा में ही उसने वीरांवाली की झलक देखी थी। पूछ पूछ कर उसके घर पहुँच गया था।

वीरांवाली को दिल्ली के वे दिन बार बार याद आते थे, जब एक बेसहारा अबला को आलमख़ान ने सहारा दिया था। उसके बच्चों का बापू बना था। वीरांवाली की उजड़ी दुनियां में वह एक बहार लाया था। वह हमेशा कहा करती थी, "तूने एक खंडहर में शमा रौशन कर दी है।"

लेकिन यह सब बातें तो वह भूल चुकी थी। अपनी ज़िन्दगी के इस काण्ड को उसने स्लेट पर उकरी इबारत की तरह मिटा दिया था।

और कोई चारा नहीं था। अगले दिन वीरां अपना सारा सामान समेट कर गोइन्दवाल चल दी, जैसे कोई त्रासदी हाथ धोकर उसके पीछे पड़ी हो। जब वीरां गोइंदवाल पहुँची, कमाल उसे ख़त में अपने दिल्ली जाने के बारे में लिखकर वहाँ से जा चुका था।

कमाल का ख़त अमृतसर पहुँचा था। वीरां गोइन्दवाल जा चुकी थी। ज़िन्दगी उसके साथ अजीब खेल खेल रही थी। वह नहीं जानती थी कि कमाल दिल्ली चला गया था। वह हैरान थी, कमाल कहाँ ग़ायब हो गया था। न आगे जा सकती थी, न पीछे लौट सकती थी। फिर उसे डर सताने लगा, कहीं आलमख़ान ने उसे कुछ कर न दिया हो।

(7)

अमृतसर लौटने के सिवा वीरांवाली के पास और कोई चारा नहीं था। गोइंदवाल में क़दम क़दम पर सुमन की यादें उसे घेर लेती थीं।

वीरांवाली यह कल्पना नहीं कर सकती थी कि कमाल दिल्ली जा सकता है। उसने सोचा बाउली साहब के चौरासी पाठ करके अमृतसर लौट गया होगा। वीरां की याद उसे वापस ले गई होगी। वीरां आजकल उस पक्की उम्र के शिखर पर थी जब मर्द अपनी दिलनवाज़ के लिए पहाड़ खोद

सकता है, आकाश के तारे तोड़ सकता है, जान पर खेल सकता है। इस उम्र की जकड़ बड़ी पक्की होती है।

अमृतसर में तो आलम ख़ान आकर बैठा हुआ था। तो क्या हुआ ? वीरांवाली बच्चों को लेकर गोइन्दवाल से फ़ौरन अमृतसर लौट आई। वहाँ कमाल का गोइन्दवाल से भेजा ख़त उसका इन्तज़ार कर रहा था। साथ में उसकी मोहब्बत से बँधा आलमख़ान भी था। वीरां को उससे बड़ा डर लगता था। पर गुरु महाराज के सम्पर्क में आकर मजाल है कभी आलम ने उसके सतीत्व की लक्ष्मण रेखा पार करने की बात भी सोची हो।

वीरां को अपने आप से बड़ा डर लगता था। पर गुरबानी के सह' सुबह-शाम दरबार साहब के दर्शन, वह अपने पैरों पर एक चट्टान की तरह मज़बूती से खड़ी हुई थी। यह करामात थी। आलम ख़ान कभी कभी अपने आप से कहता, "आलमगीर औरंगज़ेब गुरु महाराज को करामात दिखाने के लिए ज़िद कर रहा था। इससे बड़ी करामात क्या हो सकती है। इस औरत की ख़ातिर आलमख़ान अपनी बीवी को तलाक़ देकर आज़ाद हो चुका था। यही शर्त तो इसने रखी थी। और अब इस औरत ने जिसके लिए वह सब कुछ करके आया था, अपना मन बदल लिया था।"

और आज इस औरत की हालत यह थी कि इसका वह परस्तार भी उसे छोड़ कर कहीं चला गया था। वह नितान्त अकेली थी, बेसहारा। आलम इसे साथ देता, इसके बच्चों को लाड़-प्यार करता, पर वीरां की ओर उसने कभी मैली आंख से नहीं देखा था। कभी भी नहीं।

यही तो गुरसिक्खी है। यह गुरु महाराज की मेहर का सदका था। आलमख़ान का दिल उसे बार बार याद कराता। इसी को करामात कहते हैं। असंभव को संभव कर देना। अनहोनी को होनी करके दिखा देना।

वीरांवाली और आलमख़ान मिलकर दरबार साहब जाते, मिलकर दोनों साध-संगत में शामिल होते। मिलकर बैठते और गुरु तेग़ बहादर जी की महानता की कहानियां करते रहते। गुरु नानक और बाक़ी गुरु साहिबान की स्तुति करते रहते। आलमख़ान, जो अपने पुराने सब रिश्तों को छोड़ कर गुरु की नगरी में आया था, जहाँ तक संभव होता, वीरांवाली और उसके बच्चों की देखभाल करता।

दो-चार-दस दिन के बाद आलमख़ान के प्रति वीरांवाली के भीतर का डर बिल्कुल जाता रहा था। इसी अरसे में आलमख़ान को अपने पर पूरा

भरोसा हो गया था। सच्चाई और धर्म के रास्ते से उसे कोई भटका नहीं सकता था।

ज़िन्दगी फिर सुहावनी हो गई। दोनों पक्ष खुशी से मिलने लगे, हँसने खेलने लगे।

अभी बहुत दिन नहीं गुज़रे थे कि कमाल का ख़त आया। वह दिल्ली पहुँच गया था। गुरु महाराज अभी दिल्ली में ही थे। वह अनेक दूसरे गुरसिक्खों की तरह, जो गुरु जी की सेवा में अपना जीवन सफल कर रहे थे।

बस और कुछ भी नहीं लिखा। "न यह कि वह कब लौट रहा था और न ही यह कि अगर उसने वापस नहीं आना था, तो वीरां बच्चों को लेकर दिल्ली पहुँच जाय। आख़िर वीरां को भी तो जरूरत थी, गुरु महाराज की सेवा की। उसकी चादर भी तो मैली थी जिसे वह उजला करना चाहती थी। उसे भी अपना जनम सफल करने की आवश्यकता थी।"

वीरांवाली सोचती, अगर आलमख़ान अमृतसर में न होता तो उसका क्या होता। बिल्कुल अकेली, बेसहारा औरत, दो बच्चों की ज़िम्मेवारी वह कैसे निभाती ?

उस दिन आलमख़ान औरंगज़ेब से गुरु महाराज की मुलाकात का वृत्तान्त बता रहा था : "यह जान कर कि मैं गुरु महाराज को गिरफ्तार करके दिल्ली ले आया था, आलमगीर बहुत ख़ुश हुए, कहने लगे—अब इस्लाम का रास्ता साफ़ हो गया है। सिक्ख गुरु भी एक रोड़ा था, जो हटा दिया गया है। अब सारे पंजाब में इस्लाम का झंडा झूला करेगा। सरहंद के शेख़ भी ख़ुश और अल्ला भी ख़ुश। मेरे लिए कई इनामों और इकरामों की बात सोची जा रही थी।

"मैं जब भी गुरु महाराज की महानता की कोई बात छेड़ता, मेरा मुँह बंद कर दिया जाता। कभी आलमगीर खुद ऐसा करते, कभी कोई दरबारी ऐतराज़ करता। मुग़ल दरबार में वही बात सुनी जाती है जिसे शहंशाह सुनना चाहते हों।"

"आलमगीर का कोई इरादा इन्साफ़ करने का नहीं था, फिर हम लोगों इसरार करने पर गुरु महाराज को मुलाक़ात के लिए बुलाया गया।"

औरंगज़ेब का कहना था कि गुरु महाराज ने अपने धर्म का प्रचार करके मुग़लिया कानून का उल्लंघन किया था। यह अपराध जिसकी सज़ा उन्हें

भुगतनी पड़ेगी। इस तरह का क़सूर सिर्फ़ अल्लाह को पहुँचे हुए औलिया या फ़कीर को माफ़ किया जा सकता था। वे वली अल्ला हैं, इसके सबूत के लिए मुल्ज़िम को करामात दिखानी पड़ेगी। अगर गुरु महाराज कोई करामात करके दिखा सकते हैं, तो यह माना जायेगा कि वे अल्ला की ओर से भेजे हुए हैं और उन पर आम दुनियादारों वाला क़ानून नहीं लागू होगा। औरंगज़ेब बार बार कहता था : "तुम हिन्दू के गुरु कहावो, कुछ हमको करामात दिखावो।"

हम लोगों ने मुलाक़ात के दौरान गुरु महाराज के लिए चन्दन की चौकी ला रखी थी, जिस पर गुरु महाराज विराजमान थे। उन्होंने सुना और कुछ इस तरह फरमाया,

न लायक फ़कर के करामात करना
है निसदिन सदा ख़ौफ़ मौला के रहना

"शहंशाह औरंगज़ेब ने सुना तो लाल पीला हो गया। उसने गुरु महाराज के क़त्ल का हुक्म दे दिया।"

"तो फिर", वीरांवाली ने परेशान होकर पूछा।

"अब मामला हमारे हाथों से निकल चुका था। इसे कंवर रामसिंह जी ने अपने रसूख़ से सुलझाया।"

यह कहानी सुनकर वीरांवाली को आलम पर बेहद प्यार आने लगा। वह यह दर्शाने की कभी कोशिश नहीं करता था कि उसने अपने रसूख़ से गुरु महाराज को बचाया था, बल्कि हमेशा उसकी कोशिश यह जतलाने की होती कि वह ख़ुशनसीब था कि उसे गिरफ़्तार करके दरबार में पेश करने का हुक्म मिला था और वह उनके सम्पर्क में आया था। एक फरिश्ता-सीरत महापुरुष को नज़दीक से देख सका था। उनकी संगत से उसके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गया था। वीरांवाली ने अब उसे कभी शराब पीते हुए नहीं देखा था, ना कभी उसने वीरांवाली की तरफ़ वैसे देखा था जिसकी एक नज़र से उसके दिल को कुछ होने लगता था। उसका पहनावा बदल गया था। उसकी चालढाल और की और हो गई थी। घंटों तक बैठा वीरां का मन लगाये रहता। मुग़ल दरबार की कहानियाँ सुनाता रहता।

वीरां को उसने बताया, औरंगज़ेब एक बादशाह के रूप में बेशक बड़ा ज़ालिम था। दिल्ली के तख़्त पर बैठने के लिए उसे लहू की नदी तैरनी पड़ी थी, पर बतौर एक इन्सान के वह अपने निजी जीवन ख़ुदापरस्त था। मजाल

है सरकारी ख़ज़ाने का एक पैसा भी अपने ऊपर ख़र्च करे। कुरान शरीफ़ की नकलें तैयार करके या टोपियाँ सी कर, जिन्हें बाज़ार में बेचा जाता था, उससे उसका ख़र्च चलता था।

एक तरफ़ यह सादगी और दूसरी तरफ़ उसका भयंकर कट्टरपन, जो उसके नाम के साथ जोड़ा जाता है, वीरांवाली को सुन सुन कर हैरानी होती।

आलमख़ान ने उसे बताया, "असल में बात यह है कि औरंगज़ेब ने तख़्त हथियाने के लिए जो ज़ुल्म ढाये हैं, उनकी वजह से वह बहुत बदनाम हो गया है। दुनिया भर में उसे कोई मुंह नहीं लगाता। उसने मक्का शरीफ़ के खलीफा को लाखों रुपयों की सौग़ातें भेजीं, जो इसे लौटा दी गईं। अपने देश में शिया मुसलमानों के साथ जो ज़्यादतियां यह करता रहता है उसका नतीजा यह हुआ कि ईरान के बादशाह ने इसके भेजे राजदूत को डांट कर अपने दरबार से निकाल दिया था। यही नहीं ईरान ने हिन्दोस्तान पर हमला करने की भी धमकी दी है। बार बार वह करामात दिखाने की ज़िद करता है। शायद उसे किसी पहुँचे हुए मुर्शिद की तलाश है जो उसे पार लगा दे।"

"अगर यह बात है तो गुरु महाराज से बेहतर पीर उसे और कौन मिल सकता है", वीरां बोली।

"यही तो मुश्किल है बीबी। मुर्शिद अच्छी किस्मत के बग़ैर नहीं मिलता। अगर करम किए हों तो सच्चा गुरु मिलता है।" यह कहते हुए आलम जैसे एक नशे में मख़मूर हो गया। दायें-बायें सर हिलाकर बार बार कह रहा था, "अच्छे करम किए हों तब सच्चा गुरु मिलता है, अच्छे करम किए हों तभी सच्चा गुरु मिलता है।"

कुछ देर के लिए एक सकता छा गया। कमरे में पूरी ख़ामोशी थी।

"मेरी अच्छी किस्मत थी बीबी कि मुझे उस वली अल्लाह को गिरफ़्तार करने को भेजा गया और मैं खुद गिरफ़्तार हो गया। क़ैद करने गया, ख़ुद क़ैदी बना गया। पता नहीं मेरे कौन से शुभ करम थे जिनकी बदौलत मुझ पर यह कृपा हुई है", आलम बोला।

आलमख़ान की आँखें कृतज्ञता से गीली हो रही थीं।

और वीरांवाली को अहसास हुआ, यह आदमी जो कभी उसका दीवाना था, जो सारी सारी शाम शराब में बदमस्त पड़ा रहता था, नाच गाने के सिवा और कुछ नहीं, अब किस रास्ते पर पड़ गया है ? उस रास्ते पर वह कितनी दूर आगे निकल गया है ? और वह भाई मुण्डे की औलाद कितनी पीछे रह

गई है। कई लोग पैदल चलते हैं और कई उड़कर अपनी मंज़िल पर पहुँच जाते हैं।

(8)

कमाल की कोई ख़बर नहीं थी। कई दिन बीत गये थे। न क़ोई ख़त और न ही वह ख़ुद लौटा था। आख़िर दिल्ली में कर क्या रहा था ? उसके अपने कहने के मुताबिक वह गुरु महाराज के हिरासत में लिए जाने के खिलाफ़ आन्दोलन करने गया था। गुरु महाराज को आलमगीर ने रिहा कर दिया था। वे कंवर रामसिंह के घर में रह रहे थे। उनके साथ हीरा चंद छिब्बर के बेटे मतीदास और सतीदास थे। छोटे मल छिब्बर का बेटा ग्वाल दास था। कीरत बड़तियां का बेटा गुरदास था। बिना उप्पल का बेटा संगत था और माईदास के बेटे जेता और दयालदास थे। और भी कई सिक्ख और महात्मा थे और परिवार के लोग भी थे। कब तक वे एक रजवाड़े के घर टिके रह सकते थे ? बेशक कंवर की मां रानी पुष्पा गुरु महाराज की अनन्य श्रद्धालु थी, फिर भी गुरु महाराज को पीछे भी तो और काम निपटाने थे। और जब इतने गुरसिख गुरु महाराज की सेवा में थे, तो कमाल क्यों उनके साथ बंध के बैठ गया था ? इधर नानकी चक का निर्माण हो रहा था। बेशक गुरु महाराज अपने हाथों से शहर का नक्शा बना गये थे। विस्तृत हिदायतें भी दे गये थे। पर इतनी बड़ी योजना में उनकी अपनी अगवाई बहुत जरूरी थी। पिछले दिनों आलमख़ान नानकी चक गया था। उसने आकर बताया कि यात्रियों के लिए एक विशाल धरमसाल तैयार हो चुकी थी। उसके चारों तरफ़ दरवाज़े थे, चाहे कोई किधर से आये, चाहे कोई किधर से जाए। धरमसाल का नक्शा कुछ ऐसा बनाया गया था कि जाड़ों में वहाँ धूप आती थी, गरमियों में इसे धूप और लू से बचाया जा सकता था। आश्चर्यजनक समझदारी से काम लिया गया था। शहर के बाज़ार का फर्श पक्के पत्थरों का था—ऐसे पत्थर जिन पर घोड़े दौड़ते रहें या रथ चलते रहें, उन पत्थरों का कुछ नहीं बिगड़ने वाला था। राज मज़दूर, मिस्त्री और त्रखान दोआबे और माझे से आये थे। उनकी कोई कमी नहीं थी। गुरु महाराज के निजी महलों की नीवें भी खोदी जा चुकी थीं। व्यापारी और बुद्धिजीवी अपने अपने घर बनाने में व्यस्त थे। वहाँ आकर बसने के इच्छुक आम शहरियों में से हरेक को ज़रूरत के अनुसार ज़मीन के टुकड़े दिए जा रहे थे। गुरु महाराज के आदेश से आठों पहर लंगर चलता था। आने जाने वालों की पूरी ख़ातिर

होती थी। आलम ख़ान कहता था, वहाँ का मौसम इतना सुहाना था कि वहाँ से लौटने का मन नहीं करता था।

आलम नानकी चक होकर भी लौट आया था। कमाल का अभी भी कोई ख़त नहीं आया था। कई महीने गुज़र गये थे। वीरां का मन बेचैन हो उठता। आख़िर इस ख़ामोशी का मतलब क्या था ? पहले तो वह उसे बताये बग़ैर दिल्ली गया ही क्यों था ? दिल्ली कौन स. नज़दीक थी, बहाने बाज़ ! कहता था मैंने गोइंदवाल में बाउली साहब के पास मन्नत मांगी है। फिर शैली के कई झंझट निबटाने हैं। पता नहीं उसने पाठ किये भी थे या सीधा दिल्ली निकल गया था। अगर गया था तो अब वहाँ पालथी मार कर क्यों बैठ गया था ? उसे नहीं पता था कि पीछे उसका इन्तज़ार हो रहा था। छोटे छोटे दो बच्चे थे, बड़े धरम को पाठशाला में डालना था। छोटी भागां का कमाल के साथ कितना प्यार था। रोज़ सुबह सोकर उठती, पहली बात पूछती, "कमाल चाचा कब आयेंगे ?"

वीरां सोचती, अगर आलम न होता तो वह कपड़े फाड़ कर वहीं निकल गई होती। बिल्कुल अकेली। छतें और दीवारें उसे काटने को पड़तीं। आलम की वह शुक्रगुज़ार कि वह उसका साथ देने के लिए अमृतसर में रुका हुआ था। मरदज़ात का बड़ा सहारा होता है। फिर वीरां का मन विद्रोह करता। आख़िर आलम अमृतसर ... नहीं जा रहा था ? दरबार साहिब के दर्शन करने आया था, फिर यहीं जम कर रह गया। यात्री आते हैं, जाते हैं। इसका तो जैसे अमृतसर से हिलने का इरादा ही न हो। यहाँ टिकने का इसका मतलब क्या था ? कमाल आयेगा ... क्या सोचेगा ? अड़ौसी-पड़ौसी क्या कहते होंगे ? यह औरत अच्छी है, एक मरा, दूसरे के साथ रहने लगी। वह कहीं गया तो किसी पराये मर्द के साथ उठने-बैठने लगी है। सारा सारा दिन भीतर कमरे में घुसे क्या करते रहते हैं ?

जब इस तरह के विचार उसे परेशान करते, वीरां आलम से खिंची खिंची रहने लगती, उससे दूर-दूर होने की कोशिश करती। दस बार वह बुलाता तो एक बार जवाब देती।

पर फिर आलम के बग़ैर कई तरह के सूनेपन मुँह फैलाए दिखाई देते।

और उसकी गुरु-भक्ति देख कर, गुरु महाराज के लिए उसकी श्रद्धा का ख़्याल करके वीरां को अपने आप से नफ़रत होने लगती। उसे तो शुक्रगुज़ार होना चाहिए था, उस आदमी का जो सब कुछ छोड़छाड़ कर उसकी ख़िदमत

में हाज़िर रहता था। न उसने कभी अपने रिश्तेदारों का ज़िक्र किया था, न ही अपनी नौकरी की कभी परवाह की थी। पता नहीं छुट्टी लेकर आया था या इस्तीफ़ा देकर आया था। उससे वीरांवाली ने इस बारे में कभी नहीं पूछा था।

वीरां का मन उतावला पड़ने लगता। दिन, हफ़्ते, महीने बीत रहे थे, रोज़ाना वह एक दिन और इन्तज़ार करने का फ़ैसला करती और इस तरह दिन पर दिन गुज़रते जा रहे थे।

एक दिन वीरां के सब्र का कटोरा छलकने लगा था कि कमाल का ख़त आ गया।

"लिखतुम कमाल दीन, मिले मेरी परम प्यारी वीरां दीदी को। यहाँ गुरु महाराज की कृपा से सब सुख है। आपकी सुख कुशलता रब उल आलमीन से मांगता हूँ। और बात यह है कि मैं गुरु महाराज की कृपा के सदके उनके जत्थे में शामिल हो गया हूँ। इसके लिए मैं कब से हाथ जोड़ रहा था। मेरी दुआ सुनी गई है। मेरे मन की मुराद पूरी हो गई है। सुमन की तरह मुझे भी गुरु महाराज के घोड़ों की ख़िदमत का काम सौंपा गया है। गुरु महाराज के घोड़े का नाम श्री[illegible] है। नीले रंग का घोड़ा, उसे तो बस देखते ही बनता है। और भी घोड़े हैं, रथों और गाड़ियों को चलाने के लिए बैल हैं। गुरु महाराज की माता जी और महलों के लिए पालकियाँ हैं; लांगरी हैं, कीर्तनिये हैं। हम कोई आठ-दस कोस सफर रोज़ करते हैं। तम्बू और छोलदारियों वाले आगे जाकर हमारे इन्तज़ार में रहते हैं।

"यह बताना तो मैं भूल ही गया कि हम अभी पंजाब की तरफ़ नहीं आ रहे। गुरु महाराज की यह यात्रा पूरब की ओर होगी। पता नहीं कहाँ तक जायेंगे। उनके मन की वही जानते हैं।"

"दिल्ली से चलकर हम पहले मथुरा पहुँचे। मथुरा मन्दिरों का शहर है। श्री कृष्ण का जन्म-स्थान। वहाँ कुछ दिन रुक हम आगरा पहुँचे। आगरा में गुरु महाराज की एक श्रद्धालु माई जस्सी बहुत दिनों से इन्तज़ार कर रही थी। उसने अपने हाथ से कपास बीन कर, पींज कर, कातकर और बुन कर, अपने हाथों से काटकर और सीकर एक चोग़ा गुरु महाराज को भेंट किया। गुरु महाराज ने उसकी भेंट क़बूल करते हुए उसे उसका मुंह मांगा वरदान दिया।"

"फिर हम इटावा, कानपुर, फतेहपुर होते हुए कड़ा मानकपुर पहुँचे। यह

शहर प्रयाग से कोई तीस-चालीस कोस पर होगा। यहाँ गुरु महाराज की भेंट मलूकदास नाम के एक वैष्णव साधु से हुई। मलूकदास ने गुरु बाबा नानक के बारे में सुन रखा था। पर वह गुरु तेग़ बहादर जी का शाही ठाठ देख कर स्तब्ध रह गया। कहने लगा गुरु बाबा नानक की गद्दी पर बैठा कोई शिकार कैसे कर सकता है ? घोड़े पर कैसे चढ़ सकता है ? उसके साथी तीरों और बन्दूकों से लैस होना कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? पर जब उसने गुरु महाराज की हज़ूरी में आकर उनके मुखड़े का जलाल, उनके नयनों का नूर देखा तो सति गुरु के चरणों में गिर पड़ा। गलतियों के लिए माफ़ी मांगने लगा। बार बार कहता, "आज मुझे साक्षात भगवान के दर्शन हुए हैं। लगता है मेरा तन-मन उज्ज्वल हो गया है।" मलूकदास गुरु महाराज के जत्थे को आगे जाने ही नहीं दे रहा था। हर रोज़ 'एक दिन और' कह कर गुरु महाराज को रुकने को मना लेता। ख़ातिरें कर करके वह थकता नहीं था।

प्रयाग हमारा अगला पड़ाव था। कुछ दिन यहाँ रुक कर हम वाराणसी पहुँचे। इन दोनों शहरों मं कई गुरसिक्ख हैं। गुरु बाबा नानक के समय से यहाँ गुर-सिक्खी का प्रचार हो रहा है। हिन्दू जगत का प्रमुख तीर्थ स्थान होने के कारण यहाँ के अनेक मन्दिर दर्शनीय हैं। इन दोनों शहरों में पंडितों और रानियों की भरमार है। गुरु महाराज से कई गोष्ठियाँ हुईं। गुरु तेग बहादुर जी ने अनेक लोगों के संशय दूर किए। वाराणसी से गुरबक्श नाम का एक सिक्ख जौरपुर से अपने शहर की संगत के साथ गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आये। इतनी श्रद्धा से वे लोग गुरवाणी का कीर्तन करते थे। गुरु महाराज ने प्रसन्न होकर गुरबक्श को असीस दी कि उसके घर में उससे भी बढ़िया कीर्तन करने वाला एक बालक जन्म लेगा। गुरबक्श की कोई औलाद नहीं थी। यह सुनकर गद्‌गद् हो गया।

वाराणसी में हम कई दिन ठहरे। बात यूं हुई कि गुरु महाराज का निजी घोड़ा श्रीधर यहाँ आकर बीमार पड़ गया। उसका इलाज होता रहा। आस पास के कई जानवरों का इलाज करने वाले चिकित्सक बुलाये गये, पर कोई फ़रक नहीं पड़ा। वाराणसी शहर को गुरु महाराज को 'शबद् का कोठा' कहा है। यहाँ की सिख संगत की गुर-भक्ति बेमिसाल है। वाणी से इनका प्यार अद्वितीय है। यहाँ गुरु महाराज एक भोरे में तपस्या भी करते रहे हैं। चलते समय कल्याण दास नाम के अपने एक भगत को गुरु महाराज ने अपने चोग़े सौग़ात में दिए। भाग्यशाली है कल्याण दास। वाराणसी में और भी कई

गुर-प्यारे हैं; जैसे भाई जादो घासी, भाई मोती सेठ, भाई किरपाल, भाई जटमल, भाई बाबू राम, भाई भिखारी दास, भाई दलपत दास, भाई गंगाराम, भाई महानन्द, भाई रघुनाथ और भाई हीरामान। भाई जावेरी वाराणसी का मुख्य मसन्द है। यहाँ की संगत ने हर उपाय किया, पर गुरु महाराज का घोड़ा श्रीधर स्वस्थ नहीं हुआ। मैं तो रुकने के लिए तैयार था, पर गुरु महाराज ने इसकी ज़रूरत नहीं समझी। श्रीधर को वाराणसी की संगत की देखभाल में छोड़कर हम सस्सा राम के लिए चल पड़े। पर गुरु महाराज को श्रीधर से बिछुड़ना जैसे अच्छा नहीं लग रहा था। सस्सा राम पहुँचते ही उन्होंने वाराणसी की संगत को हुक्मनामा भेजा कि श्रीधर का इलाज बाक़ायदा हो। उसकी ख़ुराक का ख़्याल रखा जाय और जब घोड़ा ठीक हो जाय, उसे पटना भेज दिया जाय। सस्सा राम गुरु महाराज अपने एक पुराने गुरसिक्ख चाचा फग्गू की अरदास सुनकर गये थे। गुरु महाराज के आगमन की ख़ुशी में चाचा फग्गू ने एक कोठा तैयार करवाया था; ऊँचे दरवाज़े वाला ताकि गुरु महाराज घोड़े से उतरे बिना भीतर प्रवेश कर सकें। फिर चाचा फग्गू ने इतना सुन्दर कोठा बना कर उसे सजाया। हर रोज़ उसकी झाड़-पोंछ करता। एक ही तमन्ना कि सबसे पहले गुरु महाराज आकर वहाँ अपने चरण डालें, फिर वह किसी और को घुसने देगा।

और फिर घट घट के जाननहार गुरु महाराज ने चाचा फग्गू की विनती सुन ली। जब हमारा जत्था सस्साराम पहुँचा, रथों और पालकियों, घोड़ों और बैलगाड़ियों को शहर के बाहर छोड़ कर गुरु महाराज अपने घोड़े पर सवार होकर चाचा फग्गू के घर में जा घुसे। कंधे पर कमान, पीठ पर तरकस, कमर में लटकती शमशीर, अरबी घोड़े पर सवार, लगता था जैसे कोई फरिश्ता आसमान से उतरा हो। चाचा फग्गू की विनती सुनी गई थी। क्षण भर के लिए उसे जैसे अपनी आँखों पर ऐतबार नहीं हो रहा था। फिर वह गद्‌गद् हो रहा था। फिर वह आगे बढ़ा और महाराज के चरणों को पकड़कर उसने अपने आँसुओं से धो दिया।

गुरु महाराज घोड़े से उतरे और चाचा फग्गू से कहने लगे-"ले तेरी ज़िद हमने पूरी कर दी है। पर तुझे इस बात का तो ख़्याल होना चाहिए था कि हम सैंकड़ों कोस तुझ से दूर थे। तुझ तक पहुँचने के लिए हमें कितनी मंज़िलें पार करनी पड़ी हैं। कितनी बाधाएँ झेलनी पड़ी हैं।"

चाचा फग्गू चुपचाप सुन रहा था। वह तो उस धरती को चूम रहा था

जहाँ गुरु महाराज का आगमन हुआ था। उस धूलि को उठा कर अपने माथे से लगाकर, जिसे उसके इष्ट का स्पर्श प्राप्त हुआ था। ख़ुशी के आंसू उसकी आँखों में थम नहीं रहे थे।

जितने दिन हम सस्सा राम में रहे, चाचा फग्गू और शहर की संगत ने जी भरके गुरु महाराज की सेवा की। गुरु महाराज चाचा फग्गू पर बहुत प्रसन्न हुए। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त किया और आदेश दिया कि वह इस आदेश को आस पास के और सिक्खों तक पहुँचाए।

सस्साराम से जब हम आगे चले तो बहुत बड़ी संगत हमारे साथ चल पड़ी। चाचा फग्गू के साथी लौटने का नाम ही नहीं लेते थे। बड़ी मुश्किल से गुरु महाराज ने उन्हें फिर दर्शन देने का वायदा किया और अपने अपने ठिकाने पर लौटने के लिए राज़ी किया।

सस्साराम से चलकर हम गया पहुँचे। यहाँ हमने फल्गू नदी के किनारे अपने तम्बू गाड़े। हमें देख कर पडों ने घेर लिया और कहने लगे, "अपने पूर्वजों के निमित्त दान दो। गुरु महाराज ने उन्हें उपदेश देकर सत्य के मार्ग पर डाला और अंध विश्वास से उन्हें छुटकारा दिलाया। गया में महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। यहाँ बरगद का वह पेड़ है जिसके नीचे गौतम ने कई बरस बैठ कर तपस्या की थी।

गया से चलकर आज हम पटना पहुँचे हैं। लगता है गुरु महाराज यहाँ लम्बे अरसे के लिए टिकेंगे। कम से कम चौमासे में यहीं आराम करेंगे। यहाँ हम एक गुरसिख के घर में ठहरे हैं।

श्रीधर की कोई ख़बर नहीं। मैं इस लिए बहुत परेशान हूँ। आज शाम कई लोग पंजाब लौट रहे हैं। मैंने यह ख़त जल्दी में लिखा है ताकि उनके चलने से पहले उनके हवाले कर सकूँ।

बच्चों को बहुत बहुत प्यार और बहुत बहुत प्यार बच्चों की मां को।

आप से बिछुड़ा गुरु महाराज का दास कमाल

(9)

इतना लम्बा ख़त और एक शब्द नहीं कि वह कब लौटेगा। एक शब्द नहीं कि वह बिना बताये इतनी दूर क्यों गया था। गुरु महाराज के जत्थे में से अगर कोई पंजाब लौट रहा था, तो वह क्यों नहीं आ सकता था। इस बारे में भी कोई ज़िक्र नहीं।

वीरां सोचती, अगर वह पुरानी वीरां होती तो इस ख़त को कब से आग

में फेंक चुकी होती। लेकिन अब नहीं। अब वह और की और हो गई थी। ज़िन्दगी की ठोकरें खा खाकर पिस चुकी थी। उसके सारे कोने घिस गये थे। उसका अहंकार जाता रहा था। सूख कर तीली रह गई थी। यह सोच कर उसकी पलकें सजल हो गईं। आज वह कितनी बेचारी हो गई थी ! नाचीज़ !

फिर वीरां को ख़्याल आया, अगर वह नहीं आ सकता था, तो उसे पटना जाने से कौन रोक सकता था। वह सोचती कि वह पटना चली जायेगी। गुरु महाराज की शरण में रहेगी। उनकी सेवा करने का उसे अवसर मिल जायेगा।

दीवानी औरत, इतने दूर, सैकड़ों कोस अकेली, दो बच्चों को लेकर वह कैसे सफ़र करेगी ? यह सोचना निरा पागलपन था। फिर भी, उस दिन जब आलम से उसकी मुलाक़ात हुई, उसने यह किस्सा छेड़ा। आख़िर मैं क्यों नहीं जा सकती ? वे भी तो गये हैं। पड़ाव पड़ाव चली जाऊँगी। लोग मक्का-मदीना जाकर हज कर आंते हैं। मैं तो.......।

वीरां बोलती बोलती रुक गई।

"जनाब कमाल का हज करने की सोच रही हैं ?" आलम ने हँसते हुए कहा, "शायद आप यह भूल गई हैं कि तमाशा शुरू हो चुका है। यह वह दिन हैं जब रमते जोगी और फ़कीर तक कोई ठिकाना ढूँढ कर बैठ जाते हैं। महावीर और महात्मा बुद्ध ने अपने सन्यासियों को इन दिनों में एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की मनाही की थी।"

"मैं कोई सन्यासी नहीं।"

"पर रास्ते में जो दरिया चढ़े हुए होंगे, उनका गुरु महाराज की भगतिन क्या करेगी ?" आलम ने वीरां को याद कराया।

"इसका कोई न कोई वसीला गुरु महाराज ख़ुद बनायेंगे।"

"पर गुरु महाराज ख़ुद भी तो इन महीनों में पटना में रुक रहे हैं। शायद जनाब ख़त को ध्यान से नहीं पढ़ा।"

वीरांवाली ने सुना तो छटपटा कर रह गई, जैसे कोई लोहे के पिंजरे में क़ैद हो। उसका जी चाहता पिंजरे की सीख़ों से सर मार मार कर अपने आपको लहू-लुहान कर दे।

कमाल से उसे बिछड़े छे महीनों से ज़्यादा हो गये थे। पता नहीं और कब तक उसका इन्तज़ार करना होगा। इस बारे में सोच कर वीरां का दिल

डूबने लगता। चारों तरफ़ अंधेरा फैल रहा दिखाई देता। ख़ास तौर पर उसे यह सोच कर दुख होता कि कमाल उसे बता कर नहीं गया।

फिर वह अपने आपको समझाती, आख़िर वह उसका क्या लगता था। इसने उसके साथ फेरे नहीं लिए थे, न उसने इसके साथ निकाह किया था। आख़िर उनका रिश्ता क्या था ? क्यों वह उसके ऊपर हक़ जमाये हुए थी ? मोहब्बत का रिश्ता ? वह गुरु महाराज को उससे ज़्यादा मोहब्बत करता था। उनके पास चला गया था। उनके साथ, उनकी सेवा करके उसे ज़्यादा सुख मिलता था, ज़्यादा शान्ति मिलती थी। वह उसे छोड़ गया था। आख़िर वह उसे दे भी क्या सकती थी ? बच्चों की ज़िम्मेदारी ! घर के झंझट ! शैली की जायदाद, उसके व्यापार के झंझट ! कमाल इन सब से बंध कर क्यों रहता ? कल उसकी मां नहीं सारे बंधन तोड़ कर चली गई थी ? जाने लगी तो अपने बेटे को भी छोड़ गई !

आदमी को वह साथ ढूँढना चाहिए जो उसके साथ निभे।

वह कौन सा रिश्ता था ?

वीरां आगे-पीछे, चारों तरफ़ नज़र दौड़ाने लगी। इस तरह का साथ उसे ढूंढना पड़ेगा। अगर कहीं नहीं था तो इस तरह का रिश्ता उसे गांठना पड़ेगा। औरत ज़ात, वह अकेली नहीं रह सकती थी।

वीरां इस प्रवाह में बह रही थी कि बाहर आंगन का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया। दरवाज़े के खटखटाने के ढंग से उसे पता चल गया कि वह आलम था।

और वीरां ग़लत नहीं थी।

आलम जब भी आता, उसके लिए और उसके बच्चों के लिए कुछ न कुछ ज़रूर लाता। कभी ख़ाली हाथ न आता।

आज वह खाली हाथ था। ख़ाली हाथ ही नहीं था, परेशान भी लग रहा था।

"क्या बात है ? आज दुश्मनों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं ?" वीरां ने पूछा।

आलम ने टालने की कोशिश की पर वह जानता था, वीरां टलने वाली आसामी नहीं थी। आख़िर उसने अपने मन की गठरी खोली।

इतने दिनों से गुरु की नगरी में आकर बैठा देखकर लोग सोचने लगे थे कि वह मुग़ल दरबार का जासूस था।

"तो क्या हुआ ?" वीरां बोली। "यह बात तो मैं भी सोचती हूँ।" फिर उसने हँस कर यह बात टाल दी। हँसते हुए वीरां ने आलम के सामने रखी डिब्बी में एक पान निकाल कर ख़ुद खाया और एक आलम को पेश किया और फिर वह कमाल की बुराइयाँ करने लगी। अजीब सितम था कि आज वीरां कमाल को बुरा भला कह रही थी और आलम कमाल की तारीफ़ें करता न थकता था, न हारता था।

"इन्सान को अपनी ज़िन्दगी का निशाना तलाश करना चाहिए", आलम कह रहा था। "और फिर बाक़ी ज़िन्दगी उस निशाने को पाने की कोशिश में लगा देनी चाहिए।"

"कमाल ने अपनी ज़िन्दगी गुरु महाराज को सौंप दी है।" कुछ देर बाद आलम फिर बोला, "गुरु महाराज की संगत में वह ख़ुश है।"

"और मैं ?" वीरां ने पूछा।

"आपके दो बच्चे हैं। मां का पहला फ़र्ज़ अपने बच्चों की पालन पोषण होता है।"

जैसे वीरां की आँखें खुल गई हों, "मां का पहला फ़र्ज़ अपने बच्चों की परवरिश होता है", आलम के यह बोल बार बार उसके कानों में गूंजने लगे।

अगली सुबह वह अपने बेटे को पाठशाला में दाख़िल करवाने ले गई। वह कमाल की प्रतीक्षा नहीं करेगी। बेटी कुछ दिन और रुक सकती थी। वह अभी छोटी थी।

बच्चे का दाख़िला करते समय उस्ताद ने उसके पिता का नाम पूछा।

"किसका नाम दे ?" वीरां छड़ भर के लिए ख़ामोश हो गई। उस्ताद ने क़लम को दवात में डुबोकर फिर पूछा।

'आलम ख़ान' वीरांवाली ने एक झटके में जवाब दिया और पसीने से तर हो गई।

बेटे को पाठशाला में छोड़कर घर लौटती वीरां का पसीना उसकी एड़ियों तक चू रहा था। उसका चेहरा लाल सुर्ख़ हो गया था। चारों तरफ़ जैसे चकाचौंध छा गई हो। वह पैर कहीं रखती, पर उसका पैर कहीं और पड़ता।

"यह उसने क्या कर दिया ?" अकेली अपने घर के आंगन में बैठी वीरां सोच रही थी और फिर वह अपने आप को समझाने लगी—इसमें ग़लती भी क्या है ? सुमन नहीं रहा, जिसके साथ उसने फेरे लिए थे, पर प्यार किसी

और को किया था। कमाल उसे छोड़ गया था, जिसे उसने प्यार किया था। पर उसके साथ उसने फेरे नहीं लिए थे। उसे अब अपना साथ बनाना था, अपना रास्ता निकालना था। आलम उसका दीवाना था। अमृतसर में आकर बैठा हुआ था। किस लिए ? इतनी बड़ी नौकरी, इतने बड़े ओहदे को लात मार कर आया था। किस लिए ? अपनी बीवी को तलाक़ दे चुका था। किस लिए ? सुबह-शाम उसकी हाज़िरी भरता था, उसके बच्चों की ख़ातिरें करते हुए वह थकता था हारता नहीं था। 'किस लिए ?'

उस शाम यह जानकर कि धरम को पढ़ने के लिए पाठशाला में डाला गया था, आलम बच्चों को लेकर बाज़ार चल पड़ा। वीरांवाली उनके साथ नहीं गई। वापसी पर आलम ने बेटे को बाल-बोध, तख़्ती, स्याही और गाछनी मिट्टी, स्लेट-स्लेटी और ढेर सी कापियाँ ख़रीद दी थीं। शाम को आलम ने उनके ही घर खाना खाया। देर रात तक वीरां और आलम बैठे बातें करते रहे। जब भी वह फुरसत आलम के साथ बातें करने बैठती, वीरां शाहजहाँ के साथ औरंगज़ेब के सलूक के बारे में पूछने लगती।

"क्या यह सच है कि यह सुनकर कि शाहजहाँ आगरे के क़िले के झरोखे में से मुमताज़ महल के मक़बरे को देखा करता है, औरंगज़ेब ने झरोखे को ईटों से चिनवाकर बंद कर दिया है ?"

"सुना मैंने भी है", आलम कहने लगा, "मैंने आँखों से नहीं देखा। पर मैं इस बात की तसदीक़ कर सकता हूँ कि यह जानकर कि शाहजहाँ दारा और शुजा को ख़त लिखता था, औरंगज़ेब ने अपने क़ैदी बाप का किसी को ख़त लिखना बंद करवा दिया है। उसे काग़ज़, क़लम और स्याही से वंचित कर दिया है।"

"जहाँआरा के बारे में हर तरह की बातें सुनने में आई हैं", वीरांवाली एक नाज़ुक मामले की ओर इशारा कर रही थी।

"जितने मुँह उतनी बातें", आलम बोला, "पर इससे इन्कार नहीं कि मलिका मुमताज़ महल की मौत के बाद जहाँआरा अपने वालिद शाहजहाँ की हमराज़ रही है। उसी ने बीमारी के दिनों में उसी ने शहंशाह की तीमारदारी की थी। अब आगरे के क़िले में उसके साथ क़ैद होकर उसकी देखभाल कर रही है।"

मुग़ल दरबार को चाहे वह छोड़ आया था, एक ज़िम्मेदार अहलकार आलम खान इस तरह की किसी फ़ज़ूल की निंदा-चुगली में पड़ने से हमेशा

कतराता था।

इधर वीरांवाली थी, जिसे अफ़वाहों में मज़ा आता था। रात को देर तक वे इधर-उधर की बातें करते रहे। फिर आलम अपने ठिकाने पर चला गया। उस रात वीरां को बहुत गहरी नींद आई। पलंग पर लेटते ही वह गहरी नींद में सो गई। अगली सुबह जब उसकी आँख खुली तो धूप निकल आई थी।

जल्दी जल्दी नहा-धोकर वह दरबार साहब के लिए चल पड़ी। आज उसे देर हो गई थी। उसने सोचा आलम कभी का साध-संगत में बैठा कीर्तन का आनन्द उठा रहा होगा।

दरबार साहब में कीर्तन के लिए बैठी वीरां कई बार इधर-उधर देख चुकी थी। आलम कहीं भी नज़र नहीं आ रहा था।

कीर्तन का भोग पड़ा। अपने घर लौटते हुए उसने आलम के ठिकाने से उसकी ख़बर लेने की कोशिश की। यह सुन कर वीरां के पैरों तले से ज़मीन निकल गई कि आलम यात्रियों के किसी जत्थे के साथ तड़के ही तीर्थ यात्रा पर निकल गया था। पता नहीं कब लौटेगा, किसी को कुछ बता कर नहीं गया था।

(10)

दरबार साहब से लौट कर वीरांवाली के गाल लाल हो रहे थे, जैसे किसी ने दायें-बायें उसे थप्पड़ मारे हों। कमरे में घुसते ही धड़ाम से अपने पलंग पर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद उसे लगा जैसे उसका शरीर तप रहा हो। उसका बुख़ार बढ़ गया। फिर वह बुख़ार जैसे सिर पर चढ़ गया। उसका पुराना पागलपन उठ खड़ा हुआ था। उसने वाही-तवाही बकना शुरू कर दिया।

शोर मचा, अड़ोसी-पड़ोसी, उसके छोटे छोटे बच्चे चीख़ रहे थे। हकीमों और वैद्यों को बुलाया गया। वही पुराना मर्ज़ था।

"यह औरत ऐसे है, जैसे कटी हुई पतंग हो", हकीम साहब सोच रहे थे।

"जैसे टूटा हुआ तारा हो; बुझने से पहले चकाचौंध हो रहा हो", वैद्य जी का ख़्याल था।

नितान्त अकेली, न कोई साथी, न मददगार, वीरां अड़ोसियों-पड़ोसियों की ज़िम्मेदारी थी, खास तौर पर ताई दमोदरी की, खुद विधवा औरत, वह वीरांवाली का दुख पहचानती थी। दिन रात मां की तरह वह वीरां की देखभाल करती रही।

फिर आलम ख़ान लौट आया। कहने लगा, "मैं सैफाबाद गया था। तीर्थ यात्रा पर नहीं। तीर्थ यात्रा करनी होगी, तो तुझ जैसी किसी परिचित गुरसिक्ख को साथ लेकर चलूँगा।"

आलम ख़ान आया तो वीरां भली चंगी हो गई।

आलम ख़ान सिक्ख परम्परा और इस्लाम उसूलों का अध्ययन कर रहा था। उसे यह देख कर, सुनकर हैरानी होती कि औरंगज़ेब जिस सिक्ख भाईचारे के पीछे पड़ा था, उसके संस्थापक गुरु नानक ने ईश्वर को अनेक उन नामों से याद किया था, जिन से इस्लाम में भगवान को पुकारा जाता था। जैसे रब्ब, ख़ालक, परवरदिगार, रहीम, करीम, कबीर, मौला, रहमान। ऐसे ही गुरबानी में इन शब्दों और मुहावरों का प्रयोग आलम के ख़्याल में बेमतलब नहीं था। रसूल, शहीद, हाज़रा, हज़ूर, पैग़म्बर, काज़ी, दरवेश, अज़राईल, तहरीक, सिदक, पीर, मुरीद, मुसाइख, शेख़, फ़ानी, फरिश्ता।

इसी तरह गुरु बाबा नानक ने कई मुसलमान बुज़ुर्गों से मुलाक़ात की थी और उन्हें अपना मुरीद बनाया था। इनमें से कुछ थे : राय बुलार, शाह शरफ़, वली कंधारी, पीर रम्ज़ा, गौस, मियां मिट्ठा, पीर बुड्डन शाह, पीर जलाल, फ़रीद, अबारों ख़ान, अब्दुल रहमान।

औरंगज़ेब की अपनी सल्तनत में गुरु तेग़ बहादर जी की नवाब सैफ़ अली ख़ान से दोस्ती का ज़िक्र जब उसने सुना तो उसका मन किया कि वह ख़ुद जाकर इसकी तस्दीक करे। दरअसल आलमख़ान के अपने मन में गुरु महाराज के लिए जो श्रद्धा उमड़ रही थी, वह उसकी अपने शब्दों वजह तलाश करना चाहता था।

सैफ़ाबाद पहुँच कर उसकी आँखें हैरानी से खुली की खुली रह गईं।

नवाब सैफ़ अली ख़ान शहंशाह शाहजहाँ का हमज़ुल्फ था। उनकी बीवियां सगी बहनें थीं। शाहजहाँ की हकूमत में वह काश्मीर का सूबेदार हुआ करता था। औरंगज़ेब ने उसे काश्मीर से हटाकर बारह गांव जागीर के रूप में दिए थे। बेशक औरंगज़ेब ने अपनी तरफ़ से बंजर इलाक़ा देकर नवाब सैफ़ अली ख़ान से पीछा छुड़ाया था पर नवाब की नेकनीयती और ख़लूस के सदके, उसकी सूखे की मारी जागीर लहलहाती खेती में बदल गई थी।

जब नवाब सैफ़ अली ख़ान ने उसे गुरु तेग़ बहादर के साथ अपनी मुलाक़ात का वृत्तान्त सुनाया तो उसे एक बेजोड़ अक़ीदत का अहसास हुआ : "गुरु महाराज मालवे के दौरे पर थे। मैंने सुना तो अल्ला के आगे हाथ जोड़े

कि वे इधर से होकर जायें। और मेरी दुआ क़बूल हो गई। गुरु महाराज के साथ माता नानकी जी थीं। माता गुजरी थीं। मामा किरपाल चंद भी थे। गुर-सिक्खों में मतीदास जी, भाई गुरुबख़्श, भाई दयाला, भाई साहिब चंद और भाई साधूमुखी थे। सेवादार भी थे। जैसे भाई संगतियां, भाई सूखा चंद और नत्थू रबाबी। ये लोग आगे जाकर तम्बू और क़नातें लगा कर प्रतीक्षा करते थे। गुरु महाराज घोड़े की सवारी करते हैं। माता नानकी जी रथ में और माता गुजरी जी पालकी में सफ़र करना पसन्द करती हैं।"

"हमारे यहाँ आने से पहलपुर रुके थे। मेरे आदमी मुझे उनके सफ़र की साथ ही साथ इत्तला दे रहे थे। जब वे हमारे यहाँ आये, उन्होंने अपना ठिकाना हमारे बाग़ में करने का फ़ैसला किया; पर हमें यह कैसे मंज़ूर होता ? मैं सुबह से खड़ा उनकी राह देख रहा था। इससे पेश्तर कि वे अपने घोड़े से उतरते, मैंने लगाम पकड़ी और उन्हें अपने महलों में ले आया। साथ ही में माता नानकी जी का रथ और माता गुजरी जी की पालकी भी। हमारा तो जनम सफल हो गया था। मेरी बेगम ने माता जी को माथा टेका। हमने ढेरों सौग़ातें इकट्ठी कर रखी थीं, जिन्हें गुरु महाराज को पेश किया गया।"

"महलों में प्रवेश करते ही गुरु महाराज यह देखकर बहुत ख़ुश हुए कि महल के पास मैंने मस्जिद भी बनवा रखी थी। मैंने उन्हें बताया कि मस्जिद महल से भी कहीं ज़्यादा सुन्दर है।"

फिर हमारे महल को किलानुमा देखकर पूछने लगे, "यह क़िला है या महल ?" मैंने उन्हें अपनी आँखों देखी एक घटना सुनाई। इस स्थान पर जहाँ यह क़िला बना है एक दिन मैंने देखा एक भेड़ ने बच्चे दिये थे। थोड़ी देर बाद उस पर दो बाघों ने हमला कर दिया। अकेली भेड़ ने दोनों बाघों को सीगों से मार कर भगा दिया। यह कौतुक देखकर मैंने फ़ैसला किया कि यह स्थान अजेय है। यहाँ क़िला बनाना चाहिए, जिसे कोई वैरी गिरा नहीं सके। गुरु महाराज यह सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे, तब तो इसका नाम 'फतेहगढ़' होना चाहिए।

हमारे पास वे पूरे नौ दिन रुके। चलने से पहले हमें उपदेश दिया—रब्ब की बंदगी करो, ज़रूरतमन्दों की मदद करो। नम्रता और विनयशीलता उत्तम गुण हैं। और फिर कहा—

घालि खाइ किछ हथउ देह॥
नानक राह पछाणें से॥

क्योंकि गुरु महाराज का दौरा लंम्बा होने वाला था, हमने उन्हें उनकी निजी सवारी के लिए एक घोड़ा, माता जी की सवारी के लिए एक रथ, उनके लंगर के लिए ढेर से बर्तन, तम्बू और छोलदारियाँ भेंट कीं, जिन्हें स्वीकार करके उन्होंने हमें सम्मानित किया। हमें इस बात पर मान है कि गुरु महाराज की मेहर हमारे घर पर अभी तक बनी हुई है। अक्सर वे अपने ख़तों में हमें याद करके नवाज़ते हैं। हाल ही में उन्होंने बतौर सौग़ात एक सुराही और कुछ प्याले किसी सुघड़ कुम्हार से बनवा कर हमें भेजे थे।

"फिर नवाब सैफ़ अली ख़ान मुझे बेहद अक़ीदत से मिट्टी की वह सुराही और प्याले दिखाने लगे। बाग़ में जहाँ गुरु महाराज का जत्था ठहरा था वहाँ नवाब ने एक धर्मशाला बनवा दी है। आये-गये के लिए वहाँ ठहरने का हर तरह का इन्तज़ाम है।"

आलम ख़ान ने कहा, "नवाब सैफ अली खान के बाग़ जैसा बाग़ उसने कहीं भी नहीं देखा था। सचमुच जन्नत का नज़ारा था। कहीं पानी के फ़व्वारे, कहीं खिले हुए फूल, कहीं फलों से लदे हुए पेड़। रंग-बिरंगे पंछी सुबह शाम बाग़ में एक अजीब समां बाँध देते थे; कहीं पानी में डुबकियाँ लगाते, कहीं गाते, कहीं उड़ानें भरते।"

"मुझे तो गुरु तेग़ बहादुर जी की दो बातें सबसे ज़्यादा प्यारी लगती हैं।" आलम ख़ान वीरां को बताने लगा।

"भला कौन सी ?" वीरां ने उत्सुक होकर पूछा।

एक तो उनका उपदेश—

घालि खाइ किछ हथउ देह ॥
नानक राह पछाणें से ॥

"मेरे ख़्याल में किसी और बुज़ुर्ग ने अभी तक ऐसा पैग़ाम नहीं दिया। दुनिया के सारे झगड़े ख़तम अगर लोग गुरु महाराज का कहना मान लें।"

"मेहनत, मशक्कत करके कमाएँ और फिर ज़रूरतमन्दों के साथ उसे बाँट के खायें। न कोई ऊँच, न कोई नीच, न कोई अंजनबी, न कोई पराया।"

"और दूसरी बात ?"

"दूसरी बात जो मुझे अच्छी लगती है, वह उनका करामात करने से इन्कार करना है। दुनियाभर के पैग़म्बर और औलिया लोगों को अपने पीछे लगाने के लिए अनहोनियां करते रहे हैं, लोगों को करामतें करके दिखाते रहे हैं। गुरु घर में इसकी पूरे तौर से मनाही है। गुरु बाबा नानक इसके ख़िलाफ़

आवाज़ उठाई। बाकी गुरु साहिबान इस उसूल पर दृढ़ रहे हैं। गुरु तेग़ बहादर तो कुछ ज़्यादा ही इसे अपनाए हुए हैं।"

"सुना है, आपका औरंगज़ेब तो उन्हें करामात करके दिखाने की ज़िद कर रहा था।"

"गुरु महाराज नहीं माने। शाही दरबार में मैं खुद हाज़िर था जब आलमगीर ने यह फरमाइश की थी। गुरु महाराज टस से मस नहीं हुए। शहंशाह अपना-सा मुंह लेकर बैठ गया।"

"पर सैफ़ाबाद के बाद के अपने पड़ाव निहल गांव में करमो नाम की एक माई को चेचक के रोग से उन्होंने छुटकारा दिलाया। सारे शहर में चेचक की बीमारी फैली हुई थी। यह सुनकर लोग गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आये। उनके चरणों की धूल लेकर सर का स्नान करने से सब का रोग जाता रहा। सुना है वहाँ अब दुख-निवारण नाम का गुरुद्वारा है। यह करामात नहीं तो फिर क्या है ?"

"वैसे तो हर चीज़ करामात है। सुना है बाबा नानक ने कहा था कि इन्सान अपने आप में करामात है। हर रोग का इलाज एक तरह से करामात होती है। करामात दिखाना परवरदिगार के नियम में दख़ल देना है। बीमार का रोग दूर करना बीमार की सेवा है। जैसे ताई दामोदरी और दूसरे पड़ोसी आपके लिए करते हैं।"

"और जैसे अब आप कर रहे हैं।" वीरां ने आलम की ओर एक महबूबा के अन्दाज़ से देखते हुए कहा। फिर कमरे में ख़ामोशी छा गई। कितनी देर तक यह ख़ामोशी छाई रही।

(11)

कमाल की कोई ख़बर नहीं थी और वीरां ने भी जैसे उसे अपनी ज़िन्दगी में से ख़ारिज कर दिया हो। उसका ज़िक्र करना भी छोड़ दिया। आजकल उसके लिए आलम के सिवाय कोई भी नहीं था।

आलम वीरांवाली की ओर देखकर हैरान रहता। यह औरत दिल्ली में जब उसकी ज़िन्दगी में आई थी, कुछ दिनों में कैसे उसने आलम को अपना दीवाना बना लिया था। मुहब्बत चढ़ती हुई वह उसे कहीं का कहीं ले गई थी, जैसे कोई आकाश में उड़ रहा हो। आठों पहर एक नशे का अहसास रहता और आलम ने इसकी ख़ातिर अपनी शादी-शुदा ज़िन्दगी को मसल कर रख दिया था। क्या बीवी, क्या बच्चे, क्या मां-बाप, क्या बहन-भाई, सबके

लिए वह पराया हो गया था। और जब कमाल से इसकी मुलाक़ात हुई तो उसने आलम को अपनी ज़िन्दगी में से इस तरह निकाल कर फेंक दिया जैसे मक्खन के पेड़े में से बाल निकाला जाता है। जैसे कोई जान-पहचान ही न हो। वीरां ने उसे मुंह लगाना भी छोड़ दिया था और फिर एक दिन बिना उसे बताये दिल्ली से खिसक आई थी।

यह तो उसकी ख़ुशकिस्मती थी कि उसकी गुरु तेग़ बहादर से मुलाक़ात हो गई नहीं तो आलम की ज़िन्दगी तो जैसे एक झुलसी हुई लकड़ी हो। कई बार उसने सोचा कि ख़ुदकशी कर ले और ख़त्म हो जाय। एक बार जमुना के किनारे जहाँ बैठ कर वीरां के साथ अक्सर शामें बिताया करता था, उसे टहलते हुए चक्कर आ गया और वह सचमुच ठाठें मारते हुए दरिया में औंधा जा गिरा था। यह तो उसकी खुशकिस्मती थी कि उस वक्त जमुना के किनारे और भी लोग थे, जिन्होंने पानी में कूद कर उसे डूबने से बचा लिया था।

गुरु महाराज से मिला जैसे किसी ने उसे गन्दगी के गढ़े में कुंडी लगा कर निकाल लिया हो। आलम और का और हो गया था। उसकी चारों दिशाएँ रौशन हो गई थीं। उसे सीधे मार्ग पर डाल दिया गया था-ईश्वर भक्ति और ज़रूरतमन्दों की सेवा के मार्ग पर।

गुरु महाराज के तिलिस्माती स्पर्श ने उसे ज़िन्दगी में पहली बार जैसे सत् की पहचान कराई हो। गुरु तेग़ बहादर जी के मुखारविन्द से सुना यह शब्द उसकी ज़िन्दगी का आधार बन गया था :

हरि बिन तेरो को न सहाई,
काकी मात पिता सुत वनिता
को काहू को भाई। रहाऊ।
धन धरनी अरु सम्पति सगरी,
जो मान्यो अपनाई।
तन छूटै कछु संगि न चालै,
कहा ताहि लिपटाई। 1।
दीन दयाल सदा दुख-भंजन,
तासिउ, रच न बढाई,
नानक कहत जगत सभ मिथ्या
ज्यों सुपना रैनाई । 2। [राग सारंग, महला ८]

उसकी अल्ला से लौ लग गई। सब कुछ समेट कर वह सिक्ख संगत के मक्के अमृतसर के लिए चल दिया। यहाँ उसकी मुलाक़ात फिर वीरांवाली से हुई। यह औरत जिसे पाने के लिए कभी वह कोई भी क़ीमत देने के लिए तैयार था, गुरु महाराज के स्पर्श से उसकी राह में खड़ी हुई थी।

गुरु महाराज की संगत में आलम ने उनकी ढेर सी वाणी की नक़ल करके अपने लिए रख ली थी। अक्सर उसका पाठ करता। दिन में कई कई बार।

उस दिन वीरां वाली के पास बैठा आलम गुरु महाराज की वाणी का उसके साथ ज़िक्र कर रहा था :

"गुरु तेग़ बहादर जी की वाणी हमारी तरफ़ की बोली में है, जिसे ब्रज भाषा कहते हैं। यह शुद्ध पंजाबी में नहीं है। कहीं कहीं पंजाब की छाया ज़रूर पड़ती है, पर वह छाया ही है, इससे अधिक कुछ नहीं। इस लिए हम लोगों का उन पर हक़ भी ज़्यादा है। मेरे ख़्याल में पहले गुरु साहिबान ने पंजाब को ख़ूब सींचा है। गुरु तेग़ बहादर बाबा नानक जी की तरह पंजाब से बाहर पूरब की ओर ज़्यादा ध्यान दे रहे हैं। शायद इसलिए कि हमारे लोगों की ज़रूरत ज्यादा है। गुरुआई पाने से तुरन्त पहले वे पंजाब से बाहर थे; गुरु हरिकिशन जी के ज्योती जोत समाने से कुछ दिन पहले इनकी मुलाक़ात गुरु महाराज से हुई थी। यह उन दिनों की बात है, जब जनाब भी दिल्ली में थीं। पर उन दिनों जनाब को इन बातों के लिए फ़ुरसत नहीं मिलती होगी। फ़ुरसत तो मुझे भी नहीं थी पर मेरी खुशकिस्मती कि आलमगीर ने मुझे गुरु महाराज को गिरफ़्तार करने के लिए तैनात किया और मैं उनके दर्शन कर सका। गुरु महाराज के एक स्पर्श से मैं उनका हो गया।"

आलम की गुरु महाराज के सम्पर्क में आने की कहानी वह पहले भी कई बार सुना चुका था। वीरां उसकी तरफ़ इस तरह देख रही थी, जैसे कह रही हो, बाबा कोई और बात भी कर ! तेरा यह किस्सा मैं पहले भी सुन चुकी हूं।

पर आलम था एक रौ में गुरु महाराज की वाणी के बारे में अपने अनुभव वीरां के साथ सांझी करने की कोशिश में था। गुरु महाराज की जितनी वाणी मेरे हाथ आई है, इस बात की तसदीक़ करती है कि इस कायनात को बनाने वाली कोई ताकत है। उसे चाहे अल्ला कहलो, चाहे कोई ईश्वर कहले, चाहे वाहेगुरु। हमें यह जन्म मिला है ताकि इन्सान बार बार मरने और बार बार

पैदा होने के इस चक्र से मुक्ति पा सके। उस परवरदिगार उस सर्वशक्तिमान के साथ एक हो जाये। बूंद फिर समुद्र के साथ मिल जाये। यह मुमकिन हो सकता है, सिर्फ़ प्रेम-भक्ति से, उसका स्मरण करने से और उसकी कायनात को प्यार करने से। उसको स्मरण करने का ढंग उसका नाम जपना है। उसके डर में रहना है। गुरु महाराज फ़र्माते हैं—

....

कल मैं एक नाम कृपानिधि
जाहि जपै गति पावै।
और धरम ताके समि नाहिनि,

....

हरि के नाम बिना दुख पावै
भगत बिना सहसा नहिं चूके
गुर यह भेद बतावै।

....

हरि को नाम सदा सुखदायी
जाकौ सिमरि अजामल उधरियो
गनका हू गति पाई

....

चेतना है तौ चेत लै
निसिदिनि मैं प्रानी।
छिन छिन औध विहात है
फूटै घट ज्यो पानी

....

नानक मुकति ताहि तुम मानहु
जिह घट नाम बसवै।

नाम जपा जाता है जब प्राणी बदी से अपनी चादर मैली न होने दे। काम-क्रोध, लोभ-मोह अहंकार से छुटकारा पा सके।

साधो मन का मान त्यागौ।
काम, क्रोध, संगति दुर्जन की
ताते अहिनिसि भागौ ॥ रहाऊ ॥

....

तिह जोगी कौ जुगति न जानऊ
लोग मोह माया ममता, फुनि
जिन घटि माहि पछानऊ।

....

बिरथा कहऊ कौन सिऊ मनकी,
लोग ग्रसिऊ बसहू दिस धावत
आसा लागिऊ धन की

....

भूतिऊ मनु माया उरझाऊ
जो जो करम कीओ लालचलगि
तिह तिह आपु बंधायो।

....

और इन्सान में जो अवगुण हैं, उन से ईश्वर की कृपा ही बचा सकती है। हाँ आदमी को अपनी कोशिश कभी नहीं छोड़नी चाहिए। यह तभी मुमकिन होता है जब आदमी का मुंह अच्छाई की तरफ़ हो और पीठ बुराई की तरफ़। ईश्वर की शरण ही प्राणी की सहायक हो सकती है :

कहा नर अपनो जनम गवावै ॥
माया मद विखिआ रसि रचिओ
राम सरनि नहिं आवै

....

जन नानक मैं नाही कऊ गुन,
राख लेह सरनाई।

....

जन नानक हरि भये द्याला
तौ सभि विधि बनिआई।

....

माई मैं धन पायो हरिनामु।
हरि बिन तेरो को न सहाई।

और जो रब्ब इन्सान की मदद कर सकता है उसे तलाश करने के लिए जंगलों में जाने की ज़रूरत नहीं, ना ही किसी और स्थान पर भटकने की ज़रूरत है। वह ईश्वर हर अभिलाषी के भीतर बसता है। जरूरत सिर्फ़ इतनी

है कि कोई अपने भीतर झांक कर देखे।

काहे रे बन खोजन जाई ॥
सरब निवासी, सदा अलेपा
तो ही संगि समाई ॥ रहाऊ ॥
पहप मधि ज्यू बास बसतु है
मुकर माहि जैसे छाई ॥
तैसे ही हरि बसे निरंतरि
घट ही खोजहु भाई ॥

पर यह मन बड़ा चंचल है, किसी के काबू में नहीं आता। भटकता रहता है।

साधो इहु मनु गहियो न जाई ॥
चंचल त्रिसना संग बसतु है
था पै थिर न रहाई ॥ रहाऊ ॥

....

तिह जोगी कौ जुगति न जानऊ ॥
लोभ मोह माया ममता फुनि ॥
इह घटि माहि पछानऊ ॥

....

माई मनु मेरो बसि नाही ॥

गुरु अर्जन देव ने गुरसिक्ख के किरदार का स्तर इतना ऊँचा रखा है कि वे तो अनजाने में, भ्रम में हुए पापों से भी बचकर रहने की सिफारिश करते हैं :

नरु अचेत पाप ते डर रे।

आलम इस तरह अपने आप एक नशे में बोलता जा रहा था कि उसे शाम के बढ़ते हुए अंधेरे में ऐसा लगा जैसे वीरां की ओर से हुंकारा नहीं भरा जा रहा था। उसने ध्यान से देखा, वीरां तो बैठी बैठी गोल तकिए के सिरहाने पर सो गई थी। पता नहीं कब से सो रही थी।

(12)

वीरां वाली ज़िन्दगी के उस पड़ाव पर पहुँची हुई थी जब किसी हसीन औरत को हाथ पैर पड़ने लगते हैं। जैसे कोई चीज़ पकड़ कर खिसक रही हो। दोपहर ढलने की अलामतें और शाम सामने खड़ी दिखाई देने लगे। जब

और और बातें कानों में पड़ती हैं। नग़मे धीमे होने लगते हैं। जब सपने नींद उचाट करने लगते हैं। जब आहत पंछी मुंडेर पर आ बैठते हैं।

आजकल उसका ज़्यादा वक्त अपनी देखभाल में गुज़रता था। कभी मालिश करवा रही है, कभी उबटन लगवा कर गुलाब के अर्क से नहा रही है। कभी बालों की संभाल कर रोज़ नई फूल चिड़ियां निकाल रही है। हर दूसरे दिन वह दर्ज़ियों के यहाँ जाती रहती। शाम तक बैठी बैठी बेले के गजरे और मोतिया की बेड़ियाँ पिरोती रहती। मिस्सियों और अखरोट की दातुनों तलाश करती रहती।

आलम पिछले कुछ दिनों से करतारपुर गया हुआ था। कहता था मैं पोथी के दर्शन करने जा रहा हूँ। पोथी हरमन्दर साहब में भी थी, बेशक भाई गुरदास जी के अपने हाथ से तैयार किये पवित्र ग्रंथ की नक़ल थी, बेशक मिहरबान और हरि जी ने उसमें अपनी ओर से भी वाणी शामिल कर ली थी, पर शुरु की वाणी भी तो उसमें थी। आलम का ख़ास तौर पर वहाँ जाना वीरां वाली को अनावश्यक लगता था; पर उसने इसकी बात नहीं सुनी थी। उसको गये इतने दिन हो गये थे, अब उसको लौटना चाहिए था। बेटी भागां को पाठशाला में डालना था। वह वादा करके गया था कि वह लौट कर उसे ख़ुद ले जायेगा।

आले में रखी आरसी के सामने बैठ कर उस दिन वीरां वाली अपना नख-शिख संवार रही थी कि बाहर गली का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया। वीरांवाली ने सोचा आलम होगा। वह ख़ुशी से कुंडी खोलने गई, उसे सुबह से लग रहा था कि आलम को अब लौटना चाहिए था।

नहीं, यह तो कोई मुसाफ़िर था, कमाल का ख़त लेकर आया था। वीरां ने उसके हाथ से ख़त लेकर उसे औपचारिकवश अन्दर आने के लिए कहा, पर मुसाफ़िर जल्दी में था। 'फिर आऊँगा' कहकर चला गया। वीरां ने शुक्र मनाया। धीमे सुस्त क़दमों से कमरे में आकर वह फिर सजने लगी। आलम क्यों नहीं आया था ? आलम को आज आना चाहिए, उसका मन बार बार कहता।

इसी रौ में बहते हुए उसने कमाल का ख़त दूर रख दिया था। इधर-उधर लिखी होंगी, बहाने किए होंगे—वीरां ने अपने आप से कहा और अपनी व्यस्तता में वह ख़त के बारे में बिल्कुल ही भूल गई।

जैसे किसी का मन जख़्मी हो गया हो, वीरां ने सोचा जो इतनी देर से

नहीं आया था, वह आ भी जाये तो किस काम का ? जैसे किसी छत को घुन लग जाये, भीतर ही भीतर शहतीर खोखली होती होती जाये, कुछ इसी तरह कमाल के लिए उसकी तमन्ना फुसफुसी होती जा रही थी।

कुछ इस तरह की सोच में वह डूबी हुई थी कि आलम उसके आंगन में आ घुसा। वीरां को एक अकथनीय चाव चढ़ गया। वह चाहती थी, आलम आज आ जाये और वह आ गया था। वीरां आलम की ख़ातिरों में लग गई। आलम उसे करतारपुर की अपनी यात्रा के बारे में बताने लगा। कुछ देर बाद आलम जब धीरमल की बेहूदगियों का ज़िक्र कर रहा था, एक तरफ़ रखे कमाल के ख़त पर जा पड़ी। "यह किसका ख़त है ?" आलम ने पूछा।

"अरे यह तो कमाल का ख़त है", वीरां कहने लगी जैसे उसे शर्म आ रही हो। "शाम को कोई देकर गया है। मैं घर के झमेलों में इसे पढ़ना ही भूल गई।"

आलम हैरान वीरां के चेहरे की ओर ताक रहा था। उसने ख़त उठाकर वीरां को थमाया।

वीरां ख़त पढ़ने लगी।

सामने बैठा आलम हैरान हो रहा था। क्या यह वही औरत थी जो कभी कमाल के लिए कोई भी कुर्बानी कर सकती थी। किसी को छोड़ सकती थी और आज उसके इतने दूर से आये ख़त को खोलकर पढ़ना भी भूल गई थी।

वीरां ने ख़त पर एक उड़ती उड़ती नज़र डाल ली थी।

"क्या लिखता है ? कब लौट रहा है ?"

"लौटने का तो कोई ज़िक्र नहीं", वीरां ने ख़त आलम के हाथ में देते हुए कहा।

"गुरु महाराज पटने से ढाका जा रहे हैं। उसके बाद आगे आसाम जायेंगे। उनके साथ जा रहे जत्थे में कमाल भी शामिल हो गया है। इसका यह मतलब है कि और कई महीनों तक उसके लौटने का कोई इमकान नहीं।"

वीरां अपने आप से जैसे बातें कर रही हो।

"हाय ! कितना किस्मत वाला है, यह कम्बख़्त तेरा कमाल !" सर पकड़ कर आलम बोल उठा। और फिर वह ऊँची आवाज़ में ख़त पढ़ने लगा :

"हम चौमासे के चार महीने यहाँ पटने में टिके रहे हैं। जब हम इस शहर में पहुँचे हमारे तम्बू और छोलदारियाँ एक बगीचे में लगाये गये थे। वहाँ से

आलमगंज का भाई जगता गुरु महाराज को सेवा के लिए अपने साथ ले गया। भाई जगता के बारे में मशहूर है कि वह हर आये-गये की सेवा करके ख़ुश होता है। सारा दिन मुसाफिरों और ज़रूरतमन्दों की सेवा में अपने आप को लगाये रखता है। सुबह अमृतवेला में उठता है और लोगों के जागने से पहले नहा-धो कर, नित-नेम से फ़ुर्सत पाकर गुर सिक्खों की खिदमत में लग जाता है।

पर ऐसा लगता है कि भाई जगता ने यहाँ कई निन्दक भी पैदा कर लिए हैं। वे लोग गुरु महाराज से उसकी शिकायतें करते रहते हैं। कहते हैं, यह तो कभी नहाता नहीं। इसे तो कभी ईश्वर का नाम लेते हुए किसी ने नहीं सुना। सेवा तो बहाना है; इसने तो अपनी दुकानदारी चलाई हुई है। गुरु महाराज उन्हें बताते, वह स्नान भी करता है, भजन-पाठ भी करता है और अपनी हैसियत के मुताबिक सेवा भी करता है।

फिर भी गुरु महाराज निन्दकों की ज़बान बंद करने के लिए वैसाखीराम की हवेली में जा टिके। यहाँ शहर की संगत को रोज़ हाज़िर होने में आसानी थी। आलमगंज में भाई जगता का ठिकाना दूर कोने में था।

एक दिन कुछ योगी गुरु महाराज से गोष्ठी करने के लिए आये। नालन्दा और राजगीर के नज़दीक होने के कारण पटना में वेदों, शास्त्रों और उपनिषदों के ज्ञाता और बौद्ध मत के कई धर्मात्मा रहते हैं। योगियों की टोली का नेता गुरु महाराज से योग के बारे में वार्तालाप करना चाहता था। गुरु महाराज योग की उसकी व्याख्या सुनते रहे। जब उसने अपनी विद्वता का बखान समाप्त किया, गुरु महाराज ने यह शब्द उच्चारा :

तिह जोगी कौ जुगति न जानऊ ॥
लोभ मोह, माया, ममता फुनि ॥
जिह घहि माही पछानऊ ॥ रहाऊ ॥
पर निन्दा उस्तति नह जाकै
कंचन लौह समाने ॥
हरख सोग ते रहे अतीता
जोगी ताहि बखाने ॥

इतनी देर बोलने के बाद जोगी ने गुरु महाराज के मुखारविन्द से ये शब्द सुने तो उसे लगा कि जैसे शीशे की तरह उसकी मानसिक अवस्था का नक्शा उतार कर गुरु महाराज ने उसके सामने रख दिया हो। योगियों का

नेता गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ा। योग कमाने से पहले योग की युक्ति आनी चाहिए जो उस योगी को अभी सीखनी थी। वह तो लोभ, मोह, माया, ममता में ग्रसा हुआ था। निन्दा-चुगली का शिकार था। स्तुति से ख़ुश होता था, बुराई सुनकर उसे दुख लगता था। इस तरह का व्यक्ति भला योग कैसे कमा सकता है ? और फिर कुछ अरसे के बाद बंगाल से कुछ श्रद्धालु गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आये। ख़ास तौर पर इसलिए कि उन्हें अपने सूबे में चरण डालने के लिए राज़ी कर सकें। बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। फिर उनमें से एक ने पूछा हजूर मन चंचल है। काबू में नहीं आता। भक्ति करने बैठते हैं तो इधर-उधर भटकने लगता है। उसके अनेक साथियों ने भी हामी भरी। वे मन को काबू में रखने की कोई विधि पूछ रहे थे। गुरु महाराज ने उनकी समस्या सुलझाने के लिए एक शब्द का उच्चारण किया, उन्हीं के देश के गौणी राग में :

साधो इहु मनु राहियो न जाई ॥
चंचल तृस्ना संग बसतु है
या ते थिर न रहाई ॥ 1 ॥ रहाऊ ॥
कठन करोध घट ही के भीतरि
जिह सुधि सम विसराई ॥
रतन ज्ञान सभ को हरि लीना
तास्यो कछु न बसाई ॥
जोगी जतन करत सभी हारे
गुनी रहे गुन गाई
जन नानक हरि भये दयाला
तऊ सभ विधि बनि आई। 2। 4।

[गौड़ी, महला ८]

फिर उनमें से एक ने पूछा—"हजूर गुरबाणी पढ़ते तो हैं पर अर्थ हमारे पल्ले नहीं पड़ते। इसलिए न बानी सुनने में, न बानी गाने में मन लगता है।"

गुरु महाराज ने फ़रमाया, "उसी बर्तन में कुछ पड़ सकता है जो ख़ाली हो। जब मन विकारों से भरा हो, उसमें ईश्वर के नाम का वास हो तो कैसे?"

और गुरु महाराज ने इस शब्द का उच्चारण किया—

प्रानी कौ हरि जसु मनि नहिं आवै ॥
अहिनिस मगन रहै माया मै

कहु कैसे गुन गावै ॥ 1 ॥ रहाऊ ॥
पूत, मीत, माया ममता सिऊ
इहबिधि आयु बन्धावै ॥
मृग तृस्नासिऊ झूठो इह जग
देखि तासि उठि धावै ॥ 1 ॥
भुगति मुकति का कारनु स्वामी
मुड़ ताहि बिसरावै ॥
जन नानक कोटन मै कोऊ
भजनु राम को पावै ॥ 2 ॥ 3 ॥

[गौड़ी, महला ८]

यह सुनकर कि गुरु महाराज पटना छोड़कर जा रहे हैं, माता नानकी जी और माता गुजरी चिन्तातुर हो गईं। ख़ास तौर पर इसलिए कि कुछ दिनों माता गुजरी जी की झोली भरने वाली है। गुरु महाराज ने मामा किरपाल चंद, भाई दयाल दास और भाई संगतियां जी को पीछे छोड़ने का फ़ैसला किया है। इनके अलावा पटना के श्रद्धालु हर वक्त गुरुघर की सेवा में हाज़िर रहते हैं। इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—भाई सिंह, भाई मेहरचंद, भाई दरीया, भाई मुरलीधर।

यही नहीं गुरु महाराज अपनी ग़ैर हाज़िरी में परिवार की ज़रूरत का ध्यान रखते हुए, बबे पेड़ी बाई और उसकी बेटी दायी लाडो को खास तौर पर हिदायत देकर जा रहे हैं कि वे माता जी की सेवा में कोई कसर न छोड़ें।

"कल हम यहा से चले जायेंगे, इसलिए यह ख़त यहीं ख़त्म करता हूँ।"

"अभी यह शब्द आलम के होठों पर ही थे कि वीरांवाली ने उसके हाथ से कमाल का ख़त छीन लिया।"

"अभी तो कुछ पंक्तियां और भी हैं", आलम ने कहा।

"यही कि बच्चों को प्यार। उनका ख़्याल रखना। आपकी बड़ी याद आती है।" "मुझे इस तरह की फालतू बातों में कोई दिलचस्पी नहीं", वीरां बोली और आलम ने देखा क्रोध में उसकी आँखों से जैसे चिनगारियां फूट रही हों।

(13)

अगले दिन आलम वीरां की बेटी भागां को पाठशाला में दाख़िल कराने गया। वहाँ अध्यापक से यह जानकर कि वीरांवाली ने अपने बेटे धरम के

पिता का नाम आलम लिखवाया था, उसके पैरों तले से ज़मीन खिसक गई। भाई के पिता का नाम आलम था तो बहन के पिता का नाम भी आलम ही होना था। पाठशाला में तो वह ख़ामोश रहा, पर घर लौटते वक्त रास्ते में वह जैसे एक असमंजस में था। उसे अपना आप ग़लत ग़लत लग रहा था और फिर आलम सोचने लगा : बेशक उनका निकाह नहीं हुआ था, न ही फेरे हुए थे, लेकिन जिस तरह की ज़िन्दगी इतनी देर से वे दिल्ली में इकट्ठे बिता रहे थे, अगर वह मियां-बीवी वाली ज़िन्दगी नहीं थी तो और क्या थी ? यह तो एक हादसा था कि उनके प्रस्तावित निकाह से कुछ दिन पहले कमाल की वीरां वाली से मुलाक़ात हो गई। अगर ऐसा न होता तो वह उसकी बीबी और आलम उसके बच्चों का बाप होता। पर दिल्ली से लौटने पर जब गुरु की नगरी में आलम की उसके साथ मुलाक़ात हुई तो उसने वीरां का साथ कमाल की अमानत के तौर पर दिया था जो एक गुरसिख का फ़र्ज था, जिस सच्चाई के मार्ग पर गुरु महाराज ने उसे डाला था।

अब वह करे तो क्या करे ? आलम की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

कमाल बाक़ायदा ख़त लिख रहा था। गुरु महाराज की सेवा में था पर अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी को अनदेखा भी नहीं कर रहा था और फिर आलम को दिल्ली के दिनों की याद आती थी। एक बार उसकी हुई तो वीरां फिर किस तरह उस पर मेहरबान हो गई थी। हर शाम इनकी इकट्ठे बीतती थी। वह बहुत रात गये तक आलम के लिए जाम पर जाम बनाती रहती और वह उसकी हर अदा पर क़ुर्बान होता रहता। हज़ारों रुपये इसने उस पर लुटाये थे और वीरां ने किस किस तरह इसको प्यार नहीं किया था। उस जैसा प्यार किसी और ने ज़िन्दगी में इसे नहीं दिया था। इसके लिए नाचती, इसकी इन्तज़ार करती, उसके हाथ का जाम पीकर वह मदहोश हो जाता था।

और फिर जब कमाल से उसकी मुलाक़ात हुई, तो वीरां कैसे और की और हो गई थी, जैसे जान पहचान ही न हो। कैसे इसके सामने हाथ जोड़ती, कैसे रो-रो कर फरियादें करती थी। इसकी कोई दलील सुनने के लिए तैयार नहीं थी।

इस तरह के विचारों में बहता हुआ, आलम अपने ठिकाने पर पहुँच गया। वह वीरां के यहाँ नहीं गया। इसकी बजाय दरबार साहब के दर्शनों को चला गया। कितनी देर बैठा कीर्तन सुनता रहा। फिर रहिरास का पाठ।

फिर कीर्तन सोहिला। बहुत रात बीते वह अपने ठिकाने पर लौटा। क्या देखता है कि वहाँ वीरां वाली इसका इन्तज़ार कर रही थी।

हाये तौबा वह कैसे सज़ी थी ! एक नज़र डालते ही आलम को याद आया, वीरां ने वही फर्शी ढीला पाजामा, वही चिकन का कुरता, कंधों पर वही कश्मीरी जामावार लिया था जो दिल्ली में आलम की सालगिरह वाली शाम उसने पहना था और महफ़िल में सबकी नज़रें उसके चेहरे से हटती नहीं थीं। कुछ देर आलम के पास बैठकर वीरां उसे अपने घर ले गई। आलम इन्कार नहीं कर सकता।

"शराब पीनी तूने छोड़ दी है। मांस अब तू नहीं खाता", घर पहुँचकर वीरां कहने लगी, "समझ नहीं आती तेरी ख़ातिर कोई कैसे करे।" और वह उठकर साथ के कमरे की ओर चल पड़ी।

आलम ने कोई जवाब नहीं दिया। वह उसके जूड़े में जूही की कलियों की वेणी की ओर देख रहा था। वेणी की कलियाँ एकदम खिल गई थीं। सर को एक शोख़ झटका और जैसे उनमें निखार आ गया हो।

अगले क्षण वीरां अपना तानपूरा उठाकर ले आई। कपड़े के गिलाफ़ में लिपटा पड़ा था।

'वाह ! वाह !' आलम देखकर खिल उठा। "अब बात बनेगी। मैं सोचता था शायद तू अपना तानपूरा दिल्ली में ही छोड़ आई थी।"

वीरां तानपूरा लेकर सामने दीवान पर जा बैठी। तानपूरे को छेड़ने लगी।

"तू बेशक दिल्ली को भूल गया हो, पर मैं दिल्ली को नहीं भूली", वीरां ने एक महबूबा की अदा से अर्थपूर्ण लहजे में कहा, "दिल्ली को कोई नहीं भूल सकता।"

आलम जैसे अपने मन को टटोलने लगा।

"क्या सुनना है ?" वीरां ने पूछा।

मेरी फ़रमाइश पर गाना है तो जै जैवन्ती में गुरु महाराज का वह शब्द सुनाओ, "बीत जैहै, बीत जैहै।"

वीरां ने सुना तो उसकी पलकें कुछ देर के लिए मुंद गईं। उसका मस्तक झुक गया। एक कलाकार के उन्माद में बंद आँखें, तानपूरे पर सिरक रही उंगलियाँ, वीरां जैसे ज़ख्मी अबाबील हो।

फिर उसने सुर छेड़ा, मध्यम आलाप कितनी देर तक जैसे कोई मोर

अपने पंख फैला रहा हो। इधर से उधर, उधर से इधर जै-जै-वन्ती के अन्दाज़ को हल्के हल्के स्पर्श से जैसे वह टोह रही थी, उससे आँख-मिचौनी खेल रही थी।

'जै जै वन्ती' गुरु तेग़ बहादर जी द्वारा प्रचलित किया गया राग था। हिन्दी के गवैयों के हल्कों में इसका चर्चा था, लगता था कि जब गुरु महाराज पिछली बार गुरु हरिकिशन जी के दर्शनों के लिए दिल्ली गये, शास्त्रीय संगीत के हल्कों में इस राग का परिचय दिया गया था। जै जै वन्ती को गा सकना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। जै जै वन्ती में जैसे राजस्थानी लोकगीतों कुछ कुछ पुट भी दी गई हो, एक समर्पण का भाव दरशाने की कोशिश की गई थी। संध्या का राग।

सामने वीरां वाली अपने मधुर कंठ से जैसे पल पल उतर रहे अंधेरे को समेट रही हो। एक अकथनीय नूर था उसके चेहरे पर; अलाप की उठान जैसे अगरबत्ती का सुगंधित धुआँ उठ रहा हो, धीरे धीरे, सोया सोया, आधी नींद में से जाग रहा, अंगड़ाई भर रहा, आकाश की गहराइयों को नाप रहा हो, सब दिशाओं में फैल रहा हो और उसके बोल सुनाई दिए :

बीत जैहै, बीत जैहै, जनम अकाजरे।

जैसे कोई बादल फटता है, इस तरह वीरांवाली की आँखों में से आँसुओं की फुहार फूट पड़ी। एक छींटे के बाद ही उसने जैसे अपने आप को संभाल लिया। वीरांवाली के बोलों में एक अकथनीय दुख था, पीड़ा थी, जैसे कोई अपना गरेबां पकड़ कर जख़्मी हुए कलेजे को आशकार कर रहा हो।

आलम को लगा किसी वक्त वीरां की उंगलियाँ तानपूरे से फिसल जायेंगी और वह उस पर औंधी जा पड़ेगी, पर नहीं, वह तो गा रही थी और ऊँचा और दर्द में, आँसुओं में भीगे बोल—

निस दिनि सुनि कै प्रान
समझत नहिं रे अजान

बार बार 'समझत नहिं रे अजान' बोलती जैसे अपने आप को फटकार रही हो, कभी समझाने लगती, कभी जैसे तरस खा रही हो, कभी जैसे लाड़ करने लगती। जज़बात की अभिव्यक्ति में आश्चर्यजनक परिवर्तन था। लगता था जैसे चित्र खींच रही हो। हर चित्र में नये रंग भर रही थी। कभी 'समझत' पर ज़ोर देती, कभी 'अजान' पर, कभी 'रे' ऐसे आलाप करती जैसे किसी को सम्बोधित कर रही हो। इतनी देर तक आलम की कल्पना, उसका अनुमान

जैसे वीरां द्वारा खींचे जा रहे चित्रों के साथ क़दम मिला कर न चल रहा हो, पिछड़ता जा रहा हो और एकदम उसने अगले बोल इस तरह उच्चारे जैसे कोई चीत्कार निकल गया हो :

काल तऊ पहुँचिओ आनि कहाँ जै है भाजि रे।

यह तो उसकी अपनी कहानी थी। वीरांवाली जैसे अपने हृदय की तस्वीर खींच कर पेश कर रही हो, "काल तऊ पहुँचिओ आनि कहाँ जै है भाजि रे।" कितनी देर इस तुक को बार बार दोहराती रही। जैसे कोई चूहा किसी बिल्ली के पंजों फँसा हो, उससे कोई छुटकारा नहीं था। कभी अपनी बेचारगी, कभी अपनी मजबूरी, कभी अपनी लापरवाही का कभी कोई कभी कोई चित्र बना रही थी, जैसे कोई गुनहगार अपने आप को क़ाज़ी के हवाले कर रहा हो, जो भी सज़ा किसी ने देनी है, दे ले।

वीरां गाती रही, आलम सुनता रहा जैसे किसी पर जादू हुआ हो। अगले बोल, उससे अगले बोल :

अस्थिर जो मानिओं देह तो तऊ तेरऊ कोइ है खेह।
क्यूं न हरि को नाम लेहि मूरख निलाज रे ॥ 1 ॥
राम भगति हिये आनि छाडि दे तै मन को मानु।
नानक जन तिह बखानि जग महि विराजु रे ॥ 2 ॥ 4 ॥

और इस तरह रात बीत गई। पौ फट रही थी। आस पास मुर्ग़े बाँग दे रहे थे। दूर दरबार साहब में शंख ध्वनि हो रही थी। मन्दिरों में घंटियाँ बजनी शुरू हो गई थीं। तब जाकर कहीं वीरां का गायन समाप्त हुआ।

वीरां कितनी देर तक आँखें मूँदे निश्चल बैठी रही। फिर उसके हाथ जुड़ गये। उसका सर झुक गया। उसने आँखें खोलीं, एक नज़र आलम की ओर देखा और क़हक़हा लगाकर हँसने लगी। फिर "मैंने सोचा था, मुझे गाना भूल गया होगा", वह कह रही थी।

"संगीत कभी नहीं भूलता", आलम अभी तक वीरां की गाई जै जै वन्ती के नशे में था।

"जब तक यह शरीर है, शरीर की दर्दें हैं। इस पीड़ा का जायज़ा तो इन्सान को लेना ही पड़ता है।"

आलम अकस्मात उठ खड़ा हुआ। उसे अपने ठिकाने पर पहुँचना था। उसके दरबार साहब जाने का समय हो गया था। जब इस तरह वह भावुक होने लगती, वीरां ने आज़मा कर देखा, आलम किसी न किसी बहाने पल्ला

छुड़ा कर कन्नी कतरा जाता था।

वीरां उसे मना करती ही रही, रोती ही रही। बोली, "मैं नाश्ता तैयार करती हूँ। हम दोनों दरबार साहब चलेंगे। तूने नहाना हो तो यहीं नहा ले।"

आलम जब एक बार किसी बात से इन्कार कर देता तो फिर उसे कोई नहीं बदल सकता था।

(14)

हफ़्ते, महीने, मौसम और अब बरस बीतने लगे थे। कमाल का छमाही या एक साल बाद आये-गये के हाथ ख़ैरियत का एक ख़त आ जाता था। अगर लाने वाला तैयार होता तो वह बच्चों के लिए कोई न कोई चीज़ भी भेज देता था। हर ख़त से लगता था कि उसकी बच्चों में गहरी दिलचस्पी थी। उनके प्रति वह अपने को समर्पित समझता था। पर इतने दिन उसका अपने आप को अलग कर लेना आलम को कुछ समझ नहीं आ रही थी।

वीरां ने कभी कोशिश नहीं की थी कि कमाल को कोई चिट्ठी-पत्री भेजे। इधर से कोई जाने वाला ही नहीं होता था और फिर वह कमाल को जानती थी कि वह गुरु महाराज के जत्थे के साथ ही लौटेगा और गुरु महाराज ने लौटना जरूर था। वे ढाका में थोड़े ही बैठे रहेंगे।

आलम को कभी कभी यह आशंका सताने लगती थी कि कहीं कमाल को यह पता न चल गया हो कि वह अमृतसर में था और उसकी वीरां से हर रोज़ मुलाक़ात होती थी। अगर ऐसी बात हुई तो वह सोचता कमाल शायद ही वापस लौटे। मर्दज़ात की ग़ैरत, वह ज़लील होने के लिए लौट कर वीरां की ज़िन्दगी में नहीं आयेगा।

यह सोचते हुए उस शाम आलम ने वीरां से एक अजीब सवाल किया, "हां सच, मैंने यह तो तुझ से पूछा ही नहीं कि तूने कमाल को हमारे रिश्ते के बारे में तो ज़रूर बताया होगा।"

जो जवाब वीरां ने दिया, आलम सुन कर उसके चेहरे की तरफ़ देखता रह गया। वह बोली, "मैंने उससे कहा—ना तू मुझ से पिछले दिनों के बारे में पूछेगा, ना मुझे झूठ बोलना पड़ेगा।"

"और सचमुच उसने फिर कभी नहीं पूछा ?" आलम बोला।

"कभी भी नहीं", वीरां ने उसे विश्वास दिलाया।

"मैं उस आदमी को सलाम करता हूँ।" आलम के मुँह से यह बोल निकले ही थे कि कोई राहगीर कमाल का ख़त लेकर उनके आंगन में आ घुसा।

जैसे उस पर बेहद प्यार आ रहा हो, वीरां कमाल का ख़त पढ़ रही थी। पड़ाव-पड़ाव आगे बढ़ते हम बड़ नाम के शहर में कुछ दिन रुके। फिर हम सभी मुंगरे में पहुँचे ही थे कि पटना से पिछले कई बरसों का सब से सुहाना समाचार लेकर एक घुड़सवार आया—"माता गुजरी जी की कोख हरी हो गई है। गुरु महाराज के घर साहबज़ादे ने जन्म लिया है।"

यह ख़बर पढ़ते ही वीरां ने आलम को पुकारा। वह पास वाले कमरे में ख़त लाने वाले सज्जन की ख़ातिर कर रहा था। "अरे बाई, गुरु महाराज के साहबज़ादे ने जन्म लिया है। उनका नाम गोबिन्द रखा गया है।"

"तो फिर यह ख़बर सच्ची है। कई दिन पहले इस तरह की ख़बर मेरे कानों में तो पड़ी थी पर यहाँ दरबार साहब के महन्तों ने जैसे इसे अनसुना कर दिया", आलम बोला।

"गुरु महाराज ने सुना तो पटना की ओर अपना मुँह करके उन्होंने अपने हाथ जोड़े, नमस्कार किया", वीरां ख़त पढ़ती जा रही थी। इसका यह अर्थ है कि सिख संगत के दसवें गुरु महाराज ने जन्म ले लिया है। जिस तरह गुरु महाराज ने ख़ुशी मनाई और नवजात की संभाल के लिए पटना में हिदायतें भेजी हैं, इस बात की पुष्टि हो जाती है। एक ख़त में उन्होंने लिखा :

"कोई आल हवेली होवे, बड़ी होवे
तिसमें कबीले हमारे रखणें।
संगत के गुरु रुज़गार में बरकति करेगा।
सेवा ना वेला है।"

फिर एक और ख़त में फरमाया : "सरवत, संगति पटने दी जिनि सिख वाहे गुरु किया है तिसके मनोरथ पूरे होंणगे। गोबिन्द दास की बधाई ऊपरि संगत खरच किया। गुरु की दरगाह थाइ पाया। रुपयै दी मेहर थाइ पड़ी। पीछे सेवा कीती सो थाइ पई। अगे जो सेवा करेगा तिसदा भला होगू। संगति के रुजगार में बरकति होगू। भाई जी सरपाऊ भेज्या है। पटना गुरु का घर है। संगति का भला होगू।"

ढाका आते हुए गुरु महाराज कांच नगर, भागलपुर और साहिब गंज रुके। जिस दिन हम ढाका शहर पहुँचे बाकी जत्थे को शहर के बाहर छोड़ कर गुरु महाराज खुद सीधे शहर के अन्दर बुलाकी दास नाम के एक गुरसिख के घर पहुँचे। बुलाकी दास की मां ने गुरु महाराज के लिए एक

दीवान तैयार करवाया था। उस पर रेशमी गद्दे बिछाये थे। गुरु महाराज के पहनने के लिए अपने हाथ से काते सूत के वस्त्र तैयार किए थे। और कितने अरसे से वह हाथ जोड़ रही थी कि वे आयें और वृद्ध माता उन्हें अपने हाथ से यह सब कुछ भेंट कर सके। गुरु महाराज को दीवान पर विराजमान देखे। गुरु महाराज ने बुलाकी दास के घर के बाहर रुक कर भीतर सन्देश भेजा। बुलाकी दास की मां ने सुना तो बलायें लेती बाहर आई। उसकी तो मुराद पूरी हुई थी। वह कह रही थी, "धन्य यह घड़ी है। इस दिन पर मैं बलिहारी जाऊँ, आज के दिन पर मैं क़ुर्बान जाऊँ, जब मेरी अरदास सुनी गई है। मेरी मनोकामना पूरी हुई है।" उसने गुरु महाराज को दीवान पर बिठाया, उन्हें अपने हाथ से तैयार किए गए वस्त्र पहनाए और उनके लिए प्रसाद तैयार करने लगी।

इतने में गुरु महाराज के आगमन की ख़बर बाकी शहर में पहुँच गई थी। लोग 'धन्य, धन्य' करते हुए गुरु महाराज के दर्शनों के लिए आने लगे। ख़ुश होकर गुरु महाराज ने फरमाया : "ढाका गुरसिक्खी का गढ़ है। आपकी श्रद्धा ही मुझे यहाँ लाई है। अब आप यहाँ धरमसाल बनाओ और नित्य इकट्ठे होकर ईश्वर का नाम जपा करो। आप के दुख-क्लेश दूर हो जायेंगे।"

हां, सच, ढाके में नत्था नाम का एक गुरसिख है। वह मेरे गुरभाई अलमस्त के जांनशीन द्वारा यहाँ स्थापित किया गया है। नानक मत्ते में मेरी मुलाक़ात अलमस्त से हुई थी। गुरु हरिगोबिन्द जी ने उसे अपनी नानकमत्ते की यात्रा के दौरान ढाका भेज दिया था। नत्था के बारे में ढाके की संगत ने शिकायत की कि वह हर किसी से दुर्वचन बोलता था। गुरु महाराज ने नत्था को बुला भेजा। गुरु महाराज के पूछने पर वह फिर लोगों को गाली देकर कहने लगा—कौन इन सालों से दुर्वचन बोलता है। वैसे ही ये लोग आपके पास शिकायत लेकर आये हैं। गुरु ने सुना तो हँस पड़े। उन्होंने ढाका की संगत को समझाया कि नत्था का मन साफ़ है। सिर्फ़ ज़बान का कड़वा है। उन्हें बुरा नहीं मानना चाहिए। उसने कभी किसी का बुरा नहीं सोचा।

"ढाका आये हुए हमें कई महीने हो गये हैं। गुरु महाराज डेरा बेशक ढाका में रखा, पर हम लोग अक्सर आस पास के शहरों में जाते रहते हैं। गुरु महाराज चिटागांव, सिलहट, संदीप और कंचननगर हो आये हैं।"

बुलाकीदास की माता के बार बार विनती करने पर एक कलाकार गुरु महाराज का चित्र बना रहा था। हर रोज़ आकर गुरु महाराज के सामने बैठ

जाता और चित्र बनाने लगता। बाकी चित्र तो उसने बना लिया, उसमें रंग भर लिए पर जब वह गुरु महाराज के मुखड़े पर पहुँचा तो उनके जलाल की ताब न सह सका। उनके मुखड़े की ओर देखता तो उसकी आँखें चौंधियाकर रह जातीं। उनकी दिव्य मूर्ति की छवि उसकी पकड़ में न आती। एक दिन, दो दिन, चार दिन, आखिर उसने अपनी मजबूरी गुरु महाराज को बतायी और उन्होंने खुद तूलिका पकड़ कर चित्र को सम्पूर्ण किया।

पिछले कुछ दिनों से अम्बेर का मिर्ज़ा राम सिंह ढाका आया हुआ है। अपने पिता राजा जयसिंह के स्वर्गवास के बाद राजा राम सिंह अम्बेर की गद्दी पर बैठा है। शहंशाह औरंगज़ेब ने उसे खिल्लत बख़्शी है और आसाम पर हमला करने के लिए भेजा है। आज से कोई पांच बरस पहले नवाब मीर जुमला ने आसाम पर हमला करके कब्ज़ा किया था। तब आसाम के राजा जोध विजै सिंह ने हार मान ली थी। पर अब उसके सुपुत्र चक्रध्वज ने बग़ावत कर दी है। उस क़बीले के लोग, जिनका चक्रध्वज आजकल राजा है, बड़े ग़ैरतमन्द सूरमे हैं। वे जहाँ तक बस चलेगा, हार नहीं मानेंगे। यह भी माना जाता है कि कामरूप के लोगों ने जादू-टोने के ज़ोर से मीर जुमला जैसे हट्टे-कट्टे सेनापति को भस्म कर दिया था। आख़िर मामूली बुख़ार से भी कोई मरा करता है, जो उसे चढ़ा था।

राजा राम सिंह की मां पुष्पा देवी गुरु महाराज की श्रद्धालु है। इस डर से कि कामरूप के कबीले के लोग उसके बेटे पर भी टोना कर दें, उसने अपने बेटे को हिदायत की कि वह पहले ढाके में गुरु महाराज का आशीर्वाद ले, फिर कामरूप पर आक्रमण करे। गुरु महाराज राजा राम सिंह पर कृपालु हुए और उन्होंने सिर्फ असीस ही नहीं दी, उसके साथ खुद भी चलने के लिए चल पड़े ताकि उसकी जीत निश्चित हो सके।

"और गुरु महाराज के साथ हमारे कमाल साहब भी कामरूप तशरीफ ले जा रहे हैं।" वीरां ने बाकी का ख़त पढ़े बग़ैर ज़हर उगला।

इतने में आलम ख़त लाने वाले सज्जन को विदा करके आ रहा था

"इसमें ख़फ़ा होने वाली कौन सी बात है", वह वीरांवाली को समझाने लगा।

"इसका मतलब है वह साल दो साल और नहीं लौटने वाला।" वीरांवाली क्रोध में लाल पीली हो रही थी।

"गुरु महाराज की सेवा में है तुझे तो ख़ुश होना चाहिए। तेरा वह इतना

ख़ुशकिस्मत है जिसे गुरु महाराज की संगत का अवसर प्राप्त है।" आलम गुरु महाराज के लिए पूरी श्रद्धा से कह रहा था।

इसका वीरांवाली के पास कोई जवाब नहीं था। पर कुछ देर बाद वह भड़क उठी, "कब तक पराये लोग इनके परिवार को पालते रहेंगे ?" उसकी आँखें छलक रही थीं।

(15)

"पराये लोग !" आलम जानता था कि वीरांवाली का इशारा किसकी तरफ़ था।

उसकी तरफ़ ! आलम की तरफ़ !! आलम उसके लिए पराया हो गया था ? दिल्ली के उन दीवाने दिनों के बावजूद ? पिछले तीन बरसों से, जब से वह अमृतसर में फिर वीरांवाली के सम्पर्क में आया था, उसने वीरांवाली को किसी की अमानत समझकर एक हाथ की दूरी पर रखा था।

ऐसा करने के लिए उसे किस किस तरह अपने आप को संभाल कर रखना पड़ता था ! कौन सा क़हर था जो उसने अपने आप पर नहीं ढाया था। किस तरह वह दोनों वक्त हाथ फैलाता था; दुआएँ मांगता था। एक संयम, एक ज़ब्त, एक संकोच, एक लक्ष्मण-रेखा जिसकी उसने कभी उल्लंघना नहीं की थी। पिछले तीन बरसों से वह जैसे वह तलवार की धार पर चल रहा था। हर क़दम को फूंक फूंक कर रखना, क़दम-क़दम पर फिसलना। वह सोचता था, यह गुरु महाराज की कृपा थी कि वह अपने दामन को दाग़दार किए वग़ैर उजला रख सकता था।

और उस दिन वीरांवाली का उसे पराये लोगों में गिनना ! यह सुन कर लगा जैसे किसी ने उसके कलेजे में कटार भोंक दी हो। किस किस तरह उसने वीरांवाली को प्यार नहीं किया था ! कैसे कैसे उसने उसके बच्चों को लाड़ नहीं लड़ाया था ! अगर उसे इस बात का ऐहसास न होता कि वीरांवाली अपने दो बच्चों के साथ अकेली थी, वह तो कभी का अमृतसर से चला गया होता। बच्चों को किसी मर्द के सहारे की ज़रूरत थी।

"मैं कहती हूँ कब तक पराये लोग इनके परिवार को पालते रहेंगे ?" वीरांवाली के ये बोल बार बार उसके कानों में गूंजते और अपने ठिकाने में अकेले बैठे आलम की आँखों में से टप टप आँसू बह रहे थे।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।

आलम को इस बात का ऐहसास ही नहीं हुआ था कि वह अभी तक

वीरांवाली को इतना प्यार करता है। उसकी मोहब्बत अभी तक उसके दिल के किसी कोने में इतनी गहरी गड़ी हुई थी।

उसके ये बोल सुनकर "मैं कहती हूँ कब तक पराये लोग इनके परिवार को पालते रहेंगे ?" जिस तरह आलम वीरांवाली के घर से निकल आया था, वह सोचता था कि शायद वह कभी भी उसके मुंह नहीं लगेगा।

अभी वह इन विचारों के जाल में फंसा हुआ कि उसकी नज़र खिड़की से बाहर गई। सामने गली के मोड़ पर वीरां आ रही थी। उसने फ़ौरन अपने आप को संभाला, अपने कमरे को संवारा। इस दौरान आलम सोचने लगा, आज वीरांवाली ने वही तरबूज़ी रंग का दुपट्टा ओढ़ा हुआ है, जो उसने पहली मुलाक़ात में ओढ़ रखा था। उसका चेहरा सिन्दूरी आम की तरह दमक रहा था।

इतने में वीरांवाली उसके कमरे में थी। उसे कभी दरवाज़ा खटखटा कर अन्दर आने की इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी।

"मैं बाज़ार जा रही थी। सोचा आपको भी साथ ले चलूं", आते ही वीरां कहने लगी। जैसे उसने आलम की सारी समस्या को सुलझा दिया हो। वह तो सोच रहा था कि वह वीरां के साथ कैसे वह बात करेगा, इस समय किस चीज़ से उसकी ख़ातिर करेगा।

आलम जैसे बैठा था, उठकर वीरांवाली के साथ चल पड़ा। आज के दिन, ऐसी घड़ी में वीरांवाली के साथ अपने कमरे के एकान्त में जैसे उसे अपने आप पर भरोसा नहीं था। सामने अलगनी पर टंगा उसका कुल्ले पर बंधा साफ़ा देखकर वीरांवाली ने कहा, "इस बीच मैंने तुझे कभी कुल्ले पर मुसद्दी का साफ़ा पहने नहीं देखा।" आलम उसकी बात अनसुनी करके चलने लगा था। पर नहीं। वीरांवाली के अन्दर की औरत को टाल सकना मुमकिन नहीं था। उसने आगे बढ़कर, अलगनी से साफ़ा उतार कर साफा कमाल के सर पर रख दिया। "अब तू रुहेला लगता है।" उसके क़द-बुत की ओर देखती हुई वीरां कहने लगी। फिर कितनी देर तक उसकी ओर देखती रही, जैसे कोई किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। कोई बाँहें फैला कर उसे अपने आलिंगन में ले ले।

आलम ने आले में रखा अपने कमरे का ताला उठा लिया था, ताकि बाहर से कमरे को बंद कर सके।

बाज़ार में वीरांवाली पहले बजाज की दुकान में जा घुसी। जाड़ों के

लिए कपड़े फड़वा रही थी। बच्चों के लिए और मरदाने कपड़े। आलम सोच रहा था, वीरां को कमाल के लिए जोड़े नहीं बनवाने चाहिए। पता नहीं वह कब लौटेगा। पिछले ख़त में उसने वो कोई इशारा नहीं किया था। वीरां कश्मीरी पशमीने, ढाका के सूती और बनारस के सच्चे रेशमी कपड़े लगातार फड़वाती जा रही थी। आलम उसकी आदत से वाकिफ़ था। दिल्ली में भी वह ऐसे ही करती थी। या तो बज़ार जाती ही नहीं थी, पर जब जाती तो सैंकड़ों रुपयों का माल ख़रीद कर घर लौटती।

जब बजाज ने हिसाब किया, आलम ने अपनी जेब से रक़म निकाल कर दुकानदार के हवाले कर दी। वीरांवाली ने ऐतराज़ नहीं किया। वैसे ही बुक्कल मारे सामने खड़ी रही जैसे वह दिल्ली में किया करती थी।

कपड़ों की दुकान से निकलकर वीरांवाली ने बहुत सी छोटी-मोटी चीज़ें ख़रीदीं। एक दुकान, दूसरी दुकान, तीसरी दुकान। इधर उधर की चीज़ें ख़रीद कर वह आलम को लादे जा रही थी। दिल्ली की और बात थी। उसके नौकर-चाकर थे। अपनी सवारी होती थी। और नहीं तो दुकान से निकलकर अपनी सवारी के कोचवान को अपना सामान वह पकड़ा देता था। अमृतसर में तो उसे ख़ुद ही उठाना था। दायें-बायें, उसके कंधे, उसके हाथ अटे हुए थे। बाज़ार से निकली तो वीरांवाली दर्ज़ी को अपने साथ ले आई। घर पहुँच कर उसने पहले दर्ज़ी को आलम का नाप लेने को कहा।

"क्या मतलब ?" आलम ने हैरानी से पूछा।

"आप कपड़े नहीं बनवायेंगे ? मैंने आपके लिए ढेर से मरदाने कपड़ों के टुकड़े फड़वाये हैं।" वीरां अपने पूरे अधिकार से कह रही थी।

आलम उसके सुन्दर चेहरे को देखता हुआ दर्ज़ी के सामने खड़ा नाप दे रहा था। नाप देते समय, आलम के कानों में अचानक गुरु तेग़ बहादर का यह शब्द गूंजने लगा :

नर अचेत पाप ते डरु रे
दीन दयाल सगल भय भंजन
सरनि ताहि तुम पर रे। 1। रहाऊ।
वेद पुरान जासु गुन गावत
ताको नाम हियै मो धरु रे।
पावन नामु जगति में हरि को
सिमरि सिमरि कसमल सबु हर रे। 1।

मानस देह बहुरि नह पावै
कछु उपाऊ मुकति का कटु रे।
नानक कहत गाइ करुना में
भवसागर के पारि उतरु रे

[गौड़ी, महला ८]

दर्जी गया तो वीरां ने दस्तरख़ान बिछा कर खाना परोसना शुरू कर दिया। लगता था वह खाना पहले ही तैयार करके गई थी। बिरयानी, दही की चटनी, दो-प्याज़ा, सीख़ क़बाब। ये सारे पकवान, जो आलम की कमज़ोरी थी।

खाना खा रही वीरां हँस कर कहने लगी, "शुक्र है गुरु महाराज ने मांस खाने से अपने सिक्खों को नहीं रोका, वर्ना..........."

"वर्ना क्या ?" आलम ने वीरांवाली को अपनी बात पूरी करने को उकसाया। पिछले कुछ अर्से से उसने भी तो मांस खाना छोड़ दिया था।

"वर्ना मैं कभी की कलमा पढ़ चुकी होती।"

आलम हैरानी से वीरां के मन्द मन्द मुस्कराते चेहरे की ओर देखने लगा। फिर बोला, "तोबा तोबा ! यह वही वीरांवाली मेरे सामने बैठी है जिसके बारे में मैंने दिल्ली में सुना था कि वह गुरु हरिकिशन जी की चिता में कूदकर उनके साथ जान देना चाहती थी।"

वीरांवाली ने सुना तो अपने मन को टटोलने लगी। अजीब औरत थी। हर सुबह वह अपने बीत चुके कल को मिटाकर आगे चलने का सोचती थी। हर समय आज के पल में जीती थी। न भविष्य की परवाह, न अतीत की पकड़।

"बच्चे कहाँ हैं ?" कुछ देर बाद आलम ने पूछा।

"बच्चे आज पड़ोसियों के बच्चों के साथ छेहरट्टे के मेले पर गये हैं। रात वहीं रहेंगे। और मैं............" बातें करते करते वीरां फिर रुक गई।

"और मैं..............क्या ? यह तेरी कितनी बुरी आदत है। बात करते करते तू कहीं डुबकी लगा जाती है", आलम ने चिढ़ कर कहा।

"हां, हां, मैं और आलम आज ब्यास नदी पर नौका की सैर को जायेंगे। मैंने सवारी का इन्तज़ाम कर रखा है। अभी कोचवान आता होगा।"

आलम को याद आया, वह शरद पूर्णिमा की रात थी। शरद पूर्णिमा की रात दिल्ली में वे जमुना के पानी में गुज़ारा करते थे। रातभर उनकी बेड़ी-

जमुना की छाती पर तैरती रहती। रात रात भर नाच और गाना। रातभर जाम छलकते। वे इतनी दूर निकल जाते थे कि वापिस घाट पर पहुँचने में उन्हें सवेर हो ज़ाती थी।

इस तरह की किसी रात की याद में डूबा आलम बुत बना खामोश बैठा था कि उसके कानों में गुरु तेग़ बहादुर जी का वह शब्द गूंजने लगा :

'नर अचेत पात ते डर रे'

आलम सोचता, गुरु महाराज ने कितनी कठिन कसौटी रखी है। अगर 'अचेत पाप' के कारण किसी को फांसी लगाई जा सकती है तो उनका क्या बनेगा जो दिन रात पाप करते हैं ? जिनका रोम रोम गुनहगार है ? उन्हें तो अल्लाह ख़ुद ही बचा सकता है। गुरु महाराज ही हाथ देकर उनकी रक्षा कर सकते हैं।

यह सोचकर आलम के अपने ही आप हाथ जुड़ गये। अपने ही आप जैसे वह दुआ मांग रहा हो। रब्ब की मेहर। ईश्वर की कृपालु नज़र।

इतने में ख़बर आई कि कोचवान के घोड़े के सुम (खुर) में चोट आ गई थी। आज उन्हें व्यास नदी की सैर के लिए नहीं ले जा सकेगा।

(16)

जैसे किसी के पैरों तले से किसी ने ज़मीन खींच ली हो। आलम को कुछ ऐसा लग रहा था। उसने कुछ दिनों से वीरांवाली के यहाँ जाना कम कर दिया था। उसका ज़्यादा समय दरबार साहिब में गुज़रता था। अमृत सरोवर के किनारे लगातार घंटों तक बैठा वह लहरों के संगीत का आनन्द उठाता रहता। आलम हैरान होता, हरिमन्दर के सरोवर मछलियाँ थीं पर उसने कभी कोई मेंढक नहीं देखा था। स्नान करने आये कई श्रद्धालु सरोवर की मछलियों को खिलाने के लिए कुछ न कुछ पानी में फेंकते रहते थे। मछलियां एकदम इकट्ठी हो जातीं और एक-दूसरे पर झपटतीं, लड़तीं पर उसने कभी सरोवर के किनारे बगुला बैठा नहीं देखा था।

आलम ने जानबूझ कर अपना ठिकाना दरबार साहब के नज़दीक रखा था, ताकि हर रोज़ सुबह अमृत सरोवर में स्नान कर सके। सरदी हो या गरमी, वह प्रातःकाल उठकर सबसे पहले दरबार साहब स्नान के लिए जाता था। फिर बाकी नितनेम।

अमृतसर का जल पवित्र था। सुबह-शाम गुरबानी का संगीत उसमें एक इलाही शक्ति भरता था। यह वही पाक स्थान था जिसमें डुबकी लगा कर

कौवा हंस बन कर उड़ गया था। आस पास से नित्य रोगी आते थे, अमृत सरोवर में स्नान करके, सुना था, वे स्वस्थ हो जाते थे। आलम ख़ुद हमेशा महसूस करता था, अमृत सरोवर का स्नान जैसे उसे एक ख़ुशी बख़्शता हो, उसे अपना भीतर-बाहर धुला धुला प्रतीत होने लगता। इन पानियों में कोई तिलस्माती ताक़त थी। तभी तो श्रद्धालु आते थे। गुरु महाराज कबसे गुरु की नगरी को छोड़कर चले गये थे। पर गुरसिखों की दरबार साहब के प्रति श्रद्धा ज्यों की त्यों बनी हुई थी। अक्सर यात्री अमृत सरोवर के जल की सुराहियाँ भर भर कर ले जाते थे। नये जन्मे बच्चों के मुंह में इस पवित्र जल की बूंदें टपकाई जाती थीं। मुर्दों पर अमृत जल छिड़का जाता, फिर उन्हें चिता की आग दी जाती। अमृतसरोवर के जल की करामातों की कहानियां करने बैठते तो उनके मुंह नहीं थकते थे।

पर उस दिन आलम कुबेले में परिक्रमा में बैठा ध्यान मग्न था कि अचानक उसकी आँख खुली—क्या देखता है, बड़े महन्त के छोटे-बड़े सात बेटे जाल डाल कर अमृत वेला के अंधेरे में अमृत सरोवर की मछलियाँ पकड़ रहे थे। यह देखकर आलम को जैसे चारों कपड़ों में आग लग गई। अगर अमृत सरोवर का जल पवित्र था तो मछलियाँ भी तो पवित्र थीं। यह कैसे हो सकता था कि पाक सरोवर की मछलियों को पकड़ा जाय और फिर यह जान कर आलम का ख़ून खौलने लगा—वे तो मछलियों को पकड़कर सिर्फ खाते ही नहीं थे, बेचते भी थे। उन्होंने यह अपना धंधा बनाया हुआ था। हर रोज़ जब श्रद्धालु आगे-पीछे होते, वे लोग डयोढ़ी के द्वार को कुंडी मार कर यह अनर्थ करते थे। उस दिन परिक्रमा के किसी कोने में ध्यान मग्न बैठा आलम उन्हें दिखाई नहीं दिया था। आलम के मुँह का स्वाद फीका फीका हो गया। शिरोमणि का परिवार—वह उनके साथ ऊँचा-नीचा बोल भी नहीं सकता था।

फिर उसे याद आया, अकाल तख़्त के जिस थड़े पर सुना था गुरु तेग़ बहादर जी विराजे थे, जब वे हरिमन्दर अमृत सरोवर के स्नान के लिए आये थे, वह कई दिनों से कूड़े का ढेर बन गया था। उसने सोचा महन्त के चाकरों की लापरवाही थी। उसने सोचा कि जब किसी का ध्यान गया तो कूड़ा समेट लेंगे। पर ढेर तो कई दिनों से बढ़ता जा रहा था। फिर आलम ने ख़ुद महन्त जी से उसका ज़िक्र किया। जैसे उन्होंने सुना ही न हो, कुछ दिन और रुक कर आलम ने ख़ुद उस ढेर को उठवाने का फ़ैसला किया। एक बार उस

स्थान को साफ़ किया गया। कुछ दिनों बाद वहाँ फिर कूड़ा इकट्ठा होने लगा। आलम सोचता था, चलो उसे सेवा का अवसर मिल गया था। हर चौथे दिन वह वहाँ से कूड़ा समेटता। फिर ढेर लग जाता। आलम को परिक्रमा में कूड़े का पहाड़ देखकर दुख होता था। पर यह बात न महन्त को सुनाई देती, न किसी और प्रबंधक की समझ में आती।

बहुत दिन नहीं बीते थे कि शाम के खाने के बाद आलम सामने चमन में टहल रहा था कि उसकी मुलाक़ात दिल्ली के एक पुराने साथी से हो गई। शराब में धुत् वह कहीं से लौट रहा था। उसका नाम फ़रमान अली था। वह भी उसी सराय में ठहरा हुआ था, जिसमें आलम ने कितने दिनों से अपना ठिकाना बना रखा था। दरबार साहब की बग़ल में।

बातों बातों में फरमान अली ने बताया कि वह महन्त के घर खाना खाकर लौट रहा था।

"महन्त कौन ?" आलम ने हैरान होकर पूछा। इस क़दर शराब में बदमस्त, पान चबाते हुए, गुरु की नगरी में वह अजीब सा लग रहा था।

"अरे भाई दरबार साहब का महन्त, और कौन ?" फरमान अली ने हिचकी लेकर कहा, "कल तुझे भी लेकर चलूंगा। रात का खाना मैं वहीं खाता हूँ।"

"पर तू आया किधर है ?"

"दौरे पर हूँ। हर चार-छे महीने से मेरा इधर दौरा होता है। सिखों के मुक़द्दस मुक़ामों की निगरानी मेरे ज़िम्मे है।"

"यह किस लिए ?"

"शहंशाह का हुक्म है कि इन दुकानों को पूरी तरह बंद कर दिया जाय।"

"यह तो कोई नया फ़ैसला नहीं। पर यह निगरानी किस लिए ?"

"आलमगीर का फरमान है कि छोटे-मोटे मन्दिरों, शिवालयों, धर्मसालों, गुरद्वारों को छोड़कर हर बड़े ग़ैर-मुस्लिम तीर्थ स्थान को मिस्मार कर दिया जाय और जहाँ तक मुमकिन हो उनकी जगह मस्जिदें बनवा दी जायें।"

"यह भी कोई नया फ़ैसला नहीं। अब नई बिल्ली ने कौन-सी छींक मारी है ?" आलम की जिज्ञासा बढ़ रही थी।

"आपके जमाने में नये मन्दिरों का निर्माण बंद किया गया था। पुराने मन्दिरों को गिराने की मनाही थी", फरमान अली बता रहा था।

"हाँ, मैं ही तो शहंशाह का यह फरमान बनारस के सबसे बड़े पुजारी के पास लेकर गया था।"

"अब इस फ़ैसले में तरमीम कर दी गई है। शहंशाह का इर्शाद है कि काफ़िरों के खिलाफ़ जिहाद शुरू किया जाय। एक मुसलमान हाकिम होने के नाते आलमगीर का यह फ़र्ज़ बन जाता है कि पूरे के पूरे मुल्क को इस्लाम के झंडे के तले लाये।"

"तो शहंशाह अकबर की खादारी ख़त्म ?" आलम ने परेशान होकर कहा।

"ग़ैर-मुस्लिम प्रजा पर जज़िया लगाया जा रहा है। जो जज़िया नहीं देंगे, उन्हें इस्लाम क़बूल करना होगा। मन्दिरों को गिराया जायेगा। उनकी जगह मस्जिदें खड़ी की जायेंगी। पुराने शिवालयों की मरम्मत तो पहले ही बंद की जा चुकी है। काफिरों की पाठशालाएँ और दर्शनीय स्थल बंद किए जा रहे हैं।"

"यह तो ज़ुल्म है", परेशानी में आलम के मुँह से निकला।

"यही नहीं, शहंशाह ने फ़ैसला किया है", परवान अली अब आलम के नज़दीक आकर उसके कान में कह रहा था कि, "बनारस का विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा का केशवदेव मन्दिर और द्वारका का सोमनाथ मन्दिर, सब को मिस्मार कर दिया जाय। और तो और राजस्थान में आम्बेर भी इसी फेहरिस्त में हैं। जयपुर के महाराजा की चाहे मुग़ल दरबार से इतनी दोस्ती है, इस मामले में कोई रियायत नहीं होगी।"

"पर यह सब तो सुना है पहले हो चुका है।"

"नहीं, वे अफ़वाहें ही थीं।"

"कहीं दरबार साहब तो इस क़हर में शामिल नहीं।" आलम ने चिंतातुर होकर पूछा।

"नहीं, यहाँ के महन्त और हरिजी जो अपने आप को गुरु कहता है, हमारे साथ मिले हुए हैं। उन्होंने तो गुरु तेग़ बहादर को, जो बाबा नानक की गद्दी पर बैठा है, यहाँ हरिमन्दर में घुसने नहीं दिया। बेचारा बाहर एक पेड़ के नीचे घड़ी दो घड़ी सुस्ता कर अपना सा मुँह लेकर चला गया।"

"यह कैसे हो सकता है ?" आलम छटपटा उठा।

इतने अरसे से जनाब यहाँ आकर बसे हुए हैं और आपको इतना भी नहीं पता ? जो बाबा नानक की गुरगद्दी के मुक़ाबले में अपनी गुरुआई बनाये

हुए हैं, वे हमारे आदमी हैं। उनका ही तो दरबार साहब पर कब्ज़ा है। इसी तरह करतारपुर के एक और बड़े सिख तीर्थ स्थान पर धीरमल का कब्ज़ा है। इनकी मुकद्दस किताब, जिसे लोग कुरान शरीफ़ का दरजा देते हैं, उसकी शुरू की पाक जिल्द करतारपुर के धीरमल ने संभाली हुई है। दिल्ली में राम राय तो शहंशाह के दरबार में हमारे-तुम्हारे जैसा एक रुक्न है।

"मैं दिल्ली दरबार का कोई रुक्न नहीं", आलम ने खीजकर कहा।

"आज न सही, कभी तो आप हम में से एक थे। क्या पता कल फिर लौट कर शामिल हो जायें। मैंने यहाँ के हरि जी नाम के गुरु और हरिमन्दर के महन्तों से वायदा लिया है कि वे गुरु तेग़ बहादर या उसकी किसी आल-औलाद को दरबार साहब में नहीं घुसने देंगे। सिक्खों का काबा हमारे कब्ज़े में है। उसे गिराने की क्या ज़रूरत है ?"

"आपकी यहाँ अच्छी, चोखी ख़ातिर होती है।" आलम अब फरमान अली बदमस्त, सुर्ख़ चेहरे की तरफ़ देख रहा था।

"ख़ातिर जैसी ख़ातिर ? कल शाम आपको भी ले चलूंगा। कोई ऐसी ऐयाशी नहीं, जो हरिमन्दर के महन्त के यहाँ मयस्सर न हो। अंतहीन भेटें इकट्ठी होती हैं। ये लोग तो नवाबों की तरह रहते हैं। हमारा शहंशाह औरंगज़ेब बेचारा ! वह टोपियों पर बेल-बूटों की कढ़ाई कर और कुरान शरीफ़ की नकलें तैयार करके अपनी रोज़ी कमाता है।"

"बस बस फरमान अली। दिल्ली दरबार की करतूतों को मुझ से ज़्यादा कोई नहीं जानता।"

"पर आप यहाँ बैठे क्या कर रहे हैं ? हमने राजा रामसिंह को आसाम पर हमला करने भेजा है। राह में सिक्खों के पास ढाका में रुकेगा और गुरु तेग़ बहादर को भी साथ ले जायेगा। राजा राम सिंह की मां पुष्पा देवी उनकी भक्तिन है। उसने अपने गुरु महाराज को बेटे की मदद के लिए ख़त लिखा है। आपको अहोमी क़बीले के राजा प्रणपाल का पता ही है। जो लोग मीर-जुमला जैसे योद्धा को हरा ही नहीं सकते, जान मार भी सकते हैं, वे इन्हें ज़िन्दा लौटने नहीं देंगे। अगर सिक्खों का गुरु लौटा भी तो सुना है वह शिवालिक के पहाड़ में कहीं जाकर बसने की सोच रहा है। उसकी मां के नाम का कोई चक बसाया जा रहा है। पहाड़ी राजा वहाँ उसकी निगरानी करेंगे। हमने तो गुरु को बाँधने का तरीका पहले ही सोच रखा है।"

लगता था, ज्यों ज्यों रात गहरी हो रही थी, फरमान अली का नशा और

बढ़ रहा था। पता नहीं क्या अनाप-शनाप बके जा रहा था।

"ये कैसी आतिशी शराब पी है। तेरा नशा उतरने का नाम नहीं ले रहा", आलम ने बहस का विषय बदलने के लिए कहा। वह उसकी बकवास से ऊब गया था।

कल शाम आपको भी साथ लेकर चलूँगा। महन्त बड़ा रंगीला आदमी है। यह कहता हुआ फरमान अली लड़खड़ाते क़दमों से अपने ठिकाने की ओर चल दिया।

(17)

जिस तरह का ज़िक्र फरमान अली ने महन्त और हरिजी का किया था, उसे सुनकर आलम ने फ़ैसला कर लिया कि वह अमृतसर छोड़ देगा। अगर गुरु महाराज ने गुरु की नगरी में लौटना ही नहीं था, फिर आलम वहाँ क्या कर रहा था ? उसका अमृतसर में क्या काम था।

वीरांवाली के प्रति वह एक तरह की जिम्मेवारी मन में बनाये हुए था, लेकिन पिछले कुछ अरसे उसने वीरां के पास जाना, उससे मिलना भी कम कर दिया था।

फिर उसे किसी ने नानकी चक के बारे में बताया। एक अत्यन्त सुन्दर शहर बस गया था। सामने सतलुज दरिया, इधर-उधर पहाड़ियों से घिरा हुआ, क़िले का किला। नानकी चक में प्रतिष्ठित गुरसिख जा बसे थे। दूर और पास के व्यापारियों ने भी आकर अपने ठिकाने जमा लिए थे। बाज़ार में बेहद रौनक़ रहती थी। और अभी निर्माण जारी था। लोग अपने-अपने घरों की चिनाई करवा रहे थे। यह बात निश्चित थी कि जब गुरु महाराज पूरब के दौरे से लौटेंगे, वे नानकी चक में ही निवास करेंगे। शहर में उनके महल तैयार किए जा चुके थे।

नानकी चक का सबसे बड़ा आकर्षण था वहाँ के कीर्तनिए। पंजाब भर के बड़े गवैयों को बुलाकर शहर में उन्हें बसाया गया था। इनमें भाई मक्सूद, भाई हरबंस, भाई गुलाब, भाई बहल जैसे प्रसिद्ध नाम शामिल थे।

आलम सोचता, उसे और क्या चाहिए। दरबार साहब में तो आजकल उसने कोई ढंग का कीर्तनिया नहीं सुना था। मसन्दों की तो कोशिश होती थी कि जितनी भेंट मिले उसे अपने निजी ख़र्च के लिए बरतें। और तो और कितने अरसे से दरबार साहब की न पुताई हुई थी, न मरम्मत।

आलम ने फ़ैसला किया, वह नानकी चक जाकर अपना स्थाई ठिकाना

बना लेगा। अमृतसर में गुरु महाराज की प्रतीक्षा करना बेकार था। नानकी चक की धरमसाल में ढंग का कीर्तन सुनने को तो मिला करेगा।

आलम ने सोचा वीरांवाली से ज़िक्र करने का मतलब बेकार बहस में पड़ना था। उसके बच्चे अब बड़े हो रहे थे। अपने आप को संभाल सकते थे। और फिर जैसी ख़बरें आ रही थीं, कुछ अरसे में कमाल ने भी लौट आना था। गुरु महाराज कामरूप में बैठे थोड़े ही रहेंगे। फिर भी अमृतसर छोड़ने से पहले एक शाम वह वीरांवाली के साथ गुज़ारना चाहता था।

उस दिन वह वीरांवाली के घर गया। अभी गली में ही था कि उसे वानपुरे की धुन सुनाई दी। इसका मतलब था कि वह रियाज़ कर रही थी। आलम घर के बाहर गली में क्षण भर खड़ा होकर सुनने लगा। वीरां गौड़ी राग में एक शब्द गा रही थी :

मिलु मेरे प्रीतमाजीओ टुधु बिनु खरी निमाणी।

यह तो गुरु तेग़ बहादर जी का शब्द था। हाय, कितना सोज़ था उसकी आवाज़ में, जैसे आसुओं में भीगे बोल हों। कोई आहत वैरागी हृदय फरियाद कर रहा था।

मिलु मेरे प्रीतमाजीओ टुधु बिनु खरी निमाणी।
मैं नैनी नींद न आवै, जीओ भावै अन्न न पाणी।

किसी चीज़ की फरियाद कर रही, विलाप कर रही, मिन्नतें कर रही, कितना दर्द, कितना ताप था इन बोलों में।

"पाणी अन्न न भावै मरिए हावे, बिन पिर क्यों सुख पाइऐ।"

कितनी विह्वलता थी। यह तो विरह में भस्म होती जा रही थी। जैसे झुलसी हुई चिड़िया हो। गाते हुए कैसे सिसकियाँ ले रही थी।

"गुरु आगै करहु बिनती जो गुरु भावै मिलै तिवै मिलाइऐ।"

अब उसके कंठ में एक ठहराव सुनाई दे रहा था। उसके बोलों में जैसे कोई किसी की विनती कर रहा हो। वह समूची जैसे किसी की रज़ा में ढेरी हो गई हो।

एक स्वाद-स्वाद, एक हिलोर-हिलोर जैसे कोई सोई-सोई झील हो। सम्पूर्ण समर्पण की अवस्था।

और फिर अचानक विरह का स्वर ऊँचा हो गया। ऊँचा और ऊँचा जैसे किसी को अचानक कोई सूझ, कोई पहचान हो गई हो। और वह पुकार-पुकार कर ऐलान कर रही हो :

आपे मेल लये सुख दाता, आपि मिलिआ घरि आये।

बार बार यह बोल गाये जा रही थी, जैसे किसी को आवाज़ें दे रही हो। जैसे किसी ने सारे दरवाज़े खोल रखे हों। कोई आये, आये, आये !

आलम से बाहर गली में और नहीं रुका गया। धीमे से डयोढ़ी का बंद किवाड़ खोल कर वह अन्दर आँगन में चला गया। सामने कमरे में दीवानों की तरह तानपूरा पकड़े वीरां ने गाया :

आपे मेल लये सुख दाता, आपि मिलिया घरि आये।

नानक कामण सदा सुहागणि, न पिह मरै न जाये।

एक नशे में, एक हुलार में गाते हुए वीरां आलम को सामने आ रहा देख भी रही थी, नहीं भी देख रही थी। लगता था जैसे उसकी दृष्टि आलम के बुत में से गुज़र कर कहीं आगे निकलती जा रही हो। जैसे सुरमई बदली में से चांदनी झर झर कर कहीं की कहीं पहुँच जाती है।

वीरां ने गाना बंद किया। पर आख़िरी तुक :

"नानक कामण सदा सुहागणि, न पिरु मरै, न जाये।"

जैसे वातावरण में इधर से उधर, उधर से इधर, उसकी गूंज, उसकी प्रतिध्वनि कितनी देर तक कमरे में सुनाई देती रही। आलम और वीरांवाली खामोश सुनते रहे।

इस तरह की औरत को धोखा नहीं दिया जा सकता। इस तरह की कलाकार का दिल तोड़ना पाप था। आलम ने वीरां को अपने फ़ैसले से वाकिफ़ करा दिया। अगले दिन वह नानकी चक जा रहा था, जहाँ उसका स्थायी रूप से बसने का इरादा था।

आलम ने सोचा था वीरांवाली उसे रोकेगी, बहस करेगी। खुद साथ चलने के लिए तैयार हो पड़ेगी। रोना-धोना होगा। गिले-शिकवे होंगे। कुछ भी तो नहीं हुआ। वीरांवाली ने सुना तो एक क्षण के लिए ख़ामोश हो गई। फिर कहने लगी, "यह आपका आखिरी फ़ैसला है ?"

"मैं मजबूर हूँ", आलम ने कहा।

फिर जैसे वीरां ने इस फ़ैसले को सरमाथे पर मान लिया हो। वह उठकर उसकी ख़ातिर करने लगी।

आलम वहाँ बैठा ही था कि कोई गुरसिख कमाल का ख़त उन्हें दे गया। वीरां ख़ुशी ख़ुशी ख़त पढ़ने लगी। ख़त पर एक नज़र डालते ही, वीरां पुकार उठी, "वह तो आ रहा है !"

आलम ने सुना तो उसे यह लगा जैसे वह सुर्ख़-रू हो गया हो। अब वह निश्चिन्त होकर जा सकता था। उसका ज़मीर उसे कोसा नहीं करेगा।

वीरां पूरी तौर से कमाल का ख़त पढ़ने में तल्लीन थी। इतने में बच्चे आ गये। यह जानकर कि आलम चाचा अमृतसर छोड़ कर जा रहे थे, भागां तो रोने लग पड़ी। उसका आलम के साथ कुछ ज़्यादा ही लगाव हो गया था। मां उसे समझाने लगी, "यह तो बल्कि अच्छा है। नानकी चक में भी हमारा एक ठिकाना हो जायेगा। क्या पता है, कल तेरा कमाल चाचा आकर गुरु महाराज के साथ नानकी चक के लिए ही चल पड़े।"

"अगर गुरु महाराज अमृतसर नहीं रहेंगे, तो फिर यह शहर भला गुरु की नगरी कैसे हुआ ?" धरमदेव बोला।

"हम तो आलम चाचा के साथ जायेंगे, और कोई जाये या न जाये", भागां कह रही थी।

"तेरा कमाल चाचा भी आ रहा है। उसने लिखा है, यह भी हो सकता है कि यह ख़त पहुँचे इससे पहले ही हम घर पहुँच जायें।" वीरां उसे बता रही थी।

"तो फिर हम नहीं जायेंगे।" वह पैर पसार कर बैठ गई।

"बिल्कुल मां जैसी है", आलम ने अपने आप से कहा। पल में तिल पल में माशा।

और फिर आलम मन ही मन में लज्जित होने लगा। वीरांवाली ने उसे रोका नहीं था। बच्चों ने भी उसके साथ जाने की ज़िद नहीं की थी। शायद उसे यह अच्छा नहीं लग रहा था। एक बार पढ़ने के बाद वीरां फिर कमाल का ख़त पढ़ रही थी। कमाल ने ख़त में लिखा था :

"हम ब्रह्मपुच दरिया को पार करके रंगमाटी नाम के शहर में पहुँचे, जहाँ मुग़ल फौज की छावनी है। राजा राम सिंह अपने मुसाहिबों के साथ यहाँ रुका, लेकिन हमने कुछ दूर ढुबरी में जाकर ठिकाना किया। ढुबरी में गुरु बाबा नानक जी आये थे। गुरु महाराज ने उस थान की निशानदेही की है जहाँ गुरु बाबा विराजमान हुए थे। वहाँ एक चबूतरा बनाया गया है। ज्यों ज्यों आस पास के लोगों को गुरु महाराज के आगमन की ख़बर मिलती, वह गोल बाँध कर ढुबरी आने लगे। सुबह-शाम रौनक लगने लगती।

राजाराम नाम के स्थानीय राजा ने गुरु महाराज की शोभा सुनी और दर्शनों के लिए आया। राजा के औलाद नहीं होती थी। गुरु महाराज के

चरणों में गिर कर उसने बेटे के लिए प्रार्थना की। गुरु महाराज ने उसकी श्रद्धा से द्रवित होकर राजा को औलाद का वरदान बख़्शा।

उधर कामरूप के सारे सेनापति गोहाटी में इकट्ठे हुए। वे मिलकर पहाड़ी की चोटी पर कामख्या देवी के मन्दिर पर हाज़िर हुए। उन्हें देवी के द्वार पर प्रार्थना की कि बाहर के हमलावरों से उनकी रक्षा की जाय। साथ ही ज्योतिषियों को बुलाकर उनकी मदद मांगी ताकि ग्रहों का हिसाब लगा कर वे लड़ाई शुरू करने की सही तारीख बतायें। फिर कामरूप की सारी मशहूर जादूगरनियों को इकट्ठा किया गया। सुना है, उन्होंने अपने जादू-टोनों के ज़ोर से मुग़ल फौज को परेशान करना शुरू कर दिया। कभी हमलावरों पर पत्थरों की वर्षा होने लगती, कभी पेड़ों की टहनियाँ उन पर आ गिरतीं। फिर एक जादूगरनी एक दीवार पर सवार होकर उसे घोड़े की तरह दौड़ाती हुई मुग़ल फौज की तरफ़ बढ़ी। राजाराम सिंह की फौज में आतंक छा गया। फिर ऐसा लगा जैसे उसके मुँह से आग की लपटें निकल रही हों। कुछ देर बाद वह आकाश की ओर उड़ रही प्रतीत हुई। इसके साथ ही आँधी और तूफ़ान, ओले और बारिश होने लगी और फिर ब्रह्मपुत्र दरिया जैसे उफ़न कर मुग़ल फौज पर आ गिरा हो। दरिया ने अपना रुख़ बदल लिया था।

बिल्कुल इसी बात की चेतावनी गुरु महाराज ने राजा राम सिंह को दी थी। उन्हें डर था कि कामरूप के लोग दरिया को बांध लगाकर उसका रुख़ पश्चिमी किनारे इकट्ठी हुई मुग़ल फ़ौज की तरफ कर देंगे जिसके फलस्वरूप पूरी की पूरी मुग़ल सेना पानी की लपेट में आ जायेगी। ठीक ऐसा ही हुआ। जिन फ़ौजी सिपाहियों ने गुरु महाराज के कहने की ओर ध्यान नहीं दिया था, वे रातों रात सोये-सोये बह गये। मुग़ल सेना का बड़ा नुक़सान हुआ। खुद राजा राम सिंह और उसके साथ दिल्ली से आई फौज का बचाव हो गया।

ऐसा लगता था कि कामरूप वालों के जादू-टोने बेकार साबित हो रहे थे और इधर मुग़ल फौज भी अपना इतना भारी नुक़सान करवा कर परेशान थी। यह देखकर गुरु महाराज ने दोनों राजाओं को अपने पास बुलाया और उनका राज़ीनामा करवा दिया। राजा राम सिंह और अहोमी राजा ने आपस में पगड़ियाँ बदलीं और दोस्ती का वचन दिया।

पूरब में गुरु महाराज का दौरा सम्पूर्ण हो गया मालूम होता है। यही सुनने में आ रहा है कि अब हम पंजाब लौट आयेंगे।

"यह भी हो सकता है कि जो गुरसिख यह ख़त लेकर आ रहा है, हम

उससे पहले ही पहुँच जायें।"

(18)

उस रात आलम को नींद नहीं आ रही थी। पलंग पर लेटे हुए उसे ऐसा लग रहा था जैसे भट्टी पर चढ़ी कढ़ाई में उसे मक्का के दानों की तरह भूना जा रहा हो। इधर से उधर, उधर से इधर करवटें बदल रहा था। उस का अंग अंग दुख रहा था। बंद बंद में चपेटें पड़ रही थीं। जैसे रोम रोम में चीख़ें उठ रही हों। हर बार सामने दरबार साहब में जब घड़ियाल बजता, उसे महसूस होता जैसे उसकी छाती में गोलियाँ दाग़ी जा रही थीं। उसके मन में सख़्त बेचैनी उमड़ रही थी। क्यों ? आलम सोच रहा था, शायद इसका कारण यह है कि जिस द्वार पर सजदा करके उसे लगता था कि उसकी हर मनोकामना पूरी होती है, उस दरबार पर उन लोगों का क़ब्ज़ा था जो उसके मुर्शिद के निन्दक थे। जिस अमृत सरोवर में स्नान करे उसे महसूस होता था जैसे उसके जन्म-जन्मान्तर के पाप घुल रहे हैं, उस अमृत सरोवर की हर अंजलि पानी के सौदे किए जाते थे। जिस गुरबानी के कीर्तन के लिए वह बेसब्री से इन्तज़ार करता था, उस वाणी में फेर-बदल करके उसकी पवित्रता को भ्रष्ट किया जा रहा था।

दिल्ली के कट्टरपंथियों से भागकर वह आया था और इतने दिनों तक धर्म के सौदागरों के चंगुल में खज्जल ख़्वार होता रहा था। जिस हरिमन्दर के दरवाजे, इसकी गुर-गद्दी के मालिक के लिए बंद किए जा सकते थे, उसमें ईश्वर का निवास कैसे हो सकता था ?

आलम का अन्तःकरण कहता, जिस दरगाह के सरबराह ख़ुद गुनहगार थे, उनकी संगत में सुमति कैसे आयेगी ? जिस घर में झूठ प्रधान हो, वहाँ सच्चाई की बात कौन करता होगा ? रौशनी की किरण किस तरह घुस सकती है ? फिर आलम सोचता कि फरमान अली ने उसे जो बताया था बेशक वह सच था, फिर भी श्रद्धालु तो दरबार साहब में आते थे। सैंकड़ों गुरसिख दूर दूर से दर्शन करने रोज़ आते थे और निहाल होते थे। दहलीज़ों पर माथे रगड़ते थे। परिक्रमा की धूल को माथे से लगाते थे। हरिमन्दर में सर झुका कर आत्मिक शान्ति प्राप्त करते थे। अकाल तख़्त के सामने हाथ जोड़ कर न्याय पाते थे। अमृत सरोवर में स्नान करके उनके दुख दूर होते थे।

तभी तो लोगों की भीड़ें वहाँ आती थीं। मन्नते मांगते थे। भेंट चढ़ाते थे।

सेवा करते थे। चप्पे चप्पे को पोंछते थे। लंगर में बर्तन मांजते थे। संगत के जोड़ों को झाड़ते थे। फिर वह सोचता, जिस हरिमन्दर की हर ईंट को गुरु रामदास जी ने अपनी निगरानी में लगवाया, जिस अमृत सरोवर के किनारे बैठ कर भाई बुड्ढा जी ने गुर-सिक्खों की अगुवाई की, जहाँ भाई गुरदास जी ने ग्रंथ साहब की हर पंक्ति को अपने हाथों से लिपिबद्ध किया, जहाँ गुरु अर्जन देव जी सुखमनी जैसा महाकाव्य का उच्चारण किया, वह पवित्र स्थान जहाँ गुरु हरिगोबिन्द जी ने अकाल तख़्त क़ायम किया, जहाँ वे कलगी लगा कर विराजते थे, उनके ऊपर छत्र लगता था, चँवर डुलाये जाते थे, उस स्थान को कोई अपवित्र कैसे कर सकता है ? कभी दूध भी कभी अपवित्र हुआ है ? कभी चांद भी मैला हुआ है ? कूड़े के ढेर में गिरा हीरा आख़िर हीरा ही रहता है। उसका कभी कुछ नहीं बिगड़ता।

पर सवाल यह है कि यह सब कुछ साज के गुरु महाराज ख़ुद क्यों यहाँ से चले गये ? ख़ुद ही नहीं गये, बल्कि हरिमन्दर, अकाल तख़्त और गुरु महल उन लोगों के हवाले कर गये जिन्हें बस यह अहसास था कि उनके साथ अन्याय किया गया है। उनके मन में गुरु अर्जन देव जी, गुरु हरिगोबिन्द, गुरु हरिराय या गुरु तेग़ बहादर, किसी के लिए आदर नहीं है। फरमान बता रहा था कि इन लोगों ने ढेरों हथियार इकट्ठे किए हुए हैं, मोर्चे बनाये हुए हैं। इनकी अपनी निजी फौज है। क़वायदें करते हैं। चांदमारी का अभ्यास करते हैं। ये लोग कभी भी दरबार साहब का क़ब्ज़ा किसी को नहीं देंगे। और फिर जब गुरु तेग़ बहादुर के आगमन पर यहाँ के मसन्दों ने हरिमन्दर साहब के किवाड़ बंद कर दिए तो गुरु महाराज के श्रद्धालु मक्खन शाह ने उन से आज्ञा मांगी कि वह अपने अंगरक्षकों की मदद से ताले तोड़ कर किवाड़ खोल देगा। इस पर गुरु महाराज राज़ी नहीं हुए। उन्होंने तो ग्रंथ साहब की पवित्र पोथी भी अपने निन्दक धीरमल के पास भिजवा दी थी। उससे जबर्दस्ती पोथी छीनना उन्हें पसन्द नहीं था। शायद कीरतपुर और नानकी चक को बसाने के लिए दरबार साहब को छोड़ना ज़रूरी था। यह ईश्वर का भाणा था जिसे सर-माथे पर रख कर चल रहे थे।

यह भाणा था कि दरबार साहब को गुरु हरिगोबिन्द जी ने जानबूझ कर विधिवत् खाली किया। यह भाणा था कि इसका कब्ज़ा उन लोगों ने संभाल लिया जो मानते थे कि उनके साथ बेइन्साफ़ी हुई है। पिरथीचंद को गिला था कि सब से बड़ी औलाद होने के कारण गुरुगद्दी पर उसका अधिकार होना

चाहिए। मेहरबान और हरिजी पिरथीचंद के बेटे-पोते गद्दी पर अपना पुश्तैनी हक़ जमाये हुए थे। धीरमल ने ग्रंथ साहब की पोथी पर कब्ज़ा कर लिया। गुरु हरिगोबिन्द जी ने ऐतराज़ नहीं किया। रामराय औरंगज़ेब के दरबार में जाकर करामातें दिखाने लगा, हर तरह के समझौते करने लगा। गुरु हरिराय जी ने ज़्यादा से ज़्यादा यह किया कि उसे मुंह लगाना छोड़ दिया। जब औरंगज़ेब ने गुरु हरिकिशन के दर्शनों की खाहिश प्रकट की, गुरु महाराज ने कहलवा भेजा, "सिख संगत का प्रतिनिधि तो आपके दरबार में पहले से ही बैठा हुआ है। अगर कोई मामला तय करना है तो उसके साथ किया जा सकता है।"

इसलिए कि जैसा दम्भी औरंगज़ेब था जिसने अपने पिता को कैद कर रखा था, अपने भाइयों को क़त्ल करवाया था, वैसा ही सिख सम्प्रदाय का नुमाइन्दा उसके पास जा बैठा था जिसे अपने गुरु पिता के वचनों का लिहाज़ नहीं था, जो गुरबानी का निरादर कर सकता था, करामातें करता फिरता था, जैसे कोई मजवेबाज़ था।

यह सोचते हुए आलम को ख़्याल आया, कहीं इसी मसलहत के तहत गुरु हरगोबिन्द दरबार साहब को ख़ाली करके चले गये थे ? अगर वे ख़ुद यहाँ विराजमान होते तो मुग़लों से उनकी टक्कर ज़रूर होती। अगर बाकी मन्दिरों को गिराया जा सकता था तो दरबार साहब कैसे छोड़ दिया जाता। अगर मथुरा शहर का नाम बदल कर इस्लामाबाद रखा जा सकता है, तो गुरु की नगरी का जो भी हाल होता सोई थोड़ा था। गुरसिक्खों की खोलनियाँ ढहा दी जातीं। अभी कल ही तो इतने चावों से बनाये शहर को ढेरी कर दिया जाता। लहू की नदियाँ बहने लगतीं। अकाल तख़्त को तोपों के गोलों से मिस्मार किया जाता। हरिमन्दर को गोलियों से छेदा जाता। अमृत सरोवर लहू का तालाब होकर रह जाता। तैरती हुई लाशों से ऊँटा हुआ। वह परिक्रमा जिसे गुरु महाराज के चरणों का स्पर्श प्राप्त था, उसमें खूंख़ार फौजी सिपाही, जूतों समेत दनदनाते फिरते। दर्शनों के लिए आये मासूम यात्री आटे में घुन की तरह पिस जाते। न औरतों का लिहाज़ किया जाता, न बच्चों का। पवित्र ग्रंथ की बेहुरमती होती। ऐतिहासिक ग्रंथों को जलाकर राख कर दिया जाता। गुरु महाराज की यादों को, सौग़ातों को पैरों तले कुचल दिया जाता। तौबा, तौबा ! इन सारी बातों से बचने का एक ही तरीक़ा था कि भाणे को मान लिया जाये। दरबार साहब को उनके हवाले कर दिया

जाये जो दूसरे की धौंस सह सकें। झूठ के राज में झूठ बोल सकें। फरेब की गाँठ को दँभ से खोलना जानते हो। जिनमें ईमान न हो, जो बेईमानी में शामिल हो सकें।

या फिर एक और तरीक़ा था, हिंसा का मुक़ाबिला हिंसा से किया जाये। ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाये। नहले पर दहला मारा जाये।

इसके लिये तैयारी चाहिये थी। संगठन चाहिये था। हथियार, बारूद सिक्का चाहिये था। घोड़ों की ज़रूरत थी, हाथियों की जरूरत थी। शायद वह घड़ी अभी नहीं आई थी। उस सँत सिपाही ने अभी क्षितिज पर प्रकट होना था।

आलम सोच रहा था, उस सँत सिपाही की भनक तो पड़ रही थी, उसकी सुगंधि तो आ रही थी। हवा में उसके आगमन का सँगति था। उसकी प्रतीक्षा करनी होगी।

फ़िलहाल तो वह नानकी चक्क चला जायेगा। आलम ने फ़ैसला किया। वहाँ गुरु तेग़ बहादुर जी की राह देखेगा। फिर उस भावी मसीहा का इँतज़ार।

(19)

आलम की नानकी चक्क जाने की तैयारी हो चुकी थी। अगले दिन उसे चले जाना था।

दरबार साहब के दर्शन करके जब वह लौटा तो उसके कमरे में वीराँ और उसके दोनों बच्चे बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बच्चे उसके लिये अलग अलग उपहार लाये थे। वीराँ ने स्मृति-चिन्ह के रूप में अपने हाथ से बुना हुआ पश्मीने का गुलुबँद उसे पेश किया। मक्खन जैसा सफ़ेद और नर्म पश्मीना हाथ में पकड़ते ही फिसल फिसल जा रहा था। दोनों सिरों पर पश्मीने से ही बुनी हुई झालरें, डब्बियाँ और जाल, पश्मीने के ही बनाये मोतियों और मनकों से गुथे हुए चमकीले बुंदे।

वीरां ने ख़ुद हल्के बादामी रेशम का जोड़ा पहना हुआ था। कुदरती रंग, ऊपर झीना, पारदर्शी चुन्नटदार मलमल का दुपट्टा लिए हुई थी। "दुपट्टा तो ढाके से आया हुआ लगता है।" आलम ने वीरां की पोशाक के सलीक़े की तारीफ़ करते हुए कहा।

इस उम्र में भी वीरां ऐसे शरमाई, उसके गालों में ऐसी गुलाबी आभा आई जैसे सोलह-सत्रह बरस की कमसिन लड़की हो।

आलम ने महसूस कि उसके भीतर वीरां के लिए जो कमज़ोरी थी वह सारी की सारी कहीं सुरक्षित रखी थी। यह औरत अपने बच्चों की मां के रूप में कितनी बढ़िया थी। उठने-बैठने का एक सलीका, बात करने का एक अन्दाज़।

फिर आलम के मन में पता नहीं क्या आया, वह कहने लगा, "किस्मतवाली है, तू बीबी, तेरा मर्द कामरूप से सही सलामत वापस आ रहा है।"

"क्यों ? वह कोई मुग़लों की जंग लड़ने गया था।"

"यह बात नहीं, सुनते हैं कामरूप की औरतें बड़ी जादूगरनियां होती हैं। भाई मरदाने को उन्होंने मेमना बनाकर आँगन में बांध दिया था।" फिर बोला,

"मुझे डर था कि कहीं आपका वह भी कहीं किसी का पानी न भर रहा हो।"

"कमाल पर गुरु महाराज की मेहर है।" वीरांवाली ने एक पत्नी के मान से कहा।

"एक बार शहंशाह औरंगज़ेब अपनी चश्मदीद घटना बयान कर रहे थे : उन्होंने देखा एक धुएं का बादल आसमान पर चढ़ा, जैसे छतरीदार खुम्भ निकलती है। क्षण भर में ही उस ग़ुबार के इर्द-गिर्द आधे आधे कोस तक न कोई आदमी, न कोई जानवर बच सका। कई मर गये, कई बुरी तरह से ज़ख़्मी हो गये। फिर शहंशाह को एक बक्सा दिखाया गया, जिसकी एक तरफ खींचने के लिए हाथी बंधा हुआ था। हाथी अपना पूरा ज़ोर लगा कर थक गया। वह बक्से को हिला नहीं सका। बक्से के दूसरी तरफ एक बकरी बँधी हुई थी। बकरी को जब खदेड़ा गया, वह हाथी समेत बक्से को अपने पीछे खींच कर ले गई। ऐसे ही एक शीशे के सामने एक तरबूज लाकर रखा गया। देखते ही देखते तरबूज़ सूख गया। फिर शीशे को उलटा दिया गया। तरबूज़ फिर हरा हो गया। ये तीन घटनाएँ आलमगीर ने अपनी आँखों से देखी थीं।"

"हाय रब्बा ! फिर तो शुक्र मनाना चाहिए।" वीरां के हाथ जुड़ गये थे। वह खिड़की से पार हरिमन्दर के कलश की ओर देख रही थी।

"तुझे पता है, तेरा यह हरिमन्दर किन लोगों के क़ब्ज़े में है ?" आलम ने उसकी दरबार साहब के प्रति श्रद्धा को चुनौती दी।

"मुझ से कौन सी बात छिपी है ?"

"फिर भी इतनी यक़ीदत ? कभी कभी मैं गुरु महाराज के मुरीदों की

उनके प्रति श्रद्धा देख कर हैरान होता रहता हूँ।" आलम बोला।

"इसमें हैरानी की कौन सी बात है। इन्सान खंडहर में जोत जगा कर उसे रौशन कर देता है। गुरु महाराज तो इलाही मूरत हैं।" वीरां की नज़रें अभी भी सामने हरिमन्दर के कलश पर जमी थीं।

आलम बच्चों को कुछ पैसे देकर बाज़ार में भेज कर वीरां वाली से राज़दाराना अंदाज़ में कहा, "तुझे पता है आप के महन्त के घर में शराब उड़ती है, मुजरा होता है ?"

वीरां वाली चुप।

"तुझे यह पता है कि इन लोगों ने फ़ैसला किया है कि वे गुरु तेग़ बहादर या उनके बाद उनके द्वारा स्थापित किसी गुरु महाराज को दरबार साहब चरण नहीं रखने देंगे ? जब गुरु तेग़ बहादर दरबार साहब के दर्शनों के लिए आये थे, तब इन लोगों ने कहा था कि मसन्द हरिमन्दर की चाबियाँ काम से कहीं चला गया था। वह कोरा झूठ था।"

वीरां चुप !

"तुझे पता है, इन लोगों ने भेंटों की रक़म से अनाज के अम्बार भीतर लगाये हुए हैं और किल्लत के दिनों में वे इसे मनमानी क़ीमत पर बेचते हैं।"

वीरां चुप !

"तुझे पता है इन लोगों ने भीतर तहखा़नों में हथियारों और सिक्के के अम्बार लगा रखे हैं ? ये लोग दरबार साहब के क़ब्ज़े के लिए मरने-मारने के लिए तैयार हैं ?"

वीरां चुप !

"तुझे पता है कि ये लोग दिल्ली की सरकार से मिले हुए हैं; इन्होंने अपने आपको हाकिमों का चमचा बना लिया है। दिल्ली से आये अहलकारों को ये रिश्वतें देते रहते हैं ?"

वीरां चुप !

"तुझे पता है, इन्होंने ग्रंथ साहब में अपनी कविश्वरी भी शामिल कर ली है। गुरवाणी जहाँ-तहाँ भ्रष्ट कर रहे हैं ?"

वीरां की आँखों में से छल छल करते दो आँसू फिसल कर उसके गालों पर आ गये।

"अब तुझे समझ में आ गया होगा कि मैं यहाँ से क्यों जा रहा हूँ। मुझे इस बात का ऐहसास है कि मैंने कमाल की ग़ैर हाज़िरी में जो इतने दिनों

तक आपका साथ दिया है और दो चार महीने मुझे रुक जाना चाहिए। पर यह सारी बातें जानकर मैं अपने आप को फरेब नहीं दे सकता। मैं गुरु महाराज के बसाये नानकी चक्क में जाकर अपना मुस्तकि़ल ठिकाना बनाऊँगा और फिर अपने मुर्शिद का इन्तज़ार करूँगा।"

इतने में आलम को लेने के लिए उसकी सवारी आ गई। अपना सामान तो उसने पहले से ही बांध रखा था।

आलम का सामान संभाल कर रथ में रखा गया। इतने में बच्चे भी आ गये। सब से मिलकर आलम रथ में जा बैठा।

रथ चलते ही उसने देखा, वीरांवाली दोनों बच्चों को लेकर दरबार साहब जा रही थी।

आलम को उसका ऐसा करना अजीब सा लगा। फिर उसे याद आया, वह ख़ुद भी तो हर रोज़ की तरह सुबह दरबार साहब गया था। अमृत सरोवर में उसने स्नान किया था। हरिमन्दर में फूल चढ़ाये थे। माथा टेका था। कीर्तन सुना था। अरदास में शामिल हुआ था। प्रसाद लेकर लौटा था।

(20)

शहंशाह औरंगज़ेब का हुक्म था कि कोई हिन्दू न पालकी में बैठ सकता है, न हाथी या अरबी नस्ल के घोड़े की सवारी कर सकता है। हिन्दुओं को हथियार रखने की मनाही थी। इस्लाम के अलावा किसी और धर्म का प्रचार करना जुर्म था।

राज-प्रबंध पर ज्यों ज्यों उसकी पकड़ मज़बूत होती जा रही थी, इन क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाने लगा।

इतने में गुरु तेग़ बहादुर अपने पूरब के दौरे से लौट आये थे। बहुत अरसा नहीं गुज़रा था कि साहिबज़ादा गोबिन्द सिंह जी भी नानकी चक्क पहुँच गये।

नानकी चक्क अब एक गुलज़ार था। जिस दिन साहिबज़ादे गोबिन्द सिंह जी ने अपनी माता गुजरी और दादी मां नानकी के साथ इस शहर में प्रवेश किया, शहर का नाम बदल कर आनन्दपुर रख दिया गया। पटना के सदियों पुराने घनी आबादी के शहर से पहाड़ की गोद में एक नये बसाये साफ़ सुथरे शहर में बसना सचमुच आनन्दमय था। कहते हैं साहिबज़ादा के आगमन में उच्चारे आनन्दसाहब की तुक-'अनन्द भया मेरी माये' से यह नाम सूझा था। आनन्दपुर की ठंडी मीठी हवा, आनन्दपुर की सुबह, आनन्दपुर की

सुगंधों से लदी गोधूली वेला एक तरफ़ आसमान से बातें करते हुए पहाड़, दूसरी तरफ़ नटखट मचल रहा दरिया और सामने लहलहा रहे खेतों की हरियाली चारों तरफ़ एक स्वाद स्वाद था।

आलमगीर का फरमान कि कोई ग़ैर मुस्लिम बढ़िया नस्ल के घोड़े की सवारी नहीं कर सकता था। पर इधर साहिबज़ादा गोबिन्द जी के गुरु पिता के अस्तबल में ऐसे घोड़े थे, जिन पर कोई शहंशाह भी मान कर सकता था और साहिबज़ादा गोबिन्द जी इस बाला आयु में उन घोड़ों को लेकर दौड़ाते फिरते थे। घोड़े तो घोड़े उनके लिए तो श्रद्धालुओं ने महलों में हाथी लाकर बाँधे थे। हकूमत का कहना था कि कोई ग़ैर-मुस्लिम हथियार नहीं रख सकता था। पर साहिबज़ादा गोबिन्द तो बचपन से खेलते ही हथियारों से थे। तीर-कमान और बन्दूकें, तलवारें और ढालें, नेज़े और बरछे, खण्डे और कृपाणें। शहंशाह औरंगज़ेब हिन्दुओं की पाठशालाएँ और धर्मार्थ आश्रम बंद करवा दिये थे, ताकि अनपढ़ भी बने रहें। बाला प्रीतम साहिबज़ादा गोबिन्द जी के लिए ब्रज और संस्कृत, अरबी और फ़ारसी पढ़ाने के लिए विद्वान नियुक्त किए जा रहे थे। वेद-पुराण, शास्त्रों और स्मृतियों का अध्ययन कराया जा रहा था।

आनन्दपुर साहब में अनेक प्रतिष्ठित गुरसिख आकर बस चुके थे और आ रहे थे। इनमें भाई बुड्ढा जी के पोते भाई गुरदित्ता जी थे। आनन्दपुर आकर उन्होंने साहिबज़ादा गोबिन्द जी को एक बाज़ भेंट किया। जिस दसमेश को कभी किसी वक्त 'बाज़ों वाला' कहकर जाना जायेगा, उनको पहला बाज़ भाई गुरदित्ता जी की भेंट था। एक बार आनन्दपुर दर्शनों के लिए आये भाई गुरदत्ता जी वहीं टिक गये। उन्होंने लंगर की सेवा अपने ज़िम्मे ले ली। उसी तरह भाई कन्हैया जी आये। किसी मुर्शिद की तलाश में थे। 'कोई जन हरि पिउ देवै जोर' गुरवाणी की यह तुक कहीं से सुन ली थी तो बस इसी को रटते रटते आनन्दपुर साहिब आ पहुँचे। गुरु तेग़ बहादर के सामने हाज़िर हुए। किसी सेवा के लिए आग्रह करने लगे। गुरु महाराज ने भाई कन्हैया जी को पानी का एक घड़ा भर कर लाने को कहा। जब पानी का घड़ा कन्हैया भाई साहब लाये, गुरु महाराज ने अपने कर कमल धोए। बाक़ी पानी फेंक दिया। भाई कन्हैया को फिर घड़ा भर कर लाने को कहा गया। इस बार गुरु महाराज अपने मुँह पर छींटे मारे, बाकी पानी गिरा कर भाई कन्हैया को फिर घड़ा भर कर लाने के लिए कहा। भाई साहब ने जैसे

शुक्र किया हो। उन्हें गुरु महाराज की सेवा का अवसर मिला है। इसी श्रद्धा से गये और फिर पानी का घड़ा भर कर ले आये। इस बार गुरु महाराज ने अपने चरण धोए। बाक़ी पानी को बहा दिया और भाई कन्हैया को फिर घड़ा भर कर लाने को फरमाया। भाई कन्हैया 'सत् बचन' कह कर फिर पानी भरने चल पड़े। अब जब वे पानी भर कर लाये, गुरु महाराज ने पानी लेकर कुल्ली की और बाक़ी पानी को फेंकते हुए, फिर पानी का घड़ा लाने के लिए कहा। भाई कन्हैया गुरु महाराज की रज़ा में राज़ी पहले की तरह ख़ुशी अपने धन भाग समझते हुए फिर पानी का घड़ा भरने चल पड़े। इस बार वे जब घड़ा भर कर लाये, गुरु महाराज ने पानी का घड़ा एक तरफ़ रख लिया और एक कृपा भरी नज़र से भाई कन्हैया की ओर देखा, गुरु महाराज की एक नज़र से भाई कन्हैया का तन-मन धोया गया। भीतर-बाहर रौशनी हो गई।

इन्हीं दिनों भाई मनी सिंह जी भी आनन्दपुर आये और गुरु महाराज की सेवा में टिक गये। भाई मनी सिंह ने ग्रंथ साहब की नकलें तैयार करने का काम अपने ज़िम्मे लिया। शुद्ध पोथियाँ तैयार करने का काम बड़ी भारी ज़िम्मेदारी का था, जिसे वे पूरी तत्परता से निभाने लगे। अभी तक पोथी में शामिल की गई बाणी जोड़ कर लिखी जाती थी। शब्द एक दूसरे से जुड़े रहते थे, जिसके फलस्वरूप कहीं कहीं गुरसिखों को पढ़ने में कठिनाई होती थी। कई बार ऐसा भी होता था कि गुरबाणी के अर्थ और के और निकाले जाते थे। भाई मनी सिंह, जो एक महान विद्वान थे, उन्होंने एक पोथी तैयार की जिसमें शब्द अलग अलग अंकित किए गये। दक़ियानूसी वृत्ति रखने वाले सिक्खों ने जब यह परिवर्तन देखा तो उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। वे सोचने लगे, यह तो गुरवाणी का निरादर है। भाई मनी सिंह जी की बड़ी निन्दा हुई पर उन्होंने इसकी परवाह नहीं की।

यह देखकर कि आनन्दपुर एक बसता-रसता शहर बन चुका था, गुरसिख दूर दूर से आने लगे थे। एक तरफ़ होने के कारण मुग़ल सरदार को उस चुनौती का अहसास नहीं हुआ था जो यह नया शहर उनके लिए बनने जा रहा था। पठार के शिखर पर बसा आनन्दपुर शहर एक पूरा किले का किला था। साहिबज़ादे की पढ़ाई और सिखलाई का प्रबंध वसल्लीबख्श था। वे रोज़ शिकार के लिए जाते, इस छोटी उमर में उनके शौक देख देख कर आने जाने वाले लोग हैरान होते रहते। वे कैसे महान सूरमा बनने वाले

थे, इसकी सारे चिन्ह दिखाई देते थे। आने-जाने के साधन तसल्लीबख़्श न होने के कारण गुरु तेग़ बहादर जी गुरु बाबा नानक की तरह यह ज़रूरी समझते थे कि समय समय पर गुरसिखों के पास पहुँच कर उनकी आध्यात्मिक ज़रूरतों को पूरा किया जाये। यही सोच कर वे इतने बरस पूरब के अपने दौरे पर लगा आये थे। इनसे पहले गुरु नानक देव जी के बाद पूरब की ओर कोई और गुरु महाराज नहीं जा सके थे।

गुरु तेग़ बहादर पहले भी एक बार मालवा प्रदेश का दौरा कर चुके थे। इस दौरे के दौरान उन्होंने नवाब सैफ़ अली ख़ान जैसे श्रद्धालु और प्रशंसक बनाये थे। अब वे फिर इस प्रदेश के दौरे पर निकले। उन्होंने मालवे के साथ बांगर प्रदेश का दौरा करने की भी बात सोची।

गुरु महाराज के दौरे हमेशा लम्बे होते थे। उनकी अनुपस्थिति में साहिबज़ादा गोबिन्द की अपनी बुआ वीरां के बेटों, मामा सूरजमल के पोतों आदि साथियों के साथ मिलकर सतलुज दरिया में नहाने जाते थे। कसरतें करते, निशानेबाज़ी करते, नेज़े बाज़ी और तीरन्दाज़ी से अपना मन बहलाते। धीरे धीरे उनके साथ खेलने के लिए बच्चों की एक फौज हो गई। अपने साथियों को दो पक्षों में बाँट कर वे आपस में कुश्तियों, दौड़ों और घुड़सवारी के मुक़ाबले कराते।

एक बार मामा कृपाल चंद उन्हें सामने पहाड़ पर नैना देवी के मन्दिर में ले गये। फिर जब उनका मन करता, अपने साथियों के साथ सैर करते हुए वे उधर निकल जाते।

मोटी मोटी भँवरे जैसी काली आँखें, लाल दमकता हुआ मुखड़ा, चमकता हुआ नूरानी माथा, हृष्ट-पुष्ट सुडौल पट्ठे, इतने चंचल, इतने चुस्त, इतने नटखट, जिधर से गुज़रते लोग उनके मुखड़े की ओर देखते रह जाते। एक बार जहाँ से गुज़रते औरतें उनके दोबारा दर्शनों के लिए तरसती रहतीं। जब उन्होंने आना होता तो मुंडेरों पर बैठ कर इन्तज़ार करने लगतीं।

कई बार उनके साथी मिलकर गाने लगते। उनके गीतों के बोल शहर में हर किसी को याद हो जाते। जब उन्होंने किसी गली मुहल्ले में से गुज़रना होता, कमसिन लड़कियाँ उनके प्रिय गीत गा रही होतीं। उनकी पसन्द के गीतों को गा गाकर उनका स्वागत करतीं।

सुबह अमृत वेला में उठकर दंड-बैठकों मालिश, कसरत करने के बाद स्नान करके नितनेम से फारिग़ हो लेते। फिर पढ़ाई-लिखाई। शाम को खेलें

और शिकार। चोजी प्रीतम की कहानियाँ चारों तरफ़ फैल गई थीं। सब से अधिक चिन्ता अड़ौस-पड़ौस के कुछ पहाड़ी राजों को होने लगी, जिनकी रियासतों में साहिबज़ादा गोबिन्द और उनके साथी जा घुसते थे और ढेरों शिकार कर लाते थे।

(21)

गुरु तेग़ बहादर को रोज़ ख़बरें मिल रही थीं कि औरंगज़ेब जिस तरह की धमकियाँ दे रहा था, अब उसने उन बातों को कर गुज़रने का फ़ैसला कर लिया था। ग़ैर-मुसलमानों के खिलाफ़ जो क़ानून उसने बना रखे थे, अब सख़्ती से उन पर अमल करना शुरू कर दिया था। पूरे हिन्दोस्तान में कोई जनेऊ नहीं पहन सकेगा, कोई तिलक नहीं लगा सकेगा। सारे कलमा पढ़ेंगे। अपने इस इरादे को पूरा करने के लिए उसे कोई रुकावट मंज़ूर नहीं थी। और तो और, उसने अपने बेटे मुअज़्ज़म को, जो उसके बाद बहादुरशाह के नाम से मुग़ल तख़्त का वारिस बना, दुत्कार दिया था, औरंगजेब का निशाना दारूल-इस्लाम था और वह इसे किसी भी क़ीमत पर हासिल करना चाहता था। उसे न सूफियों की परवाह थी, न भक्तों की। वह तो शिया मुसलमानों का भी बैरी था। उन्हें जैसे तैसे काश्मीर के कोने में खदेड़ रहा था। यज्ञोपवीत उतारे जा रहे थे, तिलक मिटाये जा रहे थे। धड़ाधड़ बेसहारा लोग कलमा पढ़कर इस्लाम क़बूल कर रहे थे। उधर इस तरह की अंधेरगर्दी चल रही थी, इधर गुरु तेग़ बहादुर अपने श्रद्धालु गुरसिखों के आत्मिक बल के लिए आनन्दपुर से निकल कर सब से पहले सैफ़ाबाद में अपने भगत नवाब सैफ़अली खान के यहाँ पहुँच चुके थे। सैफ़ अली ख़ान को किसी आलमगीर की परवाह नहीं थी। पिछली बार की तरह इस बार भी उसने गुरु महाराज का श्रद्धापूर्वक स्वागत किया। वह तो उनके दर्शनों के लिए दिल्ली भी गया था, जब वे पूरब के दौरे से लौटे थे। गुरु महाराज में उसे इलाही नूर दिखाई देता था। उसकी श्रद्धा में कोई फ़रक नहीं आया था। गांव गांव घूम कर गुरु महाराज गुरु-सिक्खों को निहाल कर रहे थे। वे खास तौर पर जगह जगह नये कुएँ खुदवाते थे। पुराने तालाबों को साफ़ करवा कर लोगों को स्वच्छ पेय जल इस्तेमाल करने का तरीका सिखाते थे। अपनी मदद खुद करने की शिक्षा देते थे। गुरु महाराज घूमते हुए हड़िया नाम के गांव पहुँचे। इस गांव में प्लेग की बीमारी फैली हुई थी। लोग मक्खियों की तरह मर रहे थे। गुरु महाराज के आगमन की ख़बर सुनकर एक किसान उनके आगे हाज़िर हुआ।

विनती करने लगा—सत्गुरु कोई उपाय करो, गांव में महामारी आई हुई है। लोग मक्खियों की तरह मर रहे हैं। एक लड़का कल ही अपनी बीवी का गौना लेकर आया था और आज उसकी मौत हो गई है। गुरु महाराज ने सुना और कहा कि वह पहले अपने गांव के तालाब को साफ़ करे। उसी में जानवर नहाते हैं, उसी में चमार चमड़ा कमाते हैं। उसी का पानी लोग पीते हैं। यह सुनकर गांव के लोगों ने मिलकर अपने तालाब को साफ़ किया। गुरु महाराज ख़ुद इस कार सेवा में शामिल हुए। उन्होंने तालाब की गंदी मट्टी बाहर निकाली। जब तालाब साफ़ हो गया, गांव का बीमारी से भी छुटकारा हो गया। इस तरह जनता को निहाल करते हुए गुरु महाराज मौर गांव पहुँचे। इधर-उधर देखकर उन्होंने फ़ैसला किया कि वे एक अहाते में बहुत पुराने जंड के पेड़ के नीचे अपना क़याम करेंगे। उन्होंने अहाते के चौकीदार को बंद दरवाज़ा खोलने के लिए कहा। चौकीदार ने गुरु महाराज को बताया कि जंड के उस पुराने वृक्ष के नीचे भूतों का निवास था। इस लिए उस अहाते की चारदीवारी के भीतर कोई नहीं जाता था। गुरु महाराज ने अनसुनी करते हुए अहाते का दरवाज़ा खोलने के लिए फिर कहा। यह सुनकर गांव का चौधरी आया। उसने विनती की उस पेड़ के नीचे बैठी गऊ या भैंस तक नहीं बच सकती थी। चार दिन हुए एक जवान-जहान लड़का लापरवाही से जंड के नीचे जा बैठा था। देखते ही देखते वह उल्टा जा गिरा और उसने प्राण त्याग दिए। गुरु महाराज ने कहा, "जिन-भूत हमारे अपने मन की उपज होते हैं। हम इन्हें नहीं मानते।" गुरु महाराज ने उस जंड के नीचे अपना ठिकाना बनाया और कितने दिनों तक निर्विघ्न उठते-बैठते आराम करते रहे। वहीं श्रद्धालु आते थे। वहीं चरचा होती थी, वहीं शब्द कीर्तन होता था। किसी कम्बख़्त भूत-प्रेत की मजाल नहीं हुई कि वहाँ पंख भी हिला सके। गांव के लोग गुरु महाराज का लाख लाख शुक्र करते। जब वे गांव से चले, उस स्थान पर धर्मसाल स्थापित कर दी गई।

उन दिनों गुरु महाराज भटिंडा के नज़दीक सूलीसार नाम के गांव में ठहरे हुए थे। एक रात उनके ठिकाने पर डाकुओं ने हमला किया। उन्होंने चोरी करने के इरादे से गुरु महाराज के घोड़ों को खूंटों से खोल लिया। घोड़े खोल तो लिए पर वे हैरान हो गये, उन्हें आँखों से दीखना अचानक बंद हो गया। न आगे जा सकें, न पीछे हट सकें। इस तरह उन्हें निश्चल खड़े देखकर गुरसिखों ने उन्हें पकड़ लिया। उनकी मुश्कें बाँध ली। सारी रात

उनकी लातों से पिटाई हुई। अगली सुबह उन्हें गुरु महाराज के सामने पेश किया गया। सारी बात सुनकर गुरु महाराज ने अपने घोड़ों की लगामें डाकुओं के हाथों में पकड़ा दीं। डाकू यह देखकर सख़्त शर्मिन्दा हुआ और गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़े।

इसी तरह विचरते हुए गुरु महाराज बांगर प्रदेश में भीरजख नाम के गाँव में पहुँचे। गांव में घुसते ही वे सीधे एक बढ़ई के घर गये। बढ़ई उनका अनन्य श्रद्धालु था। उसने छतरी समेत गुरु महाराज के लिए दीवान तैयार किया था। कितने दिनों से वह सुबह-शाम दीवान के सामने धूप जलाकर गुरु महाराज की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि वे उसके घर में पधारें और उसकी मनोकामना पूरी हो। गुरु महाराज दीवान पर विराजमान हुए और गुरसिख को निहाल किया। इसी तरह कैथल में एक और बढ़ई गुरु महाराज से अपने घर में चरण डालने के लिए ज़िद करने लगा। गुरु महाराज ने उसे उपदेश देते हुए कहा कि जहाँ सिख संगत इकट्ठी हो उस स्थान को पवित्र समझना चाहिए। गुरु और गुरु की संगत में कोई फ़रक नहीं। वह स्थान सुभागा है जहाँ गुरु के सिख मिलकर ईश्वर की आराधना करते हैं। ऐसे दिन को गुरपूरब कहा जाता है। कैथल से चल कर गुरु महाराज वार्ना पहुँचे। उनकी संगत में बैठा एक गुरसिख थोड़ी देर बाद जाने की इजाज़त मांगने लगा। मालगुज़ार उसकी ज़मीन की पैमाइश करने आ रहा था। वह चाहता था कि यह काम वह अपने सामने करवाये। गुरु महाराज ने उसे बैठे रहने की हिदायत की। गुरसिंख उनकी रज़ा में राज़ी होकर संगत में ज्यों का त्यों बैठा रहा। उसकी गैरहाज़िरी में मालगुज़ार आया। उसकी जमीन की पैमाइश हुई। गुरसिख ज़मीन 125 बीघे थी पर मालगुज़ारी तै करने वाले अधिकारी की पैमाइश के मुताबिक वह ज़मीन केवल 25 बीघे दर्ज की गई। सरकारी अधिकारी ने दूसरी बार पैमाइश की। ज़मीन फिर 25 बीघे ही निकली। यह कौतुक देख कर गुरसिख ने मालगुज़ार को सच्ची बात बता दी। यह सुन कर मालगुज़ार भी गुरु महाराज के सामने हाज़िर हुआ और उनका श्रद्धालु बन गया। इस तरह गुरु महाराज बांगर प्रदेश में विचरते रहे। बांगर प्रदेश के एक तरफ़ राजपुताना है और दूसरी तरफ़ माझा। यहाँ के लोग मुसलमान पीर सखी सरवर के अनुयायी थे। हर तरह के वहमों, भरमों और अंधविश्वासों में ग्रस्त थे। गुरु महाराज ने उन्हें एक ईश्वर की भक्ति और सच्चा-सुच्चा जीवन व्यतीत करने की सलाह दी। उन्हें अच्छी खेती करने के तरीके

सिखाये। कुएँ खोद कर पानी निकालने के लिए कहा। छप्पड़ों और गड्ढों का पानी इस्तेमाल करने से रोका। सारे का सारा इलाक़ा गुरु महाराज के बताये रास्ते पर चलने लग पड़ा। घोड़े पर सवार आभा-मंडल वाले एक परमात्मा की मूरत इन लोगों के मन में बस गई। इस तरह उनके सारे काम पूरे होने लगे।

मालवे और बांगर देश में एक अनोखा परिवर्तन आ रहा था। सरकार के जासूस इन सब बातों की ख़बरें लगातार दिल्ली भिजवा रहे थे।

(22)

जब गुरु तेग़ बहादर जी अपने पूरब के दौरे से लौटे, आलम आनन्दपुर का प्रतिष्ठित शहरी बन चुका था। उसने अपने लिए एक आलीशान हवेली ही नहीं बना ली थी, वह शहर के जीवन में पूरी तरह से घुलमिल चुका था। गुरु साहब उसे अपने शहर में देखकर खुश हुए थे और कई मुसलमान श्रद्धालुओं के साथ नितनेम से भजन पाठ करता, कीर्तन सुनता—अपना जनम सफल कर रहा था। मुसलमान भी थे, गुरु महाराज के अनुयायी भी थे।

गुरु महाराज इस सच्चाई से परिचित थे कि पिछली बार जब उन्हें औरंगज़ेब के फरमान के मुताबिक गिरफ्तार किया गया था, अगर उन्हें हथकड़ी नहीं लगाई गई थी तो यह आलम की शराफ़त थी। औरंगज़ेब का तो हुक्म था कि सिख गुरु हथकड़ी-बेड़ी डालकर उसके सामने पेश किया जाय। इसके विपरीत आलम ने हर मुमकिन सुविधा गुरु महाराज को पहुँचाई थी। दिल्ली पहुँचकर अपने आप को भयंकर ख़तरे में डालते हुए, उसने गुरु तेग़ बहादर जी को राजा राम सिंह के यहाँ शाही मेहमानों की तरह रखा और फिर राजा राम सिंह की सहायता से उनकी रिहाई करवा ली। औरंगज़ेब का तो इरादा था कि क़ाज़ियों से फतवा दिलवाकर उन्हें फांसी लगा दी जाये। राजा राम सिंह ने आलमगीर को समझाया, आलम ने क़ाज़ियों को दलीलें देकर चुप कराया। आलम सोचता था, जो धर्म वीरां जैसी उसकी दीवानी औरत को उससे छीन सकता था, उसमें कोई जादू ज़रूर था। कोई ऐसी सच्चाई थी जो उसके भाग्य में अभी नहीं आई थी।

इतने बरसों तक मुग़ल दरबार का अहलकार रहने के बाद आलम की मुग़ल दरबार के बारे में जानकारी बड़ी मूल्यवान थी। गुरु महाराज और उनके निकटवर्ती सिक्खों के साथ अक्सर औरंगज़ेब के चरित्र के बारे में वार्तालाप होता था। आलम की धारणा थी कि औरंगज़ेब अपने निजी जीवन

में मेहनती, संयमी, ख़ुदापरस्त और पाक-साफ़ था। बाक़ी मुग़ल बादशाहों से उलट उसमें इस्लामी शरह के मुताबिक अपने हरम में चार बीवियों से अधिक बीवियाँ नहीं रखी थीं। शराब को हाथ तक नहीं लगाता था। नाच-गाने के साथ उसने कभी कोई वास्ता नहीं रखा था और तो आर उसके अहलकार घर घर में घूम कर जहाँ भी उन्हें कोई साज़ दिखाई देता, फौरन ज़ब्त करके आग के हवाले कर देते। क़ायदे-कानून का इतना पाबंद था कि सभी अहम मसलों पर अपने हाथों से हुक्मनामा लिखता था। फ़ारसी, अरबी, तुर्की और हिन्दी का विद्वान, उसकी भाषा अत्यन्त सरल होती थी। अक्सर अपने लेखन में फारसी के शेर और अरबी की आयतों का प्रयोग करके उन्हें संवारता रहता। किताबें पढ़ने का शौकीन, कातिब के तौर पर वह लासानी था। जब भी फुरसत मिलती वह या तो कोई किताब लेकर बैठ जाता या क़ुरान शरीफ़ की किताबत करने लग जाता। उसके हाथ से किताबत की हुई क़ुरान शरीफ़ की जिल्दें लोग ख़ुश होकर ख़रीदते थे। इस तरह वह अपने निजी जीवन को चलाता था। शाही खज़ाने में से एक कौड़ी तक अपने ऊपर ख़र्च नहीं करता था।

हदीस और शरह का ज्ञाता, वह अपना निजी जीवन इस्लाम के सिद्धान्तों के मुताबिक व्यतीत करता था। नमाज़-रोज़े का पाबंद, मजाल है किसी इस्लामी परम्परा से भटक जाये। आम मुसलमानों में उसकी छवि एक पाकबाज़ इन्सान की थी; उसे ज़िन्दा पीर के नाम से याद किया जाता था।

यह सब होते हुए, वह एक तेज़ दिमाग़ का सेनापति भी था, एक निडर सूरमा। पन्द्रह बरस की उमर में ही उसने अकेले एक बिगड़े हुए मस्त हाथी का मुकाबला करके उसे पछाड़ दिया था। युद्ध की चालों को समझता था और किसी भी हथियार के इस्तेमाल से उसे सन्तोष नहीं होता था। ठंडे मिज़ाज का था, बड़ी से बड़ी उलझन के समय भी वह अपना मानसिक संतुलन नहीं बिगड़ने देता था। अपने दुश्मनों की कमज़ोरियों से हमेशा फायदा उठाता था और ज़रूरत पड़ने पर बदतर से बदतर कुटिल नीति का प्रयोग करने से परहेज़ नहीं करता था। अपने इरादे का पक्का, जिस बात का फ़ैसला करता उसे पूरा करके सांस लेता।

चूँकि हर काम अपने हाथ से करके उसे तसल्ली होती थी, उसके मददगार ख़ाली बैठे मक्खियाँ मारते रहते। इसके फलस्वरूप दरबार में अहलकारों को काम करने की आदत नहीं रही थी। ख़ाली बैठे निंदा-चुग़ली

में उनका वक्त गुज़रता था। हकूमत की पूरी बागडोर औरंगज़ेब के अपने हाथों में थी।

संगीत, नाटक, नृत्य आदि कलाओं की अनुपस्थिति में पूरी हकूमत में एक अजीब तरह की अफ़सुर्दगी का आलम था। कोई ऊँची आवाज़ में हँस नहीं सकता था। ऊँचा बोल नहीं सकता था। दस बार सोच कर फिर लोग मुँह खोलते। औरंगज़ेब ने लोगों की भलाई या प्रजा की आर्थिक हाल सुधारने की ओर कभी विशेष ध्यान नहीं दिया था। सुन्नी सम्प्रदाय के मुसलमानों के सिवाय उसकी किसी और धर्म या क़बीले के लोगों में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

नतीजा यह कि मुल्क में ग़ुरबत बढ़ गई थी। बदअमनी फैल रही थी। चोरों और डाकूओं का बोल बाला था। सड़कें टूट रही थीं। आने-जाने के साधन निकम्मे होते जा रहे थे। लोग डर के मारे घर से नहीं निकलते थे। हकूमत का सारा ताना-बाना बिगड़ गया था। लगता था, औरंगज़ेब के आँखें मूंदने के बाद मुग़ल साम्राज्य का ख़ात्मा हो जायगा।

आलम का विश्वास था कि इन हालात में औरंगज़ेब इस्लाम को फैलाने की तरफ़ ज़्यादा ध्यान देगा ताकि वह बाहर के इस्लामी देशों की खुशी हासिल कर सके और वही बात हो रही थी। शहंशाह ने जैसे इस्लाम की तबलीग़ का बीड़ा अपने सर पर उठा लिया था। आलमख़ान हमेशा आस पास सभी को सावधान करता रहता। जब गुरु महाराज मालवा और बांगर देश के दौरे पर निकले, आलम ने उन्हें रोकने की कोशिश की। पर गुरु महाराज तो 'भै काहू को देत नहीं, नहीं भै मानत आन।' के उसूल को मानने वाले थे।

"औरंगज़ेब बड़ा तास्सुबी (संकीर्ण दृष्टि वाला) है", आलम बार बार याद कराता, "वह जो भी करे वही थोड़ा है। मथुरा के नज़दीक तिलपट के एक जाट गोकल ने सर उठाया। शहंशाह ने फ़ौज भेज कर उसके टुकड़े टुकड़े करवा दिए। उनकी औरतों को पकड़ कर मुसलमानों में बाँट दिया। पांच हज़ार जाटों को मौत के घाट उतारा। सात हज़ार को क़ैदी बना लिया। यह घटना मथुरा के केशव राय मन्दिर को गिराकर और मथुरा का नाम इस्लामाबाद रखने से पहले की है। यह मन्दिर राजा नरसिंह देव ने 33 लाख रूपये ख़र्च के बनवाया था। इसके सोने के गुम्बदों को आगरे से देखा जा सकता था।

गुरु महाराज जैसे अनसुनी कर रहे हों।

"और फिर नारनौल में जब किसी सतनामी की मुग़ल सिपाही से झड़प हो गई, औरंगज़ेब ने दो हज़ार सतनामियों को क़त्ल करवा दिया। राजस्थान और हरियाणा में सतनामियों का नामोनिशान मिटा दिया।"

गुरु महाराज से औरंगज़ेब की कौन सी करतूत भूली हुई थी। सरहिन्द के ख़िज़राबाद परगने में बुरीयाँ नाम के शहर में एक सिख धर्मशाला को गिराकर उस स्थान पर मस्जिद बनाई गई थी। लेकिन सिक्ख कौन से कम थे। कुछ दिन बाद सिक्खों ने मस्जिद के मुल्ला को मौत के घाट उतार कर अपना बदला ले लिया।

जो कुछ भी औरंगज़ेब कर रहा था, वह गुरु महाराज के मुसलमान मुरीदों को उनसे विमुख नहीं कर सका था। इनमें पीर भिक्खण शाह था। जब शहज़ादा गोविन्द अपने शहर चक्क नानकी में आये तो पीर उनके दर्शनों के लिए आया था।

भिक्खण शाह के अलावा सैफ़ाबाद का नवाब, सैफ़ खान गुरु महाराज का अनन्य भक्त था। इसी तरह समाना के नज़दीक गढ़ी नज़ीर का हफ़ीजुल्ला ख़ान, समाना गुलाम मोहम्मद बख़्श और हसनपुर के शेख़ गुरु महाराज के घर का पानी भरते थे। शहंशाह औरंगज़ेब यह सब कुछ कैसे गवारा होता ?

आलम की सबसे बड़ा आशंका यह थी कि उन दिनों शहंशाह औरंगज़ेब हसन अब्दाल (पंजा साहब) पंजाब में छावनी डाल कर बैठा था। सरहदी सूबे में खुशाल ख़ान खटक ने अफरीदियों से मिलकर बग़ावत कर दी थी। आलमगीर इस बग़ावत को खुद दबाने के लिए आया हुआ था। आलम को डर था कि एक तो औरंगज़ेब को रोज़ाना यह ख़बरें पहुँचती होंगी कि सिक्ख गुरु साहब ने पंजाब में अपना प्रचार जारी रखा है; दूसरा यह कि यहाँ के स्थानीय अहलकार शहंशाह को खुश करने के लिए हिन्दुओं को परेशान करना शुरू कर देंगे।

और ऐसा ही हो रहा था। ब्राह्मणों को क़ैद कर लिया जाता था ताकि बाकी ज़ातों के हिन्दू डर के मारे इस्लाम क़बूल करें।

फिर मालवा, जहाँ का दौरा करके गुरु महाराज अभी अभी लौटे थे, दिल्ली के सूबे का एक हिस्सा था। इस इलाक़े में राजनैतिक गतिविधियों की सूचना सीधी शहंशाह को भेजी जाती थी। सुनने में आया था कि स्थानीय

अहलकार हर तरह की मनगढ़ंत ख़बरें भेज रहे थे—कि गुरु महाराज धड़ाधड़ लोगों को सिक्ख धर्म में शामिल कर रहे हैं। लाखों रुपये उगरा रहे हैं। गांव में कहीं कुएँ खुदवाते हैं, कहीं तालाब बनवाते हैं, ताकि जनता में उनकी साख बनी रहे।

आलम की सब शंकाएँ सच्ची थीं, लेकिन गुरु महाराज अपनी धुन के पक्के थे। कम बोलते, अधिक समय भजन-पाठ में गुज़ारते और किसी किस्म का ख़ौफ़ अपने पास न फटकने देते।

आलम यह सब कुछ देखता और गुरु घर के प्रति उसकी श्रद्धा और बढ़ती जाती।

(23)

आलम को एक आशंका सता रही थी।

अमृतसर से न वीरां, न कमाल की खैरीयत की कोई खबर थी। गुरु महाराज के लौटने से पहले वीरां बेशक एक बार बच्चों को लेकर चक्क नानकी गई थी। पर कमाल के दौरे से लौटने के बाद उन्होंने जैसे चुप साध ली थी। कभी कोई संदेशा नहीं भेजा, न ही उनमें से किसी ने इस तरफ फेरा डाला था।

आलम हैरान था, जो कमाल इतनी दूर गुरु महाराज के पूरब के दौरे में उनकी सेवा में रहा, अब अमृतसर कैसे चुप साध कर बैठ गया था!

इधर गुरु महाराज थे, कीरतपुर, परतापपुर, अमृतसर के सोढियों को 'नीना' कह कर भूल चुके थे। उनसे कोई लेन-देन नहीं, कोई वास्ता नहीं। जहाँ तक संभव होता, न वे ख़ुद, न उनका कोई और उनकी तरफ़ रुख़ करता। इन लोगों का बस एक ही काम था, गुरु महाराज की निन्दा करना। जो भी जिसके हाथ में आया उस पर क़ब्ज़ा जमाकर बैठ गया था। उनमें न गुरु घर का कोई बड़प्पन था, न कोई सद्आचार-विचार। तंग नज़र, छोटे दिल, गुरु बाबा नानक की गद्दी का नाम बदनाम करते थे।

गुरु महाराज अक्सर याद कराते, इनमें से कोई लाहौर में तपते तवे पर, उबलती देग में बैठने के लिए तैयार है ? अब कोई भाणा मानने के लिए तैयार है ? यह कहते हुए गुरु महाराज आँखें मूंद कर जैसे समाधि में लीन हो जाते।

अमृतसर से जब इतने दिनों से कोई ख़बर नहीं आ रही थी, जिस दिन गुरु महाराज मालवे के दौरे पर निकले आलम यह सोचकर कि वह पता तो करे आख़िर अमृतसर में ख़ैरियत तो थी, खुद वहाँ गया।

जिस बात का उसे डर था, वही अनर्थ वहाँ हो चुका था। कमाल वीरांवाली को छोड़कर लाहौर चला गया था। जिस दिन उसे पता चला कि आलम इतनी देर तक अमृतसर में रहा था और उसके लौटने की ख़बर सुनकर चक्क नानकी के लिए चल दिया था, वह उखड़ा-उखड़ा, परेशान-परेशान रहने लगा। न खाने की सुध, न पीने की होश। घर में एक तनाव का वातावरण बना रहता। न वीरां से कोई वास्ता रखता, न बच्चों को सीधे मुंह बुलाता। बच्चे अब अबोध नहीं रहे थे, बड़े हो गये थे। हर बात को समझने लगे थे।

फिर वीरां से न रहा गया। एक दिन घर में जब वे अकेले थे, वह फूट पड़ी।

"मुझे पता है, इतने दिनों से तेरा मुंह क्यों फूला हुआ है। आलम का अमृतसर आना और हमारा एक-दूसरे से मिलना तुझे गवारा नहीं।"

कमाल चुप। "पहली बात यह कि उसे इस बात का ख़्वाब में भी ख़्याल नहीं था कि मैं अमृतसर में हूँ। दूसरी बात यह कि तू गुरु महाराज के साथ उनकी सेवा में अपना जन्म सफल कर रहा था, इसका भी उसे कुछ पता नहीं था। वह तो गुरु की नगरी में एक यकीदतमंद की हैसियत से आया था।"

यह सुन कर कमाल अपने होठों को काट रहा था। "और अचानक एक दिन दरबार साहब में [illegible] मुलाक़ात हो गई", वीरां बोली।

"और फिर तुम लोगों ने एक साथ रहना शुरू कर दिया", कमाल ने दांत पीसते हुए एक वहशत में कहा। उसकी आँखें गुस्से से दहक रही थीं, जैसे उसकी पुतलियाँ फूट कर बाहर निकल पड़ेंगी।

"काश ऐसा होता।" वीरां उसके चेहरे के हाव-भाव देखकर छलछल आँसू बहाती फूट पड़ी। "काश, मेरी तरह वह भी कमज़ोर होता ! मैं तुझे कैसे यक़ीन दिलाऊँ तेरी वीरां की तरह ज़लील नहीं। उसे गुरु महाराज का स्पर्श प्राप्त हुआ है। वह इन्सान नहीं फरिश्ता है।"

"यह वही आलम है जिसके साथ तू दिल्ली में रहती रही है ? जिसके बारे में तूने मुझ से कहा था—न तू मुझसे पिछले दिनों के बारे में पूछेगा, न मुझे झूठ बोलना पड़ेगा—शराबी और क़बाबी, जिसकी रातें नाचने और जाने वाली फाहिशा औरतों की संगत में गुज़रती थीं ? वह जिसकी संगत में तूने नाचना और गाना भी सीखा था।"

"हाँ, बिल्कुल वही, जिसने इतने बरस इस बदनसीब के सत्त और धरम

को बनाये रखा।" वीरां लहू के आँसू रो रही थी। "वही, जिसने इतने दिन मेरे बच्चों को रब्ब की तरह पाला।"

"और तेरी रातों को रंगीन बनाये रखा ?"

कमाल के मुँह से यह ज़हरीले बोल निकले ही थे कि वीरां ने अपने हाथ में पकड़ी कंघी उठाकर कमाल के मुंह पर दे मारी। कंघी के दांत उसके गाल में धँस कर रह गये। तड़-तड़ लहू बहने लगा।

"हाय मैं मरी !" कहते हुए वीरां आगे बढ़कर कमाल का उपचार करने लगी। ख़ून था कि बहना बंद ही नहीं हो रहा था। वैद्य जी आये। कंघी के तेज़ दांत उसके मांस में धंस गये थे। कई दिनों तक मरहम पट्टी होती रही।

और फिर अपनी आदत के मुताबिक एक दिन वह किसी से कुछ कहे या बताये बग़ैर चुपचाप घर से निकल गया। वीरां ने चारों तरफ़ उसे तलाश किया। चक्क नानकी तो वह जा नहीं सकता था। आख़िर पता लगा कि वह लाहौर पहुँच गया था। "लाहौर कौन सा दूर है", आलम फ़िक्रमन्द होकर बोला। "तू जाकर उसे समझा बुझा कर वापस ले आती, सच तेरी तरफ़ है। अड़ौसी-पड़ौसी इसकी तस्दीक कर सकते हैं।"

"मैं गई थी। एक नहीं दो बार। मैंने उसकी मिन्नतें कीं। हर उपाय मैंने किया सिवाय अपना कलेजा चीर कर दिखाने के। उसे विश्वास दिलाती रही कि मैं पूरी तरह वैसी ही थी जैसी वह मुझे छोड़ कर गया था। पर उसे विश्वास ही नहीं हुआ। क़सूर सारा तेरा है।"

"वह कैसे ?" आलम तड़प तड़प उठा।

"इतना भी कोई शरीफ़ होता है, जितना तू साबित हुआ ? इतना भी कोई सच को अपनाता है जितना तूने सच का साथ दिया है ? इस तरह भी कोई अपने आप को गुरु महाराज पर न्यौछावर करता है, जैसा तूने किया?"

"मैं लाहौर जाकर उसे समझाऊँगा।"

"कोई फ़ायदा नहीं। यह बाज़ी मैं हार चुकी हूँ।"

"यह कैसे मुमकिन है ?"

"मैंने उससे कहा, तूने मुझे स्वीकार किया जब मैं किसी और की चबाई हुई हड्डी थी। दिल्ली की गलियों में धक्के खाती रही और अब जब मैंने तेरी याद में इतने बरसों तक तेरे लिए समर्पित रही हूँ, हर सांस के साथ तेरी प्रतीक्षा की है। तेरे लिए दोनों वक्त दरबार साहब हाज़िर होकर हाथ जोड़ती रही हूँ, अरदास करती रही हूँ और तूने मुझे इस तरह दुत्कार दिया है ?"

"तो फिर वह क्या कहने लगा ?"

"जैसे मेरे मुंह पर थूका हो। कहने लगा, क्या यह सच नहीं कि पाठशाला में बेटे के पिता का नाम तूने आलम दर्ज करवाया है ?"

"उसे कैसे यह पता लग गया ?"

"आलम, मेरी किस्मत में रंडापा लिखा हुआ है। मैं जो भी करूँ, अब मैं सुहागन नहीं हो सकती, और मैंने अपनी किस्मत के आगे हार मान ली है।" वीरां की आँखों में फिर आँसू फूट आये।

"जिस आदमी के लिए तेरे मन में इतनी यक़ीदत है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। मैं लाहौर जाऊँगा।"

"बेकार है, आलम। तू कमाल को नहीं जानता।"

"फिर भी कोशिश करने में क्या हर्ज है ?"

"अब वह आ भी जाये तो मैं उसे मुंह नहीं लगाऊँगी। इस तरह के मर्द के साथ कोई ग़ैरतमन्द औरत नहीं रह सकती। मैं कंधे पर झोली लटका कर प्यार की भीख मांगने नहीं जाऊँगी।"

"आख़िर तेरा क़सूर क्या है ? यह सज़ा तुझे क्यों मिले ?"

"मैं क़सूरवार हूँ आलम। अगर कमाल की गैरहाज़िरी में मैं नहीं गिरी तो इसका सेहरा तेरे सर पर है। मैं तो कभी की बह चुकी होती। मैं तो कब से अपनी चादर मैली कर चुकी होती।"

"मुझ से ज़्यादा अपनी कमज़ोरियाँ कौन समझता है। यह तो गुरु महाराज की मेहर थी। उनकी कृपा दृष्टि होनी चाहिए। तुझे क्या पता मैंने किस किस तरह हाथ नहीं जोड़े। माथा रगड़ रगड़ कर मेरी पेशानी पर चटाख़ पड़ गये। तुझ जैसी हसीन औरत और फिर जिन हालात में हम थे, अपने दामन को बचा सकना गुरु महाराज की कृपा के बिना हर्गिज़ हर्गिज़ मुमकिन नहीं था। उन्होंने हर बार हाथ से थाम कर मुझे बचाया और इस तरह तेरा सत्त-धरम बनाये रखा।"

"हाय ! यह रब्ब कैसा है ? जब मेरा अंग अंग मैला था, जब मुझे ख़ुद अपने रोम रोम से बदबू आती थी, तब उसने मुझे सड़ रहे, बदबूदार गड्ढे में से बांह का सहारा देकर निकाला और मुझे छाती से लगा लिया। और आज जब मैं इतनी देर से सच्ची-सुच्ची, सत्त और धरम के चुल्लू संजोए पानी से नहा-धोकर, साफ़-सुथरा वफ़ा का उजला दुपट्टा सर पर लिए उसकी राह देख रही थी, वह मुझे ठुकरा कर चला गया। सुनते हैं आपके गुरु महाराज

सर्वज्ञ हैं, कहाँ है उनका इन्साफ़ ?"

"तुझे ऐसे नहीं कहना चाहिए। तेरे मन में जो आता है उगल देती है। गुरु महाराज तेरे भी उतने ही हैं जितने मेरे, बल्कि तेरे ज़्यादा। मैं तो हाल ही में उनकी शरण में आया हूं। तूने तो जन्म से ही उनकी दहलीज़ घेर रखी है।"

"झूठ है। मेरा कोई गुरु नहीं। न मैं किसी की दहलीज़ पर बैठी हूँ। मेरी मां की मां की मां ने बाबा नानक को अपने आंगन से ख़ाली हाथ लौटा दिया था। मेरा उस दहलीज़ से कोई वास्ता नहीं है।"

वीरां के यह बोल सुनते ही आलम ने अपने कानों में अँगुलियां दे लीं।

(24)

आलम बाज़ नहीं आया।

पहला मौका मिलते ही वह लाहौर चल पड़ा। लाहौर कौन सा दूर था। कहीं भी हो, आलम सोचता गुरु अर्जन देव जी की शहीदी के दिन उनकी समाधि पर कमाल ज़रूर वहाँ हाज़िर होगा।

आलम को लाहौर में आये ज्यादा दिन नहीं हुए थे। इन दिनों लाहौर में क़हरों की गरमी पड़ रही थी। दिन निकलते ही लू चलने लगती। सूरज नेज़ा भर भी ऊपर ढ़ता तो सड़कों पर आवाजाही नाम मात्र को रह जाती। जगह जगह पानी के प्याऊ बने हुए थे। लोग घने पेड़ों के नीचे चारपाइयाँ डालकर अपनी जगह घेरने की जल्दी में होते। शर्बत की दुकानों पर रौनक बढ़ती जाती। मवेशी हाँफने लगते। कौओं की आँखें बाहर निकलने को हो जातीं और पंछी चोंचें खोले पंख ढीले छोड़कर जैसे झुलसने के लिए अपने आप को चिलचिलाती धूप के हवाले कर रहे हों।

गुरु अर्जन देव जी की शहीदी वाले दिन आलम सुबह का यही सोच रहा था—इस शहर में उस दिन कितनी भयंकर गर्मी पड़ रही होगी, जब पांचवें गुरु अर्जन देव को लाल तपते हुए तवे पर बिठाया गया था। उनके कोमल शरीर पर बेल्चे से भर भर कर कढ़ाहे में तपाई हुई रेत डाली गई थी। फिर उन्हें उबलते पानी की देग में बैठने के लिए कहा गया और गुरु महाराज बिना ऐतराज़ किए इन सारी यातनाओं को भाणा मान कर झेलते रहे। उन्होंने उफ़ तक नहीं की।

यह 'भाणा' क्या होता है ? आलम को कुछ समझ नहीं आ रहा था।

उस दिन गुरु अर्जन देव जी की समाधि देहरा साहब पहुँच कर आलम

और भी दुखी हुआ। इतने महान शहीद की समाधि सिर्फ मिट्टी की एक ढेरी थी, और कुछ भी नहीं। उसके नज़दीक एक पुराने कीकर के पेड़ के पास कच्ची ईटों की एक छोटी-सी कोठरी थी, जिसमें रहने वाला कोई गुरसिख सुबह-शाम समाधि पर हाज़िरी भरता था, पाठ करता था। शाम को दिया जलाता था, सुबह फूल चढ़ाता था। पर इतनी हिम्मत किसी में नहीं थी कि इस पवित्र स्थान पर धरमसाल बना दे। शहीदी का दिन जानकर सिक्ख संगत एक छोलदारी लगाकर इकट्ठी हुई थी। एक तरफ पानी की छबील लगी थी, दूसरी तरफ़ पत्थर इकट्ठे करके बनाये चूल्हों पर लंगर तैयार हो रहा था।

भीड़ काफ़ी थी। पर हर काम जल्दी जल्दी निबटाया जा रहा था, कहीं कोई मुग़ल अहलकार आकर विघ्न न डाल दे। औरंगज़ेब के राज में कुछ भी हो सकता था।

कीर्तन खत्म हुआ तो एक सज्जन उठ कर संगत को संबोधित करने लगा—

"प्यारी गुरु रूप/सजाई साध-संगत ! मैं गुरु महाराज का एक निमाणा गुरसिक्ख हूँ। मुझे आपके शहर में आये बहुत अरसा नहीं हुआ। एक तरह से यह मेरा शहर भी है। मेरा जन्म यहीं नज़दीक के गांव इच्छरा में हुआ था जहाँ भैरों का मन्दिर है। कई बरसों बाद इस शहर में लौट कर मुझे यहाँ बसने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मुझे यह देख कर दुख हुआ है कि जिस शहर में मुग़लों ने अपने इतने शानदार मक़बरे बनाये, वहाँ गुरु अर्जन देव की समाधि पर हम एक छप्पर तक नहीं डाल सके। यह एक ऐसी भूल है कि हमें चुल्लू भर पानी में डूब कर मरना चाहिए।"

"यह काम मैंने अपने ज़िम्मे लिया है। मैं यहाँ पांचवें पादशाह की अज़मत के बराबर की धरमसाल बनाऊँगा, जहाँ देश-देशान्तरों से दर्शनों के लिए यात्री आया करेंगे और श्रद्धा के फूल चढ़ायेंगे। बेशक यह पवित्र स्थान मुग़ल क़िले के पड़ौस में है, बीच में सिर्फ़ सड़क पड़ती है, पर हमारे लिए इस स्थान की महानता और महत्त्व मुग़ल क़िले से ज़्यादा है। यहाँ गुरु महाराज की याद में बना भवन अपनी मिसाल आप होगा............"

ये शब्द उस शख्स के मुँह में ही थे कि एक बेहद हसीन लाहौरन उठी और उसने अपनी कलाइयों में से सोने के गोखरु और कानों में से हीरे मोती जड़ी बालियाँ उतार कर उस गुरु शिक्ख को दे दी। फिर क्या था पंजाबिनों

ने अपने चौक और कर्णफूल, पीपल पत्तियाँ और नये, बेसर और लौंग, हमेले और फंगल, मेखले और पायलें, चुड़ियाँ और झुमकों के ढेर लगा दिये। 'धन्य गुरु नानक', 'धन्य गुरु अर्जुन' 'धन्य गुरु तेग बहादुर' की जय के नारे जैसे आकाश को चीर रहे हों।

इतने में अचानक मुगल सिपाहियों की एक टुकड़ी दगड़-दगड़ करती हुई वहाँ आ गई और उन्होंने सारी साधु-संगत को घेर लिया। लाठियों और बन्दुकों से वे लैस थे। कुछ पैदल सिपाही थे कुछ घोड़ों पर सवार थे। आते ही उन्होंने दीवान के मंच पर खड़े वक्ता को गिरफ़्तार कर लिया। सँगत ने विरोध किया तो मुगल सिपाहियों ने चारों तरफ लाठियां चलाती शुरु कर दी। उनके साथ शिकारी कुत्ते थे जिन्होने भौंक-भौंक कर इक्ट्ठी हुई संगत को तितर-बितर कर दिया। आँख झपकते ही समाधि पर ना कोई बन्दा ना बन्दे क ज़ात दिखाई दी।

यही नहीं, जाने से पहले मुगल सिपाही समाधि की सेवा करने वाले गुरु सिक्ख की कच्ची कोठरी भी गिरा कर गये।

अगले दिन सुबह चूना मण्डी वाली धर्मशाला में जब गुरु सिक्ख इकट्ठे हुये हर तरह की आवाज़ें सुनने में आ रही थीं।

"जो कोई भी था उसे इस तरह की आवाज नहीं उठानी चाहिए थी। आज कल ऊपर से वक्त कैसा आ गया है।"

"पर ये कौन था? काई नया आया लगता था।"

इसका नाम 'कमाल है' ये नया नहीं। ये बरकते का बेटा है, वही जिसने अपने पति मुफ्ती की हत्या की थी। इस लिए कि उसने गुरु अर्जुन देव की शहीदी का फतवा क्यों दिया।

"अब समझ में आया, उसकी रगों में किस शेरनी का खून था।" "बेचारे को पकड़ कर ले गये हैं, पता नहीं भीतर कब तक कैद रहेगा।"

"सद के जाये उस पंजाबिन के, जिसने अपने गीयह और बालियाँ उतार कर सबसे पहले उसके हाथ में पकड़ाई।"

"वो भी कोई मामूली और नहीं थी। भाई दूनी चन्द की दोहती है। इसकी माँ शक्ति भी बेहद दान दिया करती थी। ये धर्मशाला दोबारा उसी ने बनवाई थी।"

"आज कल जब आस-पास बड़े बड़े मन्दिर गिराये जा रहे हैं और मस्जिदें बनाई जा रही हैं। इस तरह का प्रस्ताव नहीं रखना चाहिए जैसा

उस वक्ता ने सुझाव दिया था।"

"क्यों नहीं?" आलम से रहा न गया और वह बीच में बोल उठा।

"लगता है। आप बाहर से नये-नये आए हैं, हम तो हुकूमत से डर कर वक्त काटे जा रहे हैं।"

"ये भी कोई बात हुई हमें इस सब बातों के खिलाफ आवाज उठानी होगी।" आलम गुस्से में मुँह से झागा फेंक रहा था।

"आप नहीं जानते सोम नाथ का दूसरा मन्दिर भी धवस्त कर दिया गया है। सिर्फ अम्बेर में 300 मन्दिर गिराये गये हैं। बनारस और मथुरा के प्रसिद्ध मन्दिर मिट्टी में मिला दिया गया है। मन्दिरों की मूर्तियों को मस्जिदों के दरवाजे के नीचे दबाया गया है ताकि नमाजी पाँचों वक्त उन्हें लताड़ कर उनके ऊपर से गुजरा करें। इसका तो इलाज ढूँढना पड़ेगा।"

"इलाज क्या हो सकता है? हमारी अपनी बावली को गिरा कर उसे कूड़े-करकट से भर दिया गया है। गुरु महाराज की बनाई बावजी कर यह अन्त हुआ।"

"हमें तो अपने इस गुरुद्वारे में ही मिल कर बैठ ने दें तो शुक्र मनाना चाहिए।"

"सुना है। वे लोग आज सुबह माला बीबी को भी घर से पकड़ कर ले गये हैं।"

"दुनी चन्द की दोहती माला बीबी को काई कुछ नहीं कहेगा। इसी में पूछ-ताछ करके वापस भेज देंगे।"

आखिर आलम से ना रहा गया वह बोला, "इसी में हम भूख हड़ताल तो कर सकते हैं। इस तरह जुल्म को सहते जाना कायरता है।"

"इसका कोई फायदा नहीं है।"

"फायदा है" "वे हमारी इस धर्मशाला पर भी कब्जा कर लेंगे। कल इस आँगन में वे हाथ धो रह होंगे और इस कोठरी में नमाज पढ़ रहे होंगे। देखते नहीं शासन ने वजीर खान की कैसी शानदार मस्जिद बनायी है।"

"माला के भाई चमन ने भूख हड़ताल की और अपनी जान गवाँ ली।" और एक सिक्ख बोला।

"मेरी तो यह राय है कि एक जत्था आनन्दपुर जाकर गुरु महाराज को सारी घटना के बारे में बताये और जैसा वे आदेश दें, हमें वैसा ही करना चाहिए।"

"ये सुन कर सब ने इस राय से अपनी सहमति प्रकट की।"

उस दिन अपने कमरे में अकेला बैठा आलम बेहद उदास था। उससे ना कुछ खाया गया, ना कुछ पिया गया। बार बार अपने आप से कहता, बाब नानक के चलाये इस पंथ का क्या बनेगा? ये लोग तो हर क्षण हताशा होते जा रहे हैं। कोई मानेगा कि इस भाईचारे ने कल गुरु हरिगोबिन्द जी के नेतृत्व में चार बार मुगल फौज को हराया था? ये लोग तो अपने बुनियादी अधिकारों की रखवाली भी नहीं कर सकते।

आलम ने फ़ैसला किया, जो पंचायत आनन्दपुर साहब गुरु महाराज के सामने इस मुकद्दमें को पेश करने जा रही थी, वो भी उस में शामिल हो जाएगा। वह गुरु महाराज को अपनी ऑखों से देखी घटनाओं से परिचित करायेगा। गुरु अर्जुन देव की समाधी पर उनकी शहीदी के अज्मत के अनुकुल एक शानदार धर्मशाला बनाई जानी चाहिए।

(25)

आलम ने जो दुर्दशा लाहौर में मुसलमानों की देखी थी वही कोढ़ पूरे देश में फैला था। औरंगजेब ने मक्के के मुफ्ती के साथ बना ली थी। ईरान के साह अब्बास को समझा-बुझा लिया था। अब उसका ये फ़ैसला पक्का था उसके राज में इस्लाम के सिवा कोई धर्म नहीं होगा। हिन्दू धर्म को वह जड़ से नष्ट करना चाहता था। उसने खिलौने तक बनवाने बन्द करवा दिये थे, यह कह कर कि उसे उनमें से मुर्ति पूजा की बू आती थी। उससे पहले के मुगल शहंशाह झरोखे में बैठ कर प्रजा को दर्शन दिया करते थे, औरंगजेब ने इस प्रथा को भी मूर्ति पूजा कह कर बन्द कर दिया था। हिन्दुओं की तरह हाथ जोड़ कर कोई किसी को सत्कार नहीं दे सकता था। यही नहीं, उसने हर परगने में नाजिम तैनात किये जिनकी जिम्मेवारी अपने इलाके में मन्दिरों की सूची तैयार करने और एक एक करके उन्हें ध्वस्त करने की योजता बनाई। इस काम में नाजिम की मदद के लिये सरबराह नियुक्त किये गये थे। जहॉं जहॉं गुरुपंथ की *मंजीयॉं* थीं, मसन्दों को हिदायत की गई कि वे गुरु महाराज को वसूल की हुई आमदनी बन्द कर दें। कहीं कहीं मसन्दों को देश निकाला भी दिया गया। एसे ही सूफियों सन्तों के साथ भी किया जाता था और तो और शिया मुललमानों को खदेड़ कर काशमीर की ओर भेला जाता था तांकी वे अलग-थलग एक कोने में पड़े रहे।

हिन्दुओं को मेलों और गुर सिक्खों के पर्वों पर पाबंदियॉं लगाई गई,

गैर-मुसलमानों को कहीं पैसे का कहीं नौकरी का लालच देकर मुसलमान बनाया जाता था। हिन्दू व्यापारियों पर चुंगी का कर दुगुना करके मुसलमान व्यापारियों का कर माफ कर दिया गया। यह फरमान जारी किया गया कि माल के महकमें में काई हिन्दू काम नहीं कर सकेगा। हिन्दू कर्मचारी या मुसलमान होना कबूल करे या उन्हें नौकरी से बखस्ति किया जाये।

ये सब करने के बाद औरंगजेब ने अब समूल नस्ट करने की मुहिम काशमीर से आरंभ की। पहला काम उसने ये किया कि इफ्ताखार खान नाम के एक संगदिल कट्टरपंथी को काशमर का सुबेदार तैनात किया।

काशमीर से यह मुहिम शुरु करने के कुछ विशेष कारण थे।

काशमीर हिन्दुस्तान के पश्चिम में हाने के कारण इस्लाम के दीवाने औरंगजेब को ख्याल था कि इस्लामी परंपरा के अनुकूल पश्चिम से ही इसलामीकरण शुरु करना चाहिए।

फिर काशमीर के ब्राम्हण वेदों और शास्त्रों के महान पंडित माने जाते थे। औरंगजेब सोचता था अगर उन्हें मुस्लमान बना लिया गया तो बाकी देश में परिवर्तन का काम आसान हो जाएगा। शायद ये भी उसके मन में था कि अगर कश्मीरी पंडितों ने सतनामियों की तरह बगावत की तो पड़ोसी पठान और अफगान कबायलियों को, उन पर धावा बोलने के लिए उकसाया जा सकता था। या कम से कम इस की धमकी दी जा सकती थी।

दिल्ली का इशारा पाकर कश्मिर के सूबेदार इफ्तखार खान ने कश्मीरी हिन्दुओं के जनेउ उनारने और तिलक मिटाने शुरु कर दिए। सुनने में आया कि वह हर दिन सवा मन जनेउ उतरवाता था, जगह जगह गोहत्या होती थी और गली गली में गो मांस बिकने लगा।

कश्मीरी ब्राहमण तंग आ गये। पर वे जानते थे कि जो शासक दाढ़ी तक को एक खास लम्बाई से ज्यादा कुतरने का हठ करता था, जिसका ये फरमान था कि पिछले दस सालों में बने हर मन्दिर को तुरंत गिरा दिया जाये। जिसने उज्जैन के विख्यात मन्दिर में हत्या करवाई थी। वह किसी की नहीं सुनेगा। यही हाल राजस्थान और बंगाल के मन्दिरों का हो रहा था।

सोच-सोच कर उन्होंने फ़ैसला किया कि वे अमरनाथ की यात्रा पर जायेंगे और वहॉ शिव जी के सामने हाथ जोड़ कर अपने धर्म की रक्षा के लिये प्रार्थना करेंगे।

जो जत्था अमरनाथ जी की यात्रा के लिए गया, उसमें कृपा राम नाम

का एक विद्वान पंडित था। अमरनाथ जी की गुफा में सोये पड़े पंडित कृपा राम के सपने में शिव जी ने दर्शन दिए और कहा कि उनकी सहायता केवल गुरु तेग बहादुर जी कर सकते हैं जो बाबा नानक की गद्दी पर बिराजमान हैं। उन्हें चाहिए कि उनके चरणें में हाज़िर हो कर अपना दुख बतायें।

पंडित कृपा राम की ऑंख खुल गई। उसने साथी ब्राहमण को अपने सपने के बारे में बताया और फ़ैसला हुआ कि वे फौरन पंजाब जाकर सिक्ख गुरु महाराज के हजुर में अपनी फरियाद रखें और वे जैसा कहे वैसा करें।

कश्मीरी पंडितों का यह जत्था फौरन पंजाब के लिए चल पड़ा। उन्होने काशमीर के सूबेदार से जो उन्हें मुसलमान बनने के लिये मजबूर कर रहा था, इतनी मोहलत मांगी कि वे अपने गुरु महाराज से धर्म परिवर्तन की आज्ञा ले लें। इफ्तेखार खान राजी हो गया। उसने सोचा अगर फ़ैसला शिक्ख गुरु पर ही था तो एक आदमी को धमकाया भी जा सकता या दबाया भी जा सकता था। किसी की क्या मजाल थी कि शहंशाह आलम गिर के खिलाफ जा सके?

कश्मिरी पंडित सीधे अमृतसर पहुँचे। सब यह जानते थे कि सिक्ख पंथ की राजधानी गुरु की नगरी है। अमृतसर पहुँच कर उन्होने हरिमन्दर के दर्शन किये और सरोवर स्नान किया। 500 कश्मिरी पंडितों का जत्था आया था। दरबार साहब के महन्तों को बड़ी आशयें लगी हुई थी और उनकी आशायें व्यर्थ नहीं थी। वे अपने साथ बहुत से उपहार भेंट करने के लिये लाये थे। इनमें अनमोल कालीन थे। धुस्से थे। पशमीने के साल थे; समावार थे, रेशमी वस्त्र थे, हीरे और जवाहरात थे, मोती और पन्ने थे। हरि जी जो अपने आप गुरु बना बैठा था, सारी की सारी भेंटे स्वीकार करता रहा। कश्मिरी पंडित उसे आदर दे रहे थे, उसके सामने माथे रगड़ रहे थे, हाथ जोड़ रहे थे और फिर वे मतलब की बात पर आ गये। कृपा राम ने कश्मिर में हो रहे अत्याचारों का जिक्र किया, कैसे अका धर्म भ्रष्ट किया जा रहा था कैसे उन्हें मुसलमान बनने पर मजबूर किया जा रहा था। कैसे वे अमरनाथ की यात्रा पर गये थे कैसे शिव जी ने कृपा राम को सपने में दर्शन दिये थे। और कैसे आज्ञा दी थी कि इस कष्ट के समय उनकी सहायता केवल नवें गुरु तेग बहादुर ही कर सकते हैं। चाहे उन्हें अपना शीश कुर्बान करना पड़े कलयुग के अवतार वहीं हैं वहीं उनका दुःख बॉट सकते हं। वे अपने सूबेदार से छः महीनों की मोहलत ले के आये हैं। उन्होंने सूबेदार को वचन दिया है

कि उनके गुरु अगर मुसलमान बनने के लिये तैयार हो जायेंगे तो वे भी अपना धर्म बदलने के लिऐ राजी हो जायेंगे।

हरि जी ने सुना तो उसका चेहरा पीलाजर्द पड़ गया चेहरे से पसीने छूटने लगे। वह जो अभी तक इतनी बढ़-चढ़ कर बातें कर रहा था, बात-बात पर हकलाने लगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कश्मिरी पंडितों के जत्थे को क्या जवाब दे, कैसे उनकी मदद करे, लाखों रुपये के उपहार वह उनसे स्वीकार कर चुका था।

ये देख कर हरि जी के पिछे लगा मसन्द उसकी तरफ से बोल पड़े। कहने लगे, आपका क्लेश एक दम सही है। पर गुरु बाब नानक की गद्दी तो आठवें गुरु हरि किशन जी गुरु तेग बहादर जी को बक्श गये हैं। और वे आज कल आनन्दमुर साहब में रहते हैं। अच्छा हो कि आप उनके पास जाए। आनन्दपुर यहाँ से कोई दूर नहीं। यही एक हफ्ते का और सफर होगा। जहाँ आप इतनी दूर से मंजिलें पार करके आये हैं। थोड़ा कष्ट और कर लीजिए।

यह सुनकर कश्मिरी पंडितों पर तो जैसे सौ-सौ घड़े पानी पड़ गये हो, वे एक दूसरे की मुँह की ओर ताकने लगे वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करे। उनके साथ तो ऐसा हुआ था जैसे किसी के पैरों तले जमीन ही खिसक जाये और कोई चारा नहीं था। आखिर हार कर वे खाली हाथ आनन्दपुर साहिब के लिये चल पड़े। हर आदमी को अपने आप पर शर्म आ रही थी हर आदमी अपने साथियों के सामन शर्मिन्दा था। उन लोगों ने अपने आप को कैसे बुद्धु बना लिया था।

जो कुछ वे अपने साथ लाये थे उसे हरी जी के हवाले कर चुके थे। खाली हाथ उन्हे गुरु तेग बहादर जी के सामने हाजिर होना अजीब लग रहा था। इसके सिवा और कोई चारा नहीं था।

किसी तरह घिसटते हुये आनन्दपुर पहुँचे। मरते क्या न करते? कश्मिरी जनता के लाखों हिन्दुओं के भविष्य का सवाल था। आखिरकार वे गुरु महाराज के सामने हाजिर हुये।

ऑखों में ऑसू, क्लेश की साक्षात तस्वीर, गुरु तेग़ बहादर जी उन्हें देख कर उनके कष्ट का अनुमान लगा सकते थे। वे सब कुछ जानने वालध थे, उनसे कौन सी बात छिपी थी। वे जो जैसे उन की प्रतीक्षा कर रहे थे। कृपा राम हाथ जोड़ कर विनती कर रहा था, ऑसुओं से ऑखे डबडबाई थी।

"निमत्तों की पथ, बे आसरों के आसरा, ओट हीनों की ओट गुरु महाराज, हम बड़ी से चल कर आपकी सेवा में हाजिर हुये हैं। जब से दिल्ली की हुकूमत ने सैफ अली खान को हटज्ञ कर इफ्तेखार खान को कश्मिर का सूबेदार तैनात किया है, हिन्दु जाति का जीना दुभर हो गया है हम किसी ना किसी तरह ओठ भींच क सीने पर पत्थर रख कर गुजारा किये जा रहे थे। लेकिन पिछले कुछ समय से तो मुगल हुकुमत ने अति ही कर दी है। उन्होंने फ़ैसला किया है कि पूरी हिन्दू जाति को इस्लाम कबूल करना पड़ेगा। हमारा सूबेदार प्रतिदिन सवा मन जनेउ उतरवा कर खाना खाता है। कोई हिन्दू माथे पर तिलक नहीं लगा सकता। हमारे मन्दिरों के आँगनों में वो हत्या करके उनकी पवित्रता नष्ट की जाती है। हमारी बहु बेटियों की पत उतारी जाती है। हमें हर तरह की सरकारी नौकरी से वंचित रखा जाता है। हम ना अच्छा खा सकते थे, ना अच्छा पहन सकते हैं काई मुसलमान मुसाफिर चाहे तो किसी भी हिन्दु घर में अपनी मर्जी के अनुसार चाहे जितनी दिन चाहे रह सकता है। उस पर कोई रोक नहीं। जहाँ चार हिन्दू बैठे बातें कर रहे हों कोई भी मुसलमान उनके बीच में आकर बैठ सकता है चाहे वह बात उसके मतलब की हो या ना हो हम लोग अपनी शादियों में ऊँचा ढोल नहीं बजा सकते। हमारे यहाँ कोई मर जाये तो ऊँचे स्वर में विलाप नहीं कर सकते। दुगुने-चौगुने कर अदा करके हमारी कमर टूट चुकी है।

"हार कर, थक कर हम अमरनाथ पहुँचे। हमने हाथ-जोड़े, विनती की और रात को शिवजी ने सपने में आपके इस नाचीज़ को दर्शन देकर हिदायत दी कि हम आपके सामने हाज़िर हों। कलयुग में सिर्फ आप ही पार लगा सकते हैं। गुरु बाब नानक की गद्दी के सिवा हमारा कोई सहारा नहीं, कोई आसरा नहीं।"

"अब हम सैकड़ों कोस का रास्ता तय करके धक्के और ठोकरें खाते हुए, आपकी शरण में आए हैं। सुना है आप निपत्तों का पत हो, आश्रयहितों का आश्रय हो, ओटविहीनों की ओट हो.........।"

जब कश्मीरी पंडितों का प्रतिनिधि हाथ जोड़े, गले में पल्ला डालकर इस तरह विनती कर रहा था, चोजी प्रीतम साहेबज़ादा गोबिन्द खेलते-खेलते गुरु महाराज के दरबार में आ गए। 500 कश्मीरी पंडितों के जत्थे को इस तरह खड़े हो कर, फ़रियाद करते हुए, वे एक तरफ खड़े होकर सुनते रहे—सुनते रहे।

उधर इन दुखड़ों का रोना सुनते हुए गुरु तेग बहादुर जी आँखें मुँदकर, अपने ध्यान में खोए हुए थे, ज्योंही उन्होंने अपनी पलकें खोली, सामने साहेबजादा गोबिन्द खड़े उनसे पूछ रहे थे, "गुरु पिताजी ने कश्मीर से आए इन दुखी पण्डितों के बारे में सोचा है ?"

गुरु महाराज क्षण-भर के लिए खामोश हो गए और फिर उन्होंने साहेबज़ादे को अपने निश्चय याद कराए जिन्हें वे पहले भी कई बार उच्चार चुके थे, "मेरा शीश के साथ कोई प्रयोजन नहीं, मन हमारा और संकल्प में खेलता है।"

"इनकी मदद तो होनी चाहिए।" साहेबजादा जैसे कश्मीरी पण्डितों की सिफ़ारिश कर रहे थे। "बेशक, लेकिन इसके लिए किसी महापुरूष को अपना शीश कुर्बान करना पड़ेगा।" गुरु महाराज के मुखारविन्द से ये बोल निकले तो उपस्थित संगत में चारों तरफ एक सकता छा गया। जैसे सबका ऊपर का साँस ऊपर और नीचे का साँस नीचे रह गया हो।

इस सब कुछ को अनसुना करते हुए साहेबजादा अकस्मात् बोल पड़े, "आप से बढ़कर इस युग में महापुरूष कौन है ?"

(26)

"आपसे बढ़कर इस युग में महापुरूष कौन हैं ?" साहेबज़ादा गोबिन्द जी के ये बोल सुनकर गुरु तेग बहादुर जी का चिंताओं में ग्रस्त मुखड़ा कमल के फूल की तरह खिल पड़ा—नूरो-नूर हो गया, जैसे आसमान से झर-झर अमृत की वर्षा होने लगी हो—जैसे राग रत्न परिवार परियाँ शबद गानें आ रहीं हों। ठण्डी-मीठी पवन झूलने लगी। बाहर जेठ महीने की चिलचिलाती धूप थी और गुरु महाराज के दरबार में जैसे ठण्डक फैली हुई हो। चारों तरफ खुशबू-खुशबू फैल गई थी। आज चिरकाल के बाद सभी को शकून का एहसास हो रहा था। कश्मीरी पण्डितों को ऐसा लगा, जैसे उनकी नाव किनारे पर लग गई हो। अब कोई उनका बाल तक बाँका नहीं कर सकता, जैसे उनकी सारी समस्याओं का समाधान हो गया था।

कुछ देर बाद गुरु तेगबहादुर जी खिले हुए माथे से कश्मीरी पण्डितों की ओर मुख़ातिब हुए, "आप वापिस जाकर सूबेदार इफ्तख़ार ख़ान को कह दीजिए कि अगर गुरु तेग बहादुर इस्लाम कबूल करने के लिए राजी हो जाए तो हम सब मुसलमान हो जाएँगें। एक-एक को पकड़कर न जनेऊ उतरवाने की जरूरत है न तिलक मिटाने की जरूरत पड़ेगी।"

"ये कौन सी मुश्किल बात है", काश्मीर लौटकर जब पण्डितों ने अपने सूबेदार को ये इतलाह दी, वो संतुष्ट हो गया। बार-बार कहने लगा, "ये कौन सा मुश्किल है। ये तो आँख झपकते ही हो सकता है। गुरु तेग बहादुर को एक चुटकी में काबू किया जा सकता है।"

सूबेदार इफ्तख़ार ख़ान ने तुरंत यह ख़बर दिल्ली पहुँचा दी कि अगर गुरु तेग बहादुर जी को कलमा पढ़ा दिया जाए तो सारे कश्मीर के हिन्दू इस्लाम की कतार में शामिल हो जाएँगें कोई तिलक और जनेऊ को याद नहीं करेगा। कोई गऊ और गरीब़ का शोर नहीं मचाएगा।

इधर गुरु तेग बहादुर जी ने कुछ हफ्तों बाद सावन की 8वीं को एक विशेष दीवान सज़ाने के लिए फरमाया। दीवान के आयोजन की पूरी ज़िम्मेवारी भाई मनी सिंह को सौंपी गई। सबसे प्रमुख कीर्तनियों को इस दीवान में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया।

वैसे दीवान तो दोनों समय हर रोज़ सजता था। कीर्तन भी होता था। पाठ भी होता था। गुरु महाराज ख़ुद शामिल होते थे। लेकिन ये विशेष दीवान किस लिए ? किसी की समझ में नहीं आ रहा था। खास तौर पर दरगाहमल और बाबा बुड्ढा जी के पोते भाई गुरदिता जी को दीवान में शामिल होने के लिए विशेष निमंत्रण दिया गया था। लगता था कि दरगाहमल को अलग से भी कुछ विशेष हिदायतें भी दी गई थीं। कोई भेद की बात जरूर थी। हर आदमी एक दूसरे के मुँह की ओर देख रहा था। किसी को कुछ समझ नहीं आ रही थी।

पिछले कुछ दिनों से जब से कश्मीरी पण्डित गुरु महाराज के दर्शन करके लौटे थे, गुरु महाराज कुछ ज्यादा ही चुप-चाप रहते थे। गुरु महाराज कुछ ज्यादा ही सोचों में खोये, सुबह-शाम अन्तर-ध्यान होने का समय भी उन्होंने दोगुना-चौगुना कर दिया था। उनके सामने पन्थ की हर समस्या जो पेश की जाती थी वे उसे फौरन निपटाने की जल्दी में मालूम होते थे।

दीवान में जब ढड सारंगी जत्थे ने करतारपुर की दूसरी जंग की वार का वर्णन समाप्त किया, गुरु महाराज ने दीवान दरगाहमल की ओर इशारा किया। संगत जैसे देखती रह गई। साथ के तम्बू में से साहेबज़ादा गोबिन्द दास एक सेनापति की तरह हर तरह के शस्त्रों से सजे हुए, दीवान में हाथ जोड़कर आए। ज्योंही वे मंच की ओर बढ़े जहाँ गुरु तेग़बहादर जी विराजमान थे, गुरु महाराज सहसा उठ खड़े हुए और अपने ख़ाली किए

आसन पर साहेबज़ादे जी को बैठने के लिए इशारा किया।

सारी संगत सांस रोके जैसे इस सारे नाटक को देख रही थी, अब गुरु महाराज ने दीवान दरगाहमल को नारियल और बाकी सामग्री लाने के लिए कहा। जब वे सोने की थाली में नारियल, पांच पैसे आदि रखकर लाये तो गुरु महाराज ने दीवान दरगाहमल जी के हाथ से थाली पकड़ कर साहिबज़ादा गोबिन्द को भेंट की। फिर उन्होंने भाई गुरदित्ता जी से कहा कि साहिबज़ादे को तिलक से सुशोभित करें। जब यह क्रिया पूरी हो चुकी, गुरु महाराज ने आगे बढ़कर गुरु गोबिन्द दास जी को हाथ जोड़ कर आदर किया। और फिर इस तरह साध-संगत को संबोधित किया :

"प्यारी साध-संगत, आज से गुरु गोबिन्द आपके गुरु महाराज हैं। गुरु बाबा नानक के दसवें जामे में। जो भी इनके प्रति श्रद्धा रखेगा, उसका कल्याण होगा।"

इसके बाद उन्होंने साध-संगत और फिर अपने निकटवर्ती गुरसिखों से कहा उसका सारांश यह था :

तिलक और जनेऊ, गऊ और ग़रीब की रक्षा के लिए हमें दिल्ली जाना है। हम बेशक जनेऊ नहीं पहनते, जनेऊ पहनने में हमारा विश्वास नहीं। गुरु बाबा नानक ने जनेऊ पहनने से इन्कार किया था। तब वे नौ बरस के ही थे (यह कहते हुए उन्हों .मने गुरु आसन पर विराजमान गुरु गोबिन्द जी की ओर देखा जो उस वक्त ठीक नौ साल की उम्र के हुए थे।) आज समस्या यह है कि हिन्दू भाइयों के जनेऊ पहनने के अधिकार को उनसे छीना जा रहा है। हमें इसकी रक्षा करनी है और अगर ज़रूरत पड़े तो सीस तक क़ुर्बान करना है।

मैं देख रहा हूँ, यह सुनकर आप भयभीत हो गये हैं, पर असलियत से इन्कार नहीं किया जा सकता। मालवे के हमारे कितने दौरों के दौरान ही हमें यह ख़बर मिली थी कि दिल्ली के हुक्मरान को हमारा सिक्खी का प्रचार मंज़ूर नहीं है। पर चूंकि किसी को सच बोलना, धर्म के मार्ग पर चलना, न्याय करना पसन्द नहीं, इसलिए सच, धर्म और न्याय को छोड़ा तो नहीं जा सकता।

और जो धमकियाँ दी जा रही हैं, अपने धर्म पर क़ायम रहने वाले इन धमकियों से डरने वाले नहीं हैं। हमने कल हिन्दू धर्म के अनुयायियों को वचन दिया है--उनका साथ हम नहीं छोड़ेंगे। "बांह जिन्हा की पकरिए सिर दीजै

बांह न छोड़िए।" ना ही हमें किसी का डर है, हम किसी को डराते नहीं, ना ही हम किसी का डर क़बूल करते हैं : "भय काहू को देति नहीं, नहिं भय मानत आन।"

उधर औरंगज़ेब को जब काश्मीर के सूबेदार इफ़्तकार ख़ान का यह मरासला मिला तो आलमगीर ने फ़ौरन गुरु तेग़ बहादर जी की गिरफ़्तारी का हुक्म सादर कर दी, जिसकी तामील सरहिन्द के सूबेदार की मार्फत होनी थी।

इधर गुरु महाराज का प्रवचन सुनकर गुरु परिवार और साधारण गुरसिखों में घटाटोप उदासी सी छा गई। वे जानते थे कि औरंगज़ेब एक बार पहले भी गुरु महाराज पर हाथ डाल चुका था। आलम ने उन्हें बताया था कि अगर राजा रामसिंह की मदद न होती तो कुछ भी हो सकता था। शहंशाह की फराऊनियत* कोई क़हर भी ढा सकती थी। गुरसिख इस बात से भी परिचित थे कि गुरु अर्जन देव हकूमत के बुलावे पर एक बार घर से जाकर फिर नहीं लौटे थे। गुरु हरिगोबिन्द जी को ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया गया था। तब तो मियांमीर या मलिका नूरजहाँ ने हस्तक्षेप करके उनकी रिहाई का फरमान सादर करवाया था, नहीं तो न जाने और कितने समय तक गुरु महाराज संगतों से बिछुड़े रहते।

*प्राचीन मिश्र के निरंकुश शासक फरोहा कहलाते थे।

आजकल गुरु महाराज आनन्दपुर साहब की सुरक्षा की ओर ध्यान दे रहे थे। उन्होंने समझाया कि ज़रूरत पड़ने पर कहाँ कहाँ क़िले बनाये जा सकते हैं। शहर में ख़ुराक और पानी का प्रबंध कैसा होना चाहिए। सड़कों को पक्का करना था। बाज़ार में दरिया से ढोकर लाये गये पत्थर बिछाये जाने थे। शहर का मदरसा मुंशी पीर मोहम्मद के हवाले था और पाठशाला साहिब सिंह की ज़िम्मेदारी थी।

गुरु गोबिन्द सिंह जी की शिक्षा-दीक्षा की ओर ज़्यादा ध्यान दिया गया। हरजसराय जी उन्हें गुरमुखी लिपि सिखा चुके थे। पंडित क़िरपाराम, जो काश्मीरी पंडितों के साथ लौट कर नहीं गये थे, उन्हें संस्कृत की विद्या दे रहे थे। भाई बजर सिंह घुड़सवारी और शस्त्र विद्या में माहिर बना रहे थे। इसी तरह फ़ारसी और अरबी की पढ़ाई के प्रबंध को और संतोषजनक बनाया गया।

गुरु महाराज मालवे के दौरे से पहले अपनी बहन वीरां को उनके गांव

मल्ल मिलने के लिए गये। माता नानकी जी को बकाले भी मिल आये थे। अब चूंकि वे फिर दिल्ली जा रहे थे और जानी-जान अच्छी तरह जानते थे कि कल क्या 'भाणा' होने वाला था। उन्होंने माता नानकी जी और बहन वीरो जी बुला भेजा कि वे आकर उन्हें मिल जायें। अपने बहनोइयों, भाई मंगेशाह, भाई जीतमल, भाई गंगा राम, भाई माहरीचंद और भाई मुताब चंद को भी आनन्दपुर बुलवा भेजा। ये सारे बड़े सूरमा थे। गुरु महाराज ने सोचा, शहर में उनकी मौजूदगी एक तो शहर की रक्षा हो सकेगी और दूसरे गुरु गोबिन्द जी की शस्त्र-विद्या पर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा।

उस दिन गुरु तेग़ बहादर जी ने आनन्दपुर से दिल्ली के लिए प्रस्थान करना था। उनके साथ केवल तीन गुरसिख जा रहे थे : भाई मतीदास, भाई सतीदास और भाई दियाला।

गुरु महाराज अपने साथ केवल तीन गुरसिखों को ले जा रहे थे, लेकिन जाने के लिए तैयार तो सैकड़ों बैठे थे। पीछे रहने वाले अपने आपको जैसे ख़ाली ख़ाली महसूस करने लगे थे। बेशक पीछे दशमेश थे, भाई मनी सिंह थे, दीवान दरगाहमल थे, भाई गुरदित्ता थे, माता गुजरी जी थीं, माता नानकी जी भी अब आनन्दपुर आ गई थीं, पर जैसे गुरु के बहादुर जा रहे थे, जिस उद्देश्य के लिए जा रहे थे, यह सोचकर हर किसी को हौल पड़ रहे थे। हर तरह के भयानक चित्र गुरसि[illegible] आँखों के सामने तैरने लगते। लोग आँखें मूंद लेते। अपने चेहरे के सामने हाथ रखते, मानों इस तरह के नागवार चित्रों को आँखों से ओझल कर रहे हों।

"कुछ भी तो हो सकता है", किसी के मुंह से निकलता।

"गुरु महाराज को जाने से रोका नहीं जा सकता।" कोई कहता।

"यह तो जैसे मकतूल क़ातिल के पास जा रहा हो।" कहीं से आवाज़ आई।

"मुझे तो सामने क्षितिज पर काली घटा छायी दिखाई देती है", कोई न चाहते हुए भी बोल उठता।

"राम सिमर, राम सिमर एहो तेरै काजि है", दूर कोई गा रहा था।

"मैं कहता हूँ इस बार दिल्ली जाकर गुरु महाराज लौट कर नहीं आयेंगे।"

"रात भर कुत्ते विलाप करते हैं।"

"बिल्लियां रोती हैं।"

"तकिये के बरगद पर जब भी देखो उल्लू बैठा रहता है।"

"राम सिमर, राम सिमर एहो तेरै काजि है", दूर कोई पहले की तरह गा रहा था। "एहो, एहो, एहो" बिल्कुल इसी तरह गुरु अर्जन देव जी गुरु हरिगोबिन्द जी को तिलक लगा कर लाहौर गये थे।

"हू-ब-हू इसी तरह उन्होंने पीछे रहने वालों को काम सौंपे थे।"

"वे भी जानी-जान थे, ये भी जानी-जान हैं।"

"राम सिमर, राम सिमर, एहो तेरै काजि है", गाने वाला अपनी उमंग में गा रहा था।

गुरु महलों के सामने संगत की भीड़ हर क्षण बढ़ती जा रही थी। हर सिक्ख की जान जैसे सूली पर टंगी हो। लोग गुरु महाराज के बाहर निकलने की प्रतीक्षा कर रहे थे, ताकि वे उनके दर्शन कर सकें। कोई कह रहे थे, "हमें तो गुरु महाराज के साथ जाना है। जहाँ वे जायेंगे, वहीं हम भी जायेंगे। अगर उन्हें क़ैदी बनाया गया तो हम भी क़ैद होंगे। अगर उन्हें सीस देना पड़ा तो पहले हम शहीद होंगे।"

महल के भीतर गुरु महाराज के जाने की तैयारी मुकम्मल हो चुकी थी। अब वे जोड़े उतार कर हाथ जोड़े अकाल पुरुख के आगे अरदास कर रहे थे। जिस उद्देश्य के लिए वे जा रहे थे उसमें उन्हें सफलता मिले। सिक्खी आस्था क़ायम रहे। धरम की रक्षा हो।

अब गुरु तेग़ बहादर गुरु गोबिन्द जी को अपनी छाती से लगा कर उनका मस्तक चूम रहे थे। अब माता नानकी जी के पैरों को हाथ लगाकर सत्कार दे रहे थे। यह देखकर माता गुजरी जी की आँखों में आँसू छलक आये।

गुरु तेग़ बहादर जी उनकी तरफ ऐसे देखने लगे, जैसे कह रहे हों, "मैंने तो ऐसा करने की मनाही की हुई हो।" यह देखकर श्वेतकेशी माता नानकी जी बोल उठीं, "क्यों, आँसू भी न गिरें ?" और उनकी अपनी आँखों से छल छल आँसू गिरने लगे।

अब गुरु महाराज अपने महलों से बाहर निकल आये। उनके पीछे भाई मतीदास, भाई सतीदास और भाई दियाला थे। गुरु गोबिन्द जी समेत घर के सारे प्राणी गुरु तेग़ बहादर जी के आदेशानुसार दर्शनी डयोढ़ी से बाहर नहीं आये।

गुरु तेग़ बहादुर जी की एक झलक आते ही आस पास खड़ी संगत ने

उनकी जय जयकार करनी शुरू कर दी। "गुरु तेग़ बहादर, हिन्द की चादर !" लोग बार बार यही पुकार रहे थे। गुरु महाराज ने जैसे उन्हें याद करवाया :

रामु सिमर, रामु सिमर, इहो तेरै काजि है।

लोग गुरु महाराज के चरण छू रहे थे, कुछ लोग माथा टेक रहे थे, कुछ दंडवत प्रणाम कर रहे थे। बाकी संगत एक सुर में गाये जा रही थी, "रामु सिमर रामु सिमर, इहो तेरै काजि है।"

माया को संग त्यागि, प्रभ जू की सरनि लाग।
जगत सुख मान मिथ्या झूठो सब साज है ॥ 1 ॥ रहाऊ।
सपने जिऊ धन पछान काहे पूरि करत मान।
बारू क भीति जैसे वसुधा का राजु है
नानक जनु कहतु बात बिनसि जेहो तेरो गातु।
छिनु छिनु करि गयो काल जैसे जात आजु है ॥ 2 ॥ 1 ॥

(राग जय जयवंती, महला ८)

(27)

गुरु महाराज लाख रोकते रहे, पर सैकड़ों गुरसिख उनके पीछे चलते जा रहे थे। बीच बीच में जयकारे लगाने लगते, "गुरु तेग़ बहादर, हिन्द की चादर !" आख़िर जब वे सरसा नदी के तट पर पहुँचे, उन्होंने अपने तीन निर्धारित गुरसिखों को छोड़कर बाकी सब को लौटने का आदेश दिया। "सरसा नदी के इस किनारे से आगे कोई नहीं आयेगा।" गुरु महाराज ने सब को समझाया। गुर सिख निराश होकर लौट गये।

लगता है, मुग़ल हकूमत उन पर निगाह रखे हुए थी। जब गुरु महाराज, भाई मतीदास, भाई सतीदास और भाई दियाला के साथ सरसा नदी पार करके दूसरे किनारे पर पहुँचे, उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। भटवाही मुल्तानी सिन्धी के मुताबिक :

"गुरु तेग़ बहादर महला नौवां...........को नूर मोहम्मद ख़ान मिर्ज़ा, चौकी रोपड़ वाले ने साल सत्रह सौ बत्तीस, सावन प्रविष्ट 12 के दिहु गांव मलिकपुर रंगणा, परगना घनौला में पकड़ के सिरहन्द में पहुँचाया। गाइलो दीवान मतीदास, सतीदास बेटे हीरानन्द छिब्बर के, दियालदास बेटा माईदास का पकड़ा आया। 4 मास पठाना बंदीखाने बंद रहे। दुष्टां गुरु जी को घना कष्ट दिया। गुरु जी ने भाने को माना।"

जब गुरु महाराज को हिरासत में लिया गया, वे अपने एक गुरसिख नगाहिआ के घर विश्राम कर रहे थे। रोपड़ के थानेदार नूर मोहम्मद ने उन्हें पकड़ कर फ़ौरन सिरहन्द पहुँचाया। उसी दिन भाई भंडारी नाम के एक सिख को इसकी भनक मिल गई। वह जल्दी जल्दी चलकर आनन्दपुर साहब जाकर माता नानकी को इत्तला दी। वही बात हुई जिसकी आशंका थी। माता नानकी जी ने दीवान दरगाहमल और चोपटराय को यह मालूम करने के लिए सरहंद भेजा, यह पता करने के लिए कि आख़िर इतनी जल्दी में यह सब कैसे हुआ।

जब दीवान दरगाहमल और चोपटराय उन्हें पता लगा कि गुरु महाराज को बस्सीपठाना भेज दिया गया था। उनके साथ उनके तीन गुरसिख भी थे। एक-दो दिन यह देखकर कि गुरु महाराज के साथ बंदी बनाये गये गुरसिख पूर्ववत उनकी सेवा करते थे, जैसे वे आज़ाद हों। सुबह उनके स्नान के लिए पानी लाते थे। किसी न किसी तरह उनके लिए वैसा ही भोजन बनाते जैसा वे आम तौर पर खाया करते थे। उनके साथ बैठकर कथा-वार्ता करते थे। कभी शब्द-गायन करते थे। भला यह कैसे हो सकता था ? बंदीख़ाने के दरोगा ने गुरु महाराज को उनके साथ गिरफ़्तार किए गए तीन गुर सिखों को एक अलग हवेली में बंद करने का हुक्म दिया।

जब दरोग़ा किसी सूरत में अपना फ़ैसला बदलने के लिए राज़ी न हुआ तो मतीदास, सतीदास और भाई दियाला ने गुरु महाराज से बिछड़ते वक़्त उनके सामने सादर विनती की कि उन्हें कुछ ऐसा उपदेश दें ताकि उनका बंदी-जीवन गुरु जी की स्मृति में व्यतीत हो।

यह सुनकर गुरु महाराज ने इस शब्द का उच्चारण किया :

> रे मन राम पिऊ करि प्रीति।
> स्रवन गोबिन्द गुन सुनऊ अर गाऊ रसना गीति। 2। रहाऊ।
> करि साध संगति सिमरू माधो होहि पतित पुनीत
> कालु बियालु जिऊ परिउ डोलै मुखु पसारै मीत। 1।
> आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है, समझि राखऊ चीति।
> कहै नानक रामु भजिलै जातु औसरू बीति। 1।

(सोरठि, महला ९)

गुरु महाराज को एक पुरानी हवेली में ले जाया गया, जिसके चारों ओर खंडहर थे। हवेली की छत के कोनों में चिमगादड़ों ने डेरे जमा रखे थे।

दीवारें खिर रही थीं और छतें टूट-फूट रही थीं। लगता था कि बाबा आदम के ज़माने से उसमें कोई नहीं रहा था। न किसी ने उसमें झाड़ू दिया था। जगह जगह पर कुत्तों और जानवरों के मल और ढेरों गन्दगी जमा थी। फ़र्श और दीवारों में से भयंकर बदबू आती थी। सुनने में आया कि लोग उसे भूतों वाली हवेली कहते थे। कहा जाता था कि उसमें चुडैलें बसती थीं। लोग हर तरह की डरावनी कहानियाँ सुनाते थे। हवेली के पास चमार मुर्दा पशुओं को लाकर फेंक जाते। सारा सारा दिन कुत्ते और गिद्ध मुर्दों का मांस नोचते, शाम के वक्त तक गिद्ध इतना खा लेते थे कि खंडहरों पर बैठे ऊँघने लगते थे। अपने उठने बैठने के लिए गुरु महाराज को ख़ुद ही जगह साफ़ करनी थी, ख़ुद ही पोचा लगाना था। जब वे उस बदबूदार कमरे को देख रहे थे, जहाँ उन्हें रहने के लिए लाया गया था, उनके पहरे पर तैनात अहलकार कहने लगा, "आप मुसलमान क्यों नहीं हो जाते ? यहाँ इस हवेली में भांति भांति के सांप और बिच्छू हैं।" अभी वह बोल ही रहा था कि एक कौड़ी वाला सांप छत के एक छेद में से निकल कर दूसरे में घुस गया। गुरु महाराज ने अहलकार की बात अनसुनी करके उस स्थान को साफ़ करना शुरू कर दिया। सावन का महीना, क़हरों की उमस थी। छत में एक छेद के सिवा कमरे में न कोई खिड़की, न कोई रोशनदान था। वे सोचते, थोड़ी देर बाद, जब वह आदमी दरवाज़ा बाहर से बंद हो जायगा, तब उनका क्या होगा।

"मेरी बात का आपने जवाब नहीं दिया, मैंने कहा था आप कलमा पढ़ लीजिए तो यह झंझट ही ख़तम हो जाये। यह जगह भला किसी इन्सान के रहने के क़ाबिल थोड़े ही है ?" अहलकार गुरु महाराज से मुखातिब हुआ।

"आख़िर क्यों ?" गुरु महाराज ने उसकी तरफ़ देखे बग़ैर जवाब दिया। वे झाड़ू दे रहे थे।

"क्योंकि इस्लाम आपके हुक्मरान का मज़हब है", अहलकार ने कहा।

"मेरा धर्म मेरे पीर बाबा नानक का है", गुरु महाराज ने कहा।

"इस्लाम अल्ला की वहदानियत में यक़ीन रखता है।"

"बाबा नानक ने भी यही कहा है। एक ऊ, रब्ब एक है।"

"इस्लाम तिलक और जनेऊ की मनाही करता है।"

"गुरु बाबा नानक जी तिलक लगाने या जनेऊ पहनने को कोई अहमियत नहीं देते। उन्होंने ख़ुद जनेऊ पहनने से इन्कार किया था।"

"तो फिर आप हमारे हिन्दुओं के जनेऊ उतारने पर ऐतराज़ क्यों करते

हैं ?"

"इसलिए कि हर किसी को अपना धर्म पालने का बुनियादी हक़ है।"

"यह हक़ मौजूदा हकूमत नहीं देती।"

"यह हक़ कोई किसी से छीन नहीं सकता।"

"आप जानते हैं इसकी क़ीमत आपको क्या देनी पड़ेगी", गुस्से में आकर मुग़ल अहलकार की आवाज़ ऊँची हो गई थी।

"अपने ईमान के लिए मैं अपना सीस दे सकता हूँ।"

गुरु महाराज के ये शब्द सुनकर मुग़ल अहलकार गुस्से में लाल-पीला होकर चला गया। उस ख़स्ता हाल कोठरी में से निकल कर उसने दरवाज़ा बाहर से बंद कर दिया।

इस बीच गुरु महाराज ने अपने उठने-बैठने की जगह साफ़ कर ली थी। वे अपने ध्यान में बैठ गये।

कमरे में इतनी उमस थी, इतनी बदबू थी, दरवाज़ा बंद किया तो मच्छर भिनभिनाने लगे। गुरु महाराज का ध्यान एकाग्र नहीं हो रहा था। पर थोड़ी देर बाद वे समाधि में लीन हो गये। बकाले में इतने बरस छोटे से कमरे में बैठ कर उन्होंने जो तपस्या की थी, वह आज काम आ रही थी।

शाम पड़ गई थी जब गुरु महाराज़ का ध्यान टूटा। इस बीच किसी ने उन्हें पानी तक के लिए नहीं पूछा था। भोजन की चिन्ता नहीं की थी। सुबह से उन्होंने अपना मुंह भी जूठा नहीं किया था। न किसी को यह ख़्याल आया था कि अगर उन्होंने मलमूत्र त्याग करना होगा तो वे कहाँ जायेंगे। दरवाज़ा तो बाहर से बंद था।

गुरु महाराज का ध्यान टूटा तो उन्हें लगा जैसे उनका दम घुट रहा था। इकट्ठे हुए कूड़े का एक तरफ़ ढेर, कमरे की सडांध जैसे नथुनों में सुइयों की तरह चुभ रही थी।

इतने में बादल गरजने लगे। अंधेरा हो रहा था। बाहर बिजली चमकने लगी। ऐसे लगता, जैसे घनघोर काली घटा चढ़ आई हो। छत के छेद में से बिजली जैसे लपक लपक के भीतर आ रही हो। गुरु महाराज सोच रहे थे कि अगर बारिश हुई तो उस कमरे का क्या हाल होगा। छेद में से पानी का परनाला बहने लगेगा।

और फिर वही बात हुई। बौछारें टूट टूट कर पड़ रही थीं। बादलों को चैन नहीं आ रहा था। एक बार बरसना शुरु हुआ, सारी रात बरसता रहा।

जैसे आज ही बरसना हो। बादल आते और थैया-थैया करके बरसने लग पड़ते। एक तो बड़ा छेद, दूसरे छत में जैसे जगह जगह पर दरारें पड़ी हुई थीं। चप्पे चप्पे से पानी चू रहा था। कुछ देर बाद धारें बन कर पानी चूने लगा। छत के छेद में से बरसात पूरे कमरे की धुनाई कर रही थी।

गुरु महाराज, इधर से उधर, उधर से इधर अपने आसन का स्थान बदलते, पर कोई जगह नहीं थी, जहाँ छत से पानी न टपकता हो या कमरे में पड़ रही बौछार ने उसे गीला न किया हो।

वे बार बार दरवाज़ा खटखटाते। कोई शिकायत, कोई पुकार सुनने वाला नहीं था।

न कोई जगह बैठने की थी, न कोई जगह खड़े होने के लिए थी। कमरा बारिश के पानी से जल थल हो रहा था और बाहर बादल ज्यों के त्यों गरज रहे थे। ज्यों के त्यों बरस रहे थे।

गुरु महाराज कभी एक पैर के भार खड़े होते, कभी दूसरे पैर के भार खड़े होकर सोच रहे थे—आजकल की बारिश किसानों के लिए अच्छी होती है। अगली फ़सल बड़ी अच्छी होगी। किसानों के, खेतिहरों के नाज के भड़ोले भर जायेंगे। देश में लहर-बहर हो जायेगी...........इस तरह की बरसात में आनन्दपुर शहर की सड़कें धुली-धुली सी हो गई होंगी। पठार होने के कारण पानी इधर से बरसता होगा, उधर से बह जाता होगा। सतलुज दरिया अपने पूरे जोबन में चढ़ा होगा। आनन्दपुर के हर घर से, हर छत से सतलुज का दृष्य देखा जा सकता था और उधर शिवालिक के पर्वत हरे-भरे झूम रहे होंगे।

गुरु महाराज सोच रहे थे, इस तरह का मौसम होगा जब गुरु बाबा नानक ने गाया था :

मोरी रुन-झुन लाया बहनो सावन आया ॥
तेरे मूंध कटारे जे वड्डा तिनि लोभी लोभ निभाया ॥
तेरे दरशन विटहू खन्निऐ वन्जां तेरे नाम मिटहू कुर्बाणों ॥
जा तू ता मैं मान किया है, तुधु बिनु केहा मेरा माणों ॥
चूड़ा भन्न पलंग सिऊ मुद्धे सणूं बाही सनू बाहा ॥
ऐते वेस करेंदिए, मुद्धे सहु रातो अवराहा ॥

इस तरह एक सरूर में, एक हुलार में गुरु महाराज यह शब्द गा रहे थे कि उन्हें लगा जैसे अचानक कमरे में रोशनी हो गई हो। उन्होंने अपनी

पलकें खोलीं तो क्या देखते हैं, उनके सामने एक लट लट मणिवाला नाग बैठा जैसे बाबा नानक जी का शब्द सुन रहा था। गुरु महाराज ने फिर पलकें मूंद लीं और ज्यों के त्यों शब्द गाते रहे :

ना मनिआर ना चूड़ियां ना से वंगड़ी आहा ॥
जो सह कंठि न लगिआ जलन सि बाहड़ी आहा ॥
सभ सहिया सहू गावन गईआ हऊ दाधी कै दर जावा ॥
अम्माली हऊ खरी सुचज्जी तह सह एकि न भावा ॥
माठि गुंदाई पटिया भरिए मांग सन्धूरे ॥
अग्गे गई ना मनिआ मरऊ विसूरि ॥
मैं रोवन्दी सभु जगु रुना रुनड़े वणहु पंखेरू ॥
एक न रुना मेरे तन का बिरहा जिनि हऊ पिरहु विछोड़ी ॥
सुपनै आया भी गया मैं जल भरया रोइ ॥
आइ न सका तुझ कनि प्यारे भेजि सकी न सका कोई ॥
आऊ सभागी नींदड़िए मतु सुहु देखा सोइ ॥
तै-साहिब की बात जि आखे कहु नानक क्या दीजै ॥
सीस वड्ढे करि बैसणू दीजै विण सिर सेव करीजै ॥
क्यो न मरीजे जियड़ा न दीजै जसहु भया निदाना डाणा ॥

(वडहंस, महला १)

ऐसे रात बीत गई।

(28)

आलम सरहन्द आया हुआ था सरहन्द का सूबेदार दिलावर खान से उसकी जान पहचान थी। उसने अपना पूरा रसूख लगाया पर लगता था कि औरंगजेब ने जो फ़ैसला किया था वह सरहन्द के मौलानों के कहने पर किया था। आलम सर मार कर रह गया।

गुरु महाराज को अकथनीय मानसिक यातनायें दी जा रही थीं जिस उजाड़ हवेली में उन्हें कैदी बनाया गया था लोग उसे भूतों का बादशाह कहा करते थे। कितने दिन भूत-प्रेतों की कहानियाँ सुना सुना कर उन्हें डराने की कोशिश की जाती रही। जब इसका कोई असर उन पर ना हुआ तो काली बहरी रात में बहुरुपिये भूत-प्रेतों के रूप में भेजे जाते थे, जो रात रात भर भयानक आवाजें निकाल कर कभी छत पर कभी उनकी कोठरी के बाहर उत्पात मचाते, रात रात ना गुरु महाराज को आराम करने देते ना साधना में

ध्यान लगाने देते।

कहर की गर्मी, उमस, मक्खियाँ मच्छर दिन-रात पसीना चुता लेकिन उनके स्नान का कोई सन्तोष-जनक इन्तजाम नहीं था अमृत बेला में उनके नित नेम का समय होता, हर तरह का उत्पात मचाया जाता, ढोल कुटे जाते, कहकहे लगाये जाते, भारी गालियाँ दी जातीं।

गुरु महाराज ने भूख हड़ताल कर दी। दो दिन, चार दिन, छः दिन उन्होंने अन्न को हाथ नहीं लगाया। यह देखकर फौजदार दिलावर खान के हाथ-पैर फूलने लगे, कहीं ऐसा ना हो कि दिल्ली भेजने से पहले ही कोई दुखान्त हो जाये। उसने जीनत नाम की एक कोठे वाली को साधारण घरेलू औरत के वेश में गुरु महाराज की सेवा में तैनात किया। वह उनके कमरे की सफाई, उनके स्नान, भोजन, उनकी हर सुविधा का ध्यान रखने लगी। ऊँची लम्बी, कोमल-अंग साँवले रंग की मलवैन, कितना सुन्दर गाती थी चलती तो ऐसा लगता जैसे मोरनी की तरह नाच रही हो। उसकी हर अदा दिल को आकर्षित करने वाली थी। वह रोज नया जादू करती, रोज नया टोना करती पर उसकी दाल ना गली।

आखिर हार कर उसने हथियार फेंक दिये। फौजदार दिलावर खान को खबर मिली कि जिस औरत को उसने गुरु महाराज को भरमाने के लिये भेजा था ताकि गुरु महाराज इस्लाम काबुल कर ले, वह तो खुद उनकी मुरीद बन गयी थी। गुरु महाराज ध्यान में बैठते तो खड़ी होकर उनके सिर पर पंखा झुलाती रहती। वह औरत जो हर शाम शराब की महफिलों की रौनक होती थी, हुक्का पीती थी, पान खाती थी। अब किसी ने उसके मुँह से ऊँची आवाज ना सुनी थी।

यही नहीं फौजदार दिलावर खान को पता लगा कि जीनत उनके सारे मन्सूबे गुरु महाराज तक पहुँचाती रहती थी। उसने उन्हें ये भी बता दिया था कि कुछ दिनों बाद गुरु महाराज को दिल्ली भेजवाया जा रहा था। उन्हें और उनके तीनों साथियों को।

यह जानकर दिलावर खान ने जीनत को गुरु महाराज की सेवा से हटा दिया। अब तो उनकी दीवानी हो गई थी। उठते बैठते गुरु महाराज की कहानियाँ सुनाती रहती थी। उनका कलाम उसने गाना शुरू कर दिया था। कोठे पर बैठना बन्द कर दिया था।

उस दिन जब शराब में बदमस्त दिलावर खान उसके कोठे पर गाना

सुनने गया, उसे अपनी आँखों पर एतबार ना हुआ, सफेद दुधिया कपड़ों में जीनत एक सद्‌चरित्र औरत की तरह सामने बैठी माला फेर रही थी। "ये तुझे हो क्या गया है ?" फौजदार ने जीनत से पूछा।

उसकी आँखों में से छम-छम आँसू गिरने लगे। "वो तो कोई फरिश्ता है।" जीनत गुरु महाराज के गुण गाने लगी। "वह तो कोई पहुँचा हुआ बुजुर्ग है। फौजदार मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ उसे कोई कष्ट मत पहुँचाना। तेरे इस सरहन्द की ईंट से ईंट बज जायेगी।"

"वह तो वली अल्लाह है। उनका स्थान तो किसी नबी वाला है। उन्हें देखकर कलेजे में ठण्डक पड़ती है। बिल्कुल बाबा नानक जैसा स्वरूप।"

"लगता है तू भी उसकी बातों में आ गई है, तुझ पर उसने कोई टोना कर दिया है।"

"शायद ऐसा ही हो, मुझे तो उसमें अल्लाह का नूर दिखाई दिया है। तेरे मदारी उसकी कोठरी में जहरीले साँप छोड़ते हैं। तुझे मालूम है। हर साँप उसे सलाम करके अपने रास्ते चला जाता था।"

"यह मामूली बात है। इन लोगों ने साँपों को वश में किया होता है।" "और वो जो पागल कुत्ते आपने हवेली की ओर छोड़े थे ?" "सुना है। कुत्तों को वो पालता रहा है। कुत्तों को उसमें एक रक्षक की बू आ जाती है। छोड़ इन फजूल बातों को कोई गीत सुना।"

"हाय कभी तूने उनका गाना सुना होता। आँखों के सामने जन्नत के नजारे तैरने लगते हैं।"

"कल नहीं तो परसों उसे पता चलेगा, लोहे का पिंजरा तैयार हो रहा है पिन्जरे में बन्द करके उसे दिल्ली भेजा जा रहा है। उस पिन्जरे में ना वो खड़ा हो सकेगा, ना लेट सकेगा, बैठा-बैठा सोये, बैठा-बैठा जागे।"

"लाहौल बिला कुबत्त तू आगे जाकर किसी को जवाब देना ही होगा ?" "मैं तो दिल्ली हुकूमत का नौकर हूँ, मुझे जो हुक्म मिलता है। पूरा करना पड़ता है। खैर छोड़ इन फिजूल बातों को कोई बढ़िया सी चीज सुना तूने तो आज मेरा सारा नशा खराब कर दिया है।"

"ले सुन मैं तुझे मल्हार राग में एक चीज़ सुनाती हूँ, बाहर किन-क़िन फुहार पड़ रही है।"

जीनत गुरु अर्जन देव जी का यह शब्द गाती है—

बरसु मेघ जी तिल बिलम्ब ना लाओ ॥

बरसु प्यारे मन ही सधारे होयी अनदु सदा मनि चाउ ॥ रहाउ ॥
हम तोरि धर स्वामी मेरे तू क्यों मनहु बिसारे ॥
स्त्री रूप चेरी की न्यायी सोभ नही बिन भरतारे ॥
बिनउ सुनियो जब चाकर मेरे बेघ आइओ कृपा धारे ॥
कहु नानक मेरे बनियों सोघणों पति सोझ भले अचारे ॥

(मल्हार महला ५)

जीनत ने गाना खत्म किया तब कमरे में एक शक्ता छा गया। आँखें मूँदे एक खुमार में फौजदार दिलावर खान बैठा था, बहुत देर तक ज्यों का त्यों बैठा रहा। फिर जैसे कोई नींद से जागता है। उसने पूछा—"ये किसके बोल हैं ?"

"ये गुरु अर्जन देव जी का शब्द है", जीनत ने उसे बताया। "वही जिन्हें लाहौर में यातनायें देकर खत्म किया गया था।"

"हाँ।" जीनत के स्वर में आदर था।

अगर दादा इस तरह के दरवेश का वो हाल कर सकता था तो पोता, उनके पोते का जो भी हाल क़रे थोड़ा है। फौजदार महफिल से उठ कर चला गया। आज उसने जीनत के यहाँ ना शराब पी थी ना पान खाया था, ना और कोई बेहूदा हरकत की थी।

"दिलावर खान घर पहुँचा वहाँ आलम बैठा इन्तजार कर रहा था। "यार लगता है। तू जो कहता है। ठीक है। हम सब भटके हुए हैं।" दिलावर खान कुछ इस तरह आलम से मुखातिब हुआ। "ये सिक्ख गुरु तो सचमुच कोई बली अल्लाह हैं। जीनत जैसी वेश्या को उसने पाक बाज बना दिया है। कहाँ वह इश्क मोहब्बत के नगमें गाती थी, उसने तो हाथ में माला पकड़ ली है।" मेरी मानों त. आप इन लोगों को ना छेड़ो। अल्ला का नाम लेते हैं। रब्ब सबका साँझा है। रब्बुल-आलमीन है रब्बुल मुसलमीन नहीं।"

"वो तो तू ठीक कहता है आलम खान पर आलम गीर को कौन समझाये? उसका फरमान है कि लोहे के पिंजरे में कैद करके इन्हें फौरन दिल्ली भेज दिया जाये।"

"ये कुफ्र है। लगता है मुगल सल्तनत के जबाल के दिन आ गये हैं। कोई तरीका ढूँढना होगा कि इस सित्म से बचा जा सके।"

एक ही तरीका है कि इस आदमी से कहो कि कोई करामाते दिखाये। औरंगजेब डर जायेगा। तूने तो इनके साथ काम किया है वो इनका पानी

भरने लगेगा। आखिर इससे तो इन्कार नहीं कि वो पाकबाज है। उसे खुदा का खौफ है उसमें बस रास्ता गलत पकड़ा है।

"करामात गुरु महाराज हरगिज नहीं दिखायेंगे। क्या ये करामात नहीं कि जीनत जैसी औरत ने माला पकड़ ली है ? क्या ये करामात नहीं कि दिलावर खान जैसा शख्स और के और लहजे में बात कर रहा है।"

"और कोई तरीका नहीं, करामात इन्हें दिखानी पड़ेगी, करामात साबित कर देगी कि वे बली अल्लाह है। आलमगीर उनसे कुछ नहीं कहेगा।"

बाबा नानक ने कहा था आदमी खुद एक करामात है। इनके सबसे बड़े भाई ने करामात दिखाई थी। एक मुर्दे को जिन्दा कर दिया। उन्हें अपनी जान देकर इसका प्रायश्चित करना पड़ा। करामात तो सड़कों पर मजमा लगाने वाले किया करते हैं। गुरु महाराज करामात कभी नहीं दिखायेंगे।

"हजरत इशा ने करामातें दिखाई। हमारे अपने पैगम्बर के नाम से करामातें जुड़ी हुई हैं।"

"ना ये हजरत ईशा है, ना कोई पैगम्बर।"

"क्या मतलब, तेरी जबान से मैं कुफ्र सुन रहा हूँ।"

"हज़रत मोहम्मद को करामात में कोई यकीन नहीं था।"

"तेरा मतलब है, हमारे हज़रत करामात नहीं दिखा सकते थे ?"

"कुरान शरीफ तो यही कहता है।"

"मुझे किसी काफिर से कुरान के बारे में परिचय प्राप्त नहीं करना।" फौजदार दिलावर खान गुस्से से खौलता हुआ उठ कर कमरे से बाहर निकल गया।

(29)

दिल्ली की चाँदनी चौंक कोतवाली में गुरु तेग बहादर कैदी बना कर रखे गये थे। उनके साथ उनके साथी गुर सिक्ख भाई मतिदास, भाई सती दास और भाई दियाला भी नज़रबन्द थे।

आलम गीर औरंगजेब का हुक्म था कि या तो वे कोई करामात दिखाये और साबित करें कि वे बली अल्ला है या इस्लाम कबूल करें। अगर वे एसा नहीं करते तो उन्हें उनके साथियों समेत तेग के घाट उतार दिया जाये। खुद औरंगजेब उत्तर-पश्चिम के कबायलियों का सिरर कुचलने के लिये हसन अब्दाल छावनी डाल कर बैठा हुआ था।

औरंगजेब को शिकायत थी कि इधर वो सारे हिन्दुस्तान को मुसलमान

बनाने के मंसूबें बना रहा था, उधर गुरु तेग बहादर कई प्रमुख मुसलमानों को अपना मुरीद बनाते जा रहे थे। इसे कैसे बर्दाश्त किया जा सकता था?

इसका एक सबूत यह था कि कमाल और आलम दोनों दिल्ली में थे कमाल को गुरु महाराज के खिलाफ दिये गये फतुये की सूचना लाहौर में मिली थी इधर से उसकी कैद की मियाद खत्म हुई उधर वह सीधा दिल्ली पहुँच गया। आलम तो साये की तरह गुरु महाराज के साथ रह रहा था, चाहे इस बारे में किसी को वह पता नहीं लगने देता था। गुरु महाराज के प्रति उसकी श्रद्धा अपार थी। उसे उनमें अल्लाह का नूर नज़र आया था और वह उनका हाथ-बँधा गुलाम बन गया था।

आलम सोचता था अगर वो अपनी जान कुर्बान करके गुरु महाराज को आलम गीर के कोप से बचा सके वह ये कीमत देने के लिये तैयार था। यही हाल कमाल का था। सारी उम्र वो गुरु घर का श्रद्धालु रहा था उसने मन ही मन फ़ैसला किया था कि इस मौके को वह हाथ से नहीं जाने देगा। गुरु महाराज की सेवा में वह अपना सब कुछ कुर्बान कर देगा। इसी में उसकी मुक्ति थी। उसने अपने आप से ये फ़ैसला किया था।

एक तो शाही काजी का फतवा, दूसरे शहंशह का फरमान, दिल्ली में आलम हर दरवाजा खटखटा कर देख चुका था। कहीं भी कोई मदद करने वाला तैयार नहीं था। औरंगजेब राजधानी से बाहर था, इस लिये और भी मुश्किल बनी हुई थी। कोई इस मामले में दखल देने का साहस नहीं करता था।

अपने रसूल की वज़ह से आलम को जो विस्तृत सूचनायें मिलीं। गुरु महाराज को कैसी कैसी यातनाएं दी जायेंगी, उनके साथियों को किस तरह की यातनायें पहुँचाई जायेगी तब से उसे ना दिन में चैन आता ना रात को।

कमाल को रास्ता साफ था। उसने अपने मन से यह फ़ैसला किया हुआ था कि गुरु महाराज की शहीदी से पहले वह अपनी जान कुर्बान कर देगा। वह इस हत्या काण्ड के बाद जीवित नहीं रह सकेगा। अगर गुरु महाराज हिन्दू धर्म के लिये जान दे सकते थे तो वह उनके लिये अपने आप को कुर्बान कर देगा।

फिर सूचना मिली कि शहंशाह औरंगजेब हसन अब्दाल से लौट रहा है। एक आशा की किरण दिखाई दी। फिर अंधेरा छा गया दिल्ली लौट कर औरंगजेब ने सबसे पहले गुरु तेग बहादर जी के मामले की तरफ ध्यान दिया।

बार बार कहता था, "अगर वह सच्चा पातशाह है, तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं झूठा पातशाह हूँ। उसे इस बान का भी गुस्सा था कि गुरु महाराज तेग बहादर क्यों कहलाते हैं? "मैं देखूँगा वह कितना बहादुर है" औरंगजेब जहर घोलता रहता। उसे बताया गया कि ना वे करामात दिखाने के लिये राजी हुये थे और ना ही मुसलमान होने के लिए। अन्हें अपना धर्म प्यारा था जिसके लिये वे हर कुर्बानी देने को तैयार थे।

यह जानकर औरंगजेब ने हुक्म दिया कि गुरु महाराज के साथियों को एक एक करके उनकी नजरों के सामने यातनायें दी जाएं और खत्म कर दिया जाए। शायद इस बात से उन को सबक मिले। सबसे पहले भाई मती दास की बारी थी। जाड़े के दिन सर्दी कदम-कदम बढ़ रही थी। उधर सुबह हुई, गुन गुनी धूप निकली तो गुरु महाराज को लोहे के पिंजरे में कैद करके कोतवाली के ऑगन में लाया गया। सामने दो शहतीर गाड़े गये थे जैसे मोटे-भारी स्तम्भ हों। शहतीरों के बीच बस इतना स्थान था कि एक आदमी मुश्किल से खड़ा हो सकता था। शहतीरों के पीछे लकड़ी की एक घोड़ी रखी थी जिसकी एक तरफ ऊपर चढ़ने की सीढ़ियॉ थी कुछ देर बाद काज़ी और बाकी अहलकार एक-एक करके आने लगे। इतने में भाई मती दास को लाकर काज़ी के सामने पेश किया गया। भाई मती दास को हटकड़ी लगी हुई थी बेड़ियॉ पड़ी हुई थी। भाई मती दास गुरु महाराज को देख कर जैसे खिल उठे और दूर से उन्होंने गुरु महाराज को सत्कार दिया।

"क्यों, तू इस्लाम कबूल करने को तैयार है?"

"नहीं" भाई मतीदास ने निर्भीक स्वर में उत्तर दिया।

"सोच ले मुसलमान बना कर तुझे रिहा कर दिया जायेगा, नहीं तो तेरी सजा मौत है।"

"मुझे मौत कबूल है।"

"तुझे आखिरी मौका दिया जाता है। अगर तू इस्लाम कबूल नहीं करता तो :"

"तो मुझे इन शहतीरों के बीच बॉध कर आरे से दो टुकड़े कर दिया जायेगा" भाई मती दास ने जैसे काज़ी के मुँह से बात छीन ली "मुझे पहले से ही इसकी सूचना मिल चुकी है। मैं तैयार हूँ।" यह कहते हुये भाई जी ने जपुजी साहब का पाठ करना शुरू कर दिया। काज़ी के इशारे पर भाई जी को लकड़ी के शहतीरों के बीचों-बीच ले जाकर खड़ा किया उनके शरीर को

दोनों तरफ कर कर रस्सियों से बॉधा, कितनी देर तक ये कारवायी चलती रही। भाई मती दास गुरु महाराज की ओर हाथ जोड़ कर एक टक देख रहे थे।

सच खण्डि वसै निरंकारु ॥
करि करि वेखै नदरि निहाल ॥

भाई मती दास ये तुक पढ़ रहे थे कि अब समानां का जल्लाद सैयद जलालउद्दीन आरा लेकर लकड़ी की घोड़ी पर चढ़ गया काज़ी के आखिरी इशारे पर उसने आरा चलाता शुरु किया, ज्यों ज्यों आरा चलता लहू की धारें बहती भाई मती दास की आवाज ऊँची और ऊँची होती जा रही थी वे पहले कि तरह गुरु महाराज के मुखड़े को देख रहे थे।

जिन कौ नदरि करमु तिन कार ॥
नानक नदरि नदरि निहाल ॥
चंगें आइयॉं बुरे आइयॉं वाचै धर्मु हदुरि।
करनी आपो आपणी के नेणै के दुरि ॥
जिनि नामु ध्याया गये मुश्कति घालि ॥
नानक ते मुख उजलें केति छुट्टी नाली ॥

इधर ये तुक भाई मती दास जी के मुखारबिन्द से निकली उधर आरे ने अपना काम खत्म कि भाई मती दास जी का एक हिस्सा दाये खम्भे की ओर ढलक गया ओर दूसरा बायें खम्भे की ओर नीचे लहू का तालाब बन गया। उस शाम फिर गुरु महाराज से पूछा गया आप इस्लाम कबूल करते हैं। कि नहीं?

"नहीं गुरु महाराज का जवाब था।"

"आप करामात दिखा सकते है।"

"नहीं।"

गुरु महाराज की आजकल अजीब मनोदशा थी। अत्यन्त वैराग्यमय हालत में वे उठते-बैठते श्लोकों का उच्चारण करते रहते।

सुख दुःख जिह परसै नही
लोभ मोह अभिमान ॥
कहो नानक मन रे मना सो मुरति भगवान ॥ १३ ॥
उस तति निन्दया नाहि जिहि कंचन लोह समान ॥
कहु नानक सुन रे मना

मुकति ताहि तै जान ॥ १५॥
भै काहु कौ देत नहि
नहि भै मानत आनि ॥
कह नानक सुन रे मना ॥
ज्ञानि ताहि बखान ॥ १६ ॥

अगले दिन फिर दिन चढ़ते ही धूप निकली ही थी कि पिंजरे में बंद गुरु महाराज को कोतवाजी के आंगन में लाया गया।

आज सामने चूल्हे पर एक देग में पानी उबल रहा था।

कुछ देर बाद काज़ी और दूसरे मुगल कर्मचारी एक एक करके आने लगे। जब सारे इकट्ठे हो गये। हथकड़ी और बेड़ियों में भाई दियाला को पेश किया।

भाई दियाला ने काज़ी के बजाय गुरु महाराज को आगे सिर झुका कर प्रणाम किया।

"क्यों तू इस्लाम कबूल करने के लिये तैयार हो?"

"हरगिज नहीं।" भाई दियाला ने कड़क कर जवाब दिया।

"तुझे पता है इसकी सजा मौत है?"

"मुझे मौत कबूल है।"

भाई दियाला ने पहले की तरह ललकार के कहा

"फिर सोच ले, तुझे इस उबल रही देग में डुबा कर जिन्दा गला दिया जायेगा" काजी बोला

"जैसे हमारे पॉचवे पातशाह के साथ किया गया था।"

"सोच ले एक मौका तुझे और दिया जाता है।"

"मुझे मेरे गुरु महाराज के दर्शन मिल गया।"

"मैं जीवन मुक्त हो गया हूँ, मैं तैयार हूँ।"

ये बोल भाई दियाला के मुँह में ही थे कि दो जल्लादों ने उनको पानी की देग में डाल दिया। कुछ देर तक केवल सत्तनाम श्री वाहे गुरु की आवाज सुनाई देती रही। फिर ये धुन मद्धम पड़ गई। फिर सुनाई देनी बन्द हो गई।

उस शाम फिर गुरु महाराज से पूछा गया "क्या आप इस्लाम कबूल करने को तैयार हो।"

"नहीं" गुरु महाराज ने जवाब दिया। "आप करामात दिखा सकते हैं?"

"बिल्कुल नहीं।"

इस सवाल जवाब की परवाह ना करते हुये गुरु महाराज ने अपने उच्चारे हुये श्लोको की लड़ी जारी रखी।

जैसे जलते बुद-बुदा उपजै बिनसै नीत ॥
जग रचना तैसे रची कह नानक सुनि मित ॥ २५ ॥
प्रानी कछु ना चेतयी
मद माया कै अन्ध ॥
कह नानक बिन हरि भजन परत ताहि जम फन्ध ॥ २६ ॥
जो सुख कौ चाहै सदा
सरति राम की लेह ॥
कह नानक सुन रे मना
दुर्लभ मानुख देह ॥ 26 ॥
माया कारन धावरि
मुरख लोग अजान
कहो नानक बिनहरि भजन
बिरया जनम सिरान ॥ २७ ॥

अगले दिन फिर वही मशक धूप निकली तो गुरु महाराज को पिंजरे में बन्द करके कोतवाली के विशाल आँगन में लाया गया। फिर शहर का काजी आया और अहलकार आये। आज भाई सती दास की बारी थी। भाई सती दास को हथकड़ी और बेड़ियॉं डाल कर हाजिर किया गया। आते ही उसने सिर झुका कर गुरु महाराज को आदर दिया। हाथों को वह नहीं जोड़ सकता था हाथों में हथकड़ियॉं थे। दण्डवत नहीं कर सकता था पैरों में बेड़ियॉं थी फिर वही मुहारनी।

"क्या तू कलमा पढ़ने को तैयार है।"

"कलमा मैंने सौ बार पढ़ा है और फिर भी पढ़ूँगा। पर मैं बाबा नानक का धर्म नहीं बदलूँगा।"

"फिर सोच ले इस्लाम तुझे क़बूल है कि नहीं?"

"हरगिज़ नहीं।" भाई सती दास ने एक गुर सिक्ख की आस्था से ओत-प्रोत होकर कहा।

"तुझे पता है इस की सज़ा क्या है?" काज़ी ने फिर पूछा।

"हॉं"

सामने पड़ी रूई से मेरे अंग अंग को लपेट कर उस मटके का तेल उस

पर छिड़का जायेगा और मुझे ज़िन्दा जला दिया जायेगा। ये सुन कर काज़ी ने जल्लादों की ओर इशारा किया कि वे अपनी कारवाई शुरू करें। भाई सती दास ने इतने में 'सत्तनाम श्री वाहे गुरु' का उच्चारण शुरू कर दिया था। एक सुर में वे सत्तनाम श्री वाहे गुरु का जाप कर रहे थे, उनक अंग अंग को रूई से लपेटा जा रहा था। कुछ देर बाद भाई सती दास ने जाप रोक कर कहा मेरी ऑखो को ज्यों का त्यों रहने दो ताकि मैं अपने गुरु के दर्शन करता रहूँ। मेरे मुँह को भी ज्यों का त्यों रहने दो ताकि मैं ईश्वर का का नाम ले सकूँ। वैसा ही किया गया, भाई सती दास जाप कर रहा था, और गुरु महाराज की ओर निहार रहा था। फिर उस पर तेल छिड़क कर आग लगा दी गई। 'सत्तनाम श्री वाहे गुरु' का जाप ऊँचा होता गया। कुछ देर के बाद भाई सती दास ने पूर ज़ो से पुकारा 'गुरु तेग बहादर हिन्द की चादर' और फिर उनकी आवाज़ जैसे किसी कुँऐं में डूब गई। देखते देखते भाई सती दास एक जली हुई लकड़ी जैसे रह गये।

ये तीनों दिन भाई जैता एक भंगी के वेश में झाड़ू और टोकरी ले कर हाज़िर रहता और गुर सिक्खों के मृतक शरीर को यमुना में प्रवाहित कर देता।

(30)

गुरु महाराज की वही कैफीयत (मनः स्थिति, हालत) थी। वैराग्य की मनोदशा। वे अनायास श्लोक उच्चारण करते जा रहे थे।

जग रचना सब झूठ है
जाति लेहु रे मीत ॥
कह नानक थिर ना रहै
ज्यू बालू की भीत ॥ ४९ ॥
राम गयो रावन गयो
जाकौ बहु परवार ॥
कह नानक थिर कुछ नहीं
सुपने ज्यो संसार ॥ ५० ॥
जो उपज्यो सो बिनसि है
परो आतु कै काल ॥
नानक हरि गुन गाइ लै
छाडि सगल जंजाल ॥ ५२ ॥

शाम हो रही थी जब कोतवाल ख़्वाजा अब्दुल्ला औरंगज़ेब का आख़िरी फ़रमान ले कर आया। शहंशाह ने हुक्म दिया था कि अगर गुरु तेग बहादर इस्लाम कबूल करने के लिये राज़ी नहीं होते तो उन्हें करामात दिखानी पड़ेगी, यह साबित करने के लिये कि वे अल्लाह तक पहुँचे हुये फ़कीर हैं जिन्हें यह हक़ दिया जा सकता है कि वे जैसे चाहें वैसे रहें जो चाहें सो माने। अगर ये बातें उन्हें मन्ज़ूर ना हों तो अगले दिन सुबह ढिंढोरा पिटवाकर उन्हें चाँदनी चौर में तलवार के घाट उतार दिया जाये। यही नहीं उनके सिर और शरीर के टुकड़ों को शहर के कोने-कोने में लटकाया जाये :

वजूदस चंद हिस्से नमूदार अतराफ़े शहर आवे ज़ंद।

गुरु महाराज करामात को क़हर समझते थे और धर्म परिवर्तन की बात वे सोच भी नहीं सकते थे।

कोतवाल ख्वाजा अब्दुल्ला जिसने पिछले तीन दिनों की अमानुषिक घटनाओं को देख कर फ़ैसला कर लिया था, कि वह मुगल शहंशाह की नौकरी छोड़ कर गुरु महाराज का मुरीद हो जायेगा उनके हाथ जोड़ कर बार-बार कह रहा था "औरंगजेब का अंत उसे पुकार रहा है। आप क्यों इस तरह के कट्टरपंथी को मुँह लगाते हैं? कोई छोटी-मोटी करामात दिखा कर उससे पीछा छुड़ाइये और कश्मीरी पंडितों से आप को क्या लेता देना है? वे ख़ुद अपने सूबेदार से निपट लेंगे।"

गुरु महाराज ने ये सुन कर कुछ इस तरह फ़रमाया—बाँह जिन्हा दी पकड़िये, सिर दीजै बाँह ना छोड़िये। तेग बहादर बालया धर पइये, धरम ना छोड़िये।

ये सुन कर ख़्वाजा अब्दुल्ला की आँखों में से आँसू बहने लगे। कितनी देर तक गुरु महाराज के चरणों में गिर कर अपनी भूलें माफ़ करवाता रहा।

"मेरे सिर पर जो आयेगी। मैं झेल लूँगा आप इस मक़तल में से निकल जायें।"

ये कैसे गुरु महाराज महाराज को मंजूर हो सकता था? देर रात गये तक कोतवाल गुरु महाराज के हाथ जोड़ता रहा, बार-बार मिन्नते करता राह, पर गुरु महाराज राज़ी नहीं हुये। "कल इस शहर में क़यामत आयेंगी, मेरी मानिये तो आप यहाँ से निकल जाइये।" ख़्वाजा अब्दुल्ला बार बार एक ही रट लगाये हुये था। गुरु महाराज टस से मस नहीं हो रहे थे। छल छल आँसू बहाता, कोतवाल अपनी एक गुरु सिक्ख की ज़िद पकड़े हुए था। "अगर आप

यह भी नहीं कर सकते तो कोई करामात दिखा दीजिये। शहंशाह के लिये ना सही मेरे लिये अपने मुरीद के लिये।"

मैं आपकी शरण में आया हूँ मेरी लाज रखिये।

आख़िर गुरु महाराज जैसे पसीज गये हो। रात गहरी हो गई थी। उन्होंने अगली सुबह की तैयारी भी करनी थी। गुरु महाराज ने फ़रमाया "चलो मान लिया, अगर आपने करामात ही देखनी है तो कल मैं करामात दिख दूँगा।" ख़्वाला अब्दुल्ला ने सुना तो उसकी जान में जान आई गुरु महाराज के चरणों को बार-बार चूमता उनका धन्यवाद करता बार-बार हाथ जोड़ता परवर दिगार से गुरु महाराज की सुख-शान्ति के लिये दुआयें मॉगता हुआ अपने डेरे पर लौट गया।

उधर दिलवाली नाम की गली में जैता और ऊधा नानू के घर इकट्ठा हुऐ सब इस फिक्र में थे कि मुग़ल को गुरु महाराज के शीश और शरीर के बाकी टुकड़ों को शहर में नुमाइश करके उनका निरादर नहीं करने देना चाहिये। शीश को आनन्दपुर पहुँचाना होगा और बाकी शरीर का जल्दी से जल्दी दिल्ली में संस्कार करना होगा।

जैता जो पिछले तीन दिनों से भाई मती दास, भाई सती दास और भाई दियाला के मृतक रीरों की देखभाल कर रहा था, कहने लगा "गुरु सीस को अनन्दमुर पहुँचाना मेरी जिम्मेदारी है। चाहे मुझे जान ही देनी पड़े।" जैता कोतवाली में जमादार था। उसके साथा जाने के लिये भाई ननुआँ और भाई अड्डा जी तैनात किये गये। ये फ़ैसला हुआ कि वे रास्ते में पॉच पड़ाव करेंगे। पहला बान्पट दूसरा तरेउड़ी, तीसरा अनाज मण्डी अम्बाला, चौथा नाथा साहेब और पॉचवा कीरतपुर।

बाकी देह की सम्भाल के बारे में यह फ़ैसला हुआ कि अगले दिन लक्खी लुंबाना नारनौल से अपने माल की बैलगाड़ियॉ ला रहा था। शहर से बाहर उसे मिल कर कहा लाये कि बलिदान होने के बाद वह गाड़ियों को कोतवाली के सामने से गुज़ारे। उसके पास बहु ी बैलगाड़ियॉ थी। हमेशा माल से ठसा ठस भरीं रहतीं थी, रात के अंधेरे में यह गुरु महाराज की पवित्र देह को बैलगाड़ी में रख कर अपने गॉव ले जाये और वहीं संस्कार कर दे। सारी कारवाई में भाई ऊधा, भाई निगाहिया हेम और हरी नायक धूमा और उयर बिज लौट उसके साथ रहेंगे। लक्खी शाह ने कहा, "मैं अपने गॉव राय सैना पहुँच कर घर को ही आग लगा दूँगा। इसी से गुरु महाराज की देह

का संस्कार हो जायेगा" इस सारी योजना को कैसे पूरा करना है, इसकी सूचना रातों-रात बाकी निकटवर्ती गुर सिक्खों को पहुँचा दी गई ताकि वे सावधान रहें। हर एक ने अपनी-अपनी ज़िम्मेवारी संभाल ली।

उस आविस्मरणीय दिन तड़के ही नित्त नेम से उठ कर जब स्नान किया करता था स्नान करक पाठ किया करता था, कमाल बैठा वीरॉ वाली को ख़त लिख रहा था :

"लिख तुम कमाल मिले मेरी परम प्यारी एक पल ना बिसारी वीरॉ वाली। तुझे और बच्चों को बहुत बहुत प्यार और गुरु महाराज की असीसें। सत्गुरु तुम लोगों के अंग-संग रहें।"

"ये खत आलम के हाथ भेज रहा हूँ। आलम ख़त लेकर आयेगा और फिर तेरे साथ जीवन भर रहेगा। ये वचन मैंने उससे ले लिया है क्योंकि जब तुझे ये ख़त मिलेगा तब कमाल इस संसार से नहीं होगा। अब मैं और ये बुझारत नहीं डाले रखूँगा। तुझे भेद की बात बताता हूँ :

आज किसी वक्त नवें पात शाह, गुरु तेग बहादर जी को शहंशह औरंगज़ेब को फ़रमात के मुताबिक शहीद कर दिया जायेगा। शहंशह का ये हुक्म है कि अनका सीस और बाकी शरीरी के टुकड़े शहर के कोने कोने में टॉगे जायें ताकि लोगों को सबक़ मिले।"

"गुरु महाराज की शहीदी तो हम नहीं रोक सके, पर इस दूसरे उपद्रव को हम किसी हाल में नहीं होने देंगे। ये फ़ैसला हुआ है, कि गुर सिक्खों का एक जत्था गुरु महाराज की शहीदी के बाद उनके सीस को संभाल कर आनन्दमुन पहुँचायेगा और दूसरा जत्था उनकी पवित्र देह को ले जाकर संस्कार करेगा।

"गुर सिक्खों ने यह फ़ैसला तो कर लिया है। पर इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि जब गुरु महाराज का सीस और उनकी देह बाहर सड़क पर ना पाये गये, तो मुगल सरकार के अहंलकार, दिल्ली और दिल्ली से बाहर चप्पे चप्पे को छानना शुरु कर देंगे और इस तरह सारी की सारी योजना धरी की धरी रह जायेगी।

इन हालात में मैंने और आलम ने फ़ैसला किया है कि उधर से गुरु महाराज के सीस को क़लम किया जायेगा, इधर आलम मेरा सिर काट देगा और जब गुरु महाराज का सीस और उनकी पवित्र देह तैनात किये गये जत्थे उठा लेंगे, उनके स्थान पर मेरा सर और मेरा धड़ रख दिया जायेगा। लहू

में लथपथ किसी से पहचाना नहीं जायेगा। इस फ़ैसले पर आलम को राज़ी करने के लिए बड़े हाथ जोड़ने पड़े हैं। उसकी बड़ी मिन्नत करनी पड़ी है। ये उनका मुझ पर एहसान है। मैं अगले जन्म तक उसका ऋणी रहूँगा। वो तो खुद इसके लिये तैयार था कि उसे मौक़ा दिया जाये। कि वह गुरु महाराज के लिये अपने-आप को कुर्बान करे। मेरी बिनती को उसने मान लिया है। यह उसका मुझ पर बड़ा एहसान है। अल्लाह उसे खुश रखे।"

"वीरां, तुझे यह नहीं भूलता चाहिये कि आलम ने तेरे लिये बड़ी भारी कुर्बानी की है। अपने बीवी-बच्चों, घर बार को छोड़ा है। इनती बड़ी नौकरी को लात मारी है। अपने इस्लाम को छोड़कर गुरु महाराज की शरण में आया है और उसकी सबसे बड़ी देन जिसकी समझ मुझे अब आई है, इतने बरस जब मैं गुरु महाराज के साथ पूरब के दौरे पर था, उसने तेरे सत् और धरम को बनाये रखा कदम कदम पर तेरी मदद की ताकि तू कहीं अपनी लक्ष्मण-रेखा का उलंघन ना कर जाये। यह किसी मामूली किरदार का काम नहीं।"

"इसके ईनाम में मैं उसे अपनी ज़िन्दगी की सबसे प्यारी चीज दे रहा हूँ। गुरु महाराज की आप लोगों पर मेहर होगी। आप युग-युगों तक खुशी से मियाँ-बीवी की तरह हंसते खेलते रहें।"

"अलविदा। बच्चों को कमाल चाचा की ओर से बहुत-बहुत प्यार।"

"मैं देख रहा हूँ, वीरां तेरी आँखों में आँसू उमड़ रहे हैं। यह उस महान शहीद से अन्याय है, जिसके हम सिक्ख कहलाते हैं। गुरु रक्षा करे।"

कमाल को ख़त लिखते लिखते सुबह हो गई।

इधर दिन चढ़ा तो दिल्ली शहर के हर बाज़ार हर गली में ढिंढोरा पीटा जा रहा था, "चाँदनी चौक कोतवाली के सामने सिक्ख गुरु तेग बहादर को आज इस्लाम कबूल करने से इन्कार करने के लिये और कश्मीर के पंडितों को इस्लाम के खिलाफ भड़काने के लिये सरेआम तलवार के घाट उतारा जायेगा हर शहरी इस सज़ा की तकमील का नज़ारा कर सकता है।" बार-बार ढोल फट कर यह एलान किया जा रहा था।

कोतवाल ख़्वाजा अब्दुल्ला सुन कर मन ही मन ख़ुश हो रहा था। वह सोचता था, लोग आयेंगे और गुरु महाराज करामात दिखा कर फ़िरकापरस्त अहलकारों के सारे मन्सूबे बेकार कर देंगे। शहंशाह ने करामात दिखाने की शर्त रखी थी और गुरु महाराज ने कल रात वादा किया था कि वे करामात

दिखायेंगे। यह राज़ ख्वाजा अब्दुल्ला किसी को नहीं बता रहा था।

बार बार वह सोच रहा था सारा शहर एक काफ़िर का कत्ल देखने के लिये उमड़ेगा और गुरु महाराज की करामात देख कर लोग अपना-सा मुँह लेकर लौट जायेंगे। लोग उनकी जै-जै कार करेंगे और जैसा कोतवाल ने सोचा था बिल्कुल वैसा ही हो रहा था। चाँदनी चौक में कोतवाली के बाहर नहर की बाई तरफ एक ऊँचा चबूतरा बनाया गया था। इस पर गुरु महाराज को लाकर खड़ा किया गया। गुरु महाराज अपने नित नेम के अनुसार अमृत वेला में उठ कर स्नान कर चुके थे। जपुजी और सुखमनी साहिब का पाठ भी उन्होंने कर लिया था।

अब शाही काज़ी अब्दुल्ला वहाब आकर एक तरफ खड़ा हो गया था। उसके आस-पास दरबार के और कई अहलकार थे। मुगल फौज की एक टुकड़ी नीचे नहर के किनारे तैनात थी। आस पास हजारों की गिनती में लोग जमा हो गये थे। इनमें तमाशबीन भी थे, गुरसिक्ख भी थे, फिरकापरस्त भी थे, खुदा से डरने वाले भी थे। वे भी थे, जो सोचने थे, आज इस्लाम का विरोध करने वाले एक वैरी का अन्त होगा वे भी थे जिनकी नजर में उस दिन सिक्ख कौम की बुनियाद और पक्की होने वाली थी। वे भी थे जो गुरु महाराज को काफिर समझते थे और वे भी थे जो उन्हें हिन्दू धर्म का रक्षक समझते थे।

अब समाना का जल्लाद सैय्यद जलालुद्दीन अपनी चमचमाती तलवार को खीच कर गुरु महाराज के पास आकर खड़ा हो गया था।

आखिर शाही काजी अब्दुल्ला वहाब ने मुगल शहंशाह का फरमान पढ़ कर सुनाया—तेग बहादर जो अपने आप को सिक्खों का पीर बताता है, या तो करामात करके यह साबित करे कि वह अल्लाह वाला है, या इस्लाम क़बूल करे। नहीं तो लोगों को गुमरराह करने के लिये उसका सिर कलम कर दिया जाये।

एक तरफ अलग खड़े ख़्वाजा अबदुल्ला की ऊँगुलियाँ, उसकी मोतियों के मनकों वाली तस्बीह पर जल्दी जल्दी चल रही थीं।

इतने में गुरु महाराज ने शाही काज़ी को संबोधित करते हुए फरमाया, "मैं करामात दिखाने के लिए तैयार हूँ।"

यह सुनकर आस पास खड़ी भीड़ ने सहसा जैसे गहरी सांस ली। कई आँखों में रोशनी झलकने लगी। कुछ आँखे ऐसी भी थीं जो निराश हो गई

थीं। जो तमाशा देखने आये थे उससे उन्हें जैसे वंचित रखा जा रहा था।

गुरु महाराज ने अपना बयान जारी रखा था—"मैं करामात दिखाने के लिए तैयार हूँ। मुझे एक कागज़ दिया जाये जिस पर मैं एक मंत्र लिख कर गले के गिर्द तावीज़ की तरह लपेट लूँगा। उसके बाद अरदास करके जब मैं माथा टेकूँ, जल्लाद अपनी तलवार को आज़मा सकता है।"

यह सुनते ही ख़्वाजा अब्दुल्ला फौरन कागज़ ले आया। गुरु महाराज ने उस पर कुछ लिखा। काग़ज़ को अपनी गर्दन के गिर्द लपेटा और जब वे माथा टेकने के लिए झुके जल्लाद ने तलवार से उनकी गर्दन पर वार किया। गुरु महाराज का सीस लुढ़क कर एक तरफ जा गिया।

सामने खड़े मुग़ल अहलकारों और तमाशबीन भीड़ की ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। ख़्वाजा अब्दुल्ला को जैसे अपनी ऑंखों पर ऐतबार न आ रहा हो। यह कैसे हो सकता था? उसने आगे बढ़कर गुरु महाराज के गले के गिर्द लिपटे हुए तावीज़ को खोलकर पढ़ा। उस पर लिखा था :

"सीस दिया पर सिरर न दिया"

तावीज़ को पढ़ रहे गुरु महाराज के ये बोल कोतवाल के मुंह में ही थे कि क़हरों का तूफ़ान चढ़ आया। अंधेररी और तूफ़ान। रेत और मिट्टी का गुबार। लगता था जैसे सब कुछ उलट-पुलट रहा हो। झक्खड़ लोगों को उठा उठा कर पटक रहा था। मिट्टी और धूल से पलकें मुंद मुंद जातीं। चेहरे पर जैसे रेत के थपेड़े लग रहे हों। शाही काज़ी, मुग़ल अहलकार और फौजी सिपाही—जिसको जहाँ जगह मिली अपना सिर छिपाने के लिए भाग पड़े। रेत के गुबार ने सारा दिन सारी रात दिल्ली शहर को लपेट रखा था। शहर में अंधेरा छाया हुआ था।

है है है सब जग भयो, जै जै जै सुर लोक।